कृण्वन्तो विश्वमार्यम् — ओ३म्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र जालन्धर

सम्पादक ... एम० ए० प्रकाशक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब गुरुदत्त भवन कृष्णपुरा चौक जालन्धर दूरभाष—७४१६०

... वर्ष १२, अंक १५, ८ वैशाख सम्वत् २०३७, तदनुसार २० अप्रैल १९८०, दयानन्दाब्द १५५



★

निर्दोष-शिक्षा-प्रचारी-प्रचारे
"डी० ए० वी०" के
शिक्षा-प्रचार-प्रचारे
एक प्रकाशमयी शिक्षा सूर्य
महा दीप्त ... ॥

★

जिनका जन्म-दिवस 19 अप्रैल को है—

महात्मा हंसराज जी

(रचयिता—श्री उत्तमचन्द जी शरर)

** MO-7

तुम आफ़तों से उलझते रहे संवरते रहे
तुम्हें ख़बर थी कि जीने का मुद्दआ क्या है ?
भंवर को कहते हैं साहिल कहते दिल अक्सर
डरे जो मौजाए तूफ़ां से नाखुदा क्या है ?

ख़ुशी का बाग़ कहें या तुम्हारी आबादी
कि राहे वेद पे मरना तुम्हें पसन्द आया।
हवस के पुतले किनारों पे देखते ही रहे
भंवर में डब उतरना तुम्हें पसन्द आया

यह दर्द कम नहीं तुम सा नहीं कोई हम में
ज़माना का क्या तुम अंजुमन से क्या उठे।
शरर यह फ़िक्र तुम्हारा ही अब ग़नीमत है
तुम्हारी याद से सीने तो जगमगा उठे।



The ARYA MARYADA JULLUNDUR

ईशावास्योपनिषद्

ले०—श्री सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार डब्लू-७७ए ग्रेटर कैलाश-१ नई दिल्ली

(गतांक से आगे)

—"युयोधि अस्मत् जुहुराणा एन ' । इस प्रार्थना से हम बार-बार आपको नमस्कार करते है—"भूयिष्ठा ते नम उक्तिं विधेम् ।

इस श्रुति मे तीन बातें विशेष रूप से कही गई है। प्रभु को सम्बोधन 'अग्नि'—इस नाम से किया गया है, सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा मांगी गई है, इस प्रेरणा के देने के लिए प्रभु को नमस्कार करते हुए प्रार्थना की गई है कि हमारी भावना को पूर्ण करें । ये तीनो विचार महत्वपूर्ण है

(क) परमात्मा को अग्नि क्यो सम्बोधित किया गया है-वेदो मे अग्नि का एक मुख्य देवता माना है। अग्नि प्रतीक है कुछ विचारो का। अग्नि कूड़े-कचर को भस्म कर देती है। अग्नि को सम्बोधित करते हुए साधक प्रार्थना करता है कि हे अग्नि जैसे आप झाड झंकार कूड़ा कचरा जला कर भस्म कर देते हो वैसे ही मेरे मन का मैल जला डालो। अग्नि ऊर्ध्वगामी है। अग्नि की लपटे नीचे नही जाती ऊपर ही जाती है। मशाल जला कर उसे नीचे की तरफ लाने का प्रयत्न किया जाए तो भी लपटे ऊपर ही जाती है। हे अग्नि आप मुझे ऊपर ही ऊपर जाने की प्रेरणा दो। अग्नि के सामने अन्धकार नही टिक सकता अग्नि प्रकाश की प्रतीक है। अग्नि से प्रार्थना है कि साधक के जीवन मे अखड ज्योति का आविर्भाव हो। जो लोग अग्निहोत्र करते हैं वे अगर अग्नि को सिफ देखते भर रहे तो भी ये भावनाए बरबस हृदय मे उठने लगती है।

(ख) अग्नि से सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा क्यो मागी गई है—अग्नि का काम प्रकाश देना है अन्धकार का निवारण कर दना है। मनुष्य का स्वभाव वासनामय जीवन के अन्धकार मे जीने का है। प्रकाश द्वारा तभी तो अन्धकार को भेद कर रास्ता दीखेगा। मनुष्य जानता है कि वासना उसे भस्म कर देगी परन्तु जैसे पतगा दीप शिखा पर जल जाता है वैसे ही यह मानव ससार के विषयों की आग मे अपने प्राण होम देता है। यह बात नही कि वह जानता नही, वह पूरे तौर से जानता है कि विषय उसे चाट जाएगे, परन्तु जानता हुआ भी अपने को रोक नही सकता। कहने वाले ने ठीक कहा है: 'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति: जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्ति:', परन्तु जानते बूझते भी मनुष्य अनजाना बना रहता है, अपने को—लाचार पाता है। ऐसे समय वह अग्नि से प्रेरणा मांगता है, तभी कहा है "अग्नि नय सुपथा राये"—अग्नि को अग्नि इसीलिए कहा गया है क्योंकि वह सब देवताओं से आगे है। जिस मनुष्य के मन मे आग जब उठती है वह अन्धकारमय जीवन से इन्कार कर देता है, जीवन में अध्यात्म की मशाल लेकर आगे आगे बढता और ऊपर ऊपर उठता चला जाता है। अग्नि से इस श्रुति मे यही मांग की गई है।

(ग) अग्नि को नमस्कार कर प्रार्थना क्यो की गई—तीसरी बात इस श्रुति मे—'नम उक्तिं विधेम' —भगवान् के सामने नमन करके सिर झुका दिया गया है भगवान के हाथो अपने को सौंप दिया गया है। पतन का मार्ग स्वाभाविक है, उसको किसी के सहारे की जरूरत नहीं होती। ससार के विषय मनुष्य को नीचे खीचते ही है कोई विषयो से प्रार्थना नही करता कि मुझे अपनी तरफ खींचो। मनुष्य स्वभाव से नीचे गिरता है। पत्थर को नीचे गिरने मे प्रयत्न नही करना पडता ऊपर उठने मे प्रयत्न की जरूरत पडती है। परन्तु ऊपर उठने की इच्छा होते हुए भी उठा नही जाता उठने के लिए सहारा चाहिए। वह सहारा भगवान के सिवाय कौन दे सकता है? अग्नि से प्रार्थना करना उससे सहारा मांगना है, बिना सहारे कुछ न चलेगा। जब आदमी अपना परिश्रम करके हार जाता है, तब दिल से निकली पुकार को भगवान सुनता है—उसी को प्रार्थना कहते हैं—उसी भावावेश मे यहां श्रुति ने भगवान के प्रति नमन किया है अपने को भगवान् के हाथो छोड दिया है।

उपसंहार

ईशावास्योपनिषद् के उक्त १८ मन्त्रो मे श्रुति ने प्रचलित मान्यताओ को ठोकर मार दी है। मनुष्य समझता है कि वह मालिक है जो कुछ वह समेट लेता है वह उस का निजी है। ससार के सारे अनर्थ इसी भावना से होते है। सम्पत्ति किस की है? हर व्यक्ति समझे बैठा है कि जो कुछ उसके पास है वह उसका है। दूसरे कहते है यह उसने हरण किया है। वास्तविक,उपनिषद् की नहि यह है। उपनिषद् ने स्वत्व, निज-कीयत—की मान्यता को चुनौती दी है। जो कुछ है, किसी का नहीं, भगवान का है। जब मनुष्य समझ ले कि उसका कुछ भी नहीं है, तब जीवन का कांटा ही बदल जाता है, लड़ाई झगड़े समाप्त हो जाते है। काम किये बगैर मनुष्य रह नहीं सकता, इसलिए जो कुछ करता है कर्त्तव्य समझ कर करता है अधिकार समझकर नहीं, क्योंकि अधिकार का प्रश्न ही तब उठता है जब स्वत्व का, निजकीयत का प्रश्न हो। जब स्वामित्व ही हम में से किसी का नहीं, तब जो हाथ आता है भगवान का दिया प्रसाद समझ कर ही मनुष्य उसे ग्रहण करता है इस दृष्टि से उसकी भाषा बदल जाती है। हम सब ससार के पीछे भागते है, उपनिषद् की भाषा समझने वाला व्यक्ति ससार को छोड़ता है, ससारी व्यक्ति जिसे छोडता है, आध्यात्मिक व्यक्ति उसी को पाने का प्रयत्न करता है। उसकी भाषा मे शब्दों के अर्थ भी बदल जाते हैं, जिसे हम विद्या कहते है उसे वह अविद्या कहता है, 'अविद्या'—शब्द से जिसे हम मौत जैसे भी बात कहते है, उसे उपनिषद् का ऋषि मृत्यु पर विजय पाने का साधन बतलाता है। विद्या का तो काम है ही, अविद्या का भी काम है। जिसको भौतिक-विज्ञान है उसे हम विद्या कहते हैं, उपनिषद् का ऋषि उसे अविद्या कह कर उसका क्षेत्र सीमित कर देता है। इन भौतिक विज्ञानों से ससार की वस्तुए प्राप्त होती है, मनुष्य कुछ चैन से भी रह सकता है इससे ज्यादा कुछ नहीं मिलता। इनसे उसकी प्यास कुछ देर के लिए बुझती है, परन्तु फिर भड़क उठती है। हमारी तलाश तो आनन्द के उस स्रोत की है जिस का अमृत-जल पीने से मनुष्य मरण धर्मा हो कर भी अमर हो जाता है। उपनिषद् का ऋषि ससार को छोडने के लिये नहीं कहता, वह मांजने और त्यागने के,अविद्या तथा विद्या के, असंभूति के समन्वय की बात कहता है। विद्या भी ठीक, अविद्या भी ठीक, संभूति भी ठीक—ये मिलकर, कन्धे-से-कन्धा मिलाकर चलें तो ठीक, एक दूसरे से लड़ें तो ना ठीक। इस प्रकार के समन्वय ही ईशावास्योपनिषद् का सार कहा जा सकता है।

वैदिक धर्म

—कवि कस्तूरचन्द कवि कुटीर पीपाड़ शहर (राज)

निर्भय हो चलता नर वर है
आर्य सुजन सब-पथ मे आज।
शक्ति सुदृढ सब यही एक है धर्म-कर्म को देख।
समता और न कर पाते हैं अन्य लिखें यह लाखो लेख ॥
सामर्थ्य ईश्वर की वाणी,अविरल अत्यन्त विशद अनूप।
चमक रहा है उसी प्रभु का अनन्त रहा है अजीब स्वरूप।
सार्वभौम अखिल ब्रह्माण्ड मे वैदिक धर्म का रहा है राज।
निर्भय हो चलता नर वर है आर्य सुजन सब पथ मे आज ॥
चलते आये देव ऋषीश्वर,पढते आये वैदिक बोध।
करते आये वेद विद्या का,प्रसार सुदृढ़ता करत सोध ॥
शब्द शब्द में शक्ति भरी है,सुधा सरोवर है मद मस्त।
जगत सब है इनसे देखें,नभ के अन्तर्तम मे मस्त ॥
गौरव गरिमा क्यों? नहीं हमको,अमर अटल हैं आर्य समाज,
निर्भय हो चलता नर-वर है आर्य सुजन सब पथ मे आज ॥
वेद अनादी रचा कहा से,इसके पहले रचने और।
सत्य यथार्थ अटल निरन्तर ईश्वर ने जब किया सजोर ॥
उस आधार खड़ा है ब्रह्माण्ड बदल न सकता उसका रूप।
वही हमारा पिता सुपालक भास रही है प्रकृति अनूप ॥
पढें वेद को जब हो मालूम, कितने दूर चले गये आज।
निर्भय हो चलता नर वर है,आर्य सुजन सब पथ मे आज ॥
विधि विधान ज्ञान गुण विद्या,है ये अमृत सागर वेद।
रचा न जिसमें किसी तरह से,जीव मात्र चित रंजन भेद ॥
सत्य समान धर्मादिक बुद्धि आचार विचार समान।
यह है ईश्वर न्यायिक स्वामी,उसको जान धरो नित ध्यान।
कभी न होता पराजित यह,आर्य नियम का सबसे साज ॥
निर्भय हो चलता नर-वर है,आर्य सुजन सब पथ मे आज ॥

सम्पादकीय—

सत्यार्थ का प्रचार कैसे करें

एक गम्भीर परन्तु महत्व पूर्ण विषय पर अपने विचार आर्य जनता के सामने रखने लगा हूं। वैसे तो आर्य समाजी दुनिया भर में प्रसिद्ध हैं कि वह अपने विचार प्रकट करते समय इस बात का संकोच नहीं करते कि उस का प्रभाव उन व्यक्तियो पर क्या पड़ेगा जो उनसे सहमत नहीं हैं परन्तु आज मैं जिस विषय पर लिखने लगा हूं वह ऐसे हैं जिसके सम्बन्ध मे मौलिक रूप से आर्य समाजियों में कोई मतभेद नहीं है यदि कुछ हो सकता है तो केवल इस बात पर कि सत्यार्थ प्रकाश का प्रचार कैसे किया जाए। मैं इस विषय मे जो कुछ लिखने लगा हूं कई भाईयो का उससे मतभेद हो सकता है परन्तु हमें आर्य समाज के चौथे नियम को न भूलना चाहिए जिसमें लिखा है कि सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने मे सर्वदा उद्यत रहना चाहिए इसी भावना से प्रेरित होकर मैं यह लेख लिखने लगा हूं। मैंने सत्यार्थ प्रकाश पहले भी दो बार पढ़ा है अब तीसरी बार पढ़ रहा हूं परन्तु जिस ध्यान से अब पढ़ रहा हूं वह ध्यान मैंने पहले इसकी तरफ नही दिया। यही कारण है कि उसके जो भिन्न २ रूप मेरे सामने अब आ रहे हैं वह पहले न आये थे क्योंकि मैं चाहता हूं कि सत्यार्थ प्रकाश का अधिक से अधिक प्रचार हो इसीलिए मैंने यह निश्चय किया कि अपने विचार मैं आर्य जनता के सामने रखूं। मैं जानता हूं कि मैं जो कुछ लिख रहा हूं कई भाईयों को मुझ से मतभेद होगा। परन्तु मेरे सामने आज यह प्रश्न नहीं है कि कौन मुझ से सहमत होता है कौन नही। मेरे सामने तो सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि हम सत्यार्थ प्रकाश का अधिक से अधिक प्रचार कैसे कर सकते हैं। वैसे तो परिस्थितियां सारे देश मे एक जैसी हैं परन्तु मैं अधिकतर पंजाब की परिस्थितियो को देख रहा हूं यहां पर जब सिखो का कोई पर्व होता है तो लोग हजारों में नहीं लाखो मे आते हैं। निरंकारियों नामधारियो राधास्वामियो और दूसरे मतों के जब कोई सम्मेलन होते हैं तो वहां कई बार इतनी संख्या होती है जिसका अनुमान लगाना कठिन हो जाता है। परन्तु जब आर्य समाज का कोई सम्मेलन होता है तो वहां संख्या सैंकड़ो और कई बार केवल हजारों तक ही सीमित रहती है। दिसम्बर १९७५ मे देहली मे जब आर्य समाज की शताब्दी मनाई गई थी तो १०-१२ लाख व्यक्ति वहां जमा हुए थे। परन्तु वह सारे देश से वहां आए थे। यदि प्रान्तीय सम्मेलन हो तो वहां पांच दस हजार व्यक्ति एकत्रित हो जाएं तो वह भी बहुत बड़ी चीज समझी जाती हैं। प्रश्न पैदा होगा कि आर्य समाज मे और देश के जन साधारण एक दूसरे से इतने दूर क्यो जा रहे हैं। इस पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने की आवश्यकता है परन्तु यह अत्यन्त ही निराशाजनक स्थिति है कि हमने इस तरफ कोई ध्यान नही दिया यही कारण है कि आर्य समाज का प्रभाव दिन प्रतिदिन कम हो रहा है। उसकी विचारधारा तो अवश्य फैल रही है उसने पिछले एक सौ वर्षों मे जो कुछ किया है उसके भिन्न २ सुखद परिणाम तो हमारे सामने आ रहे हैं परन्तु उसका श्रेय आर्य समाज को नहीं मिल रहा। स्त्री शिक्षा दलितोद्धार गोरक्षा राष्ट्रभाषा और इस प्रकार के कई प्रश्न हैं जिनका उत्तर एक सौ वर्ष पहले महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश मे दे दिया था उन्हीं के आधार पर हमारा देश भी आगे चला है परन्तु उसका श्रेय दूसरे व्यक्तियो और दूसरी संस्थाओ को मिल रहा है वह केवल इसलिए कि हम जनता तक सत्यार्थ प्रकाश का सन्देश पहुंचाने मे असफल रहे।

हमारे देशवासियों को यह तो मालूम है कि सत्यार्थ प्रकाश नाम का कोई मूल्यवान् ग्रन्थ महर्षि दयानन्द सरस्वती ने लिखा था परन्तु उसमे लिखा क्या गया है यह बहुत कम लोगो को पता हैं। यही कारण है कि सत्यार्थ प्रकाश का वह प्रचार नही हुआ जो होना चाहिए था। इस बार मैंने सत्यार्थ प्रकाश का जो अध्ययन किया है वह इसी दृष्टिकोण से किया है कि हम देखें कि हम इसमे असफल क्यो रहे। मैं जिस परिणाम पर पहुंचा हूं वह आर्य जनता के सामने रखना चाहता हूं। ताकि वह इस विषय पर गम्भीरता पूर्वक विचार करके सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार का कोई रास्ता निकाल सकें।

मैंने ऊपर लिखा है कि मैंने पंजाब में निरंकारियो नामधारियो अकालियो राधास्वामियो और दूसरे कई मतों के सम्मेलनो मे लाखो लोग सम्मिलित हुए देखे, मैंने इनमें से कुछ के साहित्य को भी पढ़ा है यह जानने के लिए कि उसमे कौन सी ऐसी चीज है जो लाखों लोगो को अपनी तरफ खींचती है सब कुछ देखने सुनने और सोचने के पश्चात् इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि वह सब मत और इनके गुरु और नेता उसी भाषा मे बात करते हैं जो भाषा एक साधारण से साधारण व्यक्ति भी समझ सकता है। मैंने इनमे से कुछ का साहित्य पढ़ा मैं किसी का अपमान करना नही चाहता परन्तु मुझे यह कहने मे कोई संकोच नही मनुष्य जीवन की समस्याओं पर जिस गम्भीरता से और उनकी गहराई तक पहुंचकर महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश मे अपने विचार प्रकट किये। वह इन मतो के किसी भी ग्रन्थ मे आपको नही मिलेंगे परन्तु फिर भी लाखो लोग इनके पीछे भागते हैं तो क्यो ?

इसलिए कि उनकी समस्याओ का उत्तर उनकी ही भाषा मे है जिसे वह समझ सकते हैं उन्हें मिल जाता है। सत्यार्थ की भाषा बुद्धिजीवियो की भाषा तो है जन साधारण की भाषा नही। संस्कृत का हम चाहे कितना महत्व दें। उसके पक्ष मे चाहे कुछ कहें परन्तु वास्तविक स्थिति आज यह है कि संस्कृत आज इस देश की साधारण जनता की भाषा नही। कोई पुस्तक जो उसकी भाषा मे उसको नहीं मिलेगी जनता उसकी तरफ ध्यान नहीं देगी। सत्यार्थ प्रकाश का ६० प्रतिशत भाग संस्कृत मे है ४० प्रतिशत हिन्दी मे जो व्यक्ति संस्कृत जानते हैं उनके लिए सत्यार्थ प्रकाश को समझना कठिन नही है। परन्तु जो नही जानते वह क्या करें। इसमे जो मन्त्र दिए गए हैं हिन्दी मे उनका अनुवाद अवश्य दिया गया है। परन्तु कितने व्यक्ति हैं जो संस्कृत नही जानते वह केवल हिन्दी का अनुवाद पढ़कर ही सन्तुष्ट हो जाएं। ऐसी स्थिति मे सबसे पहला प्रश्न आता है वह यह कि यदि सत्यार्थ प्रकाश का प्रचार करना है तो वह किस भाषा मे हो सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ और प्रश्न भी उठते हैं जिनके विषय मे मैं अपने विचार आर्य मर्यादा के आगामी अंको मे आर्य जनता के सामने रखूंगा

वीरेन्द्र

आर्य महासम्मेलन लन्दन
आवश्यक सूचनाएं व निर्देश

लन्दन मे २३ से २५ अगस्त (१९८०) तक एक आर्य महासम्मेलन होना निश्चित हुआ है जिसकी सूचना सार्वदेशिक सभा ने विज्ञप्तियो द्वारा समस्त आर्य समाजो को भेजी हैं। जो आर्य बन्धु इस सम्मेलन मे जाना चाहते है वह तुरन्त अपने पते व नाम आदि सार्वदेशिक सभा को भेज दें अगर कोई विशेष जानकारी चाहते हैं तो सार्वदेशिक सभा से तुरन्त सम्पर्क करें ताकि लन्दन आर्य समाज को जाने वाले आर्य बन्धुओ की सूचि भेजी जा सके लन्दन जाने सम्बन्धी नियम नीचे पढ़ें। —सम्पादक

आर्य समाज लन्दन के तत्वावधान मे २३ से २५ अगस्त ८० तक आर्य महासम्मेलन होगा जिसे आयोजक इस सभा के सहयोग से अन्तर्राष्ट्रीय रूप देने के लिए प्रयत्नशील हैं। इसकी तैयारियां जोर शोर से की जा रही हैं लन्दन (हैरो) स्थित एक विशाल सभा भवन इस सम्मेलन के लिए सुरक्षित करा लिया गया है।

यूनिवर्सिटि के अधिकारियो ने फिलहाल १०० प्रतिनिधियो के आवास की अपने हास्टल मे व्यवस्था करने की स्वीकृति दे दी है। आवश्यकता होने पर पूर्व सूचना के आधार पर अधिक व्यक्तियो के लिए व्यवस्था हो सकेगी आवास के लिए एक कमरा होगा जिसमे पूजन साज सामान तथा सोने के लिए शय्या होगी। ब्रेक फास्ट (कलेवा) का प्रति व्यक्ति प्रतिदिन १० पौण्ड (लगभग १९०) देना होगा भोजन की व्यवस्था आर्य समाज भवन मे होगी और यह व्यय भी इस मे सम्मिलित होगा वहां २० से २७ अगस्त ८० के आवास की व्यवस्था की गई है।

८ दिन से कम के या अधिक दिनो के लिए आवास की व्यवस्था सम्भव नही है ऊपर के व्यय में होस्टल से सम्मेलन स्थल तक आने जाने का सवारी खर्च भी शामिल है ८ दिन के आवास से प्रतिनिधियो को लन्दन के दर्शनीय स्थानो को देखने का भी अवसर मिलेगा। पति पत्नी को एक दूसरे से सटे हुये कमरे उपलब्ध होंगे।

प्रतिनिधियो को नीचे अंकित फार्म को भरकर शर्तों को स्वीकृति देनी होगी जिससे आर्य समाज लन्दन के पास १५ अप्रैल या इससे पूर्व पहुंचना आवश्यक होगा साथ ही ८० पौण्ड की राशि आर्य समाज लन्दन के नाम मे ड्राफ्ट भेजनी होगी जाने वाले प्रतिनिधियो के लिए उचित होगा कि वे विदेशी मुद्रा आदि के विषय मे तुरन्त सम्बद्ध प्रमाणिक संस्थाओ से पूछ करना शुरू कर दें।

लन्दन आने जाने का अनुमानित व्यय लन्दन भेजे जाने वाले ८० पौण्ड के अतिरिक्त लगभग ७३५० रुपये होगा। उचित यह होगा जाने वाले प्रतिनिधि अप्रैल ८० तक ४००० रुपये बैंक ड्राफ्ट सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा महर्षि दयानन्द भवन रामलीला मैदान नई दिल्ली २ मे भेज दें।

—ओम्प्रकाश त्यागी महामन्त्री सार्वदेशिक सभा

महात्मा हंसराज जी की जीवन झांकी

जन्म—१९ अप्रैल १८६४ को होशियारपुर के छोटे से गांव बजवाड़ा में हुआ।

जब आप १० वर्ष के थे सन् १८७४ में पिता जी का देहान्त हो गया।

सन १८७१ में लाला साईदास जी के सम्पर्क में आए।

सन् १८८० में मिशन स्कूल लाहौर से मैट्रिक की परीक्षा प्राप्त की।

१८८२ ई में रिजनरेटर आफ आर्यावर्त साप्ताहिक अंग्रेजी पत्र लाहौर से निकालना प्रारम्भ किया।

१८८३ ई० महर्षि दयानन्द का परलोक गमन हुआ। प्रथम जून १८८६ ई० में दयानन्द हाई स्कूल के मुख्याध्यापक बने। १८८५ ई० में आपने बी ए की परीक्षा पास की।

१८८८ ई० में कालेज की कक्षाएं खोली गईं और आपको अवैतनिक प्रिंसिपल बना दिया गया।

१८९० ई० में लाला साईदास जी व मुनिवर पं० गुरुदत्त जी के देहान्त के पश्चात आपको आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रधान बनाया गया।

१८९२ ई० में आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की स्थापना की।

१८९५ ई० में आप अकाल का सञ्चालन कार्य लाला लाजपतराय जी के साथ मिल कर प्रारम्भ किया।

१९०२ ई० में दयानन्द कालेज में आजीवन सदस्य बनाने का नियम लागू हुआ।

१९०५ ई० में कांगड़ा के भूकम्प में आपने सहायता का कार्य किया।

१९१० ई० में कालेज का प्रिंसिपल पद छोड़ दिया और श्री साईदास को प्रिंसिपल बनाया गया।

१९१३ ई० में आप दयानन्द कालेज मैनेजिंग कमेटी के प्रधान बने।

१९१४ से आपने आर्य समाज और प्रादेशिक सभा का कार्य पूरे वेग से प्रारम्भ कर दिया।

१९१७ ई० में आपके सुपुत्र श्री बलराज दिल्ली षड्यन्त्र में पकड़े गए ७ वर्ष का दण्ड मिला। इस वर्ष महात्मा जी की धर्म पत्नी श्रीमति ठाकुर देवी देहान्त हो गया।

१९१८ ई में पंजाब शिक्षा सम्मेलन के अध्यक्ष बनाए गए। १९१८ ई० में ही गढ़वाल के दुर्भिक्ष में सहायता कार्य किया।

१९२० ई० में उड़ीसा दुर्भिक्ष में खूब सहायता कार्य को व्यवस्थित किया।

१९२१ ई० में पंजाब दुर्भिक्ष सहायता निधि जारी की।

१९२३ ई० में अप्रैल मास में आपने मलकाना शुद्धि कार्य प्रारम्भ और सहस्रों रुपए इस कार्य के लिए इकट्ठे किए।

१९२४ ई० में अखिल भारतीय शुद्धि सभा का प्रधान बनाया गया। १९२४ में में ही कोहाट रिलीफ फण्ड जारी किया।

१९२७ ई० ई० में स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान हुआ आपने आर्य जगत् को इस महान् बलिदान से प्रेरणा लेने को कहा।

श्री पं० लाजपतराय सेवा दल निधि भी १९२६ में जारी की और लगभग एक लाख रुपया एकत्रित किया गया।

१९२७ ई० में आप अखिल भारतीय आर्यन कांग्रेस दिल्ली के प्रधान बने।

मई १९२८ ई० में आपने महिला महा विद्यालय की स्थापना की।

१९३० ई० में मुजफ्फरगढ़ गुजरात और झंग में कार्य किया।

१९३२ ई० में जम्मू काश्मीर में सहायता कार्य किया। १९३४ ई० में बिहार भूकम्प से पीड़ितों को सहायता पहुंचाई।

१९३५ ई० में क्वेटा भूकम्प से पीड़ितों को सहायता पहुंचाई।

१९३६ ई० में गोकुलाश्रम हरिद्वार की दशा सुधारने की ओर विशेष ध्यान दिया। इसी वर्ष मध्य भारत के सहस्रों भीलों को बचाने का पवित्र कार्य किया।

१९३७ में प्रादेशिक सभा का प्रधान पद त्याग दिया और ला० खुशहालचन्द (आनन्द स्वामी) जी प्रधान बने।

१९३८ ई० १५ अक्तूबर को कन्या महाविद्यालय जालन्धर में बी० टी० की कक्षा जारी करा दी।

२२ अक्तूबर १९३८ को महात्मा जी का अन्तिम उपदेश आर्य समाज अनारकली लाहौर में हुआ।

२६ अक्तूबर १९३८ को आप बीमार हो गए और १५ नवम्बर १९३८ की रात के ११ बजे ओ३म् का जाप करते २ इस नश्वर देह का परित्याग कर दिया।

प्रारम्भ से अन्त तक आपका सारा जीवन एक सच्चे कर्मयोगी और त्यागी तपस्वी महात्मा का जीवन है। उच्च पदों पर अपनी योग्यता तप एवं त्याग की भावना से आरूढ़ होना और स्वेच्छा से ही ऊंचे से ऊंचे पद का परित्याग कर अन्या का सेवा अवसर प्रदान करना यह शिक्षा महात्मा जी का जीवन हमें देता है।

जन्म दिन मनाने का महत्व तभी हमें ज्ञात होगा जब हम ऐसे त्यागी महात्माओं के चरण चिन्हों पर चलने को कटिबद्ध होंगे। हमारी श्रद्धा और आस्था का नमूना तो यह है कि जन्म दिन चाहे किसी महान् आत्मा का क्यों न हो। हम अवकाश वाले दिन ही मनाएंगे। कहां जीवन दानी का आदर्श कहां हमारी यह उपेक्षा कृतघ्नता। आर्य बन्धु इस पर गम्भीरता से विचार करें।

— ओ३म् प्रकाश आर्य
सभा कार्यालयाध्यक्ष

सभा से सम्बन्धित आर्यसमाजों के अधिकारियों की सेवा में

आर्यसमाज सादर नमस्ते।

आप सबके सहयोग की पूर्ण आशा पर सभा ने यह निश्चय किया है कि वेद प्रचार के काम को अधिक प्रभावी ढंग से चलाने के लिए निम्नलिखित कार्यक्रमों को यथाशीघ्र प्रारम्भ कर दिया जाए

(१) जिन समाजों ने अभी तक अपने उत्सव नहीं किये वे अपने समाजों के उत्सव सभा की स्वीकृति से शीघ्र निश्चित कर दें।

(२) अपने समाज में वर्ष भर में तीन चार बार विशेष यज्ञ तथा वेद कथाओं का आयोजन करें।

(३) अपने समाज के माध्यम से पारिवारिक सत्संगों को करना शुरू करें।

(४) वैदिक सिद्धान्तों पर लिखा हुआ साहित्य सभा से मंगवा कर जनता तक पहुंचाएं। (५) अपने समाज में आर्य कुमार सभा और आर्य वीर दल का संगठन बनाएं। सभा ने श्री बलदेवराज जी को आर्य वीर दल का शिक्षक नियुक्त कर लिया है। आप सभा की स्वीकृति से इस काम में उनका सहयोग ले सकते हैं। (६) सभा के साप्ताहिक पत्र आर्य मर्यादा के अधिक से अधिक ग्राहक बनाएं। तथा अपने समाज की ओर से ५ या १० प्रतियां अवश्य मंगवाएं। (७) सभा ने अपने मान्य उपदेशक प्रचारक महानुभावों को आगामी दिनों में भिन्न २ जिलों में केन्द्र बनाकर स्थानीय आर्य बन्धुओं के सहयोग से यज्ञ, वेद कथा तथा प्रचार करने का भी कार्यक्रम बनाया है जो नीचे दिया जा रहा है—

(१) श्री पं० निरञ्जनदेव जी इतिहास केसरी तथा श्री विद्याभूषण जी का कार्यक्रम—लुधियाना फिरोजपुर और फरीदकोट के जिलों में नियुक्त किया गया है। केन्द्र स्थान आर्य समाज स्वामी दयानन्द बाजार (दाल बाजार) लुधियाना होगा। (२) श्री पं० रामनाथ जी सि० शि० तथा श्री हजारीलाल जी का कार्यक्रम—रोपड़ और होशियारपुर केन्द्र स्थान आर्य समाज रोपड़ होगा। (३) श्री सुखपाल जी शास्त्री तथा श्री तुलसीदेव जी का कार्यक्रम—जालन्धर और कपूरथला केन्द्र स्थान आर्य समाज महर्षिकृष्ण (पक्का बाग) जालन्धर होगा। (४) पं० विजयकुमार जी शास्त्री विद्या वाचस्पति तथा श्री राजनाथ भजनी भजन मण्डली का कार्यक्रम गुरदासपुर तथा अमृतसर केन्द्र स्थान दयानन्द मठ दीनानगर होगा। (५) श्री ज्ञानसिंह हितकर भजन मण्डली का पटियाला भटिण्डा तथा संगरूर केन्द्र आर्य समाज चौक पटियाला होगा।

प्रत्येक आर्य समाज के मान्य प्रधान मन्त्री तथा स्त्री समाज की मान्या बहिनों से हमारा अनुरोध है कि सभा द्वारा बनाए गए इस कार्यक्रम को सफल बनाने में अपना पूरा सहयोग देने की कृपा करें।

अपने मान्य उपदेशक, प्रचारक बन्धुओं के आवास तथा भोजनादि की भी उचित व्यवस्था कर उनके सहयोग से वेद प्रचार के पवित्र कार्य को बढ़ावा दें ताकि ऋषि मिशन की पूर्ति का जो दायित्व हमारे सबके कन्धों पर है हम उसे निभाकर ऋषि ऋण से उऋण होने का सौभाग्य प्राप्त कर सकें।

भवदीय

वीरेन्द्र
सभा प्रधान

रामचन्द्र जावेद
सभा मन्त्री

कर्मयोगी महात्मा हंसराज

ले०—श्री ओमप्रकाश जी आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष

बजवाड़ा नामक छोटे से ग्राम में एक निर्धन परिवार में जन्म लेने वाला बालक आगे चलकर लार्ड मैकाले द्वारा १८३५ ई० में चालित अंग्रेजी शिक्षा पद्धति के लिए एक प्रबल विरोधी तथा विशुद्ध भारतीय शिक्षा पद्धति का प्रवर्तक एवं प्रचारक सिद्ध होगा इसे कौन जानता था। पंजाब अंग्रेजी राज्य में १८४९ ई० में मिलाया गया और सन् १८६४ में लाहौर में गवर्नमैंट कालेज खोला गया। उस समय तक एक भी स्वदेशी शिक्षणालय न था।

१९ अप्रैल १८६४ को इस बालक का जन्म हुआ। मिशन स्कूल में शिक्षा ग्रहण करते हुए एक दिन स्कूल के मुख्य अध्यापक ने आर्य धर्म और वैदिक सभ्यता का उपहास उड़ाया जिसे राष्ट्र का भावी कर्णधार यह बालक सहन न कर सका और मुख्याध्यापक की बातों का तीव्र प्रतिवाद एवं खण्डन करने के कारण स्कूल से बाहिर निकाल दिया गया। जिज्ञासु विद्यार्थी के समक्ष पराधीन भारत की दयनीय अवस्था का चित्र खिंच गया। पर्याप्त सोच विचार के पश्चात् बालक इस निश्चय पर पहुंचा कि देश का स्वतन्त्र होना तब तक सम्भव नहीं जब तक भारतीय भावों और विचारों से भरपूर हमारी अपनी स्वतन्त्र शिक्षा पद्धति न हो। बालक के हृदय में उत्पन्न हुए यह संस्कार ही आगे चलकर इसे बलिवेदी पर अग्रसर करने का कारण बने तथा इन संस्कारों के कारण ही छोटा सा बालक हंसराज मानसरोवर के राजहंस से भी बढ़कर पवित्र और शुद्ध भारतीय शिक्षा पद्धति का प्रवर्तक बन पाया।

लाहौर के गवर्नमैंट कालेज में अध्ययन करते हुए आपको लाला लाजपतराय तथा गुरुदत्त प० गुरुदत्त जी जैसे प्रतिभावान् सहाध्यायी मिल गए। तीनों के विचार एक समान थे और तीनों ही विदेशी विचार धारा को समाप्त हुआ देखना चाहते थे। उस समय का आर्य समाज एक जीवन्त समाज था। समाज के अधिकारी अधिकार क्रम से अधिक आचार क्रम का पालन करते थे। लाहौर आर्य समाज के प्राण लाला साईं दास जी माने जाते थे और वे सचमुच थे भी ऐसे ही। उनमें नवयुवकों को अपने प्रभाव में लाने का अद्भुत गुण था। उनका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली और आकर्षणशील था कि उनके सम्पर्क में आने वाला उनका ही बन जाता था। तीनों युवक भी उनके लगन और सम्पर्क के कारण आर्य समाज में आने लगे। आर्य समाज की विचार धारा ने तीनों का मन मोह लिया। अध्ययन काल में आर्य मैसेंजर नामक पत्र भी साप्ताहिक निकालना प्रारम्भ कर दिया और सम्पादन का कार्य गुरुदत्त जी और लाला हंसराज किया करते थे।

१८८३ ई० में महर्षि दयानन्द जी का विषपान से बलिदान हो गया। नाथ के बिछुड़ने नाथ को बीच मझधार ही छोड़ कर चल दिए। चहुं ओर शोक छा गया। किसी को कुछ सूझता न था सभी किंकर्त्तव्य विमूढ़ से हो रहे थे कि लाहौर के आर्य पुरुषों ने महर्षि दयानन्द जी का एक ऐसा स्मारक बनाने का विचार प्रस्तुत किया जो उनके कार्यों का रक्षा के साथ साथ विस्तार करने वाला भी हो। विचारानन्तर डी० ए० वी० स्कूल खोलने का निश्चय किया गया। समस्या धन की इतनी न थी जितनी अध्यापन कार्य को सम्पन्न करने वाले की। युवक हंसराज बी० ए० कर चुका था। चाहता तो किसी भी अच्छे पद को प्राप्त कर सांसारिक दृष्टि से सुखी जीवन व्यतीत कर लेता परन्तु अपने आचार्य के अधूरे छोड़े कार्य को जिसे पूरा करने का श्रेय प्राप्त करना था वह भला संसार के धन वैभव मान सम्मान से आकृष्ट क्यों कर होता? अपने अग्रज श्री मुलखराज से अपने मन की बात निवेदन करते हुये उनका आशीर्वाद चाहा। लाला मुलखराज जी ने छोटे भाई को त्याग और बलिदान के पथ पर अग्रसर होते देख स्वयं को भी उसी राह का राही बना लिया। कहा भैया जब तक स्कूल की निष्काम सेवा करना चाहो करो। मैं अपने मासिक वेतन का आधा भाग अर्थात् ४०) प्रति मास तुम्हें देता रहूंगा। यशस्वी मुलखराज का यह त्याग अद्वितीय था। इसी त्याग ने श्री हंसराज को आधुनिक पंजाब का निर्माता बनने में पूरा योगदान दिया। आर्य समाज लाहौर के आठवें वार्षिक उत्सव पर युवक हंसराज ने जब जीवन देने की घोषणा की तब सारा उपस्थित जनसमुदाय हर्षोल्लास से झूम उठा और उनकी प्रशंसा करने लगा। जीवनदान का नाटक खेलना आसान है आज भी अनेकों व्यक्ति आर्य समाज के और दूसरे संगठनों के मंच पर आकर अपने जीवन दानी होने की घोषणाएं करते हैं परन्तु उनका जीवनदान अपने और राष्ट्र के साथ उपहास मात्र ही होता है प्रायः ऐसे व्यक्ति वंचक और ठग ही सिद्ध हुये हैं परन्तु युवक हंसराज की कथनी और करनी एक थी। इसलिए जो कुछ कहा उसे पूरा कर दिखाया। २६ वर्ष तक डी० ए० वी० स्कूल और कालेज की निष्काम भाव से सेवा करने के पश्चात् २५ वर्ष आर्य प्रादेशिक सभा की सेवा में अर्पित कर दिए सादगी और विनय शालीनता की आप साकार और सजीव प्रतिमा थे। आपके विनीतभाव का एक उदाहरण ही पर्याप्त रहेगा।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज भारतीय शुद्धि सभा के प्रधान थे। शुद्धि सभा का कार्यालय दिल्ली से आगरा में परिवर्तित हो चुका था। पूज्य महात्मा हंसराज जी इस सभा के उपप्रधान थे जब-जब भी सभा की बैठक में सम्मिलित होने स्वामी जी महाराज आगरा आते महात्मा जी उनके लिए अलग पलंग बिस्तर आदि की उचित व्यवस्था स्वयं कराते। उन्हें पलंग पर बिठाते और स्वयं नीचे बिछी हुई दरी पर बैठा करते किसी ने पूछा तो उत्तर दिया—भाई प्रथम तो स्वामी जी संन्यासी हैं दूसरे हमारी शुद्धि सभा के प्रधान हैं और तीसरे हमारे अतिथि हैं। इसलिए हर दृष्टि से पूज्य हैं काश यह विनीत भावना हम में भी आ जाती और हम अपने पूज्यों का सम्मान कर समाज को उन्नत कर सकते अस्तु।

डी० ए० वी० स्कूल और कालेज की देखा देखी अलीगढ़ कालेज इस्लामिया कालेज और खालसा कालेज बाद में खोले गये। परन्तु आर्य समाज द्वारा संचालित डी० ए० वी० कालेज के अतिरिक्त सभी के प्रिंसिपल विदेशी थे यह गौरव केवल डी० ए० वी० संस्था को प्राप्त है कि इसका संचालन विशुद्ध भारतीय हाथों में ही रहा।

आज भारत स्वतन्त्र है। भारत वासियों में भारतीय रहन सहन शिक्षा दीक्षा तथा भारतीय परम्पराओं के प्रति उदासीनता का भाव उत्पन्न हो रहा है हमारे आचार-व्यवहार में अब जीवन का प्रभाव कम दृष्टिगोचर हो रहा है इसे रोकने की बड़ी आवश्यकता है और यह काम महात्मा हंसराज जी के चरणचिन्हों पर चलने से ही किया जा सकता है। यदि हमने समय रहते इधर ध्यान न दिया और बिना सोचे विचारे पश्चिम के पीछे चलते रहे तो आने वाली नसल हमें क्षमा न करेगी भारतीय हम बनना नहीं चाहते पश्चिम वालों का सा पूरा रूप हमें मिलना असम्भव तब क्या बनेंगे हम? शायर के शब्दों में—

राहे मंजिल में वह भटके भटक गए।
जा न पहुंचे लेकिन हम से छूट गए।

दयानन्द और हंसराज के नाम लेवा सम्भल और अपना कर्त्तव्य पालन करें।

—

जाने क्या होगा?

रचयिता—श्री प्रभदेवजी चक्रवर्ती १९ माडल बस्ती दिल्ली

★★★

निज तन का स्नेह लुटाकर दीपक घर को जगमग करता है
यदि दीपक ही घर जलाने लगे तो घर का जाने क्या होगा?

प्रेम प्रीत की बुनियादों पर मानव की लंका बसती है
यदि लंका विभीषण ढाने लगे लंका का जाने क्या होगा?

पक्के इरादों के तूफान से बाधाओं के गढ़ बह जाते
यदि तूफान ही लड़खड़ाने लगे इरादों का जाने क्या होगा?

कांटे की सुदृढ़ बांहों में सुख से कलियां मुस्काती हैं
यदि कांटे तन को दबाने लगे कलियों का जाने क्या होगा?

एकता की रस्सी के तिनके बांध हाथी को लेते हैं
यदि तिनके बंध बिखराने लगे इरादों का जाने क्या होगा?

सागर में डगमग किश्ती को साहिल ही प्रश्रय देता है
यदि साहिल ही डगमगाने लगे किश्ती का जाने क्या होगा?

खेती की सलामत से केवल बाड़ ही रक्षा करती है
यदि बाड़ ही खेती खाने लगे खेती का जाने क्या होगा?

त्यागी तपस्वी नेता नय्या देश की पार लगा देते
यदि नेता हलवा उड़ाने लगे देश का जाने क्या होगा?

रोगी का कष्ट घटाने का धीरज का वैद्य ही काफी है
यदि वैद्य ही कफन जुटाने लगे रोगी का जाने क्या होगा?

ओ आर्य वीरो हाथ सम्भालो कौम तुम्हें पुकार रही
यदि तुम ही होश भुलाने लगे कौम का जाने क्या होगा?

—

आज की बहनें क्या करें

ले० डा० विद्यावती जी जालन्धर

आज के युग मे महिलो ने बहुत उन्नति की है। सामाजिक राजनैतिक एव शैक्षिक और स्वत त्रता म भी किन्तु रूढ़िवादी बात को कम भी यह मान भी हैं यद्यपि हम तपच आदि साम न कम करते हैं पर व्रत पूजा इस प्रथा को कर लेने मे क्या हर्ज है आज हम वही के वही रहे। भारतीय नारी ने प्राचीनकाल से ही परत त्रता को स्वीकार नही किया वैदिककाल मे कैकेयी ने दशरथ का साथ दिया। कुन्ती द्रोपदी आदि स्वत त्रता के लिये प्र रणा देती रही। जीजाबाई ने शिवा जी को मात भूम की स्वत त्रता क लिए प्र रित किया

शिवा जी ने आखिरी दम तक परत त्रता स्वीकार नही की। महारानी लक्ष्मीबाई ने स्वतन्त्रता के लिये वीरता पूवक युद्ध किया।

शिक्षा ज्ञान मे मैत्रेयी गार्गी अनु सूया आदि क नाम अविस्मरणीय हैं। मदमसा की लोरिया वदिक काल मे नारी सस्कृति और सभ्यता की प्रतीक थी विदेशी आक्रमण ो ने उसे उस के आदर्शो से दूर कर दिया था। घर के काम करने वाली महरि अथवा बच्चे पदा करने वाली अपने आसन से गिर गई थी जिससे उनका मनोबल गिर गया। और सन्तान निबल रोगी तथा भोगी पदा होने ल ी।

जिससे देश गुलाम तो हुआ ही अपनी सभ्यता भी भू गया और कहने लग गया खाओ पीओ और मौज उडाओ कहा है—

यावत जीवन सुख जीवेत ऋण कृत्वा घृत पीवेत भस्मी भूत्वा देहस्य पुनरा गमन कुत

हम अपना इतिहास भूल गये हमारे चरित्र का पतन हो रहा है। ऋषिवर दयानन्द न एक झपाटा दिया हम जागे और नारी ने अपनी खोयी हुई सम्मान सम्पदा को पाया। वेद पढने का अधिकार दिया। परन्तु परिवार बनाने मे जो हमारा परम कत व्य है हम ने इस ओर ध्यान नही दिया। जब तक हम अपने बच्चो का चरित्र नही बना सकेंगी न ही हम रे घर का न राष्ट्र का निम ण होगा।

नारी सुशिक्षित हो ठीक है पर बच्चो के निर्माण करन का कर्त व्य न भूले। शिक्षा केवल धनोपार्जन के लिये ही न रह जाये। हमारा देश चरित्र सम्पदा से सदैव भरपूर रहा है।

शरीर की आवश्यकतायें पूण करते २ निर्माणात्मक कार्यों के लिये समय कहा शरीर तो साधन ही है बुद्ध विचार तो बीज ही है और फल है आचार-आचार परमो धम चरित्र के अभाव मे मानव दानव बन गया है। आज कितने नये मत मतान्तर कितन गुरुद्वारे मन्दिर आदि यह पूजा के अराधना के स्थान बन हैं तथा पवित्रता के लिए। पर आज हर जगह झठ भ्रष्टाचार मिलावट धोखा फरेब ही नजर आता है। शुरू से शिक्षा मा की ऐसी हो तो यह हो नही सकता एक स्त्री नौकरी करने वाले चार पाच बच्चो की मा थक कर पहाड पर गई एक मूर्तिकार मूर्ति बना रहा था कहने लगी काश मैं भी मूर्तिकार होती पास खड व्यक्ति ने कहा तुम्हारे पास जिन्दा मूर्तिए हैं उन्हे बनाओ जिससे परिवार उज्ज्वल होगा। देश उन्नत होगा। वह मूर्तिया तुम्हे सुखी बना दगी। सभी प्रकार की चिन्ता व घबराहट समाप्ति हो जाएगी। बुद्धि से काम ले मन मे भावना पदा कर हम हर समय चिन्तित घबराहट मे होते हैं। ऐसा नही होना चाहिए श्री कृष्ण जी महाराज ने गीता मे कहा है—

नास्ति बुद्धि युक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयत शान्तिर शान्तस्य कत सुखम॥ (गीता २ ६६)

अयुक्त मन वाले की बुद्धि नही होती है और न ही उसकी भावना होती है। बिना भावना वाले की शक्ति नही होती और अशान्त को सुख कहा। इस लिए मन मे शक्ति पैदा करने के लिए बुद्धि से काम लें। मेरी बहनो से प्रार्थना है आडम्बर छोडिये खर्च कम करें। छोटे बच्चो को समय दें अच्छी आदतें डालें इसी में तुम्हारा हमारा और देश का कल्याण होगा जब तक बहनें अपने कत व्य का मा के रूप मे पालन नही करेंगी सन्तान को योग्य नही बनाएगी तब तक हमारा कल्याण नही होगा।

—

मेरी श्रद्धाञ्जली

पूज्य महात्मा हसराज साक्षी की क्षम मूर्ति थे। मैं उनके दर्शनों से कई बार कृतार्थ हुआ।

पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान २ दिसम्बर १९२६ को लाहौर मे महाशय के सम्बन्ध में विशाल जलूस का नेतृत्व उन्होंने किया था। जिसमें मुझे भी सम्मिलित होने का गौरव प्राप्त हुआ।

स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा हसराज इस शक्तिद्वय से अंग्रेज सरकार कपायमान थी। वह जिन्दा शहीद श्वेताम्बर आर्य सन्यासी थे।

शिक्षा के क्षत्र मे उनकी सेवा तप त्याग योग्यता बलिदानादि सभी कुछ शोभनीय तथा अनुकरणीय है।

काश कि —

आर्य समाज मे अब भी ऐसे महा पुरुष हो।

—प० शान्ति प्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी

जीवन को हवन बना डालो

कविराज बनवारी लाल शादा प्रधान आर्य समाज मौडल बस्ती दिल्ली

अपने लिए न जग मे जीओ
परकारज करते जाओ।
मन मन्दिर मे त्याग तपस्या
सत्य ज्ञान भरते जाओ॥
धम के काम करो तुम निश दिन
शूल को फूल बना डालो।
झ ठ कपट चोरी जारी का
जग से नाम मिटा डालो॥
सपनों से खेलो निश दिन
प्र म का पाठ पढा डालो।
काम क्रोध लोभ मोह को
जीवन से शीघ्र मिटा डालो॥
अमर नाम है जग मे उनका
जीवन जिन का हवन बना।
मानवता के काम करें नित
दुखियों के लिए सुमन बना॥
ऋषि का जीवन पढ कर देखो
कितने अनगिनत कष्ट उठाये
तप का रूप किया जीवन को
कभी न कष्ट से घबराये॥
सकट से ना कभी न डर कर
सीखो नही लक्ष्य छोडना।
और न सीखो बाधाओ मे।
अपना साहस कभी छोडना॥
ओ आर्यों अपने जीवन में
कभी सुखों की चाह न करना।
सब कुछ अपना देश धर्म हित
लुट जाने पर आह न करना॥
दीन दुखी पीडित जन जन की
सेवा करना परम धम है।
परोप कार को करते रहना
आर्यो सब का पर कर्म है॥

आर्यसमाज दीवान हाल के 95वें वार्षिकोत्सव पर अभूतपूर्व समारोह

आर्य समाज दीवान हाल दिल्ली का ९५वें वार्षिकोत्सव बड़ी धूमधाम के साथ १० मार्च को सम्पन्न हुआ। जिसमें हजारों की संख्या में जन-समूह ने भाग लिया

यज्ञोपवीत यज्ञ एवं यज्ञोपवीत वितरण

सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री रामपुर जी की अध्यक्षता में आर्य परम्परा से निर्मित यज्ञ वेदी पर श्री रामगोपाल शालवाले वानप्रस्थ एवं माता सत्यवती शालवाले के यज्ञ यजमान में सम्पन्न किया गया। १० मार्च को पूर्णाहुति—यह प्रात बेला एक ऐतिहासिक बेला था जिसमें सौ हरिजन युवकों ने यज्ञ की वेदी पर प० रामपुर जी के द्वारा यज्ञ ग्रहण करते हुए यज्ञोपवीत धारण किए। सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री रामगोपाल शालवाले ने सभी युवकों का पुष्प मालाओं द्वारा स्वागत किया।

२८ मार्च को वैदिक धर्म एवं मत मतान्तर पर युवा शक्ति का दृष्टिकोण—इस विषय पर भाषण हुए।

विराट कवि सम्मेलन

सन्ध्या बेला से ही हाल खचाखच भरा था हिन्दी साहित्य के हास्य व्यग्य का प्रवक्ता श्री गोपाल प्रसाद व्यास ने सम्मेलन का उद्घाटन किया उनके व्यग्य बड़ और अविस्मरणीय छन्द थे। हिन्दी भाषा की दिल्ली भारत माँ के भाल की बिन्दी पर विशेष बल दिया उन्होंने आह्वान किया यदि हम हिन्दू हैं तो हमें आज ये संकल्प लेना चाहिए।

१ हम अपने हस्ताक्षर हिन्दी में करेंगे। २ हम अपना नाम पट हिन्दी में लिखेंगे। ३ हम निमन्त्रण पत्र हिन्दी में छपवाएंगे। ४ हिन्दी बोलने में हमें गर्व होगा।

मञ्च संचालक—कवि मनीषि ने अपने गीतों से जन समूह को मन्त्रमुग्ध कर दिया हास्य कवि सरल जी की सरलता ने भी हंसी की फुहारें छोड़ी।

३० मार्च को संस्कृत रक्षा सम्मेलन हुआ श्री क्षितिश कुमार वेदालंकार ने उद्घाटन करते हुए देव वाणी के गौरव का बखान किया और कहा कि संस्कृत भाषाओं की माँ संस्कृत है। माँ को अगर सम्मान नहीं दिया जाएगा तो भारतीय संस्कृति को ही अपनी रक्षा का खतरा उत्पन्न हो जाएगा।

आर्य सम्मेलन की अध्यक्षता लाला रामगोपाल जी शालवाले ने की इस सम्मेलन में श्री सच्चिदानन्द शास्त्री ने कहा कि आर्य समाज ने भारतीय स्वाधीनता के लिए अनेकों बलिदान दिए। ८० प्रतिशत आर्य समाजी जेलों में गए। इतना सब कुछ करने के बाद भी आज हम कोई सुख सुविधा के लिए स्वार्थ नहीं रखते। हमारी तो केवल यही माँग है आज अल्पसंख्यक को लेकर जो पक्षपात हो रहा है उससे भारत की एकता समाप्त होती है। किसी वर्ग विशेष को सुविधा देना और वास्तविक गरीबों की उपेक्षा करना पक्षपाती विचारधारा है जो आज के शासनतन्त्र में नहीं होनी चाहिए।

अध्यक्षीय भाषण करते हुए लाला रामगोपाल शालवाले ने कहा स्वामी दयानन्द ने अपने जीवन पर पूर्ण प्रकाश नहीं डाला। कुछ वर्षों का अन्तराल ऐसा है जो १८५७ की क्रान्ति का अप्रकाशित पहलू हमारे सामने रखता है। इस काल में स्वामी दयानन्द ने फौजी छावनियों के आस पास भ्रमण किया और देश में आजादी का शखनाद फूंका विदेश में उन्होंने श्याम जी कृष्ण वर्मा को भेजा जो समस्त क्रान्तिकारियों के गुरु माने जाते हैं। इस सम्बन्ध में पूर्ण खोज नहीं हो पायी है सार्वदेशिक सभा की ओर से पच्चीस विद्वानों के मण्डल द्वारा इस खोज का पूर्ण करने का हमने संकल्प लिया है।

आर्य वीर दल का विस्तार

श्री जगदीशचन्द्र वसु जी प्रान्तीय शिक्षक आर्य वीर दल करतारपुर में कुछ दिन रहकर दल की दैनिक शाखा चला कर यहां से लुधियाना चले गये हैं। करतारपुर में शाखा खड़ी करने में श्री सुखदेव जी आर्य तथा श्री नरेशकुमार जी शास्त्री ने अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया। मैं उनका हृदय से आभारी हूं।

लुधियाना में एक साथ दो शाखाएं प्रारम्भ हो गई हैं। एक आर्य समाज स्वामी दयानन्द बाजार लुधियाना में जिसके लिए श्री रणवीर भाटिया जी ने श्री मदनलालचन्द आर्य जी ने तथा श्री प० राजकुमार जी शास्त्री पुरोहित आर्य समाज ने पूरा पूरा सहयोग दिया। दूसरी शाखा आर्य समाज जवाहरनगर में प्रारम्भ हुई है जिसके लिए वहां के पुरोहित श्री प० ओमपाल जी शास्त्री तथा श्री प्रो० विजयकुमार जी ने अपना सहयोग प्रदान किया। यह सभी महानुभाव बधाई के पात्र हैं। मैं प्रान्तीय आर्य वीर दल की ओर से एवं सभा की ओर से इन सबका आभारी हूं।

पंजाब की अन्य प्रमुख समाजों को भी श्री वसु जी की सेवाओं का लाभ उठाकर अपने अपने स्थान पर दल की शाखाएं प्रारम्भ करनी चाहिए। इस कार्य के लिए तुरन्त योजना बनाकर मुझ से पत्र व्यवहार द्वारा सम्पर्क स्थापित करें।

जितेन्द्र
संचालक प्रान्तीय आर्य वीर दल
एवं सभा संगठन अधिकारी

आर्यसमाज गुरदासपुर की महान् उपलब्धि

सभा के १० फरवरी वाले अधिवेशन में लिए गए निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए वहां आर्य समाज गुरदासपुर (गुरुकुल विभाग) तथा स्त्री आर्य समाज गुरदासपुर ने महल्ला कृष्णानगर गुरदासपुर में प्रिंसिपल रुक्मिणी कुमारजी के घर पर हुए अथर्ववेद पारायण यज्ञ को पूरा सहयोग प्रदान करके इसके महत्व को बढ़ाया और सम्मेलन में हुये निर्णयानुसार एक हजार रुपये स्त्री समाज तथा पांच सौ रुपये पुरुष समाज ने सभा को गाड़ी खरीदने के लिए दिये वहां उसी सम्मेलन में हुए निश्चय को कार्य रूप देने के लिये इस वर्ष अपना वार्षिकोत्सव एक सप्ताह की कथा के रूप में मनाने का निश्चय किया। यह कथा ७ अप्रैल से १३ अप्रैल तक हुई इसमें भारत की महान विदुषी ब्रह्मचारिणी डा० प्रज्ञा देवी जी आचार्या पाणिनी संस्कृत महाविद्यालय वाराणसी को बुलाकर आर्य समाज के अधिकारियों ने गुरदासपुर के नगर निवासियों पर बहुत उपकार किया है। संस्कृत की विदुषी होने के साथ बहिन प्रज्ञादेवी जी वेदों की प्रकाण्ड पण्डिता हैं। उनके साथ आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से श्री श्यामसिंह जी हितकर भजनी मधुर संगीत द्वारा सबको आनन्दित करते रहे।

इसके अतिरिक्त बहिन शकुन्तला जी आचार्या कन्या गुरुकुल ने भी ने दिन के लिए पधार कर अपने मधुर संगीत द्वारा उपदेश मन को बांधा की दिन में अलग मुहल्लों में खुले स्थान पर पारिवारिक सत्संगों का भी आयोजन किया गया पूज्य पाद श्री स्वामी सदानन्द जी महाराज अध्यक्ष दयानन्द मठ दीनानगर ने भी अपना शुभाशीर्वाद प्रदान किया।

इस समस्त आयोजन के लिए आर्य समाज गुरुकुल विभाग गुरदासपुर के अधिकारी व सदस्य महानुभाव बधाई के पात्र हैं।

जितेन्द्र
सभा संगठन अधिकारी

लुधियाना में आर्योपदेशक सम्मेलन

पंजाब हरियाणा हिमाचल प्रदेश आर्योपदेशक महा सम्मेलन—

पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश के समस्त महोपदेशकों भजनोपदेशकों भजनीकों प्रचारकों पुरोहितों एवं विद्वानों का एक भारी सम्मेलन गुरुद्वारे के... नगर लुधियाना में २३ अगस्त १९८० को दो दिन हो रहा है। जिसमें उपदेशकों की कठिनाईयों तथा प्रचार कार्य में आने वाली कठिनाईयों को दूर करने और जन जन तक वैदिक धर्म की आवाज पहुंचाने के लिये गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाएगा। यह सम्मेलन दो दिन चलता रहेगा। उत्तमोत्तम सुझाव प्राप्त करने के लिए पूज्य संन्यासी महानुभावों को भी निमन्त्रित किया जा रहा है। भोजन की व्यवस्था सम्मेलन की स्वागत समिति की ओर से होगी सब महानुभाव अभी से समय नोट कर लें पृथक निमन्त्रण पत्र भी भेजे जाएंगे। अपने पहुंचने की सूचना कार्यालय मन्त्री श्री ओमपाल जी शास्त्री एम० ए० पुरोहित आर्यसमाज जवाहरनगर लुधियाना के पते पर देने की कृपा करें।

—ओमपाल शास्त्री
कार्यालय मन्त्री

यज्ञकर्त्ता का नाश नहीं

यज्ञैर्य इन्द्र दधते दुवांसि क्षयत् स राय ऋतपा ऋतेजा ।

जो यज्ञों द्वारा भगवान की पूजा करता है। वह महत्वपूर्ण धर्म युक्त कर्मों को बसाता है। धन चपल है। आज एक के पास कल दूसरे के पास। स्थान बदलते रहना धन का स्वभाव है। किन्तु जो दान से नभाता है। उसके पास वह बस जाता है। जो धन को बचा कर रखना चाहे। उसके पास रहता नहीं। जो उसे दूर करे उसके पास आता जाता है कैसी विचित्रता है? दे दाता दा निश्चिन्त। समाज रखो तो चार प्रकार का भय। दान को वेद की परिभाषा में यज्ञ कहते हैं। सब धन भगवान का है। उसी ने हमको दिया है जो इस तत्व को समझकर त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये तेरी वस्तु प्रभो तुझ ही अर्पण करता हूं। की भावना से भगवान के निमित्त दे डालते हैं सचमुच वह यज्ञ करते हैं यज्ञ में द्रव्य डालते हैं। उसके वृद्धि होती है यदि वे धन योग्य होता है वह फिर याज्ञिक के पास आता है और कुछ द्रव्य से अधिक मात्रा में आता है। अतः धन का सच्चा उपयोग धन का सच्चा बचाव यज्ञ में है।

आगे सुनिये! जो सत्पात्र में यज्ञानुष्ठान करते हैं। वह बहुत भाग्यवान होते हैं। कैसे? १ वह विवेकी तथा विचारशील होते हैं २ वह आन्तरिक से सदा मस्त रहते हैं। ३ उनकी वाणी अधिक शक्ति रखती है उनकी वाणी से दुर्जनों को दबना पड़ता है। ४ इसी से उनकी महती कीर्ति होती है। ५ उनके उपदेश का प्रभाव दूर तक पहुंचता है। वह महायशी होते हैं। ७ जनसाधारण को अपना सहायक सहयोगी सहकारी बना लेते हैं॥

—द्वारकानाथ वासुदेव

अति आवश्यक सूचना

श्री ओम्प्रकाश वर्मा जनजोपदेशक सभा सेवा से पृथक हो गए हैं। सभा के नाम पर लेन देन किसी प्रकार का लेन देन न किया जाये अन्यथा सभा पर इस का दायित्व न होगा।

—सभा मंत्री

वानप्रस्थी नन्दलाल जी करतारपुर में

वानप्रस्थी नन्दलाल जी सभा द्वारा काफी समय तक बीमार रहने के कारण अवकाश पर गए हैं। अब स्वस्थ होकर अपितु गुरुकुल करतारपुर में आ गए हैं। अब उनसे पत्र व्यवहार गुरु विरजानन्द स्मारक करतारपुर के पते पर ही करें।

गुरु विरजानन्द स्मारक करतारपुर का नया प्रबन्ध ... गुरु विरजानन्द स्मारक करतारपुर का नया प्रबन्ध ... महत्व की विशेषता के साथ साथ ... वैदिक ... विद्यार्थियों के पढ़ने का समुचित नियोजित प्रबन्ध है। शारीरिक व आत्मिक उन्नति पर विशेष ध्यान दिया जाता है। पूर्ण विवरण के लिए स्वयं मिलें अथवा पत्राचार करें।

श्री वीरेन्द्र जी सम्पादक तथा प्रकाशक द्वारा जगदीश प्रैस जालन्धर से मुद्रित हो कर आर्य मर्यादा कार्यालय गुरुदत्त भवन जालन्धर से स्वामित्व आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिये प्रकाशित हुआ।



साप्ताहिक ओ३म्

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मुखपत्र जालंधर

सम्पादक-वीरेन्द्र एम ए प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, कृष्णपुरा चौक जालन्धर दूरभाष—७४१५०

वार्षिक मूल्य १५) वर्ष १३, अंक २६ २३ आषाढ सम्वत् २०३७ तदनुसार ६ जुलाई १९८०, दयानन्दाब्द १५५

★★

वेदामृत—

आत्मा कर्मों का फल भोक्ता है

गुणान्वयो यः फलकर्म कर्ता कृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता ।
स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः संचरति स्वकर्मभिः ॥

उपदेश

जो आत्मा गुणों से युक्त है फलों और कर्मों का कर्त्ता है वही इस किये का भोगने वाला भी है। वह अनेक रूपधर्ता है। तीन गुणों का धारण करने वाला तीन मार्गों पर चलने वाला प्राणों का स्वामी अपने कर्मों से घूमता फिरता है। जीवात्मा अपने स्वरूप का किञ्चित मात्र ज्ञान हुवे बिना इस योग्य नहीं होता कि परमात्मा के स्वरूप को समझ सके जब तक कि परमात्मा की महिमा का थोड़ा सा प्रकाश भी समझ में न आवे तब तक जीवात्मा को अपने स्वरूप का यथार्थ ज्ञान नहीं होता और होगा ही क्योंकर? जब तक कि यह समझ में न आवे कि किस के सहारे से सूर्य अपनी परिधि पर घूम रहा है? किस के सहारे चन्द्र और ग्रह अपनी परिक्रमा को पूरा करते हैं। जब तक यह पता न लगे कि वायु और जल को कौन चलाता है और आग और बिजली में जलाने और प्रकाश देने की शक्ति कौन डालता है तब तक कब मालूम हो सकता है कि यह सारा ब्रह्माण्ड तुच्छ जीव के लिए नहीं बनाया गया अपितु प्रत्येक वस्तु परमात्मा के नियम के अन्दर एक अद्भुत सत्ता रखने वाली बनाई गई है। जब जीवात्मा को यह ज्ञान हो जाता है तब वह अपनी वास्तविकता को समझने के योग्य होता है। उसे मालूम होता है कि वह इन इन्द्रियों से पृथक है जिनके द्वारा वह कर्मों को करता है अर्थात् विषयों के ग्रहण करने में इन्द्रियां स्वतन्त्र नहीं हैं अपितु उसके अधीन हैं। साधारण अवस्था में जीवात्मा इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों के पीछे जाते हुए देखकर यह समझ लेता है कि यह इन्द्रियां विषयों में लिप्त होने के लिए बनाई गई थी इसलिए वह उनकी गुलामी से छुटकारा पाने के प्रयत्न से निराश हो जाता है। किन्तु जब वह अपने निज स्वरूप को समझता है तो उसे मालूम होता है कि इन्द्रियां जड़ होने के कारण गुण वाली नहीं हो सकती। यद्यपि चक्षु देखते हैं किन्तु शोक जनक दृश्य को देखकर दुःख चक्षु को नहीं होता अपितु चक्षु के द्वारा देखने वाले जीवात्मा को होता है। यद्यपि स्वाद तो जिह्वा लेती है परन्तु स्वादिष्ट पदार्थ का आनन्द उसके द्वारा केवल जीवात्मा ही लेता है न कि स्वयं जिह्वा। देखना सुनना स्वाद लेना सूंघना और स्पर्श करना वास्तव में जीवात्मा के गुण हैं। जड़ इन्द्रियों की जब यह अवस्था है तो जीवात्मा फिर कैसे गिर सकता है? विषय उसके आधीन बनाये गये हैं न कि वह विषयों का दास बनाया गया है तो वह निराश नहीं हो सकता। तब उसका उत्साह बढ़ जाता है और वह विषयों की दासता से स्वतन्त्र होने का यत्न आरम्भ करता है। परन्तु इस यत्न के समय उसे अकस्मात् बड़ा भारी धक्का पहुंचता है। अब तक वह यह समझ हुवे था कि बुरा देखने से चक्षु का नष्ट होगा। अपशब्द सुनने से कान को दुःख होगा स्वादों में फसने से जिह्वा पकड़ी जाएगी परन्तु अब प्रतीत हुआ कि गुणों का मेल जीवात्मा के साथ है न कि इन्द्रियों के साथ और इसलिये कर्म करने वाला आत्मा है जड़ इन्द्रियां नहीं। फिर इस किये का फल सिवाय जीवात्मा के कौन भोगता है? यह प्रश्न है जो मनुष्यों को प्रायः भ्रम में डाल देता है और मनुष्य आस्तिकता की ओर बढ़ता हुआ फिर नास्तिकता की ओर झुक जाता है। क्योंकि सदा सब कर्मों का फल जीवात्मा को इसी मनुष्य योनि में मिलता हुआ दिखाई नहीं देता है इसलिए वह विश्वास कर लेता है कि कर्मों का फल सम्भवतः मिलता ही नहीं। उसे सन्देह हो जाता है कि संसार के अन्दर कोई नियम और कोई प्रबन्ध भी है या नहीं। ऐसे अविश्वास की अवस्था में ऋषि फिर जिज्ञासु को सावधान करते हैं और बतलाते हैं कि जीवात्मा अनेक रूप धारण करता है। हर एक कर्म का फल उसी समय नहीं मिलता। जब उसी शरीर के किये हुये कई कर्मों का फल बरसों के पश्चात् मिलता है तो यह निश्चय कर लेना बिल्कुल उचित है कि जो फल हमें बिना कर्मों के प्रतीत होते हैं वह असल में किसी पिछले जन्म के कर्मों का फल है और फिर यह विश्वास कर लेना सुगम हो जाता है कि जिस प्रकार पिछले जन्म के कुछ कर्मों का फल हमने इस जन्म में भोगा है उसी प्रकार इस जन्म के कुछ कर्मों का फल अगले जन्म में भोगेंगे जिनका कि फल भोगना इस जन्म में रह गया है। बस यह जीवात्मा जो कि अनेक योनियों में विचर सकता है कर्मों का करने वाला और उनके फलों का भोगने वाला है परन्तु यह नाना प्रकार के कर्म उससे क्यों हो जाते हैं। सत रज और तम इन तीन गुणों के समूह का नाम प्रकृति है। इन तीन गुणों के साथ सम्बन्ध उत्पन्न करने के कारण मनुष्य कर्मों के बन्धनों में फसता है इन्हीं के सम्बन्ध से उसमें भिन्न २ कर्मों का प्रकाश होता है और इन तीनों गुणों के धारण करने के कारण वह तीन मार्गों पर चलने वाला होता है अर्थात् जागृत स्वप्न और सुषुप्ति की तीन अवस्थाओं को धारण करता है। इन्हीं मार्गों में चलता हुआ प्राणों का स्वामी जीवात्मा अपने कर्मों के कारण घूमता फिरता है फिर जीवात्मा का उद्देश्य क्या है इन कर्म बन्धनों से मुक्त होना? परन्तु मुक्त कैसे हो सकता है जब तक कि सत रज और तम के साथ इन का सम्बन्ध बना हुआ है। जबकि जागृत स्वप्न सुषुप्ति के तीनों मार्गों से विचर कर वह चौथे पद पर पहुंचता है अर्थात् तुरीयावस्था को प्राप्त होता है तब संसार चक्र से उसे मुक्ति मिलती है। इसलिए प्रातृगण आओ हम सब मिलकर जड़ प्रकृति से अपने सम्बन्ध को तोड़ कर आत्माओं के आत्मा परमात्मा के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ें जिससे तुरीयावस्था को प्राप्त होकर ब्रह्म ज्ञान में आनन्द के साथ विचरें।

—स्वामी श्रद्धानन्द (धर्मोपदेश से)

अधिष्ठाता—प्रि रामचन्द्र जावेद सभा-मन्त्री

विवाह का वैदिक आदर्श

ले०—आचार्य सत्यव्रत शास्त्री विद्यालंकार आमपुर

मानव जीवन की प्रक्रिया नर नारी के मधुर मिलन से प्रारम्भ होकर मानव सृष्टि के रूप मे विकसित होती है। यही प्रक्रिया सृष्टि के आदि काल से प्रचलित है। इसी के द्वारा मानव की वंश परम्परा अविच्छिन्न रही है।

दो हृदयो के पारस्परिक सम्मिलन की ही परिणति विवाह है। इस प्रक्रिया में दो अज्ञात कुल शील स्वभाव हृदय सर्वथा अपरिचित दो निर्झर जलों के मिलन के समान तद्रूपता को या एकत्व को प्राप्त हो जाते हैं। दो हृदयो के एकीकरण को ही ग्रन्थि बन्धन कहते हैं। दोनो हृदय मिलकर एक ग्रन्थि के तुल्य एकत्व की अनुभूति करते हैं।

विवाह शब्द—वि+वह+घञ्‌ (अ) से मिलकर बनता है इसका अर्थ है विशेष रूप से पहुंचाना या ले जाना। यह शब्द तीन भिन्न रूप उपसर्ग प्रकृति प्रत्यय का सम्मिलित रूप है। इनमे वि उपसर्ग है। जिसका अर्थ है विशेष रूप से वह धातु है जिसका अर्थ है पहुंचाना या ले जाना घञ्‌ प्रत्यय है जिसका अ-शेष रहता है और उसी के कारण वह का वाह बन जाता है। वह मे जाना या पहुंचाना उभय पक्षीय है—पत्नी को पति के समीप और पति को पत्नी के समीप लाया जाता है।

विवाह एक सामाजिक बन्धन है एक मर्यादा है इसी के द्वारा गृहस्थ धर्म की स्थिति सुव्यवस्थित है। पति के बिना पत्नी और पत्नी के बिना पति दोनो अपूर्ण है। दोनो के एकीकरण से ही गृहस्थ रूपी रथ चलता है दोनो एक दूसरे के पूरक है पोषक हैं बिना स्त्री के पुरुष आधा है— अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया तस्माद् यावज्जायां न विन्देत नैव तावत् प्रजायेत असर्वो हि तावद् भवति शत० ५ २ १ १० पुरुष का आधा अंग जाया है जब तक जाया प्राप्त नही करता तब तक सन्तान उत्पन्न नही हो सकती बिना जाया के पुरुष अपूर्ण ही रहता है। विवाह के द्वारा ही वंश परम्परा चलती है यही विवाह का लक्ष्य है। अपने वंश की उन्नति करते हुए देश—समाज व राष्ट्र की एक चित्त होकर रक्षा करना) देश व धर्म के हेतु आत्मा हुति देना आत्म समर्पण करना विश्व की शांति और समृद्धि की वृद्धि करना। इन्ही उद्देश्यो की कर्तव्यो की पूर्ति के लिए गृहस्थ परिवार के लिए नित्य पंच महायज्ञो का विधान किया गया है।

१ ब्रह्म यज्ञ—सन्ध्योपासना वेदादि सद्ग्रन्थो का स्वाध्याय करना

२ देव यज्ञ (हवन) नित्य प्रातः सायं अग्नि होत्र करना

३ पितृ यज्ञ माता पिता आचार्य तथा वृद्ध जनो की सेवा करना।

४ अतिथि यज्ञ अभ्यागत साधु महात्मा विद्वानो की सेवा करना।

५ बलि वैश्व देव यज्ञ जीव मात्र की रक्षा करना सेवा करना ये पांचो यज्ञ गृहस्थ आश्रम के लिए परमावश्यक है। विवाह इन्हीं का पूरक है।

वधू की कामना—

आयुष्मान अस्तु मे पति एधन्तां ज्ञातयो मम। पार० ग० १ परमात्मा की कृपा से मेरे पति आयुष्मान हो दीर्घ जीवी हो और मेरे सभी सम्बन्धियो की और पारिवारिक जनों की समृद्धि हो।

वर का अभिलाषा—

सुमङ्गलीरियं वधू रिमां समेत पश्यत। सौभाग्यमस्यै दत्त्वा याथास्तं विपरेतन। ऋग १० ८५ ३३

इस मंगलमयी वधू को आप सब एकत्र होकर देखें।

इसे सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद देकर अपने घर को जाए।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि स्वस्ति नो बृहस्पति दधातु।

यजु० अ० २५ १९

भावानुवाद—

हे इन्द्र तुम स्वस्ति दायक विश्व विश्रुत कीर्ति हो।

पालक व पावक हो सदा तुम विश्व ज्ञानागार हो।

कल्याण कारक हो प्रभो। करुणा कुटुम्ब पर कीजिए।

जीवन सदा सुखपूर्ण हो आशीष ऐसा दीजिए॥

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभिः सखायो यान्ति नो वरेयम्।

समर्यमा सं भगो नो निनीयात् सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः॥

कुश हों सभी पथ कण्टक न कोई विघ्न हों।—ऋग० १० ८५ २३

सुखद सरलता का बिछौना बिछा हुआ हो सर्वदा।

ऋजु मार्ग से चलकर वधू-वर वर्धों वह परिवार की।

दीर्घायु हों नव दम्पति सबसे सुहृद व्यवहार को।

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्। त्वां सह पत्या वदामि।

मर्त्य के इस लोक में तुम सदा विजयी रहो। ऋग्० १० ८५ २४

कर सुकृत इस लोक मे जीवन सदा सुखमय करो।

विघ्न सारे दूर हो आयु तुम्हारी दीर्घ हो।

पति की प्रतिष्ठा मे तुम्हारा मन सदा अनुरक्त हो।

सुमङ्गली रियं वधूरिमां समेत पश्यत। सौभाग्यमस्यै दत्त्वा याथास्तं विपरेतन। ऋग् १० ८५ ३३

हे सभ्य समाज! यह मंगलमयी वधू इसकी ओर निहारो।

चिर सौभाग्यवती हो यह ऐसा आशीष दे सब गृह प्रस्थान करो।

रहे दया की दृष्टि सदा बनी रहे शुभ प्रीति तुम्हारी।

नित्य अनुकूल भाव दर्शाना यह है विनय हमारी।

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।

ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु। ऋग १० ८५ ४६

पत्नी पति गृह की सम्राज्ञी है सब उसके स्वाधीन।

दासी या कि सेविका उसको कहना हैं मति से हीन।

सास श्वसुर की सम्राज्ञी बन कर उचित सम्मान।

बहनो और भाईयो से भी रखना प्रेम पूर्ण व्यवहार।

अहमस्मि सहमानाथो त्वमसि सासहिः —ऋक १० १४५ ५

मामनुप्रेते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु

मैं सर्वथा सहनशीला हूं तुम भी सदा सहनशील बनो।

जल की भान्ति निम्न भाव मे सहज स्वभाव से चलो।

ज्यों वत्स जैसे निज माता का अनुगामी है।

मन मेरा भी उसी भान्ति सदा तुम्हारा अनुयायी हो।

सं वां मनांसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम्। अथर्व ६ १ २

यथा स मनसौ भूत्वा सखायाविव सचाव है। अथर्व ६।४२।१

भावार्थ हम दोनो के भाव मन चित्त और व्रत एक साथ संयुक्त होकर सदा अग्रसर हो। हम दोनो परस्पर दो सखाओं की तरह एक मन और संकल्पित होकर सदा एक साथ मिलकर व्यवहार करें। हमारा पारस्परिक अनुराग-स्नेह भाव दिन प्रतिदिन बढ़ता ही रहे हम कभी पृथक न हों।

स वै नयामो मनसा कामिना कामि वर्धत।

सं वां मनांसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम्। अथर्व० २ ३० २

हे काम मे व्यस्त रहने वाले माता पिता तुम दोनों कामना करने वाले दोनों वर वधू को मिलकर ले चलो और मिल कर भाव बढ़ाओ। तुम दोनो का समस्त ऐश्वर्य हमको प्राप्त हो गया है हम दोनों के चित्त मन हृदय व्रत परस्पर एक हो गए हैं। और भी सब नियम धर्म प्रतिज्ञा एक है।

यदन्तरं तद्बाह्यं यद्बाह्यं तदन्तरम्।

कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभायौषधे। अथर्व० २।३०।४

जो हमारे अन्दर है वही बाहर है और जो बाहिर है वही हमारे भीतर है। हमारे अन्दर और बाहर अर्थात मन-वचन कर्म मे कोई भेद भाव नहीं है। वे मेरे लिए प्रिय हैं मेरे शुभ चिन्तक हैं। उन गुरु सदा प्रेम पूर्वक स्मरण करें। और सदैव मुख से प्रेम व्यवहार करें।

अभिवर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम्

रय्या सहस्रवर्चसा इमौ स्तामनुपक्षितौ। अथर्व० ६।७८।२।

गौ दुग्ध दधि घृत सेवन से जीवन अपना पुष्ट करो।

गौ सेवा का पावन व्रत लेकर राष्ट्र वृद्धि का संकल्प करो।

अनन्त श्री सम्पदा पाकर भी वचस्व की रक्षा करो।

पञ्च यज्ञ के विधि विधान से जीवन अपना पवित्र करो।

वर वधू का सम्मिलित मन्त्रोच्चारण पत्नी पति से कहती है।

अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम्

अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति। अथर्व० ७ ३६ १

हम दोनो के नेत्र पारस्परिक दृष्टि एक दूसरे के प्रति मधुमय हो। उनसे सदा मधुरता टपकती रहे। हम दोनों का मुख एक दूसरे को देखकर सदा प्रफुल्लित रहे। हमारे नेत्रों के कोए—प्रान्त भाग स्नेह रूपी अञ्जन से लिप्त रहे। हे प्रिय पति देव आप मुझे अपने हृदय कमल मे स्थान दें हम दोनों का मन सदा एक दूसरे के साथ मिला हुआ रहे हम मे परस्पर कभी मनो मालिन्य मन मुटाव न हो विरोध की भावना कदापि जागृत न हो।

(क्रमश)

सम्पादकीय—

धर्मवीर पं. लेखराम जी का स्मारक

पं० लेखराम हमारे उन शहीदों मे हुए हैं जिन पर कि हम जितना भी गर्व करें कम है। उनका जन्म तो जहलम के निकट सैयदपुर नाम के एक गाव मे हुआ था शुरू में उन्होने उर्दू और फारसी पढ़ी बाद मे हिन्दी और संस्कृत भी पढ़ ली। यद्यपि वह सरकारी नौकरी भी करते रहे साथ ही साथ अपनी धार्मिक जानकारी मे वृद्धि भी करते रहे। चूंकि उन्हे धार्मिक पुस्तकों के स्वाध्याय की विशेष लगन थी अत उन्होने महर्षि दयानन्द लिखित पुस्तकें भी पढ़ी। और उनके कारण उनके विचारो में एक नयी क्रान्ति आ गई।

उन्होंने फारसी और अरबी भी पढ़ी थी। इसलिए कुरान का स्वाध्याय भी किया करते थे। इस प्रकार उन्हे इस्लाम तथा वैदिक धर्म इन दोनो मे जो अन्तर है वह भी पता चल गया। उसके आधार पर उन्होने न केवल नयी पुस्तकें लिखीं अपितु जगह-जगह आर्य समाज की सभाओ मे जाकर अपने विचार जनता के सामने रखे। चूंकि कई बार वह इस्लाम की कुछ शिक्षाओ पर आलोचना भी करते थे इसलिए कुछ मुसलमान उनके विरुद्ध हो गए। अहमदियों को उनके विरुद्ध अधिक शिकायत पैदा हुई क्योंकि उन्होंने उनके खलीफा की भी आलोचना की थी।

कादियां उन दिनो भी अहमदी आन्दोलन का गढ़ था। और उनके खलीफा वही रहा करते थे। प० लेखराम एक बार कादियां गए ताकि अहमदियो के खलीफा से बातचीत कर सकें। अहमदी आन्दोलन बारे उनके मन मे जो आशंकाएं थी वह उनके सम्बन्ध मे अहमदिया आन्दोलन के नेताओ से बात करना चाहते थे। प० लेखराम का यह विश्वास था कि अगर किसी धर्म के किसी पक्ष पर किसी को आपत्ति हो तो उस पर पर्दा डालने से कोई लाभ नही होता। बेहतर यही रहता है कि आपस मे विचार विनिमय करके उन आशंकाओ को दूर कर लिया जाए। इसलिए वह सदा मुसलमानो के साथ इसके लिए तैयार रहते थे। इसी ख्याल से वह कादियां भी गए और दो महीने वहा रहे। अहमदी खलीफा को मिलने का तो उन्हें कोई अवसर न मिला। लेकिन वहा उन्होने आर्य समाज कायम कर दी। उसके कुछ समय बाद वह वहा से वापस आ गए।

प० लेखराम तो यह समझते थे कि अगर इस्लाम के किसी पक्ष पर कोई मतभेद है तो उसे परस्पर बातचीत से तै कर लिया जाए। किन्तु कुछ मुसलमानो को यह स्वीकार न था। वह समझते थे कि यह व्यक्ति जो उनकी आलोचना करता है अगर इसे खत्म कर दिया जाए तो फिर सम्भव है कि इस्लाम पर आलोचना करने वाला कोई न रहे। इसलिए कुछ लोग उनके पीछे लग गए। एक दो बार उन पर हमले भी किए गए। लेकिन वह विफल गए। इस पर उनके विरोधी उन के पीछे लगे रहे। अन्तत वह दिन आ गया जब ६ मार्च १८९७ को लाहौर मे एक मुसलमान नौजवान ने उनके पेट मे छुरा घोंप दिया। पेट की आन्तें बाहर निकल आई प० लेखराम ने फिर भी उसे पकड़ लिया लेकिन घाव इतना गहरा था और रक्त इतना अधिक बह रहा था कि डाक्टरों के सारे प्रयास उन्हे बचा न सके। वह अन्तत शहीद हो गए।

उन्होने अपने जीवन मे कई पुस्तकें लिखी थीं और महर्षि दयानन्द की जीवन गाथा भी लिखी थी। मृत्यु से कुछ समय पूर्व उन्होने अपने साथियो को अपने पास बुलाकर उनसे कहा था मेरे जाने के बाद भी आर्य समाज मे साहित्य निर्माण का कार्य बन्द नही होना चाहिए।

प० लेखराम को शहीद हुए अब ८३ वर्ष होने लगे हैं उनकी अन्तिम इच्छा यह थी कि साहित्य निर्माण का कार्य बन्द नही होना चाहिए। यह आर्य समाज मे कुछ हद तक तो चल रहा है लेकिन ऐसा नहीं जैसा कि चलना चाहिए। पाकिस्तान बनने से पूर्व लाहौर आर्य समाज की गतिविधियों का केन्द्र था। लेकिन देश के बटवारा के बाद हम अभी तक उस प्रकार का कोई केन्द्र पंजाब मे स्थापित नही कर सके। चूंकि कादियां में आर्य समाज की स्थापना प० लेखराम ने स्वयं की थी इसलिए कादियां के आर्य भाई बहनो की यह प्रबल इच्छा है कि कादियां में प० लेखराम का एक स्मारक बनाया जाए। इसके लिए उन्होने भूमि भी प्राप्त कर ली है और शीघ्र ही वहा स्मारक का निर्माण शुरू हो जाएगा। यह स्मारक साहित्य निर्माण का एक बहुत बड़ा केन्द्र बन सकता है। लेकिन उसके लिए बहुत अधिक धन की जरूरत होगी। कादियां मे स्मारक बनाने के लिए न केवल कादियां के सारे हिन्दू भाई बहनो का सहयोग मिल रहा है प्रत्युत सारे गुरदासपुर जिला की ओर से उन्हे हर प्रकार की सहायता देने का वचन दिया गया है। श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के संरक्षण मे इस जिला के सब आर्य समाजी इस स्मारक को एक शानदार रूप देने का प्रयास कर रहे हैं।

किन्तु जिस प्रकार का स्मारक बनाने का विचार है वह केवल गुरदासपुर ही नही बना सकता उसके लिए तो सारे पंजाब को अपना सहयोग देना होगा। वैसे तो हम दूसरे सूबो वालों से कह सकते है और वहा से भी हमे धन मिल सकता है लेकिन मैं चाहता हू कि प० लेखराम का स्मारक पंजाब वाले ही बनायें। वह हमारे एक शहीद थे। एक शहीद का स्मारक उनकी शान के अनुरूप होना चाहिए। इसलिए मैं पंजाब के सब धर्म प्रेमी दानियो से विशेषत आर्य समाजो से यह प्रार्थना करना चाहता हू कि उन्हे इस स्मारक को बनाने मे हर प्रकार की सहायता देनी चाहिए। पंजाब मे इस समय कोई डेढ़ सौ के लगभग आर्य समाजें हैं हर आर्य समाज को इस यज्ञ मे अपनी अपनी आहुति डालनी चाहिए। जो लोग या जो संस्थाएं इसके लिए रुपया भेजना चाहें वह या तो मन्त्री आर्य समाज कादियां को भेज दें या श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज दयानन्द मठ दीनानगर के पता पर भेज दें।

—वीरेन्द्र

आर्य प्र. नि. सभा पंजाब का वार्षिक चुनाव

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने यह फैसला किया है कि अपना वार्षिक चुनाव २६ २७ जुलाई को नवांशहर मे किया जाए। इस बार यह अधिवेशन दो दिन का होगा। पहले दिन आर्य समाजो की समस्याओ पर विचार किया जाएगा सबसे बड़ा प्रश्न इस समय यह है कि पंजाब मे आर्य समाज का प्रचार अधिक से अधिक कैसे हो और प्रतिनिधि सभा संगठन को शक्तिशाली कैसे बनाया जाए। मैं चाहता हू कि जो भी प्रतिनिधि महानुभाव उसमे सम्मिलित हो वह इन सब समस्याओ पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें। जब कभी सभा का वार्षिक अधिवेशन होता है तो हम केवल अपना बजट स्वीकार करके और निर्वाचन करके वापस चले आते हैं इस बार पहली बार कुछ समय आपस के विचार विमर्श पर भी व्यतीत किया जाएगा। इसलिए यह आवश्यक है कि सब महानुभाव इन सब समस्याओ पर अपने विचार रखने के लिए तैयार होकर आएं।

अभी तक कुछ ऐसी समाजें भी हैं जिन्होने अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करके नही भेजे। मेरा उन सबसे निवेदन है कि वह अपने प्रतिनिधि भिजवा दें इस समय तक अढ़ाई सौ से अधिक प्रतिनिधि आ चुके हैं यदि बाकी समाजें भी अपने प्रतिनिधि भेज दें तो सभा का यह आगामी अधिवेशन बहुत ही महत्वपूर्ण हो जाएगा।

—वीरेन्द्र

आर्य वीर दल का प्रान्तीय शिक्षक प्रशिक्षण शिविर

आर्य वीर दल के शिक्षक तैयार करने के लिए एक प्रशिक्षण शिविर आर्य अनाथालय फिरोजपुर छावनी में ६ जुलाई से १५ जुलाई १९८० तक लगाया जा रहा है। इसमे पंजाब की सभी समाजें अपने चुने हुए युवक जिनकी आयु १६ वर्ष से ऊपर हो उन्हे ५ जुलाई सायं तक अनाथालय मे पहुंचाने की व्यवस्था करें। इस शिविर मे प्रशिक्षण व भोजन आदि निशुल्क होगा। सभी शिक्षार्थी अपने साथ बिस्तर के अतिरिक्त सफेद कमीज खाकी निक्कर सैण्डोकट बनियान सफेद कपड़े का जूता सफेद जुराब कच्छा व लंगोट अवश्य लावें।

—ब्र० आर्य नरेश

गुरुकुल कांगड़ी की वर्तमान समस्याएं

ले०—श्री विद्या सागर जी विद्यालंकार, मन्त्री अखिल भारतीय स्नातक मडल

गुरुकुल कांगड़ी की स्थिति के बारे में गुरुकुल की स्वामिनी सभा के प्रधान श्री वीरेन्द्र जी का जो वक्तव्य 'आर्य मर्यादा' मे छपा है, उनके इस अंश से मैं पूरी तरह सहमत हू कि गुरुकुल की वर्तमान दुर्दशा के लिए भूतपूर्व संयुक्त आर्य प्रतिनिधि सभा अथवा पंजाब हरियाणा और दिल्ली की प्रतिनिधि सभाएं उत्तरदायी नहीं हैं। जो लोग इसे पार्टीबाजी से उत्पन्न मानते हैं, या दो पार्टियो के मध्य झगड़े का परिणाम मानते हैं और सभा अथवा सभाओं के अतिरिक्त किसी अन्य पार्टी को एक पक्ष बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं, वे वस्तुत मूल समस्या की उपेक्षा कर और वर्तमान स्थिति की पृष्ठ भूमि को धूमिल कर रहे हैं। गुरुकुल के वर्तमान विवाद को पार्टीबाजी के रूप मे प्रस्तुत करने का श्रेय जहा दिल्ली के समाचारपत्रों (हिन्दी और अंग्रेजी दोनों) को है वहा स्वयं आर्य समाज से सम्बद्ध और गुरुकुल के ही कुछ वर्तमान और भूतपूर्व उत्तरदायी व्यक्तियो को भी पूरा श्रेय दिया जा सकता है। विशेषत श्री रामनाथ जी का 'आर्य सन्देश' मे प्रकाशित लेख का यह अंश भ्रम पैदा करने वाला है कि गुरुकुल की वर्तमान स्थिति दो पार्टियो के झगड़े के कारण है।

पर, यह अद्भुत बात है कि वर्तमान स्थिति को पैदा करने वाली ताकतों और इन्हीं ताकतो की सहायता से और सरकार मे गुरुकुल मे आतंक का वातावरण पैदा करने वाले गुण्डो की सहायता से गुरुकुल पर कब्जा करने और गुरुकुल की सारी व्यवस्था को नष्ट भ्रष्ट करने वाले तत्वो के बारे मे न दिल्ली समाचार पत्रो ने न गुरुकुल के वर्तमान और भूतपूर्व कार्यकर्ताओ ने और न श्री वीरेन्द्र जी ने प्रकाश डाला है।

सभा मे विवाद पहले भी होते रहे हैं जहा अधिकारी बदलते रहे हैं और सभा के चुनाव को लेकर तीव्र संघर्ष भी होते रहे हैं। परन्तु गुरुकुल की मूल प्रबन्ध व्यवस्था को ज्यो का त्यो चलने दिया गया। सभा के किसी भी पक्ष के अधिकारी ने गुरुकुल को जड़ मूल से अस्त-व्यस्त करने का प्रयत्न नहीं किया। वे लोग अनियमितताएं अवश्य बरतते रहे, उनका विरोध भी होता रहा। सभा में भी और विद्या सभा मे भी।

गुरुकुल की वर्तमान स्थिति को उत्पन्न करने का प्रथम श्रेय श्री बंसीलाल का है जिन्होंने आपात् काल की स्थिति का लाभ उठाकर हरियाणा मे अपनी राजनीतिक स्थिति को मजबूत बनाने के लिए संयुक्त सभा के विभाजन के बाद बनी हरियाणा प्रतिनिधि सभा के सत्तारूढ पक्ष को अवांछनीय समझ कर उस सभा पर अपना प्रभाव कायम करने के लिए आन्तरिक सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत बन्दी स्वामी इन्द्रवेश को रिहा कर दिया और इनसे हुवे समझौते के अन्तर्गत गुरुकुल पर सरकारी तन्त्र की सहायता से अधिकार करने में सहायता दी। निरन्तर प्रयत्नो के बाद भी बंसीलाल ने भी अनुभव किया किया कि उन्होंने उचित कदम नहीं उठाया था। इसके साथ ही राजनीतिक स्तर पर अन्य राजनीतिक नेताओ के कारण केवल मात्र इतना सम्भव हुआ कि गुरुकुल कांगड़ी में जिस सरकारी तन्त्र (स्थानीय पुलिस, जिला अधिकारियो) के सहयोग से स्वामी इन्द्रवेश तथा उनके साथी जबरदस्ती अधिकार करने मे सफल हुए थे, वह सहयोग उन्हें उपलब्ध नही रहा और वे गुरुकुल मे रह नही पाए, क्योंकि गुरुकुल के भीतर और बाहर कोई भी वर्ग उनसे सहयोग करने को तैयार नहीं था।

सरकारी हस्तक्षेप का दूसरा चरण शुरू हुआ चौधरी चरणसिंह के गृह मन्त्रित्व काल मे। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के सूचना और प्रसारण राज्य मन्त्री चौधरी बलबीर सिंह अधिकांश समय हरिद्वार रहते थे और गुरुकुल पर इन्द्रवेश, अग्निवेश गुप्त का आधिपत्य स्थापित कराने के लिए स्थानीय और जिला अधिकारियो को आवश्यक निर्देश देते रहते थे। इसके साथ ही केन्द्रीय गृहमन्त्री के निवास स्थान से श्रीमती गायत्री देवी (चौधरी चरणसिंह की पत्नी) सहारनपुर के जिला अधिकारियो और हरिद्वार के अधिकारियों को सीधे टेलीफोन पर निर्देश देती रहती थी। इस सरकारी हस्तक्षेप का उद्देश्य इन्द्रवेश, अग्निवेश गुप्त को अधिकार दिलाना नही था बल्कि विजयसिंह (जब वे स्वयं अपने आपको विश्वालंकार कहने लगे हैं) को किसी भी प्रकार कुलपति पद पर बिठाना था। इस व्यक्ति की मात्र योग्यता यह थी कि यह चौधरी चरणसिंह और चौधरी बलबीरसिंह दूनो से सम्बद्ध था। वस्तुत सन् ७७ से सन् ८० तक की इस अवधि में गुरुकुल की नींव ही हिल गयी और गुरुकुल में गुरुकुलत्व नाम की कोई वस्तु शेष नही रही।

प्राय लोगो को सरकारी हस्तक्षेप की जानकारी नहीं रही। इसके साथ स्वामी अग्निवेश द्वारा 'टाइम्स आफ इण्डिया' समूह के समाचार पत्रो के माध्यम से जो धुआंधार प्रचार किया गया और अब भी किया जा रहा है, उस से इन्द्रवेश, अग्निवेश गुप्त एक 'पार्टी' के रूप मे स्थापित हो गया। इस गुट का सारे आर्य समाज संगठन मे कोई स्थान न होते हुए और आर्य समाज संगठन द्वारा निष्कासित होने पर भी यह गुट संयुक्त आर्य प्रतिनिधि सभा का शव अपने कन्धे पर लटकाकर, सरकारी तन्त्र के निरन्तर हस्तक्षेप और 'टाइम्स आफ इण्डिया' समूह के अविच्छिन्न प्रचार से एक 'पार्टी' बन गया।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री वीरेन्द्र जी इस सारी स्थिति से पूरी तरह परिचित हैं। वे यह स्वीकार करेंगे कि जनता पार्टी के शासनकाल मे सरकारी तन्त्र के हस्तक्षेप को रोकने मे वे असफल रहे, उन्होंने शासन तन्त्र का हस्तक्षेप के विरुद्ध सत्याग्रह की बात अवश्य की, पर आर्य समाज सत्याग्रह नही कर सका, हालांकि तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री मोरार जी देसाई ने उन्हें सत्याग्रह करने का निमन्त्रण दिया था। आल इण्डिया एडीटर्स कान्फ्रेंस के प्रधान होने पर भी न 'टाइम्स आफ इण्डिया' समूह के प्रचार को नियन्त्रित करने मे सफल हुए, न अन्य किसी अंग्रेजी, हिन्दी समाचार पत्र को विश्वास मे लेकर स्वामी अग्निवेश के भ्रामक वक्तव्यो का निराकरण कर सके।

इससे भी बढ़कर खेदजनक स्थिति यह रही कि गुरुकुल में जो होता रहा, हमले हुए, गोलियां चली हत्याएं हुईं, वहां लोगो पर पुलिस ने झूठे मुकद्दमे बनाए गुरुकुल के अधिकारियो द्वारा जो शिकायतें भेजी गयीं उनका अन्य समाचार पत्रोंके माध्यमोंसे प्रचार किया नहीं गया स्वयं आर्य प्रतिनिधि सभाओं के साप्ताहिकों और 'सार्वदेशिक' ने भी इस सम्बन्ध में समाचार प्रकाशित नहीं किये।

जो स्थिति थी उसका हम ठीक ढंग से सामूहिक रूप से सामना नहीं कर पाए, आगे भी ठीक से सामना न कर पाए इसकी भी नींव डाल दी गई। स्थिति को उलझाने के लिए एक तीसरी पार्टी खड़ी कर दी गई, यह पार्टी है विश्वविद्यालय के सरकारी अनुदान से पलने वाले शिक्षक वर्ग, इन लोगों के बारे में कोई टिप्पणी करना व्यर्थ है पर यह बात स्पष्ट रूप से आर्य समाज से सम्बद्ध सभी लोगों को समझ लेनी चाहिए कि अधिकांश शिक्षक आर्य समाज से बहुत दूर हैं और गुरुकुल के किसी आदर्श या सिद्धान्त में इन लोगों का विश्वास नहीं। इनका शैक्षणिक स्तर भी सन्तोषजनक नहीं। इनके पास सम्भाव आर्य ज्ञान नहीं। फिर भी गुरुकुल की वर्तमान समस्याओं मे एक पार्टी के रूप मे इनका उदय हुआ है। सम्भवत कुछ लोग चौंकेंगे यदि मैं कहू कि इनका गुरुकुल सम्बन्धी समस्याओ में एक पार्टी के रूप में उदय जनता शासन काल के शिक्षा मन्त्री डा० प्रताप चन्द्र, चन्द्र के प्रोत्साहन और सहयोग से हुआ।

इस तीसरी पार्टी के सम्बन्ध में यह भी नहीं भूलना चाहिए कि इसके अधिकांश लोगो की नियुक्ति तत्कालीन कुलपति श्री सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार के समय में हुई थीं जबकि वे गुरुकुल विश्वविद्यालय को सरकारी मान्यता और सहयोग से किसी भी अन्य विश्वविद्यालय के समकक्ष बनाने का 'सपना' ले रहे थे। सपना-सपना होता है, वे यह भूल गए कि जिस स्तर के लोगो की नियुक्ति की जा रही है वे गुरुकुल की नींव ही हिलाने वाले सिद्ध होंगे। अब तो माननीय श्री सत्यव्रत जी विश्वविद्यालय को एक 'पब्लिक स्कूल' बनाने का सपना देखने लगे हैं।

स्नातकों का दायित्व—

श्री प्रधान जी ने अपने सम्पादकीय लेख में गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों और स्नातक मण्डल की बार-बार चर्चा की है, गत चालीस वर्ष से स्नातक मण्डल से विभिन्न रूपो मे सम्बन्ध रहने के कारण यह स्पष्ट रूप से कह सकता हू कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने संस्था रूप मे स्नातक मण्डल को कभी विश्वास मे नहीं लिया। व्यक्तिगत स्तर पर सभा के अधिकारियो का कुछ गिने चुने स्नातको से सदा सम्बन्ध रहा है और उनके परामर्श को ही सभा अधिकारियो ने स्नातक मडल का परामर्श घोषित किया है। स्नातको को इस पर आपत्ति नहीं कि कुछ गिने-चुने स्नातकों पर सभा के अधिकारियों का विश्वास रहा है और उनके परामर्श को अस्वीकार किया है। इसके विपरीत ऐसा अनेक बार हुआ है कि सभा अधिकारियों और गुरुकुल के अधिकारियो ने संस्था रूप मे स्नातक मण्डल को पूरी तरह से नकारने का प्रयत्न किया है।

विभिन्न विचारों और धारणाओ के लोगो मे एक ही संस्था में रहते हुए भी स्नेह और विरोध दोनों ही चलते रहते हैं इसलिए सभा प्रधान जी चाहे जो कहें लिखें, सत्य यह है कि स्नातक मण्डल को संस्था रूप मे सभा के क्षेत्रो में अवांछनीय समझा गया है, और उसे दूर रखने का प्रयत्न किया गया है। गुरुकुल सम्बन्धी मामलो मे विचार विमर्श के लिए नहीं बुलाया जाता। विद्या सभा में आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली के प्रतिनिधियों में

(शेष पृष्ठ ९ पर)

पंजाब में पंजाबी के साथ हिन्दी भी क्यों ?

ले०—प्रा० श्री भद्रसेन जी साधु आश्रम होशियारपुर

निःसन्देह आज पंजाब में पंजाबी का व्यवहारिक रूप में अपना एक प्रतिष्ठित स्थान है। जैसे भू मण्डल में सारी धरती के एक सा होने पर भी हर क्षेत्र की कुछ अपनी विशेषताएं होती हैं। जिनको किसी रूप में ओझल नहीं किया जा सकता। ऐसे ही इस प्रदेश की अपनी कुछ विशेषताएं हैं [और आज पंजाबी यहां की भाषा है। पुनरपि पंजाबी के के साथ हिन्दी की उपयोगिता पंजाब में भुलाई नहीं जा सकती। क्योंकि—

१ अन्य प्रदेशों की तरह पंजाब भी भारत का एक अंग है। भारतीय संविधान के अनुसार हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा है इन विभिन्न प्रदेशों के समूह के रूप में ही भारत का अस्तित्व है। इन प्रदेशों के अतिरिक्त भारत का अस्तित्व है। इन प्रदेशों से अतिरिक्त भारत का पृथक अस्तित्व नहीं है। एवं भारतीय संविधान द्वारा स्वीकृत हिन्दी राष्ट्र भाषा इन प्रदेशों से अतिरिक्त कहां साकार होगी। अतः संविधान के सम्मान और पालन के लिए हिन्दी को भी व्यवहार में स्थान देना चाहिए। देश तथा संविधान के प्रति निष्ठा को इस दृष्टि से अपनी भाषा सम्बन्धी व्यवहार में हिन्दी को अपेक्षित स्थान देना चाहिए। क्योंकि किसी भाषा की अमरता उसके व्यवहार में आने पर ही परिलक्षित होती है।

२ आज के युग में राष्ट्रीय एकता की उपयोगिता किसी से छिपी हुई नहीं है। राष्ट्रीय एकता को दृढ़ मूल करने के लिए सारे राष्ट्र में सभी नागरिक एक दूसरे से सम्बद्ध हों। जब तक सारे राष्ट्र के नागरिक एक दूसरे की भावनाओं को नहीं समझेंगे तब तक व्यवहारिक रूप में एकता और उसके परिणाम से प्राप्त सहयोग सद्भाव तथा विश्वास का परस्पर आदान प्रदान नहीं हो सकता। अतः सारे देश में परस्पर एकता और भाव संप्रेषण के लिए एक राष्ट्र भाषा के नाते पंजाब में भी हिन्दी को अपनाना आवश्यक हो जाता है। तभी पंजाब सारे देश के साथ एक सूत्र में बन्ध सकता है।

३ समय समय पर पंजाब में भी आवाज उठती रहती है कि केन्द्रीय नौकरियों में पंजाब को उसका पूरा हिस्सा मिलना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब पंजाब के विद्यार्थी केन्द्रीय नौकरियों के साक्षात्कारों में अपनी योग्यता को प्रमाणित करेंगे। अतः एतदर्थ पंजाब के विद्यार्थियों को हिन्दी में भी योग्य बनाने के लिए उनके पाठ्यक्रम में हिन्दी का भी प्रतिष्ठित स्थान हो यदि हम केन्द्रीय नौकरियों में पूरे हिस्से के रूप में स्थान प्राप्त करना चाहते हैं तो एतदर्थ हिन्दी भाषा में भी योग्यता प्राप्त करनी चाहिए।

४ इसके साथ महत्वपूर्ण एक बात यह भी है कि पंजाबी हिन्दी दोनों की अपनी जहां मूल भाषा संस्कृत है वहां ये दोनों एक दूसरी के बहुत निकट हैं। पंजाबी की वाक्य योजना व्याकरण छन्द अलंकार भाव, विशेषण विशेष्य आदि का सम्बन्ध संस्कृत से प्रभावित है। पंजाबी में नये विषयों के नये शब्दों के विकास और पूर्व प्रचलित शब्दों में छिपे रहस्य। (शब्द स्वारस्य) को समझने में सहयोग हिन्दी संस्कृत भाषाओं से ही प्राप्त हो सकता है। अतः पंजाबी के विकास और निखार के लिए भी संस्कृत हिन्दी का सहयोग अत्यन्त अपेक्षित है।

५ पंजाब में प्रारम्भ से ही हिन्दी का एक प्रतिष्ठित स्थान रहा है। तभी आज भी विभाजन के बाद पुनः विभक्त पंजाब में ४० प्रतिशत वे लोग हैं जो हिन्दी को अपनी धार्मिक और व्यवहारिक भाषा मानते हैं इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि आज भी पंजाब में चार हिन्दी के दैनिक समाचार पत्र बहुत बड़ी संख्या में प्रकाशित हो रहे हैं वहां अनेक शहरों में स्थानीय से एवं अन्य साप्ताहिक पाक्षिक और मासिक पत्र पत्रिकाएं भी सैकड़ों हैं दूसरे प्रदेशों से आने वाली पत्र पत्रिकाओं की संख्या भी पंजाब में कम नहीं है।

आज पंजाब के अनेक शहरों और कस्बों में कई कई सम्बन्धित और माडल स्कूल हैं जिनमें हजारों हजारों विद्यार्थी सरकार द्वारा सहयोग के स्थान पर बाधा में उपस्थित करने पर हिन्दी माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। ये सारे प्रमाण पंजाब में हिन्दी के सुस्पष्ट स्थान और अनुपात को व्यक्त करते हैं। इस वर्ष की दसवीं कक्षा की परीक्षा में हिन्दी माध्यम वालों का अनुपात ४५ प्रतिशत से अधिक ही है।

६ पंजाब कृषि और उद्योग के कारण एक उन्नत प्रदेश है। इन क्षेत्रों में भरपूर सहयोग देने के लिए आज पंजाब में

(शेष पृष्ठ ८ पर)

शंका समाधान—

मन्युरसि मन्युं मयि धेहि

ले० आचार्य वीरेन्द्र जी लखनऊ

उपर्युक्त मन्त्राश यजुर्वेद १९ ९) में परमात्मा को मन्यु बताकर मन्यु को धारण कराने की प्रार्थना की गई है और ऋग्वेद १ २४ ६ में भी परमेश्वर के मन्यु (दुष्टों पर क्रोध) का वर्णन किया गया है किन्तु ऋग्वेद ७ ८६ ३ में उसे शराब जुआ और अज्ञान के साथ रखकर बुरा बताया गया है। इस पर श्री ओमप्रकाश आर्य जी ने आर्य मर्यादा ८ ६ ८० के अंक में शंका की है कि मन धातु से बने मन्यु के परस्पर विरुद्ध अर्थों की संगति कैसे लगायी जावे।

इस शंका का साधारण समाधान यह है कि एक ही शब्द प्रकरण के प्रभाव से भिन्न तथा विरुद्ध अर्थ देने लगता है जैसे काम शब्द धर्म अर्थ काम मोक्ष—इन चार पुरुषार्थों के मध्य में अच्छे अर्थ (शुभ कामना श्रेष्ठ इच्छा) देता है अर्थात् धर्म पूर्वक धन कमाकर अच्छी कामनाओं को पूर्ण कर मनुष्य मोक्ष पा सकता है। किन्तु वही काम जब पहले नम्बर पर दूसरे दुर्गुणों के साथ काम क्रोध लोभ मोह के रूप में प्रयुक्त हुआ तो प्रकरण और संगति से प्रभावित होकर बुरी कामना-व्यभिचार का अर्थ देने लगा। इसी प्रकार मन्यु शब्द का साधारण अर्थ शोक तथा क्रोध है। जब परमेश्वर से प्रार्थना की जाती है तो तेज वीर्य बल ओज और सहनशीलता रूपी गुणों के बीच के आए उस मन्यु शब्द का अर्थ अच्छा गुण दुष्टों की दुष्टता पर बुद्धिपूर्वक क्रोध होगा जिस का उद्देश्य दया पूर्वक सुधार करना होता है। किन्तु जब शराब जुओं और अज्ञान के बीच में मन्यु शब्द आएगा तो उसका अर्थ प्रकरण और अन्य शब्दों की संगति के प्रभाव से दुर्गुण शोक तथा क्रोध होगा जैसाकि निम्नलिखित मन्त्र में है मन्यु क्रोध एक वृत्ति है जो प्रयोग और प्रकरण के अनुसार अच्छी-बुरी हो जाती है—

न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा
सुरा मन्युर विभीदको अचित्तिः।
अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे
स्वप्नश्चनेद् अनृतस्य प्रयोता।
(ऋ० ७ ८६ ६)

नहीं वह अपना कर्म ही है वरुण (पाप का कारण होता है) किन्तु वह १ ध्रुति वासना
२ सुरा-मद (नशा) ३ मन्यु शोक और क्रोध ४ विभीदक—जुआ और ५ अचित्ति—अज्ञान (ये ५ भी कारण होते हैं) कनीयान—कनिष्ठ (छोटे जीवात्मा) के साथ पास में (अन्दर और बाहर) ज्यायान—ज्येष्ठ (बड़ा परमात्मा) है (जो कर्मों का यथायोग्य फल देता है—अच्छे कर्म का अच्छा और बुरे कर्म का बुरा फल। साथ अच्छे काम के लिए प्रेरणा और बुरे काम के लिए हृदय में घबराहट भी परमात्मा की ओर से होती है) और स्वप्न (सपने में किया गया सोच विचार) भी अनृत झूठ की ओर ले जाने वाला होता है। (अतः स्वप्न में भी बुरे विचार न लाने चाहिए)

इस मन्त्र में ८ दुर्गुण पाप के कारण बताये गये हैं—१ अपना कर्म २ पाप की वासना ३ नशीली वस्तुएं ४ क्रोध (मन्यु) ५ जुआ ६ अज्ञान ७ अपने अन्दर परमात्मा की बात पर ध्यान न देना और ८ स्वप्न अवस्था के बुरे विचार।

एक दूसरा समाधान सुरा मन्यु का एक शब्द मानकर किया जा सकता है जिसका अर्थ होगा नशे से उत्पन्न मन्यु—क्रोध तथा शोक। तीसरा समाधान सुरा+अमन्यु—सुराऽमन्यु मानकर हो सकता है अर्थात् नशा और अमन्यु दुष्टों पर क्रोध का न करना ढील दे देना दुष्टता को सहन कर लेना यह अमन्यु भी दुर्गुण है दुष्ट पर क्रोध न करना भी पाप है।

अब रही मन धातु से बने मन्यु के परस्पर विरुद्ध अर्थों की संगति लगाने की बात। इसका समाधान भी सरल है। वह यह है कि उणादि कोष के तृतीय पाद के २०८ सूत्र यजिमनि शुन्धिदसिजनिभ्यो युच से मन धातु से युच प्रत्यय करने पर मन्यु शब्द सिद्ध होता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस सूत्र की वृत्ति में लिखा है—मन्यतेऽसौ मन्युः शोकः क्रोधो वा अर्थात् जो मानता है या माना जाता है वह मन्यु है जिसका अर्थ है शोक अथवा क्रोध। मन ज्ञाने दिवादि गण तथा मन स्तम्भने चुरादिगण धातु से युच प्रत्यय करने पर जो मन्यु शब्द बनता उनका अर्थ जो जाना जाये अथवा स्तम्भन करे वह शोक अथवा क्रोध होगा।

इस प्रकार मन्यु में धातुएं भी हो गयी और अर्थ भी शोक तथा क्रोध हो गये।

अच्छे गुण के रूप में जो क्रोध दुष्टों पर होता है वह ज्ञानपूर्वक (होश के साथ होता है किन्तु दुर्गुण रूप मन्यु स्तम्भित (हक्का बक्का बुद्धिशून्य) कर देने वाला शोक रूप में होता है।

इस प्रकार शंका का चौथा समाधान यह हुआ कि मन्यु—दुष्टों पर क्रोध अच्छा गुण है जिसके पाने की यजु १९ ९ में प्रार्थना का गई है और मन्यु शोक (तथा शोक देने वाला क्रोध) त्याज्य दुर्गुण है जिसको सुरा अज्ञान आदि के साथ ऋ० ७ ८६ ६ में पाप का कारण बताया गया है। आशा है शंका कर्ता महोदय का समाधान हो सकेगा और इस लेख से पाठकों को लाभ होगा।

धर्म शिक्षा परीक्षा परिणाम

(आर्य विद्या परिषद् पंजाब द्वारा आयोजित)

१६ जनवरी १९८० को सम्पन्न हुई धर्म शिक्षा की धर्माधिकारी एवं धर्म-ज्ञानी परीक्षाओ मे उत्तीर्ण होने वाले छात्र एव छात्राओ के रोल नम्बर नीचे दिए जा रहे हैं। इस वर्ष धर्माधिकारी परीक्षा का परिणाम ५८ ६९ प्रतिशत तथा धर्म ज्ञानी परीक्षा का परिणाम ५६ ८६ प्रतिशत रहा है। दोनो परीक्षाओ में प्रथम, द्वितीय व तृतीय आने वाले परीक्षार्थियो का विवरण नीचे दिया जा रहा है —

धर्माधिकारी परीक्षा

स्थान	रोल न०	नाम	स्कूल	प्राप्तांक
प्रथम	१५०८	निशा अरोडा सुपुत्री श्री सतनाम अरोडा	विवेकी गर्ल्ज हाई स्कूल जालन्धर	११०
द्वितीय	११५८	गोल्डी सुपुत्री श्री मदनदास	आर्य गर्ल्ज हा० सै स्कूल लुधियाना	१०८
तृतीय	११५१	पुष्पारानी सुपुत्री श्री पूर्णचन्द	एस एन आर्य हाई स्कूल तपा	१०४

धर्म ज्ञानी परीक्षा

स्थान	रोल न०	नाम	स्कूल	प्राप्तांक
प्रथम	२३७२	हीरालाल सुपुत्र श्री बनवारीलाल,	एम डी ए. एस हा० सै स्कूल मोगा	११४
द्वितीय	२०२४	राकेशकुमार सुपुत्र श्री दुर्गादास	बाली आर्य हाई स्कूल बरनाला	११२
तृतीय	२४५७	विजय शर्मा सुपुत्री श्री डी आर शर्मा	विवेकी गर्ल्ज हाई स्कूल जालन्धर	१११

प्रत्येक परीक्षा मे प्रथम, द्वितीय व तृतीय आने वाले परीक्षार्थियो को परिषद् की ओर से नकद पुरस्कार दिया जाएगा।

वीरेन्द्र शर्मा — व्यवस्थापक
रामभद्र आजेद — मन्त्री

धर्माधिकारी परीक्षा मे उत्तीर्ण परीक्षार्थी

१००२ से १०११ तक, १०१३ से १०२२ तक, १०२४, १०२५, १०२७, १०३० से १०३३ तक, १०३५, १०३७ से १०४५ तक, १०४७, १०४८, १०५० से १०५२ तक, १०५४, १०५७, १०५८, १०६०, १०६२ से १०६६ तक १०६८ से १०७१ तक, १०७३ से १०७५ तक, १०७७, १०७८, १०८० से १०८४ तक, १०८७, १०८८, १०९१ से ११०२ तक, ११०५ से ११०८ तक, १११०, ११११, १११४, १११५, १११८ से ११३० तक, ११३३,११३५, ११३७, ११३८, ११४०, ११४३,११४७, ११४९ ११५१, ११५३से ११९५ तक,११९७ से ११९९ तक, १२०१ से १२११ तक, १२१३ से १२५० तक १२५६ से १२५९ तक, १२६१ से १३१९ तक, १३२१ से १३३१ तक, १३३३ से १३७१ तक, १३७३, १३७५ से १३७८ तक, १३८० से १४०६ तक, १४०८ से १४४३ तक, १४४५ से १४६३ तक, १४६५ से १४७५ तक, १४७७ से १४९२ तक, १४९४ से १५२१ तक, १५५४, १५५७, १५६५ १५७४, १५७६ १५९७ से १५९९ तक, १६०१, १६०२, १६०४ १६०६, १६०८, १६०९ १६१५ से १६१८ तक, १६२० १६२४, १६२६ से १६२९ तक, १६३१, १६३२, १६३५, १६४५, १६६३, १६६८, १६७०, १६७७, १६८८, १७०६, १७०९ १७१६, १७१७, १७२३, १७३१, १७३३, १७३४, १७३६, १७४७, १७४९, १७५० १७८८, १७९०, १७९२, १७९५ से १७९७ तक, १८००, १८०३ १८०५, १८०७, १८०८, १८१४, १८१६, १८१९ से १८२१ तक १८९० १८९१, १८९५ १८९९, १९०२, १९१३, १९१५ १९१७, १९२० से १९२४ तक, १९२६ से १९२८ तक, १९३०, १९३१, १९३४ से १९३७ तक, १९३९, १९४१ से १९४३ तक, १९४६ से १९५४ तक, १९९० १९९१, १९९३ से २००० तक, ३५०२, ३५०४ से ३५२१ तक, ३५२३ से ३५२६ तक, ३५२८ से ३५४६ तक, ३५४८ से ३५५१ तक, ३५५३ से ३५५५ तक, ३५५७ से ३५६८ तक ३५६९, ३५७०,

धर्म ज्ञानी परीक्षा में उत्तीर्ण परीक्षार्थी

२००१ से २००८ तक, २०१० से २०२४ तक, २०२६ से २०२८ तक, २०३०, २०३२ से २०३४ तक, २०३७, २०३८, २०४०, २०४१, २०४३ से २०४६ तक, २०४८, २०५०, २०५२, २०५३, २०५५, २०५६, २०५८ से २०७१ तक, २०७३ से २०७५ तक, २०७८ से २०८९ तक, २०९१ से २०९९ तक, २१०१ से २११४ तक, २११७ से २१२१ तक, २१२३ से २१३२ तक, २१३४ से २१५५ तक, २१५७ से २१६२ तक, २१६४ से २१७५ तक, २१७७ से २१९४ तक, २१९६ से २२१७ तक, २२१९ से २२२१ तक, २२२३ से २२६९ त २२७१ से २२७४ तक, २२७६, २२७८, २२८० से २२८५ तक, २२८७, २२९० से २३०२ तक, २३०४ से २३१६ तक, २३१९ से २३२३ तक, २३२६ से २३३९ तक, २३४१ से २४१३ तक, २४१६, २४१८, २४२१ से २४२५ तक, २४२७ से २४२९ तक, २४३१ से २४३३ तक, २४३५, २४३६, २४३८ से २४४० तक, २४४२ से २४५७ तक, २४७७, २४९९, २५००, २५०२, ५, १९, २०, २१, २३, २५, २६, २८, ३७, ३८, ४१, ४३, ४५, ४६, ४८, ५१, ५९, ६०, ६३, ६५, ६८, ७२, ७५, ७७, ७८, ८३, २६७०, ७२, ८६, २७२६, २७, ३२, ४९, ५४, २८०८, ९, १२, १३, १५, १७ से २१ तक, २३ से ३३ तक, ३५, ३७, ४१, ४३, ४४, ४८, ४९, ५३, ५६ से ५९ तक, ६१ से ६७ तक, ६९, ७१ से ७४ तक, ७६, ७८, से ९४ तक, ९६, ९७।

(४ पृष्ठ का शेष)

मेरा नाम भी रहता है। मैं तो श्री वीरेन्द्र जी का आभार मानू गा यदि वे यह बता सकें कि उनके कार्यालय से इस सारी अवधि मे किसी भी बैठक (औपचारिक या अनोपचारिक) की कोई सूचना मुझे भेजी गयी हो। इस व्यवहार के बावजूद स्नातक मण्डल के मन्त्री होने के कारण ही प्राय दिल्ली से जालन्धर टेलीफोन कर उनसे गुरुकुल सम्बन्धी समस्याओ पर बातचीत करता रहा हू।

गुरुकुल के सम्बन्ध मे हमारे सहयोग असहयोग का प्रश्न नही है। हम सदा सभा के साथ रहे है। अब भी हैं। परन्तु हमारे सहयोग का लाभ उठाने का प्रयत्न ही नही किया जाता। हा, सहयोग के स्थान पर हम लोगो पर असहयोग का आरोप अवश्य लगाया जाता है।

अब प्रधान जी ने गुरुकुल और उसकी प्रबन्ध व्यवस्था कुछ समय के लिए स्नातक मण्डल को सौंपने का प्रस्ताव रखा है। बहुत आकर्षक है और भावनाओ से भरा हुआ है। जिन गिने-चुने स्नातक बन्धुओ के सपर्क मे वे हैं, सभव है इस सबध मे उन्होने उन स्नातको से विचार विमिमय किया हो और कोई निश्चित योजना बनाने और वातावरण तैयार करने के लिए यह चर्चा शुरू की हो। व्यक्तिगत रूप मे वे किसी भी ऐसे योग्य अनुभवी स्नातक को गुरुकुल के उत्तरदायी पद पर बिठाने का निर्णय लेते हैं जोकि आर्य समाज और गुरुकुल के प्रति समर्पित हो तो हम उस का स्वागत करेंगे और पूरा सहयोग प्रदान करेंगे। जहा तक मैं समझता हू श्री प्रधान जी का यह विचार कभी नही रहा, न है, कि सस्थागत रूप में स्नातक मण्डल को गुरुकुल सौंप दिया जाए।

गुरुकुल को उसकी वर्तमान स्थिति से उभारने के लिए श्री प्रधान जी से कुछ अन्य निवेदन करने आवश्यक हैं। सर्वप्रथम यह है कि गुरुकुल नाम की संस्था समाप्त हो चुकी है। प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्च किसी भी प्रकार की गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति अब शेष नहीं रही रही। इसकी व्यवस्था करने वाला प्रशासन तक भी समाप्त हो चुका है। आयुर्वेद महाविद्यालय उत्तर प्रदेश सरकार को दान में दिया जा चुका है। गुरुकुल कांगड़ी की सम्पत्ति भी बिखर चुकी है। गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ और गुरुकुल कुरुक्षेत्र दोनो ही गुरुकुल कांगड़ी की संपत्ति थे, परन्तु इन्हें भी गुरुकुल कांगड़ी से अवैधानिक रूप से छीन लिया गया है। गुरुकुल की बहुत सी सपत्ति का तो पता ही नहीं चलता। सुना है गुरुकुल कांगड़ी की मायापुरवाली सम्पत्ति का एक भाग बेच दिया गया है, वह पैसा किसे मिला है यह जानकारी नही। इस प्रकार गुरुकुल एक छिन्न-भिन्न, अस्त व्यस्त और भू-सम्पत्ति का बचा हुआ टुकड़ा मात्र शेष है। उसे चेतना प्रदान करने वाली गुरुकुलीय भावना आदर्श और सिद्धान्त सभी लापता हैं।

और जो शेष है वह है सरकारी अनुदान प्राप्त छात्रहीन तथाकथित विश्वविद्यालय का नाम जिसमें मात्र वेतन की चिन्ता में आन्दोलन में व्यस्त शिक्षक जिनका वस्तुत गुरुकुल शिक्षण पद्धति से तो कोई सबध है ही नहीं, आधुनिक शिक्षण पद्धतियो से भी कोसों दूर है। इस समय गुरुकुल सम्बन्धी वर्तमान समस्याओ मे इस वर्ग का शीर्ष स्थान है।

एक और महत्वपूर्ण समस्या है जोकि सदा से गुरुकुल की आन्तरिक समस्या रही है और वह है गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, यह बाहरी हस्तक्षेप के प्रबल प्रयत्नो के बावजूद अब तक आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के नियन्त्रण मे रही है गुरुकुलीय शासन तन्त्र के अस्त-व्यस्त हो जाने पर भी सभा की देख-रेख मे कार्य कर रही है, यह गुरुकुल और सभा की मात्र अपनी आन्तरिक समस्या होने के कारण इस पर सार्वजनिक टिप्पणी करना अनुपयुक्त होगा परन्तु इसे लेकर गुरुकुल सभा और अधिकारियों पर जो अशोभनीय टिप्पणियां हुई हैं या हो रही है, क्या उनके प्रभाव से बचा जा सकता है? क्या यह समस्या गुरुकुल की वर्तमान समस्या को अधिक उलझा नहीं रही। इसकी आन्तरिक समस्याओ को सुलझाने के लिए गुरुकुल से सम्बद्ध और गुरुकुल प्रेमी लोगो ने अब तक क्या किया है? इन प्रश्नो का महत्व इसलिए है क्योंकि यह हमारी आन्तरिक समस्या हैं और इसे हम बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के और बिना किसी को विवादित किए स्वय सुलझा सकते हैं। यहां की स्थिति हम लोगो को इतनी सताती है कि इसकी चर्चा न चाहते हुए भी करनी पड़ती है।

जब हमारे प्रधान जी इन सभी समस्याओ को सुलझाने के लिए अपना मन बना लेंगे तो उन्हें स्नातको के सहयोग की कमी नही रहेगी। स्नातको को दूर रखकर उनके बारे में शिकायत करना उपयुक्त नहीं है।

'ऋषि का सच्चा स्मारक

ले०—श्री चक्रपाल आर्य मन्त्री आर्य समाज हरथला कालोनी मुरादाबाद

★★★

मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह अपने प्रिय की स्मृति को चिरस्थायी रखने का प्रयत्न करता है। वह उसकी स्मृति में पुस्तक स्मारिका स्तूप मठ आदि बनवाता है। वह ऐसा स्मारक चाहता है जो शानदार भी हो और सरल भी। किसी की स्मृति में स्मारिका या पुस्तक प्रकाशित कर देना अपेक्षाकृत सरल तो है पर स्थूल दृष्टि से उतना शानदार नहीं जितना कि ताजमहल जैसा कोई स्थूल स्मारक। इसी प्रकार ताजमहल आदि बनवा देना शानदार तो हो सकता है पर वैसा सरल नहीं। साधारण मनुष्य मध्य मार्ग खोजता है। परिणाम-स्वरूप भवन मन्दिर विद्यालय आदि की स्थापना की जाती है जो कुछ अंश तक सरल भी होते हैं और स्थूल दृष्टि से कुछ शानदार भी। दयानन्द विद्यालय दयानन्द आश्रम दयानन्द मठ दयानन्द भवन दयानन्द संस्थान आदि के पीछे यही भावना काम करती दिखाई देती है। वस्तुतः स्थूलदर्शी लोगों के संसार के इतिहास में स्थूल वस्तुएं ही स्मारक बनती हैं। किन्तु आर्य समाज के यशस्वी संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती अपनी स्मृति में किसी भी ऐसे स्थूल स्मारक के निर्माण के सर्वथा विरुद्ध थे और सत्य तो यह है कि स्थूल स्मारक वास्तविक स्मारक होते ही नहीं वास्तविक स्मारक तो वही हो सकता है जो स्मरणीय के उद्देश्यों एवं मन्तव्यों के प्रचार में सहायक सिद्ध होने के साथ साथ उसकी स्मृति भी दिला सके यही कारण है कि सूक्ष्म दृष्टि वाले तत्वदर्शी लोग किसी सरल तथा शानदार स्थूल स्मारक की अपेक्षा यह देखते हैं कि वह स्मारक स्मरणीय के उद्देश्यों की पूर्ति भी करता है कि नहीं। साथ ही यह भी कि वह स्मारक स्मरणीय की भावनाओं के अनुकूल भी है कि नहीं। दयानन्द की स्मृति में उनकी मूर्ति स्थापित करना दयानन्द की भावनाओं के सर्वथा विपरीत कृत्य होगा। इसी प्रकार उनकी स्मृति में कोई समाधि अथवा स्तूप आदि बनाना भी उनकी भावनाओं के विरुद्ध ही है। महर्षि ने उदयपुर में कविराज श्यामलदास से स्पष्ट कहा था कि मेरे मरने के पश्चात मेरी अस्थियों को किसी खेत में डाल देना कोई समाधि या कोई चिन्ह कदापि न बनाना"। पंडित इन्द्रजी का यह कथन यथार्थ है कि यदि आर्य जनता ऋषि की यादगार में कोई स्तूप या मकबरा बना देती तो आज हिन्दू स्त्रियां उस पर फूल बताशे चढ़ाकर अपने जीवन को सफल मान रही होती। वस्तुतः ईंट पत्थर के स्मारक वास्तविक स्मारक नहीं हो सकते। स्मरणीय के उद्देश्यों और मन्तव्यों का प्रचारक ही उसका सच्चा स्मारक होता है। पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी अपने व्याख्यानों में कहा करते थे कि ईंट पत्थर पर किसी ऋषि का नाम खुदवा देने से ऋषि का स्मारक नहीं बनता प्रत्युत यदि ऋषि का स्मारक स्थापित करना चाहते हो तो उन सिद्धान्तों का प्रचार करके दिखाओ कि जिन सिद्धान्तों का प्रचार स्वयं ऋषि करते रहे हैं। स्वामी दयानन्द का स्मारक यही है कि वेद के सिद्धान्तों का संसार में प्रचार हो जावे।

आर्य समाज ही महर्षि का सच्चा स्मारक है

उपर्युक्त कसौटी पर कसने पर हम देखते हैं कि आर्य समाज ही महर्षि दयानन्द का सच्चा स्मारक सिद्ध होता है। आर्य समाज पर चूंकि महर्षि के सिद्धान्तों के प्रचार का गुरु उत्तरदायित्व है एवं गत एक शताब्दी से भी अधिक समय से वह महर्षि के सिद्धान्तों का सफलता पूर्वक प्रचार कर भी रहा है अतः आर्य समाज ही महर्षि दयानन्द का सच्चा स्मारक कहा जा सकता है। पं० इन्द्र जी के अनुसार आर्य समाज महर्षि का स्मारक ही नहीं ऋषि का प्रतिनिधि भी है। ग्रन्थों की सिद्धान्तों की और वस्तुतः वेदों की रक्षा का बोझ आर्यसमाज पर है। जो वस्तु किसी के नाम का स्मरण करा सके उसके उद्देश्यों का प्रचार भी कर सके वही उसका वास्तविक स्मारक समझी जाती है। इन अर्थों में आर्य समाज से बढ़कर दूसरा कोई भी महर्षि का वास्तविक स्मारक नहीं हो सकता। आर्य समाज महर्षि दयानन्द का ऐसा स्मारक है कि जिसकी नींव का पत्थर भी स्वयं महर्षि के ही अपने हाथों से रखा गया था। यह ऐसा शुभ स्मारक है कि जिसके साथ महर्षि का नाम न जुड़ा होने पर भी उसके नाम के आते ही उसके संस्थापक का भी स्मरण हो जाता है। पंडित लेखराम का निम्न कथन सर्वथा उचित ही है कि मुसलमान ईसाई नास्तिक जैसे पौराणिक आदि किसी भी पुरुष के सामने आप आर्य समाज का नाम कह दें वह सुनते ही आपको दयानन्द का नाम सुना देगा। जब आर्य समाज का नाम आते ही लोग दयानन्द का नाम ले लेते हैं तो आर्य समाज से बढ़कर है और महर्षि का स्मारक क्या हो सकता है? अमरीका सरीखे दूर देशों में बैठा महान विद्वान डविस महर्षि को आर्य समाज से पृथक नहीं कर सका तो मैक्समूलर जैसा विद्वान भी आर्य समाज के साथ महर्षि का अटूट सम्बन्ध मानता है। अतः आर्य समाज ही महर्षि दयानन्द का सच्चा स्मारक है महर्षि दयानन्द स्वयं भी आर्य समाज को ही अपना स्मारक मानते हैं उनका कथन है—मेरे मित्र सभी आर्य समाजिक हैं वे ही मेरे विश्वास और भरोसे के भव्य भवन हैं उन्हीं के पुरुषार्थ पर मेरे कार्यों की पूर्ति और मनोरथों की सफलता अवलम्बित है और अन्त में हम यही कहेंगे—

ऋषि की निशानी है आर्य समाज
बड़ी ही सुहानी है आर्य समाज।

—

तत्वज्ञानी राजा जनक

ले० लेखराज मेहता ई ४३ मल्कागञ्ज दिल्ली

हमारे पावन देश और ऋषिभूमि आर्यावर्त में बहुत से ज्ञानी ध्यानी धर्मात्मा और तत्वदर्शी राजा महाराजा हो गये हैं। इन के राज्य में प्रजा सुखी थी धन धान्य का बाहुल्य था। दूध दही शहद और मधु की प्रचुरता थी। जहां यह राजा प्रजा वत्सल और ज्ञानी थे वहां वे प्रभु भक्त परले दर्जे के थे उस समय मिथिला देश में राजा जनक न्याय पूर्वक शासन करते हुए प्रभु चिन्तन की खोज में रात दिन डूबे रहते थे उन्हें अपनी सुध बुध न रहती थी उनके राजदरबार में धर्म और ज्ञान की चर्चा को सुनकर बड़े बड़े विद्वान और वेदज्ञ पण्डित भी उनसे ज्ञान सीखने के लिए आते रहते हैं इसी प्रकार से एक बार तत्वज्ञाता राजा जनक ने एक ज्ञानयज्ञ करना प्रारम्भ किया। इस ज्ञान यज्ञ को सफल बनाने के लिए और आध्यात्मिक चर्चा करने के लिए राजा जनक के यहां बहुत से विद्वान् और प्रभु भक्त एकत्र हुए राजा जनक ने यह जानने के लिए कि इन में अधिक विद्वान कौन है उन्हें इनाम देने के लिए एक हजार दुधारू गौएं एकत्र की उनके सींगो को सोने से मढ़ दिया गया तत्पश्चात विदेह राजा जनक सभा में उपस्थित हुए ऋषि मुनियों और विद्वानों से कहा हे महाराज तुम्हारे मध्य में जो ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मवर्णी और आध्यात्मिकता का सबसे अधिक जानकार हो वह इन गायों को हांक कर ले जाए। जनक के वचनों को सुनकर विद्वानों ब्राह्मणों की सभा में सन्नाटा छा गया किसी ने भी दर्प भरी चुनौती को स्वीकार नहीं किया केवल महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य सोमश्रवा से कहा—अरे सोमश्रवा देखता क्या हो इन गायों को हांक कर अपने आश्रम की ओर ले चलो याज्ञवल्क्य की यह दर्प भरी बात सुनकर सबके सब ब्राह्मण एक स्वर से बोल उठे। हे याज्ञवल्क्य क्या तू हम सब से अधिक ब्रह्म का जानने वाला तत्वज्ञानी ऋषि है। राजा जनक के दरबार में अश्वल नामक ब्राह्मण होता ने महर्षि याज्ञवल्क्य से निवेदन किया कि क्या तुम ब्रह्म को हम सब से अधिक जानते हो? याज्ञवल्क्य ने नम्रता पूर्वक उन्हें उत्तर दिया कि समग्र ब्रह्म को भला कौन जान सकता है हमें तो गऊएं चाहिएं। इसके पश्चात याज्ञवल्क्य पर प्रश्नों की बौछार लग गई याज्ञवल्क्य ने भी उन्हें उचित उत्तर दिए अन्त में गार्गी नामक एक स्त्री विदुषी ने कहा याज्ञवल्क्य मैं आपसे दो प्रश्न पूछती हूं उनका समाधान करने पर हमें पता लग जाएगा कि निःसन्देह यहां पर ऐसा कोई भी ब्राह्मण नहीं जो तुम्हें जीत सकेगा। पहला प्रश्न तो यह है कि जो इस गगन के पार और धरती के नीचे रहता है जिसके बीच में आकाश और पृथ्वी लटके रहते हैं जो त्रिकालज्ञ और सूक्ष्मदर्शी है वह किस वस्तु में ओत प्रोत है महर्षि याज्ञवल्क्य बोले—आकाश में हम से बाहर यह सारा जगत जो वर्तमान है वह आकाश में ओत प्रोत है। गार्गी को अब अपने प्रथम प्रश्न का ठीक २ और यथार्थ उत्तर मिल गया तत्पश्चात गार्गी ने महर्षि याज्ञवल्क्य को नमस्कार करते हुए कहा कि अच्छा अब मेरे दूसरे प्रश्न का उत्तर दें आप यह बतलाने की कृपा करें कि यह आकाश भला किस में ओत प्रोत है महर्षि ने मुस्कराते हुए समीचीन उत्तर दिया कि अक्षर में अर्थात अक्षर का भावार्थ यह है कि ऐसा सच्चिदानन्द परब्रह्म परमेश्वर में है उसका कभी नाश नहीं होता और इस अविनाशी अक्षर पर ब्रह्म में आकाश ओत प्रोत है। इस प्रकार अविनाशी में ही यह सूर्य चांद तारे अपने अपने स्थानों में स्थिर रहते हुए उसकी आज्ञा से द्युलोक और पृथ्वी दोनों बंधे रहते हैं जो उसे नहीं जानता वह अयोग्य और अज्ञानी है। सारे देवता उसी में ही समावेश करते हैं याज्ञवल्क्य के उत्तरों को सुनकर गार्गी गदगद हो गई। उसने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया कि वास्तव में याज्ञवल्क्य के समान इस सभा में अन्य कोई विद्वान नहीं है। राजा जनक ने भी उठकर महर्षि याज्ञवल्क्य का सादर अभिनन्दन किया और उन्हें सम्पूर्ण गोधन समर्पित किया।

—

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा प[illegible]

सम्पादक-वीरेन्द्र एम ए प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब, गुरुदत्त भवन, कृष्णपुरा चौक जालन्धर, दूरभाष—७४२५०

वार्षिक शुल्क १५) वर्ष १३, अक ३६ ६ आश्विन सम्वत् २०३७, तदनुसार २१ सितम्बर १९८०, दयानन्दाब्द १५५

इस खेल के कुशल खिलाड़ी बनें

अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवा देवयते यज ।
होता मन्द्रो विराजस्यति सिध
साम० ॥७॥ १००

ऋषि —विश्वामित्र=सब का मित्र।

(अग्ने) हे अग्नि देव (यजिष्ठ) तुम सबसे बड यजमान हो। मुझ (देवयते) खेलना चाहने वाले के लिए तुम (अध्वरे) क्रीडा यज्ञ मे (देवान) खिलाडियो को (यज) एकत्रित करो तुम (सिध अति) हिंसको की पहुच से बाहर (होता) यज्ञ के लिए पुकारते हो। (मन्द्रो) मस्ती ला लाकर (विराजसि) खूब सुशोभित होते हो।

प्रभो हम देव बनना चाहते हैं। हमारी इच्छा अब जीवन को खेल बना देने की है। ससार मे जड चेतन सभी प्रसन्न प्रतीत होते हैं। बादल खुशी से छलाग मार रहे है। हवा उछल रही है दौड रही है। झरने मस्त हो होकर भाग रहे हैं। नदिया कल्लोल करती हैं। वृक्ष झूम रहे है। पक्षी चहचहा रहे हैं फूल प्रफुल्ल बदन हैं। पत्ते नाच रहे हैं और भी और घास तक लहलहा रही है— लहलहा रही है और गा रही है। ससार सचमुच क्रीडागार है। जीने का मजा खेल मे है।

इस खेल का ही दूसरा नाम यज्ञ है। खेल मे कोई किसी का विरोधी नही होता। यज्ञ होते है पर वैर विरोध के बिना। चोटें लगती हैं शरीर घायल हो जाते हैं पर दिल पर जखम नही आता। खेल अध्वर है। वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति। खेल मे चोट को नही उसके लगाने की विधि को देखते हैं। नियमानुसार लगाई हुई चोट ही नही मानी जाती। चोट खाकर स्वय चोट खाने वाला चोट लगाने वाले के गले मिल रहा है गले की शोभा चोट न समझी जाने वाली इन चोटो ही से है।

प्रभो क्या हमारा सारा जीवन इस प्रकार का एक लम्बा खेल नही बन सकता? हमे चोटो ने कभी इतना दुखी नही किया जितना उन्हे चोट समझने ने। प्रहार में प्रहार बुद्धि ही न हो तो वह प्रहार नही रहता। जो प्रहार करे उसके लिए भी और जिस पर प्रहार किया जाए उसके लिए भी।

यही देव बनि है अग्नि देव तुम देवताओ के अगुआ हो। तुम्हारे खिलाडी पन के तो कहने ही क्या? घर फूक तमाशा देख—यह खेल खेलना तुम्ही को आता है। सर्वस्व स्वाहा कर खिल खिलाना—यह लीला कोई तुम्ही से सीखे तुम यजिष्ठ हो—सबसे बड खिलाडी। तो फिर अपने यजमान को भी तो खेलना सिखा दो। अकेले मे व्यायाम तो किया जा सकता है पर खेल नही। खेल के लिए और भी खिलाडी चाहिए। यज्ञ अकेले करने की वस्तु नही। यजमानो का समूह इकट्ठा कर दो। जब तक और यजमान नही बनते देवो को भी यजमान बना दो। मरी आहुति की सुगन्ध हवा से पानी से चाद से सूय मे मिला दो। विश्व प्रा की वेदि पर मैं इनके साथ मिल कर आहुति दू।

—स्व० चमूपति एम ए, (जीवनज्योति से)



THE ARYA MARYADA JULLUNDUR

सरिता समीक्षा—

वेद में नारी

ले० श्री प्रो० उमाकान्त उपाध्याय एम० ए०

(गतांक से आगे)

स्वामी दयानन्द तो ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद के व्याख्या ग्रन्थ मानते हैं है भी उनमें व्याख्या। किन्तु पौराणिक मण्डल तो ब्राह्मण ग्रन्थ को भी वेद मानते हैं मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनाम धेयम फिर महीधर ने ब्राह्मण ग्रन्थ का विपरीत अर्थ क्यों किया? एक और बात विचारणीय है। अश्व सभोग वाला महीधर का प्रकरण यज्ञ से सम्बन्धित है। यज्ञ एवं धर्म कर्म काण्डों की व्यवस्था करने वाले पूर्व ग्रन्थ हैं। उनमें भी इस तरह की कोई बात मिलती है क्या? पता चलता है कि महीधर का यह प्रकरण वेद विरुद्ध एवं अन्य धर्म ग्रन्थों के भी विरुद्ध है। यह महीधर की मनमानी कल्पना है। महीधर तान्त्रिक था अत उसके लिए इस प्रकार का भ्रष्ट प्रकरण सम्भव हुआ वैदिक वाङ्मय के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ विद्वान श्री प० भगवद्दत्त जी के अनुसार महीधर वि० सं० १६४५ के आस पास का था अत महीधर अधिक पुराना भाष्यकार भी नहीं है प० भगवद्दत्त जी ने लिखा है— महीधर काशी में रहता था। उसी ने मन्त्र महोदधि नामक एक तन्त्र और उसकी टीका लिखी है। इससे प्रतीत होता है कि वह तान्त्रिक था।

वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग ० श्री सोमाजी यदि तान्त्रिकों वाममार्गियों और अघोरियों की मान्यताओं को हम लोगों के सिर मढ़ कर वैदिक मान्यता बताते हैं और वेदों को धिक्कारते हैं तो इससे बड़ा बहुत अन्याय और क्या हो सकता है?

जो स्थिति गणानां त्वा गणपतिं हवामहे इस प्रथम मन्त्र की है वही स्थिति दूसरे और तीसरे मन्त्र की भी है। दूसरा मन्त्र है—

ताउभौ चतुर: पद सम्प्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथाम वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु। यजु २३ २

इस मन्त्र में राजा प्रजा सम्बन्ध का वर्णन है। इस मन्त्र के विषय अर्थात देवता राजा प्रजा हैं राजा प्रजे देवते। तान्त्रिक वाममार्गी महीधर ने जो अर्थ किया है। वह तो श्री सोमा जी ने उजागर ही किया है। अब स्वामी दयानन्द कृत अर्थ भी देख लेना चाहिए

हे राजा प्रजा जनो! तुम (उभौ) दोनों (तौ) प्रजा राजजन जैसे (स्वर्गे) सुख से भरे हुए (लोके) देखने योग्य व्यवहार वा पदार्थ में (चतुर) चारों धर्म अर्थ काम और मोक्ष (पद) जो कि पाने योग्य हैं उन को (प्रोर्णुवाथाम) प्राप्त होओ वैसे इनका हम अध्यापक और उपदेशक दोनों (सम्प्रसारयाव) विस्तार कर जैसे (रेतोधा) आलिंगन अर्थात दूसरे से मिलने की धारणा करने और (वृषा) दुष्टों के साम र्थ्य बांधने अर्थात उनकी शक्ति को रोकने हारा (वाजी) विशेषज्ञान वान राजा प्रजाजनों में (रेत) अपने पराक्रम को स्थापन कर। वैसे प्रजाजन (दधातु) स्थापन कर।

स्वामी दयानन्द के वेद भाष्य से यही स्थिति तीसरे मन्त्र की भी है। मन्त्र निम्न प्रकार से है—

उत्सक्थ्या अव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन्।

य स्त्रीणां जीव भोजन॥

यजु २३ २१

इस मन्त्र का विषय अर्थात देवता मायावीश है। स्वामी दयानन्द जी का अर्थ देखिए—

हे वृषन्) बलिष्ठमन (य) जो (स्त्रीणाम) स्त्रियों के बीच(जीव भोजन) प्राणियों का मास खाने वाला व्यभिचारी पुरुष वा पुरुषों के बीच उक्त प्रकार की व्यभिचारिणी स्त्री वर्तमान हो उस पुरुष और स्त्री को बांधकर (उत्सक्थ्या) ऊपर को और नीचे को गिर कर ताडना करके और अपनी प्रजा के मध्य (गुदम) उत्तम सुख को (धेहि) धारण करो और धर्मज अपने प्रकट न्याय को (चारय) भली भांति चलाओ।

—स्वामी दयानन्द के वेद भाष्य से

वस्तुत इन में जहां तक वेद मन्त्रों की बात है इनमें न अश्व सभोग की बात है न ही नारी के अपमान की। महीधर के अपने विचार थे और उसने उन्हें वेदों में सिद्ध करने की चेष्टा की।

महीधर ही क्यों? आज के भी कई लोग वेदों से अपने सम्प्रदाय पोषण की बात खोजते हैं। जब से सब लोग निर्विवाद रूप से स्वीकार करने लगे कि वेद संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं तब से अनेक साम्प्र दायिक लोग अपने अपने मत मतान्तर की मान्यताएं अपने महापुरुषों के नाम और इतिहास वेदों में से खोज निकालने की चेष्टा कर रहे हैं। मुसलमानों ने अल्लो पनिषद लिखी तो ईसाईयों ने खीष्टो पनिषद् लिखा जैनी वेदों में अपने तीर्थ करों के नाम खोजते हैं। पौराणिक लोग राम सीता राधा कृष्ण और अब तो एक भाष्यकार गोपी लीला भी वेदों में खोजने लगे हैं। पूर्वापर प्रकरण सम्बन्ध आदि का विचार किए बिना यह सब प्रयास हो रहे हैं। विद्या और इतिहास की दृष्टि से यह बौद्धिक छलना के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? महीधर हो या और अन्य कोई इस प्रकार का प्रयास बौद्धिक छल या अन्याय के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

बहुपति बहुपत्नी—

वैदिक संस्कृति में एक पति और एक पत्नी का ही आदर्श माना गया है। इसके विपरीत विलासी लोग यदि कई स्त्रियों से विवाह कर लेते थे या कभी किसी स्त्री ने अनेक पति कर लिए तो यह न आदर्श ही हैं और वेदों द्वारा स्वीकृत ही है। श्री सोमा जी ने ऋग्वेद १० १४५ का प्रतीक देकर अनेक सौतों की बात लिखी है। यह भी कोई प्रतीक की भूल जान पड़ती है। १० १४५ में १२ मन्त्र हैं और उनमें इस तरह की कोई बात नहीं है।

यह ध्यान रखने की बात है कि संस्कृत में सौत के लिए सपत्नी शब्द का प्रयोग होता है। शायद सौत उसी का अपभ्रंश रूप है भी। वेद में कई जगह सपत्नी और सपत्न शब्द आए हैं। सपत्न और सपत्नी का अर्थ शत्रु भी होता है। वेद के शब्दों का जितना यौगिक अर्थ लिया जाएगा उतना अधिक अच्छा रहेगा रूढ अर्थ तो कालान्तर में अपना स्वरूप बना लेते है।

अथर्व वेद ३ १८ में सपत्नी का प्रसंग है। इसमें ६ मन्त्र हैं। ये मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद १० १४५ में भी मिलते हैं इस सूक्त का देवता विषय वस्तु उपनिषत्सपत्नी बाधनम् ऐसा लिखा है अथर्व वेद के प्रसिद्ध यशस्वी भाष्यकार श्री क्षेमकरण दास त्रिवेदी जी की इस सूक्त पर टिप्पणी विचारणीय है। वे लिखते हैं यह सूक्त कुछ भेद से ऋग्वेद १० १४५ १ ६ में है। अजमेर वैदिक यन्त्रालय की ऋग्वेद संहिता मोहमयी (मुम्बई) की शाकल ऋक संहिता और ऋग्वेदीय सायण भाष्य में उपनिषत्सपत्नी बाधनम् इस सूक्त का देवता लिखा है इससे इस सूक्त में ब्रह्म विद्या का ही उपदेश है।

अथर्व वेद में बहुत प्रकार की चिकित्साओं का विस्तार से वर्णन मिलता है। औषध परक अर्थ से इस सूक्त में यह वर्णन है कि पत्नी अपने पति को प्राप्त किये रखने में इन औषधियों का प्रयोग करे। ठण्डा पति या ठण्डी पत्नी यह शारीरिक रोग का ही कारण भी है और फल भी है। उसे दूर करने का यहां प्रकरण है। कितना सुस्पष्ट वर्णन है—

इमां खनाम्योषधिं वीरुधां बलवत्तमाम्

इस बलकारी औषधि वनस्पति को खोदता हूं।

श्री सोमा जी ने १० १२९ में इन्द्र की कई पत्नियों की चर्चा का वर्णन किया है। इस सूक्त का देवता शची पौलोमी है। घर घर की यह पत्नी का वर्णन है। हर घर की यह पत्नी रोम रोम से पुलकित अपने दायित्व के प्रति सजग रहे यह यहां का प्रकरण है। इस सम्बन्ध में वेदों के अद्भुत विद्वान स्वर्गीय श्री स्वामी समर्पणानन्द जी का नया प्रकाशित ऋग्वेद मण्डल मणि सूत्र ग्रन्थ अच्छा प्रकाश डालता है।

द्रष्टव्य पृ० ४१२।४१३

श्री सोमा जी ने मूल निवासियों की पत्नियों को छीनने की बात लिखी है। प्रथम तो आर्य ही इस देश के मूल निवासी हैं। फिर पत्नी छीनने की कल्पना तो कुछ ऐसी ही प्रमाणहीन लगी— मुख मस्तीति वक्तव्य दशहस्ता हरीतकी — मुख आपके पास है आप कह सकते हैं कि हरड़ दस हाथ लम्बी होती है।

एक पत्नी के बहुत पति होते थे इस को प्रमाणित करने के लिए श्री सोमाजी ने अथर्व वेद १४ १ ६१ का एक मन्त्र पूरा नहीं आधा दिया है जिसमें पतिभ्य बहु वचन पाठ है। बस इतने से इन्होंने निष्कर्ष निकाल लिया कि एक पत्नी के बहुत पति होते थे। इसी प्रकार १४ २ १४ में नर वपत बीजम का लेकर बहुपति की बात लिख दी। नर शब्द बहुवचन है तो एक वचन भी है। १४ १ ६१ का मन्त्र ऋग्वेद १० ८५ २० में आया है महर्षि दयानन्द जी की संस्कार विधि में भी आया है निरुक्त वेद कोष १२ ८ में भी व्याख्यान है। सब जगह पत्ये एक वचन पाठ है। अत यहां पतिभ्य आदरार्थ बहुवचन मानने से दोष नहीं रहता।

इस मन्त्र का निरुक्त में सूर्य और उसकी उषा में किरणों का वर्णन है सूर्या और सरी लौकिक व्याकरण में भी दो शब्द हैं सूर्या देव पत्नी है सरी मानुष पत्नी है यहां विज्ञान का वर्णन है और गृहस्थाश्रम में विनियोग किया गया है। वस्तुत मन्त्र में विज्ञान का वर्णन है। स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक के निरुक्त सम्मत पृ० ८३० पर अर्थ दिया हुआ है हे सूर्य! (Infra Red Rays) इस प्रकार यह मन्त्र में सूर्य की किरण का वैज्ञानिक वर्णन है।

(क्रमश)

सम्पादकीय—

अब हस्ताक्षर अभियान प्रारम्भ करो

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने इस प्रदेश में हिन्दी को उचित और सम्मान पूर्वक स्थान दिलाने के लिए एक नया संघर्ष प्रारम्भ करने का फैसला किया है। इसका प्रारम्भ १४ सितम्बर को सारे पंजाब में हिन्दी दिवस मनाकर किया गया है। पंजाब की सब आर्य समाजों ने उस दिन अपने २ सत्संग के पश्चात हिन्दी दिवस मनाया और पंजाब की जनता को वास्तविक स्थिति से अवगत कराया। इसके पश्चात आर्य प्रतिनिधि सभा का एक शिष्ट मण्डल अपने स थ हिन्दी प्र मी सनातन धर्मियों जैनियों निरंकारियों नामधारियों और दूसरे धर्मियों को लेकर पंजाब के मुख्यमन्त्री से मिलेगा। उन्हें एक ज्ञापन दिया जाएगा जिसमें हम अपनी मांगें पंजाब सरकार के सामने रखेंगे। हम नहीं कह सकते कि वर्तमान सरकार हमारी मांगों को स्वीकार करेगी या नहीं। आशा तो है मान कर लेगी परन्तु हमें प्र येक प्रकार की स्थिति के लिए तैयार रहना चाहिए। इसलिए अगला पग जो हमने उठाना है उसकी भी हम अभी से तैयारी शुरू कर रहे हैं भारत के विधान की धारा ३४७ के अनुसार जब एक प्रदेश में अल्प-संख्यकों की भाषा को उचित स्थान न दिया जाए और उस प्रदेश के अल्प-संख्यक राष्ट्रपति से यह प्रार्थना कर कि वह उनके साथ न्याय कर तो राष्ट्रपति प्रदेश की सरकार को यह आदेश दे सकते हैं कि वह अल्प संख्यकों को अपनी भाषा को स्वतन्त्र रूप में प्रयोग करने द कोई भी प्रदेश सरकार र ष्ट्रपति के इस आदेश की अवहेलना न ी कर सकती। परन्तु राष्ट्रपति तक पहुंचना तभी उचित होगा जब उस ज्ञ पन पर जो हिन्दी के पक्ष में दिया जाए पंजाब के लाखों हिन्दी प्र मियों के हस्ताक्षर हों। इसलिए आर्य प्रतिनिधि सभा न उस ज्ञापन की संक्षिप्त रूप रेखा के आधार पर वह पत्र सब आर्य समाजों को भेज दिए हैं जिन पर कि हस्ताक्षर कराये जाने हैं इस समय तक हमें जो सूचना मिली है उसके अनुसार सब स्थ नों पर हस्ताक्षर कराए जा रहे हैं परन्तु कुछ व्यक्तियों को इस विषय में यह भ्रान्ति है कि हस्त क्षरों के लिए जो पत्र सभा कार्यालय से भेजे गए हैं केवल उन्हीं पर हस्ताक्षर होने हैं। एक पत्र पर तो अधिक से अधिक तीस पैंतीस हस्ताक्षर हो जाएंगे उससे तो काम न चलेगा हमने तो लाखों की संख्या में हस्ताक्षर कराने हैं। इसलिए पंजाब की सब आर्य समाजों के अधिकारियों से मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि उन्हें अधिक से अधिक हस्ताक्षर कराने चाहिए। सादे कागजों पर हस्ताक्षर नहीं कराने चाहिए। सभा ने जो पत्र भेजे हैं उन्हीं पर हस्ताक्षर होने चाहिए। जिन के पास पहले पत्र समाप्त हो गए हों वह सभा के कार्यालय से और मंगवा सकते हैं। जो आर्य समाज इस समय तक कुछ हस्ताक्षर करवा चुके हैं उन्हें वह सभा के कार्यालय में भेज देने चाहिए त कि हम कुछ अनुमान लगा सकें कि कितने हस्ताक्षर हो गए हैं।

आगे चलकर स्थिति क्या रूप लेगी है इसके विषय में अभी कुछ कहना कठिन है पंजाब सरकार हमारी मांग स्वीकार कर ले तो हमें राष्ट्रपति के पास जाने की आवश्यकता नहीं रहेगी और यदि राष्ट्रपति भी किसी कारण से हमारी मांग स्वीकार नहीं करते तो फिर हमें अपना अगला संघर्ष शुरू करना पड़ेगा। एक बात बिल्कुल स्पष्ट है कि इस बार हम कुछ न कुछ तो करेंगे। हम जानते हैं कि इस समय देश की स्थिति सन्तोषजनक नहीं है। सरकार के सामने कई समस्याएं हैं हम उसके लिए कोई नई समस्या खड़ी करना नहीं चाहते। इसीलिए सोच समझ कर अपने पग उठा रहे हैं सरकार के सामने अपना पक्ष रखने का हमें पूरा अधिकार है। कई राजनैतिक पार्टियां सरकार को धमकियां देती रहती हैं। हम कोई धमकी देना नहीं चाहते। हम तो केवल प्रार्थना ही कर रहे हैं या तो सरकार हमारी स न्तुष्टि करा दे कि हमारी मांग संविधान के अनुसार नहीं है। परन्तु जो कुछ भी हम कर रहे ै यदि वह सब हमारे संवैधानिक अधिकारों के अनुकूल हैं तो फिर कोई कारण नहीं कि सरकार हमारी बात न सुने। इसलिए हम कोई भी ऐसा पग अभी उठाना नहीं चाहते जिसके द्वारा सरकार के लिए कोई नई कठिनाई या उलझन पैदा हो। इसीलिए हमने पहले हिन्दी दिवस मनाया है उसके पश्चात अपना शिष्ट मण्डल पंजाब के मुख्यमन्त्री के पास ले जाएंगे। वहां भी कुछ न बना तो राष्ट्रपति के पास जाएंगे। वहां भी अगर सुनवाई न हुई तो फिर सोचेंगे कि हमने क्या करना है। इसलिए मैं पंजाब के आर्य भाई और बहिनों से केवल यही निवेदन करना चाहता हूं कि उन्हें अब सारी शक्ति हस्ताक्षर अभियान को सफल बना देने में लगा देनी चाहिए। हमारा निशाना पांच दस हजार का नहीं अपितु लाखों हस्ताक्षरों का है यह उसी स्थिति में सम्भव हो सकता ै यदि पंज ब का एक एक आ य समाजी भ ई हो या बहिन युवक हो या वद्ध सब इस अभियान में लग जाए हमें यह भी न भूलना चाहिए कि इसके द्वारा हमारा जनता से सम्पर्क बनेगा और पंजाब सरकार को यह पता चलेगा कि इस प्रदेश में अपने अधिकारों की रक्षा के लिए यदि कोई संस्था संघर्ष कर सकती है तो वह केवल आर्य समाज है इस अभियान को हम चाहे किसी दृष्टि से देखें इससे हमें लाभ ही होगा। इसलिए इसे सफल बनाना हम सब का कर्तव्य हो जाता है।

—वीरेन्द्र

कुछ आवश्यक निर्णय

अन्तरंग सभा द्वारा नियत की गई तीन उपसमितियों की ३ सितम्बर को सभा कार्यालय जालन्धर में बैठकें हुईं सभा के प्राय अधिकारी विशेष रूप में उपस्थित हुए निम्नलिखित निर्णय किए गये।

महिला समिति—१ पंजाब भर में सब समाजों में स्त्री समाजों की स्थापना की जाए और सब समाजों को प्रार्थना की जाए कि वे अपनी स्त्री समाजों के अधिकारी गण के नाम सभा कार्यालय में अंकित कराएं

२ समाजों के उत्सवों पर अनिवार्य स्त्री समाजों के उत्सव रखे जाएं

३ सभी सम जों को पारिवारिक स त्सङ्ग लगाने की प्रेरणा की ज ए।

४ कीर्तन भजनों और यज्ञों का अधिक से अधिक प्रचार किया जाए।

५ सभा एक छोटी सी कीर्तन भजनावली प्रकाशित करायेगी। करतारपुर में ११ अक्तूबर को १२ से चार बजे मध्याह्न न एक प्रान्तीय महिला सम्मेलन बुलाने का निश्चय किया गया श्रीमती शान्ति नन्द प्रधाना महिला समिति की ओर से सब स्त्री समाजों को इस सम्मेलन के लिए आमन्त्रित करेंगी।

आर्य युवक सभा—आर्य युवक सभा के सदस्यों ने प्रत्येक जिला के लिए एक एक संयोजक नियत किया और उन्हें अपने अपने जिला के युवकों की सूची शीघ्र तैयार करने की प्रार्थना की गई यदि यह सूचि बन गई तो करतारपुर के मेले के अवसर पर एक प्रान्तीय युवक सम्मेलन बुलाने की भी योजना है।

जिला सभाओं के संयोजकों की बैठक में यह निश्चय किया गया कि २८ सितम्बर तक सब जिलों में संयोजक अब चुनाव कराने का प्रबन्ध करें प्रत्येक जिला की समाजों के नियत सदस्य जिला सभाओं के अधिकारियों का चुनाव करेंगे। सभा द्वारा मनोनीत संयोजक सभा के साथ उनका ताल मेल बनाये रखेंगे और उन्हें सभा को अधिक से अधिक सहयोग देंगे और उसके उद्देश्य के अनुसार अपने अपने क्षेत्र में काम करने की प्रेरणा करेंगे

जिला सभाओं के अधिकारियों के काम की रिपोर्ट भिजवाना भी उनका काम होगा। जिला सभाओं का अन्तरंग द्वारा संशोधित विधान संयोजकों को भेज दिया गया है ताकि वे उसके अनुसार कार्यवाही करें

आशा करनी चाहिए कि इस प्रकार जिला सभाएं अच्छा काम कर सकेंगी।

आर्य मर्यादा का बलिदान अंक—सभा ने निश्चय किया है कि इस वर्ष श्रद्धानन्द बलिदान दिवस के अवसर पर आर्य मर्यादा का बलिदान अंक निकाला जाए जिस में आर्य समाज के अब तक के बलिदानियों का जीवन परिचय प्रकाशित किया जाए। इस अंक के मैगजीन साइज के हम कम से कम दो सौ पृष्ठ रखना चाहते हैं और उन में आर्य परिवारों के प्रियजनों तथा सम्बन्धियों के स्मृति विज्ञापन भी विशेष वेद मन्त्रों के साथ प्रकाशित करना चाहते हैं आर्य समाजों तथा आर्य संस्थाओं के अधिकारियों और संचालकों से प्रार्थना है कि वे इस सम्बन्ध में पूर्ण सहयोग दें।

उत्सवों के विशेष प्रबन्ध—प्राय देखा जाता है कि बड़ी बड़ी समाजें अपने उत्सवों का बाहर से ही प्रबन्ध कर लेती हैं इस बार सभा ने निश्चय किया है कि अक्तूबर से दिसम्बर तक होने वाले सभा से सम्बन्धित सभी समाजों के उत्सवों का सब प्रकार का प्रबन्ध सभा द्वारा किया जावे। अतः ऐसी सब समाजों के अधिकारी गण से जो इन तीन महीनों में उत्सव करना चाहते हैं यह प्रार्थना है कि वह अपने उत्सव की तिथियां यहां कार्यालय को अंकित करवा दें वहां उन विद्वानों और नेताओं की सूची भी सभा कार्यालय को लिख भेजें जिन को वह अपने उत्सवों पर मंगवाना चाहते हैं।

रामचन्द्र जावेद
सभा मन्त्री

सन्ध्या कथा—

मन और आत्मा को पाप से विमुख रखें !

ले —श्री सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम ए एल टी १७५ आफरा बाजार गोरखपुर

ओ३म ऋत च सत्य चाभिद्धात्तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजायत तत समुद्रो अर्णव ॥१॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ।
अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥
सूर्याचन्द्र मसौ धाता यथापूर्व मकल्पयत् ।
दिव च पृथिवी चान्तरिक्षमथो स्व ॥३॥

(ऋत) ऋत अर्थात प्राकृतिक नियम या प्राकृतिक जगत तथा (सत्य) सत्य अर्थात ज्ञान ये दोनो (अभीद्धात्) (अभीद्ध शब्द अभि उपसर्ग पूर्वक इन्धी दीप्तौ धातु से बना है) सब ओर से प्रकाशमान (तपस) तपोमय भगवान से (अध्यजायत) उत्पन्न हुए । (तत) उससे शक्ति) शक्ति (अजायत उत्पन्न हुई । (तत) उस प्रभु से ही (समुद्रो अर्णव) समुद्र जलवाला हुआ (अर्णवात) जलवाले (समुद्रात) समुद्र से (अधि) पीछे (संवत्सर) संवत्सर (अजायत) उत्पन्न हुआ । (विश्वस्य) समस्त (मिषत) अर्थात हरकत करने वाले प्राणि जगत के (वशी) वश मे रखने वाले तथा इसका धारण पोषण करने वाले परमेश्वर ने (अहोरात्राणि विदधत) दिनो और रातो का विधान करते हुए (यथा पूर्वम पहले की तरह (सूर्याचन्द्रमसौ) क्रमश सूर्य और चन्द्रमा को (दिव च पृथ्वी च) द्यु लोक और पृथ्वी लोक और (अन्तरिक्षम) अन्तरिक्ष लोक को तथा (स्व) सुख को (अकल्पयत) रचा ।

यह अघमर्षण मन्त्र है । प्राणायाम के बाद संस्कार विधि महत्त्व प्रकरण (स० वि० ग० प्र०) मे लिखा है तत्पश्चात सृष्टिकर्ता परमात्मा और सृष्टिक्रम का विचार इन मन्त्रो से करे और जगदीश्वर को सर्वव्यापक न्यायकारी सर्वत्र सर्वदा सब जीवो के कर्मों के द्रष्टा को निश्चित मान के पापकी ओर अपनी आत्मा और मन को कभी न जाने देवे किन्तु सदा धर्मयुक्त कर्मों मे वर्तमान रखे ।

वैदिक यन्त्रालय अजमेर की सन्ध्योपासनादि पञ्च महायज्ञ विधि मे लिखा है अब अघमर्षण अर्थात हे ईश्वर ! तू जगदुत्पादक है—इत्यादि स्तुति करके पाप से दूर रहने के उपदेश का मन्त्र लिखते हैं ।

यह मन्त्र अघमर्षण मन्त्र इस लिए है कि इन मन्त्रो का द्रष्टा अघमर्षण ऋषि है । ऋतेमिर्ति तृचात्मकानष्टादशिक सूक्त मधुच्छन्दस पुत्रस्य अघमर्षणस्य आर्षम साम व ऋ० १०।१९०।१ ३)

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास मे लिखा है कि— अघमर्षण अर्थात पाप करने की इच्छा भी कभी न करे तथा अघमर्षण मन्त्रा अर्थात पाप दूराकरणार्था स० प्र० मह्रा मे लिखा है अनेनाघमर्षण कुर्यादर्थात पापानुष्ठाने सर्वथा परित्यजेत अर्थात इसी का नाम अघमर्षण है अर्थात ईश्वर सबके अन्तकरण के कर्मों को देख रहा है इस लिए पाप कर्मों का आचरण मनुष्य लोग सर्वथा छोड देवे ।

महर्षि का इस विषय मे यह मन्तव्य प्रतीत होता है कि यह मन्त्र अघमर्षण इस लिए है कि इन मन्त्रो के अर्थ सहित उच्चारण करने से अघ अर्थात पाप का मर्षण अर्थात दूरीकरण करना चाहिए ।

इस मन्त्र से अघ का नाश क्यो होता है । देखिए —

(१) परमेश्वर सर्वज्ञ है । वह हमारे प्रत्येक कर्म को देखता है और जानता है अर्थात उससे छिपाकर हम कुछ नही कर सकते हैं । जो व्यक्ति परमात्मा के ज्ञानमय एव सर्वज्ञ स्वरूप को जान लेगा वह अपने बाहर कुछ और भीतर कुछ रखने वाला नही बनेगा । परमेश्वर केवल सर्वज्ञ ही नही वह सर्वव्यापक भी है । सर्वव्यापकत्व एव सर्वज्ञत्व का सम्बन्ध है । जब उससे छिपकर हम कोई कर्म कर ही नही सकते है कर्म करना तो दूर उसका विचार या चिन्तन तक नही कर सकते हैं । यदि हम करेगे तो हमे उसका फल अवश्य भुगतना पडेगा । वह न्यायकारी भी है । मनुष्य न्यायधीशो को धोखा दिया जा सकता है पर जिसके सामने तीनो काल हस्तामलकवत है उसे कैसे धोखा दिया जा सकता है । यद्यपि भगवान सब का भव जानते है—

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति
यो निलाय चरति य प्रतङ्कम
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते
राजा तद्वेद वरुण तृतीय । अ० ४।१६।२

(यस्तिष्ठति) जो खडा है (चरति) चलता है या सञ्चय करता है (यश्च वञ्चति) जो कुटिल चाल चलता है ठगता है (यो निलाय चरति) जो छिप छिप कर चलता है अर्थात षडयन्त्र आदि करता है (य प्रतङ्क चरति) जो भय का सञ्चार करता है । (यद् द्वौ) जो दो मनुष्य (संनिषद्य) एक साथ बैठ कर (मन्त्रयेते) गुप्त विचार या मन्त्रणा करते हैं (राजा) सर्वप्रकाशक (वरुण) सर्वश्रेष्ठ अन्तर्यामी प्रभु (तृतीय) उनमे तीसरा होकर (तद् वेद) उसको जानता है ।

मनुष्य कही निर्जन वन मे जाता है समझता है यहा कोई नही । मुझे कोई नही देखता यह उसकी भूल है । हे भोले मनुष्य ! तू अकेला नहा है भगवान तेरे साथ है । तुझे वह दिखाई नही दे रहा है वह तेरे अन्दर है । तेरी आत्मा के अन्दर है जो तू अकेले बैठ कर सोचता है । वह प्रभु उसे जानता है । यजुर्वेद ४० ४ मे कहा है

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यत
वह भगवान इस ससार के अन्दर हैं और वही इस सारे के बाहर भी है । भगवान राज्य करने वाला राजा है । मनुष्य पाप करके सासारिक राजा के दण्ड से भले ही बच जाये वरुण राजा के दण्ड से नही बच सकता है । कोई कही भाग जाए उसके पास से नही बच सकता । वेद मे कहा है —

उत यो द्यामतिसर्पात्परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञ । अ० ४।१६।४।

चाहे वह (पापकर्ता) द्यौ से भी परे चला जाए किन्तु राजा वरुण से नही बच सकेगा । क्योंकि—

सर्वं तद्राजा वरुणो विचष्टे यदन्तरा रोदसी यत्परस्तात । संख्याता अस्य निमिषो जनानाम । अथर्व ४।१६।५

जो दोनो लोको में है और उससे परे है उस सब को राजा वरुण जानते हैं इसने लोगो की आंखो के निमेष तक गिन रखे हैं । इस वास्ते मानव समस्त पाप को छोड । पाप का दण्ड अवश्य मिलेगा । तू अज्ञ अल्पज्ञ प्राणी को भले ठग ले किन्तु उस सर्वज्ञ को नही ठग सकता ।

(२) वह सकल ब्रह्माण्ड को रचने वाला धारण पोषण करने वाला तथा प्रलय करने वाला है । उत्पादन पालन और प्रलय करने वाला प्रभु कितना शक्ति शाली तथा महान है—इस भाव को मन से विचार पूर्वक लाने पर यह भी भाव उत्पन्न होता है कि अपनी शक्ति के भरोसे कर्मों का फल टाला जा सके यह होना असम्भव है । इस लिए मनुष्य असत्कर्मों को छोड कर सत्कर्मों की ओर पग बढा सकता है । (क्रमश)

आर्य समाज माडल टाऊन पठानकोट

जन्माष्टमी पर्व धूम धाम से मनाया गया जिसमे नगर के प्रतिष्ठित आर्य बन्धुओ के अतिरिक्त शिक्षण संस्थाओ के छात्र छात्राओ ने भाग लिया श्री विजय कुमार जी शास्त्री श्री रामदेव जी शास्त्री श्री गिधारीलाल गुप्ता श्री मनोहरलाल जी श्री सुभाष मित्तल जी श्री बलदेव राज जी यदुवंशी आदि ने योगीराज श्री कृष्ण को श्रद्धाजलिया भेंट की ।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

प्रवेश सूचना

एम ए वेद संस्कृत दर्शन हिन्दी अंग्रेजी प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति तथा पुरातत्व मनोविज्ञान गणित ।

प्रवेशार्थ योग्यता अलंकार (गुरुकुल कांगडी) बी ए बी एस सी बी काम विद्याभास्कर शास्त्री आचार्य तथा साहित्यरत्न ।

अलंकार बी ए) प्रथम वर्ष मे प्रवेशार्थ योग्यता (१) विद्या विनोद (गुरुकुल या (२ इन्टरमीडिएट संस्कृत साहित्य या (३) उत्तर मध्यमा अंग्रेजी सहित (बनारस) या (४) विशारद (पजाब यू) अंग्रेजी मे इन्टर सहित)

विद्याविनोद—(इन्टरमीडिएट) प्रथम वर्ष मे प्रवेशार्थ योग्यता (१) विद्याधिकारी (गुरुकुल) या (२) हाईस्कूल संस्कृत सहित या (३) पूर्वमध्यमा अंग्रेजी सहित (बनारस) या (४) विशारद (पजाब यू) अंग्रेजी मे मैट्रिक सहित)।

दोनो कोर्सों का शिक्षा काल २ २ वर्ष है । स्नातक होने पर वेदालंकार और विद्यालंकार की उपाधि दी जाती है जो कि भारत सरकार तथा सभी विश्वविद्यालयो द्वारा स्वीकृत है । शिक्षा निशुल्क है । विद्याविनोद अलंकार तथा एम ए मे वेद का कोर्स लेने वाले छात्रो को छात्रवृत्ति भी दी जाती है ।

बी एस सी प्रथम खण्ड ग्रुप (१) कैमिस्ट्री बौटनी जूलोजी अंग्रेजी ग्रुप (२) कैमिस्ट्री फिजिक्स गणित अंग्रेजी । प्रवेशार्थ योग्यता इन्टरमीडिएट विज्ञान सहित विद्यालय विभाग मे ६ वर्ष से ८ वर्ष तक के बच्चे प्रविष्ट किए जाते हैं ।

प्रवेश प्रारम्भ है । प्रवेश की अन्तिम तिथि १५ ९ ८० है । इसके पश्चात् २५ ९ ८० तक विलम्ब शुल्क सहित प्रवेश हो सकता है ।

आचार्य गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय

हिन्दी दिवस पर—

राष्ट्र भाषा के प्रति हमारा व्यवहार

ले०—प्रा० चाद्रेम जी कार्यकारी प्रधान हिन्दी रक्षा समिति होशियारपुर

✻

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व ही भारतीय मनीषियों ने यह निश्चित किया था कि भारत की राष्ट्र भाषा एक मात्र हिन्दी ही हो सकती है। भारत के विभिन्न भूभागों से सम्बन्ध रखने वाले श्री केशव चन्द्र सेन महर्षि दयानन्द महात्मा गांधी नेता जी सुभाषचन्द्र बोस प्रो० केसरी श्री श्रीनिवास शास्त्री न्यायमूर्ति शारदा चरण आदि सभी महापुरुषों ने एक स्वर से इसका समर्थन किया तथा इसे व्यवहारिक रूप देने का स्तुत्य प्रयास किया। स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात सर्वमान्य भारतीय प्रतिनिधियों ने राष्ट्र भाषा के प्रश्न पर हर पहलू से विचार किया तथा मतदान के पश्चात हिन्दी को ही राष्ट्र भाषा के रूप में भारतीय संविधान में स्वीकार किया। इस बात का हुए तीस वर्ष होने पर भी अभी तक हम हिन्दी को राष्ट्र भाषा का रूप नहीं दे सके। इन वर्षों में अनेक बार संविधान स्वीकृत राष्ट्र भाषा को न अपनाने के कारण विदेशों में हमारा अपमान भी हुआ। पुनरपि हम इतने ढीठ होते जा रहे हैं कि अपमान के घूंट पीते हुए भी हम इस ओर ध्यान देने का प्रयास भी नहीं करते इतिहास इस बात का साक्षी है कि जर्मनी इंग्लैंड फ्रांस इजरायल आदि अनेक देशों ने जिस भाषा को संविधान द्वारा स्वीकार कर लिया उसे थोड़े ही समय में राष्ट्र भाषा के पद पर व्यवहारिक रूप में आसीन कर दिया।

किसी भी राष्ट्र में राष्ट्र भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं को तभी तक अभिमान दिया जाना चाहिए जब तक वह अविकसित हो काम में कठिनता हो या लोग प्रदेशगत मोह के कारण क्षत्रीय भाषाओं से सम्पन्न रहते हैं। पर इन परिस्थितियों में भी स्वीकृत राष्ट्र भाषा को ही प्रधानता दी जानी चाहिए। जो इस अवधि में भी राष्ट्र भाषा का प्रयोग करना चाहते हैं उनको प्रत्येक सुविधा और प्रमुखता दी जानी चाहिए। क्योंकि अपवाद तो आपत्कालीन ही होते हैं न कि सार्वकालिक। भारत में कुछ कारणों का ध्यान रखते हुए कुछ वर्षों के लिये हिन्दी के साथ सहयोगी भाषा के रूप में अंग्रेजी को निर्धारित किया गया। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि इस सहयोगी भाषा को ही हर क्षेत्र में प्रथम स्थान और प्रधानता दी गई। एतदर्थ निश्चित अवधि पूर्ण होने पर हमने अपने राष्ट्रीय गौरव तथा सम्मान को भुला कर सहयोगी भाषा को अनिश्चित काल के लिए और आगे बढ़ा दिया।

संविधान में हिन्दी को विधिवत राष्ट्रभाषा घोषित कर देने के पश्चात चाहिए तो यह था कि जो व्यक्ति अपना जो भी कार्य राष्ट्र भाषा में करना चाहता उसको प्रत्येक क्षेत्र और स्थान पर प्रमुखता दी जाती और राजकीय कार्य में हर प्रकार की सुविधा प्रदान की जाती। परन्तु जो व्यक्ति किसी कारण से तथा क्षत्रीय व्यामोह दूसरी भाषा में अपना कार्य करना चाहते हैं उनकी भावना का ध्यान रखते हुए उस भाषा को उस क्षेत्र में दूसरा स्थान दिया जाना। क्योंकि वह भाषा उस क्षेत्र तक सीमित है अतः उस भाषा को किसी के तुष्टीकरण के लिए असम्बद्ध क्षेत्रों में लागू नहीं करना चाहिए। आश्चर्य तो यह है कि हम इतने वर्षों में भी राष्ट्र भाषा की परिभाषा भी समझने या स्पष्ट करने में समर्थ नहीं हो सके। यहां तक कि सभी केन्द्रीय नेताओं ने भी राष्ट्रीय एकता और राष्ट्र भाषा के महत्व की दृष्टि से सोचने का प्रयास नहीं किया। एक दिन एक का कुछ वक्तव्य आता है तो दूसरे दिन दूसरा कुछ और ही बोली बोलता है।

✶ भारत की भाषा समस्या का हल

भारत की भाषा समस्या का हल यही है कि राष्ट्र भाषा को प्रत्येक स्थान और क्षेत्र में प्रथम स्थान तथा प्रधानता दी जाए। भारत के प्रत्येक प्रान्त में राष्ट्र भाषा के अपनाने वालों का उसके लिए प्रत्येक सुविधा और अवसर दिया जाए। परन्तु जो व्यक्ति क्षत्रीय भाषा या अंग्रेजी में कार्य करना चाहता है उसको दूसरा स्थान दिया जाए।

भारत के संविधान में घोषित राष्ट्र भाषा को प्रत्येक प्रदेश के व्यवहार में भी विशेष स्थान देना चाहिए। उस पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न हो और प्रादेशिक भाषा का उस प्रदेश में भी दूसरा स्थान होना चाहिए। तभी राष्ट्र भाषा का महत्व परिनाथ हो सकता है और राष्ट्रीय एकता अक्षुण्ण रह सकती है। क्षत्रीय भाषा का व्यवहार अपनी अपनी इच्छा पर आधारित होना चाहिए किसी के तुष्टीकरण के लिए उसको असम्बद्ध क्षेत्रों पर लागू करने का कोई आधार नहीं है।

यह राष्ट्र भाषा का कैसा विचित्र उपहास है कि उसी राष्ट्र में उसकी राष्ट्र भाषा में रजिस्ट्रियों का रजिस्ट्रेशन नहीं हो सकता तथा राष्ट्र भाषा में आवेदन स्वीकार नहीं किया जाता अपनी मानसिक भावनाओं के कारण राष्ट्र भाषा को राष्ट्र भाषा का रूप देने की असमर्थता में कभी कोई कारण बताया जाता है और कभी कोई बहाना ढूंढा जाता है। हर बात को कुछ व्यक्तियों की प्रसन्नता के लिए राजनीतिक ढंग से सोचा जाता है। हमें कभी स्मरण ही नहीं आता कि हमारी हर राष्ट्रीय समस्या के समाधान का एक मात्र केन्द्रीय बिन्दु—राष्ट्रीय गौरव हित और विकास ही है।

कुछ वर्षों से इजरायल का नाम सबके सम्मुख मुखर हो रहा है जिसने राष्ट्रीय हित को सम्मुख रखकर वह कर दिखाया जो इतिहास में उसके नाम को अमर कर रहा है। उस राष्ट्रीय भावनाओं से भरे हुये छोटे से देश ने दो हजार साल पुरानी अविकसित असमझ समझी जाने वाली भाषा को ही राष्ट्र भाषा का स्थान दिया और कुछ वर्षों के अन्दर ही उसको व्यवहारिक रूप देकर संसार के सामने एक उदाहरण उपस्थित कर दिया है।

+ हमारा कर्त्तव्य—

ऐसी स्थिति में राष्ट्र भाषा के प्रेमियों का कर्त्तव्य हो जाता है कि यदि वे चाहते हैं राष्ट्र भाषा का गौरव और महत्व बढ़े तथा राष्ट्रीय एकता स्थिर रहे तो राष्ट्र भाषा को अपने दैनिक जीवन के घरेलू तथा कारोबार के कार्य में स्थान दें क्योंकि संसार में वही वस्तु जीवित रह सकती है जिसको व्यवहार में स्थान और महत्व दिया जाता है फिर उसके विकास को कोई रोक नहीं सकता। अतः राष्ट्र प्रेमियों से प्रार्थना है कि जहां हम सरकार से राष्ट्र भाषा के क्रियात्मक रूप की आशा करते हैं वहां हमारे हृदयों में भी राष्ट्र भाषा के प्रति उत्कट प्रेम भावना जागृत होनी चाहिए। तभी राष्ट्र भाषा और राष्ट्रीय एकता को परिताथ किया जा सकता है।

—

सभा प्रधान श्री वीरेन्द्र जी को 2600) की थैलियां भेंट

१ आर्य समाज स्वामी श्रद्धानन्द बाजार (लाल बाजार) लुधियाना ने वेद सप्ताह के उपलक्ष में वेद प्रचार पर सभा प्रधान श्री वीरेन्द्र जी को १५००) रुपये की थैली भेंट की।

२ आर्य समाज धूरी (संगरूर) ने भी वेद प्रचार सप्ताह पर सभा प्रधान श्री वीरेन्द्र जी को ११०० रुपये की थैली भेंट की।

वेद प्रचार सप्ताह तथा वार्षिकोत्सवों के प्रबन्ध

कथोत्सव आर्य समाज रामपुरा टाऊन २०९ ० से २८९ ० तक कथा में श्री प० निरञ्जनदेव जी इतिहास केसरी श्री विद्या भूषण जी भजनोपदेशक उत्सव में श्री प० रमनाथ जी सि० शिरोमणि श्री प्यारीलाल जी भजनोपदेशक।

प्रचार—आर्य समाज भटिण्डा १ ९८० से २१ ९ ८० श्री प रामनाथ जी सि० वि० श्री हजारीलाल तथा साईं दास जी।

यज्ञ तथा उत्सव श्रीदयानन्द मठ चम्बरा २३ ९ ८० से २८ ९ ८० तक श्री प० विजयकुमार जी श्री रामनाथ जी यज्ञी।

वेद प्रचार सप्ताह—आ० स० पक्का बाग जालन्धर श्री सत्यमित्र जी गायनाचार्य श्री साईं दास जी।

कथोत्सव आ० स० श्रद्धानन्द नगर बरनाला—(गान्धी आर्य हाई स्कूल) २७ ९ ८० से २ १० ८० तक श्री प० जगदीश चन्द्र जी वसु श्री विद्याभूषण जी भजनोपदेशक।

—ओम्प्रकाश आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष

यह धन किसका है ?

ले०—श्री कृष्णचन्दराय जी प्रधान आर्य समाज अबोहर

ॐ

यजुर्वेद के अन्तिम अध्याय के पहले मन्त्र मे लिखा है—कस्य स्विद् धनम्। किसका धन है— यह धन किसका है ?

किसी धन वाले से प्रश्न कीजिये कि यह धन किसका है ? तो वह कहेगा—मेरा धन है फिर उससे पूछिए—तू संसार मे कब तक है ? तो इस बात का उसे पता नहीं है। कौन जाने एक वर्ष दस वर्ष पच्चास वर्ष या इससे अधिक। कौन जाने केवल दस सैकिण्ड या इससे कम। कोई पता नहीं अभी जो मैंने सांस निकाला है—वह अन्दर आएगा या नहीं। भक्त कबीर ने कहा है—

सांस सांस से सिमरन कर
व्यर्थ श्वास मत खो
को जाने इस सांस को
आवन है या नाही।

उर्दू के एक शायर ने लिखा है

स[illegible] सफर करने के लिए
सब मिलते हवा है यहां गुजरने के लिए
जो गुम हुये हैं पैदा वो होंगे ना पद
जो जीते हैं हम सब हैं मरने के लिए।

और जो घड़ी हम सब ने अपने हाथ में बांध रखी है वह नकली घड़ी है असली घड़ी वो घड़ी है जो ईश्वर के सिमरन मे व्यतीत हो। मगर जब कभी अन्तिम घड़ी आती है लोग सब कुछ छोड़ कर चले जाते हैं। धन सम्पत्ति यश कीर्ति सम्मान शासन बाग बगीचा हीरे मोती कभी किसी के साथ नहीं गये।

श्री गुरु नानकदेव जी महाराज अपने एक भक्त जो लाहौर मे रहता था बड़ा धनवान था उसका नाम दुनीचन्द एक लाख रुपया जमा लेता था तो एक झण्डा अपने मकान पर लगा लिया करता था। ऐसे उसने कई झण्डे लगाये। एक बार गुरु जी महाराज घूमते घूमते वहां पहुंचे। उसने और उसकी धर्म पत्नी ने गुरु जी महाराज को खाने का निमन्त्रण दिया। जब वे खाना खा कर जाने लगे तो उन्होंने दुनीचन्द को बुलाया व अपने चोले से एक सूई निकाल कर दी और कहने लगे बेटा यह सूई संभाल कर रखना हम मरने के पश्चात वहां आप से ले लेंगे। उसने कहा महाराज ऐसा ही होगा उसने गुरु जी के जाने के पश्चात यह सब वृत्तान्त अपनी धर्म पत्नी को सुनाया। उसने उत्तर दिया पतिदेव मरने के पश्चात कोई भी अपने साथ कुछ ले जा ही नहीं सकता तो आप यह सूई उनको कैसे देंगे इसमे कुछ रहस्य है चलो हम गुरु जी से जाकर यह प्रार्थना करें। वह जो गुरु जी को रास्ते मे ही मिले गुरु जी यह लो अपनी सूई आप यह तो जानते ही हैं कि मरने के पश्चात तो हम अपने साथ कुछ भी नहीं ले जा सकते फिर यह सूई आपको कैसे वापिस देंगे गुरु महाराज ने हसते हुये कहा ऐसे ही ले जाना जैसे लाखों रुपया आप ले जायेंगे। [illegible] क्यों कर रहे हो बांट दो इन्हें उन को जिन्हें आवश्यकता है बांटने वाला ही यह शुभ कर्म ही तुम्हारे साथ जायगा।

राजा भोज के पिता का [illegible] होने लगा तो भोज बहुत छोटा था। भोज के पिता ने अपने छोटे भाई मुंज को बुला कर कहा— देखो भाई भोज अभी बच्चा है जब तक बड़ा नहीं होता तब तक इस[illegible] हो जायेगा तब यह सारा राज्य इसे सौंप देना। मुंज ने कहा ऐसा ही करूंगा भाई का देहान्त हो गया। मुंज राजा बने भोज का पालन पोषण करने लगे। भोज बचपन से ही बहुत सयाना समझदार और विद्वान बन गया जब वह सोलह साल का हुआ तो मुंज को चिन्ता हुई कि अब यह गद्दी मुझे छोड़नी पड़ी तो मैं क्या करूंगा।

देखो मिली हुई गद्दी को कोई भी नहीं छोड़ना नहीं चाहते ऐसा नशा है जिसे एक बार मिल जाये वो इस से चिपक कर बैठ जाता है जनता और कांग्रेस मे फूट इसी गद्दी के कारण ही हुई भुट्टो को भी इसी गद्दी के कारण फांसी हुई। परन्तु कोई इसे छोड़ना चाहे या ना चाहे अन्त मे तो उसे छोड़नी ही पड़ेगी। रावण जैसों को भी यही छोड़नी ही पड़ी।

राम गयो रावण गयो जाको बहु परिवार
कहु नानक थिर कुछ नाहीं सपने ज्यूं संसार।

फिर राम और रावण ही क्यों कौरवों व पाण्डवों को भी यही छोड़नी पड़ी।

मुंज ने भी भोज को जल्लादों के सुपुर्द किया कि इसका सिर काटकर मेरे पास लाओ। जल्लाद उसे जंगल में ले गये और जब बालक भोज का सिर धड़ से अलग करने लगे तो जल्लाद को उस सुन्दर बालक भोज पर दया आ गई और बोला—ऐ बालक तेरी कोई अन्तिम इच्छा है तो हमें बताओ। भोज ने कहा कि मैं एक सन्देश लिख देता हूं वह राजा के पास ले जाओ उसके बाद भी यदि वह न मानें तो वापिस लौट कर मुझे मार देना। भोज ने अपनी उंगली से लहू निकाला और पत्ते पर एक श्लोक लिखा जिसका भावार्थ यह है—सतयुग मे मान्धाता इस पृथ्वी के चक्रवर्ती राजा थे। उनके साथ यह पृथ्वी नहीं गई। तृतीय युग मे भगवान राम थे उनके साथ ये नहीं गई। द्वापर मे कौरवों व पाण्डवों के साथ नहीं गई। अब कलियुग मे तू अपने साथ ले जाएगा इसके लिए मुझे प्रसन्नता है कई बार ऐसी घड़ियां आती हैं जब जीवन का कांटा बदल जाता है।

राजा मुंज ने भोज को वापस बुला कर उसको राज्य सौंप दिया और स्वयं जंगल म चला गया।

परन्तु धन चाहे बुरी वस्तु ही क्यों न हो परन्तु इसके बिना संसार मे निर्वाह होना बहुत ही कठिन है। क्योंकि गृहस्थाश्रम अपने बाल-बच्चों का पालन पोषण करता है। शेष सब आश्रमों का ब्रह्मचर्य वानप्रस्थी व संन्यासी सभी का पालन-पोषण करता है इसलिए वेद कहता है कि सौ हाथों से कमाओ और हजारों हाथों से बांटो।

'फिर किसका है यह धन ? आप कहेंगे यह बात तो वेद भी पूछता है—कस्य स्विद् धनम् ? (किसका धन है ?) और जब वेद भी पूछता है तो तुम कैसे जानते हो कि धन किसका है ? परन्तु यह बात नहीं मेरे भाई वेद पूछता नहीं उत्तर देता है। वह कहता है— कस्य स्विद् धनम् ? क कहते हैं भगवान को ठीक पढ़ना हो तो यों कहना चाहिए—क अस्य स्विद् धनम् —अर्थात् प्रजापति ईश्वर जो है उसका धन है ?

यदि यह धन प्रजा-पति का ही है तो फिर हमें इस धन को दान के रूप में करने पर संकोच नहीं करना चाहिए। मगर यह धन बड़ा चंचल है। यह रथ के पहियों की भांति निरन्तर घूमता रहता है। आज एक व्यक्ति के पास है कल दूसरे के पास है। इसलिए इसका बोझ बना हुआ है। प्रत्येक मनुष्य को इस धन के स्वरूप को समझना चाहिए दीन दुखियों व पीड़ितों की सहायता करके इन्हें प्रसन्न रखें। बलवानों को चाहिए कि वह कमजोरों अबलाओं और अनाथों की रक्षा करें। मनु महाराज ने कहा है कि विद्या का दान सबसे उत्तम दान है। इसलिए माताओ बहनो व भाईयो आप शिक्षण संस्थाओं कालेज और आर्य पाठशालाओं को जोकि पूर्ण रूप से चल रही है को दान देकर अपना जीवन कृतार्थ करें। भक्त कबीर जी ने कहा है—

तन पवित्र सेवा किए धन पवित्र किए दान
मन पवित्र भजन से होत त्रिविधी कल्याण।

ओ३म् शान्ति शान्ति शान्ति !

—

जम्मू कशमीर मे सत्यार्थ प्रकाश एवं भगवद गीता पर पाबन्दी आर्य समाज का शिष्ट मण्डल गृहमन्त्री ज्ञानी जैलसिंह से मिला

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री रामगोपाल शालवाले पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान श्री पृथ्वीसिंह जी आजाद भारत सरकार के गृहमन्त्री श्री जैलसिंह को मिले। उन्होंने बताया कि ता० २०.५.८० को एक गुप्त आदेश द्वारा श्री शेख अब्दुल्ला की सरकार ने जम्मू एवं कशमीर के पुस्तकालयों मे सत्यार्थ प्रकाश एवं भगवद गीता पर पाबन्दी लगा दी है।

श्री शालवाले ने श्री ज्ञानी जैलसिंह से अनुरोध किया कि भारत सरकार इस मामले में हस्तक्षेप करे। इस प्रकार की धार्मिक पुस्तकों पर प्रतिबन्ध लगाना भारतीय संविधान के सर्वथा विपरीत है। इससे देश की धार्मिक जनता मे बड़ा असन्तोष फैल गया है यदि इस निन्दनीय आदेश को वापिस न लिया गया तो आर्य समाज को अपने अधिकारों की रक्षा के लिए गम्भीरता से विचार करना पड़ेगा। श्री शालवाले ने एक ज्ञापन भी प्रस्तुत किया। श्री ज्ञानी जैलसिंह ने आश्वासन दिया कि प्रधानमन्त्री से मिलकर इस मामले को सुलझाने का प्रयत्न करेंगे।

—सच्चिदानन्द शास्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली

भारतीय नारी कहां से और कहां तक

ले श्री प० सुरेन्द्र कुमार शास्त्री आर्य समाज सरहिन्द पटियाला

भारतीय संस्कृति की पावन परम्परा से नारी को सदैव सम्मानजनीय स्थान की प्राप्ति हुई है यज्ञ आदि के आयोजन एव सामाजिक मंगल कार्यों के पुनीत अवसरो पर नारी की उपस्थिति घोषित की गई। भारतीय समाज मे नारी की स्थिति अत्यन्त गौरवपूर्ण थी समाज मे नारी के महत्व को सभी कवियो ने प्राचीन काल से माना है। मनु के शब्दो मे यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता अर्थात जिस घर मे नारी का सम्मान होता है उस घर मे देवताओ का निवास होता है नारी शक्ति का प्रतीक मानी गई है। महा कवि तुलसीदास ने अपने श्रेष्ठतम (राम चरित मानस) मे श्रीराम से पूर्व सीता को स्थान दिया भारतीय नारियां विद्वता एव वीरता के क्षेत्र मे किसी से पीछे नही रही लोपा मुद्रा एव गार्गी जैसी विदुषी एव विचारशील महिलाए लक्ष्मी बाई एव दुर्गावती जैसी वीरांगनाए इसी भारत भूमि की पुत्रियां थी परन्तु प्रत्येक स्थिति मे अपवाद अवश्य जन्म लेते हैं मध्यकाल मे नारी के गौरवशाल रूप को काफी ठेस पहुंचाई गई। हिन्दी साहित्य के वीर गाथा काल में उन्हें लड़ाई झगड़ो का कारण माना गया। भक्ति काल के कवियो ने नारी के रूप सौन्दर्य नख शिख के वर्णन मे अपने काव्य की इति श्री समझी और आधुनिक काल मे आकर कवियो ने नारी के महत्व को पुन जाना और उसे जीवन में पुरुष के पौरुष रूप मे ले लिया।

आधुनिक काल की नारी प्राचीनकाल की नारियों से भिन्न है वह न तो मीरा की भांति प्रेम दिवानी है और न ही सूरदास की गोपियो की भान्ति अश्रुपात करती है वह तो कर्म क्षेत्र मे पुरुष के साथ मिलकर समाज एव देश के कल्याण के लिए कार्य करती है। सुप्रसिद्ध कवि जयशंकर ने कामायनी मे कहा—नारी तुम केवल श्रद्धा हो। नारी नर के जीवन की पूरक है समाज का जीवन तभी गतिमान रहता है जब दोनो सहयोग देते हैं। नर नारी जीवन रूपी गाड़ी के दो पहियो के समान है। एक के अभाव से दूसरे का जीवन अपूर्ण है। नारी का स्नेह पुरुष को मनोबल प्रदान करता है और वह जीवन संग्राम मे नई स्फूर्ति और उमंग से काम करने लगता है। मैथिलीशरण गुप्त के शब्दो मे एक नही दो दो मात्राए नर से बढ़ कर नारी। आज की नारी स्वतन्त्र होने के लिए छटपटा उठी है वह घर की चारदीवारी की शोभा बनकर नहीं रहना चाहती वह पुरुष के समान सभी क्षेत्रो मे आगे बढ़ना चाहती है। आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होने के लिए प्रयत्नशील है नारी ने बन्धन तोड़ दिए हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे वह पुरुष से आगे बढ़ गई हैं। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि नारी स्वतन्त्रता के मोह मे अपना वास्तविक रूप बिल्कुल भूल गई है। उसमे प्राचीन काल की नारी के त्याग के स्थान पर उन्मुक्तता लज्जा के स्थान पर चपलता का प्रभाव और सादगी के स्थान पर मेकअप प्रवीणता है। वह पश्चिमी सभ्यता मे रंग गई है और प्राचीन भारतीय नारी के गौरवशाली रूप को भूल गई है। वह अपने कर्तव्य क्षेत्र से विमुख हो रही है उसमे यह अत्याधिक परिवर्तन सम्भवत सदियो की गुलामी के कारण है। वह स्वतन्त्र रूपेण उन्मुक्त पक्षी की भान्ति समाज के सभी क्षेत्रो मे विचरण करना चाहती है। इसलिए किसी कवि ने कहा—आधुनिक तुम सब कुछ हो परन्तु उन्होने साथ मे यह भी कहा तुम नही हो सिर्फ नारी अर्थात नारी की पवित्रता कोमलता और सहनशीलता की भावना तुम मे नही है। जीवन में नारी की प्रगति समाज की उन्नति का शुभ लक्षण है। परन्तु आधुनिक नारी ने स्वतन्त्रता का गलत अर्थ ले लिया है स्वतन्त्रता का अर्थ बन्धनहीन होना नही और न ही सामाजिक मान मर्यादा पारिवारिक सीमाओ और न ही लज्जा रूपी आभूषणो का खण्डन करना सच्ची स्वतन्त्रता है। अत नारी को समाज के कल्याण तथा गृहस्थ को सुचारू रूप से नियमन एव संचालन के लिए सुदृढ़ नियमो के पालन द्वारा (सत्य शिव सुन्दरम) का रूप उपस्थित करना होगा। शील संयम त्याग युक्त नारी ही कामायनी के रचयिता जयशंकर प्रसाद की निम्न पंक्ति की अधिकारिणी बन जन की श्रद्धास्पद बन सकती है।

नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल मे।
पीयूष स्रोतसी बहा करो
जीवन के समतल मे।

आर्य हाई स्कूल लुधियाना मे—

वन महोत्सव सम्पन्न

लुधियाना मे प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब तथा सम्पादक दैनिक प्रताप तथा वीर प्रताप श्री वीरेन्द्र जी की अध्यक्षता मे वन महोत्सव तथा पुरस्कार वितरणोत्सव का समारोह बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ जिसमे स्वास्थ्य मन्त्री पंजाब श्री सरदारीलाल जी कपूर मुख्य अतिथि थे। उन्होने स्कूल के प्रांगण मे सफैदा तथा श्री वीरेन्द्र जी ने पापुलर के पौधो का आरोपण किया।

स्कूल प्रबन्धक कमेटी के प्रधान श्री रणबीरजी भाटिया ने श्री कपूर साहिब को अभिनन्दन पत्र पेश किया। प्रिंसिपल श्री ओम प्रकाश जी टण्डन ने स्कूल की वार्षिक रिपोर्ट पढ़कर सुनाई। डी० ई० ओ० सविता न श्री केदारनाथ शर्मा तथा श्री प्रेम चन्द गुप्ता संकटरी दयानन्द मैडीकल कालेज ने बच्चो को आदर्श नागरिक बनने का उपदेश दिया। श्री वीरेन्द्र जी ने अपने भाषण मे बच्चो को समय का महत्व समझने की प्रेरणा की मन्त्री महोदय ने अपने कर कमलो से बच्चो को पुरस्कार वितरण किए तथा वृक्षो के महत्व पर प्रकाश डाला तत्पश्चात उन्होने स्कूल को ५००० रु० अपने फंड से देने की घोषणा की

—रणबीर भाटिया
—प्रधान

श्री योगेन्द्रपाल जी सेठ द्वारा

वैदिक धर्म प्रचार

आर्य समाज बजवाड़ा होशियारपुर जालन्धर के प्रधान श्री योगेन्द्रपाल सेठ इंगलैंड फ्रांस बेल्जियम हालैंड इत्यादि विदेशो मे आर्य समाज का प्रचार करके वापिस आ गये हैं वहां पर उन्होने धर्म प्रेमी व्यक्तियो मे सन्ध्या और हवन यज्ञ की पुस्तक हिन्दी मे आर्य शुद्धि के पाठ द्वारा तथा अंग्रेजी मे उनकी लिखी हुई पुस्तक कौनसैप्ट आफ आर्य समाज (Concept of Arya Samaj) मुफ्त बांटी तथा कुछ लोगो को सन्ध्या तथा यज्ञ के मन्त्रो को टेप करके भी दिया ताकि वह टेप द्वारा सुनकर उनका शुद्ध उच्चारण कर सकें जहां उन्होने आर्य समाज के प्रचार का कार्य किया वहां उन्होने आर्य समाज के भवन निर्माण के लिए १४२००) रुपये नकद दान एकत्र किया और २० हजार रुपये दान देने के आश्वासन भी प्राप्त किए

यह आर्य समाज उन सब दानी महानुभावो का हृदय से धन्यवाद करता है

—विजेन्द्र शर्मा
मन्त्री आर्य समाज बजवाड़ा होशियारपुर जालन्धर।

भटिण्डा मे आर्य वानप्रस्थ आश्रम की स्थापना

२ ९ ८० को गुरुकुल भटिण्डा मे आर्य वानप्रस्थ आश्रम की स्थापना की गई। इस उत्सव के प्रधान श्री कमल न राय जी अग्रवाल (जो गुरुकुल कमेटी के भी प्रधान हैं) थे झण्डा लहराने की रस्म श्री सुन्दरलाल जी सराफ ने अदा की। बाहर से आर्य समाज धुरी बरनाला रामा मण्डी भटिण्डा कांगावाली डबवाली गिदड़बाहा अबोहर मानसा पीलीबंगा आदि के प्रतिनिधियो ने शामिल होकर अपना २ पूर्ण सहयोग देते रहने की घोषणा की। आशा है कि निकट की आर्य समाजो के लिए यह आश्रम बड़ा लाभप्रद रहेगा

ओम्प्रकाश आर्य
अधिष्ठाता

लुधियाना मे वेद सप्ताह

आर्य समाज स्वामी श्रद्धानन्द बाजार लुधियाना मे वेद सप्ताह ७ से १४ सितम्बर तक बड़ी धूमधाम से मनाया गया। प्रसिद्ध विद्वान श्री प० मदनमोहन जी विद्यासागर (हैदराबाद) डा० बालकृष्ण प्र० वेदव्रत डा० रामप्रकाश जी श्री सुनन्दन जी सत्यनीताचार्य आदि विद्वानो ने अपने मनोहर उपदेश दिए। ७ ९ ८० को सामूहिक यज्ञोपवीत संस्कार हुआ।

यज्ञ की पूर्णाहुति १४ ९ ८० को हुई तथा प्रात मे १२ ३ बजे ऋषि लंगर (प्रीती भोज) हुआ।

ईसाई कन्या का वैदिक रीति से विवाह

आर्य समाज लुधियाना रोड (गु० वि०) फिरोजपुर छावनी में मंगलवार दिनांक २ ९ को एक ईसाई कन्या (अब मा/) अनिता का शुभ विवाह कर्ण श्री एस लाल के साथ वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ समाज के उपस्थित सज्जनो एव माताओ ने वर वधू पर पुष्प वर्षा कर आशीर्वाद दिया। चमनप्रकाश नन्दा

वार्षिक निर्वाचन सम्पन्न

रविवार ३१ अगस्त को आर्य समाज पठानकोट का वार्षिक चुनाव सभा की देख रेख में श्री जितेन्द्र जी द्वारा करवाया गया जिसकी अध्यक्षता श्री अच्छरमल जी एडवोकेट ने की। आर्य समाज के वयोवृद्ध सदस्य श्री प्यारे लाल जी ने ५५ मत प्राप्त किए तथा विरोधी उम्मीदवार ने २५ मत प्राप्त किए। प्रधान पद की घोषणा के बाद सर्वसम्मति से उन्हें अन्तरंग बनाने का अधिकार दिया गई अन्तरंग बनाने की घोषणा भी की गई।

प्रधान श्री प्यारेलाल जी उपप्रधान श्री गिरधारीलाल जी गुप्त श्री यशपाल जी शास्त्री श्री लालचन्द जी महाजन मन्त्री—श्री सतीश महाजन संगठन मंत्री—श्री प्रो० स्वतन्त्र कुमार उपमन्त्री एवं पुस्तकाध्यक्ष—श्री राकेशलाल कोषाध्यक्ष श्री टेकचन्द जी लेखा निरीक्षक—श्री रोशनलाल जी कालड़ा अन्तरंग सदस्य श्री बलदेवराज जी श्री सौदागरमल जी श्री रत्नशाह जी श्री पृथ्वीराज जी श्रीमती सविता कालड़ा श्री रामप्रकाश जी श्री योगेन्द्रपाल जी श्री सुरेन्द्र जी।

– प्रो० स्वतन्त्र कुमार
संगठन मन्त्री

=

वार्षिक निर्वाचन

स्त्री आर्य समाज पठानकोट का वार्षिक निर्वाचन २३ ८ ८० शनिवार को श्रीमती बसन्तादेवी व श्रीमती श्यामा मोहन जी की सह अध्यक्षता में सर्व सम्मति से सम्पन्न हुआ जिसमें निम्न पदाधिकारी चुने गये—

प्रधाना श्रीमती सरला सुनेजा जी उपप्रधाना—श्रीमती शान्ता सनेजा श्रीमती यशवती रत्ती तथा श्रीमती शकुन्तला महेन्द्रू मन्त्राणी—श्रीमती सरला कपूर उपमन्त्राणी—श्रीमती सन्तोष बाई श्रीमती शशि डावर कोषाध्यक्ष—कुमारी सुधा भल्ला प्रचार मन्त्राणी—कौशल्या जैन श्रीमती विमला महाजन लेखा निरीक्षक—श्रीमती कमला निरञ्जन सामान निरीक्षक—श्रीमती विमला विज श्रीमती प्रकाशवती महता पुस्तकाध्यक्ष—श्रीमती सरला आहूजा

—सरला कपूर
मन्त्राणी

—

वार्षिक निर्वाचन

आर्य समाज जिलौरी गेट पटियाला का वार्षिक निर्वाचन सर्वसम्मति से सम्पन्न हुआ तथा निम्न पदाधिकारी चुने गये—

प्रधान—श्री रत्नलाल जी सिंहल मन्त्री—श्री राम लक्ष्मनदास कोषाध्यक्ष—श्री कुलवन्तराय अन्तरंग सभासद—श्री कुलदीप राय श्री शालिगराम।

—रत्नलाल
प्रधान

—

वार्षिक निर्वाचन

आर्य समाज गुरुकुल विभाग (रानी का तालाब) फिरोजपुर शहर का वार्षिक निर्वाचन निम्न प्रकार सम्पन्न हुआ—

संरक्षक—डा० साधुचन्द जी प्रधान—श्री हुकमलाल महता उपप्रधान—श्री जगदीशचन्द्र आर्य श्री विशुद्ध राय सोबत मन्त्री—श्री मोहनलाल जी प्रचार मन्त्री—श्री सन्त कुमार जी उपमन्त्री—श्री ओम प्रकाश भाटिया कोषाध्यक्ष—श्री मुनिलाल जी पुस्तकाध्यक्ष—श्री मनोहरलालजी लेखा निरीक्षक—श्री बसन्तराय जी

—मोहनलाल
मन्त्री

—

आर्य मर्यादा में विज्ञापन देकर लाभ उठाए

श्री वीरेन्द्र जी सम्पादक तथा प्रकाशक द्वारा जयहिन्द प्रिंटिंग प्रैस जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा ... कार्यालय, चौक किशनपुरा जालन्धर से इसकी स्वामिनि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र जालन्धर

सम्पादक-वीरेन्द्र एम. ए प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, कृष्णपुरा चौक जालन्धर, दूरभाष-७४२५०

वार्षिक शुल्क १५) वर्ष १३, अंक ३९, ३ कार्तिक सम्वत् २०३७, तदनुसार १९ अक्तूबर १९८०, दयानन्दाब्द १५५

सभा से सम्बन्धित आर्य समाजों के अधिकारियों तथा सभा के सदस्यों की सेवा में

मान्य महोदय, सादर नमस्ते !

एक आवश्यक विषय की ओर आपका ध्यान दिलाने के लिए यह पत्र लिख रहा हूं। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने यह निर्णय कर रखा है कि आर्य समाज मन्दिर किसी दूसरी संस्था को उसके उपयोग के लिए न दिए जाएं। विशेषकर किसी भी राजनैतिक, धार्मिक या सामाजिक संस्था को केवल धार्मिक संस्थाओं को दिए जा सकते हैं यदि उन्होंने आर्य समाज के सिद्धान्तों के विरुद्ध वहां कोई समारोह न करना हो परन्तु राजनैतिक संस्थाओं और उन सामाजिक संस्थाओं को जिनका आर्य समाज से कोई सम्बन्ध नहीं आर्य समाज मन्दिर विशेषकर वह स्थान जहां यज्ञ आदि होते हैं, किसी प्रकार के प्रयोग के लिए न देने चाहिए। इससे कई प्रकार की कठिनाईयां पैदा हो सकती हैं और इसी के साथ आर्य समाज मन्दिर की पवित्रता भी भंग हो सकती है। गुरुद्वारे मस्जिदें या गिरजा घर राजनैतिक संस्थाओं को नहीं दिए जाते। अकाली गुरुद्वारों में अपनी बैठक करते हैं परन्तु वहां नहीं करता जहां ग्रन्थ साहब का पाठ होता है। आर्य समाजी इस बात का ध्यान नहीं रखते। जहां यज्ञ होता है वहीं राजनैतिक दलों की सभाएं भी हो जाती हैं। यह बहुत ही आपत्तिजनक स्थिति है। इसलिए आप इस ओर ध्यान दें और भविष्य में किसी भी राजनैतिक संस्था या किसी ऐसी सामाजिक या धार्मिक संस्था को आर्य समाज मन्दिर न दें जो आर्य समाज के सिद्धान्तों के अनुसार न चलती हो। आर्य समाज मन्दिर और विशेषकर जहां यज्ञ होता है और उपदेश दिये जाते हैं उसकी पवित्रता की सुरक्षा होनी चाहिए। किसी भी स्थिति में हमें आर्य समाज मन्दिरों को राजनैतिक दलों के पारस्परिक द्वन्द्व का एक अखाड़ा न बनने देना चाहिए।

वीरेन्द्र
सभा प्रधान

जनगणना और आपका कर्त्तव्य

आपकी सूचना के लिए यह लिखा जा रहा है कि भारत भर में जनगणना का कार्य १९८१ ई० में प्रारम्भ किया जाना है। आज से पूरे एक सौ वर्ष पूर्व १८८१ ई० की जनगणना के समय महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सभी को आदेश दिया था कि अपना नाम आर्य धर्म वैदिक तथा भाषा आर्य भाषा लिखाएं। स्वामी जी महाराज का यह आदेश राष्ट्र की एकता और अखण्डता के लिए अत्यन्त विवेक पूर्ण एवं दूरदर्शिता पूर्ण था। आर्य भाई-बहिन तब से बराबर अपने आचार्य का आदेश पालन करते आ रहे हैं।

आचार्य के इसी आदेश को सम्मुख रखते हुए हमारी शिरोमणि सभा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली ने अपनी अन्तरंग सभा दिनांक २३ ९ ८० की बैठक में सर्वसम्मति से यह निर्णय किया है कि हम सब आर्य स्त्री पुरुष १९८१ ई० में होने वाली जनगणना में अपने आपको आर्य धर्म के खाने में वैदिक एवं मातृ भाषा हिन्दी लिखावें।

आपकी जानकारी के लिए यह भी लिख देना चाहते हैं कि भारत सरकार के जनगणना विभाग ने सार्वदेशिक सभा को यह आश्वासन दिया है कि जो लोग अपने आपको 'आर्य' लिखवाएंगे उनका अन्तिम जोड़ हिन्दुओं में होगा। इसलिए हिन्दुओं की वास्तविक संख्या निश्चित करने में कोई अन्तर न पड़ेगा।

अत आप सब से अनुरोध है कि जनगणना के इस अवसर पर आप पूरी सतर्कता और जागरूकता का परिचय देते हुए अपने नगर उपनगर तथा ग्राम में जा जाकर सार्वदेशिक सभा के इस आदेश के अनुसार ही आर्य वैदिक धर्म और हिन्दी भाषा लिखवाने की कृपा करें।

वीरेन्द्र
सभा प्रधान

रामचन्द्र जावेद
सभा मन्त्री

श्वेताश्वतरोपनिषद् कथा माला—

ब्रह्माण्ड का कारण-क्या काल, स्व...

किसी समय ब्रह्मवादी लोग चर्चा करने लगे—ब्रह्मवादिन वदन्ति। क्या चर्चा करने लगे? यह चर्चा करने लगे कि सृष्टि का कारण क्या ब्रह्म है या कुछ और?—किं कारणम्, ब्रह्म? वे सोचने लगे कि हम लोग कहां से उत्पन्न हुए हैं—कुत स्म जाता किस से जीते हैं—जीवाम केन, और किस मे प्रतिष्ठित अर्थात् स्थित है—क्व च सम्प्रतिष्ठिता, किसकी व्यवस्था मे बंधे हुए-अधिष्ठिता केन हम सुख तथा दु खो मे बरतते है-सुखेतरेषु वर्तामहे। ब्रह्मज्ञानी इस सब व्यवस्था पर चर्चा करने लगे– ब्रह्मविद व्यवस्थाम्, १॥

चर्चा का विषय यह था कि सृष्टि का कारण ब्रह्म नही तो क्या काल (Time) कारण है—काल? काल कारण मानने वाले ही कहा करते हैं—समय आ गया या वक्त का फेर है। तभी कोई वस्तु गर्मी मे होती है, कोई सर्दी मे कोई वर्षा मे। अगर काल कारण नही तो क्या स्वभाव (Nature) कारण है? हरेक वस्तु का अपना-अपना स्वभाव है। अग्नि का स्वभाव गर्मी है जल का स्वभाव शीतलता है। क्या अपने स्वभाव से ही सृष्टि का निर्माण हो गया है। यह अपने-आप बनी है, इस का कोई बनाने वाला नही है। अगर स्वभाव भी कारण नहीं तो क्या 'नियति Predentermi nation) कारण है? हम चाहते कुछ हैं होता कुछ और है? तभी लोग कहा करते हैं कि जो होना होता है वही होता है, लिखे को कोई मेट नही सकता। अगर नियति कारण नही, तो क्या यदृच्छा (Chance) कारण है? अगर सब कुछ नियत नही तो जो-कुछ हो रहा है यो ही हो रहा है, इसमे कोई लक्ष्य नही प्रयोजन नही। अगर यदृच्छा कारण नही तो क्या पंच-महाभूत–भूतानि (matter) कारण है। पृथिवी, अप तेज, वायु का संयोग हो जाता है और इन महाभूतो से सृष्टि बन जाती है। अगर महाभूत कारण नही, तो क्या स्त्री (woman) कारण है—योनि। अगर स्त्री कारण नही तो क्या यह पुरुष (Man) कारण है? सृष्टि की रचना पर विचार करते हुए इन सबकी चर्चा करनी चाहिए– इति चिन्त्यम्। इनमे 'भूतानि, का अर्थ पंच महाभूत तथा योनि का अर्थ स्त्री किया है क्योंकि ब्रह्म के अतिरिक्त आठ संख्या इसी प्रकार बनता है?

यह भी हो सकता है कि काल स्वभाव आदि का संयोग कारण हो—संयोग एषाम्। परन्तु नही, इनका संयोग कारण नही हो सकता क्योंकि ये सब जड़ हैं—न तु आत्मभावात्। तो क्या फिर स्त्री तथा पुरुष इस सृष्टि का कारण है? इस विषय की चर्चा करने वाले ऋषि कहते हैं कि स्त्री तथा पुरुष भी कारण नही हो सकते क्योंकि उन्हे तो सुख-दु ख होता है, वे अपने सुख दु ख के मालिक नही हो सकते अन्यथा वे अपने को सदा सुख ही दिया करते, दु ख न देते—आत्मा अपि अनीश सुख दु ख हेतो।

सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे जो कारण गिनाए जा सकते थे वे यहा गिना दिए गए हैं और साथ ही कह दिया कि 'काल' स्वभाव 'नियति 'यदृच्छा' 'पंच-महाभूत इनका संयोग, योनि तथा 'पुरुष' -इनमें से कोई सृष्टि का कारण नहीं हो सकता। पहले छः तो इसलिए कारण नही हो सकते क्योंकि वे जड़ हैं—अनात्मभावात्। जड़ जड़ का निर्माण कैसे कर सकता-है? स्त्री तथा पुरुष भी कारण नही हो सकते क्योंकि उन्हें सुख-दु ख दोनो होते हैं। अपने आप को कोई सुख तो दे सकता है दु ख क्यो देने लगा—स्त्री तथा पुरुष का आत्मा भी सृष्टि का स्वामी नही है-आत्मा अपि अनीश क्योंकि उसे सुख तथा दु ख दोनों होते हैं—सुख दु ख हेतो।२।

२ ये कारण नही हैं—कारण इकला परमात्मा है—ब्रह्म चक्र की कल्पना।

जब उन्होने इस समस्या पर ध्यान योग से विचारना शुरू किया तो देखा—ते ध्यानयोग अनुगता अपश्यन्। क्या देखा? यह देखा कि परमात्मा की दिव्य शक्ति जो अपने गुणो की महानता के कारण ढ़ी छिपी हुई है, निगूढ है- देवात्मशक्ति स्वगुणै निगूढाम्—वही इस सृष्टि का कारण है। वही वस्तु दीख सकती है जो निगूढ नही है, जो व्यक्त है सीमित है, जो महान् है इतनी महान् है कि विश्व भर मे व्याप्त है, निगूढ है, वह दीखेगी कैसे। दीखने के लिए वस्तु को सीमाबद्ध होना चाहिए। वह आत्मशक्ति तो सीमाओं से बन्धी हुई नहीं है। वह आत्म शक्ति जिसने भी सृष्टि की उत्पत्ति के सब सम्भव कारण गिनाए गए हैं उन सबको—य कारणानि निखिलानि तानि जो काल से ... तक पहले गिनाये ... से लेकर आत्मा ...

चक्र की कल्पना की। चक्र का अर्थ है—पहिया। पहिए की परिधि को 'नेमि' कहते है। इस परिधि पर ही पहिया घूमता है उसी पर गति करता है। इस सृष्टि चक्र की नेमि, इसकी परिधि प्रकृति है—एक नेमिम्। इस परिधि के तीन वृत् है, तीन लपेट है—त्रिवृतम्। ये तीन लपेट कौन से है? सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण—ये तीन लपेट प्रकृति पर चढे हुये हैं। पहिया जैसे आगे जाता है दाएं जाता है या बाएं जाता है—इसके तीन मार्ग हैं—त्रिमार्ग भेद, इसी प्रकार सृष्टि चक्र के चलने के निमित्त अर्थात् कारण दो हैं—जीवात्मा के शुभ कर्मों के कारण शुभ फल, अशुभ कर्मों के कारण अशुभ-फल—द्विनिमित्तम्। परन्तु शुभ-अशुभ किसी प्रकार का भी कर्म हो, संसार में मनुष्य जो भी कर्म करता है, सृष्टि चक्र के चलने का मुख्य कारण एक है और वह है-'मोह (Attachment) एकम् मोहम् ।४।

इस सन्दर्भ मे कहा तो बहुत कुछ गया है परन्तु हमने मुख्य-मुख्य बातो का उल्लेख कर दिया है। वे ऋषि इस निष्कर्ष पर पहुच गये कि संसार का चक्र हमारे 'मोह' के कारण ही चल रहा है। 'मोह' हमें शुभ की तरफ भी ले जाता है, अशुभ की तरफ भी, परन्तु इसकी व्यवस्था ब्रह्म द्वारा ही होती है, काल से लेकर जीवात्मा तक—कोई सृष्टि चक्र की व्यवस्था को नही कर सकता, पर ब्रह्म परमात्मा ही इस व्यवस्था का अधिष्ठाता है। काल आदि जड़ हैं, वे व्यवस्था नहीं कर सकते आत्मा स्वयं सुख दु ख भोगता है इसलिए वह भी इस व्यवस्था का अधिष्ठाता नही हो सकता, परमात्मा ही इस व्यवस्था का कारण हो सकता है क्योंकि उसे अपना कुछ लेना-देना नही है।

३ ब्रह्माण्ड में 'चक्र' की तथा पिंड में 'नदी' की कल्पना ★

ब्रह्माण्ड का 'ब्रह्म चक्र' के रूप मे वर्णन करके अब पिंड की एक प्रचण्ड नदी से तुलना करते हैं। जैसे नदी का जल नाना पांच स्रोतो से फूटता है वैसे शरीर रूपी नदी की पांचों ज्ञानेन्द्रियां उसके पांच स्रोत हैं जिनमें से ज्ञान रूपी जल-फूट पड़ता है—पंचस्रोत अम्बुम्, जैसे नदी के स्रोत की योनि उसका कारण पहाड़ होता है, वैसे शरीर रूपी नदी के निर्माण मे पांचो महाभूत उसके उद्गम के पहाड़ हैं— पंचयोनि जैसे नदी का वेग कहीं उग्र, कहीं वक्र हो जाता है वैसे मानव जीवन की प्रवृत्तियां कहीं तीव्र हो जाती है, कहीं टेढे-मेढे मार्गों में चली जाती हैं—उग्र वक्र जैसे नदी मे तरंगें उठा करती हैं वैसे शरीर रूपी नदी में पांचों प्राण उस की तरंगें हैं—पंच प्राण ऊर्मिम्, जैसे नदी ... है वहां से नदी ... मानव जीवन की ... रूप, रस, गन्ध, ... ज्ञान का ही ... अगर ... नदी में कभी ज्वार आ जाता है, बाढ़ आ जाती है, वैसे जीवन रूपी नदी में गर्भ, जन्म, जरा, व्याधि, मरण— इन पांच प्रकार की बाढ़ आ जाती है—पंच दु ख ओघ-वेगाम्।

जैसे नदी को पार करने के पचासो तरीके हैं वैसे जीवन रूपी नदी को पार करने के भी पचासों तरीके हैं—पंचाशद् भेदाम्। ऋषि कहते हैं कि इस जीवन नदी को पार करने के मार्गों का अध्ययन करें—अधीम ।५।

सबको जीवन देने वाले, सबके पालक —सर्व आजीवे, सबको अपने मे धारण करने वाले–सर्वसंस्थ उस महान्— बृहन्ते तस्मिन् ब्रह्म-चक्र मे इस जीव रूपी हंस को कोई घुमा रहा है—हंस भ्राम्यते ब्रह्म चक्रे। जो व्यक्ति अपने को तथा अपने को प्रेरणा देने वाले को पृथक्-पृथक् जान जाता है—पृथक् आत्मान प्रेरितार च मत्वा, वह उसके साथ प्रेम भाव उत्पन्न होने पर पुष्ट हुआ —उससे अमृतत्व प्राप्त कर लेता है—तेन अमृतत्वम् एति ।६।

४ ईश्वर, जीव तथा प्रकृति— इन तीन का वर्णन

जो ऋषि सृष्टि के कारणों के सम्बंध में चर्चा कर रहे थे वे कहते हैं कि हमने जो कुछ गाया वह परम ब्रह्म का गुणानुवाद किया—उद्गीतम् एतत् परम तु ब्रह्म। उस परम ब्रह्म में त्रिगुणात्मक प्रकृति तथा अक्षर जीव सुप्रतिष्ठित हैं—तस्मिन् त्रय सुप्रतिष्ठित अक्षर च। ब्रह्मवेत्ता लोग इन तीनों के परस्पर अन्तर (भेद) को जान लेने पर—अत्र अन्तर ब्रह्मविद विदित्वा—ब्रह्म मे लीन होकर, उस मे रम कर—लीना ब्रह्मणि तत्परा योनि से अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं—योनि मुक्ता ।७।

अभी कहा कि सृष्टि मे तीन तत्व हैं—प्रकृति, जीव तथा ईश्वर। इनमे से प्रकृति क्षर भी है अक्षर भी है। 'क्षर' का अर्थ है क्षर जाने वाली, 'अक्षर' का अर्थ है न क्षरने वाली। प्रकृति इन दोनो गुणो से युक्त है—संयुक्त एतत् क्षरम् अक्षरम् च। प्रकृति व्यक्त भी है, अव्यक्त भी है-उसका क्षर रूप व्यक्त है अक्षर रूप अव्यक्त है—व्यक्ताव्यक्तम्। इस क्षर अक्षर तथा व्यक्ताव्यक्त प्रकृति का, विश्व का भरण ईश्वर करता है—भरते विश्व ईश। ईश्वर तो सर्वशक्तिमान् है, ईश है, आत्मा अनीश है—अनीश च आत्मा। वह आत्मा

(शेष पृष्ठ ६ पर)

संसार में हम क्यों आए ?

ले०—श्री परमानन्द जी वानप्रस्थी

आर्य भाइयो ! आज जो अपनी सुन्दरता को देखते हुए घण्टों तक शीशे के सामने से नहीं हटते । इस नाशवान शरीर का खूब शृंगार करते हो । क्या उस समय आपकी खुशियां कहां रहेंगी जब कि यौवन और सुन्दरता की पूर्णमासी की चटक चान्दनी सुन्दर रात्रि ढल कर बुढ़ापे की अमावस्या की काली घोर रात सिर पर आ जाएगी और तुम्हारे सुन्दर मुखड़े पर झुर्रियां पड़ जाएंगी । इतना ही नहीं तुम्हारे कमल जैसे नयन चिड़ियों जैसा घोंसला बन जाएगा । मोती जैसे चमकीले दान्त सदा साथ के साथी एक एक करके तुम्हारे मुख को छोड़ जाएंगे । जवानी के नशे में मतवाले सीना उभार कर चलने वालो की कमर कमान की तरह झुक जाएगी जो लोग बचपन और जवानी को देखते प्यार करते थे वह रास्ता कतराकर चलने लग जाएंगे । उस समय अपने बचपन और जवानी की फोटो मित्रों को दिखाकर कहना पड़ेगा कि हम भी कभी ऐसे होते थे । इसलिए सोचो हम संसार में क्यों आए ? और क्या कर चले । अरे नादान इन्सान ! तुम्हारे जीवन के सब प्रकार के नशों को इस बुढ़ापा उतार देगा जैसाकि मेरे जीवन के बुढ़ापे ने मेरे सब नशे उतार दिए हैं मुझे देखो तो पता चलेगा कि मेरा अब शरीर कैसा बन गया है । मौत की चढ़ाई रहा सहा तेरा नशा उतार देगी सभी पुत्र धन महल कोठियां बैंकों या जमीन में दबे धन को तुम इस प्रकार छोड़ कर चल दोगे । मानो एक पहरेदार सिपाही दूसरे सिपाही को पहरेदार बनाकर अपने घर चल दिया हो । किसी कवि ने खूब कहा है—

चार दिन हैं जानो दौलत का खुमार
मौत की तुरशी नशा देगी उतार ।
जब उठाएंगे जनाजा मित्र के यार
हाथ मल मलकर कहोगे बार बार ।
किस लिए आए थे और क्या कर चले
जो यहां पर जोड़ा वहीं पर धर चले ।

वार्षिक निर्वाचन

आर्य समाज शहीद भगतसिंह नगर जालन्धर का वार्षिक चुनाव सर्वसम्मति से निम्न प्रकार हुआ—

प्रधान श्री मूलखराज आर्य उप प्रधान डा० जितेन्द्र कुमार अग्रवाल मन्त्री—श्री सुखदेवराज आर्य उपमन्त्री—श्री रणवीर आर्य कोषाध्यक्ष—श्री नरेश कुमार शास्त्री पुस्तकाध्यक्ष—श्री सुदर्शन कुमार आर्य अन्तरंग सदस्य श्री हरीश कुमार ।

-मन्त्री

—

56वां वार्षिकोत्सव

आर्य समाज (अनारकली) मन्दिर मार्ग नई दिल्ली का ५६वां वार्षिकोत्सव इस वर्ष आगामी ८ से १० नवम्बर तक बड़ी धूमधाम के साथ मनाने की जोरदार तैयारियां आरम्भ कर दी गई हैं ।

आर्य समाज (अनारकली) द्वारा प्रसारित एक विज्ञप्ति के अनुसार वार्षिकोत्सव से पूर्व ३ ११ ८० से ८ ११ ८० तक प्रातः ८ से ८.३० बजे तक सुप्रसिद्ध भजनोपदेशकों के भजन तथा सायं ८.३० से ९.३० बजे तक आर्य जगत के सुप्रसिद्ध विद्वान पण्डित शिवकुमार शास्त्री (भूतपूर्व संसद सदस्य) द्वारा वेद कथा तथा दैनिक रूप से प्रातः ६.३० से ८.३० बजे तक पण्डित दयाराम जी शास्त्री द्वारा यजुर्वेद पारायण यज्ञ होगा ।

इस यज्ञ की पूर्णाहुति ९ ११ ८० रविवार को प्रातः ७.३० बजे होगी । इसी दिन दोपहर ? बजे महर्षि लंगर का भी आयोजन किया गया है ।

इसी अवसर पर १० ११ ८० को दोपहर १२ बजे से सायं ३ बजे तक स्त्री आर्य समाज का भी वार्षिकोत्सव सम्पन्न होगा ।

आर्य समाज (अनारकली) नई दिल्ली के मन्त्री श्री रामनाथ सहगल ने इस कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए समस्त आर्यजनों का आह्वान किया है ।

(प्रचार विभाग दिल्ली)

—

श्री श्यामलाल जी का निधन

आर्य समाज सामाना के प्रधान श्री श्यामलाल जी का निधन २८ ९ ८० को हो गया है । आप एक दानवीर व्यक्ति और आर्य समाज की रीढ़ की हड्डी थे । आप तन मन धन से आर्य समाज की सेवा करते थे । आप म्युनिसिपल कमिश्नर भी रहे । श्री श्यामलाल जी के निधन से आर्य समाज को बड़ा धक्का लगा । उनकी शव यात्रा में हजारों लोगों ने भाग लिया । वैदिक रीति से अन्तिम संस्कार हुआ ।

हम सभी आर्य बन्धु परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह उस दिवंगतात्मा को सद्गति प्रदान करे और उनके सारे परिवार को इस महान् दुःख सहन करने की शक्ति दें ।

—परमानन्द वानप्रस्थ

आर्य्य-ध्वज-गीत

(ध्वजारोहण के अवसर पर गाया जाने वाला ध्वज गीत
यह गीत सभी आर्य बन्धुओं को कण्ठस्थ होना चाहिए)

जयति ओम ध्वज व्योम विहारी ।
विश्व प्रेम प्रतिमा अति प्यारी । जयति० ।
सत्य सुधा बरसाने वाला स्नेह लता सरसाने वाला ।
साम्य सुमन विकसाने वाला विश्व विमोहक भवभय हारी ॥
। जयति० ।
इसके नीचे बढ़ अभय मन सत्पथ पर सब धर्म धुरी जन ।
वैदिक रवि का हो शुभ उदयन आलोकित होवे दिशि सारी ।
। जयति० ।
इससे सारे क्लेश शमन हो दुर्मति दानव द्वेष दमन हो ।
अति उज्ज्वल अति पावन मन हो प्रेम तरंग बहे सुखकारी ।
। जयति० ।
इसी ध्वजा के नीचे आकर ऊंच नीच का भेद भुला कर ।
मिले विश्व मुद मंगल गा कर पाखण्ड बिसारी
। जयति० ।
इसी ध्वज को लेकर कर में भर दें वेद ज्ञान घर घर में
सुभग शान्ति फैले जगभर में मिटे अविद्या की अंधियारी ।
। जयति० ।
विश्व प्रेम का पाठ पढ़ाएं सत्य अहिंसा को अपनाएं ।
जग में जीवन ज्योति जगाएं त्यागपूर्ण हो वृत्ति हमारी ।
। जयति० ।
आर्य जाति का सुयश अक्षय हो आर्य ध्वजा की अविचल जय हो ।
आर्य जनों का ध्रुव निश्चय हो आर्य बनावें वसुधा सारी ।
। जयति० ।

—

धनु पर वाण चढ़ाओ

ले०—श्री राधश्याम आर्य एडवोकेट

फैली भू पर वृत्ति राक्षसी रावण के युग जैसी ।
राम राज्य के वांछित नाम पर बनुज व्यवस्था कैसी ।
आज दिशाओं में होता है दानवता का ही उद्घोष ।
नहीं दिखाई देता किंचित भी हमको अब अपना दोष ।
आज हमारे अन्तर को अति स्वार्थवाद ने घेरा है ।
मानव उर में असुर वृत्तियों का ही भरा अन्धेरा है ।
कण कण से उठ रहा यहां है दीनों का दारुण क्रन्दन ।
होता भारत की धरती पर दानवता का अभिनन्दन ।
उठो ! राम के सच्चे वंशज धनु पर वाण चढ़ाओ ।
एक नहीं लाखों रावण हैं निर्भय मार गिराओ ।

लुधियाना ... के सत्संग

वेद प्रचा... ...र से ... सत्संग ... किया जाता है। ... मे श्री श्री दुनीचन्द जी के ... मुहल्ला ताजगन्ज, श्री० देसराज जी बोहरा, अस्पताल रोड श्री महेन्द्र कुमार जी न्यू शिवाजी नगर श्री ओम्प्रकाश जी महाजन माडल ग्राम, श्री ज्ञान चन्द जी भगत हबीब गन्ज श्री ज्ञानचन्द जी आर्य इकबाल गन्ज, श्रीमती शान्तिदेवी वर्मा, बुढ़ढ मुहल्ला, मे पारिवारिक सत्संग सम्पन्न हुये जिसमे प्रो० वेदव्रत जी, प० ओमपाल शास्त्री जी श्री रूपलाल जी, के मधुर उपदेश हुये, और ... कुलभूषण आर्य तथा श्री राम प्यारे आर्य के प्रभु भक्ति के भजन हुये। जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

—मायानन्द आर्य

—

वेद सप्ताह सम्पन्न

आर्य समाज साबुन बाजार का वेद सप्ताह सम्पन्न हुआ, यज्ञ की पूर्णाहुति ५ १०-८० को प्रात १० बजे हुई। श्री प० रामदेव जी, श्री डा० बालकृष्ण जी शास्त्री, प० वेद प्रकाश जी पाठक, प० मदनगोपाल शास्त्री के उपदेश हुए। श्री ज्ञान प्रकाश वर्मा, श्रीमती राजेश्वरी वर्मा श्री कृपाराम, श्री मदनमोहन और ब० महेश के प्रभावशाली भजन हुए।

श्री प्रि० दत्त जी, श्री प्रि० डो० पी० टण्डन प्रि० शारदादेवी जी, प्रि० भगवती भल्ला, स्त्री आर्य समाज, आर्य युवक सभा आर्य समाज दाल बाजार माडल टाऊन और फील्डगंज के बहुत से आर्य बन्धुओ ने इस कार्यक्रम मे पूर्ण सहयोग दिया।

— डा० वासिया मन्त्री

निर्वाण शताब्दी

१-१२-८० से ७-१२ ८० तक गुरुकाल मे समारोह पूर्वक महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी मनाई जा रही है।

समारोह के मुख्य आकर्षण

यजुर्वेद पारायण यज्ञ ... संस्कार, वेद सम्मेलन, राष्ट्र ... सम्मेलन, महाकवि सम्मेलन, ... साहित्य, महिला सम्मेलन, ... मे दल द्वारा वेद प्रचार, मुफ्त महर्षि जीवन वितरण, हरियाणा प्रान्तीय आर्य वीर दल का प्रतिनिधि सम्मेलन।

+ विशाल शोभा यात्रा होगी +

इस अवसर पर आर्य जगत के सुप्रसिद्ध सन्यासी, महात्मा, विद्वान्, विदुषी देवियां और राष्ट्रीय नेता पधार कर ... को ... करेंगे।

अत आप से प्रार्थना है कि तन, मन, धन से सहयोग देकर इसे सफल बनाएं तथा स्वागत समिति के सदस्य बनें।

—रामचन्द्र आर्य
बसन्तराय स्वागतकर्ता

—

दशहरा ... में आर्य युवक सभा लुधियाना की ओर से आयोजन

दिनाक १९-१०-८० को आर्य युवक सभा लुधियाना की ... से दशहरा ग्राऊंड में निम्न कार्यक्रम सम्पन्न होगा—

साढ़े ११ से साढ़े १२ बजे तक हवन-यज्ञ प० ओमपाल जी शास्त्री।

साढ़े १२ बजे ... द्वारा श्री वेदप्रकाश की पूजा।

१ से २ बजे तक ... वेद प्रवचन द्वारा प्रो० वेदव्रत जी वेदालंकार।

२ बजे से शाम तक ... की ... कराई जाएगी।

—... मन्त्री लुधियाना

बरवाला मे पारिवारिक सत्संग

दिनांक ५-१०-८० रविवार को ... पास ... एडवोकेट ... आर्य हाई स्कूल बरवाला के घर पर पारिवारिक साप्ताहिक सत्संग हुआ। जिसमें डा० ... आर्य समाज ने मनोहर प्रवचन किया। हाजरी अच्छी थी, प्रोग्राम सफल रहा।

... आर्य

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र जालन्धर

सम्पादक-वीरेन्द्र एम ए प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, कृष्णपुरा चौक जालन्धर, दूरभाष—७४२५०

वार्षिक मूल्य १५) वर्ष १३, अंक ४० ११ कार्तिक सम्वत २०३७ तदनुसार २६ अक्तूबर १९८०, दयानन्दाब्द १५५

सम्प्रदायिक राष्ट्र विरोधी विघटनकारी शक्तियों से सावधान

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री वीरेन्द्र जी का वक्तव्य

26 अक्तूबर को सभी आर्य समाजें "एकता दिवस" मनाएं

कुछ सम्प्रदायिक राष्ट्रविरोधी और विघटनकारी शक्तियां फिर से अपना सिर उठाने लगी हैं। पिछले दो मास में उत्तर प्रदेश कश्मीर और कुछ दूसरे प्रान्तों में जो कुछ हुआ है उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। समय आ गया है कि वह सब शक्तियां जो इस देश के संगठन एकता और सुरक्षा में विश्वास रखती हैं इन विघटनकारी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए तैयार हो जाएं। यह काम केवल सरकार पर नहीं छोड़ा जा सकता। जनमत इसके लिए संगठित करने की आवश्यकता है ताकि यह स्पष्ट कर दिया जावे कि इस देश की एकता और संगठन को किसी प्रकार भी शिथिल करने की अनुमति नहीं दी जावेगी।

पंजाब में कुछ अकालियों ने दो कौमों के सिद्धान्त को फिर से प्रतिपादित करके यह कहना शुरू कर दिया है कि हिन्दू और सिख दो राष्ट्र हैं। मुहम्मद अली जिन्नाह के पद चिह्नों पर चलते हुए उन्होंने खालिस्तान का भी एक लक्ष्य अपने सामने रख लिया है। प्रान्तीय स्वायत्तता के नाम पर वह पंजाब का एक और विभाजन चाहते हैं। उनके एजेन्ट दूसरे देशों में जाकर इस हमारे देश के विभाजन के लिए प्रचार कर रहे हैं। यह एक ऐसी स्थिति है जिसका सामना करने के लिए वह सब व्यक्ति और संस्थाएं एक हो जावें जो अपने देश के संगठन और उसकी एकता की सुरक्षा करना चाहते हैं। आर्य समाज ने देश की स्वाधीनता के संग्राम में एक विशेष योगदान दिया था। इस लिए अब वह इस नई परिस्थिति का मौन रह कर देख नहीं सकता। कुछ अकाली हमारे इस प्रान्त के सामान्य जीवन को नष्ट कर देना चाहते हैं। आर्य समाज का यह अटल विश्वास है कि एक देश में एक ही राष्ट्र हो सकता है इसलिए यह दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को अस्वीकार करता है। उसका यह भी निश्चित मत है कि भारत में एक राष्ट्र एक विधान और एक राष्ट्रीय ध्वज रह सकता है। जो व्यक्ति दो राष्ट्रों का नारा लगा रहे हैं उनके साथ वही व्यवहार होना चाहिए जो विदेशियों के साथ होता है। यदि वह अपने आपको भारतीय राष्ट्र का एक अंग नहीं समझते तो यही उचित रहेगा कि वह इस देश को छोड़ कर किसी ऐसे देश में चले जायें जहां वह अपने विधान द्वारा शासन चला सकते हैं। हमारे देश में ऐसे व्यक्तियों के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए। पंजाबी सूबा बनने के पश्चात हम यह समझ रहे थे कि अकालियों की ओर से अब कोई मांग नहीं की जायेगी। परन्तु अब खालिस्तान का नारा लगा कर और दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को पेश कर के उन्होंने बता दिया है कि उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

इसलिए आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब इस देश की सब राष्ट्रीय शक्तियों को आह्वान करती है कि वे हमारे देश की एकता और संगठन के लिए जो यह नया संकट पैदा हो रहा है उसे रोकने के लिए कटिबद्ध हो जाएं।

इसी के साथ आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब सभी आर्य समाजों को यह आदेश देती है कि रविवार २६ अक्तूबर को एकता दिवस मनायें और उस दिन उस षड्यन्त्र को जनता के सामने उसके वास्तविक रूप में रखें जो हमारे राष्ट्र और हमारे देश की एकता और संगठन के विरुद्ध किया जा रहा है। हमें यह बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहिए कि हम किसी भी अवस्था में दो कौमों के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते और प्रत्येक रूप में इसका विरोध करेंगे।

क्या आपने हस्ताक्षर कर दिए?

राष्ट्रपति को पंजाब में हिन्दी का सम्मानित स्थान दिलाने के लिए जो ज्ञापन देना है क्या उस पर आपने हस्ताक्षर कर दिए हैं? यदि नहीं किए तो अपने नगर की किसी भी आर्य समाज में जाकर वह ज्ञापन ले लें और उस पर हस्ताक्षर कर दें।

— वीरेन्द्र

श्वेताश्वतरोपनिषद् कथा माला

ईश्वर, जीव तथा प्रकृति—इन तीनों का वर्णन

ले०—श्री सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार दिल्ली

ज्ञ और अज्ञ ये दो अजे हैं अजन्मा—ज्ञ—अज्ञौ द्वौ अजौ। इन में से ज्ञ—अर्थात् ज्ञानमय जो ईश है परमात्मा है अज्ञ अर्थात् ज्ञानरहित जो है वह अनीश है जीवात्मा है। इन दो अजो के अतिरिक्त एक तीसरा है अजा अजा हि एका जो भोक्ता के भोग्य के लिए लगी हुई है—भोक्तृ भोग्यार्थयुक्ता। इस प्रकार तीन अज अर्थात् अजन्मा हैं एक परमात्मा है जिसे ज्ञ कहा ईश कहा दूसरा अज जीवात्मा है। जिसे अज्ञ कहा अनीश कहा तीसरी प्रकृति है जिसे स्त्रीलिंगी होने के कारण अजा कहा जीवात्मा की भोग्य कहा इन तीनो में जो अनन्त है विश्व रूप है प्रकृति का भोग नहीं कर रहा अकर्ता है वह परमात्मा है अनन्त च आत्मा विश्वरूपा हि अकर्ता जब ज्ञानी इन तीनो को अपने अपने रूप मे जान लेता है—त्रय यदा विन्दते—तब समझ लो कि ब्रह्म के यथार्थ रूप को जान लिया—ब्रह्म एतत ॥९॥

इस सन्दर्भ से स्पष्ट प्रतीत होता है कि श्वेताश्वतर उपनिषद् के ये ब्रह्मज्ञानी जो सृष्टि के कारणो के विवेचन की चर्चा कर रहे हैं सृष्टि चक्र के तीन कारण मानते हैं ईश्वर जीव तथा प्रकृति।

प्रधान अर्थात् प्रकृति क्षर है क्षर जाने वाली है क्षर प्रधानम् हर अर्थात् परमेश्वर अक्षर है क्षर जाने वाला नहीं है अमृत है—अमृता- क्षर हर। क्षर (प्रकृति प्रकृति) तथा आत्मा इन दोनो पर स्वामित्व उसी एक देव परमात्मा का है क्षरात्मानी ईशते देव एक। उसी देव के ध्यान से—तस्य अभिध्यानात उसके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ देने से- योजनात अपने को उसी मे मिटाकर उसमे लीन हो जाने से—तत्वभावात तत्पश्चात—भूय अन्ते म- शे यह आत्मा विश्व माया के बन्धनो से छूट जाता है—विश्वमाया नवति ॥१०॥

उस परमात्म देव को जानकर—ज्ञात्वा देवम् संसार के अविद्या क्लेशादि सब बन्धन छूट जाते हैं सर्वपाशाप हानि अविद्या क्लेशादि के छूट जाने से जन्म मृत्यु का चक्र छूट जाता है—क्षीणै क्लेशैः जन्म मृत्यु प्रहाणि। उसे जान लेना ही पर्याप्त नहीं है जान लेने के बाद उसका ध्यान करते रहने से एक तीसरी अनुभूति प्राप्त होती है—तस्य अभिध्यानात तृतीय। वह तृतीय अनुभूति क्या है? परमात्मा मे ध्यान लग जाने से मनुष्य अपने को देह से भिन्न अनुभव करने लगता है देहभेदे। देह से भेद अनुभव करने पर क्या होता है? देह से अपने को भिन्न अनुभव करने पर सब ऐश्वर्य प्राप्त हो जाते हैं—विश्वैश्वर्यम मनुष्य अनुभव करने लगता है कि वह ऐश्वर्यादि गुणो को जान है उसे संसार असार दीखने लगता है। अब तक वह प्रकृति के साथ बंधा हुआ था अब प्रकृति के बन्धन से छूट कर वह अपने केवल स्वरूप मे आ जाता है—केवलम। अब उसे विषयो मे भटकाने वाला कोई नहीं रहता वह आप्तकाम हो जाता है—आप्तकाम ।११

वह देव जिसको जान लेने से मनुष्य आप्तकाम हो जाता है कहां है? वह देव कहीं दूर नहीं वह सदा अपने भीतर ही विराजमान रहता है यह जान लो एतत् ज्ञेयम् नित्यम् एव आत्म संस्थम उसे जान लेने के बाद और कुछ जानने के लिये नहीं रहता न अत पर वेदि तव्य हि किंचित। यह जानकर कि जीवात्मा भोक्ता है प्रकृति भोग्य है और परमेश्वर प्रेरक है—भोक्ता भोग्य प्रेरितार च मत्वा यह समझ यह समझ लो कि ब्रह्म के विषय मे जो तीन बातें कही जा सकती थी कह दी गई—सर्व प्रोक्तम त्रिविध ब्रह्म एतत। यामेरे लिए ब्रह्म का यही रूप है—ब्रह्म मे तत ॥१२।

जिस प्रकार अग्नि अपने मूर्त या व्यक्त रूप को छोड़कर अपने कारण अमूर्त या अव्यक्त रूप में चली जाय—अग्नि यथा योनिगतस्य तो उसका मूर्त रूप नहीं दीखता—मूर्ति न दृश्यते, परन्तु उसका कोई-न कोई चिन्ह बना रहता है जिससे हम जान सकते हैं कि वहाँ अग्नि थी—न एव च लिंगनाश उस अग्नि को फिर कारण इन्धन से हम फिर-से ग्रहण कर सकते हैं—स भूय एव इन्धनयोनि: गृह्य इसी प्रकार आत्मा तथा परमात्मा का अमूर्त है—तद् वा उभयं वै, ओंकार से—प्रणवेन इस देह में ग्रहण किये जा सकते हैं—देहे ॥१३॥

अपने देह को नीचे की अरणि और प्रणव को ऊपर की अरणि बना कर—स्व देह अरणि कृत्वा प्रणव च उत्तरारणि ध्यान की रगड़ के अभ्यास से- ध्यान निर्म थन अभ्यासात् अपने अन्तःकरण के भीतर निगूढवत विद्यमान परमात्म-देव का दर्शन करे देव पश्येत् निगूढवत -अर्थात जैसे अरणियों में अग्नि निगूढ है वैसे विश्व मे परमात्म देव निगूढ है ॥१४॥

जिस प्रकार तिलो में तेल तिलेषु तैलम दही मे घृत दधिनि इव सर्पि स्रोतो मे जल आप स्रोतःसु अरणियो मे अग्नि विद्यमान रहती है अरणीषु च अग्नि इसी प्रकार इस परमात्मा को आत्मा मे ग्रहण किया जाता है एव आत्मा आत्मनि गृह्यते असौ। परन्तु यह दीखता सत्य और तप की रगड़ से है—सत्येन एनम तपसा च अनुपश्यति। १५॥

सर्वव्यापी परमात्मा को इस प्रकार जाने सर्वव्यापिनम आत्मानम जैसे दूध में घृत व्याप रहता है -क्षीरे सर्पि इव अर्पितम। इस आत्म विद्या का मूल तप है बिना तप के आत्म विद्या प्राप्त नहीं होती आत्मविद्या तपोमूलम। यही परम ब्रह्मोपनिषद् है तद् ब्रह्मो पनिषत्परं यही परम ब्रह्मोपनिषद् है—तद् ब्रह्मोपनिषत्पर इति। १६॥

इस उपनिषद् के प्रथम अध्याय मे सृष्टि के कारणो का विवेचन करते हुए काल स्वभाव नियति यदृच्छा भूत महाभूत स्त्री पुरुष इनका संयोग-इन सब पर विचार करतेहुए इनसबका निरा करण कर दिया है और अन्त मे परमेश्वर को ही सृष्टि का कारण माना है। जो जिज्ञासु सृष्टि पर विचार कर रहे हैं उनका निश्चय यह है कि सृष्टि एक चक्र की तरह चल रही है जीवन नदी है एक प्रवाह की तरह बह रहा है। सृष्टि चक्र तथा जीवन प्रवाह मे तीन तत्त्व हैं जो नित्य हैं। वे हैं ईश्वर जीव तथा प्रकृति। इन तीनो को अज संज्ञा दी गई है। अज का अर्थ है—न जायते इति अज जो उत्पन्न नहीं होता वह अज है। क्योंकि ये तीनों उत्पन्न नहीं होते इस लिए ये तीनों अज होने के कारण अनादि हैं, इनका कोई आदि नहीं। ब्रह्म-ज्ञान का अर्थ है—इन तीनों के भेद को समझ लेना। इन तीनों में भेद यह है कि जीवात्मा भोक्ता है प्रकृति भोग्य है परमेश्वर इन दोनों को प्रेरणा देने वाला है—भोक्ता प्रेरितार च मत्वा। इनमें प्रकृति भोग्य है क्षर है क्षर जाती है परमात्मा तथा जीवात्मा अक्षर है क्षरने वाले नहीं। प्राकृतिक प्रलोभनों के कारण जब रस रूप स्पर्श के भोग के साथ बंध जाने के कारण हम प्रकृति के पाशों से बंध जाते हैं—अनीश च आत्मा बध्यते भोक्तृ भावात् प्रकृति से अपने सम्बन्ध को तोड़ देना ही इन पाशों से मुक्त होने का रास्ता है—ज्ञात्वा देव मुच्यते सर्वपाशैः। आत्मा के जानने की बात यह है कि प्रकृति जड़ है आत्मा तथा परमात्मा चेतन हैं। आत्मा जड़ के साथ अपनी एकता स्थापित करेगा तो उसमें प्रकृति के राग द्वेष कलह क्लेश आदि गुण आ जायेंगे परमात्मा के साथ अपनी एकता स्थापित करेगा तो उसमें सच्चिदानन्द ईश्वर के गुणो की अभि व्यक्ति होगी। परमात्मा सर्वत्र है परन्तु उसे पाने के लिए दूर जाने के स्थान में अपने भीतर ही उसे देख लेना सुगम है। यह काम प्रणव द्वारा परम देव के ध्यान से हर किसी के लिये सम्भव है। जैसे तिलो मे तेल दूध मे घी स्रोतो मे जल अरणि में अग्नि विद्यमान है उसे प्रकाश में लाने की जरूरत है वैसे हमारे भीतर ही परमात्म देव विद्यमान हैं ध्यान द्वारा उस तक पहुंचा जा सकता है।

(क्रमश)

घर घर मे वेद पाठ की योजना

चण्डीगढ़ मे पूर्णिमा के उप लक्ष मे वेद गोष्ठी पूर्णिमा वेदिष्ट यज्ञ आदि कार्यक्रम श्री देव राज शर्मा के गृह निवास मे सम्पन्न हुआ। जिसमें पद्मानु राय आर्य मन्त्री विश्व वेद परिषद् ने घोषणा की कि हमने प्रत्येक घर में वेद पाठ प्रारम्भ कराने हैं।

प्रिंसिपल बालकृष्ण दीवान वेदालंकार ने वेदो के अनेक मन्त्रो से परमेश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुए स्तुति प्रार्थना और उपासना की व्याख्या बड़े सुन्दर और रोचक ढंग से प्रस्तुत की पुराने आर्य समाजी वयो-वृद्ध श्री चादी राम शर्मा (अबोहर) ने विश्व वेद परिषद् के इस कार्य की सराहना की।

श्री शर्मा जी ने परिषद् को वेद प्रचार के लिये १०१ रुपये भेंट किये। और चारो वेदो का सैट भी मंगवाया।

सम्पादकीय—

आर्य समाज और राष्ट्र-विरोधी शक्तियां

पिछले दो तीन मास मे हमारे देश मे जो कुछ हुआ है कोई भी राष्ट्रवादी व्यक्ति उस की अवहेलना नही कर सकता। उत्तर प्रदेश कश्मीर और कुछ दूसरे प्रान्तो मे ऐसी स्थिति उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया जो आगे चल कर हमारे देश के संगठन उसकी एकता और सुरक्षा के लिए एक बहुत बड़ा संकट बन सकती है। आसाम नागालैण्ड मणिपुर अरुणाचल मेघालय और दूसरे क्षेत्रो मे ईसाई पादरियो के प्रोत्साहन से कुछ राष्ट्रविरोधी शक्तियो ने फिर से सिर उठाना शुरू कर दिया है। उत्तर प्रदेश और कश्मीर में कुछ मुसलमानो ने विदेशी शक्तियो के इशारे पर अत्यन्त ही गम्भीर स्थिति पैदा कर दी है। पंजाब मे अकालियो ने यह कहना शुरू कर दिया है कि हिन्दू और सिख दो राष्ट्र हैं। इसलिए पंजाब मे अकालियो को कुछ और अधिकार दिए जाए। उनमे से कुछ ने खालिस्तान नाम के एक नए देश का भी नारा लगा दिया है कहने का अभिप्राय यह कि देश के भिन्न २ प्रदेशो में यह सम्प्रदायिक राष्ट्र विरोधी शक्तियां फिर से सिर उठा रही हैं। ऐसे समय मे उन सब व्यक्तियो उन सब संस्थाओ का कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने संगठन को और अधिक सुदृढ बना कर इन विघटनकारी शक्तियो की चुनौति को स्वीकार करें। आर्य समाज ने देश की स्व० तन्त्रता के संघर्ष के समय अपना एक विशेष योगदान दिया था। उस स्वाधीनता के लिए उसने केवल हजारो व्यक्तियो को जेलो में ही नहीं भिजवाया था अपितु कुछ युवको का बलिदान भी दिया था। इसलिए इस देश की एकता और स्वाधीनता की रक्षा करने का उत्तर दायित्व आर्य समाज पर किसी दूसरी संस्था से कम नही है। पंजाब मे स्थिति इसलिए भी गम्भीर है कि अकाली सदा ही आर्य समाज के विरोधी रहे हैं। एक नया खालिस्तान बनने की तो कोई सम्भावना नही है परन्तु इस प्रकार के प्रचार से लोगो की भावनाओं को तो भड़काया जा सकता है। जिन दिनो अकाली पंजाबी सूबा के लिए आन्दोलन कर रहे थे उन दिनो भी उन्होने सिखो की भावनाओ को भड़काने का कुछ कम प्रयास न किया था। आर्य समाज ने पंजाबी सूबा का विरोध किया था। हमारे भू० पू० प्रधानमन्त्री स्व० पंडित जवाहर लाल नेहरू पंजाबी सूबा की मांग के बहुत अधिक विरोधी थे उनका कहना था कि यह एक साम्प्रदायिक मांग है। यदि इसे स्वीकार कर लिया गया तो साम्प्रदायिक शक्तियो को प्रोत्साहन मिलेगा। जब तक वह जीवित रहे उन्होने पंजाबी सूबा न बनने दिया था। उनके पश्चात किसी कारण से श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने अकालियों की यह मांग स्वीकार कर ली। आर्य समाज यद्यपि पंजाबी सूबा का विरोधी था परन्तु जब एक बार यह बन गया तो यह समझ कर कि इसके बाद अकाली और कोई मांग नहीं करेंगे आर्य समाज ने पंजाबी सूबा को भी स्वीकार कर लिया। परन्तु अब अकालियो ने नई मांग शुरू कर दी है। कभी कहते हैं उन्हें कुछ और अधिकार चाहिए। कभी सिख होमलैण्ड की बात करते हैं कभी खालिस्तान की। जिस का अभिप्राय यह मालूम होता है कि पंजाबी सूबा को एक सीढी बना कर वह कुछ और ऊपर चढना चाहते हैं। भारत सरकार इस नई स्थिति का किस प्रकार से सामना करती है इस विषय मे अभी कुछ कहना कठिन है। परन्तु कुछ ऐसी समस्याए भी होती हैं जिन का समाधान केवल सरकार पर नहीं छोडा जा सकता। जन मत को उस समय संगठित करने की आवश्यकता होती है और यदि इससे भी ज्यादा आवश्यकता पड़े तो एक संघर्ष के लिए भी तैयार रहना चाहिए पंजाब की वर्तमान परिस्थितियों मे आर्य समाज के अतिरिक्त और कोई ऐसी संस्था नहीं जो जनमत का भी संगठित कर सके और एक संघर्ष के लिये भी तैयार कर सके। ऐसा करते समय हमे यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि हमारा सिक्खो के साथ कोई संघर्ष नही है। हमारा मतभेद केवल उन अकालियो के साथ है जो हमारे राष्ट्र की एकता को छिन्न भिन्न करना चाहते हैं। अकाली यदि इस देश को अपना देश नही मानते और अपने आप को भारतीय राष्ट्र का एक अंग नहीं मानते तो वह अपने लिए किसी ऐसे देश मे जगह ढूंढ सकते है जो उन्हें एक दूसरा राष्ट्र स्वीकार करने को तयार हो।

यदि आर्य समाज ने इस संघर्ष मे अपने देशवासियो का नेतृत्व करना है तो यह भी आवश्यक है कि वह अपने आप को संगठन करें इसलिए आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित सब आर्य समाजो को यह आदेश दिया जा रहा है कि वह रविवार २६ अक्तूबर को एकता दिवस मनाए। अपने देशवासियो को बताए कि आज हम एकता को कितनी आवश्यकता है और जो व्यक्ति दो राष्ट्र की बात कर रहे हैं वह किस प्रकार देश की एकता को छिन्न भिन्न करने का प्रयास कर रहे हैं। आर्य समाज एक शक्तिशाली और जीती जागती संस्था है ऐसे संकट के समय वह ही इस चुनौती को स्वीकार कर सकती है। इसलिए देश की एकता को छिन्न भिन्न करने के लिए आज जगह २ विशेषकर पंजाब मे जो प्रयत्न हो रहे हैं हम उन्हे किसी भी स्थिति मे सफल नही होने देंगे। इसलिए मेरा पंजाब की सब आर्य समाजो के अधिकारी महानुभावो से यह निवेदन है कि वह २६ अक्तूबर को एकता दिवस मनाए और जनमत को संगठित करते हुए जनता को उन विघटनकारी शक्तियो का मुकाबला करने के लिए तैयार करें। जो पाकिस्तान बनने के पश्चात अब एक और विभाजन करना चाहती हैं।

—वीरेन्द्र

सभा प्रधान श्री वीरेन्द्र जी को 502 रु. की थैली भेंट

आर्य समाज बस्तीशेख के प्रधान श्री तेजराम जी ने अपने निवास स्थान पर निरंतर १३ से १९ अक्तूबर तक बृहद यज्ञ का आयोजन किया था यह यज्ञ सभा के सुयोग्य महोपदेशक श्री पं० रामनाथ जी सि० विशारद ने सम्पन्न कराया आर्यभजनोपदेशक श्री तुलसीदेव जी के मनोहर भजन होते रहे सभा उपमन्त्री श्री सरदारी लाल जी आर्य तथा के सीय आर्य सभा के अनेक प्रमुख बन्धुओं ने इस समारोह को सफल बनाने का सराहनीय कार्य किया। पूर्णाहुति वाले दिन मान्य सभा प्रधान जी को आमन्त्रित कर सम्मानित किया गया तथा ५०२ रुपए की थैली वेदप्रचारार्थ भेंट की गई। सभा सभी आर्य बन्धुओं का हार्दिक धन्यवाद करती है।

आर्यसमाज जण्डियाला गुरु का वार्षिक उत्सव

अपने वार्षिक उत्सव पर इस छोटे से समाज ने जिस संगठन और प्रचार के प्रति श्रद्धा और लगन का परिचय दिया है। वह अत्यन्त सराहनीय है। १३ अक्तूबर से लेकर इस समाज मे प्रातः और सायं दोनो समय मान्यवर पं० जगदीशचन्द्र जी वसु विद्यावाचस्पति तथा श्री श्यामसिंह जी हितकर भजन मण्डली के द्वारा प्रभावशाली ढंग से प्रचार होता रहा। उत्सव के दिनो मे श्री पं० सुभाषचन्द्र जी शास्त्री सिद्धान्त शिरोमणि और श्री पं० ओम्प्रकाश जी आर्य कार्यालयाध्यक्ष सभा की ओर से सम्मिलित हुए। अमृतसर से वानप्रस्थी मथुरादास जी भी पधारे हुए थे। उत्सव के पश्चात सभा को ५०१) रुपया वेद प्रचारार्थ बड़ी श्रद्धा के साथ भेंट किया गया।

ओम्प्रकाश आर्य
कार्यालयाध्यक्ष

सन्ध्या कथा—

मनसा परिक्रमामंत्र

ले०—श्री सुरेशचन्द्र जी वेदालंकार एम० ए० एल० टी० १७५
जाफरा बाजार गोरखपुर

आचमन मंत्र के पश्चात पुनः आचमन मंत्र पढ़कर तीन बार आचमन करने का विधान है। इस आचमन के पश्चात् मनसा परिक्रमा के मंत्रो से सर्वव्यापक परमात्मा की स्तुति प्रार्थना करें संस्कार विधि गृहस्थ प्रकरण में लिखा है इन मंत्रो को पढ़ते जाना और अपने मन से चारो ओर बाहर भीतर परमात्मा को पूर्ण जानकर निर्भय निःशंक उत्साही आनन्दित पुरुषार्थी रहना।

मनुष्य पाप में इस लिए प्रवृत्त होता है कि वह समझता है उस कुकर्म करते हुए कोई देख नहीं रहा है। वह पाप करने से नहीं डरता उसे पापी कहलाने से डर लगता है। उसे यदि परमेश्वर की सर्वव्यापकता का बोध हो जाए और वह समझने लगे कि सर्वद्रष्टा की आंख हमें सर्वथा देख रही है तो वह पाप करने से बच सकता है। सन्ध्या अथवा भगवद्भक्ति वह सुरम्य सरोवर है जहां नित्य स्नान करने से सांसारिक वायु के झोंको से बेसुध हुए मनुष्य के अन्तःकरण में सर्वव्यापक प्रभु की स्मृति जागृत हो सकती है। सन्ध्या अथवा भगवद्भक्ति से ही प्राची दक्षिणा प्रतीची उदीची ध्रुवा ऊर्ध्वा आदि सब दिशाओं में तथा द्युलोक पृथ्वी लोक तथा अन्तरिक्ष लोक में व्याप रहे विश्वात्मा की अनुभूति हृदय में निरंतर स्थापित हो सकती है। इस अनुभूति के हृदय में स्थापित हो जाने पर न शैतान की फुसलाहट विचलित कर सकती है और न सैकड़ों आक्रमणकारी फौजें ही व्यक्ति को परास्त कर सकती है

मनसा परिक्रमा का अर्थ है मन के द्वारा परिक्रमा। मन के विषय में कहा जाता है कि मन बन्दर के समान है। बन्दर कितना उछलता कूदता है कभी चैन से नहीं बैठता—इस शाखा से उस शाखा से अन्य शाखा पर। हम प्रभु का ध्यान करने को आसन लगा कर बैठे है परन्तु यह मन उस समय देश विदेशों की यात्रा कर रहा होता है कभी होटल के मिष्ठान्न तो एक चाट आदि में रम रहा होता है किसी दुकान में पहुंच कर अपनी प्रेयसी के लिए सुन्दर वस्त्रों को देख रहा होता है कभी उसके साथ भ्रमण का आनन्द ले रहा होता है। यजुर्वेद ३४ वें अध्याय में शिव संकल्प के ६ मन्त्रों में मन को अत्यन्त चंचल बतलाया है। महाबलवान बताया गया है और इसे हठी भी कहा गया है। कभी यह राज्य का प्रलोभन देकर गुलामी कराता है। कभी धन की ध्वनि सुना कर धनिको के पैर दबवाता है। कभी ऐश्वर्य का लालच दिखलाकर घास कटवाता है और किसी को सिद्धि में फंसा कर पानी भर वाता है। सचमुच बड़ा चंचल है मन। शंकराचार्य ने अपनी प्रश्नोत्तरी में कहा है जगत् केन जितम् संसार को किसने जीता? येन मनो जितम् जिसने मन को जीत।

मन की इस स्वच्छन्द दौड़ को समाप्त कर उसे विशेष ढंग की परिक्रमा कराना मनसा परिक्रमा मन्त्रों का लक्ष्य है। इस परिक्रमा में मन स्वयं नहीं घूमेगा परन्तु मन के द्वारा छः मनकों की एक माला को घुमाया जाएगा। मनसा परिक्रमा मन्त्रों में वर्णित छः दिशायें माला के छः मनके हैं। वेद का एक मन्त्र इस विषय को स्पष्ट करने में सहयोग देगा। मन्त्र है —

स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र
वेषीदेको युधये भूयसश्चित्
।ऋ० ५.३०.४

भगवान इन्द्र की इच्छा करने वाले यदि तू सन्नद्ध होकर मन को स्थिर करे अर्थात किसी एक विषय में सम्भाले तो तू अकेला ही बहुतों को अनेक विघ्नबाधाओं और विषयों को भी युद्ध में जीत सकता है।

कैसे? रामायण में गुरु वशिष्ठ ने उनके दमन की एक युक्ति बताई—

मन एव मनुष्यों मनसो दृढ निग्रहे हे राम तुम्हारा मन ही मनका दमन करने में समर्थ है। मन ही मन का दमन कैसे करेगा यह न्याय दर्शन में मन का लक्षण करते हुए बताया गया है कि युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम् मन एक समय में एक ही काम कर सकता है दो नहीं। चरक संहिता के शरीर स्थान में मनका लक्षण इस प्रकार किया गया है—

लक्षणं मनसो ज्ञानस्याभावो भाव एव च (१६) ज्ञान होना और ज्ञान न होना मनका लक्षण है। अर्थात एक समय में एक वस्तु का ज्ञान होना और दूसरी का न होना या इस प्रकार कहिए कि दो ज्ञानों का एक काल में उत्पन्न न होना मन का लक्षण हैं।

मन जब एक समय में एक ही वस्तु ग्रहण करेगा तो इस मन से कहो भैया तुम तो किसी एक वस्तुको ग्रहण करोगे दो को नहीं। तब नाशवान संसारी वस्तुएं क्यो पकड़ते हो? उस अविनाशी शुद्ध बुद्ध निर्मल ब्रह्म तत्व को क्यो न ग्रहण कर लेते? इस शरीर में आत्मा और विश्व में परमात्मा ही अपरिवर्तनशील है जिस सुन्दर रूप पर अरे मन! तू मुग्ध हो रहा है जिस स्वाद के पीछे तू लार टपका रहा है जिस मधुर सुरीली स्वर लहरी के पीछे तू पागल हो रहा है जिस कोमलता के लिए तू उन्मत्त हो रहा है जिस सुगन्ध के पीछे तू मृत्यु का ग्रास बन रहा है—इन सबको छोड़ कर तू आत्मा और परमात्मा को क्यो नहीं अपने में लाता। आत्मा और परमात्मा को समझने के लिए जो आवश्यक बातें है वह माला के छः मनके हैं। मनको स्थिर करके इन छः मनको की जो माला को घुमाओ—जपो! तब प्रभु की प्राप्ति होगी। इस विषय को इस प्रकार समझ सकते हैं।

महर्षि पतञ्जलि ने योग दर्शन में लिखा है वितर्क बाधने प्रतिपक्ष भावनम् अर्थात वितर्क जब आक्रमण करे तब प्रतिपक्ष की भावना करनी चाहिए। यम नियमो के विरोधी हिंसा झूठ चोरी विषयासक्ति इत्यादि को वितर्क कहते हैं जब यह आक्रमण करें तो इनके प्रतिपक्ष सद्गुणों का चिंतन करना चाहिए। जैसे आप बाजार जा रहे हैं। इतने में एक लड़की सामने से आई। अब आप सोचने लगे कि यह लड़की किसकी है? कहां रहती है? इसने चेहरे पर पाउडर लगा रखा है दूसरे हाथ पैर मुख आदि बहुत सुन्दर हैं साड़ी बड़ी चमकदार है। इसके प्रति वासना की भावना आने लगी तो उस समय हमें ब्रह्मचर्य का चिंतन करना चाहिए। एक और उदाहरण देखिए—

एक विरोधी आ रहा है। उसने आपको हानि पहुंचाई थी उसके प्रति आपके मन में हिंसा के भाव आने लगे। आप सोचने लगे कि इससे बदला लेने को झूठ बोलूं या मारपीट करूं या लूट पाट करूं या तो उस समय मन से मैल निकालने अहिंसा और प्रेम के विचार लाने का प्रयत्न करना चाहिए। मनसा परिक्रमा के मन्त्रो का भाव भी यही है कि मन में प्राची दक्षिणा प्रतीची उदीची ध्रुवा और ऊर्ध्वा दिशा को अपना लक्ष्य बनाकर उधर चलने के लिए प्रयत्न करना चाहिए मनसा परिक्रमा के मन्त्रो में वर्णित छः दिशाएं संकल्प लक्ष्य व गुण ही इस माला के मनके है। इन छः मनको में जीवन सूत्रों को पिरोया गया हैं। जिस प्रकार प्राची आदि बाहर की दिशाओ में सम्पूर्ण स्थान का समावेश है उसी प्रकार प्राची दक्षिणा आदि लक्ष्यो में दिशाओं में सम्पूर्ण जीवन का समावेश है। उन लक्ष्यो से भरपूर मन में इनके विरोधी भाव नहीं आ सकेंगे। इस प्रकार मनसा परिक्रमा के मंत्रो के विषय में हम कह सकते हैं कि जीवन की सर्वाङ्गीण उन्नति और विकास के लिए जिन दिशाओ में जीवन को चलाना आवश्यक है मनसा परिक्रमा में उन्हीं की सूचना है। आइए अब एक सूचना को देखें और उनको अपने मन में धारण करें। (क्रमशः)

आवश्यकता है!

१ एक २८ वर्षीय सुन्दर सुशील एम० बी० बी० एस० डाक्टर के लिए सुन्दर सुशील एम० बी० बी० एस कन्या की आवश्यकता है दहेज एवं जाति के बन्धन से रहित आर्य विचार वाले परिवार को प्राथमिकता दी जाएगी।

२ एक २४ वर्षीय सुन्दर सुशील युवक जो सैनिक सेवा में लेफ्टिनेन्ट के पद पर कार्यरत है के लिए सुन्दर सुशील स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त कन्या चाहिए दहेज एवं जाति के विचार से रहित आर्य परिवार को प्राथमिकता दी जाएगी।

डा० देवेन्द्र कुमार सत्यार्थी
दयानन्द सेवाश्रम मुसाढी थाना
कराय परसाय जिला नालन्दा
(बिहार राज्य) पिन नं ८०१३०४

लन्दन में विजयदशमी

लन्दन ५ अक्तूबर १९८० दशहरे का पर्व आज यहां चाक फार्म हाल में बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। हिन्दू सेंटर द्वारा आयोजित इस भव्य कार्यक्रम में न केवल प्रवासी भारतीय अपितु स्थानीय आंग्ल बन्धुओं ने बड़े उत्साह पूर्वक भाग लिया। बृहद् यज्ञ के पश्चात एक जनसभा में वक्ताओं ने लंका विजय पर प्रकाश डालते हुए श्री रामचन्द्र जी के आदर्शों को अपनाने की प्रेरणा दी। नवोदित कलाकारों द्वारा प्रस्तुत भक्ति गीत व संगीत का कार्यक्रम श्रोताओं द्वारा सराहा गया। लन्दन के व्यस्त जन जीवन में पाश्चात्य तथा परम्परागत भारतीय वेषभूषित सैंकड़ों प्रवासी तथा स्थानीय नागरिकों का संगम अत्यन्त ही दर्शनीय रहा। समारोह के पश्चात प्रीति भोज का आयोजन भी किया गया था।

हिन्दू सेंटर द्वारा दीपावली कार्यक्रम १८ अक्तूबर १९८० को ईलिंग टाऊन हाल (Ealing Town Hall) में आयोजित किया जा रहा है। समारोह के मुख्य अतिथि श्री आई पी सिंह (ब्रिटेन में भारतीय उच्चायुक्त) होंगे।

आवश्यकता है!

आर्य समाज नवल टाऊनशिप में एक सुयोग्य वानप्रस्थी जो सभी पारिवारिक संस्कार करवाने की योग्यता रखते हो परन्तु समाज के वेतन पर निर्भर न हो। उन्हें मकान बिजली पानी की सुविधा बिना मूल्य उपलब्ध होगी। उत्तम वायुमण्डल शान्त वातावरण योगसाधना पूजा पाठ के अनुकूल है दो सौ रुपए मासिक तक आर्थिक सहायता भी की जा सकती है।

आर्य संस्कृति की सेवा के इच्छुक वानप्रस्थियों से प्रार्थना है कि इस विषय में मन्त्री आर्य समाज नवल टाऊनशिप से पत्र व्यवहार करें।

दयानन्द मठिया मन्त्री

योग्य और तपस्वी आचार्य ही शिष्यों को योग्य बना सकता है !

पृथक् सर्वे प्राजापत्या प्राणानात्मसु बिभ्रति ।
तान् सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥

अथर्व० काण्ड ११ अ० ३ सूक्त ५ २२ ।

शब्दार्थ

(सर्वे प्राजापत्या) प्रजापति आचार्य के सब शिष्य (पृथक) भिन्न भिन्न रुचि वाले होकर (आत्मसु प्राणान बिभ्रति) अपने शरीर मे प्राणो को धारण करते हैं । (तान सर्वान) उन सब शिष्यो को (ब्रह्मचारिणि) ब्रह्मचारी आचार्य मे (आभृतम) रखा हुआ (ब्रह्म) ज्ञान (रक्षति) रक्षा करता है ।

भ क्सार —एक मनुष्य की प्रकृति दूसरे से मिलती नही है । सब अपने जुदे जुदे सस्कार साथ लेकर उत्प न होते हैं । सब मे एक सी ही शक्तियां नही और न एक से उद्देश्य हैं । उन के कर्मानुसार उन की रुचियां पृथक पृथक हैं । सब एक ही रस्सी मे बांधे नही जा सकते । कवि ने ठीक कहा है— भि नरुचिर्हि लोक । कह सकते हैं कि जितने मनुष्य हैं उतनी ही उन की रुचियां हैं । इन विभिन्न रुचियो का प्रादुर्भाव कैसा होता है ? यदि शिक्षक इन सब को गडरिये की तरह हाकने वाला हो तो उनके अ दर कोई शक्ति ही दिखाई नही देती वे भेडो के गल्ले की भाई चल देते हैं और जब शिक्षक रूपी गडरिया एक पल के लिए भी उनसे ओझल होता है तो उनके लिए ठीक रास्ते चलना कठिन हो जाता है ।

जीवात्मा मानसिक वाचिक और कायिक कम करन मे स्वत त्र हैं । केवल उन र्मों का फल भोगने म वह परत त्र है । इस स्वत त्र कर्ता के अन्दर स्वतन्त्र ही प्राण शक्ति है । यदि उसे दबा दिया जाए तो जीवित शव समान वह प्राणी की लोकोक्ति उस पर घट जाती है वह स्वभाविक के तुल्य हुई शक्तियां किस प्रकार लाभदायक हो सक ? इस के लिए आवश्यक यह है कि आचार्य अपने शिष्यो मे वेद ज्ञान के भरने का यत्न करे । उनको अपनी मानसिक शक्तियो का दास बनाने की चेष्टा न कर फिर किसी प्रकार की चि ता नहीं रहती । आचार्य का स्वाभाविक रीति से ब्रह्मचारी मे भरा वेद ज्ञान स्वयम उनके विकास का साधन बनता है ।

बालक के अ दर उसकी प्रकृति क अनुसार ही विभिन्न भाव उत्प न होते हैं । मूर्ख अध्यापक उनको दबाने की चेष्टा करता है । प्रत्येक अध्यापक अपना गौरव स्थिर रखने के लिए आवश्यक समझता है कि वह अपने आप को अपने शिष्यो के सामने सर्वज्ञ सिद्ध करे । वह भूल जाता है कि शायद उसके सपुर्द ऐसा बालक किया गया है जो पूर्व ज म म उससे कही अधिक उन्नति कर चुका है । यदि शिष्य की बुद्धि गुरु की अपेक्षा तीव्र है तो ऐसे बर्ताव मे उस को बडा गहरा धक्का लगता है । यह भूल नही जाना चाहिए कि आचार्य का काम केवल शिक्षा देना ही नही शिक्षा ग्रहण करना भी उसका कर्त्तव्य ही नही अधिकार है । अपने बीस वर्षों क पूर्व अनुभव से मैं कह सकता हू कि जिन शिक्षको ने जीवात्मधारी बालको का केवल जड यन्त्र समझ कर उनको रेवड की तरह हाकने का यत्न किया उन्होने न केवल अपने आधीन विद्यार्थियो की उन्नति ही रोक दी प्रत्युत अपने आपको भी अवनत किया । पर तु जिन्होंने इन आत्म सम्प न प्राण धारियो को केवल मार्ग दिखाना ही अपना कर्त्तव्य समझा उन्होने न केवल अपने शिष्यो के आत्मा को विचित्र प्रकार से विकसित ही किया प्रत्युत अपनी दैवी शक्तियो को भी प्रादुर्भ त किया । इसका विशेष कारण भी है । जो वाणी पर ही सारा निर्भर न करके कर्म का आश्रय लेते है उन्हे अपने शिष्यो का मार्ग दर्शक बनाने के लिए उन गुणो का अनुकरण स्वयम करना पडता है जिन्हे वे विद्यार्थियो के मनो मे भरना चाहते हैं ।

वेद ज्ञान ब्रह्मचारी के अ दर क्यो भरना चाहिए ? इस लिए कि वन्कि शिक्षाओ मे से वह अपनी प्रकृति के अनुसार स्वय म ग च न सके । गुरु का परिमित एकदेशी ज्ञान शायद ही एक दो शिष्यो के लिए उपयोगी हो । वेद ज्ञान मे इतनी लचक है कि उसे प्र यक मनुष्य अपनी आवश्यकता क अनुसार उपयोगी बना सकता है । गुरु परम्परा से जिस ज्ञान को ग्रहण करते आए है उसमे जो बल है वह एक व्यक्ति क कृत्रिम रीति म उप जन किए ज्ञान मे नही हो सकता । इस लिए वेद द्वारा भगवान का आदेश है कि जिस मनुष्य जाति के अ र ज्ञान प्राप्त करने का विशेष कारण (बुद्धि) विद्यमान है उसकी भलाई इसी म है कि उस कारण को स्वाभाविक रीति से पुष्ट तथा विकसित करन के लिए उसे हिला दिया जाए उसे हिला दिया जाए उसे बलात्कार से खीच कर किसी एक ओर लगाने का यत्न न किया जाए । जब तक ससार मे ब्रह्मचर्य के भाव स धनो को फैलाने का यत्न न होगा तब तक बडा हुआ राग द्वेष उस ससार को जिसे उस के निर्माता ने उन्नति का धाम बनाया था नरक कुण्ड ही बनाता रहेगा ।

सीखो

कविराज बनवारी लाल शादा प्रधान आर्यसमाज मौडल बस्ती नई दिल्ली ११ ०५

परोपकार का करना सीखो ।
देश धर्म पर मरना सीखो ।
तन मन धन सब अर्पण करके ।
सेवा पथ पर बढ़ना सीखो ॥१॥
आंधी विकट तूफान कभी ।
राह तुम्हारी रोक न पावें ॥
कभी सकटो से ना डरना ।
सकट चाहें कितने आये ॥
अमर काल भी पथ को रोके
फिर भी आगे बढ़ना सीखो ॥२॥
हे मानव अपने जीवन मे ।
कभी सुखो की चाह न करना ॥
सब कुछ अपना लुट जाने पर
मुह से अपने आह न करना ।
देश धर्म की सेवा करने ।
प्राण निछावर करना सीखो ।३॥
दीन दुखी पीड़ित की ।
सेवा करना परम धर्म है ॥
देश धर्म के हित म रहना ।
सादा मन का परम कर्म है ।
हसते हसते जियो धर्म हित ।
प्रभु ध्यान को धरना सीखो ॥४॥

एक प्रत्यक्षदर्शी द्वारा

गुरु विरजानन्द स्मारक तथा गुरुकुल करतारपुर का वार्षिकोत्सव

५ अक्तूबर से १२ अक्तूबर तक गुरु विरजानन्द स्मारक तथा गुरु विरजानन्द वैदिक संस्कृत महाविद्यालय करतारपुर का सालाना मेला बड़ी धूमधाम मनाया गया। ५ से १० अक्तूबर तक तक श्री जगदीश चन्द्र वसु महोपदेशक की अध्यक्षता मे हर रोज सुबह शाम यजुर्वेद पारायण यज्ञ तथा स्वामी निगमानन्द जी श्री प० राजगुरु जी शर्मा तथा महात्मा आर्य भिक्षु जी वानप्रस्थ की मनोहर वेदकथाए एव सगीताचार्य श्री तुलसीदेव जी के भजन होते रहे।

११ अक्तूबर को प्रात यज्ञ तथा वेद कथा के पश्चात स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती तथा प नन्दलाल जी को बड़े बड़े विद्वानो ने अपनी भावभीनी श्रद्धाजलिया अर्पित की। तत्पश्चात २ बजे से महिला सम्मेलन श्रीमती ज्ञानान्दा जी के सरक्षण मे सम्पन्न हुआ। माता रमयरी देवी सनातन स्त्री सत्सग सभा करतारपुर ने अपने समाज सुधार सम्बन्धी ओजस्वी विचार प्रकट किये। इसके अलावा और भी बहुत सी विदुषी महिलाओ ने स्त्री शिक्षा चरित्र और अनुशासन पर बल दिया आर्य कन्या पाठशाला की छात्राओ ने एक भावुक शिक्षाप्रद रोचक झाकी डोली से अर्थी तक प्रस्तुत की। सायकाल के पावन समय मे स्मारक का चल समारोह करतारपुर के फर्नीचर बाजार से होता हुआ एक साथ निकलता हुआ करतारपुर के मुख्य बाजार से वापिस स्मारक भवन पर आकर समाप्त हुआ।

सायकाल ५ बजे श्री वीरेन्द्र जी प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब ने अपने कर कमलो से गुरुकुल के प्रागण मे ध्वजारोहण किया पुष्प वर्षा होते ही बैंड बाजे तथा ध्वजगीत से नरनारियो के मुख सहसा मुखरित हो उठे।

चल समारोह की शोभा देखते ही बनती थी सबसे आगे घुड़सवार उनके पीछे कार पर स्मारक दिव्यमणि प्रधान श्री सेठ शिवचन्द अग्रवाल शोभा दे रहे थे। गुरुकुल के पीत वस्त्रधारी ओजस्वी सब ब्रह्मचारी तथा शमनगर की मण्डली भजन मण्डली करतारपुर फगवाड़ा लुधियाना जालन्धर कपूरथला इत्यादि विभिन्न स्थानो से आये बैंड के सहित रगबिरगी वेशभूषा मे स्कूलो के बच्चे कन्या पाठशाला करतारपुर की छात्राओ तथा अन्य धार्मिक उत्साही लोग बड़ी श्रद्धा से भजन गाते हुए नारे लगाते हुए मस्ती से चल रहे थे रात्रि के ८ बजे से १० ३० तक आचार्य श्री सत्यप्रिय जी श्री भगाराम जी राजनारायण स्वामी जी प राजगुरु जी शर्मा महात्मा आर्य भिक्षु जी आदि अनेक विद्वान नेताओ ने अपने जोशपूर्ण ओजस्वी विचार जनता को दिये

१२ अक्तूबर रविवार प्रात ठीक ८ बजे श्री प राजगुरुजी शर्मा के सरक्षण मे यजुर्वेद पारायण यज्ञ की पूर्ण आहूति हुयी श्रद्धालुओ ने दिल खोल कर दान दिया गुरुकुल की यज्ञशाला देवियो तथा पुरुषो से खचाखच भर गयी थी सारा वातावरण शात वेद मन्त्रो से पवित्र तथा यज्ञ सौरभ से सुगन्धित हो रहा था। १० बजे गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार के कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा की अध्यक्षता मे गुरु विरजानन्द संस्कृत महाविद्यालय करतारपुर के छात्रो ने अपने आश्चर्य चकित कर देने वाले कार्यक्रम प्रस्तुत किये डाक्टर केवल कृष्ण जी वित्तमन्त्री पजाब सरकार को स्मारक तथा गुरुकुल के २५वें वार्षिकोत्सव पर प्रकाशित सर्वप्रथम स्मारिका स्मारक के मन्त्री श्री चतुर्भुज मित्तल ने भेंट की गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने संस्कृत मे एक शिक्षाप्रद झाकी वस्तुत स्वय प्रस्तुत की। इसके अतिरिक्त संस्कृत मे श्लोक अन्ताक्षरी धारा प्रवाह वेदपाठ गीत भजन तथा अग्नि प्रदर्शन मे आग के गोले मे से निकलना आग तथा कण्ठकूप के सहारे भाले की नोक पर १३, ४४ सूत के २७ ३१ ६८ के सरिये मोड़ने आदि कार्यक्रम दिखाये ९० किलो के पत्थर को छाती पर रख कर तोड़ने के समय तो लोगो की आखें एक टक हो गयी तत्पश्चात वित्तमन्त्री डाक्टर केवल कृष्ण जी ने गुरुकुल के योग्य छात्रो को पुरस्कृत किया श्री बलभद्र जी हूजा ने प्रमाण पत्र प्रदान किये

श्री रामचन्द्र जी जावेद प्रधान विद्यालय गुरुकुल करतारपुर ने अपनी वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत की श्री बलभद्र जी हूजा कुलपति गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार ने इसी अवसर पर संस्कृत की योग्यता एव संस्कृत के वार्तालाप तथा भारतीयता मे ब्रह्मचारियो की निष्ठा की प्रशसा करते हुए गुरु विरजानन्द वैदिक संस्कृत महाविद्यालय करतारपुर को गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय से अनुबन्धित कर विद्याधिकारी तक की परीक्षाओ के लिए मान्यता की स्वीकृति प्रदान की श्री डाक्टर केवल कृष्ण जी वित्त मन्त्री पजाब ने कार्यक्रम से प्रभावित होकर निजि सरकारी कोष से दस हजार रुपए तथा संस्कृत विस्तार के लिए १५ हजार एव पुस्तक आदि के लिए १००० रु० देने की घोषणा की सम्मेलन की समाप्ति पर सभी उपस्थित नेताओ ने भोजन किया १० ११ अक्तूबर को बृहद्‌लगर तथा बाहर से आये यात्रियो के भोजन का प्रबन्ध श्री केवल कृष्ण जी बासल तथा श्री दिवाकर जी करतारपुर ने अपने सहयोगियो के माध्यम से बहुत ही सुचारु रूप से किया आर्य कन्या पाठशाला की छात्राओ ने भोजन प्रबन्ध मे सर्वाधिक सहयोग दिया सायकाल १२ अक्तूबर साढे तीन से ६ बजे तक श्रद्धाजलि सम्मेलन हुआ जिसमे स्वामी सर्वानन्द सरस्वती महाराज दीनानगर ने अपने दादा गुरु विरजानन्द को श्रद्धाजली भेंट की तत्पश्चात शान्तिपाठ से उत्सव की सम्पन्नता का उद्घोष हो गया।

उत्सव में विद्यालय के आचार्य श्री नरेश जी तथा व्यवस्थापक श्री सुखदेव राज जी महाराणा प्रताप के चेतक घोड़े की तरह कार्यों मे व्यस्त रहे। श्री पूर्णानन्द जी शास्त्री तथा शोभनाथ जी यादव ने भी काफी सहयोग दिया श्री रामसखा जी यज्ञ के प्रबन्धक रहे।

श्री सेठ शिवचन्द जी श्री चतुर्भुज मित्तल जी श्री मलकूल चन्द जी तथा श्री रामचन्द्र जी जावेद उत्सव की प्रत्येक दशा का सूक्ष्मता से निरीक्षण करते रहे। डी ए वी हाई स्कूल करतारपुर गवर्नमैंट हाई स्कूल करतारपुर तथा आर्य कन्या हाई स्कूल करतारपुर ने यात्रियो के आवास के लिए पर्याप्त सुविधाए प्रदान की।

वैदिक साधना श्रम का वार्षिक उत्सव

गुरदासपुर वैदिक साधनाश्रम का वार्षिक उत्सव पूर्व वर्षो की भाति स्वामी सर्वानन्दजी की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ।

प त्रिलोक चन्द जी शास्त्री श्री प बलराज जी श्री प धर्मपाल जी श्री प विजय कुमार जी आश्रम के अध्यक्ष स्वामी प्रकाशानन्द जी सभी ने अपने विचार रखे। सारा प्रोग्राम प्रभावशाली रहा।

माता ज्ञान देवी (सुजानपुर) की अध्यक्षता मे महिला सम्मेलन भी हुआ।

सूचना

प्रज्ञाचक्षु ब्र० अशोक कुमार (आयु १३ वर्ष) बगाल निवासी। जो पजाब मे वेदप्रचार कर रहे हैं। भाषण तथा भजन के द्वारा। इनका प्रभावशाली भाषण तथा भजन का प्रभाव जनता पर विशेष रूप से पड़ता है। प्रचार के लिए जो आमन्त्रित करना चाहें कृपया इस पते पर सूचना भेजें।

ब्र० अशोक कुमार (प्रज्ञाचक्षु)
दैनिक प्रार्थना सभा
बटाला पजाब

योग्य तथा अनुभवी पुरोहित की आवश्यकता

आर्यसमाज माडल टाऊन पठानकोट का एक योग्य अनुभवी तथा सदाचारी पुरोहित की आवश्यकता है। वैदिक प्रवचन तथा सस्कार आदि कराने मे दक्ष सज्जन निम्नलिखित पते पर पत्र व्यवहार करने की कृपा करें। पुरोहित जी के निवास आदि की स्वतन्त्र व्यवस्था है और भी सभी सुविधायें प्राप्त होंगी। निम्न पते पर पत्र व्यवहार करें।

बलदेव राज मधुकवी मन्त्री—
आर्य समाज माडल टाऊन
पठानकोट

अब क्यों नहीं आते राम

ले०—श्री रणवीर जी भाटिया लुधियाना

त्राहि त्राहि मची भारत मे दूषित हुआ वातावरण
अनाथ हो रहे चारो ओर करता नही कोई मार्ग दर्शन।
विश्वामित्र के कहने पर कर दी थी राक्षसो की नींद हराम
दिन दिहाड़े लुट रहा मानव अब क्यों नही आते राम।

इस देश का उज्ज्वल गौरव था नारी जाति महान
अब कोई दिन ऐसा नही आता लुटी न अबला बेजबान।
एक सीता के हरण से किया राम ने रावण का काम तमाम
हजारों सीताओ के अपहरण होते हैं अब क्यो नही आते राम।

व्यभिचारी लोगों के हाथो जलाई जा रही हैं नारियां
दहेज की वेदी पर आत्म सम्मान खातिर जल रही बेचारियां।
पवित्र सीता की जान बचाने का इसी अग्नि ने किया इन्तजाम
अब हजारो सीताये जल रही हैं क्यो नही आते राम।

विजया दशमी और रावण का वध

ले०—श्री भालानाथ जी शर्मा दिल्ली

(गतांक से आगे)

पूर्णे चतुर्दशवर्षे पञ्चम्यां लक्ष्मणाग्रज
भरद्वाजाश्रम प्राप्य ववन्दे नियतो
मुनिम् ॥६।१२४।१

भरद्वाजाश्रम् में पहुंच कर मुनि को प्रणाम किया। राम तो भरद्वाज ऋषि के यहां ठहरे परन्तु हनुमान को उसी समय अयोध्या भेज दिया था। हनुमान ने भरत के पास जा कर कहा कि

तं गंगा पुनरा साद्य वसन्तम्
मुनि सन्निधौ।
अविघ्नं पुष्य योगेन श्वः रामं
द्रष्टुमर्हसि ॥६।१२६।२

गंगा तट आकर भरद्वाज मुनि के पास ठहरे राम के दर्शन आप कल पुष्य योग में करेंगे। क्योंकि चैत्र मास पुष्य नक्षत्र भरत का जन्म दिया था।

अब आप कह सकते हैं। कि श्लोको मे तो चैत्र मास नहीं लिखा तो फिर चैत्र कहां से आया इसका समाधान इस प्रकार है। कि—राम का राज्याभिषेक भी चैत्र मे होना था। परन्तु राज्याभिषेक न होकर वनवास हुआ था। अत प्रमाण

चैत्र श्रीमानयं मासः पुण्य
पुष्पित कानन।
युवराज्याय रामस्यस्य मेवोप
कल्प्यताम ।२।३।८।

यह चैत्र का पुण्य मास है। जिससे वन फूलों से पूर्ण है। श्री राम चन्द्र के युवराज्याभिषेक की सब सामग्रिया आप लोग एकत्र कीजिए। फिर उन्होने राम चन्द्र को बुलाकर कहा।

अद्यचन्द्रोऽभ्युपगमत पुष्यात पूर्वं पुनर्वसुम।
श्व पुष्य योग नियतम वक्ष्यन्ते देव
चिन्तका ॥वा रा २ ४ २१

आज चन्द्रमा पुष्य से पहले पुनर्वसु मे आ गया है। कल पुष्य योग निश्चित है। ऐसा ज्योतिषिगण कहते हैं। इसी पुष्य नक्षत्र मे तुम अभिषेक कराओ ऐसा मेरा मन मुझ प्रेरणा दे रहा है। हे राम कल मैं तुम्हारा राज्याभिषेक करूंगा

क्योंकि चैत्र शुक्ला नवमी को पुनर्वसु नक्षत्र में राम का जन्म हुआ था। और चैत्र शुक्ला दशमी पुष्य नक्षत्र मे भरत का जन्म हुआ था। पुष्य नक्षत्र कभी चैत्र शुक्ला दशमी को आता है। कभी नवमी का जिस वर्ष राम का जन्म हुआ था। उस वर्ष पुष्य नक्षत्र चैत्र शुक्ला दशमी को आया था। परन्तु राम के राज्याभिषेक के समय पुष्य नक्षत्र नवमी तिथि मे था परन्तु राज्याभिषेक न हो कर वन को प्रस्थान किया था। इस प्रकार चैत्र मास में ही राम के चौदह वर्ष पूरे होवे। न आगे न पीछे।

इस तरह चैत्र अमावस्या को हुआ रावण वध आश्विन मास में आ पहुंचा तदनन्तर दीपावली को राम का राज्याभिषेक हुआ ये दोनो ही भ्रान्त और निर्मूल धारणायें हैं। परन्तु यह तब हुआ जब वाल्मीकि रामायण का पठन पाठन उठ गया राम को महापुरुष न मान कर भगवान आराध्य देव मान लिया गया। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि राम रघुकुलदीपक मात भक्तियुक्त पितृ निर्देश पालक पुत्र एक पत्नी व्रत निरत सुहृद दुःख विमोचक मित्र प्रजापालक नरेश मर्यादानामस्थापक आर्य संस्कृति के पालक वेद एव यज्ञ के रक्षक सत्य के पुजारी अहिंसार्य निषधित पाद पद्म भ्रातृ प्रेमी और अन्याय के विरोधी थे। यही कारण है कि श्रद्धा के कारण कुछ लोगो ने भगवान की उपाधि से राम को विभूषित किया। परन्तु इन गुणो से राम ईश्वर या ईश्वर के अवतार नहीं हो सकते हां ईश्वर की आज्ञा का पालन करने वाले मार्ग पथ प्रदर्शक तो हैं। राम देवो के रक्षक और राक्षसो के भक्षक थे। वे न्याय के पुजारी और अन्याय के विरोधी थे।

परन्तु राम के गुणो को जीवन मे न उतारना बल्कि राम २ रटना या राम लीला कर लेनेदेखने से कुछ भी लाभ नही मिल सकता है। क्योंकि सबको मालूम है। कि रावण इसीलिए मारा गया था। कि उसने पराई स्त्री का अपहरण किया साधु महात्माओ को सताया। परन्तु आज रामलीला देखकर कोई राम के गुण तो अपनाए नहीं हां रावण के गुण को बहुत अपना लेते हैं। पहले तो एक सीता के हरन से पता नही कितने राक्षस मारे गए। परन्तु आज प्रतिदिन खुलेआम सड़कों में अनेक रावण कितनी ही सीताओ की इज्जत लूटते और अपहरण करते हैं। शायद ऐसे घिनौने और ऐसे अत्याचारो को तो रावण भी सहन न करता। फिर भी ऐसे रावणो को कोई भी सजा नही मिलती। और कोई भी राम दिखाई नहीं देता है। क्योंकि निर्देशक कलाकार आयोजक संयोजक स्वयं अपने आचरण मे राम की शिक्षाओं को अपने जीवन मे नहीं ढालते हैं। मैंने अपनी आंखों से राम लक्ष्मण तथा सीता बने कलाकारों को बीड़ी और सिगरेट पीते देखा है। इस प्रकार पूजकों का ध्वना मजाक उड़ाया जाता है। यही अश्लील फिल्मी गाने तथा ट्विस्ट टाइप नाच होते है। बिजली चले जाने पर सीटियां बजती है। गन्दे व्यंग किए जाते हैं। चोर लुटेरे धन और इज्जत लोगो लूटते है। इस प्रकार रावण तो राम ने मार डाला था। परन्तु आज हजारो रावण पैदा हो गए है। जो दिन रात राम का ही नाम लेकर मुख मे राम बगल मे छुरी रख कर अनेक जातियो की और साधु महात्माओ की इज्जत और धन लूटते हैं। हे राम को मानने वालो जरा अपने अन्दर झांक कर देखो कि रावण कुम्भकर्ण और मेघनाद तुम्हारे या हमारे अन्दर तो नही बैठा क्योंकि जिसमे अहंकार काम क्रोध मद लोभ मोह छल कपट चोरी झूठ आदि हैं वही रावण है। इसलिए मैं यही कहूंगा कि रावण और कुम्भकर्ण के पुतले जलाने के बजाय हम और आप अन्दर बैठे रावण को जलायें तब तो भले ही देश समाज और परिवारो मे सुधार हो सकता है। अन्यथा हजारो लाखो रुपया व्यय करने से कोई लाभ नाम नही ईश्वर हम सबको बुद्धि दें। कि हम सब सत्य धर्म न्याय को अपना कर लकीर के फकीर बनना छोड़कर लोक कल्याण की भावना से दूषित एवं रूढिपरम्पराओं को त्यागकर ऐतिहासिक वास्तविक घटनाओ के आधार पर अपनी शास्त्रीय विशुद्ध पर्व तिथियो को पर्व के रूप मे मानें और मनाये तभी निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

विज्ञ पुरुष अमर पद पाते

ले०—कवि कस्तूर चन्द घनसार कवि कुटीर पीपाड़ शहर (राज)

ओ३म्

(१) ओ३म् नूचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद् देवासो अमृतत्व मानशुः।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥
(ऋ १० ६३ ४)

भावार्थ —

क्रियाशील जगत् के द्रष्टा विज्ञ पुरुष अमर पद पाते।
सुन्दर देह मिले रथ वाहन ओज-तेजमय देव कहाते ॥
जो निष्पाप आदित्य ब्रह्मचारी अन्तरिक्ष लोक ऊंचे चढ़ जाते।
जो मद ज्ञान प्रद है जग मे जिनकी महिमा सब जन गाते ॥
जिन की सङ्गत दो प्रभु हमको सद्गुण अमल ज्ञान पिलाते ॥

(२) वेन्वा माता मधुमत् पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रि बर्हाः।
उक्थ शुष्मान् वृष भरान्त्स्वप्नस सस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये ॥

भावार्थ —

ऋतु अनुकूल सुखद जल बरसे
दुखदाई कभी काल न आवे।
मात भूमि हो मधुमय सारी
फल मधादिक दूध पिलावे ॥
शुभ वृष्टि को चाहने वाले
यज्ञ करके शुभ मेघ बुलावे ॥
सब सृष्टि हो अति हरियाली
रस रस भर सब तरु लहरावे।
जिन द्वारा जनभार सुखी हो
अपना सुखमय भाग मनावे ॥

—

प्रवेश प्रारम्भ

गुरु विरजानन्द वदिक संस्कृत महाविद्यालय करतारपुर मे अपने बच्चो को प्रवेश दिलाकर दोहरा फायदा उठाये। विद्यालय मे सरकारी स्कूलो मे पढ़ाये जाने वाले गणित अंग्रेजी साईंस आदि सभी विषयो के साथ संस्कृत तथा धार्मिक शिक्षा भी आवश्यक रूप से पढ़ाई जाती है दसवी कक्षा पास करने पर विद्याधिकारी की उपाधि प्रदान की जाती है जो कि भारत के प्रत्येक राज्य मे मैट्रिक के समान मान्यता प्राप्त है। आप इस प्रकार धार्मिक शिक्षा तथा भारतीय संस्कृति संस्कृत के साथ अन्य सभी विषयो की उत्तम शिक्षा देकर बच्चे के भविष्य को उज्ज्वल बना सकते हैं। जल्दी करें। प्रवेश की अन्तिम तिथि ३० नवम्बर है। छात्र कम से कम ५वी कक्षा उत्तीर्ण हो। शिक्षा सर्वथा निशुल्क है। प्रवेश पत्र आदि के लिए रजिस्टी व्यय ५ रुपये अग्रिम आचार्य गुरुकुल करतारपुर जिला जालन्धर (पंजाब) के नाम मनिआर्डर द्वारा भेजें।

भ्रष्टाचार के उन्मूलन हेतु आर्य वीर आगे आएं

महर्षि दयानन्द मनुष्य में मानवीय गुणों का विकास चाहते थे पूर्वी उत्तर प्रदेशीय आर्य वीर दल की बैठक में प्रधान संचालक श्री बाल दिवाकर हंस के उदगार

वाराणसी पूर्वी उत्तर प्रदेश आर्य वीर दल की महत्वपूर्ण बैठक सनातपर आर्य समाज वाराणसी में सार्वदेशिक आर्य वीर दल के प्रधान संचालक श्री प० बाल दिवाकर जी हंस की अध्यक्षता में बड़े ही उत्साह पूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुई।

का० विश्वनाथ एक्सप्रेस से पधारे श्री हंस का स्थानीय आर्य वीरों एवं आर्य समाजों के सभासदों ने स्टेशन पर भव्य स्वागत किया तत्पश्चात आर्य समाज मन्दापरा के साप्ताहिक सत्संग में आर्य समाजों और स्थानीय आर्य वीर दल के प्रतिनिधियों ने पुष्पहार पहिनाकर प्रधान संचालक जी का भावभीना स्वागत किया।

अपने स्वागत में आयोजित सभा को सम्बोधित करते हुए श्री हंस ने कहा कि महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्व कल्याणार्थ मनुष्य में मानवीय गुणों का विकास कर उन्हें प्राणी मात्र के हित में उपयोगी बनाना चाहते थे। आपने अमरीका के एंड जक्सन डविस योगिराज श्री अरविन्द एवं श्री रोम्या रोला के अनेक उदाहरण देकर बताया कि महर्षि दयानन्द ही ऐसे युग पुरुष थे जो बिना भेद भाव और भूगोल भेद के संसार का उपकार करने की योजना ... ने कहा कि उसी ... में समाज है उन्होंने ... की पृष्ठ भूमि में आर्य ... व मनोवृति ... ।

मध्यान्होत्तर एक ... से पूर्वी उत्तर प्रदेश आर्य वीर दल की बैठक की प्रधान संचालक जी ने अध्यक्षता की और अनेक महत्वपूर्ण निर्णय लिए। दल कार्यों को आर्थिक गति प्रदान करने के लिए बैठक में पधारे प्रतिनिधियों ने लगभग ३५०० रुपये (साढ़े तीन हजार) का कोष उसी समय एकत्रित किया।

एक प्रस्ताव द्वारा डा० आनन्द प्रकाश काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को समस्त उत्तर प्रदेश का संचालक घोषित करने के लिए सहायक संचालकों ने प्रधान संचालन जी से प्रार्थना की जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

इस बैठक में उत्तर ... प्रतिनिधि सभा के ... जी तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश के संचालक श्री ... जी (...) ने भी भाग लिया और अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिए।

पूर्वी क्षेत्र में निकट भविष्य में ही सात दिन के साथ दो आर्य वीर दल के प्रशिक्षण शिविरों का भी आमन्त्रण इसी बैठक में प्राप्त हुआ जिसे स्वीकार कर लिया गया।

आर्य समाज ... के प्रधान महोदय ने अपनी आर्य समाज के वार्षिक बजट में आर्य वीर दल के लिए निश्चित राशि निर्धारित करने का वचन देते हुए पांच सौ रुपये ... के लिए प्रदान किये। डा० ... जी ने भी पांच सौ रुपये इस कोष में देने की घोषणा की। इसी क्षेत्र के एक जिला संगठन ने १००१ रुपये (एक हजार एक) रुपये दल कोष में प्रदान किए।

इस प्रकार पूर्वी उत्तर प्रदेश की यह बैठक भारी सफलता के साथ सम्पन्न हुई।

श्री वीरेन्द्र जी सम्पादक तथा प्रकाशक द्वारा जनहित प्रिंटिंग प्रेस जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय गुरुदत्त भवन चौक किशनपुरा जालन्धर से इसकी स्वामिनि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र जालन्धर

वार्षिक शुल्क १५) वर्ष १३, अंक ४१ ४२ १८ २५ कार्तिक सम्वत् २०३७ तदनुसार २ ९ नवम्बर १९८० का सम्मिलित अंक दयानन्दाब्द १५६

युग द्रष्टा महान् बलिदानी महर्षि दयानन्द सरस्वती



दीपावली के अवसर पर–

प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष भी दीपावली का पर्व सारे भारतवर्ष में तथा भारत से बाहिर दूसरे देशों में भी जहां २ भारतीय बसे रहते हैं बड़ी धूम धाम से मनाया जाएगा। यह पर्व तो चिरकाल से मनाया जा रहा है परन्तु महर्षि दयानन्द जी महाराज ने इस दिन अपने जीवन की पूर्णता प्राप्त कर इसका महत्व बढ़ा दिया है। महर्षि को जगन्नाथ रसोईये ने घातक विष (दूध में कांच मिलाकर) दे दिया जिसके परिणाम स्वरूप छाला फूट २ कर सारे शरीर से बाहिर आ रहा था। इस बड़ी कष्टदायक स्थिति में भी ऋषिवर मुस्कराते रहे। सारा शरीर फूटा हुआ था परन्तु मुंह से कभी आह तक न निकली क्योंकि वह महान बलिदानी तो पहले ही अपना सभी कुछ देश जाति और समाज के लिए बलिदान कर चुके थे। आखिर शरीर उनके पास बचा था यह भी उन्होंने हंसते हुए दीपावली के पर्व पर बलिदान कर दिया। उस महान ज्योति ने बुझने से पहले अनेकों ज्योतियों को जगमग किया ऋषि का जीवन दीप बुझते ही हजारों दीप जल उठे ऋषिवर चले गये परन्तु दीपावली का पर्व उनकी यादगार बनकर प्रति वर्ष हमें ऋषि के बलिदान की याद कराता रहता है। आओ ऋषि की जलाई हुई वेद ज्योति कभी बुझने न पावे इस पवित्र पर्व को ७ नवम्बर को मनाते हुए दृढ़ संकल्प करें।

श्वेताश्वेततरोपनिषद कथा माला—

प्राणायाम तथा योग का दर्शन

ले०—श्री म ग्वत जी सिद्धा तालकार दिल्ली

(गताक से आगे)

जैसे तैरते हुए सिर गदन तथा छाती—इन तीनो को उन्नत रखा जाता है इसी प्रकार प्राणायाम के समय इन तीनो को उन्नत तानकर त्रि उ नत स्थाप्य शरीर के शेष भ ग को सम अवस्था मे रखकर—सम शरीरम और इन्द्रियो को मन के अधीन और मन को हृदय मे निविष्ट करके—हृदि इन्द्रियाणि मनसा सनिवेश्य—बैठ जाए और ब्रह्म रूपी नौका पर सवार होकर—ब्रह्म उडपेन ससार रूपी नदी के पार तर जाए—प्रतरेत। इस प्रकार ज्ञानी ससार रूपी नदी के जितने पाप रूपी भयावह भवर (स्रोत) हैं उ हे तर जाता है—विद्वान स्रोतासि सर्वाणि भयावहानि।८।

प्राणायाम की विधि पर प्रकाश डालते हुए आगे कहते हैं उपरोक्त स्थिति मे बैठते हुए श्वासो को बलपूर्वक भीतर रोककर—प्राणान प्रपीड्य इह अपनी सब चेष्टाओ को रोक कर सयुक्तचेष्ट जब प्राण भीतर क्षीण होने लगे अर्थात प्रतीत होने लगे कि अब सास लेने की जरूरत है—क्षीण प्राण तब नाक द्वारा धीरे श्वास से प्राण वायु को बाहर छोड दे—नासिकया उच्छ्वसीत। जसे दुष्ट घोडे वाले रथ को—दुष्टाश्व इव वाह म वश मे किया जाता है इसी प्रकार ज्ञानी व्यक्ति इस प्राण के वश द्वारा मन को अप्रमादी होकर वश मे करे—एन विद्वान मन धारयेत अप्रम ।९

प्राणायाम का यह प्रयोग ऐसे स्थान मे करे जो सम हो पवित्र हो अग्नि ककड रेत से रहित हो जो जल के कल-कल रव तथा जलाशय आदि के कारण मन के अनुकूल हो जहा आखो को कष्ट न हो—जहा वायु के झरोके न चलें।१०।

जब योगी प्राणायाम द्वारा ब्रह्म का ध्यान करता है तब उस शुरू शुरू मे भिन्न भिन्न रूप दिखलाई देते हैं कुहरा सा धुआ सा सूय वायु अग्नि जुगनू बिजली स्फटिक चन्द्र इनकी ज्योतिया दिखलाई देती है। ब्रह्म दशन क पहले पहल एतानि रूपाणि पर सराणि ये रूप योग मे ब्रह्म को अभिव्यक्त करने के लिए होते हैं—ब्रह्माणि अभिव्यक्तिकराणि योगे।११।

योगी जब पृथिवी अप तेज वायु आकाश इन पच त्मक महाभूतो को वश मे कर लेता है तब उसे न रोग होता है न जरा होती है न उसे मृत्यु सताती है न तस्य रोग न जरा न मृत्यु। उस समय उसका शरीर योगाग्नि का प्राप्त होने के कारण तेजोमय हो जाता है १२।

योग का फल यह होता है कि योगी का शरीर लघु हो जाता है—लघुत्वम नीरोग हो जाता है आरोग्यम उसे लोलुपता नही रहती—अलोलुपत्वम उसके स्वर मे मधुरता आ जाती है स्वरसौष्ठवम उसके शरीर से शुभ गन्ध आती है गन्ध शुभ उसका मूत्रपुरीष अल्प हो जाता है मूत्रपुरीष अल्पम। योग मे प्रकृति का यह प्रथम फल दिखाई देता है योग प्रवृत्ति प्रथमाम वदन्ति।१३

जैसे मट्टी से लतपत स्वर्ण पिण्ड यथा एव बिम्ब मृदया उपलिप्तम धोने से तेजोमय होकर चमकने लगता है—तेजोमय भ्राजते तत सुधौतम इसी प्रकार जो देह की मलिनता को धोकर आत्मतत्व को ठीक ठीक अपने शुद्ध रूप मे देख लेता है—तद्वत आत्मतत्व प्रसमीक्ष्य देही वह देही कृतार्थ हो जाता है—एक कृतार्थ भवते वीतशोक।१४।

जैसे दीप के प्रकाश से दूसरे पदार्थ देख जाते है वैसे जब यह योगी आत्म तत्व के प्रकाश से ब्रह्म तत्व को देख लेता है—यदा आत्मतत्वेन तु ब्रह्मतत्व दीप उपमेन इह युक्त प्रपश्येत तब उस अज मा—अजम निरन्तर ध्रुवम सब तत्वो से भी अधिक शुद्ध—सर्वतत्वै विशुद्ध परमात्म देव को जानकर—ज्ञात्वा देव ससार के सब बन्धनो से मुक्त हो जाता है—मुच्यते सर्वपाशै।१५।

वह परमात्मदेव—एष ह देव सब दिशाओ मे प्रदिशाओ म अनुव्याप्त है—प्रदिश अनु सर्वा। वही सृष्टि के पूर्व मे भी था पूर्व ह जात वही सृष्टि के बीच मे वही सृष्टि के अन्त मे भी है—स उ गर्भ अन्त पूर्व मे बीच मे अन्त मे वही है। सृष्टि क्या है विकासोन्मुखी सृष्टि जो अब तक भूतकाल मे हुई है यह वही है—स एव जात विकास प्रक्रिया मे यह जो भविष्य काल मे होगी यह भी वही है। सब तरफ प्रति व्यक्ति क सम्मुख वही विद्यमान है—प्रत्यङ् जनान तिष्ठति सर्वत मुख उसका मुख प्रत्येक व्यक्ति के सामने है।१६।

जो परमात्मदेव अग्नि मे है—य देव अग्नौ जो जलों मे है—य अप्सु जो सम्पूर्ण भुवन मे सब जगह पहुचा हुआ है—य विश्व भुवन आविवेश जो औषधियों में है य ओषधीषु जो वनस्पतियों में है—य वनस्पतीषु उस परम परमात्मदेव के लिए नमस्कार है—तस्मै देवाय नमो नम।१७।

ईश्वर का सृष्टि मे प्रत्यक्ष दर्शन

द्वितीय अध्याय के १६वें श्लोक मे कहा है प्रत्यङ जनान् तिष्ठति सर्वतो मुख इस अध्याय के भी दूसरे श्लोक मे कहा है। प्रत्यङ जनान तिष्ठति। इन पद वाक्यो का यह अर्थ है कि परमात्मदेव हर व्यक्ति के प्रति उसके सामने ही विराजमान है। जो प्रत्येक व्यक्ति के सामने मौजूद हो उसे हम न जानें—यह अचम्भे की बात है। अभी ऊपर हम ब्रह्मवादियो की वाणी में कह चुके है—वही परमात्म देव अग्नि मे है जल मे है वायु मे है औषधियो तथा वनस्पतियो मे है। ऐसा प्रतीत होता है कि ऋषियो ने सृष्टि को ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहा है। नमो मित्र नवरुण इत्यादि मत्र मे भी त्वमेव प्रत्यक्ष ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्ष ब्रह्म वदिष्यामि कहा है जिसका अभिप्राय भी यही है कि यह विशाल तथा विविध रूपा सृष्टि ही प्रत्यक्ष ब्रह्म है। १६वें श्लोक मे उसे सर्वतोमुख कहा है—उसका मुख सृष्टि मे सब जगह विद्यमान है। वैदिक साहित्य मे यह भाव इतना व्यापी है कि गीता (७ ८ ९) मे कहा है

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभाऽस्मि शशि सूर्ययो।
प्रणव सर्ववेदेषु शब्द खे पौरुष नृषु ॥८॥
पुण्यो गन्ध पृथिव्या च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवन सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥९॥

मैं जलो मे रस हू चन्द्र तथा सूर्य की प्रभा मैं हू वेदो मे ओंकार मैं हू आकाश मे शब्द मैं हू पुरुषो म पौरुष मैं हू पृथिवी मे सुगन्ध मैं हू अग्नि मे तेज मैं हू सब प्राणियो मे जीवन मैं हू तपस्वियो मे तप मैं हू। यही भाव गीता के ११वें अध्याय मे जहा भगवान का विराट रूप दर्शाया गया है पाया जाता है। वहा अर्जुन श्रीकृष्ण को प्रतीक मान कर भगवान का वर्णन करते हुए कहते हैं —

अनेक बाहूदरवक्त्रनेत्र पश्यामि त्वा सर्वतोऽनन्त रूपम्।
नान्त न मध्य न पुनस्त वादि पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप। १६॥

परमात्म देव क सर्वव्यापी भाव का अभिप्राय ही यह है कि जब वह हर वस्तु मे विराजमान है तब जो दीखता है उस मे भगवान के ही दर्शन हो रहे हैं। हर वस्तु की सत्ता उसी की सत्ता के कारण सत्तावान् है वह न हो तो उसके बिना कुछ रहता ही नही है। हम आत्मा का दर्शन इस चलते फिरते शरीर में करते हैं भगवान का दर्शन इस चलायमान विश्व मे करते हैं। आत्मा न हो तो शरीर नही रहता प मात्म-देव न हो तो सृष्टि नहीं रहती। शरीर की सार्थकता इसके भीतर विद्यमान चेतन-सत्ता से है, सृष्टि की सार्थकता सृष्टि में विद्यमान चेतन शक्ति से है जिसे ऋषियों की परिभाषा मे परमात्म देव या ब्रह्म कहा गया है। इसी विचार को ध्यान में रखते हुए तृतीय अध्याय मे कहा है

उसके नेत्र सब जगह हैं वह सब कुछ देख रहा है—विश्वत चक्षु उसका मुख सब ओर है—विश्वत मुख उस की भुजाए सब जगह हैं—विश्वत बाहु और उसके पाव सब जगह हैं—उत विश्वतस्पात। जैसे कोई लोहार किसी वस्तु की रचना करता हुआ हाथो से धोकनी को धोकता है—स बाहुभ्या धमति स पतत्रै—वसे ही वह इकला परमात्मदेव सृष्टि को उत्पन्न करता हुआ द्यु और पृथिवी को मानो धोक रहा है—द्यावापृथिवी जनयन देव एक जिससे यह द्यु लोक तथा पृथिवी लोक मानो सुलग रहे हैं। ॥३।

जो देवो का प्रभव तथा उद्भव करने वाला है य देवाना प्रभव च उद्भव च जो विश्व का स्वामी है—विश्वाधिप जो विकराल रूप है—रुद्र जो महर्षि है—महर्षि जिसने सृष्टि रचना करते हुए पहले हिरण्यगर्भ (Nebula) की सृष्टि की—हिरण्यगर्भ जनयामास पूर्व वह परमात्मदेव हमे सद्बुद्धि से सयुक्त करे—स नो बुद्धया सयुनक्तु ॥४॥

मैं उस महान परम पुरुष परमात्मदेव को जानता हू वेद अहम एतम पुरुष महान्तम जो आदित्य की तरह प्रकाश मान है—आदित्यवर्ण जो अन्धकार से अत्यन्त दूर है—तमस परस्तात। उसी को जानकर—त एव विदित्वा मृत्यु के पार हुआ जाता है—अति मृत्यु एति मृत्यु से छुटकारा पाने का दूसरा कोई रास्ता नही है—न अन्य पन्था विद्यते अयनाय। ८॥

जिससे न कुछ परे है न वरे है यस्मात् पर न अपर अस्ति किञ्चित जिससे न कुछ सूक्ष्मतर है न बृहतर है—यस्मात न अणीय ज्याय अस्ति किञ्चित जो इकला वृक्ष की जड़ो की तरह पृथिवी मे दृढ़ गड़ा तथा उसके शिखर की तरह द्यु लोक मे ऊपर उठा हुआ स्थित है—वृक्ष इव स्तब्ध दिवि तिष्ठति एक उस परमात्मदेव से इस विश्व का अणु अणु भरा पड़ा है—तेन इद पूर्ण पुरुषेण सर्वम। ९॥

वही इस सृष्टि म दीख रहा है। उसका जो रूप उसके दृश्यमान रूप से अतिरिक्त है—तत यत उत्तरतरम वह रूपरहित है—अरूपम् वह जरा मरण आदि रोगो से रहित है—अनामयम। जो परमात्मा के इस व्यक्त तथा अव्यक्त सपूर्ण रूप को जान लेते हैं—ये एतद विदु वे अमर हो जाते हैं—अमृता ते भवन्ति जो परमात्मदेव के इस पूर्ण रूप को नही जान पाते—अथ इतरे—वे ससार मे दु ख ही दु ख पाते हैं—दु ख एव अपि यन्ति ॥१०॥

(क्रमश)

सम्पादकीय—

दीपावली की वह रात

दीपावली हम हर वर्ष मनाते हैं। हमारे जितने भी पर्व हैं दीपावली उन सब में अपना एक विशेष स्थान रखती है। यद्यपि दूसरे त्यौहारों पर भी लोग बड़ी खुशियां मनाते हैं परन्तु दीपावली के दिन एक और ही वातावरण होता है और उस दिन रात को भी दीप माला करके हम अपने हर्षोल्लास का और भी अधिक प्रदर्शन करते हैं। परन्तु हमारा इतिहास यह भी बताता है कि कई बार सूर्य ग्रहण भी होता है। उस समय दिन में भी अन्धेरा हो जाता है। परन्तु कुछ समय के पश्चात् वह अन्धकार समाप्त हो जाता है और सूर्य अपने पहले रूप में हमारे सामने फिर आ जाता है। यदि मैं यह कहूं कि १८८३ में दीपावली की रात को सूर्य अस्त हुआ था तो यह कुछ आश्चर्यजनक प्रतीत होगा। सूर्यास्त तो दिन के समय होता है रात के समय नहीं। परन्तु मेरा अभिप्राय एक ऐसे सूर्य से है जिसने अपने प्रकाश से पाखण्ड और धर्मान्धता के अन्धकार को पूर्णतया छिन्न भिन्न कर दिया था। जिस युग में महर्षि दयानन्द संसार के रंगमंच पर आए थे हमारे देश में उस समय चारों तरफ अन्धकार ही अन्धकार दिखाई दे रहा था किसी भी व्यक्ति को प्रकाश और आशा की कोई किरण दिखाई नहीं दे रही थी। ऐसे समय में उनका प्रादुर्भाव हुआ परन्तु कुछ समय के पश्चात् वह सूर्य अस्त हो गया

महर्षि दयानन्द के देहान्त को हुए अब एक शताब्दी होने वाली है १९८३ में हम उनकी निर्वाण शताब्दी भी मनाएंगे। यही समय होगा जब हम देखेंगे कि एक सौ वर्ष में हम कहां से कहां तक पहुंचे हैं

हम में से कई दीपावली की रात को दुर्भाग्यपूर्ण समझते होंगे। एक प्रकार से वह थी भी क्योंकि उस दिन एक महापुरुष ने इस संसार से प्रस्थान किया था जिन्होंने अपने जीवन को एक सूर्य के रूप में चमका चारों ओर अपना प्रकाश फैलाया था। परन्तु हमें यह न भूलना चाहिए कि एक न एक दिन तो उन्होंने जाना ही था। दीपावली की रात को जाकर वह वैदिक धर्म का एक नया दीपक जला गए। दीपावली की रात के दीपक तो बुझ गए। वह प्रति वर्ष जलते हैं और फिर बुझ जाते हैं परन्तु जो दीपक महर्षि दयानन्द ने जलाया था वह न बुझा है और न कभी बुझेगा। वह इसलिए कि उस महान् आत्मा ने अपने जीवन का तेल डाला था। दीपावली की रात को जलने वाले दीपक मिट्टी के बने होते हैं दयानन्द का दीपक वैदिक सिद्धान्तों का दीपक था यह सिद्धान्त अनन्त काल से चले आ रहे हैं और जब तक यह सृष्टि चल रही है यह चलते रहेंगे। यह इसलिए कि इनका आधार सत्य है। इन्हें झुठलाया नहीं जा सकता। मैं किसी दूसरे मत या विचार धारा पर कोई आपत्ति करना नहीं चाहता परन्तु मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि जो लोग अपने २ धर्म या अपने २ मत को संसार के सामने प्रस्तुत करते हैं उनमें से कोई भी वेद की कसौटी पर पूरा नहीं उतरता। इस समय दो या तीन मत ऐसे हैं जो संसार में फैले हुए हैं। ईसाई मत जिसे अभी दो हजार वर्ष भी नहीं हुए इस्लाम जिसे अभी केवल १४०० वर्ष हुए हैं। (पारसी) जोरस्तु जिसके विषय में कहा जाता है कि वह चार हजार वर्ष पुराना है। परन्तु इनमें से कोई भी वैदिक धर्म के सामने खड़ा नहीं हो सकता। वेद कब लिखे गये इसके विषय में योरुपीय विद्वानों में भी मतभेद है। परन्तु एक बात पर सब सहमत हैं वह यह कि संसार के पुस्तकालय में सबसे पुराना ग्रन्थ यदि कोई है तो वह वेद है योरुप के कई विद्वान इनकी आयु पांच हजार वर्ष कहते हैं। कई दस हजार वर्ष कहते हैं और कई २५ हजार वर्ष परन्तु इस बात पर सब सहमत हैं कि वेद से पहले न कोई धार्मिक ग्रन्थ था और न ही कोई और धार्मिक विचार धारा थी। इसलिए महर्षि दयानन्द का सम्बन्ध तो उस युग से जाकर बनता जब मानव को सबसे पहले धर्म उपदेश मिला था और वह वैदिक धर्म ही था। महाभारत के पश्चात् वह धीरे २ सूर्य ग्रहण की तरह अन्धकार में होता गया लोग इसे भूलते गए। परन्तु महर्षि दयानन्द ने उस पर जो छाया आ गई थी उसे हटा दिया और सारे संसार को यह उपदेश दिया कि यदि अपना कल्याण चाहते हो तो वेद की तरफ आओ।

वह सन्देश देते हुए वह दीपावली की रात को इस संसार से चले गए। परन्तु वह जो दीपक जला गए थे वह अब भी जल रहा है और जलता रहेगा परन्तु हमें किसी भ्रान्ति में न रहना चाहिए। इस दीपक को बुझाने वाले भी बहुत पैदा हो गए हैं और उनका हर वक्त यह प्रयत्न रहता है कि इसे किसी न किसी प्रकार बुझा दिया जाए। ऐसी स्थिति में यह हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम इसे किसी प्रकार भी बुझने न दें उसका एक ही मार्ग है कि हम इस दीपक को अपने दिलों के अन्दर जलाए रखें बाहिर का दीपक तो बुझ सकता है दिल के अन्दर जलाया दीपक कोई नहीं बुझा सकता दीपावली की रात को जब हम मिट्टी के दीपक जलाएंगे उस समय हमें यह संकल्प भी करना चाहिए कि जो दीपक महर्षि दयानन्द जला गए थे उसे किसी प्रकार भी बुझने न देंगे इसके लिए आर्य समाज की स्थापना इसीलिए की थी कि जो काम उन्होंने आरम्भ किया है और जो उनके जीवन में अधूरा रह गया था उसे आर्य समाज पूरा करे। हमें इस बात पर गर्व करना चाहिए कि पिछले एक सौ वर्षों में आर्य समाज ने जो कुछ किया वह सराहनीय है। महर्षि दयानन्द के सन्देश को केवल इस देश में ही नहीं देश से बाहिर भी पहुंचाने का प्रयत्न किया गया परन्तु अभी बहुत कुछ करना है। कृण्वन्तो विश्वमार्यम् के महर्षि के स्वप्न को साकार बनाना है दीपावली की रात एक एक दीपक हमें महर्षि की याद दिलाएगा और साथ ही यह प्रेरणा भी देगा कि जो दीपक वह जला गए थे उसे हम बुझने न दें। दीपावली की रात का यही सन्देश है

—वीरेन्द्र

कादियां में प्रान्तीय आर्य सम्मेलन

पंजाब की आर्य जनता को यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता होगी कि धर्म वीर पं० लेखराम की स्मृति में ३० नवम्बर को हम कादियां में प्रान्तीय आर्य सम्मेलन कर रहे हैं। इसकी अध्यक्षता हैदराबाद के प्रसिद्ध आर्य समाजी नेता श्री वन्देमातरम रामचन्द्र राव करेंगे श्री वन्देमातरम जी ने निजाम के विरुद्ध आर्य समाज ने जो सत्याग्रह किया था उसमें भी अपना बहुत अधिक योगदान दिया था। इस समय वह हैदराबाद सरकार की भाषा समिति के अध्यक्ष हैं और आन्ध्र प्रदेश में आर्य समाज के शक्तिशाली स्तम्भ हैं। हम उनके आभारी हैं कि हमारी प्रार्थना पर वह इस सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए ३० नवम्बर को पंजाब आ रहे हैं। इस सम्मेलन का उद्घाटन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री राम गोपाल जी शालवाले करेंगे। मैं चाहता हूं कि पंजाब के सब आर्य समाजी उस दिन और भाई उस दिन कादियां पहुंचे। हम न केवल धर्मवीर पं० लेखराम के चरणों में अपनी श्रद्धांजलियां भेंट करें अपितु आन्ध्र प्रदेश से आने वाले अपने भाई और अपनी शिरोमणि सभा के प्रधान का स्वागत भी करें श्री रामचन्द्र राव लन्दन में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय आर्य सम्मेलन में भी गए थे और वहीं मैंने उनसे प्रार्थना की थी कि वह किसी समय पंजाब भी आएं अब वह ३० नवम्बर को पंजाब पहुंच रहे हैं मैं पंजाब की सब आर्य समाजों के अधिकारियों से सविनय प्रार्थना करना चाहता हूं कि वह ३० नवम्बर को अधिक से अधिक संख्या में कादियां पहुंचें ताकि हम एक बार फिर अपने शक्तिशाली संगठन का प्रदर्शन कर सकें।

—वीरेन्द्र

क्या आपने हस्ताक्षर कर दिए?

राष्ट्रपति को पंजाब में हिन्दी को सम्मानित स्थान दिलाने के लिए जो ज्ञापन देना है क्या उस पर आपने हस्ताक्षर कर दिए हैं? यदि नहीं किए तो अपने नगर की किसी भी आर्य समाज में जाकर वह ज्ञापन ले लें और उस पर हस्ताक्षर कर दें

जिन फार्मों पर हस्ताक्षर हो गए हैं वह शीघ्र सभा कार्यालय में भिजवा दें।

—वीरेन्द्र

बलिदानियों का प्रेरणास्रोत महर्षि दयानन्द

ले०—श्री यशपाल आर्य बन्धु, मुरादाबाद

मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सब सामर्थ्य से धर्मात्माओं के चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुणरहित क्यों न हों—उनकी रक्षा उन्नति प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महाबलवान और गुणवान भी हो तथापि उसका नाश अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपन रूप धर्म से पृथक कभी न होवें।

यह शब्द महर्षि दयानन्द रचित सत्यार्थ प्रकाश के अन्तिम प्रकरण स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश से लिये गये हैं। इनमें महर्षि अन्याय और अधर्म के विरुद्ध प्रबल संघर्ष तथा खुल्लमखुल्ला विद्रोह करने का आह्वान कर रहे हैं। डा० विश्वनाथ प्रसाद वर्मा ठीक ही लिखते हैं कि—

This heroic cenception of manhood is indirectly the preparation for advoc acy of resistance to soc al and political evil (Modern Indian Political thoughts pag २६)

अर्थात् मनुष्यत्व की यह पौरुषपूर्ण अवधारणा परोक्ष रूप में सामाजिक तथा राजनीतिक बुराईयों के विरुद्ध संघर्ष का समर्थन है। महर्षि द्वारा अधर्म और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का यह आह्वान व्यक्ति देश और काल की सीमाओं को लांघ गया था क्योंकि संघर्ष की यह बात किसी व्यक्ति विशेष देश विशेष अथवा काल विशेष के लिए नहीं कही गई। महर्षि तो यहां एक ऐसा सूत्र दे रहे हैं कि जो व्यक्ति देश और काल आदि की सीमाओं में आबद्ध न होकर सर्वजनीन सार्वभौम तथा सार्वकालिक शाश्वत सिद्धान्त बन गया है और फिर चाहे वह अधर्मी अथवा अन्यायकारी स्वदेशी हो या विदेशी उसके विरुद्ध संघर्ष करना अनिवार्य ही है। महर्षि का यह सूत्र संसार के किसी भी देश के किसी भी व्यक्ति पर किसी भी समय घट कर देखा जा सकता है। प्रत्येक देश एवं काल के प्रत्येक व्यक्ति पर यह सिद्धान्त पूर्णतया लागू होता है।

यह महर्षि दयानन्द की अपनी मौलिक सूझ है। यह वसुधैव कुटुम्बकम् के आदर्श को मानने वाले और जन को संसार का उपकार करने का सिद्धान्त देने वाले महर्षि के हृदय का समुज्ज्वल उद्गार है। सच है संसार भर के अन्याय और अधर्म के विरुद्ध संघर्ष का उद्घोष परिव्राटाचार्य महर्षि दयानन्द के सिवाय और कर भी कौन सकता था।

संघर्ष का परम उत्कर्ष बलिदान में है। महर्षि इस सिद्धान्त को भली भांति हृदयंगम किये हुये थे। तभी वे इसी उत्कर्ष की कामना करते हैं अर्थात् संघर्ष करते करते प्राणों तक की आहुति दे देने की बात कहते हैं। इतिहास साक्षी है कि महर्षि द्वारा प्रदत्त बलिदान का यह सूत्र हजारों लाखों नवयुवकों के लिए प्रेरणा का अजस्र स्रोत बन गया था। वस्तुतः कवि यह ही कहता है कि

तुम में कुछ ऐसी बात थी
स्वामी जी तेरी बात पर।
लाखों शहीद हो गए
लाखों ने सर कटा दिया

धर्म के क्षेत्र में अधर्म के विरुद्ध महर्षि के इस बलिदान सूत्र की व्याख्या प० लेखराम स्वामी श्रद्धानन्द महाशय राजपाल तथा ऐसे ही अनेकों धर्मवीर अपने रक्त की स्याही से करते दिखाई देते हैं जबकि राजनीति के क्षेत्र में अन्याय के विरुद्ध लाला लाजपतराय सरदार भगत सिंह सुखदेव राजगुरु रामप्रसाद बिस्मिल अशफाक उल्लाह चन्द्रशेखर आजाद डा० रोशनसिंह उधमसिंह भाई बालमुकन्द तथा भाई परमानन्द श्यामजी कृष्ण वर्मा वीर सावरकर और मदनलाल ढींगरा और न जाने कौन कौन बलिदान के इस सूत्र की व्याख्या अपने अपने ढंग और दृष्टिकोण से करते दिखाई देते हैं। इन और ऐसे ही अन्य बलिदानियों का नाम आते ही हृदय भाव विभोर हो उठता है मस्तक श्रद्धा से नत जाता है और लेखनी का प्रवाह थमता नहीं। किन्तु दुःख इस बात का है कि लेख के उपेक्षित कलेवर की सीमाएं इसे बांधकर रख देती हैं। अतः केवल लेखनी न्याय और अधर्म के विरुद्ध संघर्ष करने वाले अमर बलिदानियों को भावभीनी श्रद्धाञ्जलि देकर विराम लेती है। यहां हम अमर शहीदों की बलिदान गाथाओं का वर्णन नहीं कर रहे क्योंकि उनमें से प्रत्येक के बलिदान की एक लम्बी कहानी है जो इस छोटे से लेख में आनी सम्भव नहीं इसलिए यहां बलिदानियों के प्रेरणास्रोत अथवा उन की थोड़ी सी चर्चा मात्र ही कर रहे हैं।

हमारा दावा है कि अन्याय और अधर्म के विरुद्ध बगावत का इससे बढ़कर कोई अन्य उद्घोष नहीं हो सकता। फिर विद्रोही प्रकृति के नवयुवक इससे प्रेरणा लें तो क्या आश्चर्य? इतिहास साक्षी है कि महर्षि कहीं क्रान्तिकारियों के अग्रणी श्याम जी कृष्ण वर्मा को प्रेरित करते दिखाई देते हैं तो कहीं राज रजवाड़ों में जागृति का शंखनाद करते दिखाई देते हैं। कभी एक स्थान पर सिंह गर्जना करते दिखाई देते हैं तो कभी दूसरे स्थान पर। अंग्रेजों को भी भय था कि यह बागी फकीर कहीं सभी को बागी न बना दे। वस्तुतः महर्षि दयानन्द वह क्रान्तिदूत बन के आया था जो क्रान्तिकारियों के लिए आगे चल कर प्रेरणास्रोत बन सका था। लोग जाने अनजाने उस की ओर खिंचे चले आ रहे थे। एक जादू वाला प्रभाव दिखाई देता था उस व्यक्ति के अन्दर। कहीं उसके उपदेश लाखों को प्रेरणा दे रहे थे तो कहीं उसके ग्रन्थ। दादा भाई नौरोजी तथा ऐसे ही अनेकों ने स्वराज्य समर में कूदने की प्रेरणा उनके ग्रन्थों से ली थी। रामप्रसाद बिस्मिल वीर सावरकर महावीर त्यागी आदि अनेकों सत्यार्थ प्रकाश को अपना प्रेरणास्रोत मानते हैं। महर्षि के भीतर छुपी क्रान्ति की अमर ज्वालाओं का सुदूर अमरिका निवासी एण्ड्रयूस जैक्सन डेविस तक ने भाप लिया था और उसे अग्निवती आग की उपमा दी थी फिर आग से खेलने वाले लोग उस प्रेरणा स्रोत से प्रेरणा क्यों न लेते? पर क्या महर्षि केवल अन्यों को ही संघर्ष एवं बलिदान की राह पर चलने की प्रेरणा मात्र देते रहे या स्वयं भी उस राह पर कभी चलने का प्रयत्न किया? तो आईये देखें कि बलिदान सूत्र के दाता इस सूत्रकार ने उसे स्वयं अपने जीवन में कितना ढाला? कर्म के धनी व्यक्ति जो कहते हैं उसे करके भी दिखाते हैं। महर्षि दयानन्द भी ऐसे ही एक कर्मशील महामानव थे। वे केवल कथनी में नहीं करनी में विश्वास रखते थे डा० विश्वनाथ प्रसाद वर्मा ठीक ही लिखते* कि He was an actionist not a mere Speculative thinker (Modern Indian Thoughts page ३४) अर्थात् वे एक कर्मशील व्यक्ति थे कोरे विचारक नहीं। वे जो कुछ कहते थे स्वयं भी करके दिखाते थे। अतः उन्होंने जो राह दूसरों को दिखाई थी प्रथम स्वयं ही उस पर चल के दिखाया।

यह व्यक्ति जो कभी अपनी बहिन की मृत्यु पर ऐसा भयभीत हो उठा था कि अवसन्न होकर रह गया था और भयातिरेक के कारण जिस की आंखों से अश्रु का एक कण भी उत्पन्न न हो सका था आज पग २ पर वही मृत्यु को ललकार रहा है तब वह मृत्यु के विचार मात्र से ही कांप उठता था कि क्या एक दिन मुझे भी इसी प्रकार मृत्यु का ग्रास बनना पड़ेगा। उस की अश्रु विहीन शुष्क आंखों को देखकर उसके परिवार के लोगों ने उसे निष्ठुर एवं निर्मोही तक कह डाला था। पर उन्हें क्या पता था कि किसी की आंख नहीं हृदय रो रहा है और सत्य तो यह है कि रोने के लिए आंखों में आंसू होना कोई आवश्यक भी नहीं क्योंकि— रोने के लिए लाजिम नहीं आंसू को बहाए। रोये अगर जो दिल तो आंसू कहां से लाए पर अब हम आंसुओं को ही दर्द का पैमाना समझ लगे तो हृदय की गहराई तक कौन उतरने लगा? पर याद रख।

चश्मे परनम से न गमे दिल का
अन्दाज करो।
जोर तूफां का साहिल पे कहां
होता है॥

वह व्यक्ति जो कभी मृत्यु से इतना भयभीत हो गया था कि रात्रि को सोते सोते चौंक पड़ता था आज पग पग पर मृत्यु को ललकार रहा है चुनौती दे रहा है और ठोकर मार रहा है। तब वह मूलशंकर था अब वह प्रबुद्ध महर्षि दयानन्द सरस्वती है। मृत्यु इस वीर के सम्मुख उपस्थित होने का साहस ही खो बैठी थी। बलिदान पथ के इस पथिक को चौदह बार विष दिया गया पर हर बार वह मृत्यु को धकेलता हुआ आगे बढ़ गया। किन्तु विष का अपना प्रभाव तो होना ही था और वह हुआ भी। घोर ब्रह्मचर्य साधना से सधा जो शरीर वेद की मर्यादा के अनुसार त्रिगुणी और चौगुनी आयु को प्राप्त करता वह साठ वर्ष भी तो पूरे न कर सका। महर्षि की मान्यता थी और उन्होंने लिखा भी है कि जैसे डोर से बांधे हुए प्राणी इधर उधर भाग कर नहीं जा सकते वैसे युक्ति के साथ धारण की हुई आयु ठीक समय के बिना नहीं भाग सकती (यजु २२ २) किन्तु नादान लोगों ने उस डोर को ही काट डाला और अत्यन्त युक्ति से भी धारण की हुई आयु को असमय में ही भागने को बाध्य कर दिया। स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक के अनुसार मुरादाबाद में कायमगंज वाले रामलाल ने स्वामी जी से पूछा आप इतने दुर्बल क्यों हैं? क्या आप के स्वास्थ्य का कोई आघात पहुंचा है? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मुझे कई बार विष दिया गया। मैंने उसे वमन और वस्ति से निकाला भी पर कुछ दाग रह ही गया। यह शरीर तो वध से ऊपर आता पर अब ऐसा लगता

(शेष पृष्ठ १० पर)

भारत को नवजीवन दाता ऋषि दयानन्द

ले०—श्री प० शिवकुमार शास्त्री काव्य व्याकरणतीर्थ सी ५३ कालिन्दनगर ऐक्सटे शन दिल्ली

महर्षि दयानन्द का भारत भू पर पदार्पण ऐसे भयकर समय मे हुआ जिसका वास्तविक ज्ञान आज के भारतीय को तुलनात्मक ऐतिहासिक विवेचन के पश्चात् ही हो सकता है। इस समय के युवक और युवति को यह कल्पना भी नही हो सकती कि यहा शूद्र द्विजो को अपने स्पर्श से बचाने के लिए गले में घण्टी बाधे रहते थे कि घण्टी ध्वनि को सुनकर वे सावधान हो जावें और स्पर्श दोष के पाप से बच सकें। दक्षिण में शूद्रो के यातायात के लिए नगरो मे एक मार्ग भी सुनिश्चित होता था कि वे उसी पर चलें ताकि द्विजातियों तक उनकी परछाई भी न आ सके।

वेदाध्ययन के अधिकार के सम्बन्ध मे अपने वेदान्त दर्शन के भाष्य मे अथवा व्ययनाथ प्रतिषधात स्मरणच वे० द० अ० १ पा० ३ सू० ३८ पर भाष्य करते हुये शूद्रो के विषय मे आचार्य शकर लिखते हैं—अथास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रप जतुभ्या श्रोत्रप्रतिपूरणम। पद्यु ह वा एतत श्मशान यच्छू । तस्माच्छूद्र समीपे नाध्येतव्यम। भवति च वेदोच्चारणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेद इति।

अर्थात यदि शूद्र वेद सुने तो राग और लाख पिघला कर उसके कानो के छिद्रो मे भर देने चाहिए। शूद्र तो श्मशान है इसलिए उसके समीप वेद नही पढना चाहिए। यदि वह वेद का उच्चारण करे तो जीभ काट देनी चाहिए और वेद के अनुसार आचरण करे तो शरीर का भेदन कर देना चाहिए।

★ धर्म का संकीर्ण स्वरूप ★

बड बड धर्माचार्यों की दृष्टि केवल परलोक पर थी। मुसलमानो के आक्रमण से जो देश और जाति की दुर्दशा हो रही थी। उस पर किसी को ध्यान नही था उस समय सस्कृत के बड बड दिग्गज विद्वान हुए। उन्होने आचार और धर्म पर बड बड २ पोथे रचे किन्तु वर्तमान के सकट से कैसे उभरें? इसके लिए एक शब्द भी नही लिखा।

पाठको की जानकारी के लिए कुछ धर्माचार्यों के नाम ग्रन्थ और काल की सूची यहा दी जाती है

ग्रन्थकार	स्थान	काल ई०	ग्रन्थ
१ मेधातिथि	मिथिला	९००	मेधातिथि भाष्य
विज्ञानेश्वर	कल्याण/देहार	११००	मिताक्षरा
लक्ष्मीधर	कन्नौज	११४३	स्मृति कल्पतरु
हलायुध	बगाल	१२००	ब्राह्मण सर्वस्व
देवण्णभट्ट	दक्षिण भारत	१२००	स्मृति चन्द्रिका
हेमाद्रि	देवगिरि	१२६० से १३०९	चतुर्वर्ग चिन्तामणि
कुल्लूकभट्ट	काशी	१०००	मन्वर्थ मुक्तावली
वीरमित्रोदय	मिथिला	१३००	वीरमित्रोदय
माधवाचार्य	विजयनगर	१४००	पराशर माधव
नीलकण्ठ	कोंकण	१०००	मयूख
अपरार्क	कश्मीर	१४००	अपरार्क
चण्डेश्वर	बगाल	१४००	स्मृतिरत्नाकर
जीमूतवाहन			धर्मरत्न
रघुनन्दन		१६००	स्मृतितत्त्व
कमलाकार	काशी	१६००	निर्णय सिन्धु
नीलकण्ठ		१६११	भगवन्त भास्कर

मेधा तिथि का ग्रन्थ विद्वत्ता की दृष्टि से प्रवरास्पद समझा जाता है। विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा महाराष्ट्र मे हिन्दू कानून के लिए महत्त्व की रही है चतुर्वर्ग चिन्तामणि मे हेमाद्रि ने दान तीर्थ और मोक्ष जैसे विषयो के वचन सगृहीत किए हैं। कुल्लूक भट्ट की मनुस्मृति की टीका सर्वाधिक प्रसिद्ध है। माधवाचार्य का पराशर माधव पराशर स्मृति की अपेक्षा अधिक आदृत समझा जाता है। किन्तु किसी भी ग्रन्थकार ने यवनो के अत्याचार से देश मे जो हाहाकार मचा हुआ था उसकी ओर ध्यान तक नही दिया। इनको चाहिए था कि हिन्दुओ की बुराईयो को दूर करने की प्ररणा के साथ उस सकट से उभरने की दिशा निर्देश करते। उस समय ब्राह्मण और क्षत्रियो की योग्यता अलकार शास्त्र मे लगी हुई थी। राजा लोग भी इन विषयो पर विद्वतापूर्ण ग्रन्थ रचते थे। उनका आकर्षण सेनापति और राज्य की अपेक्षा राजकवि की ओर अधिक होता था। रण भूमि की अपेक्षा उन्हे रगभूमि अधिक पसन्द थी।

मेधातिथि के बृहत भाष्य मे बलात्कार से भ्रष्ट किये हुये स्त्री पुरुष की शुद्धि का विचार आवश्यक था। क्योकि मेधातिथि कासिम के सौ वर्ष बाद हुए। उन्हे १०० वर्ष पूर्व हुए अत्याचारो का ज्ञान न हो यह नही माना जा सकता।

× स्त्री जाति की दुर्दशा ★

समाज को जन्म देकर पालन-पोषण करने वाली स्त्री जाति के प्रति पुरुष समाज मे बड हीन और निन्दनीय विचार थे। बड बड विद्वान स्त्रियो के विषय मे बड गर्हित विचार रखते थे।

आचार्य शुक्र ने अपनी स्मृति मे स्त्री के सती होने तक का विधान कर दिया—

मृत भर्तरि सगच्छेत् शु० नी० ४ ७८

शुक्रनीति ४ ७९१ म बालक स्त्री और पापी को गवाही देने के अयोग्य ठहराया। यही तक नही आचार्य शक्र ने स्त्रियो मे ८ अवगुण भी गिनाये—

अनृत साहस माया मूर्खत्वमतिलोभिता।
अशौच निर्दयात्व स्त्रीणामष्टौ स्वभावजा। शु० ४ ११९४

झूठ बोलना बिना विचार काम कर बैठना ऊपर से कुछ और अन्दर से कुछ मूर्खता अत्यन्त लालच अपवित्रता निर्दयता और घमण्ड ये स्त्रियो मे स्वाभाविक ८ दुर्गुण होते है।

ये ही दुर्गुण सन्त तुलसीदास ने भी रामायण मे गिनाए है।

सहसा अनृत चपलता माया भय अविवेक अशौच अदाया।

अवगुण आठ सदा उर रहहिं।

आचार्य शकर ने भी अपनी प्रश्नोत्तरी मे स्त्रियो के प्रति बड अपमानजनक विचार प्रकट किए है।

द्वार किमेक नरकस्य नारी
का शृखला प्राणभृताम हि स्त्री
किं तद्विष नि सुधोपमम यत स्त्री
विश्वास पात्र न किमस्ति नारी

सभी द्विजाति ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य अपने अपने शास्त्रविहित कर्म स विमुख हो गय थे। वेदो के दर्शन तक भी ब्राह्मण नही कर पाते थे यह प्रसिद्ध कर रखा था कि वेदो को शखासुर पाताल लोक म ले गया अब वेद इस भूतल पर नही। क्षत्रिय आचार भ्रष्ट हो गये मद्यमास और वेश्यागमन तक म उन्हें कोई लज्जा नही थी

उस समय इस स्वर्गोपम भारत की वही दशा थी जो ज्येष्ठ मास म सूर्य की आग बरसाती किरणो और लूओ से किसी उपवन की होती है। उस भयकर ग्रीष्म काल मे उद्यान की लहलहाती घास जल जाती है। पशु और पक्षी भी प्यास से व्याकुल होकर इधर उधर भटकने लगते है।

मनुष्य ससार की ग्रीष्म के इस ताप से बचने के लिए कोई खस की टट्टिया कहीं वातानुकूलित और कुछ शिमला नैनीताल और मसूरी चले जाते है। किन्तु इस विकट समय मे भी उद्यान की रक्षा की चिन्ता तो उस माली का कर्तव्य सबसे असाधारण और विषम होता है।

उसे न सूर्य की तप्त किरणो की चिन्ता है और न भयकर गरम लू की। उसका ध्यान तो एक एक लता पादप की रक्षा मे केन्द्रित है।

(शेष पृष्ठ ८ पर)

आओ श्रम के दीप जलावें

ले०—श्री कविराज बनवारीलाल शादा प्रधान आर्य समाज मौडल बस्ती शीदीपुरा नई दिल्ली

आओ श्रम के दीप जलावें खुशहाली घर घर मे लाव।
बनें परिश्रम करने वाले श्रम से ही हम सब सुख पाव।
नाली सडक सहन आगन घर इनको सुथरा साफ बनावें।
विद्या की उजियाली म कर अविद्या का अन्धकार मिटावें।
नही गन्दगी मिल कही पर देख देखकर मन हरषाव।
हो लुभावने ग्राम नगर सब उद्योगो से हे सजाव।
मेहनत से हो प्रेम हमारा झूठे पट लोके को त्यागें।
आपस के झगडो को तजकर प्रेम सगठन मे मन लगाव।
अपनी जिम्मेदारी समझें अनुशासन घर घर म लाव
बाल वृद्ध जवान सभी मिल अपना देश महान बनावें।
चिन्ता और निराशाओ को मन अपने से दूर भगाव
अनाचार को मिटा देश से जीवन अपना शुद्ध बनावें।
कामचोर यहा रहे न कोई दुख की गहरी जड लगावें।
नरक बना जो देश हमारा इसको फिर से स्वर्ग बनावें।
शिल्प कला विज्ञान यहा सब विज्ञानी बनकर दिखलावें।
अपने जीवन के हर क्षण को श्रम करने म इसे बिताव
मेहनत के बल पर धरती से मन चाहे हम फल को पाव।
बालक पढ जवान करें श्रम दुगनी पैदावार बढाव।
है उत्थान प्राण हम सब का उन्नति करके हम दिखलाव।
जीवनदाता श्रम है हमारा शादा इससे ध्यान लगावें

—

ठनो भी खूब और बनो भी खूब

ले०—श्री काशीराम जी चावला लुधियाना

(गताक से आगे)

अध्यापक जी ने कहा अच्छा बच्चो मैं इनका भेद तुम्हे बताता हू। अध्यापक जी ने पहले ईंटें ढोने वाले और कुर्सियो पर बैठने वालो का चित्र दिखा कर कहा दो व्यक्ति जिनके सिरो पर ईंटें हैं। सारा दिन यही काम करते हैं और रात्रि को थक कर चूर हो जाते हैं। यह कार्य उनको इसलिए करना पड़ा कि वह विद्या नही पढते थे। उनके माता पिता तो उनको पढाना चाहते थे परन्तु वह खेल कूद मे लगे रहे थे। बड़े होकर वह कोई अच्छा काम नही कर सकते थे। इसलिए उन्हे ईंटें ढाने की आवश्यकता पड़ी इसके अतिरिक्त दूसरी ओर जो दो व्यक्ति कुर्सियो पर बैठे हैं वह पढ लिखकर बाबू बन गये और कुर्सियो पर बैठ कर आनन्द से दफ्तर का काम करते हैं।

यह सुन कर लड़के ने वह चित्र नीचे रख दिया और दूसरे को हाथ मे लेकर स्वय ही कहने लगा कि यह जो भेडें चरा रहे हैं यह भी नही पढे थे और जो घोडो पर चढ कर जा रहे है वह पढ लिख गए थे।

इसके उत्तर मे अध्यापक जी ने कहा कि हा तुम ठीक समझे हो इसके पश्चात शिव कुमार ने तीसरे चित्र को थैले मे से निकाला और इसी प्रकार से कहा कि लकड़िया काटने वाले यह व्यक्ति पढे नही थे और कार मे बैठने वाले पढ लिख गए थे।

अध्यापक जी ने पुन कहा हा यही बात है तुम्हारा विचार ठीक है

तब शिव कुमार ने तीनो चित्र सामने रख लिए और बड़े गौर से देखता रहा फिर व कहने लगा अध्यापक जी यदि मैं न पढा तो मुझे भी यही काम करने होगे। इस पर अध्यापक जी ने कहा कि अब तुम स्वय विचार लो तुम तो बहुत स्याने लड़के हो विद्या न पढने वाले व्यक्तियो का हाल तो तुम देख ही रहे हो।

तब वह तीनो चित्र लेकर भागा भागा अन्दर गया और अपने माता पिता को चित्र दिखा कर कहने कहने लगा कि देखो कि अध्यापक जी कितने शिक्षा दायक चित्र लाए हैं वह मुझे दिखाते ही न थे मैंने स्वय निकाल कर देखे हैं यह चित्र इस बात के प्रमाण हैं कि जो बालक पढने से कभी कतराते हैं और जो दिल लगा कर नही पढते वह या तो ईंटे ढोते हैं या लकड़िया काटते या जगल मे भेड़ बकरिया चराते हैं और इसके अतिरिक्त जो पढ लिख जाते हैं वह या तो कुर्सियो पर बैठते हैं या कारों में सैर करते हैं इसलिए मैं अब अध्यापक जी से जा कर कहता हू कि वह मुझे प्रतिदिन खूब पढाया करें और अब मैं विद्यालय मे भी खूब दिल लगा कर पढू गा ताकि मैं कारो इत्यादि पर सैर करू।

यह कहकर वह चित्र लेकर भागा अध्यापक के पास पहुचकर बोला यह चित्र आपने मुझे पहले क्यो नही दिखाया मैं आज से अपना सारा समय विद्या पढने मे लगाऊ गा आप यह चित्र मुझे दे दें आपकी अत्यन्त कृपा होगी।

अध्यापक जी का तीर ठीक निशाने पर बैठा और वह बड़ा प्रसन्न हुआ और प्रभु का धन्यवाद किया कि अब वह वकील जी से मुफ्त के रुपये न लेंगे।

उस दिन के पश्चात शिवकुमार अध्यापक जी से पूरी लग्न से पढने लगा अध्यापक जी तो चित्र लाए ही इसी योजना से थे परन्तु शिव कुमार की और रुचि बढाने के लिए बोले कि यह चित्र तो मैं स्वय अपने लिए लाया हू यह सुनकर शिवकुमार चित्र लेकर अपनी माता जी के पास चला गया और अपनी माता को देकर कहने लगा कि यह चित्र अपने पास रख लो अध्यापक जी को न देना हम उन्हे इनका मूल्य दे देंगे जब शिवकुमार अध्यापक जी की इस विचित्र विधि और अकलमन्दी से दिल लगाकर पढने लगा तो इससे उसके माता पिता बहुत खुश हुए उन्होने अध्यापक जी को बहुत इनाम दिया और उनकी खूब प्रशसा की। वकील जी ने उन्हे कहा कि मैं कहता था कि आपकी लग्न और उत्तम विचार किसी दिन अच्छा परिणाम दिखायेंगे यदि आप जोर न लगाते तो हम सबको यह खुशी कब मिलती इसके उत्तर मे अध्यापक जी ने कहा वकील जी मनुष्य समर्थ नही यह सब प्रभु की कृपा से हुआ है बेशक यह आपका बालक है इसलिए आप को उसकी आदत बदल जाने से सचमुच बहुत खुशी हासिल होगी परन्तु जो आनन्द मेरे मन को हुआ है वह आप नही अनुभव कर सकते मैं तो प्रतिदिन प्रात साय प्रभु से प्रार्थना करता था कि हे दयालु बता क्या आपको मेरे मुफ्त के पैसे खाने अच्छे लगते हैं क्या आप मेरी सहायता न करेगे कि मेरी कमाई हलाल की हो जावे मेरी प्रार्थना स्वीकार हो गई और उस दयालु प्रभु ने ही यह कृपा की है और उसकी अपार दया ने ही मेरे मन को शान्ति दिलाई है।

यह सुनकर वकील जी ने अध्यापक जी पुन प्रशसा की और कहा कि इस लूट खसूट के जमाने मे भी आप जैसे नेक और ईमानदार व्यक्ति है।

शिवकुमार ने अब अपनी शिक्षा में बहुत उन्नति की अब वह उच्च श्रेणी मे दाखिल हो गया था और अध्यापक जी उसे मिडल तक ही सहायता कर सकते थे इसलिए उन्होने उसे पढाना बन्द कर दिया था वैसे ही अब उसे ट्यूशन रखने की जरूरत ही नही थी वह अब स्वय बहुत परिश्रम करके बहुत अच्छे नम्बर ले कर पास होता चला गया और उसने बी० ए० कर ली

वकील जी चाहते थे कि उनका बेटा भी वकालत पास करे और उनका कार्य भार सम्भाल सके परन्तु उसकी पत्नी ने कहा कि मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता पहले शिवकुमार का विवाह कर दें ताकि मैं अपने जीते जी अपनी पुत्रवधु का मुख देख जाऊ यह मेरा इकलौता बेटा है यह ठीक है कि पुत्रवधु लाने की इच्छा हर लड़के की माता के दिल में बहुत होती है परन्तु देखा यह गया है कि जितनी अधिक इच्छा पुत्रवधु को देखने की होती है परन्तु पुत्रवधु आने के कुछ दिनों पश्चात् इससे भी अधिक इच्छा उसका न देखने की हो जाती है सास और बहू में जितना झगड़ा हो जाता है शायद किसी में होता हो बहुत थोड़े और भाग्यवान घरों मे सास और बहू मे प्रेम और आदर भाव रहता है। अन्यथा पुत्रवधु आने के थोड़े समय पश्चात ही जो सास बड़ी आशाओ और प्यार प्रेम से उसे लाती है ऐसा वातावरण घर मे उत्पन्न हो जाता है कि दोनो का इकट्ठा रहना मुश्किल हो जाता है शिवकुमार की माता अपने पुत्र के शीघ्र विवाह करने के लिए बहुत जोर देने लगी

(क्रमश)

महर्षि दयानन्द के उपकार

लेखक—श्री सत्पाल जी प्रभाकर नवाकोट अमृतसर

भारत की सूखी बगिया मे जो फिर से लाये बहार।
उस माली ऋषिदयानन्द के मन याद करो उपकार।
झूठ का बोलबाला था और मिट रही सच्चाई थी।
देशद्रोही पाखण्डियों ने भारत मे लूट मचाई थी।
पाखड खण्डिनी पताका लहरा किया वेद प्रचार।
उस माली ऋषिदयानन्द के जरा याद करो उपकार।
नारी का सम्मान किया अनाथो को गले लगाया।
बाल विवाह को बन्द किया छुआ छूत का रोग मिटाया
हिन्दी को ही राष्ट्रीय भाषा का जो दे गए अधिकार।
उस माली ऋषिदयानन्द के जरा याद करो उपकार।
कहा कलम से ऋषिवर जाकर गऊ हत्या को बन्द करो।
उस की रक्षा और पालन का अतिशीघ्र प्रबन्ध करो।
केवट बनकर देश की नैय्या करदी भव से पार।
उस माली ऋषि दयानन्द के जरा याद करो उपकार।
बागी फकीर बन जाति को स्वतन्त्र रहना सिखलाया।
अपना राज्य ही उत्तम होता है सत्यार्थ में बतलाया
सर्दी गर्मी भूख प्यास सह किया देश उद्धार।
उस माली ऋषि दयानन्द के जरा याद करो उपकार।
ऋषि के सेनानी लाजपत ने गोरी सरकार हिलाई।
बिस्मिल भगतसिंह फासी चमी आजाद ने गोलिया खाई
श्रद्धानन्द और लेखराम ने तन मन धन दिया वार।
उस माली ऋषि दयानन्द के जरा याद करो उपकार।
कहा जहा तक हो सके दुखीयो की सेवा करो।
गुणो को ग्रहण करते जाओ और दोषो को दूर करो।
प्यारे प्रभु को कभी न भूला जो सब का आधार।
उस माली ऋषिदयानन्द के जरा याद करो उपकार।

—

आर्य समाज लन्दन द्वारा आयोजित सार्वभौम आर्य महासम्मेलन

लेखिका—श्रीमती शकुन्तला कोछड़ लन्दन

स्वस्ति पन्थामनुचरेम

२० अगस्त १९८० बुधवार से राष्ट्र मेध यज्ञ पृथ्वी सूक्त से कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ ब्रह्मा के स्थान को सुशोभित करने वाले श्री सत्यपाल शर्मा वेद शिरोमणि नैरोबी से पधारे थे। पुरोहित स्थानों पर थे श्री प० जैमनी शास्त्री श्री प० चन्द्र भानु श्री प० विश्व बन्धु श्री श्री क्षितीश कुमार वेदालंकार श्री आचार्य सत्यप्रिय श्री डा० भू तीशील शर्मा श्री तथा गुरुकुल एटा के आचार्य आदि भी इनका साथ दे रहे थे। श्रीमती कैलाश भसीन जी की अध्यक्षता में यज्ञ पर घी समिधा सामग्री इत्यादि की पूर्ण सफल व्यवस्था रही। इस अवसर पर प० हरबंसलाल हंस तथा श्री परिजा जी के मधुर भक्ति रस भरे भजन प० चन्द्रभानु जी तथा प० विश्व बन्धु जी के ओजस्वी भाषण सुनने को प्राप्त हुये आरती तथा शान्ति पाठ के पश्चात काम पूर्ण हुआ आर्य समाज का हाल भरा हुआ था परन्तु श्रोतागणों ने बड़ा ही शान्त तथा नियमित वातावरण रखा जिससे कार्यक्रम का प्रथम दिवस सफल रहा। कार्यकर्ताओं में बड़ा उत्साह था सब उपस्थितजनों को शाकाहारी भोजन तथा प्रसाद दिया गया और अतिथियों को कोच (बस) द्वारा होटल मे पहुंचाया गया।

२८९ व्यक्तियों का प्रबन्ध बहलस यूनिवर्सिटी होटल मे किया गया था। प्रत्येक व्यक्ति का एक एक कमरा जिसमे सब सुविधाए उपलब्ध थीं ठहरने की व्यवस्था थी। प्रातः बैड टी नाश्ता जिस मे फलो का जूस काफी डब्बल रोटी मक्खन जाम दूध तथ सीरियल दिया जाता था दिन मे समय मिलने पर देखने योग्य स्थानो पर बस द्वारा घुमाया जाता था।

२१ अगस्त १९८० वीरवार का प्रोग्राम दोपहर से प्रारम्भ हुआ। विद्वान सम्मेलन विषय वैदिक धर्म प्रचार विदेशो मे प० सत्यपाल वेद शिरोमणि तथा आचार्य भगवानदेव एम० पी० की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ प्रिंसिपल मिस आनन्द श्री वेद सागर वेद श्रीमती कमला आर्या श्री क्षितीश कुमार वेदालंकार श्री सुखराज छोटे तथा डाक्टर विश्व बन्धु जी के मधुर विचार सुनने को प्राप्त हुए। सायंकाल को यज्ञ भजन तथा भाषण हुए भाग लेने वाले थे डाक्टर शर्मा जी मिस साधना छोटे मोहनलाल मोहित तथा श्री देवेन्द्र कपूर हजारों की उपस्थिति के पश्चात भी शान्त वातावरण था श्रोतागणों से कार्यक्रम की प्रशंसा सुन इस की सफलता पर गर्व हुआ। खाने पर आर्य बच्चों का सहयोग तथा स्त्रियों की स्वयम् सेवा सराहनीय थी। खाने के पश्चात अतिथियों को वापिस उनके निवास स्थान (होटल) मे पहुंचा दिया गया।

श्रीमती शकुन्तला कोछड़ लन्दन मे आर्य समाज की एक बहुत सक्रिय सेविका हैं दो मास हुए जब वहां अन्तर्राष्ट्रीय आर्य सम्मेलन हुआ था उसमे उन्होंने अपने स्वास्थ्य की भी चिन्ता न करते हुए दिन रात उस सम्मेलन की सफलता के लिए काम किया था। इस लेख मे उन्होंने उस सम्मेलन के विषय मे अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। यद्यपि उस सम्मेलन को हुए अब दो मास के लगभग होने लगे हैं फिर भी आर्य मर्यादा के पाठको की जानकारी के लिए यह लेख प्रकाशित किया जा रहा है ताकि वह अनुमान लगा सके कि लन्दन मे उस समय क्या हुआ था।

—वीरेन्द्र

२२ अगस्त १९८० शुक्रवार का कार्यक्रम भी दोपहर से प्रारम्भ हुआ। यह शिक्षा तथा संस्कृति के आधार पर था। इस काम की अध्यक्षता पद पर प्रिंसिपल बी० एस० बहल थे। वक्ताओं मे प्रोफेसर भगतराम शर्मा प्रिंसिपल श्री सी० एस० अरोड़ा श्री पुरुषोत्तम शर्मा स्वामी दिव्यानन्द जी प० हरिशंकर आर्य वेदालंकार तथा स्वामी ओमानन्द जी थे। बड़ा ही शान्त वातावरण रहा। सायंकाल राष्ट्र मेध यज्ञ तथा भाषण और भजनों का रंगमय कार्यक्रम था इसमे श्रीमती सन्तोष आशानन्द श्रीमती स्वर्ण शर्मा श्रीकरण शारदा तथा स्वामी दयानन्द विदेह ने भाग लिया। प्रीति भोजन के पश्चात अतिथियों को उनके गन्तव्य स्थान पर पहुंचाया गया।

२३ अगस्त १९८० शनिवार को कार्यक्रम प्रात १० बजे से प्रारम्भ हुआ राष्ट्र मेध यज्ञ पूर्ण आहुति से सम्पन्न हुआ सब उपस्थितगणों ने क्रम से यज्ञ कुण्ड मे आहुति डाली इतना वातावरण मधुरमय तथा रसीलो सुगन्धमय बना जो सब ने बहुत ही पसन्द किया। ऋषि लंगर का आयोजन था दो हजार से अधिक व्यक्तियों को भोजन दिया गया जो बहुत ही स्वादिष्ट था ध्वजारोहण श्री वीरेन्द्र के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ तथा श्री वीरेन्द्र जी ने सम्पूर्ण कार्य की सफलता की सराहना की।

दोपहर को युवक युवतियों तथा बच्चों का रंगारंग कार्यक्रम था। सब बच्चों ने ही भाग लिया। भाषण भजन गीत नृत्य तथा ड्रामा इत्यादि थे। महर्षि दयानन्द जी की जीवन गाथा दो नन्हे नन्हे भाई बहिन ने इतने रोचक ढंग से प्रस्तुत की जिसका प्रभाव एकत्रित जन पर बहुत ही पड़ा। लड़का जिसने मूल (स्वामी दयानन्द जी) की भूमिका प्रारम्भ मे की एक १२ वर्ष का बच्चा अरुण कोछड़ तथा उसके जीवन में सम्बन्धित चरित्रों की भूमिका इसकी बहिन अन्जला कोछड़ ने प्रदर्शित की वार्तालाप इंगलिश मे था परन्तु बहुत सरल तथा सुचारु रूप मे प्रस्तुत था। बड़ा ही स्वाभाविक ढंग से पेश किया गया नाटक सब ने बड़ा ही पसन्द किया तथा सभी प्रभावित हुए मान नीय वीरेन्द्र जी ने सराहना करते हुये कहा इन बच्चों के माता पिता तो बधाई के पात्र हैं साथ ही मैं तो समझता हूं समस्त लन्दन निवासी ही बधाई के पात्र हैं। मुझ तो समूचे आर्य जगत का भविष्य उज्ज्वल लगता है। लन्दन जैसे स्थान में जहा पश्चिमी सभ्यता है वहा ऐसे बच्चों को देखें तो हमे लगता है कि यह तो भारतीय सभ्यता से भी चार कदम आगे ही है बच्चोंमे अपने धर्म भाषा संगीत तथा संस्कृति के प्रति निष्ठा बनी रहे आशीर्वादो की बौछार की गई। कुमारी अंजली आर्या तथा डाक्टर वेद भसीन की अध्यक्षता मे यह सम्मेलन पूर्ण हुआ श्री इन्द्रनाथ जी तथा आचार्य भगवान देव एम० पी० की अध्यक्षता मे योग का प्रदर्शन हुआ तथा श्री भगवानदेव और डाक्टर भूषण भारद्वाज जी ने रोचक भाषण दिए। भाषणों मे कीमती सुझाव सुनने मे समय इतनी शीघ्र बीता जिस का आभास नहीं हो पाया श्रोतागणों को।

२४ अगस्त १९८० का कार्यक्रम तथा २५ अगस्त का कार्यक्रम मैरो लईयर सैंटर में हुआ इस हाल में २००० श्रोता गण बड़ी सुविधा पूर्वक बैठने की व्यवस्था थी। प्रात १० बजे से शुरू हुआ आर्य समाज की विदेशों मे कार्य प्रणाली इस सम्मेलन का विषय था। श्री प्रो० पी० त्यागी मन्त्री अन्तर्राष्ट्रीय आर्य लीग नई दिल्ली की अध्यक्षता मे प्रारम्भ हुआ श्रीमती शिव राजवती जी के मधुर भजन हुए भारत कीनिया दक्षिणी अफ्रीका मोरेशियस टीनीडाड तथा यू० के० के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

दोपहर की सभा का विषय था—संसार का धर्म मुख्य अतिथि थे डाक्टर आई० पी० सिंह एक्टिंग हाई कमिश्नर भारत के आयोजित पदाधिकारी थे प्रो० एस० एन० भारद्वाज प्रधान आर्य समाज लन्दन के तथा अध्यक्ष पद पर प्रिंसिपल शान्ति नारायण ने (रिटायर्ड देहली यूनिवर्सिटी) इसमे भाग लिया जूडिस्म रबी रोडनी मैरीनर ईसाईयत रैवरेंड फिलप मकौसफील्ड इस्लाम डाक्टर साईयद अल वल हिन्दुइज्म प्रोफेसर उमा कान्त उपाध्याय बुद्धइज्म विनियम प्यातीसा सिक्खीज्म प्रोफेसर हरमिन्द्र सिंह मक्कड़ मिस्ट्र हैनरमन। सायंकाल का संगीत सम्मेलन श्रीमती शीला मारकण्डे जी की अध्यक्षता मे सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ सन्तोष वर्मा मिस सुषमापुरी श्रीमती स्वर्ण शर्मा श्रीमती शिवराजवती मिस साधना छोटे का मधुर संगीत भजनों की मीठी लय ने श्रोतागण को बड़ा प्रभावित किया

२५ अगस्त प्रात १० बजे श्रीमती आशा शर्मा जी के संगीत से प्रारम्भ हुआ प० सत्यदेव भारद्वाज वेदालंकार जी ने सम्मेलन की अध्यक्षता की तथा प्रोफेसर एस० एन० भारद्वाज जी आर्य समाज लन्दन के प्रधान हैं द्वारा भाषण तथा महासम्मेलनके प्रस्तावों की मालाएं श्रद्धापूर्वक भेंट की गई। प्रधान तथा मन्त्री द्वारा धन्यवाद दिये गये।

दोपहर के कार्यक्रम मे प्रस्ताव का अन्तिम रूप दर्शाया गया सम्मिलित गान धन्य है तुमको ऐ ऋषि गाया गया तथा शान्ति पाठ के साथ महासम्मेलन पूर्ण था।

यह गत सप्ताह का कार्यक्रम बड़ा सफल रोचक तथा मार्ग दर्शक रहा इस इतने बड़े सम्मेलन में हजारों की संख्या मे उपस्थिति देखकर यह आर्य भावना प्रदर्शित होती देख मन बड़ा हर्षित हुआ। स्वामी दयानन्द जी की ज्योति जली रखने का संकल्प आर्य परिवारों में कूट कूटकर भरा हुआ देखने का समय तथा सौभाग्य इस महासम्मेलन से मिला।

इस सम्मेलन को आयोजित करने की प्रेरणा देने तथा सहयोग देने तथा स्वयम् सेवको कार्यकर्ताओं और बच्चों युवकों तथा कलाकारों एवं भाग लेने वालों को मैं धन्यवाद तथा बधाई देती हूं। आर्य जनो को शुभ कामनाएं भाती हूं।

—

ऋषि दयानन्द की देन

ले—श्री प. बिहारी लाल जी शास्त्री बरेली)

ओ३म्

दिल्ली मे जब बहलोल लोधी बाद शाह था तो उस समय एक ब्राह्मण यह प्रचार करता था कि हिन्दू मुसलमान सब मजहब बराबर है। यह खबर जब बहलोल लोधी का लगी तो उसने उस ब्राह्मण को बुलाया और उससे पूछा कि क्या तुम सब मजहब को बराबर बताते हो? ब्राह्मण ने स्वीकार किया इस पर बहलोल लोधी कहाकि हिन्दुओ का मजहब कुफ्र है। और इस्लाम खुदा का बताया मजहब है। यह दोनो बराबर कैसे हो सकते है इस लिये तुम मुसलमान बनो वर्ना कत्ल कर दिये जाओगे। ब्राह्मण अपनी बात पर डटा रहा इस पर लोधी ने लकड़ियो की चिता बनवाकर उसको जिन्दा जलवा दिया। मुसलमानी हुकूमत जब तक रही तब तक कोई हिन्दू अपने मजहब का इस्लाम के बराबर बताने की हिम्मत नही कर सकता था।

जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज्य बगाल मे हो गया तो राजाराम मोहन राय ने यह प्रचार किया कि हिन्दू मुसलमान ईसाई सब धर्म बराबर हैं। इसी बात को महात्मा गांधी ने दोहराया। केवल ऋषि दयानन्द ने ही यह घोषणा की कि केवल वैदिक धर्म सत्य है और सब भ्रान्त हैं। ऋषिवर की घोषणा को सुनते ही स्वाभिमानी हिन्दुओ की धमनी धमनी से फड़क उठी। झुका हुआ सिर स्वाभिमान से ऊंचा हो गया। इससे हिन्दुओ मे अपने धर्म के प्रति अभिमान पूर्ण आस्था का उदय हुआ। श्रद्धा बढ़ी। वेदो के प्रति रुचि जागृत हुई।

सन १८५७ के बाद ऋषि दयानन्द ने ही यह घोषणा की कि न्याय और दया पूर्वक पक्षपात रहित भी विदेशी राज्य ऐसा नही हो सकता जैसा स्वदेशी होता है। क्योंकि स्वामी दयानन्द यह जानते थे कि विदेशी राज्य पहले कुछ दिनो अच्छा रहता है फिर राष्ट्र का निर्जीव कर देता है। ऐसा उन्होने यही किया श्री स्वामी दयानन्द ने कांग्रेस के स्वराज्य आन्दोलन से पहले ही स्वराज्य की घोषणा कर दी थी और उनके शिष्य श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा ने क्रान्ति का आरम्भ कर दिया था। श्री मदन लाल धींगरा जिन्होने इग्लैंड म भारत मत्री के सेक्रेटरी को गोली से उड़ा दिया था श्याम वर्मा जी के ही शिष्य थे। वीर सावरकर और उनके अनेक क्रान्तिकारी साथी वर्मा जी के परम भक्त थे। स्वामी दयानन्द ने हिन्दुओ मे भावनात्मक एकता (Emotional Integeation) उत्पन्न करने के लिए वेदो को धर्म पुस्तक के रूप मे रखा जिन वेदो को मैक्समूलर साहब भ्रम पुस्तक बताते हैं। हिन्दुओ मे अनेक मत थे। वैदिक धर्मियों म भी संस्कार पद्धतियां अलग अलग थी। सध्यायें पृथक पृथक थी। ऋषि दयानन्द ने संस्कार विधि और पंचमहायज्ञ विधि लिखकर सब हिन्दुओ के संस्कार और उपासना की विधि एक कर दी। भावनात्मक एकता के लिए यह बहुत बड़ा काम था। तीसरी देन तो ऋषि दयानन्द की अनुपम देन है राष्ट्र का जीवन है और भारत की राष्ट्रीय शक्ति को बढाने वाली देन है। वह है शुद्धि संस्कार जोकि वास्तव मे राष्ट्रीय करण करना है।

देश मे रहने वाले अहिन्दू भारत भूमि को पवित्र नही मानते भारत की सस्कृति और इतिहास के प्रति उनके मनमे कोई गौरव नही है। स्वामी दयानन्द के शुद्धि सदेश का यह प्रभाव हुआ कि लाखो की सख्या मे विधर्मी लोग हिन्दू बना लिये गये और सनातनधर्मी भी हर्ष पूर्वक शुद्धि सस्कार करा देते है। महात्मा गांधी का लड़का हीरालाल अब्दुल्ला बन गया। महात्मा गांधी इस कड़वे घूट को चुपके से पी गये। विनोबा जी भी आश्रम मे पड़े रहे और मौन धारे रहे। माता कस्तूरबा रोती रही। उनके आंसूओ को पोछने वाला भारत म कोई नही था। श्री पण्डित विजय शकर जी प्रधान आर्य समाज बम्बई गाधी आश्रम मे पहुचे और कहाकि एक महीने के अन्दर काठ मे पड़ गए हीरे को फिर हीरा न बनाया तो बम्बई के समुद्र म कूदकर जान दे दूंगा। पन्द्रह दिन बाद अब्दुल्ला फिर हीरालाल बन गया। कांग्रेस का लाखो रुपया खाकर भी किसी मुसलमान ने देश के लिये जान नही दी किन्तु आर्य कुमार सभा के मन्त्री श्री राम प्रसाद बिस्मिल के शिष्य माननीय श्री अशफाक उल्ला खां साहब ने भारत की स्वतंत्रता के लिये फांसी के तख्ते को चूम लिया। आज भी भारत के करोड़ो मुसलमानो के हृदय मे पाकिस्तान की भक्ति समाई हुई है। उसको केवल शुद्धि संस्कार ही दूर कर सकता है। हिन्दू आर्य समाजी हो या सनातनी या सिख या जैन बौद्ध भारत के रजकणो को पवित्र मानकर भारत माता को सिर झुकाता है। गर्व पूर्वक वन्दे मातरम का गान करता है। क्या मुसलमान और ईसाईयो के हृदय मे भारत भूमि के प्रति भक्ति है? राष्ट्रीकरण (शुद्धि) होते ही वह क्या बन जाता है सुनिये —

इस हीन रसखान वैष्णव बनकर लिखता है —

या लकुटी अरु कामरिया पर राजतिहू पुरको तज डारो
आठो सिद्धि नवो निधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारो ॥
रसखान कब हो इन आंखिन से ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारों ॥
कोटिन हो कल धौत के धाम करील के कुञ्ज ऊपर वारो ॥

हिन्दू राष्ट्र का बढ़ना भारत की शक्ति का बढ़ना है और भारत का शक्ति शाली होना मानवता के लिए सुखकारक है।

(२ पृष्ठ का शेष)

वही आतुरता से वृक्षपालो में जल भरकर लाता है और उदास वृक्ष और लता की जड़ मे अपनी ममता के साथ उडेल देता है। इस घोर तपोमय साधना से माली उस सकट की घड़ियो को काटता है। आषाढ़ का मास आया आकाश पर काले बादल उठे और एक घन्टा मे जल धारा बरसा कर जलथल एक कर दिया।

यह समय माली के लिए महान हर्ष का था। वह आज उद्यान की रक्षा के भार से चिन्तामुक्त हुआ और सोचता था कि वृक्ष और लताए उस सकट के समय की मेरी सेवा को स्मरण करके कृतज्ञता प्रकट करेंगी। वह इसी उमग मे उद्यान को निहारने जा पहुचा।

किन्तु बरा उद्यान के लता पादपो की दशा उस वर्षा की जलराशि को देख कर कुछ और ही हो गयी थी। वे माली के उपकार को भूल चुके थे—ठीक कहा है विद्वान विदुर ने—

षडेते ह्यवमन्यन्ते नित्य पूर्वोपकारिणम्।

आचार्य शिक्षिता कृतदाराश्च मातरम्।
नारी विगतकामास्तु कृतार्थाश्च प्रयोजकम्।
नाव निस्तीर्ण कान्तारा आतुराश्च चिकित्सकम्।

अर्थात ये निम्न ६ प्राय पूर्वोपकार को भूलकर उपकारकर्त्ता की अवहेलना करते है—शिक्षित होने पर शिष्य आचार्य की विवाह के पश्चात पुत्र माता की कामजयी स्त्री काम निकलने के बाद काम करने वाले की नदी पार करने के पश्चात नाव की और रोगमुक्त व्यक्ति वैद्य की—इनमे से उपवन के लता और वृक्षो का जीवन सकट समाप्त हो चुका था। अत अब उन्हे माली से क्या प्रयोजन था।

माली को इस उपेक्षा से ठेस लगनी स्वाभाविक थी। तभी माली के मनो भावो को जानकर एक वृद्ध वृक्ष ने कृतज्ञता से नत होकर माली का पुकार कर पण्डित राज जगन्नाथ की अन्योक्ति के शब्दो मे कहा—

शोषैरस्थैरपि करुणया भीमभानौ निदाघ
मालाकार व्यरचि भवता या तरोरस्य पुष्टि।
सा किं शक्या जनयितुमिह प्रावृषेण्येन वारा
धारासारानपि विकिरता विश्वतो वारिदेन।

हे माली! उस ग्रीष्म की घोर विपत्ति के समय थोड़ा थोड़ा भी पानी हम वृक्षो की जड़ो मे डालकर तुमने जो हमारे जीवन की रक्षा की। उसकी बराबर एक करने वाली यह मेघ की अनन्त जलराशि तुलना नहीं कर सकती। यदि तू उस समय हमे जीवन दान न देता तो हममे से इस वृक्ष को देखने के लिए ही कौन बचता?

यही बात ऋषि दयानन्द की आत्मा को भारत के गम्भीर चिन्तक और विचक्षी स्त्री पुरुषों की ओर से उचित रूप में कही जा सकती है।

यद्यपि भारत की स्वतन्त्रता और पुनर्जागरण मे ऋषि को उचित श्रेय देने वालो की संख्या कम है। किन्तु तथ्य यह है कि तुमने उस भयकर समय मे माली के समान ही इस भारत उद्यान के एक वृक्ष और लता को जो जीवनदान दिया वह अनुपम है।

यथेमा वाच कल्याणीम का वेद का नारा लगाकर शूद्रो को वेदाध्ययन का अधिकार देकर उनको वर्णों में योग्यता प्राप्त करके ब्राह्मण तक बनने का स्वर्णिम अवसर दिया। स्त्री जाति को वेद का मह केतु रह मूर्धा कहकर समाज में सर्वोच्च पद दिया। समाजी ममर्दुरभव कह कर अनेक जीवन मे नारी को दासी से उठाकर पटरानी पद पर अभिषिक्त किया। भारतीय समाज की दासता की हीन भावना को कीचड़ भरी नाली से उठाकर चक्रवर्ती राज्य तक प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा को मादक भावना के उच्चतम शिखर पर आसीन करके भारतीयों के अरमानो को पैरो तले रौंदने वाले विदेशियो को चुनौती देते हुए कहा—

ये मेहरे तावा से जाके कहदो कि अपनी किरनो को गिनके रखे।
मैं अपने सहरा के जर्रे जर्रे को खुद चमकना सिखा रहा हू।

ऋषिवर इस भारत भू को जो गौरव और जीवन आपने दिया उसे स्मरण करके हमारा मस्तक आपके पावन चरणो मे नत मस्तक है।

—

रोगियो के लिए निःशुल्क औषध

२६ १० ८० दोपहर बाद एक विशेष कैम्प लगा कर रोगियो मे निःशुल्क दवाईया बांटी गई ई० सी० जी० मूत्र तथा रक्त परीक्षण का भी प्रबन्ध था। ग्यारह डाक्टरो की एक टीम ने श्री डा बी डी तिवारी की अध्यक्षता मे काम किया। बहुत से रोगियो ने लाभ उठाया आर्य समाज के अधिकारियों ने भी सेवा कार्य किया। यह शिविर बड़ा सफल रहा।

सुभाषचन्द्र आनन्द मन्त्री
आर्य समाज श्रद्धानन्द बाजार अमृतसर

सत्यार्थ प्रकाश पुस्तक माला

ले०—श्री दत्तात्रेय बाल्ले पू० पू० आचार्य दयानन्द कालेज अजमेर

प्रस्तावित सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी के अवसर पर आर्य समाज अजमेर द्वारा १४ समुल्लासों पर विवेचनात्मक लघु पुस्तिकाएं प्रकाशित करने की घोषणा की गई है अनेक आर्य बन्धुओं ने इस योजना का हार्दिक स्वागत किया है साथ ही कुछ उपयोगी सुझाव और एक दो आशंकाएं भी प्राप्त हुई हैं। इन सब प्रतिक्रियाओं के सम्बन्ध में सत्यार्थ प्रकाश के ऐतिहासिक महत्व और प्रस्तावित पुस्तक माला के उद्देश्य को स्पष्ट करने की दृष्टि से मैं कुछ विचार आर्य जगत के सामने प्रस्तुत करना चाहता हूं।

★ क्रान्तिकारी ग्रन्थ ●

महर्षि दयानन्द का सत्यार्थ प्रकाश उन ग्रन्थों में से एक है जिन्हें वास्तविक ग्रन्थों में ऐतिहासिक रचना कहा जा सकता है। मानव जाति के इतिहास में अनेक क्रान्तियां हुईं किन्तु उनका प्रारम्भ विचार क्रान्तियों से ही हुआ है। संसार के आधुनिक धार्मिक इतिहास में उसका वही स्थान है जो कार्ल मार्क्स के दास कैपीटाल अर्थात पूंजी नामक ग्रन्थ को है। जिस प्रकार आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में केवल अर्थ या पूंजी को आधार मानकर इस ग्रन्थ ने इतिहास के भौतिक विश्लेषण के एक नवीन सिद्धान्त को जन्म दिया उसी प्रकार धर्म या रिलीजन और मजहब जैसे विश्वास या अन्धविश्वास के क्षेत्र में सत्य की कसौटी के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके दयानन्द ने धार्मिक इतिहास को एक नवीन दिशा दी है। अभी तक सत्य की खोज केवल साईंस या विज्ञान का ही क्षेत्र माना जाता रहा है। किसी धर्म संस्थापक ने उसकी खोज का दावा तक नहीं किया संसार के किसी मसीहा पैगम्बर अवतार या गुरु ने अपने धर्म का आधार सत्य है ऐसा भी नहीं कहा और न ही तर्क और बुद्धि को धर्म में कोई स्थान दिया यह श्रेय केवल ऋषि दयानन्द को है।

★ आत्म विश्वास का प्रेरक ❋

प्रायः सारे धर्म गुरु अपने को साक्षात ईश्वर या उसका अवतार अथवा दूत मानते हैं या फिर उनके अनुयायी उन्हें ऐसा बना देते हैं। इनके अनुयायियों की संख्या क्यों और कैसे बढ़ती है यह भी एक खोज का उपयुक्त विषय है। इनमें अधिकांश धर्म भीरु या सहज विश्वासु महिलाएं होती हैं या फिर वे लोग होते हैं जो किसी प्रकार की व्यक्तिगत शारीरिक या मानसिक दुर्बलता अथवा समस्या के शिकार बनकर अपना आत्म विश्वास खो बैठे हैं चाहे फिर वे कितने ही शिक्षित और सम्पन्न क्यों न हों। सत्यार्थ प्रकाश ही एक ऐसा ग्रन्थ है जो इस — की — — का बौद्धिक धर्म स्थिरता के कारण डगमगाने वाले व्यक्तियों को आत्म विश्वास और साहस प्रदान कर सकता है। कुछ राजनैतिक नेताओं की बात और है जो अपने स्वार्थ या संस्कारों के कारण धार्मिक नेताओं या स्वामियों की लोकप्रियता से लाभ उठाने के लिए उन्हें अनावश्यक प्रोत्साहन देते हैं।

★ बौद्धिक धर्म की आधारशिला ❋

ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में किसी के व्यक्तित्व या जीवन पर आक्रमण नहीं किया केवल उनके विचारों में तथ्यों और अन्धविश्वासों की तार्किक आलोचना की है। खण्डन मण्डन जिसे हमारी प्राचीन परम्परा में शास्त्रार्थ कहा जाता है वह दार्शनिक क्षेत्र में सत्यासत्य के निर्णय का सर्वसम्मत तरीका रहा है आधुनिक युग में भी आविष्कार और खोज के भौतिक क्षेत्र में यह स्वीकार किया जाता है कि पुरानी विचार धाराओं का खण्डन किये बिना नवीन शोध असम्भव है। ज्ञान और विज्ञान की प्राप्ति इस प्रकार के स्वतन्त्र और अप्रिय समझे जाने वाले तरीकों के बिना सम्भव नहीं हो सकती और यह स्पष्ट है कि इस काम में केवल किसी की भावना या विश्वास को आघात पहुंचाना है ऐसा कहकर हम मानव प्रगति को कुण्ठित नहीं कर सकते दुर्भाग्य से धार्मिक क्षेत्र में सत्य के विवेचन को अभी तक वह स्थान प्राप्त नहीं हो सका जो भौतिक विकास के क्षेत्र में उसे दिया गया है इसके विपरीत यहां सब धर्म केवल विश्वास और भावना पर आधारित हैं। उनमें तर्क और शोध के लिए कोई स्थान नहीं है। उनमें विचार विनिमय के स्थान में जोर जबरदस्ती लोभ लालच और यहां तक कि हिंसा और हत्या को वैध और उचित समझा जाता रहा है। जिहाद और क्रूसेड का रक्त रंजित इतिहास इसका प्रमाण है। धर्मों में प्रचलित अन्धविश्वासों और मूर्खतापूर्ण रीति रिवाजों तक की आलोचना से परे समझने लगने का दूसरा परिणाम यह हुआ कि धर्म के मौलिक आदर्शों के प्रति भी आधुनिक शिक्षित वर्ग में विरोध नहीं तो उपेक्षा बढ़ने लगी। वैज्ञानिक और अन्य बुद्धिजीवी यह समझने लगे कि धर्म के नाम पर प्रचलित अन्धविश्वासों के निराकरण का प्रयत्न करना समय और शक्ति का अपव्यय करना मात्र होगा धर्म को इसलिए मानव प्रगति के मार्ग में एक बड़ी बाधा समझा जाने लगा हमें ऋषि दयानन्द का कृतज्ञ होना चाहिए कि जिन्होंने मतान्ध मतों का खण्डन नहीं किया अपनी परम्परा को चुनौती देकर एक नवीन दृष्टिकोण हमारे सामने प्रस्तुत किया उनके साहसपूर्ण विचार धारा की आज संसार भले ही उपेक्षा करे? किन्तु भावी इतिहासकार वर्तमान नहीं तो मानव समाज में भावी धर्म की आधारशिला रखने का श्रेय उन्हें ही देंगे इसमें सन्देह नहीं।

राजनैतिक विकृति ●

धर्म निरपेक्षता सब धर्मों समभाव सब धर्मों का आदर जैसे ऊंचे सिद्धान्तों का आज कल जो राजनैतिक दुरुपयोग किया जा रहा है उसके परिणाम स्वरूप आर्य समाज में भी अनेक ऐसे व्यक्तियों का प्रवेश और प्रभाव बढ़ रहा है जो अपने पौराणिक संस्कार अथवा राजनैतिक स्वार्थ और महत्वाकांक्षा के कारण सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार और प्रसार को असामयिक अथवा धार्मिक संकीर्णता का परिचायक समझने लगे हैं। धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में अभी तक प्राप्त आर्य समाज की प्रायः सारी उपलब्धियां स्वाधीनता के गत ३३ वर्षों में धीरे धीरे इसी कारण वर्तमान सर्वग्राही राजनैतिक परिवेश में विलीन होती जा रही हैं जात पात छुआ छूत बाल विवाह जैसी मूर्खतापूर्ण परम्पराएं और अधिक लोक प्रिय होने लगी हैं इस पृष्ठ भूमि में आर्य समाज के प्रभावशाली अस्तित्व तक के सम्बन्ध में शंका होना स्वाभाविक है उसके नेतृत्व की तो बात ही दूर है।

(क्रमशः)

धार्मिक हिन्दी परीक्षाएं

सरकार से रजिस्टर्ड आर्य साहित्य मण्डल द्वारा संचालित भारत वर्षीय आर्य विद्या परिषद् की विद्या विनोद विद्या रत्न विद्या विशारद विद्या वाचस्पति की परीक्षाएं गत २६ वर्ष से समस्त भारत में जनवरी के अन्त में होती हैं। कोई भी छात्र छात्रा स्त्री पुरुष किसी भी परीक्षा में बैठकर सुन्दर उपाधि पत्र प्राप्त कर सकता है। निम्न पते से पाठ विधि आवेदन पत्र मुफ्त मंगाकर केन्द्र स्थापित करें।

डा० सूर्यदेव शर्मा शास्त्री एम० ए०

परीक्षा मन्त्री आर्य विद्या परिषद् अजमेर।

हम सत्य दीप जलाएं

ले०—श्री रणबीर जी भाटिया लुधियाना

ओ३म्

प्राणों का दीप बुझा कर दिवाली का दीप जलाया।
बलिदान देकर महर्षि तूने भारत का भविष्य चमकाया।
अन्धकार में हम भटक रहे थे तूने हमें मार्ग दिखलाया।
पोप लीला का किया नाश अन्धविश्वास दूर भगाया।
वाम मार्गियों का भांडा फोड़ा विलासी राजों को समझाया।
स्वतन्त्रता का बीज बोया लोगों को ज्ञान बोध कराया।
सम्भव न होगा तेरे उपकार हम कहते कहते थक जाएंगे
टिमटिमाते लाखों दीप हमें तेरी याद दिलाएंगे।
लोगों ने दिया विष तुमको तुमने दिया उन्हें अमर ज्ञान।
प्राण लेने वालों को क्षमा किया बचाकर उसकी बचाई जान।
जब तक अन्तरिक्ष में चांद सितारे करते रहेंगे मुस्कान
महर्षि दयानन्द तेरे नाम का घोष करते रहेंगे गुणगान।
इच्छा पूर्ण हो प्रभु तेरी मुंह से अन्त में उफ न निकाला।
हुए जग में बलिदानी अनेकों तेरा बलिदान है निराला।
तेरा ऋण हम भारतवासी कभी नहीं चुका पाएंगे।
जले दिवाली लाखों दीप हम सत्य दीप जलाएंगे।

—

(४ पृष्ठ का शेष)

नही। (दयानन्द दिग्दर्शन पृष्ठ ७३ ७४) इमदाद हुसैन नामक एक यवन का पत्र दयानन्द कोमेमारेशन वाल्यूम के अन्त म उर्दू भाषा मे प्रकाशित हुआ है। इसमे वह महर्षि के अपेक्षाकृत दुबल शरीर तथा उन्हे वस्त्र पहने देखकर पूछ बैठा कि स्वामी जी क्या आपने शादी कर ली है ? स्वामी जी मुस्कराए और मुस्कराते हुए पूछने लगे कि तुम ने यह कैसे समझा कि मैंने शादी कर ली है ? इमदाद हुसैन बोला कि पहले आप का शरीर अधिक स्वस्थ था एव आप केवल कोपीन धारण किया करते थे। अब आप का शरीर वैसा नही रहा और आप वस्त्र धारण करने लगे है। इसी से मैंने समझा कि आपने विवाह कर लिया है।' इस पर महर्षि का उत्तर था कि इमदाद हुसैन ! तुम्हे यह जानकर बड़ा दुःख होगा कि मुझे कई बार विष दिया गया है। जिससे मेरा शरीर दुबल हो गया है और उसे वस्त्रो से ढकने की आवश्यकता आ पड़ी है अरे ! तुम यह पूछो कि मैं जीवित कैसे हू ? अनेको बार मृत्यु के मुख से लौट २ कर आया हू। किसी कवि की भाषा मे सत्य तो यह है कि—

बारहा लौट आता हू जा जा क
मन्जिल के करीब।
रास्ते की मुश्किलें इतनी पसन्द
आई मुझ॥

पर हर किसी की सीमा होता है उनके विष प्रतिरोध के सामर्थ्य की भी एक सीमा थी और अन्त म स्थिति यह आ गई कि उन्हे भी यह स्वीकार ना ही पड़ा कि अब यह शरीर अधिक नही चलेगा। तभी किसी कवि की वाणी मे यह शब्द फूट पड़े—

कारवा को दरगुजर करना पड़ा
रञ्जो गम को हमसफर करना पड़ा।
जिन्दगी मे मुश्किलें इतनी मिली
जिन्दगी को मुख्तसिर करना पड़ा।

इतना सब कुछ होते हुए भी मृत्यु उस वीर को परास्त नही कर सकी। लोगो न उन्हे कहा कि आप असत्य का इतना प्रबल खण्डन न किया कर अथवा थोड़ा नरमी स काम लिया कर पर सत्य के इस अनन्यतम पुजारी ने अपने प्राणो की तनिक भी तो परवाह न की और अपने पथ पर अडिग रहा। वह सदा यही कहा करता था कि

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्ठम।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथ प्रविचलन्ति पद न धीरा।

बरेली मे उस महापुरुष ने उद्घोष किया था कि—लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो कलक्टर क्रोधित होगा अप्रसन्न होगा। गवर्नर पीड़ा देगा। अरे ! चक्रवर्ती राजा भी क्यो न अप्रसन्न हो हम तो सत्य ही कहेंगे। फिर गरजते हुए शब्दो मे बोले यह शरीर तो अनित्य है। इस की रक्षा मे प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है। इसे जिस मनुष्य का जी चाहे नाश कर दे। फिर चारो ओर तीक्ष्ण दृष्टि डालकर सिंहनाद करते हुए कहा— किन्तु वह शूरवीर पुरुष मुझे दिखाओ जो मेरे आत्मा का नाश करने का दावा करे जब तक ऐसा वीर ससार मे दिखाई नही देता तब तक मैं यह सोचने के लिए भी तैयार नही कि मैं सत्य को दबाऊगा या नही। (कल्याण मार्ग का पथिक पृ ५१)

फर्रुखाबाद मे पादरी स्कूम ने एक बार महर्षि से कहा था कि यदि तोप के मुह के सम्मुख रखकर कोई आप से पूछे कि क्या आप सत्य कहेंगे तो आप क्या उत्तर देंगे ? महर्षि ने बड़ी निर्भीकता पूर्वक कहा था कि यदि कोई तोप के मुख से बाध कर भी मुझ से पूछे तो भी मैं सत्य ही कहूगा। जब महर्षि जोधपुर जाने को समुद्यत हुए तो लोगो ने उन्हें वहा जाने से रोकना चाहा क्योकि वहा उनके प्राणो के हरे जाने का भय था। किन्तु बलिदान मार्ग के इस बटोही ने यह कहकर उनका प्रस्ताव ठुकरा दिया कि यदि लोग हमारी अगुलियो को बत्तिया बनाकर जला द तो भी कोई चिन्ता नही। मैं वहा जाकर अवश्य सत्यो पदेश करूगा। (श्रीमद्दयानन्द प्रकाश प ५२७)

महर्षि का जोधपुर जाना उनके लिए घातक सिद्ध हुआ। नन्ही जान वेश्या तथा अग्रेजों ने मिलकर षडयन्त्र रचा और महर्षि को काच दूध मे पिलवा दिया और फिर ठीक ढग से चिकित्सा भी नही कराई गई। मुसलमान और अग्रेज डाक्टरो द्वारा उनका इलाज कराया गया और डा० लक्ष्मण प्रसाद ने उनकी चिकित्सा करनी चाही पर उन्हे करने न दी गई। यहा तक कि उन्होने सरकारी नौकरी पर लात मारते हुए त्यागपत्र देकर महर्षि की समुचित चिकित्सा करनी चाही पर षडयन्त्रकारियो ने उनकी एक न चलने दी। बस फिर क्या जो होना था वह होके ही रहा और बलिदान मार्ग का यात्री अपनी अन्तिम यात्रा को चल दिया। काच महर्षि के शरीर के अग अग से फूटकर बह निकला किन्तु उसके मुख से आह तक न निकली। लाला लाजपतराय उनके जीवन के अन्तिम दृश्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि—जो मनुष्य अपने जीवन में महान् था जिसने महान् काम करके परोपकारी ऋषि की पदवी पाई वह अपनी मृत्यु मे भी कैसा महान था। स्वामी दयानन्द की मृत्यु का दृश्य उसके सारे जीवन की कुजी है। वह दृश्य हम को साक्षी देता है कि स्वामी दयानन्द कैसे उच्च पद का योगी और भक्त था कैसा निर्लेप और विरक्त था। सारी आयु दिग्विजय करता रहा। शास्त्रार्थों से धूम मचाता रहा। जहा गया कोलाहल मच जाता था मानो भूकम्प आ जाता था। जिस समय देह त्याग का समय आया तो कैसे विश्वास और शान्ति के साथ प्राण त्यागे, कि देखने सुनने वाले चकित रह गये। जो देह सारे जीवन के ब्रह्मचर्य और बाल जितेन्द्रियता से सिंचा हुआ था, वह अन्त समय अनेकानेक व्याधियो का ग्रास हुआ उसको अन्त मे नाना प्रकार के क्लेश सहने पड़े। परन्तु तो भी बाल जितेन्द्रियता का प्रभाव दूर नही हुआ। २९ अक्तूबर को एक मास व्याधि पीड़ित हुए व्यतीत हो चुका था। इतने समय मे सैकड़ों अति सार आए कई वमन भी हुए हिचकिए भी नितान्त आती रहीं श्वास में भी वेग रहा। सारे शरीर पर फफोले पड़ गए भोजन बन्द हो गया क्षण क्षण मे बेसुधी हो जाती थी परन्तु फिर भी इतनी निर्बलता होने पर भी २९ अक्तूबर को स्वामी जी अन्तिम समय पलग पर उठ बैठे और कुछ देर तक बिना सहारा लिये समाधि लगाकर बैठे रहे। ३० अक्तूबर का डाक्टर न्यूटन को बुलाया गया उस दिन कफ का अधिक जोर हो गया था बोलने की सामर्थ्य नही रही थी। डाक्टर साहब उनकी यह दशा देखकर हैरान हुए और कहने लगे कि इस मनुष्य मे कठिनता झलने और दुःख सहन की असाधारण सामर्थ्य है। (महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनका काम पृष्ठ २६८ २६९) स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक ठीक ही लिखते हैं कि—विष के कारण अग अग मे छाले फफोले पड़े हुये थे आखो की पुतलियो तक मे छाले थे। डाक्टर चकित और स्तम्भित थे कि ऐसी विकट सकटमयी अवस्था मे भी मुख से कुछ भी आह नही है। धन्य धैर्य को। (दय प० ७४ ७५) ३० अक्तूबर सन् १८८३ को महर्षि विशेष प्रसन्न दीखते थे। उन्होने क्षौर करवाया। आत्मानन्द गोपालगिरि आदि से प्रसन्नता से मिले। साढे पाच बजे साय स्वामी जी ने कहा—सब को मेरे पीछे खड़ा कर दो। चारो ओर के द्वार और झरोखे खोल दो। पुन तिथि पक्ष और वार पूछा जो कि बता दिए गए। तब उन्होने कुछ वेद मन्त्र पढ़े संस्कृत मे ईश्वर की प्रार्थना की। पुन भाषा मे ईश्वर का गुणगान किया। गायत्री मन्त्र का कुछ देर तक पाठ किया थोड़ी देर तक समाधिस्थ रहने के पश्चात् आखें खोलकर कहने लगे—हे दयामय ! हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर ! तेरी यही इच्छा है। अहा ! तैने अच्छी लीला की। तेरी इच्छा पूर्ण हो और फिर करवट बदल कर एक बार मे ही लम्बा श्वास ले प्राणो को सदा के लिए त्याग दिया। पर यह क्या

मरने वाले के होठों पे तबस्सुम की
झलक मौत ने वस्ल का पैगाम दिया हो
जैसे।

पता नही—

यह मौत थी या यार का पैगाम था ?

बलिदान पथ के राही ने लोगो से अन्तिम समय जाते जाते अपने पीछे चलने का आह्वान किया था। जो सबके लिए प्रेरणा का स्रोत सिद्ध हुआ। कोई उसके उपदेशों से प्रेरणा लेने लगा तो कोई उस के ग्रन्थो से। कोई उसके कार्यों से प्रेरणा लेने लगा तो कोई उसके बलिदान से। वह सबके लिए प्रेरणा का एक प्रकाश स्तम्भ बन गया था। आज उसकी पावन स्मृति भी हमें प्रेरणा दे रही है। यदि हम ग्रहण करें तो ?

वैदिक दीप

रचयिता—श्री कवि कस्तूरचन्द जी घनसार पीपाड़ शहर राज०)

१

दीप जलाकर देव हरे तम है कितना कितना फिर छाया।
जो जितना इनके वश होकर जीवन को निज धूल मिलाया॥
आ न सका सुप्रकाशन के ढिग पा न सका सुख दूर रहाया।
भाग सका न बसा घर अन्दर मे तम ... कार रहा लपटाया॥

२

देव दयानन्द दीप जलाकर सीख दिया सुप्रकाश बढ़ावें।
भाग चले तम पास न आवहिं वैदिक है पुनि ताहिं सिखावें॥
हो न सके दुख सून रहे सब जो घट मे तम दूर रहावें।
सो घनसार प्रकाश बढ़े उर सादर ले निज हाथ मिलावें॥

३

दिव्य प्रकाश तभी नव पाकर जीवन को वर श्रेष्ठ बनावें।
पा करके नव ज्योति बराबर लेकर दीपक भाग्य जगावें।
तो हम जान सके नव दीपक साथ चलें निज नेह बनावें।
सो घनसार न भूल सके यह, पा अवकाश न दूर रहावें॥

४

योगी महा ऋषिराज गये फिर ज्योति दिखा निज देश जगाया।
आज दिवाली प्रकाश किहा घर ज्ञान प्रकाश बढ़ा सुख छाया॥
दीप वही हर वक्त जले घर लेकर दीपक ग्राम जगाया।
सो घनसार दिवालि वही निज वैदिक ज्ञान प्रकाश सुपाया॥

५

घोर अज्ञान रहा अति अन्दर भारत मे तम छाय रहा था।
कौन ? करे सुप्रकाश यहा तम वेद निरुद्ध सुपन्थ गहा था॥
मानव दीन रहा बल वामन कष्ट अनेक अमान सहा था।
दीप जगा ऋषि पन्थ बता सब सो पथ मे घनसार लहा था॥

—

हिन्दू रक्षा समिति के निर्णय

बीकानेर (डाक से) हिन्दू रक्षा सम्मेलन बीकानेर में सभी हिन्दू नेताओं ने एक स्वर से घोषणा की कि यदि सरकार ने तुष्टिकरण की नीति अपनाकर मजहब के आधार पर पुलिस व सेना में आरक्षण स्वीकार किया तो देश के ५० करोड़ हिन्दू सबल रूप में विरोध करेंगे।

इस सम्मेलन में महात्मा वेद भिक्षु ने घोषणा की कि देश का हिन्दू जाग चुका है और वह किसी मूल्य पर भारत की एकता स्वतन्त्रता सुरक्षा पर आंच नहीं आने देगा।

स्वीकृत प्रस्ताव

हिन्दू रक्षा सम्मेलन बीकानेर द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव—

अखिल भारतीय हिन्दू रक्षा समिति की ओर से आयोजित हिन्दू रक्षा सम्मेलन भारत सरकार से मांग करता है कि—

१ मजहब के आधार पर पुलिस सेना व सरकारी विभागों में आरक्षण की मांग को किसी भी स्थिति में स्वीकार न किया जाए।

१ काश्मीर आसाम व देश के सभी भागों में पाकिस्तानी घुसपैठियों व सेवा की आड़ में राजनैतिक देशद्रोहपूर्ण षड्यन्त्रों में लगे सभी विदेशी पादरियों को तुरन्त भारत से निकाला जाए।

३ अल्पसंख्यक आयोग समाप्त किया जाए।

४ भारत के किसी भी भाग में मुस्लिम विद्यालय खोलने की अनुमति न दी जाए और अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय को राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया जाए।

५ अल्पसंख्यक बहुसंख्यक शब्द का प्रयोग बन्द हो और तुष्टिकरण की नीति समाप्त की जाए।

६ भारत के सभी नागरिकों के लिए समान सिविल कानून नियम अधिकार बनाए जाएं।

७ काश्मीर में धारा ३७० तुरन्त हटायी जाए और वहां भारत के नागरिकों को बसाने की व्यवस्था हो।

८ जो भारत को अपना देश नहीं मानते उनको वोट का अधिकार न दिया जाए। प्रत्येक नागरिक को वोट का अधिकार देने से पहले एक शपथ पत्र भरने का नियम बनाया जाए जिसमें वह स्वीकार करे कि मैं भारत को अपनी मातृभूमि स्वीकार करता हूं और मेरी प्रथम निष्ठा भारत राष्ट्र के प्रति रहेगी।

९ मजहब के नाम पर अधिकार मांगने व दंगा करने वालों को पूरी शक्ति से कुचल दिया जाए।

१० गोहत्या का कलंक तुरन्त समाप्त किया जाए।

यह सभी मांगें सर्वसम्मति से स्वीकार हुईं। सम्मेलन रात्रि के ११ बजे तक उत्साह से चलता रहा। हिन्दू जागरण की सर्वत्र भारी चर्चा है।

अखिल भारतीय हिन्दू रक्षा समिति
नई दिल्ली

—

संस्कृत, हिन्दी को उच्च स्थान दिया जाए

दिनांक १९.१०.८० रविवार आर्य समाज श्रद्धानन्द बाजार अमृतसर विजय दशमी के पवित्र महोत्सव पर दृढ़ संकल्प करता है कि अपने निजी तथा व्यावसायिक कार्यों में हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का ही प्रयोग करेगा नई १९८१ की होने वाली जनगणना में अपनी मातृभाषा, व्यवहारिक भाषा हिन्दी ही लिखवाएगा। जनगणना में दूसरी भाषा संस्कृत लिखवाएगा और राष्ट्रीयता हिन्दू लिखवाए।

२ आज की यह जनसभा विजय दशमी के पवित्र महोत्सव पर पंजाब सरकार से भाषा निक आधार भूत अधिकारों की रक्षा की मांग करती है—

(क) इस प्रदेश में भी शिक्षा माध्यम चुनने का अधिकार माता पिता को होना चाहिए।

(ख) हिन्दी में दिए जाने वाले पत्रों का उत्तर सरकार की ओर से हिन्दी में ही लिखना चाहिए।

(ग) सरकारी कार्यालयों में अंग्रेजी के स्थान पर अविलम्ब राष्ट्र भाषा हिन्दी को स्थान दिया जाना चाहिए।

(घ) प्रदेश में नागरी लिपि को मान्यता होनी चाहिए।

(च) भाषाई अल्पसंख्यकों के अधिकार हिन्दी भाषा भाषियों को भी इस प्रान्त में मिलने चाहिए अर्थात् उन्हें उसी अनुपात में नौकरियां दी जानी चाहिए नियुक्तियां और उन्नतियां दी जानी चाहिए और अन्य सभी सुविधाएं चाहिए जिनकी कि भारतीय संविधान आज्ञा देता है।

पंजाब ऋषियों मुनियों की धरती है वेद का पावन सन्देश सर्वप्रथम इसी वसुन्धरा में हुआ था अतः अनादिकाल से प्रवाहित मानव संस्कृति की स्रोतस्विनी संस्कृत की रक्षा का दायित्व हम पंजाबी सपूतों पर विशिष्ट रूप से आता है। अतः आज की यह सभा पंजाब सरकार से सशक्त मांग करती है कि संस्कृत को परीक्षाओं में तुरन्त अनिवार्य विषय घोषित करें।

—प्रो० ओम्प्रकाश वेद
प्रधान

प्रान्तीय आर्य महिला सम्मेलन

प्रान्तीय आर्य महिला सम्मेलन ११.१०.८० को गुरु विरजानन्द स्मारक करतारपुर में बड़ी धूमधाम से मनाया गया जिसमें तीनों प्रान्तों की बहिनों ने बड़े उल्लास के साथ भाग लिया। इस महान आर्य स्त्री सम्मेलन में ५० समाजों की स्त्रियों ने भाग लेकर अपने विचारों को रखा।

विचारणीय विषय थे

१ हिन्दी प्रचार और धर्म प्रचार

२ नारी निर्माण और चरित्र निर्माण

३ आधुनिक जाग्रत देश में देवियों की दहेज की बलिवेदी पर भेंट।

४ मद्य निषेध—

इस सम्मेलन की अध्यक्षता सुपरवायजर (जम्मू कश्मीर) आर्य सत्याभनी ने की।

मंच संचालक—श्रीमती पुष्पा महाजन (प्रिंसिपल दीनानगर महिला कालेज)

स्वागतकर्ता —शान्तिनन्दा (वानप्रस्थ)

मुख्य वक्ता श्रीमती माता राम प्यारी एवम् कृष्णा सेठ और राजरानी वर्मा

अध्यक्षीय भाषण के पश्चात् शान्ति पाठ के साथ सभा की समाप्ति हुई।

शान्तिनन्दा वानप्रस्थ प्रधाना

स्वामी व्रतानन्दजी महाराज के निधन पर शोक प्रस्ताव

आर्य समाज अजमेर की यह सभा आर्य जगत के प्रसिद्ध संन्यासी वीतराग श्री स्वामी व्रतानन्द जी महाराज संस्थापक एवं संचालक गुरुकुल चित्तौड़ के निधन पर हार्दिक शोक प्रकट करती है तथा उनके निधन को आर्य समाज की अपूरणीय क्षति मानती है। यह सभा परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करती है कि उनकी दिवंगत आत्मा को चिर शान्ति एवं सद्गति प्रदान करें तथा उनके गुरुकुल हितैषियों प्रिय जनों को इस असहनीय वेदना को सहन करने की शक्ति धैर्य एवं सान्त्वना प्रदान करें।

ओ३म् शान्ति शान्ति शान्ति।

शोक प्रस्ताव

आर्य समाज स्वामी दयानन्द बाजार लुधियाना की यह साधारण सभा गुरुकुल चित्तौड़गढ़ के संस्थापक श्री स्वामी व्रतानन्द जी की मृत्यु पर गहरा शोक प्रगट करती है तथा परमेश्वर से प्रार्थना करती है कि दिवंगत आत्मा को कर्मानुसार पुण्य गति प्रदान करें व शोक सन्तप्त जनों को इस कष्ट को सहन करने की सामर्थ्य व धैर्य प्रदान करें।

—बलदेवराज आर्य मन्त्री

शोक सम्वेदना

१४ अक्तूबर प्रातः ११ बजे पत्र द्वारा आर्य जगत की महान विभूति वन के धनी आजीवन ब्रह्मचारी श्री स्वामी व्रतानन्द जी महाराज की ११ अक्तूबर को मृत्यु हो जाने का दुःखद समाचार प्राप्त हुआ आप गुरु विरजानन्द वैदिक संस्कृत महाविद्यालय करतारपुर के सर्वप्रथम आचार्य तथा अन्य कई संस्थाओं के संस्थापक थे आपका निधन आर्य जगत की एक अपूरणीय क्षति है।

शोकाकुल
गुरुकुल परिवार (करतारपुर)

—

आर्य समाज तलवाड़ा के उत्साही युवक

आर्य समाज तलवाड़ा टाऊनशिप का वार्षिक उत्सव २०.१०.८० से २६.१० तक बड़े उत्साह से मनाया गया। सभा के मूर्धन्य महोपदेशक श्री पं० जगदीशचन्द्र जी वसु विद्यालंकार कथा के साथ २ प्रातः योग मन भी सिखाते रहे। श्रीमती नमन बसु जी प्रातः महिलाओं की रामायण की कथा के साथ २ रात्रि मधुर भजन भी सुनाती रहीं कथा में ज्ञानी प्रो० म प्रभ दयालाली हो इन के इतिरिक्त श्री तुलसीदेव जी गायनाचार्य के मधुर भजन होते रहे।

उत्सव पर श्री व्रत मुनि नरेन्द्र जी श्री डा० गोपाल जी जम्मू तथा पं० धर्मदेव जी आर्य के प्रभावशाली उपदेश हुए। सारा ही कार्यक्रम बड़ा सफल रहा। तलवाड़ा की जनता ने भी बढ़चढ़ कर भाग लिया। इस समाज के सारे अधिकारी युवक व उत्साही प्रभावशाली हैं धर्म प्रेमी श्री मरदानाजी श्री मनोहरलाल जी मन्त्री श्री दिलाराम जी कोषाध्यक्ष श्री सूरजभान जी श्री नम्बर जी सभी ने बड़े उत्साह और लगन से कार्यक्रम को सफल बनाया। सभा को वेद प्रचारार्थ ५१ रुपए की राशि भेंट की।

शोक सम्वेदना

वैदिक गुरुकुल संस्कृत महाविद्यालय सिराथू प्रयाग की ओर से पूज्य श्री स्वामी व्रतानन्द जी सरस्वती के देहावसान पर १५.१० को सायंकालीन एक शोक सभा का आयोजन किया गया जिस में स्वामी जी के व्यक्तित्व समाज सेवा यज्ञ याग के प्रति अगाध आस्था गायत्री अनुष्ठान में दृढ़ निष्ठा आदि गुणों की चर्चा करते हुए गहरी शोक सम्वेदना व्यक्त की गई।

पं० वचनपाल शर्मा
विद्यावाचस्पति

वार्षिक [illegible]

आर्य समाज दयानन्द मार्ग (... रोड) नकरवस्ती दिल्ली-२४ वार्षिक निर्वाचन निम्न प्रकार हुआ

१ प्रधान सर्वश्री नेकी राम जी गुप्त (पूर्व उपशिक्षा निदेशक दिल्ली राज्य)। २ उप प्रधान प्रिंसीपल श्री वेद व्रत जी शास्त्री ३ उप प्रधान श्रीमती उर्मिला देवी। ४ मन्त्री डा० भारत भूषण। ५ उपमन्त्री श्री इन्द्र स्वरूप जी ६ कोषाध्यक्ष श्री राज कुमार जी ७ पुस्तकालयाध्यक्ष श्री रमेश चन्द्र।

अन्तरंग सदस्य—

१ श्री बलवन्त सिंह जी कपूर २ श्री लालचन्द जी वर्मा ३ श्री नानक चन्द ४ श्री सत्यप्रकाश जी दुबे (प्रतिष्ठित) ५ श्रीमती चन्द्रा देवी जी तथा आर्य महिला समाज संयोजिका ६ श्रीमती कृष्ण प्यारी देवी जी ८ (प्रतिष्ठित)।

लेखा निरीक्षक—

प्रेमनारायण जी सकसेना।

सभा में प्रतिनिधि —१ श्री प्रेम नारायण जी सकसेना २—डा० भारत भूषण मन्त्री आर्य समाज

संस्था के सामान्य प्रतिनिधि —

१ श्री नानक चन्द जी
२ श्रीमती इन्दिरा देवी जी
३ श्री प्रेमनारायण जी
४ डा० भारत भूषण मन्त्री

अवैतनिक प्रबन्धक आर्य शिक्षण संस्था प्रिंसीपल श्री पं० वेद व्रत जी शास्त्री को अवैतनिक प्रबन्धक नियुक्त किया है और एक महिला को अवैतनिक सहायक प्रबन्धक मनोनीत करने का अन्तरंग सभा को अधिकार दिया है।

भारत भूषण

जिला आर्य सभा रूपनगर का चुनाव

२८ ९ ८० को आर्य समाज बरड़ में दोपहर दो बजे हकीम [illegible] प्रस्थी की [illegible] में सर्वसम्मति से जिला [illegible] का चुनाव [illegible] पाल वान-प्रस्थी [illegible] कर्ता प्रधान—ओम प्रकाश मो० मोरिण्डा उपप्रधान श्री रतनलाल जी शास्त्री नया नंगल श्री कश्मीरीलाल जी नया टाऊन मन्त्री—श्री गौरीशंकर जी रोपड़ कार्यकर्ता मन्त्री श्री पृथ्वीचन्द जी रोपड़ उपमन्त्री—श्री भगवान दास जी नया नंगल कोषाध्यक्ष—श्री नन्दलाल जी बरड़ मन्त्रणी वेद प्रचार श्रीमती सुभाष महाजन नंगल टाऊन

विशेष सहायक—पुस्तकाध्यक्ष—दयानन्द जी वणिक नंगल टाऊन।

—मन्त्री

उत्सव संपन्न

आर्य समाज परमानन्द मन्दी बीका नेर का वार्षिकोत्सव समारोह पूर्वक ११ से १८ अक्तूबर तक मनाया गया।

११ को महात्मा [illegible] जी की शोभा यात्रा धूमधाम से निकली। १२ की रात्रि को हिन्दू रक्षा समिति की ओर से हिन्दू रक्षा सम्मेलन हुआ प्रो० रत्नसिंह श्री रमेश चन्द्र शास्त्री श्री ओमप्रकाश प्रेमी आदि विद्वानों के प्रवचन प्रभावशाली रहे।

मन्त्री

वर की आवश्यकता है

एक आर्य (सैनी) परिवार की बी० ए० पास २२ वर्षीय कन्या जो सर्विस में है और जिसकी लम्बाई पांच फुट दो इंच है के लिए सजातीय ग्रेजुएट वर की आवश्यकता है जो सर्विस में हो या जिस का अपना कारोबार हो। निम्न पते पर पत्र व्यवहार करें।

श्री बखीराम जी हवेली वैशाखाली मो० सुधा मारिण्डा (जि० रोपड़



श्री वीरेन्द्र जी सम्पादक तथा प्रकाशक द्वारा जयहिन्द प्रिंटिंग प्रैस जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय गुरुदत्त भवन चौक किशनपुरा जालन्धर से इसकी स्वामिनि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र जालन्धर

वार्षिक शुल्क १५) वर्ष १३, अंक ४३, २ मार्गशीर्ष सम्वत् २०३७, तदनुसार १६ नवम्बर १९८० का अंक दयानन्दाब्द १५६

हिन्दी को पंजाब में अंग्रेजी का स्थान दिया जाए !

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री वीरेन्द्र जी के नेतृत्व में हिन्दी प्रेमियों का एक प्रतिनिधि मण्डल पंजाब के मुख्यमन्त्री से मिला ।

पंजाब के हिन्दी भाषी संगठनों ने राज्य में हिन्दी को अंग्रेजी के स्थान पर द्वितीय भाषा का दर्जा देने, उस की सुरक्षा विकास और प्रसार को प्रोत्साहन देने की मांग की है ।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री वीरेन्द्र के नेतृत्व में हिन्दी भाषी अल्पसंख्यकों का एक प्रतिनिधि मण्डल गत दिनों मुख्यमन्त्री श्री दरबारा सिंह से मिला और उक्त मांग की । प्रतिनिधि मण्डल में श्री वीरेन्द्र के अतिरिक्त आर्य प्रतिनिधि सभा के उपाध्यक्ष श्री पृथ्वीसिंह आज़ाद एवं महामन्त्री श्री रामचन्द्र जावेद, सनातन धर्म सभा के पंडित मोहन लाल तथा श्री अमरनाथ जैन सभा के श्री हंसराज जैन व श्री तेलूराम जैन विश्व हिन्दू परिषद के श्री महन्त राम प्रकाश दास शामिल थे ।

प्रतिनिधि मण्डल ने मुख्यमन्त्री श्री दरबारा सिंह से मांग की कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयानुसार पंजाब के अल्पसंख्यकों की भाषा देवनागरी है । इसलिए कुल जनसंख्या ४० प्रतिशत हिन्दी भाषी विद्यार्थियों को शिक्षा व परीक्षा माध्यम चयन करने की छूट होनी चाहिए और भाषा चयन का अधिकार सरकार को न हो कर विद्यार्थियों के अभिभावकों को होना चाहिए । प्रतिनिधि मण्डल ने यह भी मांग की कि राज्य में अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को दूसरी भाषा का दर्जा दिया जाना चाहिए ।

मुख्यमन्त्री से मिलने के बाद प्रतिनिधि मण्डल के नेता श्री वीरेन्द्र ने एक सम्वाददाता सम्मेलन में इस बात को स्पष्ट किया कि हिन्दी के लिए की जा रही इस मांग का उद्देश्य पृथक दल या अलग राज्य की मांग करना नहीं है । हमारा उद्देश्य केवल हिन्दी को उसका उचित सम्मान दिलाना है ।

श्री वीरेन्द्र ने संविधान में उल्लेखित धारा २९ (१) का हवाला देते हुए कहा कि प्रत्येक सरकार के लिए यह आवश्यक है कि वह अल्पसंख्यकों की भाषा और संस्कृति की सुरक्षा के लिए पग उठाए । उन्होंने कहा कि कुछ लोग कहते हैं कि हमारी बोली पंजाबी है इसलिए पंजाबी ही हमारी भाषा है लेकिन यह गलत है । उन्होंने इस धारणा का खंडन करते हुए कहा कि पंजाबी हमारी बोली अवश्य है लेकिन भाषा नहीं है । क्योंकि यह दोनों अलग-अलग हैं और बोली का कोई व्याकरण नहीं होता है । बोली भाषा नहीं हो सकता । उन्होंने कहा पंजाबी हमारी बोली है लेकिन जहां तक भाषा का प्रश्न है वह हिन्दी के अतिरिक्त कोई अन्य भाषा नहीं ।

श्री वीरेन्द्र ने अल्पसंख्यक भाषाई आयोग की १८ वीं रिपोर्ट जो हाल ही में लोकसभा में पेश की गई का हवाला देते हुए कहा आन्ध्र प्रदेश असम व गुजरात में जहां क्रमशः तेलगू असमी और गुजराती राज्य भाषा है वहीं ६६ और ७१ अन्य अल्पसंख्यकों की भाषाएं भी हैं जिसमें हिन्दी और उर्दू भी शामिल हैं और उन्हें सभी अधिकार प्राप्त हैं ।

प्रतिनिधि मण्डल द्वारा दिए गए ज्ञापन में आगे मांग की गई है कि सरकार द्वारा नोटिस नियम और मतदाता सूचियां सरकारी फार्म तथा रजिस्ट्रेशन के कागजात पंजाबी के साथ साथ हिन्दी में छापे जाएं । सरकार के साथ पत्र व्यवहार हिन्दी में करने की छूट हो । अदालतों में भी हिन्दी के प्रयोग की स्वतन्त्रता होनी चाहिए ।

श्री वीरेन्द्र ने यह भी स्पष्ट किया कि हम पंजाबी के कतई खिलाफ नहीं हैं लेकिन यदि ६० प्रतिशत पंजाबी भाषी लोगों की भाषा को राज्यभाषा माना जाता है तो ४० प्रतिशत अल्पसंख्यकों की हिन्दी भाषा को अंग्रेजी की जगह दूसरी भाषा क्यों नहीं माना जा सकता ।

उन्होंने कहा कि शिक्षा और परीक्षा माध्यम मातृभाषा में होना चाहिए और मातृभाषा के चयन का अधिकार माता पिता को होना चाहिए सरकार का नहीं । उन्होंने कहा कि प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर हिन्दी भाषा को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए । प्रशासन तथा शिक्षा में हिन्दी की उपेक्षा के कारण अखिल भारतीय सेवाओं में पंजाबियों की संख्या काफी गिरी है ।

क्या आपने हस्ताक्षर कर दिए ?

राष्ट्रपति को पंजाब में हिन्दी को सम्मानित स्थान दिलाने के लिए जो ज्ञापन देना है क्या उस पर आपने हस्ताक्षर कर दिए हैं ? यदि नहीं किए तो अपने नगर की किसी भी आर्य समाज में जाकर वह ज्ञापन ले लें और उस पर हस्ताक्षर कर दें ।

जिन फार्मों पर हस्ताक्षर हो गए हैं वह शीघ्र सभा कार्यालय में भिजवा दें ।

—वीरेन्द्र

श्वेताश्वेततरोपनिषद कथा माला—

प्राणायाम तथा योग का दर्शन

ले०—श्री सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार दिल्ली,

(गतांक से आगे)

जितने सृष्टि मे मुख है सिर हैं गर्दने हैं वे सब उसी के हैं—सर्व आनन शिर ग्रीव-, सब प्राणियो के हृदय रूपी गुहा मे वही विद्यमान है—सर्वभूत गुहाशय, सब जगह वह व्याप रहा है—सर्वव्यापी। वह भगवान है स भगवान। क्योंकि वह सृष्टि मे दीख रहे मुखो सिरो गर्दनो—सब मे व्याप रहा है इसलिए सर्वगत है-तस्मात् सर्वगत वह सबका कल्याण करने वाला है—शिव ।१२।

सब उसी के है इसका यही अभिप्राय है जिसकी तरफ हम गीता के १९व अध्याय के १५वें श्लोक का उल्लेख करते हुए इशारा कर आए हैं। जड चेतन मे जो कुछ दिखाई देता है वह दीखने मे भले ही कुछ हो परन्तु उसी की सत्ता से वह सत्तावान है। वह अपना हाथ खींच ले तो कुछ नही रहता। उपनिषदो मे जगह जगह इसी भाव को भिन्न-भिन्न प्रकार से कहा गया है।

वह महापुरुष परमात्मदेव सर्व व्यापी है परन्तु उसका अंगुष्ठमात्र अनुभव हम सभी को अपने अन्तरात्मा मे होता है—अंगुष्ठमात्र पुरुष अन्तरात्मा। वह सदा सब जनो के हृदय मे सन्निविष्ट है—सदा जनाना हृदये सन्निविष्ट। उसे हृदय से-हृदा मन की भी स्वामिनी बुद्धि है उससे—मनीषा तथा संकल्प विकल्प करने वाले मन से—मनसा- जाना जाता है—अभिक्लृप्त। जो इस प्रकार परमात्म देव को जान जाते हैं वे एतद् विदु वे अमर हो जाते हैं—अमृता ते भवन्ति। ।१३।

यहा दो बातो पर ध्यान देना आवश्यक है। पहली बात तो यह कि हृदय मे परमात्मदेव का अनुभव उनके अंगुष्ठमात्र का अनुभव है। हृदय मे सब कोई परमात्माका अनुभव करता हैं। ज्ञान का स्थान मस्तिष्क है अनुभव का स्थान हृदय है। परमात्मदेव का ज्ञान नही होता, अनुभव होता है हृदय मे अनुभव होता है क्योंकि परमात्मा प्रेममय है। प्रेम की अनुभूति का स्थान हृदय है, इसलिए इस श्लोक मे कहा गया है कि परमात्मदेव का निवास हृदय प्रदेश मे हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि परमात्मदेव अन्यत्र नही मिलते। वर्तमान तो वे सब जगह हैं परन्तु हृदय में उनका अनुभव होता है, क्योंकि अनुभव हृदय से ही होता है। स्मरण रहे यह अनुभव अंगुष्ठमात्र है सिर्फ उसकी झाकी है। उसे पूर्णतया अनुभव करने के लिए हृदय के साथ मनीषा तथा मन का साथ देना आवश्यक है। दूसरी ध्यान देने की बात यह है कि श्लोक मे परमात्मा के अंगुष्ठमात्र का उल्लेख इसलिए किया गया कि जैसे अंगूठे से पकड कर सम्पूर्ण मनुष्य को पकडा जा सकता है वैसे अंगुष्ठमात्र परमदेव को पकड कर उसे सम्पूर्ण रूप में हृदय, मनीषा तथ मन से पाया जा सकता है।

इस श्लोक मे बुद्धि तथा मन के भेद को भी स्पष्ट किया गया है। तैत्तिरीयोपनिषद् मे जहा कोशो का वर्णन है वहा भी विज्ञानमय कोश तथा मनोमय-कोश—ये दो कोश कहे गये हैं। विज्ञान का अर्थ बुद्धि है मन का अर्थ मन है। बुद्धि मे निश्चय होता है—निश्चयात्मिका बुद्धि मन मे संकल्प-विकल्प होता है। कठोपनिषद् मे कहा है—बुद्धि तु सारथि विद्धि मन प्रग्रहमेव च।

सृष्टि का दर्शन ही परमात्मदेव का दर्शन है—इसी दृष्टिकाण को स्पष्ट करते हुए अगले श्लोक मे कहा है- वह परमात्मदेव नामक पुरुष सहस्र सिरो वाला है—सहस्रशीर्षा पुरुष वह सहस्र आखो वाला है—सहस्राक्ष वह सहस्र पांवो वाला है सहस्रपात। वह हाथ से ब्रह्माण्ड को सब तरफ से छूए हुए हैं—स भूमि सर्वत वृत्वा फिर भी उसकी दसो अगुलिया मानो खाली रह जाती हैं अति अतिष्ठत् दश अगुलम्। यहां भूमि वृत्वा कहा है। वृत स वृत्वा बना है। वृत का अर्थ है गोल। भूमि को वृत कहने वाला भूमि का गोल कह रहा है यह बात यहा ध्यान देने की है १४।

अगले दो श्लोकों मे परमात्मदेव के सर्व-व्यापकत्व तथा सृष्टि में ही परमात्मदेव के दर्शन करने की बात कही गई है'

उसके हाथ पैर सब जगह है—सर्वत पाणिपाद, उसकी आखें, सिर, मुख सब जगह है तत् सर्वत अक्षिशिर मुखम्। संसार में सब जगह उस के कान हैं, सर्वत श्रुतिमत् लोके, वह सबको घेर कर बैठा हुआ है—सर्व मावृत्य तिष्ठति। यहा भी आवृत्य शब्द का प्रयोग किया गया है जो 'वृत' शब्द से बना है। ।१६।

सब इन्द्रियों के गुण उसमें भास रहे है- सर्व इन्द्रिय गुण आभासम्, फिर भी सभी इन्द्रियों से वह रहित है-सर्व इन्द्रिय विवर्जितम्। सबका वह प्रभु स्वामी है- सर्वस्य प्रभुम् ईशानम् फिर भी वह सबको आश्रय देने वाला, शरण देने वाला है—सर्वस्य शरणं बृहत्।१७।

पहले कहा कि परमात्मदेव के हाथ पाव, आख, कान आदि सब जगह हैं, परन्तु कोई यह न समझ ले कि सृष्टि के प्राणियो के हाथ, पाव आदि उसी ब्रह्म के उनसे अलग उसकी सत्ता नहीं है, इस मिथ्या भ्रम को दूर करने के लिए अब कहते हैं, वह हाथ, पाव रहित है—अपाणि पाद, हाथ पाव न होने पर भी वह गतिशील है, बिना हाथो के जोर से पकड लेता है—जवन ग्रहीता वह नेत्रो से रहित है परन्तु बिना आखो के देखता है, पश्यति अचक्षु वह कानो से रहित है परन्तु बिना कानो से सुन लेता है। स शृणोति अकर्ण। जो कुछ भी जाना जा सकता है वह उसे जानता है—स वेत्ति वेद्य, परन्तु उसे कोई नही जानता—न च तस्य अस्ति वेता उसी को आदि कहा पुरुष कहते हैं, तम् आहु अग्रयम् पुरुषं महान्तम्।१९।

वह अणु से अणु है—अणो अणीयान्, महान् से महान् है—महत महीयान्। वह इस जीवन की हृदय रूपी गुहा मे निहित है—आत्मा गुहायाम् निहित अस्य जन्तो। वह कर्ता नही है अक्रतु है उस अक्रतु को—त अक्रतु, शोक सागर से पार तर जाने वाला—वीत शोक, देखता है। पश्यति। उस परमात्मदेव की महिमा को सबको धारण करने वाले ईश के प्रसाद से ही प्राप्त किया जा सकता है—धातु प्रसादात् महिमान ईशम्।२०।

(चतुर्थ अध्याय)

प्रकृति जीव परमेश्वर का अज तथा सुपर्ण के रूप मे वर्णन

वह जो एक है, अद्वितीय है य एक रंग-रूप रहित है—अवर्ण उसने अपनी शक्ति से अनेक तथा रंग रूप सहित -बहुधा शक्तियोगात् वर्णान् अनेकान वस्तुओ मे अर्थ अर्थात् प्रयोजन निहित कर दिया है—निहितार्थ दधाति। स्वय एक हैं पर अनेक वस्तुओ का निर्माण कर दिया, स्वय अवर्ण है परन्तु सवर्ण वस्तुओं को पैदा कर दिया—स्वय का कोई प्रयोजन नही परन्तु सब वस्तुओ में प्रयोजन डाल दिया—ऐसी शक्ति है भगवान् की। वह परमात्मदेव संसार का अन्त मे संहार कर देता है—वि च एति अन्ते, परन्तु आदि मे विश्व का निर्माण करता है-विश्व आदौ स। ऐसा परमात्मदेव हमें शुभ बुद्धि से युक्त करे-देव स न बुद्धया शुभया संयुनक्तु।१।

वही देव अग्नि है, वही आदित्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही शुक्र है वही ब्रह्म है, वही जल है, वही प्रजापति है।२।

हे देव ! तू ही स्त्री है, तू ही पुरुष है तू ही कुमार है, तू ही कुमारी है, तू ही वृद्ध होकर दण्ड से हमे ठग देता है—इस गुणो इन भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट-अलग समझ कर भरमा जाते है, पर असल में वह सूत्रात्मा है। तू जब सृष्टि के रूप में प्रकट होता है, तो स्वयं एक होता हुआ भी नाना रूप हो जाता है—त्वं जातः भवसि विश्वतोमुख ।३।

इस उपनिषद् मे सृष्टि के तीन अनादि तत्व माने गये हैं। तीनों को 'अज' कहा है। 'अज' दो अक्षरों से बना है—अ तथा ज। अ का अर्थ है-नहीं, ज का अर्थ है—जन्म। जो उत्पन्न नहीं हुआ, सदा से वर्तमान है, अजन्मा है, अनादि है, उसे अज कहते हैं। जीव तथा परमात्मा 'अज हैं—अजन्मा हैं। प्रकृति स्त्री लिंगी होने के कारण अजा' है। प्रकृति के लिये कहा गया है—सत्व रजस् तमसा साम्यवस्था प्रकृति—सतोगुण रजोगुण तथा तमोगुण की समावस्था का नाम प्रकृति है। सतोगुण का प्रत्यक्ष रूप शुक्ल है, रजोगुण का प्रत्यक्ष रूप लोहित है, तमोगुण का प्रत्यक्ष रूप कृष्ण है। इस सब आधार को सम्मुख रखकर ५वें श्लोक मे कहा गया है कि एक अजा है जिसका स्वरूप लोहित शुक्ल कृष्ण है—अजा एकाम् लोहित शुक्ल कृष्णा वह अजा, अर्थात् प्रकृति जो अपने जैसे अनेक प्रकार के पदार्थों का सर्जन कर रही है—बह्वी प्रजा सृजमाना सरूपा उसे दूसरा अज, अर्थात जीव—अज हि एका भोग रहा है, उसके साथ शयन कर रहा है—जुषमाण अनुशेते, और तीसरा अज अर्थात् परमेश्वर इस भोग-भुक्ता अजा अर्थात् प्रकृति को छोड कर अलग रहता है, वह प्रकृति का भोग नही करता—जहाति एना भुक्तभोगा अज अन्य इसका यह अर्थ भी हो सकता है कि एक अजा अर्थात् प्रकृति है, और दो प्रकार के अज, अर्थात् दो प्रकार के जीव हैं। एक जीव प्रकृति के भोग मे लगा है दूसरा जीव प्रकृति से अपने को अलग रखता है, उसे छोड देता है। प्रकृतिवादी भोग का जीवन बिताता है आध्यात्मवादी त्याग का जीवन बिताता है ॥५॥

उक्त श्लोक मे जिस त्रैतवाद को अज'—नाम से कहा उसी को ६ वें श्लोक में सुपर्णा—अर्थात् पक्षी के रूप मे कहा क्या कहा है? दो सुन्दर पक्षी हैं—द्वासुपर्णा, साथ-साथ मित्र भाव से रहते हैं— सयुजा सखाया, ये दोनों एक ही वृक्ष का आलिंगन कर रहे हैं—समान वृक्ष परिषस्वजाते, इन दोनो मे से एक तो पिप्पल के फल को बड़े स्वाद से खा रहा है—तयो अन्य पिप्पल स्वादु अत्ति, दूसरा बिना फल खाये—अनश्नन् अन्य, सिर्फ साक्षी-भाव से देख रहा है अभिचाकशीति। इसका एक अर्थ यह हो सकता है कि प्रकृति, जीव तथा परमात्मा—ये तीन तत्व हैं जिनमें से जीव प्रकृति रूपी वृक्ष के फल चखता

(शेष पृष्ठ ८ पर)

ठनी भी खूब और बनो भी खूब

ले०—श्री काशीराम जी चावला लुधियाना

(गताक से आगे)

एक तो वह अपना अकेलापन दूर करना चाहती थी और दूसरे उसकी एक सखी की कन्या थी जो उनकी नजरो में जची हुई थी। इस लडकी ने विद्या तो मिडल तक ही प्राप्त की हुई थी। परन्तु बहुत चतर सुन्दर स्वस्थ घर का सारा काम काज करने वाली थी। बोल चाल मे भी बडी हसमुख था घर का सारा काम काज करने से ही उसका स्वस्थ इतना अच्छा था। शिव कुमार की माता एक ऐसी ही लडकी को अपनी पुत्र वधू बनाना चाहती थी जो घर आकर घर के प्रत्येक काय मे उसे पूरी सहायता दे। उन की सखी भी यह सम्बन्ध करने म बहुत खुश थी वह शिवकुमार और उस माता के स्वभाव को अच्छी प्रकार जानती थी और दूसरा दोनो घर बहुत अच्छे थे

वकील जी साय घर आते तो उनकी पत्नी विवाह की चर्चा आरम्भ कर देती इस प्रकार उसन अपने पति देव को शिवकुमार का शीघ्र विवाह करने पर तैयार कर लिया था। परन्तु जब वह प्रस्ताव शिवकुमार के सम्मुख रखा गया तो उसने अपनी माता से कहा मैं आप की यह बात तो स्वीकार करने को तयार हू कि विवाह शीघ्र करा ल परन्तु लडकी तो मैं अपन पसन्द की लू गा यह ठीक है कि आप की नजर मे जो लडकी है उसमें बहुत गुण हैं। परन्तु वहा उसकी विद्या थोडी हैं वहा उसका बदन भी भद्दा है। आजकल ऐसे बदन वाली लडकी को कौन पसन्द करता है वह तो एक साधारण गांव की लडकी प्रतीत होती है। ऐसी लडकी के साथ विवाह करके मुझ अपनी हसी उडवानी है।

शिवकुमार का पिता इस सम्बन्ध पर जोर नही दे रहा था। वह जानता था कि कई ऐसे विवाह जो उच्च शिक्षा प्राप्त किए लडकों के माता पिता ने उन की इच्छा के विरुद्ध करने चाहे बहुत से लडके और लडकी के कारण टल गए। पहले तो लडको ने ऐसे गले पडके लिए बन्धने पर विवाह करने से इन्कार कर दिया या फिर विवाह हो गए तो सारी आयु अपने माता पिता को कोसते रहे। परन्तु शिव कुमार की मा जिद कर रही थी और शिवकुमार के न मानने पर वह बहुत घबराई।

इस जमाने मे माता पिता के ऐसे घबराने की कौन परवाह करता है नव युवक तो यह सोचते है कि विवाह कराना उनका अपना अधिकार है किसी अन्य को इस मे हस्तक्षेप नही करना चाहिए यहा तक वह अपने माता पिता से भी राय नही लेना चाहते यह आजकल के नवयुवको की भूल है। यह ठीक हैं कि लडके लडकी का अपना जीवन साथी चुनने का अधिकार होना चाहिए। परन्तु माता पिता की भी इस सम्बन्ध मे राय लेना भी लाभदायक रहता है जहा माता पिता के आशीर्वाद के बिना रिश्ते होते हैं वहा सच्ची खुशी प्राप्त नही होती। जहा झूठे प्रेम और केवल सौन्दर्य के आधार पर ही विवाह होता है वहा सच्चा प्रेम नही होता और बिना सच्चे प्रेम के गृहस्थ जीवन सुखी और सफल नही होता।

शिवकुमार अपनी बात पर अडा रहा। अन्त मे उसकी माता भी चुप हो गई। उसका पिता तो पहले ही किसी प्रकार का दबाव नही डाल रहा था तब शिवकुमार ने समाचार पत्र मे निम्न विज्ञापन दिया —

आवश्यकता

एक धनपति प्रसिद्ध घराने के एक २४ वर्षीय स्नातक (B A) लडके के लिए एक ऐसी स्नातक (B A) लडकी की जो अच्छे परिवार की हो बहुत सुन्दर लम्बे कद और पतले जिस्म का हो समाज मे आने जाने के नियम जानती हो विवाह तुरन्त चित्र साथ आना चाहिए उसे स्वय मिलना भी होगा।

इस विज्ञापन को पढकर बहुत से पत्र चित्रो समेत आ गए। शिवकुमार ने सारे चित्र इकत्रित करके उनकी एक एलबम बना ली। अब वह इन मे चुनाव की ओर लग गया।

अब शिवकुमार एक चित्र का दूसरे के साथ तुलना करने मे ही लगा रहा तो उसके माता पिता ने उसे कहा—कि तुम अपना इतना अनमोल समय इस खामखाह मे लगा रहे हो चित्र देखने से क्या पता चलता है। तुम किसी निर्णय पर पहुच लो। दूसरी ओर लडकी वालों के पुन पत्र आने लगे तब उसने पुन अच्छी तरह से देखकर सब चित्रो में से पांच चित्र छाट लिए और उन्हे स्वय मिलने के लिए पत्र लिख दिए और शेष सब चित्र वापस कर दिए। विभिन्न तिथिया निश्चत कर के वह पाचो के स्थानो पर गया अपने माता पिता को भी साथ चलने के लिए कहा परन्तु माता का स्वस्थ ठीक न था और पिता को भी अपने काय से समय न था इसलिए उसके पिता ने अपनी एक विधवा बहन को साथ भेज दिया परन्तु उसको कह दिया कि तुम न कोई राय नही देनी हा मे हा मिलाए जाना कोई विशेष नुक्स वाली बात हो तो अवश्य बतला देना।

शिवकुमार ने अपनी बुआ के साथ पाचो लडकिया देखी और अपने माता पिता के साथ विचार विमर्श करके उन्हे सूचित कर देगा कह कर घर वापिस आ गया

वापस आकर उसने अपनी बुआ द्वारा तीन स्थानो पर तो ना लिखवा दी और उनके चित्र भी वापस भिजवा दिए। बाकी रह गई दो लडकिया दोनो ही उसे बहुत पसन्द थी। प्रभा और श्यामा। कभी तो वह उन दोनो के चित्र देखता और कभी वह उनके साथ हुई वार्ता को याद करता वह जो उनके साथ करके आया था और उनके गुणों का मन ही मन में मुकाबला करता परन्तु किसी निर्णय पर न पहुच सका। पाच दिन वह इसी काम मे लगा रहा। इस बीच उन लडकियों के माता पिता के फिर पत्र आ गए। अब उनके लिए कोई निर्णय करना अति आवश्यक हो गया था।

क्रमश

भाषण प्रतियोगिता सम्पन्न

महात्मा हसराज ट्रस्ट बरेटा की ओर से आठवी भाषण एव निबन्ध प्रतियोगिता कन्या महाविद्यालय कालावाली मे सोत्साहसम्पन्न हुई प्रधानता आचाय नरेन्द्र भूषण जी ने की।

भाषण प्रतियोगिता—

सवप्रथम—कु० प्रतिभा आर्या गोपी चन्द आय मन्हिल कालेज अबोहर द्वितीय कु० पूनम गवनमैन्ट हाई स्कूल अबोहर ततीय जीवन कपूर एस० एन० आय हाई स्कूल तथा विशेष सम्मानित प्रथम पुरस्कार म हसराज के जीवन पर कु पूनम गवनमैंट हाई स्कूल अबोहर

निबन्ध प्रतियोगिता—

सवप्रथम कु सन्तेष गोयल गोपी चन्द आय महिला कालेज अबोहर द्वितीय कु कान्ता कन्या महाविद्यालय कालावाली—एव कु प्रतिभा गोपीचन्द आय महिला कालज अबोहर ततीया—रूपरानी कमल कन्या महाविद्यालय विशेष सम्मानित प्रथम पुरस्कार म हसराज के जीवन पर कु राजरानी बसल कन्या महाविद्यालय कालावाली एव कु कमलेश नी कन्या महाविद्यालय कालावाली।

अशोक आय सयोजक

आर्य समाज जगराओ

आर्य समाज जगराओ ने ५ १ ८ को निणय किया कि श्री सतिन्द्र कुमार जी को अस्थाई प्रधान चुन जाता है मन्त्री मूलराज जी हवन यज्ञ और प्रचार का काय करेंगे श्रीमती त्रिशला जैन पाठशाला की देख रेख करगी तथा बीना मित्तला कोषाध्यक्ष होगी

जिला सभा लुधियाना के निम्न सदस्य मनोनीत किए गए श्रीमति त्रिशला जैन श्री जानकी दास पाठी श्री फकीर चन्द श्री सतिन्द्र कुमार जी श्री मूल राज जी।

वार्षिक निर्वाचन

आय समाज विनय नगर सरोजिनी नगर नई दिल्ली का वार्षिक निर्वाचन १ १ को निम्न प्रकार हुआ—

प्रधान श्री प्रकाश चन्द शास्त्री उप प्रधान श्री म ग्रेन्द्र जी गुप्त श्री देवराज जी कुन्द्रा श्री ग्रार लाल जी श्रीमती दयावती जी मन्त्री श्री रोशन लाल जी गुप्त प्रचार मन्त्री श्री ग ाजर जी आय उप मन्त्री श्री हृदयमन जी कोहली श्री बहोरी लाल कश्यप श्री देवेन्द्र भण्डारी कोषाध्यक्ष श्री सुरेन्द्र कुमार गुप्त तथा पुस्तकाध्यक्ष व वस्तुभण्डारी श्री राम मूर्ति शर्मा

बंगा मे पुरस्कार वितरण

पिछले दिनो आय समाज बंगा न हिन्दू हाई स्कूल मे सरदार भगत सिंह जी का जन्म उत्सव मनाया। १९ विद्यार्थियो ने भाषण दिए और गीत गाए। जिसमे पुरस्कार इस प्रकार दिए गये।

श्री मण कुमार IX कक्षा प्रथम श्री राजेश VI कक्षा द्वितीय श्री सजीव नागी IX कक्षा ततीय

इसके अलावा तीन इनाम और दिये गए पुरस्कार आय समाज बंगा की ओर से दिये गये

भवदीय
बी पी बेदी

आय समाज श्रद्धानन्द बाजार अमृतसर

आय समाज श्रद्धानन्द बाजार अमृतसर मे २६ १० ८०को ऋषिवाल्मिकि का जन्मोत्सव बडी धूम धाम से मनाया गया। इस अवसर पर जहा ऋषि वाल्मिकि का गुणगान गाया तथा रामायण की महत्ता बताई गई। वहां समाज की ओर से म पूर्ण दास जी स त केशव दास जी श्री खुशी राम जी श्री निहाल चन्द जी श्री अमर नाथ और माता जी की को धार्मिक पुस्तकें सरोपा रूप मे भेंट की गई।

जिला आर्य सभा गुरदासपुर का चुनाव

जिला आर्य सभा गुरदासपुर निर्वाचन २६ १०-१९८० को दयानन्द मठ दीनानगर में प्रिंसीपल अश्विनी कुमार जी के निरीक्षण में हुआ। इस में सर्व सम्मति से निम्नलिखित पदाधिकारी निर्वाचित हुए, बैठक की अध्यक्षता स्वामी सर्वानन्द जी ने की।

प्रधान श्री राम कृष्ण दीनानगर उप प्रधान श्री प्यारे लाल प्रधान आर्य समाज शहर पठानकोट, श्री रोशन लाल मन्त्री आर्य समाज कादीयां, मन्त्री श्री प्रेमनाथ दीनानगर, उपमन्त्री श्री वेद प्रकाश नन्दा आर्य समाज गुरदासपुर, श्री सुभाष चन्द्र माडल टाउन पठानकोट, कोषाध्यक्ष श्री कर्म चन्द भारद्वाज दीनानगर

इसके अतिरिक्त आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के निम्नलिखित अन्तरंग सभा के सदस्य भी इसके सदस्य होंगे।

श्री अश्विनी कुमार श्रीमती शान्ति नन्दा, श्रीमति पुष्पा महाजन, श्री बलदेव राज,

प्रत्येक समाज के मुख्य भी जिला सभा के सदस्य होंगे तथा प्रत्येक समाज के प्रधान, मन्त्री और कोषाध्यक्ष इसके सदस्य होंगे।

यह सभा आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को पूर्ण सहयोग देगी। कादियां में निर्माणाधीन प० लेखराम स्मारक के लिए यह पहले ही १७००० रु. दे चुकी है। तथा और धन एकत्रित करने के लिए प्रयत्नशील है। जिला भर में आर्य समाज और वैदिक धर्म के प्रचार एवं प्रसार में यह सभा पूर्ण रूपेण सहयोग देगी।

—प्रिंसीपल अश्विनी कुमार
संयोजक

—

(४ पृष्ठ शेष)

का बोधक है। सभी तो वेद का साधक प्रार्थना करता है। [illegible] जिनमें अनेकविध [illegible] प्रकार के अन्नों [illegible]

न केवल [illegible] अनेकविध वेद [illegible] का यथाप्रसंग वर्णन करते हुए कहा गया है, कि सोम का पान कर, जो औषधियों का रस है। दूध कमजोरों को शक्तिशाली, कृश को सुदृढ़ तथा पतलों को पीन बनाने वाला है। दूध तथा तत्सम्बन्ध

१ अक्षेत्रवित् क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः। (ऋ० १ ३,२)
२ सोम पिब।
३ यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं

चित्कृणुथा सुप्रतीकम्। (अ० ४, २१,६

पदार्थ हर आयु के स्त्री-पुरुष के लिए खाद्य, बल और पुष्टि के समान हितकारक होने से पूर्ण भोजन हैं। इसी प्रकार जल का विवेचन करते हुए कहा है जल अमृत है, औषधि रूप है, वह सुखदायक है, तेज-बलवर्धक तथा नेत्रों के लिए भी गुणकारक है। मन्त्रों में जहां भोज्य पदार्थों का वर्णन आता है वहां दूध, मांस आदि अभोज्य पदार्थों का स्पष्ट निषेध भी मिलता है।

४. [illegible] (ऋ० ८,१०१,१५

५. [illegible] (ऋ० १०, ९, १—३

(२ पृष्ठ का शेष)

है, परमात्मा जीव को जानता देखता है, स्वयं प्रकृति का भोग नहीं करता। इस का दूसरा अर्थ यह हो सकता है कि संसार में दो प्रकार के जीव हैं—एक वे जो प्राकृतिक जगत् का भोग करते हैं, दूसरे जो संसार को देखते मात्र हैं, उनमें [illegible] का अर्थ निर्लेप भाव से देखना (Awareness) है॥६॥

(क्रमशः)

—



श्री वीरेन्द्र जी सम्पादक तथा प्रकाशक द्वारा जगहिन्द प्रिंटिंग प्रैस जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र जालन्धर

वार्षिक शुल्क १५) वर्ष १३, अंक ४४ ९ मार्गशीर्ष सम्वत २०३७ तदनुसार २३ नवम्बर १९८० का अंक दयानन्दाब्द १५६

कादियां में प्रान्तीय सम्मेलन ३० नवंबर को

अध्यक्ष-आर्य नेता श्री बन्देमातरम् रामचन्द्र राव होंगे

उद्घाटन-सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री शालवाले करेंगे ।

टोलिया बनाकर झण्डे हाथो मे लेकर आर्य बन्धु पहुचे ।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित आर्य समाजो व शिक्षा संस्थाओ के अधिकारी महानुभावो की सेवा में

श्रीमन् नमस्ते

धर्मवीर प० लेखराम का आर्य समाज के इतिहास मे एक विशेष स्थान है । उन्होने अपना सारा जीवन आर्य समाज के प्रचार मे लगा दिया और अन्त मे उन्होने उसी के लिए अपने प्राण भी दे दिये यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम आज तक उनका कोई स्मारक नही बना सके । अब कादियां मे वहा के स्थानीय आर्य समाजियो सनातनधर्मियो और सिख भाईयो ने मिलकर एक स्मारक मण्डल बनाया है वे वहा उनका स्मारक बनाना चाहते हैं । इसके लिए भूमि भी ले ली गई है और उस पर कुछ काम भी प्रारम्भ हो गया है ।

स्थानीय आर्य समाजियो और दूसरे महानुभावो को प्रोत्साहन देने के लिए ३० नवम्बर १९८० को कादियां मे एक प्रान्तीय आर्य सम्मेलन किया जा रहा है । इसकी अध्यक्षता आन्ध्र प्रदेश के सुप्रसिद्ध आर्य नेता और हैदराबाद मे निजाम के विरुद्ध आर्य समाज के ऐतिहासिक सत्याग्रह के वीर योद्धा श्री बन्देमातरम रामचन्द्र राव करेंगे । सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री रामगोपाल जी शालवाले इसका उद्घाटन करेंगे । इनके अतिरिक्त पंजाब के वित्तमन्त्री डा० केवल कृष्ण स्वास्थ्य मन्त्री श्री सरदारीलाल जी कपूर पंजाब सनातनधर्म सभा के प्रधान प० मोहनलाल जी सुप्रसिद्ध सनातनधर्मी नेता महन्त श्री रामप्रकाशदास जी और दूसरे कई प्रमुख व्यक्ति इस सम्मेलन मे भाग लेंगे । हम चाहते हैं कि पंजाब के आर्य समाजी अधिक से अधिक संख्या मे उस दिन कादियां मे पहुचें । जैसाकि आप जानते हैं कि इस प्रकार के प्रदर्शन से अपने संगठन को बहुत शक्ति मिलती है इसलिए आपसे प्रार्थना है कि आप अपनी आर्य समाज के अधिक से अधिक सदस्य तथा दूसरे महानुभाव कादियां पहुचायें । यह सम्मेलन प्रातः नौ बजे प्रारम्भ होगा और दोपहर के तीन बजे समाप्त हो जाएगा । प्रत्येक आर्य समाज की टोली अपने झण्डे लेकर वहां पहुंचे । दूर से आने वाली आर्य समाज यदि अपनी अपनी बसो मे आए तो और भी अच्छा रहेगा दोपहर के भोजन का प्रबन्ध कादियां मे ही किया जाएगा । इसलिए आप से सानुरोध प्रार्थना है कि ३० नवम्बर को प्रातः नौ बजे तक कादियां अवश्य पहुंचें आप के समाज या संस्था की ओर से जितने व्यक्ति कादियां जा रहे हैं उनकी पूरी संख्या मे आर्य समाज लेखराम नगर कादियां जिला गुरदासपुर को अवश्य सूचित कर दें ।

भवदीय

वीरेन्द्र	रामचन्द्र जावेद	डा के के पसरीचा
सभा प्रधान	सभा मन्त्री	सभा कोषाध्यक्ष

क्या आपने हस्ताक्षर कर दिए ?

राष्ट्रपति को पंजाब मे हिन्दी का सम्मानित स्थान दिलाने के लिए जो ज्ञापन देना है क्या उस पर आपने हस्ताक्षर कर दिए हैं यदि नही किए तो अपने नगर की किसी भी आर्य समाज मे जाकर वह ज्ञापन ले लें और उस पर हस्ताक्षर कर दें

जिन फार्मों पर हस्ताक्षर हो गए हैं वह शीघ्र सभा कार्यालय मे भिजवा दें ।

वीरेन्द्र

श्वेताश्वेतरोपनिषद कथा माला—

प्रकृति जीव परमेश्वर का क्षर-अक्षर के रूप में वर्णन

ले०—श्री म गवत जी सिद्धा तालकार दिल्ली

(गताक से आगे)

जो भाव पहले दो श्लोको म व्यक्त किया गया है उसी को भि न रूप मे अगले श्लाक मे कहा है एक ही प्रकृति रूपी वृक्ष पर-समाने वृक्ष पुरुष यह जीव पुष्प फल भोगने मे निमग्न है-निमग्न । प्रकृति को मानता भोगना वह शक्तिहीन हो जाता है और प्रकृति के मोह मे पडा शोक सागर मे डूब जाता है—अनीश्या शोचति मुह्यमान । जब वह देखता है कि दूसरे पुरुष परमात्मदेव-की प्रकृति से अलग रहने के कारण सेवा हो रही है—जुष्ट यदा पश्यति अन्यम ईशम तो समझ जाता है कि मे प्रकृति फमने से अन्त मे शोक ही हाथ आता है। उसकी महिमा को जानकर यह भी उस माग को पकड लेता है और वीतशोक हो जाता है—अस्य महिमान इति वीत शोक इसका यह अथ भी हो सकता है कि एक पुरुष तो प्रकृति के ससार मे निमग्न रहता है इस प्रकार प्रकृति के मोह मे पड जाने के कारण उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है। जब वह देखता है कि ससार के माया मोह को जीव छोड कर भगवान मे लो लगाता है उसकी सब सराहना करते हैं तब यह भी ससार का मोह त्याग कर उसी माग को अपना लेता है और वीतराग होने के कारण वीतशोक हो जाता है क्योंकि सब शोको का कारण राग है मोह है ममता है। निर्मोही होने से ही मनुष्य शोकरहित हो सकता है ।७॥

वेद की सब ऋचाए उस अक्षर ब्रह्म का ही प्रतिपादन करती है उस ब्रह्म का जिस मे सब देव निवास करते हैं। वेद की ऋचाए जिस ब्रह्म का प्रतिपादन करती हैं जो उस ब्रह्म को नही जानता—य त न वेद वह ऋचाओ से क्या करेगा कि ऋचा करिष्यति । जो ब्रह्म को जान जाते हैं ये इत तद विदु ऐसे शान्ति प्रा त करते हैं त इम समासते ।८॥

वेदो के छ न यज्ञ ऋतुए व्रत भत भव्य और जो कुछ कहते हैं इस सब माया स वह मायी भगवान सृष्टि की रचना करता है—अस्मात मायी सृजते विश्व एतत वह माया का स्वामी—म यी तो उक्त सब मे सृष्टि की रचना करता है पर तु यह जीव उसमे आकर बध जाता है अन्यश्च अस्मिन माययो सनिरुद्ध ।९।

माया का मायी का अथ समझाते हुए अगले श्लोक मे स्पष्ट किया है कि माया का अथ प्रकृति है मायां तु प्रकृतिं विद्या त मायी का अथ परमश्वर है—मायिन तु महेश्वरम ।१०॥

(पचम अध्याय)

१ प्रकृति जीव परमेश्वर का क्षर अक्षर के रूप म वणन

म उपनिषद म मुख्य तौर पर त्रि ववा दृग ता है । बार बार प्रकृति जीव ईश्वर का उल्लेख मिलता है पहले प्रकृति क अजा ना जीव तथा ईश्वर को अज कहा फिर प्रकृति को वृक्ष तथा उस पर बैठ दो पक्षियो सुपर्णा का जिकर किया जिनमे से एक वृक्ष का फल खाता है दूसरा सिफ देखता है। इस अध्याय मे दो अक्षरो का वणन है इन दो के अलावा तीसरे ब्रह्म का वणन है जो अक्षर पर तु उसे यहा अक्षर नही कहा। इन सबसे प्रतीत होता है कि उपनिषदो मे भले ही सब जगह ब्रह्म का वणन हो परन्तु साथ ही ब्रह्म के अतिरिक्त जीव तथा प्रकृति का भी अज सुपर्णा अक्षर आदि नामो से उल्लेख है । इस अध्याय का प्रारम्भ करते हुए कहा गया है।

दो अक्षर हैं। अक्षर —अर्थात जो नष्ट नही नित्य हैं अक्षर य दो अक्षर ब्रह्म पर है—अर्थात ब्रह्म ही इन का लक्ष्य है ब्रह्म परे ब्रह्म ही इनका आधार है ब्रह्म पर ही ये टिके हुए हैं परन्तु य दोनो अन त हैं तु अन ते। इन दोनो मे से एक म विद्या गूढ रूप मे छिपे रूप मे विद्यमान है दूसरे मे अविद्या भरी पडी है विद्या अविद्या निहिते यत्र गूढ । विद्या जीव का और अविद्या प्रकृति का गुण है इन मे स अविद्या टिकने वाली नही हैं क्षर तु अविद्या और निश्चय से विद्या अमरता देने वाली है ह्यमृत त विद्या। प्रकृति तथा जीव के अतिरिक्त एक अन्य हैं जो विद्या तथा अविद्या का नियमन करने वाला है—विद्या अविद्या ईशते य त म अन्य ।१।

इस श्लोक मैं चार बातें कही गई हैं पहली बात यह कि अक्षर कहाए तीन हैं प्रकृति जीव तथा ईश्वर दूसरी बात यह कि इन तीन मे से एक ब्रह्म है अन्य दो प्रकृति तथा जीव ब्रह्म पर आश्रित हैं ब्रह्म पर हैं तीसरी बात यह कि विद्या जीवात्मा का और अविद्या प्रकृति का स्वाभाविक गुण है चौथी बात यह कि विद्या तथा अविद्या दोनो का नियमन ईश्वर कर रहा है। ईश्वर के विषय में २ ३ ५ श्लोको में कहा है।

वह इकला एक एक कारण का अधिष्ठाता हैं य योनि योनि अधितिष्ठति एक । इन कारणो से जो कुछ निर्माण होता है जिस किसी रूप का भी निर्माण होना है विश्वानि रूपाणि और इन कारणो से जो अन्य कारण उत्पन्न हो जाते हैं योनी च सर्वा उन सब का वही अधिष्ठाता है योनि स्वभावान अधि तिष्ठति एक । सब का फल देने वाला वही है सर्वान परिणामयेत य वही इकला विश्व का अधिष्ठाता है सवम एतत् विश्वम अधितिष्ठति एक प्रत्येक वस्तु के गुण का विनियोजन वही करता है गुणान् च सर्वान विनियोजयेत य ॥२ ३ ५ ॥

२ जीव के विषय मे विचार

जीवात्म सत्व रज तम—इन तीन गुणा के पीछे चलने वाला है गुण अन्वय जीवन मे जो सुख दुख आदि कर्मों के के फल मिलते है उन कर्मों को करने वाला जीव ही है कम फल कर्ता जो कम वह करता है कृतस्य उसका वह उप भोक्ता है तस्यैव च उपभोक्ता यह नही हो सकता कि वह कम करे अच्छा या बुरा और उसका फल वह न भोगे । वह अपने कर्मों के फल के अनुसार सब प्रकार के रूपो को धारण करता है स विश्वरूप क्योंकि वह सत्व रज तम—इनके द्वारा त्रिगुणात्मक हैं इसलिए उसके जीवन के माग भी तीन प्रकार के हैं त्रिगुण त्रिमार्गा प्राणो का वह स्वामी है—प्राणाधिप अपने कर्मों के कारण वह भटकता फिरता है सचरति स्वकर्मभि ।७॥

जीवात्मा का रूप क्या है परिमाण क्या है ? इस सबध मे चर्चा करते हुए अगले श्लोको मे कहा है जीवात्मा अगुष्ठमात्र है अगुष्ठमात्र पर तु फिर भी सूय के समान है रवि तुल्य रूप अर्थात सूर्य के तुल्य उसका प्रकाश हैं। ऐसे रूप के साथ दो गुण और जुड जाते हैं वे हैं सकल्प अहकार (Determined will) तथा अहकार (Ego) सकल्प अहकार समन्वित य । सकल्प बुद्धि क गुण हैं अहकार आत्मा का गुण है-बुद्ध गुणन आत्मगुणेन च एव । इस प्रकार भौतिक (अगुष्ठमात्र) तथा मानसिक (सकल्प तथा अहकार) गुणो वाला आत्मा सुई के नोक के बराबर आरा अग्रमात्र है। वह आत्मा अपर है अर्थात इस प्रकार के गुणों वाला आत्मा कोई दूसरा नहीं है हि अपर अपि दृष्ट ।८।

अगुष्ठमात्र का अथ अंगूठ के समान यह नही है अगूठ के समान का अथ है इतना सूक्ष्म जैसा बडे से शरीर में छोटा सा अगूठा होता है। इस बात को स्पष्ट करते हुए अगले श्लोक मे कहा है यदि बाल के अग्रभाग के सौ भाग किए जायें बाल अग्रशतभागस्य और फिर उसके सौ भागो की कल्पना की जाय-शतधा कल्पितस्य च तो दस हजारवां भाग जीव स विज्ञेय । एक बाल के अग्रभाग का दस हजारवा हिस्सा कल्पना का ही विषय हो सकता है इसलिए जीव के परिमाण की यहा कल्पनामात्र की गई है उसका परिमाण नही बतलाया गया। ऐसा सूक्ष्मतम जीवात्मा अनन्त सामर्थ्यवाला है यह कल्पना की बात है । स च आनन्त्याय कल्पते ॥९॥

अगुष्ठमात्र की बात इसी उपनिषद के तृतीय अध्याय के १३ व श्लोक मे परमात्मा क विषय मे भी कही गई है। वहा भी अगुष्ट केवल सूक्ष्मता का प्रतीक है परिमाण का नही

आत्मा का रूप तथा परिमाण कहने के बाद उसके लिंग के विषय मे कहते हैं वह स्त्री नही नेव स्त्री न पुमान एष न ही आ मा नपु सक है न चैव नपु सक । जिस शरीर को यह ग्रहण करता है यद यद शरीर आदत्ते उसी उसी शरीर के लिंग के साथ उसका नाम रखा जाता है तेन तेन स रक्ष्यते । यहा रक्ष्यते से अभिप्राय लभ्यते से है या रखा जाता है ॥१०॥

जैसे घास की वृद्धि वृष्टि के जल से होती हैं वैसे ही सकल्प मोह स्पशन मोह तथा दृष्टि मोह रूपी जल से आत्मा की विवृद्धि—आत्मा का प्रपच बढता है। यह देही जीवात्मा कर्मों के अच्छे बुरे अनु क्रम से कर्मानुयानि अनुक्रमेण भि न भिन्न स्थानो मे स्थानेषु भि न भिन्न रूपो को —रूपाणि प्रा त होता है—अभिसम्प्रपद्यते ।११।

सकल्पन मोह स्पशन मोह तथा दृष्टि मोह का क्रम बडा मनोवैज्ञानिक है। ससार मे मनुष्य जो कम करता है उसका क्रम यही हैं। पहले सकल्प होता है फिर वह सकल्प जब बार बार आता है तब सकल्प मोह की अवस्था मनुष्य पर छा जाती है। उसके बाद उस सकल्प को पूरा करने के लिए हाथ पैर चलने लगते हैं। बार बार इस क्रम मे पड जान की अवस्था स्पशन मोह है—स्पश से अभिप्राय निकटता मे आने से है। कम की तीसरी अवस्था तब आती है जब जो काम हम करना चाहते है वह आखो का सामने लगातार बना रहता है। इसी का उपनिषद कार ने दृष्टि मोह कहा है। इन तीनो अवस्थाओ का परिणाम जीवात्मा के भिन्न भि न कम है। इसका यह भी अथ है कि सकल्प स्पर्श दृष्टि तथा इनके मोह से मनुष्य कम के प्रपच मे फसता है।

(शेष पृष्ठ ९ पर)

सम्पादकीय—

पंजाब में आर्यसमाज के सामने सबसे बड़ी समस्या

समस्याएं तो सारे देश के सामने हैं और पंजाब में भी बहुत सी समस्याएं हैं। परन्तु कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रान्त में हिन्दुओं के अस्तित्व के लिए एक बहुत बड़ा संकट खड़ा हो रहा है। यह जानते हुए भी कि हिन्दी और संस्कृत दो ऐसी भाषाएं हैं जिनके साथ हिन्दुओं का विशेष लगाव है फिर भी पंजाब से उनका सर्वनाश करने का प्रयत्न हो रहा है। कोई सरकार आ जाए वह अकालियों की हो या कांग्रेस की। हिन्दी और संस्कृत के साथ एक ही जैसा व्यवहार करती है। उन्हें इस बात की कोई चिन्ता नहीं होती कि जो कुछ वह कर रही है उससे हिन्दुओं की भावनाओं को ठेस तो न पहुंचेगी। अपने कार्यक्रम के अनुसार वह जो कुछ उचित समझती है करती जाती है मैं इसे पंजाब के हिन्दुओं के लिये एक बहुत बड़ा संकट समझता हूं। यदि हमने समय पर इस दिशा में कोई सक्रिय पग न उठाया तो वह दिन भी आ जायेगा जब पंजाब में न तो कोई वेदों को पढ़ने वाला मिलेगा न उपनिषद के पढ़ने वाला और न रामायण और महाभारत को पढ़ने वाला। इसलिए यह एक ऐसी समस्या है जिसकी तरफ आर्य समाज को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

दूसरी समस्या जिसकी तरफ मैं पंजाब की आर्य जनता का विशेष ध्यान दिलाना चाहता हूं वह यह कि पंजाब में हरिजन अब हिन्दुओं से दूर जा रहे हैं। जब से सरकार ने उन्हें राजनैतिक संरक्षण दिया है उस समय से वह अपने आपको हिन्दुओं से पृथक एक सम्प्रदाय समझ रहे हैं वह अभी यह अनुभव नहीं कर रहे कि इसका परिणाम अन्त में क्या होगा। परन्तु कोई और इस ओर ध्यान दे या न दे आर्य समाज को अवश्य ही देना चाहिए। यही वह संस्था है जिसने सबसे पहले दलितोद्धार के लिए काम किया था। आज यदि उन भाईयों में जिन्हें हरिजन कहा जाता है कुछ जागृति आई है और उन्हें कुछ अधिकार मिले हैं तो उसका श्रेय आर्य समाज को ही मिलना चाहिए। परन्तु इसी के साथ हमें यह भी न भूलना चाहिए कि जो कुछ आर्य समाज ने किया था उसे मलियामेट करने का प्रयत्न हो रहा है। कई संस्थाएं हरिजनों को अपनी ओर खींचने का प्रयत्न कर रही हैं। १९३३ में जब उस समय की बरतानिया सरकार ने कौमीनल अवार्ड के नाम से अपनी घोषणा की थी तो वह हरिजनों को हिन्दुओं से अलग करने का पहला षड़यन्त्र था। गान्धी जी ने उसको समझ लिया था। इसीलिए उन्होंने उस अवार्ड के विरुद्ध मरण व्रत रखा था। उस अवार्ड में कुछ संशोधन तो अवश्य हो गया था परन्तु जो नये अधिकार और जो नई सुविधाएं हरिजनों को मिल गई थी उनका यह परिणाम हुआ है कि अब वह अपने आपको हिन्दुओं से एक पृथक सम्प्रदाय समझने लगे हैं। यह एक अत्यन्त ही सोचनीय स्थिति है जिसकी ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

मुझे इस बात की हार्दिक प्रसन्नता है कि आर्य समाज इस समस्या की ओर जागरूक है और कुछ न कुछ इस समस्या के समाधान के लिए हो ही रहा है। ७ नवम्बर को दीपावली के दिन आर्य समाज बाजार श्रद्धानन्द जालन्धर में नई यज्ञशाला का उद्घाटन एक सफाई मजदूर हरिजन से कराया गया। आर्य समाज बाजार श्रद्धानन्द अमृतसर भी बहुत देर से इस दिशा में काम कर रहा है। उसका यह परिणाम है कि हमारे कई हरिजन भाई विशेषकर वाल्मीकि अमृतसर की आर्य समाज में सक्रिय भाग ले रहे हैं। गुरदासपुर जिला में भी ऐसे हरिजनों की बहुत बड़ी संख्या है जिनका झुकाव आर्य समाज की तरफ अधिक है। जालन्धर के भार्गव कैंप में तो आर्य समाज का काम होता ही रहता है। वहां जो लोग रहते हैं उनमें कम से कम ८० प्रतिशत ऐसे लोग हैं जो आर्य समाज की विचार धारा में विश्वास रखते हैं।

इसलिए हम यह तो नहीं कह सकते कि आर्य समाज इस समस्या की ओर ध्यान नहीं दे रहा है। दे तो रहा है परन्तु इतना नहीं जितना उसे देना चाहिए या वह पहले देता रहा है। इस सम्बन्ध में, मैं पंजाब की आर्य समाजों के अधिकारियों के सामने एक सुझाव रखना चाहता हूं वह यह कि वह अपनी आर्य समाज के अधिक से अधिक न केवल सदस्य बनाएं जाएं अपितु चुनाव के समय उन्हें अधिकारी भी बनायें इसी के साथ समय २ पर उन क्षेत्रों में जहां हरिजन अधिक रहते हैं वहां यज्ञ और प्रीतिभोजन आदि की व्यवस्था की जाए। यज्ञ का प्रभाव सब पर ही अच्छा रहता है। उनके द्वारा लोगों में श्रद्धा भी पैदा होती है। इसलिए प्रत्येक आर्य समाज का इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए। प्रायः देखा गया है कि आर्य समाजों में जो लोग अधिकारी बन जाते हैं वह फिर किसी और को पास नहीं आने देते। यह मनोवृत्ति अत्यन्त सोचनीय भी है और निन्दनीय भी है। आवश्यकता इस बात की है कि आर्य समाज की शक्ति और उसका संगठन बढ़े। यह उसी स्थिति में सम्भव हो सकता है यदि अधिक से अधिक लोग आर्य समाज में आयें। इसलिये हमें अधिक से अधिक प्रयत्न करना चाहिये कि आर्य समाज के जितने अधिक से अधिक सदस्य बनाये जा सकते हैं बनाये जाएं। उसी के साथ समाज के दलित वर्ग की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

मैंने संक्षिप्त रूप में यह समस्याएं आर्य समाजों के अधिकारियों के सामने रख दी हैं जिनका समाधान मैं आवश्यक समझता हूं देश में चारों तरफ अन्धेरा नजर दिखाई दे रहा है। विद्रोह और विघ्नकारी शक्तियां फिर से सिर उठा रही हैं। उनका सामना केवल आर्य समाज ही कर सकता है। परन्तु उसी अवस्था में यदि वह भी अपने संगठन को शक्तिशाली बनाए इसीलिए हमें इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

—वीरेन्द्र

सभा को 701 की थैली भेंट

आर्य समाज राणीतालाब फिरोजपुर शहर का वार्षिकोत्सव सफलता पूर्वक सम्पन्न

फिरोजपुर के समाजों में आर्य समाज राणी तालाब फिरोजपुर शहर का अपना एक विशेष स्थान है। इस समाज में नवयुवक बढ़ चढ़ कर भाग लेते हैं। समाज में युवक सभा का संगठन विगत तीन मास से हो चुका है और सभी युवक पूरे लगन और उत्साह से काम कर रहे हैं आर्य समाज का उत्सव १०-११-८० से १६-११-८० तक पूरे उत्साह से मनाया गया। सभा की ओर से वेद कथा के लिए श्री पं० जगदीशचन्द्र वसु तथा भजनोपदेश के लिए श्री श्यामसिंह दिनकर और श्रीराम जी भेजे गए थे। उत्सव में श्री पं० निरंजनदेव जी इतिहास केसरी श्री पं० सुभाषचन्द्र शास्त्री सिद्धान्त शिरोमणि श्री तुलसीदेव जी गायनाचार्य तथा सभा कार्यालयाध्यक्ष श्री ओमप्रकाश आर्य सम्मिलित हुए। उत्सव की सफलता में इसी समाज की माताओं का भी पूरा हाथ है। समाज के सभी अधिकारी और सदस्य बहिन भाई अपने युवकों सहित मिलजुलकर कार्य करते हैं। १७ नवम्बर को पंजाब केसरी ला० लाजपतराय जी का बलिदान दिवस भी मनाया गया।

सम्वाददाता

आर्य समाज माडल टाऊन पठानकोट में वेद कथा

आर्य समाज माडल टाऊन मीरपुर कैम्प पठानकोट में २४-११ से २९-११-८० तक वेद कथा रात्रि ७-३० से १० बजे तक होगी प्रातः ७-३० से ९ बजे तक विशेष यज्ञ होगा। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक श्री पं० जगदीशचन्द्र जी वसु वेद कथा करेंगे तथा श्री तुलसीदेव जी गायनाचार्य के भजन होंगे।

—बलदेवराज यदुवंशी
मन्त्री

वेद का जीवन दर्शन-2

ले० श्री आचाय भद्रसेन जी होशियारपुर

वस्त्र—भोजन की तरह ही जीवन की एक और आवश्यकता है—वस्त्र अतएव कहा है वस्त्र धारण करो।१ तथा वस्त्र के कच्चे माल कातने बुनने और उसके सिल लाने वाले का स्पष्ट सकेत है।

इा वस्त्र की उपयोगिता की दृष्टि से सुवासा आदि शब्द आते है पर वहा किसी आकृति का सकेत नही है।

भवन भवन का महत्व बताते हुए ही उपमा के रूपमे कहा है २ जैसे व्यक्ति अपने घर मे सुख सुरक्षा अनुभव करता है। हम तम दोनो के वास और विहार के लिए ऐसे घरो को चाहते है जिनमे सूय की किरणो और स्वच्छ वायु का भर पूर प्रवेश हो ३ म त्रो मे एतदथ वस्तु शब्द का ही प्रयोग किया है जोकि वास्तु प य के रूप मे आज भी प्रचलित है। वद मे वास्तु शास्त्र का काफी वणन है जिस केउदाहरण शालाकमविधि के नाम से सस्कारविधि मे भी देखे जा सकते हैं।

शिक्षा—शिक्षा का कितना महत्व है यह कहने की तो जरूरत नहा है क्योकि हर प्रकार का विकास इसी पर निभर है तभी तो शास्त्र की आख कहा जाता है। जीवन के हर अग की राह दिखाने और उलझनो को सुलझाने का एकमात्र साधन शिक्षा ही है। जिसके सम्बध मे वेद ने कहा है प्रकाश से अधरा मिटता है ४। हे सभी से पुकारे जाने वाले इन्द्र! हमे ज्ञान से आप्लावित कर जसे पिता पुत्र को करता है। जिससे जीवन रूपी रात्रि मे हम जीवन और ज्योति को प्राप्त कर सक ५। हे शिक्षा देकर पालने वाले। इस यश रूप सधे हुए कुमार को ऐसी शिक्षा दो कि यह जीवन के हर अग म पूण सफल हो सके ६। अर्थात वेद विद्या की प्रकाश स उपमा देता है और विद्या का उद्देश्य जीवन की सफलता पूणता मे ही है तथा गुरु शिष्य को उसी हित भावना से विद्या प्रदान करे जैसे पिता अपने पुत्र के प्रति हितभावना रखता है विद्या को वेद ने पवित्रतम स धन माना७ है अर्थात निमित्त होने पर ही व्यक्ति के सारे पाप प्रमाद दोष विकार धुलते है।

अन्न व धन जोवन की मूलभत आवश्यकताओ को प्राप्त करने का साधन होने से बल प्रधान रूप मे अर्थ (धन) का महत्व किसी स छिपा हुआ नही है। तभी तो हम नित्य प्रार्थना करते हैं हम धन ऐश्वर्या के स्वामी हो। ८ रयि राधस वेदस वसु वि । द्रविण अन्न भग नृम्ण द्युम्न आदि अनेक शब्दो क बारम्बार प्रयोग से वेद ने धन के महत्व को दर्शाया है। तथा धन के विशेषण भर्वाक सचि वामम महासम सानसिम विभु प्रभु तुविद्युम्न यशस्वत मघम् गोमत पोषम वीरवत्तम यक्षमम आदिविशेषण बहुत ही महत्वपूर्ण और विचारणीय हैं।

धन का इतना अधिक महत्व दर्शाते हुए भी वेद ने स्पष्ट रूप मे कहा है—० हमारे पास ईमानदारी का पैसा हो काले कारनामो से कमाया हुआ काला धन न हो अपितु वह तो नष्ट हो जाए और हे परमेश्वर! हमारे पास प्रशस्त (प्रशस्यस्य अ) सफल साधनो से प्राप्त सफल धन हो। धन के उपयोग को बताते हुए ही वेद ने कहा है—१० धन अपने तथा अपनो के पालन पोषण का साधन हो और हम सदा अपने समाज की सुख सुविधाओ की वद्धि क लिए अधिक से अधिक इस का वितरण कर।

धनार्जन के साधनो की चर्चा के प्रसग मे ये शब्द बहुत अधिक विचारणीय है कि—धन के लिए उद्योग करो११ अग्नि (परिश्रम) द्वारा धन प्राप्त करो।१२ हे धन चाहने वाले! जुआ मत खेल कृषि काय ही कर तभी तू धन की मौज प्राप्त कर सकेगा १३। क्योकि पार्थवी वसु धरा वसुधा रत्नगर्भा रत्नप्रसू है और यह धेनु की तरह अनेकविध धन की धाराओ को निश्चितरूपेण प्रदान करती है।१४ इस प्रकार अथ शास्त्र के अनेकविध सूत्र वेदो मे यत्र तत्र प्राप्त होते हैं। वस्त्रवयन कृषिकम पशुपालन व्यापार नौका विमान लुहार सुनार आदि के पदो के साथ अनेक प्रकार के आर्थिक उद्योगो और धन्धो का विवेचन भी वेद मे आया है।

चिकित्सा—स्वस्थ ही हर काय का करने मे समथ होता है। अत वेद ने अनेक बार रोगरहित बलसम्पन्न शरीर की कामना की है। रोग ही स्वास्थ्य के सबस बड़ शत्रु हैं। अत वेद मे अनेक रोगो तथा रोग निवारक पदार्थों के नाम वहा मिलते हैं वहा सूय जल वायु द्वारा प्राप्त स्वास्थ्य और प्राकृतिक चिकित्सा का विस्तृत निर्देश मिलता है जिसका एकम त्र उद्देश्य है अनामयम। चिकित्सा विज्ञान के विविध अगो (प्राकृत औषध तथा शरीरादि का काफी विस्तृत विवेचन वेद मे मिलता है

दाम्पत्य जीवन समाज का प्रथम रूप परिवार है जिसका शुभारम्भ एक युवक और एक युवती द्वारा सामाजिक एव धार्मिक मर्यादा पूवक आजीवन साथ रहने की घोषणा करने से होता हैं। इसी भावना का मार्मिक चित्रण हमे इन म त्रो मे मिलता है।

अपनी भावना के साथ तेरी भावना को जोड़ता हू। मेरे विचारो के अनुकूल तेरे विचार हो। मेरी बात को ध्यान से सुन ग्रहण कर प्रजापति (प्राजापत्य की भावना) न तुझे मेरे साथ विवाह सम्बन्ध से सम्बन्धित किया है।१५ हम दोनो के हृदय दो जलो की तरह परस्पर घुले मिले हो।१६ दोनो एक दूसरे के प्रति प्यार करने वाले रुचिकर और प्रसन्न मन वाले हो।१७ सौभाग्य की वृद्धि के लिए मैं तेरे हाथ को विवाह के रूप मे ग्रहण करता हू तू मुझ पति के साथ आजीवन इस रूप मे रह।१८ मैं सदा तेरे पालन पोषण का उत्तरदायित्व निभाऊगा।१९ चकवा चकवी की तरह हम दोनो के मन सदा पारस्परिक लगाव से युक्त हो! जो तेरा हार्दिक भाव है वैसा ही हार्दिक भाव मेरा भी हो वैसा हार्दिक भाव मेरा है वैसा ही तेरा भी हो।२० एक दूसरे को समझते हुए सदा हास परिहास के साथ बड़ प्रेम से अत्यन्त प्रसन्न रहो।२१ तुम दोनो सारी आयु वैवाहिक रूप से सयुक्त रहो वैवाहिक दृष्टि से परस्पर कभी भी अलग न हो। अपने गृह मे पुत्रो पोहतो के साथ हसते-खेलते हुए सदा प्रसन्न मन रहो। गृहस्थ जीवन निर्माण का एक अवसर है अत इससे भयभीत न हो एव सकोच अनुभव न करो। साहस के साथ इसके कर्त्तव्यो को पूर्ण करो।२२

वेद ने वैवाहिक सम्बन्ध (सगाई) के प्रकार को बताते हुये बड सुन्दर शब्दो मे कहा है—वही वधू है जो रूप यौवन सम्पन्न होकर स्वयमगृह मे से स्वपति (जीवन साथी) का वरण करती हैं।२३

परिवार—विवाहित जीवन के शुभारम्भ से परिवार का श्रीगणेश होता है। इसमे माता पिता भाई बहन पुत्र-पुत्री आदि सम्बन्धी जन आते हैं जिनके पारस्परिक सबधो के विषय मे वेद मे काफी विस्तृत वणन मिलता है और माता पिता से सबधित व्यवहार के सबध मे अनेक उपमाओं का प्रयोग भी मिलता है। पारिवारिक शिष्टाचार की दृष्टि से निम्न स्थल विशेष रूप से दशनीय है।

पुत्र पिता के अनुकूल आचरण करने वाला माता के अनुरूप मन वाला हो पत्नी पति के लिए सदा कल्याणकारिणी शान्तिदायिनी वाणी बोले।२४

(क्रमश)

---

१ इद परिधत्स्व वास अकृण्वन् अवयन अत वन।

२ मम इव स्व ओक्ये।

(ऋ १ ९१ १३)

३ त वा वास्तूनि उश्मसि गमध्यै यत्र गावो भरि शृङ्गा अयास।

(ऋ १ १५४ ६)

४ ज्योतिष बाधते तम।

५ इन्द्र क्रतु न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा। शिक्षाणो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि।

(ऋ ७ ३२ २६)

६ आप्रस पितरो गर्भ कुमार पुष्कर स्रजम। यथेह पुरुषोऽसत्। (य २ ३३)

७ पवित्र ते विनत ब्रह्मणस्पते

(ऋ ९ ८३ १)

न हि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते (गी० ४ ३८)

पावका न सरस्वती। (ऋ १,३ १०)

स्तुता मया वरदा वेदमाता पावमानी

(अ॰ १९ ७१ १)

७ वय स्याम पतयो रयीणाम।

(ऋ १० १२१ १०)

८ रमन्ता पुण्या लक्ष्मी या पापीस्ता अनीनशम्

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धहि।

(ऋ २ २१ ६)

९ कस्यस्विद्धनम्। (य ४० १)

(क इति प्रजापति —प्रजापालनात्मकम् अनुकाम तर्पयेथाम्।

यथानामिन्द्र सातये

सनेम नि च धीमहि। स्याहुत

प्ररेचनम (ऋ १ १७ ६)

१० राये रमस्व।

११ अग्निनारयिमश्नवत।

(ऋ १ १ ३)

१२ अक्षैर्मा दीव्य कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व।

(ऋ १० ३४ १३)

(यहा कृषि शब्द केवल खेती का वाचक नही अपितु कृष विलेखने के आधार पर कच्चे माल को पक्का रूप देने मे भी है विस्तार के लिए देखिए—विश्व साहित्य की अनमोल निधि वेद)

१३ सहस्र धारा द्रविणस्य मे दुहाम ध्रुवेव धेनुरनपस्फुर ती।

१४ मम व्रते ते हृदय दधामि

मम चित्तमनुचित्त ते अस्तु।

मम वाचमेकमना जुषस्व

प्रजापतिष्टवा नियुनक्तु मह्यम

(पारस्कर १ ८ ८)

१५ समापो हृदयानि नौ।

(ऋ १० ८५ ४७)

१६ अभिरी रोचिष्णु सुमनस्यमानौ

(पारस्कर १ ६ ३)

१७ गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्त मया पत्या जरदष्टिर्यथास।

(ऋ १० ८५ ३६)

१८ ममेयमस्तु पोष्या।

(अथव० १४ १ ५२)

१९ चक्रवाकेव दम्पती।

(अथव० १४ २ ६४)

यदेतद् हृदय तव तदस्तु हृदयमम यदिद हृदय मम तदस्तु हृदय तव।

(मन्त्र ब्रा० १ ३ ९)

२० स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ।

(अथव० १४ २ ४३)

२१ इहैव स्त मा वि यौष्ट विश्व मायुर्व्यश्नुतम्।

क्रीड तो पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे। (ऋ १० ८५ ४२)

२२ गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रत। (यजु० ३ ४१)

२३ भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशा स्वय सा मित्र वनुते जने चित्।

(ऋ १० २७ १२)

२४ अनुव्रत पितु पुत्रो मात्रा भवतु समना।

जाया पत्ये मधुमती वाच वदतु शान्तिवाम॥ (अथर्व० ३ ३० २)

ऋषि दयानन्द की जीवनी : कुछ तथ्य

लेखक — श्री डा भवानीलाल जी भारतीय

*

वसुन्धरा पर महापुरुषो का अवतरण इतिहास की विशिष्ट घटना होती है। अपने अद्वितीय व्यक्तित्व उदात्त विचार समूह तथा प्रभावपूर्ण कार्यकलापो द्वारा वे महापुरुष आने वाली शताब्दियो तक अपना वैशिष्ट्य छोड जाते है। इन महापुरुषो का आगमन मानवता के इतिहास पर अपने चरण-चिन्हों की कितनी गहरी छाप छोड जाता है। यह इतिहास विदो के अध्ययन का विषय बनता है। ऐसे सस्कारशील तथा प्रभविष्णु व्यक्तित्व धारी नरपु गवो को उत्पन्न करने मे भारत की महीयसी भूमि सदा से ही उर्वरा रही है। गुजराती के समर्थ साहित्यकार तथा उपन्यास लेखक स्व कन्हैया लाल माणिक लाल मुन्शी ने ऐसे ही ओज तेज पुञ्ज तथा प्राणवान व्यक्तित्व के धनी मनस्वी पुरुषो को लक्ष्य मे रख कर लिखा था— 'इतिहास की रगभूमि पर ऐसे व्यक्ति जब जब आते हैं तब दूसरे तत्व पुरुषार्थ विहीन हो जाते हैं। इतिहास क्रम रुक जाता है। समय शक्तियो का भान भूल कर दर्शको का मन उसके आस पास लिपट जाता है। नायक के मोह मे नाटक का अर्थ विस्मरण हो जाता है। भूतकाल की रगभूमि पर ऐसे अनेक व्यक्ति हुए है। परशु राम मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्ण और समस्त जगत् के राजनीतिज्ञ शिरोमणि चाणक्य। १

उन्नीसवी शताब्दी में भारत के धार्मिक और सास्कृतिक पुनर्जागरण के उन्नायक और पुरोधा दयानन्द सरस्वती की गणना भी उन शलाका पुरुषो मे होती है जिनके कृतित्व तथा विचार-सम्पदा से उनके समकालीन लोग ही प्रभावित नही हुए अपितु आने वाले युगो के प्रबुद्ध जन भी उनसे प्रभावित होते रहेंगे। मानव जाति के बौद्धिक चिन्तन तथा उस के चाव समूह को प्रभावित एव उद्वेलित करने वाले महापुरुषो की जीवन चर्चा ही हमारे अध्ययन और अनुशीलन का विषय बनती है।

भारत देश के जिस भूभाग ने दयानन्द जैसे तेजस्वी पुरुष को उत्पन्न किया वह सौराष्ट्र या काठियावाड कहलाता है जिसे काल मे अनेक युग पुरुषो को जन्म देने का श्रेय इसी प्रान्त को मिला हैं। एक बार पुन दुर्धर उपन्यासकार कन्हैया लाल मुन्शी के शब्दो मे गुजरात एक महावृक्ष है। उसकी जड मे परमात्मा (पीठ पुरुष-सोमेश्वर) श्री कृष्ण का धर्म पोष छिपा हुआ है। उसकी डालियो पर महाकवि नर्मद और महात्मा गाधी की कोपलें फूटी हैं।२ भारतीय नवजागरण के प्रथम ज्योतिर्धर राजाराम मोहनराय भारत महादेश के पूर्वी प्रान्त बगाल मे उत्पन्न हुए और उसी काल मे धर्म समाज सस्कृति और राजनीति के चिन्तन क्षेत्र मे युगान्तरकारी परिवर्तन उत्पन्न करने वाले इस महान् आन्दोलन के दूसरे सूत्रधार दयानन्द सरस्वती देश के दूसरे छोर पर गुजरात मे अवतरित हुए। कहना नही होगा कि पूर्वी और पश्चिमी भारत मे उदित इन दोनो ज्योति नक्षत्रो ने शताब्दियो से अज्ञान अन्याय तथा उत्पीडन से प्रपीडित भारत के कोटि-कोटि जनसमाज के हताश निराश एव त्रस्त मनों मे आशा उत्साह और नवीन प्रेरणा का दीपक जलाकर देश मे व्याप्त जडता को दूर किया जिससे समाज मे स्फूर्ति एव गति आई तथा देशवासियो ने अपनी खोई हुई अस्मिता को पुन पहचाना।

दयानन्द के विचारो का प्रचार और प्रसार उनके जीवनकाल मे ही यूरोप और अमेरिका तक हो गया था। फलत विदेशो के अनेक प्रबुद्ध विद्वान् न केवल उनकी विचार सरणि से परिचित होना चाहते थे अपितु उनकी जीवन यात्रा के विभिन्न आयामो को जानने के लिए भी उत्सुक थे। दयानन्द वैदिक समाज व्यवस्था मे मान्य आश्रम प्रणाली के अनुसार तुरीयाश्रमी (सन्यासी) थे और इस आश्रम की स्वीकृत मर्यादा का पालन करने के कारण ही उन्होंने अपने वश माता पिता तथा जन्मस्थान आदि का विस्तृत परिचय देने मे सकोच किया।३ तथापि अपने जीवन मे उन्हे एकाधिक बार स्वय के बारे मे स्वल्प बातें बताने का अवसर मिला था। प्रथम बार तो उन्होंने अपने जीवन के विषय मे कतिपय तथ्यो का उद्घाटन उस समय किया जब वे महाराष्ट्र के प्राचीन नगर पूनें मे अपनी व्याख्यान माला का अवसान कर रहे थे। व्याख्यान माला की अन्तिम कडी के रूप मे उनका यह व्याख्यान ४ अगस्त १८७४ को पूने स्थित भिडे के बाडे मे दिया गया था। इस आत्म निवेदन मे दयानन्द ने अपने जन्म से लेकर काशी की पण्डित मण्डली से किये गये प्रसिद्ध शास्त्रार्थ (१६ नवम्बर १८६९ ई) तक की घटनाओ का सिलसिलेवार वर्णन किया था।

स्वदेशवासियो की ही भाति अन्य देशवासी भी दयानन्द के जीवन के विषय मे जानकारी प्राप्त करने के लिए उत्सुक थे। दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज की कीर्ति पताका को स्वल्पकाल मे ही सर्वत्र फहराते देखकर अमरिका मे स्थापित थियोसो फिकल सोसाईटी के सभासदो का ध्यान भी स्वामी जी की ओर आकृष्ट हुआ। सोसाइटी के सस्थापक द्वय कर्नल आल्काट तथा मैडम ब्लैवेटस्की तो मानो दयानन्द के प्रभविष्णु व्यक्तित्व रूपी चुम्बक से खिचे लोहे की भाति अमरिका से भारत आये तथा स्वामीजी महाराज का सामीप्य लाभ किया। इन्ही कर्नल आल्काट ने जब थियोसोफिस्ट नामक मासिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया तो इन्होने स्वामी दयानन्द से निवेदन किया कि वे अपना आत्मवृत्तान्त धारावाही रूप से पत्र मे प्रकाशनार्थ भेजा करें। स्वामीजी इस आग्रह को टाल नही सके फलत उन्होने अपना आत्मवृत्तान्त लिखना आरम्भ किया और उसकी तीन किस्तें थियोसोफिस्ट मे प्रकाशित हुई।५

१ गुजरात के नाथ पृष्ठ ११७।

२ पाटन का प्रभुत्व पूर्वार्द्ध

३ यतय स्वकीय निवास स्वदेश कामादिक प्र था नैव निरूपितवत

४ द्रष्टव्य उपदेश मजरी अथवा पूना प्रवचन का डा भवानीलाल भारतीय द्वारा सम्पादित सस्करण।

थियोसोफिस्ट मे प्रकाशित यह आत्म

५ थियोसोफिस्ट के निम्न अ को मे यह आत्मकथन छापा था—(१) अक्तूबर १८७९ पृ ९ से १२ (२) दिसम्बर १८७९ (पृ ६६ से ६८) तथा (३) नवम्बर १८८० पृ २४ से २६ लाहौर से प्रकाशित होने वाले अग्रेजी मासिक The Arya ने अपने जुलाई १८८२ के अक मे आत्मकथन के प्रारम्भिक अश को The Auto biography or Dayanand Saraswati Swami शीर्षक से पृ १०२ १०६ पर उद्धृत किया था।

(क्रमश)

ठनी भी खूब और बनी भी खूब

ले०—श्री काशीराम जी चावला लुधियाना

एक तो वह अपना अकेलापन दूर करना चाहती थी और दूसरे उसकी एक सखी की कन्या थी जो उसकी नजरों में जची हुई थी इस लड़की ने शिक्षा तो मिडल तक ही प्राप्त की हुई थी। परन्तु बहुत चतुर सुन्दर स्वस्थ घर का सारा काम काज करने वाली थी। बोल चाल में भी बहुत हंस मुख थी घर का सारा काम करने से ही उसका स्वास्थ इतना अच्छा था। शिव कुमार की माता एक ऐसी ही लड़की को अपनी पुत्रवधू बनाना चाहती थी जो घर में आकर घर के प्रत्येक काम में उसे पूरी सहायता दे उसकी सखी भी यह सम्बन्ध करने में बहुत खुश थी व शिवकुमार और उसकी माता के स्वभाव को भली प्रकार जानती थी और दूसरा दोनों घर बहुत अच्छे थे।

वकील जी सांय घर आते तो उनकी पत्नी विवाह की चर्चा आरम्भ कर देती इस प्रकार उसने अपने पतिदेव को शिव कुमार का शीघ्र विवाह करने पर तैयार कर लिया था। परन्तु जब यह प्रस्ताव शिवकुमार के सन्मुख रखा गया तो उसने अपनी माता से कहा मैं आपकी यह बात तो स्वीकार करने को तैयार हूं कि विवाह शीघ्र करा लूं परन्तु लड़की तो मैं अपने पसन्द की लूंगा। यह ठीक है कि आपकी नजर में जो लड़की है उसमें बहुत गुण हैं परन्तु जहां उस की शिक्षा थोड़ी है वहां उसका बदन भी भद्दा है। आजकल ऐसे बदन वाली लड़की को कौन पसन्द करता है वह तो एक साधारण गांव की लड़की प्रतीत होती है ऐसी लड़की के साथ विवाह करके मुझे अपनी हंसी उड़वानी है।

शिव कुमार का पिता इस सम्बन्ध पर जोर नहीं दे रहा था वह जानता था कि कई ऐसे विवाह जो उच्च शिक्षा प्राप्त किए लड़कों के माता पिता ने उनकी इच्छा के विरुद्ध करने चाहे बहुत से झगड़े और अड़चनों के कारण बन गए। पहले तो लड़कों ने ऐसे नाते पक्के किए जाने पर विवाह करने से इंकार कर दिया था फिर विवाह हो गये तो सारी आयु अपने माता पिता को कोसते रहे। परन्तु शिव कुमार की मां जिद कर रही थी शिव कुमार के न मानने पर वह बहुत घबराई।

इस जमाने में माता पिता के ऐसे घबराने की कौन परवाह करता है नव युवक तो यह समझते हैं कि विवाह कराना उनका अपना अधिकार है किसी अन्य को इस में हस्ताक्षेप नहीं करना चाहिए। यहां तक वह अपने माता पिता से भी राय नहीं लेना चाहते यह आज कल के नवयुवकों की एक भयंकर भूल है यह ठीक है कि लड़के लड़की को अपना जीवन साथी चुनने का अधिकार होना चाहिए। परन्तु माता पिता की भी इस सम्बन्ध में राय लेना आवश्यक रहती है जहां माता पिता के आशीर्वाद के बिना रिश्ते होते हैं वहां सच्ची खुशी प्राप्त नहीं होती जहां झूठे प्रेम और केवल सौन्दर्य के आधार पर ही विवाह होता है वहां सच्चा प्रेम नहीं होता और बिना सच्चे प्रेम के गृहस्थ जीवन सुखी और सफल नहीं।

शिव कुमार अपनी बात पर अड़ा रहा अन्त में उसकी माता भी चुप हो गई उसका पिता तो पहले ही किसी प्रकार का दबाव नहीं डाल रहा था तब शिव कुमार ने पत्र में निम्न विज्ञापन दिया—

आवश्यकता

एक धनपति प्रसिद्ध घराने के एक २४ वर्षीय स्नातक(बी० ए०) लड़के के लिए एक ऐसी स्नातक (बी० ए०) लड़की की जो अच्छे परिवार की हो बहुत सुन्दर लम्बा कद और पतले शरीर की हो समाज में आने जाने के नियम जानती हो विवाह तुरन्त बिना साथ आना चाहिए उसे स्वयं मिलना भी होगा इस विज्ञापन को पढ़कर बहुत से पत्र चित्रों समेत आ गये शिवकुमार ने सारे चित्र एकत्रित करके उनकी एक ऐलबम बना ली अब वह इन में से चुनाव की ओर लग गया।

जब कई दिन शिवकुमार एक चित्र दूसरे के साथ तुलना करने में लगा रहा तो उसके माता पिता ने उसे कहा कि तुम अपना इतना अनमोल समय इस छान बीन में लगा रहे हो चित्र देखने से क्या पता लगता है तुम किसी निर्णय पर पहुंचो दूसरी ओर से लड़कियों वालों के पुनः पत्र आने लगे तब उसने पुनः अच्छी प्रकार से देखकर सब चित्रों में से पांच चित्र छांट लिये और उन्हें स्वयं मिलने के लिये पत्र लिख दिए और शेष सब पत्र वापिस कर दिये। विभिन्न तिथियां निश्चित करके वह पांचों स्थानों पर गया अपने माता पिता को भी साथ चलने के लिये कहा परन्तु माता का स्वास्थ्य ठीक न था और पिता को अपने काम से समय न था इसलिये उसके पिता ने अपनी एक विधवा बहन को शिवकुमार के साथ भेज दिया। परन्तु उसे कह दिया कि तुमने कोई राय नहीं देनी हां मैं हां मिलाये जाना कोई विशेष नुक्स वाली बात हो तो अवश्य जतला देना।

शिवकुमार ने अपनी बुआ के साथ पांचों लड़कियां देखी और अपने माता पिता के साथ विचार विमर्श करके उन्हें सूचित कर देगा कहकर घर वापिस आ गया।

वापिस आकर उसने अपनी बुआ द्वारा तीन स्थानों पर तो न लिखवा दी और उनके चित्र भी वापिस भिजवा दिए बाकी रह गई दो लड़कियां दोनों ही उसे बहुत अच्छी और श्यामा पसन्द थी। कभी तो वह उन दोनों के चित्र देखता और कभी उनके साथ हुई वार्ता को याद करता जो वह उनके साथ करके आया था और उन के गुणों का मन ही मन में मुकाबला करता परन्तु किसी निर्णय पर न पहुंच सका। पांच दिन वह इस झंझट में पड़ा रहा। इस बीच उन लड़कियों के माता पिता के फिर पत्र आ गये अब उसके लिए कोई निर्णय करना अति आवश्यक हो गया था।

(क्रमशः)

ये धरती वीर जवानों की

ले०—श्री बनवारीलाल आर्य कविराज मोहन बस्ती दिल्ली

ये धरती वीर जवानों की है ऋषियों की सन्तानों की।
इसके कण कण में लगी हुई है छाप अमिट बलिदानों की।१।
इसकी रक्षा करने को जब बन्दा ने तनको तुड़वाया।
सिर अपना धर्म हकीकत ने लाहौर के अन्दर कटवाया।
गुरु गोविन्द सिंह ने पुत्रों को दीवार के अन्दर चुनवाया।
गुरु तेग बहादुर ने अपना सिर दिल्ली में आ कटवाया।
इस देश ने सदा सजाई है हंस हंस के बाजी प्राणों की।२।
राणा प्रताप से राणा का दुश्मन से मस्तक झुका नहीं।
छत्रपति वीर शिवाजी का संग्राम में भाला रुका नहीं।
इस धरती को ऋषि दयानन्द ने अपने खून से सींचा था।
सीने श्रद्धानन्द ने गोली का इक अजब नजारा दीखा था।
है एक से एक बढ़कर मिसाल इस भारत के दीवानों की।३।
लाजपत गुरु भगतसिंह ने इस धरती हित बलिदान किया।
बिस्मिल आजाद वीरों ने जब तन मन धन का दान किया।
सुभाषचन्द्र बोस ने अपने जौहर अजब दिखलाये थे।
वीर तिलक सावरकर ने धरती के भाग्य जगाये थे।
तन मन धन को लुटा देना आदत है वीर जवानों की।४।
पद्मा सी लाखों क्षत्राणि कूदी जौहर के अंगारों में।
जिनकी अमर लिखी गाथा अंकित है चांद सितारों में।
इस धरती के नर नारियों ने फांसी पे लटकना सीखा है।
इस धरती का इतिहास सदा लोहू से लिखना सीखा है।
पग भर न हटे वापस प्रण से आदत है आर्य सन्तानों की।५।

(२ पृष्ठ का शेष)

जीवात्मा स्थूल सूक्ष्म तथा अनेक रूपों को—स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि च रूपाणि देही अपने अच्छे बुरे या सत्व रज तम आदि गुणों के कारण स्व गुणैः अनेक रूपों को ग्रहण करता है—वृणोति ये गुण दो प्रकार से जीवात्मा में आते हैं। एक प्रकार तो वह है जो इसने इस जन्म में क्रियाएं या कर्म किये होते हैं—क्रियागुणैः दूसरा प्रकार वह है जो इसके पिछले जन्म के कर्म किये होते हैं जो इसका आत्मगुण बन चुके होते हैं—आत्मगुणैः च। इन दोनों प्रकार के गुण—वर्तमान तथा भूत इनके संयोग का कारण अर्थात् इन सब को मिलाकर उनका यथार्थ फल देने वाला संयोगहेतु कोई अपर है दूसरा है—अपरः अपि दृष्टः। यह दूसरा परमात्मा के सिवाय कौन हो सकता है।१२।

वह अनादि तथा अनन्त—अनादि अनन्तम् जो इस परिवर्तनशील संसार के बीच—कलिलस्य मध्ये इस विश्व का स्रष्टा है—विश्वस्य स्रष्टारम् जिसके पृथिवी अप् तेज वायु आकाश आदि अनेक रूप हैं—अनेक रूपम् जो सम्पूर्ण विश्व को इकला परिवेष्टन कर रहा है—विश्वस्य एक परिवेष्टितारम् उस देव को जानकर—ज्ञात्वा देवम् जीव सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है—मुच्यते सर्वपाशैः।१३।

उसे भावना से श्रद्धा तथा भक्ति से ही प्राप्त किया जा सकता है—भावग्राह्यम् उसका कोई नीड—स्थान विशेष नहीं है वह सब जगह मौजूद है इसलिए उसे अनीड कहा जाता है—अनीडाख्यम्। वह कल्याणकारी है इसलिये यथोचित रूप में भाव तथा अभाव दोनों कर देता है—भाव अभाव करं शिवम्। वह सौन्दर्ययुक्त सृष्टि का रचनेहारा है—कला सर्ग करम् देवम्। जो सृष्टि के रचनहारे भगवान् को जान जाते हैं वे उस देव की आराधना में इस शरीर को आहुति के रूप में दे देते हैं अर्थात् फिर उनका पिंड में इस शरीर से तथा ब्रह्माण्ड में इस संसार से मोह नहीं रहता ये विदुः ते जहुः तनुम्।१४।

अमृतसर में दीपावली पर्व मनाया गया

७ ११ ८० शुक्रवार आर्य समाज बाजार श्रद्धानन्द अमृतसर मे ऋषि निर्वाण उत्सव (दीपावली पर्व) श्री मोहनलाल जी अरोड़ा प्रधान आर्य माडल स्कूल की अध्यक्षता मे बड़े उत्साह और उल्लास पूर्वक मनाया गया। प्रातः बृहद् यज्ञ के पश्चात् ऋषि निर्वाण उत्सव का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ जिसमे नगर की सभी आर्य समाजो या अन्य धार्मिक वा सामाजिक संस्थाओ ने बढ़ चढ़कर भाग लिया। आर्य समाज घाट कोपर (पश्चिम) बम्बई के आर्य वीर दल का एक जत्था जोकि सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी अर्थ कश्मीर से होता हुआ भारत का भ्रमण करता हुआ यहां ठहरा हुआ था ने पूरे जलसे में सम्मिलित होकर समारोह की शोभ बढ़ाई। ऋषि निर्वाण उत्सव के उपलक्ष मे वैदिकपुत्री हायर सैकेण्डरी स्कूल शांति विद्या निकेतन हुक्मी जमादार जी के एम ई आई गर्ल्ज हाई स्कूल चौरस्ती अटारी आर्य समाज नवांकोट की छात्राओ के अतिरिक्त वीरेन्द्रशर्मा व कुलदीप शास्त्री पार्टी और जनकराज आर्य पथिक पार्टी ने मनोहर शिक्षाप्रद महर्षि दयानन्द जी सरस्वती जी के सम्बन्धी घटनाओ को संगीत की स्वरो मे सवार कर पेश किया।

—ओमप्रकाश वैद, प्रधान

—

खालिस्तान की मांग, देश से गद्दारी

आर्य समाज समाना (पटियाला) ने २६ १० ८० को एक दिवस मनाते हुए प्रस्ताव पास किया कि खालिस्तान की मांग करना देश से गद्दारी है। उन्होंने ऐसे हजारो इश्तहार बनाकर सारे शहर मे बटवाए तथा लगवाए।

दीपावली पर्व से पूर्व प्रभात फेरी निकाली गई तथा ७ ११ ८० को बृहद् यज्ञ के पश्चात्, महर्षिदयानन्दजी के जीवन पर प्रकाश डाला गया। यज्ञ श्री गोविन्द प्रसाद उपदेशक (रांची बिहार) ने करवाया। रात्रि को दीपमाला की गई।

—

आर्य समाज जीरा का उत्सव

आर्य समाज जीरा का वार्षिक उत्सव २१ १० ८० से २६ १० ८० तक मनाया गया।

सभा की ओर से श्री प० रामनाथ जी सि० वि० श्री प० सुभाषचन्द्र जी शास्त्री श्री रामनाथ जी याज्ञी श्री हजारीलाल जी तथा श्री साईदास जी तबला वादक पधारे यजुर्वेद पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति पर स्वाहा स्वाहा से सारा नगर गूंज उठा विशाल शोभा यात्रा २६ १० ८० को निकाली गई इस उत्सव पर फिरोजपुर फिरोजपुर छावनी बस्ती टैंकावाली फिरोजपुर मोगा और देहात के आर्य बन्धुओं ने पधार कर इस उत्सव की शोभा बढ़ाई। सारा कार्यक्रम प्रभाव शाली रहा।

—मेहरचन्द बजन मन्त्री

आर्यसमाज गोविन्दगढ जालन्धर का उत्सव सम्पन्न

आर्य समाज गोविन्दगढ जालन्धर का वार्षिक उत्सव उत्साहपूर्वक २६ अक्तूबर से ३ नवम्बर तक मनाया गया ३ ११ ८० को महिला सम्मेलन हुआ जिसमे सभी स्त्री समाजो ने भाग लिया।

स्वामी व्रतानन्द जी प० जगदीश चन्द्र जी वसु श्री श्यामसिंह जी हितकर भजन मण्डली श्री रामनाथ जी यात्री, वीरेन्द्र कुलदीप शास्त्री भजन मण्डली आर्य मीरापति जी (ज्वालापुर) तथा सुपर्णावति जी (जम्मू) श्री प० ओम्प्रकाश जी आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष। बहिन कृष्णा सेठ जी बहिन डा० विद्यावती जी के प्रभाव शाली उपदेश हुए।

राष्ट्र निर्माण मे नारी की भूमिका विषय पर भाषण प्रतियोगिता मे शिवदेवी हाई स्कूल की छात्राओ तथा हंस राज महिला महा विद्यालय की छात्राओ ने भाग लिया छोटे बच्चो का भी प्रोग्राम हुआ प्रथम द्वितीय तृतीय आने वालो को पारितोषिक दिए गए

—

वेद प्रचार सप्ताह

आर्य समाज लुधियाना रोड फिरोजपुर छावनी मे वेद प्रचार सप्ताह २७ १० ८० से २ ११ ८० तक बड़ उत्साह पूर्वक मनाया गया।

प्रतिदिन प्रातः यज्ञ तथा रात्रि को आठ बजे से दस बजे तक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से आए हुए सुप्रसिद्ध महोपदेशक प० निरञ्जनदेव जी इतिहास केसरी एवं सुभाषचन्द्रजी सिद्धान्त शिरोमणि के प्रभावशाली प्रवचन तथा प हजारीलाल जी के मधुर भजन होते रहे कार्यक्रम २ ११ ८० तक बड़े उत्साहपूर्वक चलता रहा।

यज्ञ की पूर्णाहुति का सारा कार्यक्रम आदरणीय पुरोहित श्री योगेन्द्रपाल जी की अध्यक्षता मे सम्पूर्ण हुआ। सभा को ३५१) की थैली प्रदान की गई।

—चमन प्रकाश नन्दा मन्त्री

आर्य समाज माडल टाऊन जालन्धर का रजत जयन्ती समारोह

८० नवम्बर को आर्य समाज माडल टाऊन मे रजत जयन्ती समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया गया। ८ नवम्बर प्रातः तथा सायंकाल यजुर्वेद पारायण यज्ञ और रात्रि को प० त्रिलोकचन्द शास्त्री महोपदेशक की वेदकथा होती रही। ९ नवम्बर को यज्ञ की पूर्णाहुति विशाल पण्डाल मे बनाये गये ५१ हवन कुण्डो में २५१ परिवारो के सदस्यो ने बड़ी खुशी से सैंकड़ो नर नारियो की उपस्थिति मे डाली और दिल खोलकर दान दिया। स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती प्रि० सी० एल० अरोड़ा प्रि० इन्द्रजीत तलवाड़ प्रि० कमल सूद डा० वेदीराम जी डा० उपाध्याय तथा अन्य विद्वानो के मनोहर व्याख्यान हुए। भजन प्रतियोगिता गायन प्रतियोगिता मे अनेक स्कूलो ने भाग लिया समाज की मुफ्त डिस्पेंसरी के भवन के साथ ही नेत्र चिकित्सालय के भवन का शिलान्यास किया गया। २५ बिस्तरो के हस्पताल के लिए २ लाख रुपये व्यय करने की योजना बनाई गई। सेठी परिवार की ओर से प्रीति भोज दिया गया।

—सुदर्शन सेठी मन्त्री

—

आर्य प्रतिनिधि सभा आन्ध्र प्रदेश का निर्वाचन

हैदराबाद ३१ अक्तूबर आर्य प्रतिनिधि सभा आन्ध्र प्रदेश की एक सूचना मे बताया गया है कि रविवार दिनांक २६ अक्तूबर ८० को आर्य समाज जडचर्ला जिला महबूबनगर मे सभा की वार्षिक साधारण सभा के अधिवेशन मे सभा के पदाधिकारियो एवं अन्तरंग सदस्यो का निर्वाचन श्री रामचन्द्रराव जी कल्याणी प्रधान सभा की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ

निर्वाचन से पूर्व एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया कि आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य दक्षिण आज से आर्य प्रतिनिधि सभा आन्ध्र प्रदेश कहलाएगी। सभा द्वारा आर्य्रावर्त ७४ समाजो के १८९ प्रतिनिधियो मे से उपस्थित १६० प्रतिनिधियो ने इस प्रस्ताव को सर्वसम्मति से पारित किया। निर्वाचन के अनुसार श्रीरामचन्द्र राव जी कल्याणी प्रचण्ड बहुमत से प्रधान और डा विजयवीर जी विद्यालंकार सर्व सम्मति से निर्विरोध मन्त्री निर्वाचित हुए उपप्रधान श्री देवेन्द्रनाथ जी मनोज श्री क श्री गंगाधर जी तथा श्री गंगारामजी एडवोकेट के नाम स्वीकार किए गए। सदन ने उक्त पांचो अधिकारियो को अधिकार दिया कि शेष सभी अधिकारियो अन्तरंग सभासदो तथा अन्य सभाओ के अधिकारियो एवं सदस्यो का चयन करें। तदनुसार श्री माणिकराव जी आर्य श्री के पुरुषोत्तम रेड्डी जी श्री वी नागमल्लापा जी उपमन्त्री श्री वी किशनलाल जी कोषाध्यक्ष तथा श्री प मदन मोहन जी विद्यासागर को पुस्तकाध्यक्ष घोषित किया गया।

—मन्त्री

हा! स्वामी व्रतानन्द जी महाराज

आर्ष गुरुकुल चित्तौड़गढ के संस्थापक गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक स्वामी व्रतानन्द जी महाराज अपने पार्थिव शरीर को ११ १० ८० को छोड़कर हमारे मध्य से चले गये किन्तु उनका यश शरीर सदा जीवित रहेगा। स्वामी व्रतानन्द जी के चरणो मे बैठकर मुझे भी पांच वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला। उनके दृढ़ संकल्पो को देखकर कोई भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर महर्षि स्वामी दयानन्द की इच्छानुसार भारत की वीर भूमि चित्तौड़गढ मे संवत १९८९ मे आर्ष गुरुकुल की स्थापना की और अपनी कार्यकुशलता ब्रह्मचर्य प्रभाव एवं तपस्या से उन्होंने गुरुकुल को सफलता पूर्वक चलाया। स्वामी जी ने गुरुकुल मे वेदो के विद्वानो को बुलाकर इस प्रकार के विद्वान तैयार किए जिन्हें शास्त्र मर्मज्ञ कहा जा सकता है।

स्वामी जी ने गुरुकुल में सत्यार्थ प्रकाश में लिखे स्वामी दयानन्द के इस वाक्य के अनुसार कि सबको तुल्य वस्त्र खान पान आसन दिए जाएं चाहे वह राजकुमार व राजकुमारी हो चाहे दरिद्र की सन्तान हो सबको तपस्वी होना चाहिए ब्रह्मचारियो के लिए पक्षपात रहित व्यवस्था स्थापित की। ईश्वर मे दृढ़ विश्वास के कारण गुरुकुल के लिए जब कभी भी उन्होंने सहयोग की अपील की वह पूरी हुई। उनके पीछे भी आर्य जनो का कर्त्तव्य है कि अपनी सन्तानो को गुरुकुल मे भेजें तथा अपना सहयोग एवं प्रेम गुरुकुल के प्रति बनाए रखें जिस से स्वामी जी द्वारा लगाया गया यह गुरुकुल रूपी कल्पवृक्ष सदा हरा भरा रहे।

—प्रकाशचन्द्र वेदालंकार दिल्ली

—

शुद्धि समाचार

भारतीय हिन्दु शुद्धि सभा के उपदेशक ठा० अमरसिंह चौहान श्री हतराज रीशान आर्य एवं श्री अमरतलाल नागर के प्रयत्न के फलस्वरूप आर्य समाज रजेन्द्र नगर के रजत जयन्ती उत्सव पर २१२ व्यक्तियों ने हिन्दु धर्म की दीक्षा ली। शुद्धि संस्कार प० रामप्रसाद मिश्र बरेली तथा श्री प० धर्मवीर ब्रह्मचारी ने शुद्धि पद्धति के अनुसार शपथ दिलाकर सम्पन्न कराया। इस अवसर पर कई विद्वानों के उपदेश हुये—

नाम निम्न प्रकार परिवर्तित किये गये—

श्रीमती जहवादी देवी का श्रीमती राजकुमारी देवी

श्री नत्थूखां का नत्थूसिंह

श्रीमती शरीफन का श्रीमती मुन्नी

श्री साहबजादी का सुमित्रा

श्री आलमखां

श्री द राखा का

श्री इदाखा का

श्री भरेखा का श्री

श्रीमती अनवरी का श्रीमती सावित्री

श्रीमती सलीमन का श्रीमती सुखदेवी

श्री भवरखा का भवरसिंह

१ श्री रामुद्दीन का श्री राजवीर सिंह

श्री मसीह चरण का श्री मायेराम

श्री वल्ल खा का श्री कल्याणसिंह

२ श्री मद्दु मसीह का श्री महेंसिंह

श्री दिलावरखा का श्री दिलावरसिंह

३ श्री लाजर मसीह का श्री लक्ष्मन

श्री इसराखा का श्री इन्द्रपालसिंह

इसी प्रकार से अन्य सभी के नाम परिवर्तित किये गये।

द्वारकानाथ सहगल
मन्त्री

दान-दाताओं से सहयोग की अपील

दयानन्द बाल सदन अजमेर (पूर्व नाम दयानन्द अनाथालय अजमेर) अनाथ निराश्रित परित्यक्त उपेक्षित बालक बालिकाओं के भरण पोषण एवं शिक्षित कर उन्हें राष्ट्र का उपयोगी नागरिक बनाने वाली देश की पुरानी प्रसिद्ध एवं बड़ी (१८९५ में संस्थापित) संस्था है। अब तक इस संस्था से ६००० बालक तथा ७००० बालिकाएं पालित पोषित एवं शिक्षित होकर समाज के उपयोगी नागरिक बन चुके हैं।

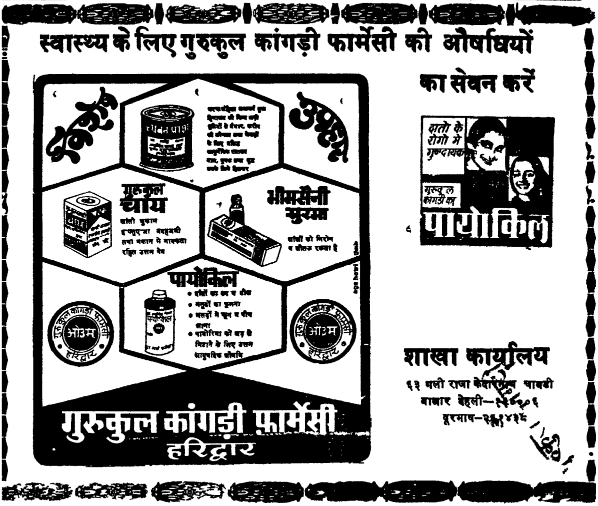
वर्तमान में इस बाल सदन (अनाथालय) में १२० बालक-बालिकाएं हैं। जो पहली से लेकर बी० ए० तक की विभिन्न कक्षाओं में पढ़ रहे हैं।

आज के इस घोर महंगाई के युग में इतने बालक बालिकाओं के भरण पोषण और शिक्षण आदि में संस्था को कुछ कठिनाईयां आ रही हैं।

अतः उदार दान दाताओं एवं आर्य पुरुषों से अपील की जाती है कि वे हर्ष के अवसरों त्यौहारों तथा अन्य अवसरों पर बाल सदन को उदारतापूर्वक भोजन वस्त्र नकद बर्तन रजाईयां आदि रूप में सहयोग देकर कृतार्थ करें।

—मन्त्री

आर्य मर्यादा में विज्ञापन देकर लाभ उठाएं



श्री वीरेन्द्र जी सम्पादक तथा प्रकाशक द्वारा जयहिन्द प्रिंटिंग प्रेस जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय गुरुदत्त भवन चौक किशनपुरा जालन्धर से इसकी स्वामिनि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र जालन्धर

वार्षिक शुल्क १५) वर्ष १२, अंक ४५ १६ मार्गशीर्ष सम्वत् २०३७ तदनुसार ३० नवम्बर १९८० का अंक दयानन्दाब्द १५६

धर्मवीर पंडित लेखराम जी की जीवन झांकी



जन्म —८ चैत्र सम्वत १९१५ वि०।

१ पिता का नाम महता तारा सिंह।

२ प्रारम्भिक शिक्षा—सय्यदपुर ग्राम में देहाती मदरसे में ?

३ देहाती मदरसे के मुख्य शिक्षक—मुन्शी तुलसी दास जी।

४ पुलिस में भर्ती हुए १७ वर्ष की आयु में।

५ शिव मत तथा नवीन वेदान्त की ओर झुकाव १८७३ से १८८० ई० तक

६ स्वामी दयानन्द जी के सम्बन्ध में परिचय १८ ० ई० में मुन्शी अलख धारी जी की पुस्तकों में से प्राप्त हुआ।

७ महर्षि के दर्शनार्थ अवकाश ग्रहण—५ मई १८८० ई० से एक मास तक।

८ महर्षि जी के दर्शनार्थ प्रस्थान ११ मई १८८० ई० को अजमेर के लिए चल दिए।

९ महर्षि जी के दर्शन तथा उनसे वार्तालाप तथा संशय निवृत्ति—१७ मई १८८० ई० स्थान सेठ फतहमल जी की वाटिका अजमेर।

१० पेशावर में आर्य समाज की स्थापना सम्वत १९३७ वि० के अन्तिम भाग में (भाई रूपजी की धर्मशाला में)।

११ धर्मोपदेश का प्रकाशन सन् १८८१ ई० में

१२ महर्षि से दो पत्र प्राप्त—सन् १८ २ ई० में

१३ मिर्जा गुलाम अहमद जी की पुस्तकें बुराहीन अहमदिया सन १८८३ ई० में पढ़ने को मिली।

१४ जम्मू के ठाकुरदास को धर्म से पतित होने से बचाना सन १८८३ ई० में तीन बार बार अवकाश लेकर जम्मू जाकर उसे समझाते रहे और सफलता प्राप्त की

१५ बुराहीन अहमदिया का उत्तर लिखना प्रारम्भ य समय पेशावर के रजिस्टर में ही लिखना प्रारम्भ कर दिया।

१६ निवेद वेदभाष्य पुस्तक लिखी—सन् १८८३ ई० में।

१७ सेवा से मुक्त होकर सब प्रथम उत्सव पर लेखबद्ध व्याख्यान पाठ लिखी आर्य समाज के वार्षिक उत्सव में सम्मिलित हुए तथा अपना लेखबद्ध व्याख्यान आर्य धर्म के आलमगीर होने के सबूत और उसके आइन्दा तरक्की के निशान मजबूत पर दिया।

१८ मिर्जा गुलाम अहमद को शास्त्रार्थ का चैलेंज १ अक्तूबर १८८४ ई० में विज्ञापन भी छपवाया।

१९ मिर्जा जी से पत्र व्यवहार—३ अप्रैल १८८१ ई से ५ अगस्त ८१ तक।

२० मिर्जा जी के मुकाबले कोठ में अगस्त १८८५ ई०।

२१ कादियां में आर्य समाज की स्थापना सितम्बर या अक्तूबर १८८१ ई०।

२२ कादियां के विष्णुदास को पतित होने से बचाना—४ दिसम्बर १८८५ ई

२३ ऋषि दयानन्द जी की जीवनी लिखने का निश्चय—प्रथम जुलाई १८८८ ई०।

२४ आर्य गजट के सम्पादक पद का त्याग—नवम्बर १ ८ ई

२५ अजमेर से वैदिक विजय पत्र प्रकाशित करवाया सन १८८९ ई

२६ नकोदर में आर्य समाज की स्थापना—सितम्बर १ ९ ई०

२७ लाला टी० एस० वास्वाना पर पण्डित जी के व्याख्यानों का प्रभाव—ज्येष्ठ १९४८ वि०

२८ दीवान सुखराम तथा उनके परिवार को पतित होने से बचाया—ज्येष्ठ १९४८ वि०। (शेष पृष्ठ ७ पर)

धर्मवीर पं. लेखराम

ले०—अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी की लेखनी से

ॐ

तहसील चकवाल जिला झेलम के एक अप्रसिद्ध गांव में जिसका नाम सैयदपुर है ८ चैत्र सम्वत् १९१५ विक्रमी शुक्रवार के दिन एक मुहियाल ब्राह्मण के घर एक लड़का उत्पन्न हुआ। उस समय कौन कह सकता था कि इस छोटे से बालक के भीतर किस किस प्रकार की शक्तियां वर्तमान हैं। पांचवें वर्ष फारसी पाठशाला में यह बालक पढ़ने के लिए बैठाया गया। माता पिता ने इसका नाम लेखराम रखा। १५ वर्ष की आयु तक उस बालक तथा अन्य बालकों के बीच इस बात के सिवाय कोई विशेषता नहीं थी कि लेखराम बड़ा चतुर और बुद्धिमान विद्यार्थी था। हां एक विशेषता ऐसी थी जिस पर उस समय के सयाने भी चकित थे। लेखराम में एक विशेष दृढ़ता थी जो हठ की सीमा तक पहुंची हुई समझी जाती थी। एक बार सात आठ वर्ष की आयु में पाठशाला में प्यास लगी। घर जाने की छुट्टी मांगी। मौलवी साहब ने कहा यहीं पानी पी लो। लेखराम ने उस समय तक पानी न पिया—जब तक कि वह घर न पहुंच गया। १५ वर्ष की आयु के बाद पण्डित लेखराम अपने चाचा गण्डाराम जी के पास पुलिस का काम सीखने चले गये।

इस बीच में बूढ़े सिख भाई की संगति में जो उनके चाचा का मातहत था प्रातःकाल उठ स्नान कर गुरमुखी अक्षरों में छपी गीता का पाठ किया करते थे उस सिख की संगत में उन्होंने समाधि लगानी आरम्भ कर दी। एक दिन की चर्चा करते हुए उनके चाचा बतलाते हैं कि समाधि की अवस्था में ऐसे लीन हो गये कि चारपाई से गिर पड़े और फिर भी समाधि भंग न हुई।

सन् १८७६ ई० के लगभग लेखराम पुलिस में नौकर होकर धीरे धीरे नक्शा-नवीस सारजण्ट बन गये। धर्म के लिये पहले ही से पिपासा थी। पेशावर में सन् १८८० ई० के लगभग उन्होंने काशी से गीता सटीक मंगवा ली थी और उसको पढ़ना एवं श्लोकों के अर्थ पर विचार करना अपनी दिनचर्या का अंग बना लिया था।

रोटी केवल एक समय अपने हाथ से बनाकर खाते और कृष्ण कृष्ण की जप किया करते। उसी सन् में जबकि उनकी आयु २० या २१ वर्ष की थी माता पिता ने विवाह के लिए बल दिया। सम्बन्ध पहले से ही हो चुका था परन्तु पण्डित लेखराम की धुन किसी और ओर लगी हुई थी। विवाह की चर्चा आते ही नौकरी छोड़ मथुरा वृन्दावन की ओर जाने को उद्यत हो गये। पत्रों द्वारा सम्बन्धियों ने बहुतेरा समझाया परन्तु मोक्ष प्राप्ति की इच्छा अधिक बढ़ती गई।

अन्त में पण्डित लेखराम के चाचा अपने पास से समझाने आए उन्हें उत्तर में लेखराम ने एक दृष्टान्त दिया। दृष्टान्त वही था जो प्रायः योग की पुस्तकों में प्रसिद्ध है—'एक राजा के पास एक नट तमाशा करने आया। राजा ने आज्ञा दी कि योगी का स्वांग रचो। ५००) पारितोषिक मिलेगा। नट ने ठीक योगी बन कर दिखाया परन्तु जिस समय समाधि छोड़ी उसी समय पारितोषिक की आशा के साथ हाथ पसारा। यह दृष्टान्त सुना कर पण्डित लेखराम ने कहा कि गृहस्थी में फंसकर मैं अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता। इनकी दृढ़ता के आगे घर वालों को सिर झुकाना पड़ा और उस कन्या का उनके छोटे भाई से विवाह किया गया। परन्तु २५वें वर्ष में पण्डित जी ने श्रीमती लक्ष्मीदेवी जी के साथ विवाह कर लिया।

> यह लेख अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी ने लिखा था जोकि १९०१ के अक्तूबर मास के आर्य मुसाफिर में उर्दू में प्रकाशित हुआ था। श्री प० रामगोपाल जी विद्यालंकार ने उसी लेख का हिन्दी अनुवाद किया था जो आर्य मर्यादा के पाठकों के सामने प्रकाशित किया जा रहा है।

इस घटना के बाद ही लाला बाबू कन्हैयालाल अलखधारी की पुस्तकों की अभिलाषा हुई। मुरादाबाद निवासी श्री इन्द्रमणि की पुस्तकों से वह पहले ही परिचित थे। अलखधारी की एक पुस्तक में स्वामी दयानन्द सरस्वती की प्रशंसा देखकर समाचार पत्रों द्वारा उनके लेखों की खोज की और उसी समय स्वामी जी की पुस्तकें मंगवा कर अध्ययन करना आरम्भ कर दिया। ज्यों ज्यों धर्म के मर्म अधिक मालूम होने लगे त्यों त्यों ही स्वामी जी महाराज के दर्शन के लिए उत्कण्ठा बढ़ने लगी। अन्त में सन् १८८१ ई० में आर्य समाज पेशावर स्थापित करके एक मास की छुट्टी लेकर स्वामी जी महाराज से मिलने चले गये। लाहौर अमृतसर, मेरठ इत्यादि आर्य समाजों में होते हुये अजमेर पहुंचे वहां भी स्वामीजी से वार्तालाप करके उन्होंने अपने कुछ संशय निवारण कर लिए। लौटते ही वैदिक धर्म की सच्चाईयों को फैलाने के लिए धर्मोपदेश नामक पत्र प्रकाशित किया और आर्य समाज पेशावर की उन्नति में तन मन धन से चेष्टा करने लगे।

नौकरी के समय में भी वह स्पष्ट-वक्तृत्व के लिए विख्यात थे और धार्मिक शास्त्रों में किसी मनुष्य का भी मान केवल इस विचार से कि वह उच्च पद पर विराजमान है, नहीं करते थे। नक्शाम की बुराईयों को रोकने के लिए एक महती सभा की गई जिसमें जिला के सब अफसर यहां तक कि सेना विभाग के कमाण्डिंग अफसर भी सम्मिलित हुए। प० लेखराम की इस सभा में वक्तृता सबको आश्चर्य में डालने वाली थी। फौजी लोगों पर इस व्याख्यान का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

प० लेखराम का मन पहले ही से बड़ा स्वतन्त्र था और इसीलिए पक्षपाती अफसरों से उनकी नहीं बनती थी। सन् १८८२ के आदि में उनकी बदली पेशावर से एक छोटे गांव में हो गई। परन्तु इस पर भी लेख भेजकर (धर्मोपदेश) को जारी रखा अन्त में पेशावर आर्य समाज ने इस पत्र के व्यय का भार उठाने की शक्ति न देख कर उसे बन्द करने का निश्चय किया। सन् १८८४ ई० के आदि में ही धर्म के प्रकाश ने प० लेखराम के हृदय को अधिकतर प्रकाशमान कर दिया और नौकरी से उन्हें बड़ी घृणा हो गई थी। मित्रों सम्बन्धियों और सरकारी अफसरों ने बहुत समझाया परन्तु पण्डित जी अपने विचार पर दृढ़ रहे और नवम्बर १८८४ ई० में त्याग पत्र देकर मनुष्यों के दासत्व से स्वतन्त्रता प्राप्त की।

नौकरी छोड़कर आर्य समाज में पहुंच कर कुछ काल तक संस्कृत व्याकरण में परिश्रम करते रहे। तत्पश्चात् आर्य गजट फिरोजपुर के सम्पादक हो गये। उर्दू का उस समय यही एक साप्ताहिक पत्र था। जिस योग्यता से प० लेखराम ने इसको चलाया उस समय की फाईल उन की योग्यता की साक्षी है। उनकी लेखनी सच्चाई के अनुमोदन में उसी समय से काम करने लग गई थी जब से कि वे आर्य समाज के सदस्य बने थे। सबसे पहली पुस्तक जिसने पण्डित लेखराम को समस्त आर्यावर्त में प्रसिद्ध कर दिया और आर्य सन्तान के मुरझाए हुए हृदय को आल्हादित बना दिया वह तकजीबे बुराहीने अहमदिया थी इसमें पण्डित जी ने मिर्जा गुलाम अहमद कादियानी के निरर्थक दावों का खण्डन करते हुए वैदिक धर्म की तुलना के साथ साथ वेद के महत्व को भारत निवासियों के हृदयों पर अंकित कर दिया। इसके बाद नुस्खा ए खब्ते अहमदिया जिहादकलअक्सर्यंन अल्मूखे तजकुल इत्यादि बड़ी बड़ी पुस्तकें प्रकाशित करने के अतिरिक्त बीसों छोटी छोटी पुस्तकें लिखीं जिनमें ईसाई, मुहम्मदी पौराणिक इत्यादि हर एक प्रश्नकर्ता के प्रश्नों का मुंहतोड़ उत्तर दिया। परन्तु इस बीच क्या पण्डित लेखराम घर पर बैठकर बैठे हुए किसी पुस्तकालय की सहायता से लेख का काम कर रहे थे? कदापि नहीं बल्कि बहुत पहले से भूखा फिरते हुए आर्यावर्त के नगरों, गांवों एवं कस्बों-कस्बों जंगलों में स्वामी दयानन्द के जीवन चरित्र की खोज करते फिरते थे और इसीलिए उन्होंने अलकूत नाम भी आर्य मुसाफिर रख छोड़ा था। अन्वेषण की अभिलाषा प० लेखराम को उस समय से ही थी जब से उनमें बुद्धि का प्रकाश हुआ।

यही कारण था कि जब महर्षि दयानन्द के जीवन चरित्र के लिए घटनाओं को एकत्रित करने की आवश्यकता पड़ी, तो सिवाय प० लेखराम के और कोई मनुष्य इस काम के योग्य नहीं समझा गया।

इस्लाम का अध्ययन आर्य मुसाफिर ने विशेष रीति से किया था और इसी लिए उनकी अधिक पुस्तकें इसी मत के सम्बन्ध में हैं।

मुहम्मदी प्रचारकों ने प्रायः और मिर्जा-गुलाम अहमद कादियानी ने विशेषतः पं० जी के जबरदस्त लेखों से घबराकर अपने मूर्ख भाईयों को उनके विरुद्ध भड़काया और स्वयं मुहम्मदी तलवार से उन्हें धमकाना आरम्भ किया। प० लेखराम की लेखनी को प्रत्येक उपाय से यहां तक कि न्यायालय तक पहुंच कर रोकने की चेष्टा की गई। अन्त में जब वे सब उद्योग निष्फल हुए तो एक पापी धोखेबाज मुसलमान के हाथ से उनका खून कराया गया और इस प्रकार आत्मा की प्रकृति के द्वारा दबाने का प्रयत्न किया गया। यद्यपि शरीर ठंडा हो गया और वे हाथ जिन्होंने युक्तियों की प्रबल चोटों से पक्षपातियों के हृदय चकनाचूर कर दिये थे सर्वदा के लिए जड़, लेखनी को पकड़ने में असमर्थ हो गये, परन्तु सच्चाई के चलते हुए काम को रोकने का किसको साहस है

पण्डित लेखराम बड़े परिश्रमी पुरुष थे जिसका प्रमाण इससे बढ़कर और क्या हो सकता है कि १२ वर्ष के समय में लगातार प्रचार करने एवं स्वामी दयानन्द के जीवन वृत्तान्त के सम्बन्ध में दो-तीन सहस्र पृष्ठों से अधिक सामग्री इकट्ठा करने के साथ ही उन्होंने बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित कीं जो कुल मिलाकर १००० पृष्ठों के लगभग होंगी इनके अतिरिक्त ८ या ९ सौ पृष्ठों के लगभग लिखकर छोड़ गए। धुन में लगे हुए दिन और रात एक कर देते थे। उनकी स्वतन्त्रता का वर्णन हम कर चुके हैं। धर्म विषय में कड़ा होने पर भी उनका हृदय बड़ा नर्म था।

(शेष पृष्ठ ७ पर)

सम्पादकीय—

अमर शहीद के भक्तों से

सन् १८८३ मे महर्षि दयानन्द परलोक सिधारे थे। धर्मवीर पंडित लेखराम जी आर्य पथिक को सन् १८८० मे उनके दर्शनो का गौरव प्राप्त हुआ था। इसे उनका या आर्य समाज का सौभाग्य समझिए कि इस पहली भेंट मे ही उनके सभी संशय समाप्त हो गए और वह सदा के लिए आर्य समाज के हो गए थे।

तीन वर्षों मे उन पर महर्षि दयानन्द के कार्यों और उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का यह प्रभाव हुआ कि सन १८८४ में उन्होंने पुलिस की सर्विस छोड दी और वह सार्जन्ट लेखराम से प्रचारक लेखराम हो गये।

महर्षि दयानन्द के पश्चात् आर्य समाज के इतिहास में सन् १८८३ से सन् १८९० तक पण्डित गुरुदत्त जी विद्यार्थी का काल रहा और उनका ही बोलबाला था परन्तु सन् १८९० से सन १८९७ तक पंडित लेखराम का आर्य समाजो मे प्रभाव रहा और यह सात वर्ष आर्य समाज के इतिहास में लेखराम काल मे प्रसिद्ध है। ६ मार्च सन् १८९७ का उनके सिर पर शहादत का ताज रखा गया। संक्षेप में उन्हें केवल तेरह-चौदह वर्ष आर्य समाज का काम करने को मिले।

इस संक्षिप्त काल मे उन्होने जहा खोज करके और सर्वत्र घूम फिर कर महर्षि दयानन्द का विस्तृत जीवन चरित्र संकलित किया, वहा छोटी बडी कोई तैंतीस पुस्तकें उर्दू भाषा मे लिखी जिन्हे उनकी शहादत के पश्चात् महात्मा मुन्शीराम जी ने कुलियात ए आर्य मुसाफिर के नाम से प्रकाशित किया। इन सब पुस्तकों के अध्ययन से धर्मवीर पंडित जी के गहन अध्ययन और महान अनुसन्धान प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। उनमे प्राय पुस्तकें इस्लाम के सम्बन्ध मे हैं और उनमे भी बहुधा कादियां के मिर्जाइयो से सम्बन्ध रखती हैं। इस्लाम से टक्कर लेने वाले आर्य समाजियो मे ही नहीं प्रत्युत हिन्दू मात्र मे वह पहले लौह पुरुष थे।

उनके व्याख्यानो और रचनाओं का इस्लाम के प्रचार के कार्य पर बडा प्रभाव पडा। वह बडे निर्भीक लेखक और वक्ता थे।

जीवन भर प्रचारक और उपदेशक रहे। दिन रात आर्य समाज के प्रचार के लिए यात्रा में रहने के कारण उन्होने आर्य पथिक का नाम पाया जीवन निर्वाह के लिए केवल २५ रुपये वेतन लेते थे जो विवाह के पश्चात् तीस रुपये हो गये। गृहस्थ का सुख तो क्या पाना था। एक पुत्र उत्पन्न हुआ था वह भी उनके प्रचार कार्य की भेंट चढ गया। उनकी शहादत के पश्चात बीमा के दो सहस्र रुपये प्राप्त करके उनकी धर्म पत्नी ने गुरुकुल को दान द दिये थे। वह सर्वमेधी महापुरुष थे जिनके प्रभाव से आर्य समाज को चार चांद लगे।

इसे आश्चर्य की बात समझिये कि अमर शहीद के बलिदान के पच्चास वर्ष पश्चात सन् १९४७ अर्थात् देश विभाजन तक पजाब का आर्य समाज इतना शक्तिशाली होने पर भी उनका कहीं कोई स्मारक न स्थापित कर सका।

देश के विभाजन के पश्चात सभा के पुनर्गठन से लेकर अब तक के तैंतीस वर्षों मे भी यद्यपि उनके स्मारक के निर्माण के लिए बडी निष्ठा से विचार होता रहा किन्तु उसे क्रियान्वित करने का अवसर अब १० नवम्बर को मिल रहा है जबकि समूचा कादियां नगर मिल कर अपने यहा उनके भव्य स्मारक की स्थापना कर रहा है। इसलिए मेरी अपनी दृष्टि मे अमर शहीद के चरणो में अपनी श्रद्धा के प्रकाश का यह सबसे समुचित अवसर है। इसी कारण मैं उन सभी बन्धुओं से जो आर्य समाजी होने का दम भरते हैं यह प्रार्थना करूगा कि वह १० नवम्बर के दिन कादियां अवश्य पहुचें और कादियां वालो को विश्वास दिलाए कि अमर शहीद के स्मारक के निर्माण मे वे सब उनके साथ हैं।

इस अवसर पर एक और बात की ओर भी मैं अपने बन्धुओ का ध्यान आकर्षित करना चाहता हू और वह यह कि इस अवसर पर कादियां मैं जो शहीद आर्य सम्मेलन हो रहा है उसकी अध्यक्षता करने आन्ध्र प्रदेश के वह आर्य समाजी नेता पधार रहे हैं जो अपने काल के वैसे ही निर्भीक और बलिदानी नेता हैं जैसे अपने काल मे अमर शहीद पंडित जी थे। मेरा अभिप्राय श्री रामचन्द्र राव वन्दे मातरम से है। उनके सम्बन्ध मे कहा जाता है कि हैदराबाद मे आर्य समाज के सत्याग्रह से पहले वहा के हिन्दुओं के नागरिक अधिकारो की प्राप्ति के लिए एक आन्दोलन आरम्भ किया था जिस पर उन्हे निजामशाही की जेल मे २४ कोडो की सजा दी गई थी। निश्चय ही उनके दर्शनों उनके आदर्श जीवन तथा उनके प्रेरक प्रवचन से हम सबको प्रेरणा मिलेगी। इसलिए मैं पजाबके सब आर्य भाई बहनो से सानुरोध यह प्रार्थना करना चाहता हू कि वे कादियां पहुच कर प्रान्तीय आर्य सम्मेलन को सफल बनाए और अमर शहीद के चरणो मे अपनी श्रद्धाजलि को अर्पित करें।

—रामचन्द्र आर्य
सभा मन्त्री

धर्मानुरागी निर्भीक पं. लेखराम

आर्य समाज बांकीपुर बादशाही नगर के मन्त्री डा मुन्शीराम जी के मजहबी जनूनी यवनो से सावधान रहने की चर्चा करने पर भी पंडित जी ने उन्हे जो उत्तर दिया था वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है —पंडित जी ने कहा—मन्त्री जी। मृत्यु एक दिन अवश्य ही है किन्तु सच्चे धर्म के लिए शहीद होने के बराबर कोई दूसरी मृत्यु नहीं—तवारीख पढो और देखो कि इस जमाने के पर्दे पर जिन जिन लोगो ने अपने धर्म के लिए मरना दिया है उस कर्म का कैसा प्रभावशाली उत्तम परिणाम निकला है-बस इन यवनो के विषय मे अधिक उद्विग्न होने की कोई आवश्यकता नही। ऐसे तो ये लोग मुझको गालियां देते पत्थर फैंकते हमारी तसनीफ की हुई किताबें जलवावें और नाना प्रकार के कुटिल बर्ताव उत्पन्न करने की कुचेष्टा किया करते हैं परन्तु मैं इन पर कुछ ध्यान नही देता। हम लोगो को उचित है कि अपना कर्तव्य कर्म पालन करने मे किसी प्रकार की त्रुटि न दिखलावें। (जीवन चरित्र से उद्धृत)

एक और साथी चला गया

अमृतसर के श्री अमृतलाल चढ्ढा भी चले गए। मेरा उनके साथ बहुत पुराना सम्बन्ध था। अमृतसर मे आर्य समाज और हिन्दुओ के सन्दर्भ में हर प्रकार की गतिविधियो मे वह एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाया करते थे। अपने धर्म और अपनी जाति के लिए उन के दिल मे अथाह तडप थी। जब भी कोई ऐसा काम आ पडता जिसका आर्य समाज या हिन्दुओ के साथ कोई सम्बन्ध होता और उनकी सेवा की जरूरत होती तो वह तुरन्त मैदान मे कूद पडते।

वर्षों वह आर्य समाज बाजार श्रद्धानन्द अमृतसर के प्रधान रहे है आर्य प्रतिनिधिसभा पजाब के कोषाध्यक्ष भी रहे हैं। उसकी अन्तरंग सभा के सदस्य भी कई वर्ष रहे हैं। जनसंघ के साथ भी उनका गहरा सम्बन्ध रहा है। निष्कर्ष यह कि वह हर उस आन्दोलन मे सक्रिय भाग लिया करते थे जिसका सम्बन्ध हमारे धर्म, देश और समाज से था। गत कई वर्षों से वह मधुमेह के कारण बीमार चले आ रहे थे। अभी आठ दस दिन ही हुए जब मैं उन्हे देखने गया था। यह मालूम न था कि यह मेरी और उनकी अन्तिम भेंट होगी। लेकिन वही होती है जो प्रभु का स्वीकार होता है। उनके जाने का अभी समय तो न था। लेकिन जब मनुष्य के जाने का समय आ जाए तो उसे कोई रोक नही सकता।

उनके जाने से हिन्दू संस्थाओ को विशेषत आर्य समाज को जो हानि हुई है उसकी क्षति पूर्ति आसानी से न हो सकेगी। हम तो अब परम पिता परमात्मा से यही प्रार्थना कर सकते हैं कि दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करे और जो पीछे रह गए हैं उन्हे यह चोट सहन करने की शक्ति दे।

—वीरेन्द्र

धुन के धनी धर्मवीर पंडित लेखराम

ले० श्री प० ओम्प्रकाश आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष

धर्म की व्याख्या करना शायद इतना कठिन नहीं जितना धर्म के मर्म को समझकर तदानकूल उसे अपने आचरण मे ढालना। धर्म ईश्वरीय होता है और ईश्वर के समान ही सीमा रहित भी। इसीलिए धर्म को एक और सार्वकालिक माना गया है धर्मवीर प० लेखराम अपने शैशव काल से ही धर्म जिज्ञासु थे। उनके जीवन चरित्र के पढने मे पता चलता है कि प्रारम्भ मे कभी वे गीता भक्त बने और कभी अहमदशाहिम का पाठ करते रहे। गीता के साथ अपने जीवन को जोडा हो अथवा अहमदवाद का पाठ पढा हो दोनो अवस्थाओं मे आपने पूरी श्रद्धा भक्ति और सच्चे विश्वास का परिचय दिया। श्रद्धा और विश्वास मे कोई कमी न थी कमी केवल सच्चे ज्ञान की थी। जो न शिक्षा से दूर हो सकी और न किसी दूसरे उपाय से। अपितु वेद के पवित्र ज्ञान का प्रकाश करने वाले अपने समय के अलौकिक ईश्वरोपासक यतिवर दयानन्द से जब तक साक्षात नहीं हुआ तब तक कमी बराबर बनी रही ऋषिवर के साक्षात दर्शन से जिज्ञासु लेखराम का जो आनन्द मिला तथा शंकाओं की निवृत्ति हुई उसे वे जीवन भर कृतज्ञता पूर्वक स्मरण किया करते थे। वेद धर्म की सत्यता का पूर्ण विश्वास होने पर वे किस प्रकार उसका प्रचार किया करते थे और अपनी धुन के किस प्रकार धनी थे इसके सम्बन्ध मे इन्ही के समान वैदिक धर्म के दीवान और उस पर बलिदान होने वाले स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा लिखित आर्य पथिक के जीवन चरित्र की निम्नलिखित पंक्तियां ध्यान देने योग्य हैं —

१७ जनवरी से १२ फरवरी तक दानापुर बांकीपुर और पटना में ही काम किया। इन स्थानो मे व्याख्यान भी हुए किन्तु बडी मनोरंजक वह वृत्तान्त पत्रिका है जो डा० मुन्नीलाल शाह पटना आर्य समाज के सामयिक प्रधान ने मेरे पास भेजी थी। अत यह पत्रिका बहुत समाचार पत्रों तथा धर्मवीर आर्य पथिक के जीवन वृत्तान्तो मे छप चुकी है और मैं मुझे भी आगे चलकर इसमे लिखित विषयो पर अधिक प्रकाश डालना है अतएव उस वृत्तान्त पत्रिका को डाक्टर शाह के शब्दो मे ही मुद्रित कर देता हूं डाक्टर शाह लिखते है

जिन दिनों श्रीमान पण्डित लेखराम जी श्री १०८ श्रीमद्दयानन्द सरस्वती जी महाराज का जीवन वृत्तान्त संग्रह करते हुए दानापुर से बांकीपुर पधारे थे और इस दीन पुरुष के निज गृह पर आ विराजे उस समय यह पुरुष मैडिकल क्लास का विद्यार्थी और बांकीपुर आर्य समाज (बादशाही गंज) का मन्त्री था। श्रीमान पण्डित जी बांकीपुर मे लगभग ९ दिन के ठहरे इस बीच उनके मकाम से एक डाकट" समाचार समाज के नाम अनायास पहुंचा तार द्वारा समाज से जिज्ञासा की गई थी कि पण्डित जी जीवित हैं या नहीं? किसी दुर्जन यवन ने खबर भेजी थी कि पण्डित लेखराम मारे गए।

इस अपूर्व घटना का कारण मैंने पण्डित जी से पूछा पण्डित जी ने उत्तर मे यह कहा कि प्राय यवन लोग ऐसा ही अमंगल समाचार भेजा करते हैं। अस्तु तार का जवाब श्रीमान पण्डित जी के जीवित रहने का उसी क्षण भेजा गया। परन्तु मुझको उस दिन से यवनो के कुटिल बर्ताव का अशुभ ख्याल खटकने लगा।

दूसरे दिन पण्डित जी ने मुझको अधिक चिन्तित और उदासीन पाकर पूछा कि आप आज उद्विग्न देख पडते हैं उत्तर मे मैंने यही निवेदन किया कि महाराज ऐसा न हो कि किसी समय मे आपके ऊपर यवनों का आघात पहुंच जावे। आपको उचित है कि इस असभ्य मूर्ख कौम के लोगों से सोच विचार के बर्ताव रखना। पण्डित जी हंसकर कहने लगे मन्त्री जी। मृत्यु एक दिन अवश्य ही होनी है किन्तु सच्चे धर्म के लिए शहीद होने के बराबर कोई दूसरी मृत्यु नहीं—तवारीख पढो और देखो कि इस जमाने के पद पर जिन जिन लाखों ने अपने धर्म के लिए बलिदान दिया है उस कौम का कैसा प्रभावशाली उत्तम परिणाम निकला है—बस इन यवनो के विषय मे अधिक उद्विग्न होने की कोई आवश्यकता नहीं—ऐसे तो वे लोग मुझ को गालियां देते पत्थर फैंकते हमारी तसनीफ की हुई किताबें जलवाते जगह जगह यवन मत के पोल इन दो किताबों (तकजीब बुरा हीन अहमदिया या नुस्खे खब्त अहमदिया) के द्वारा खुल जाने से अभियोग खडा करवाने और नाना प्रकार के कुत्सित बर्ताव बराबर उत्पन्न करने की कुचेष्टा किया करते हैं परन्तु मैं इन पर कुछ ध्यान नहीं देता। हम लोगो को उचित है कि अपना कर्तव्य कर्म पालन करने में किसी प्रकार की त्रुटि न दिखलावें।

उत्तर मे पण्डित जी ने कहा—सोच रहा हूं कि स्वामी जी महाराज का जीवन चरित्र समाप्त कर मध्याह्न प्रकाश का फारसी तर्जुमा कर यवन लोगो के मुख्य प्रदेशो की ओर प्रस्थान करूं।

मैंने पुन पूछा कि मुख्य प्रदेशो से आपका क्या अभिप्राय है?

पण्डित जी ने जवाब दिया कि अफगानिस्तान परशिया अरेबिया मिश्र तुर्किस्तानादि देशों में भ्रमण कर वैदिक धर्म का प्रचार करना ही हमारा मुख्य अभिप्राय है।

मैंने पूछा—क्यों पण्डित जी बिना प्रतिनिधि की आज्ञा आप कैसे जाएंगे?

मन्त्री जी मैं प्रतिनिधि के अधीन होकर जाने की इच्छा नहीं करता वरन् स्वतन्त्रता के साथ उपदेश करना चाहता हूं?

पण्डित जी इन यवन देशों मे आप बिना प्रतिनिधि की सहायता के अपनी आजीविका किस प्रकार करेंगे?

मन्त्री जी मैं चिकित्सा द्वारा अपनी जीवन वृत्ति धारण करूंगा।

यह थ उस वीरवर के अरमान—जो अधूरे ही रह गये इसी प्रकार सितम्बर १८९४ का धर्म वीर जी का लिखा एक नोट भी स्वामी जी ने जीवन चरित्र मे छापा था जिससे पण्डित जी के हृदय के भाव विस्पष्ट हो जाते हैं। उस नोट मे वीरवर ने लिखा था —

समग्र भारतवर्ष को आर्य धर्म मे लाने के निम्न साधन हैं। यदि इनमे हम ईश्वर की कृपा से कृतकार्य हों तो अवश्य सब लोग सद्धर्म मे आ जावें।

प्रथम—विधवा विवाह या और कोई साधन जिससे भविष्य मे स्त्रियां मुसलमानी या ईसाई न हों।

द्वितीय—शुद्धिकरण जिससे सब मतों के अनुयायी वैदिक धर्म मे आ सकें।

तृतीय वेद प्रचार निधि स्थापित करना अर्थात उपदेशक तैयार करना।

चतुर्थ—बचपन का विवाह रोकना।

पंचम—पुस्तक प्रचार प्रत्येक भाषा मे और साईंस की वह बातें जो वेद धर्म के विरुद्ध हों उन पर विचार करना।

षष्ठ—साधु हों और उपदेशक बनकर वर्तमान साधु वर्ग का काम करें।

सप्तम—दान की व्यवस्था ठीक करना।

जीवन चरित्र के इन दोनो उद्धरणों से बलिदानी वीर के मनोभावों को समझना कठिन नहीं। वे कथनी के शूर न थे बल्कि जो कुछ कहते थे उससे अधिक कर दिखाते थे। उनका काम किसी का दिल दुखाना या अपमान करना न था अपितु वे मस्तिष्क की शुद्धि करना अवश्य चाहते थे। विचार और व्यवहार दोनो जब ठीक हो जाएं तभी सच्चा सुख प्राप्त होता है। जब से उन्हे वेद ज्ञान की सत्यता से आनन्द लाभ हुआ तभी से वे जी जान से सबको वेद ज्ञान का दान करने मे जुट गये। इस पवित्र काम को न पूरा कम रोक सका और न उसका विरोध सारा जीवन एक सच्चे ईश्वर विश्वासी निर्भीक लोकोपकारी महापुरुष के शुभ गुणों से भरपूर है। ऐसे तन्मयीन बलिदानी के अधूरे छोडे हुए काम को हम कहां तक पूरा कर रहे या कर पाए हैं इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

धर्मवीर पं. लेखराम जी के मनोभाव

ले०—श्री प० ओम्प्रकाश जी आर्य

टुकडे टुकडे कर दो मेरे न जरा इन्कार हो।
लब प मेरे धर्म वैदिक की सदा जयकार हो॥
जिस्म की मेरे बना दो बत्तीयां फिकर नहीं।
धर्म का हूं मैं पुजारी धर्म से ही प्यार हो॥
घर स ही निकला था मैं सर पै कफन बांध हुए।
सौंप दूं उसकी अमानत बेडा मेरा पार हो॥
है अमर यह आत्मा फिर खौफ मैं किसका करू।
तोप हो फांसी हो या कि खूनी तलवार हो॥
यह न समझो रायगां जाएगा यह मेरा लहू।
देखना हर घर के अन्दर वेद का प्रचार हो॥

—

श्रद्धा ज्ञान तथा कर्म की त्रिवेणी—

हुतात्मा पं. लेखराम आर्य मुसाफिर

ले० श्री उत्तमचन्द जी शरर पानीपत

रीति कालीन कवियों मे बिहारी का स्थान विशेष है उसने अपने मन्तव्यानुसार एक दोहे मे लिखा है कि प्रयाग मे जाकर स्नान करने की आवश्यकता नही यदि प्रयाग मे त्रिवेणी का स्नान अभीष्ट है तो मनि तीरथ हरि राधिका जहा पग पग होत प्रयाग कृष्ण और राधा के बीच मे स्नान कीजिये जहां पग पग पर प्रयाग स्नान का पुण्य होता है। कवि ने तो अपने दृष्टिकोण से गंगा यमुना तथा सरस्वती के रंगो को लेकर राधा के श्वेत कृष्ण के श्याम तथा पीताम्बर के पीत वर्ण का सामञ्जस्य किया है तत्कालीन परिस्थितियो में राधा कृष्ण की पत्नी अथवा प्रेमिका का रूप धारण कर चुकी थी जो नितान्त असत्य है पर इस विवाद मे न पडते हुए कवि के काव्य कौशल तथा कल्पना की उडान पर कौन सहृदय मुग्ध न होगा ? बिहारी ने नदियो के रंगों का मेल दिखाया है पर वास्तव मे प्रयाग स्नान तो श्रद्धा ज्ञान और कर्म की त्रिवेणी के स्नान को ही मानने को जी करता है यह उपर्युक्त अलंकार का आध्यात्मिक तथा वास्तविक रूप ही जानना चाहिए और इस त्रिवेणी का कोई सच्चे अर्थों मे साकार रूप से पुण्य स्थल बना है तो उसका नाम है पं० लेखराम। कर्म की यमुना तो उसमे तब से प्रवाहित थी जब वह पुलिस की नौकरी मे था ज्ञान की गंगा की आवश्यकता थी जो पूर्ण हुई तब जब यह यमुना रूप सलिला मार्ग मे ही ऋषि दयानन्द की ज्ञान सरिता से मिल गई। पं० लेखराम को ऋषि से मिलकर ज्ञान नेत्र प्राप्त हो गए बुद्धि उज्ज्वल हो गई सशय समाप्त हो गये बुझा हुआ दीपक एक जलते दीपक से मिलकर देदीप्यमान हो उठा और फिर श्रद्धा की सरस्वती से मिलाप तो स्वाभाविक ही था श्रद्धा के रस से आप्लावित हृदय लिए हुए बुद्धि के प्रकाश के पथ प्रदर्शन मे कर्मठ लेखराम जब चल पड़ा तो वहां तक जा पहुचा जहां से शायद फिर लौटने की आवश्यकता नही पड़ती।

यज्ञ भी तो तीन वस्तुओ की अपेक्षा रखता है समिधा घृत सामग्री तथा अग्नि। यहां समिधा कर्म है श्रद्धा उसे जलने मे सुविधा प्राप्त हो जाती है और ज्ञान की अग्नि कर्म के बन्धन को जलाकर यज्ञ को पूर्ण कर देती है। पं० लेखराम स्वभावत कर्मठ है जैसे उसने पूर्व जन्म से सीख रखा है कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समा— उसे कभी आलस्य नही था। वह रोगी है तो भी प्रचार कार्य मे व्यस्त है वह अभाव ग्रस्त है तो भी वेद प्रचार मे लग रहा है और तो और न तो उस कर्म क्षेत्र से अपने जीवन का मोह हटा सकता है और न अपने से भी अधिक प्रिय अपने पुत्र के जीवन का मोह जिस पुत्र मोह मे भारत का फौलादी इन्सान प्रताप भी एक बार विचलित हो गया था दयानन्द का वीर सैनिक उस दल दल का पार कर जाता है इस कर्मठता की तुलना किस से की जाए ? ज्ञान प्राप्ति मे नेत्र तो खोले दयानन्द की कृपा से और फिर मिल गया साथ आर्य मुसाफिर का सतत परिश्रम। जाने कितनी पुस्तको का अध्ययन किया और कितनी पुस्तक थोड़े से काल मे लिख डाली कुलियात आर्य मुसाफिर के पाठक शायद इस वृहद अध्ययन का कुछ अनुमान लगा सके। पं० लेखराम का तर्क लेखराम का ज्ञान तथा लेखराम को अपने मन्तव्य पर अगाध श्रद्धा विरोधियो को भी नतमस्तक होने पर विवश कर देता है। वह इंग्लिश भाषा से अनभिज्ञ पर दीवान था मत वैदिक धर्म के विरोधियो की अंग्रेजी पुस्तको को दूसरो से सुनकर उनका उत्तर तैयार करना तथा कोई पुस्तक उसकी आलोचना से बच नही पाती थी विरोधी शास्त्रार्थ मे उसके सम्मुख अवाक होने पर विवश हो जाते थे और डा० हजारी प्रसाद के शब्दो मे यदि पं० लेखराम को देखें तो विरोधी को उसके सम्मुख सिवाय पीठ झाड़कर चल देने के कोई रास्ता ही नही सूझता था और फिर श्रद्धा की तो उसके हृदय मे सीमा ही नही थी। हम जैसे लोग जो महर्षि दयानन्द के दर्शनो से वञ्चित होकर भी केवल उसको पढ़कर पागल हो बैठे तो जिस लेखराम ने उस महामहिम का साक्षात दर्शन किया उसकी श्रद्धा का क्या कहना ? जैसे आज भी उस की आत्मा कह रही है।

दो पर ो क्या जो हैरे अगर
दस हजार पर
परवाना करता सम्मा प
सारे निसार पर।

सचमुच लेखराम अपने पुत्र तथा स्वयं अपनी बलि देकर भी जैसे अभी तृप्त नही हो पाया था ऋषि दयानन्द के मिशन पर तन मन धन यश सब कुछ स्वाहा करके भी जैसे अभी और कुछ लुटाने के उसके अरमान रह गये पर वह क्या करता उसके पास और कुछ था ही नही अरमान पूरे नही हुये बलि देकर भी तो पूरे न हो पा तभी तो उसने अंतिम वाक्य अपनी पत्नी के सम्बन्ध मे नहीं पूज्य वृद्धा माता के सबध मे नही ऋषि के पवित्र मिशन के सबध मे आर्यों से यूं कहे आर्य समाज से तहरीर और तकरीर का काम बन्द न होने पावे। क्या आर्य भाई शहीद लेखराम के मन से रमे सुने मन्तव्य पर ध्यान दे पायेंगे?

—

अमर शहीद धर्मवीर

पं. लेखराम

ले०—श्री स गप ल जी पथिक आर्य समाज फोर्ट बम्बई

❋

ऋषि दयानन्द के जीवन की—की जिसने ताईद
और फिर खाकर छु ा पे मे हो गया अमर शहीद
वह पंडित लेखराम थ

धन धा य तिर अपण की अपनी भरपूर जवानी
दे गया जो इस बलिवेदी पर जीवन की कुर्बानी
काम लेख का बन्द न हो यह की जिसने ताकीद।
और फिर खाकर छुरा पट मे हो गया अमर शही"।
वह पंडित लेखर म थ

ऋषि कथा एकत्रित करने भारत भर मे घूमा
जहा ऋषि के चरण पड़ थे उस मिट्टी को चूमा।
लहू से फिर हस्ताक्षर करके गया हम रसीद
और फिर खाकर छुर पेट मे हो गया अमर शही"
वह पंडित लेखर म था।

वैदिक धर्म विरोधी को देता निर्भय हो टक्कर
वाणी जिसकी एटम बम थी और कलम बन्दूक।
पोपो पन्थाईयो की जिसने सदा उड़ाई नीद।
और फिर खाकर छुरा पेट मे हो गया अमर शही"
वह पंडित लेखर म था।

बच के रहेगा अब तो चारो वर्णो का वर्ण
निश्चय ही अब हो जाएगी नष्ट पाप की लंका।
पथिक यह भारत स्वर्ग बनेगा थी जिसकी उम्मीद
और फिर खाकर छुरा पेट मे हो गया अमर श ीद
वह पंडित लखराम थ ।

—

क्या आपने हस्ताक्षर कर दिए ?

राष्ट्रपति को पंजाब मे हिन्दी का सम्मानित स्थान दिलाने के लिए जो ज्ञापन देना है क्या उस पर आपने हस्ताक्षर कर दिए हैं ? यदि नही किए तो अपने नगर की किसी भी आर्य समाज मे जाकर वह ज्ञापन ले लें और उस पर हस्ताक्षर कर द

जिन फार्मों पर हस्ताक्षर हो गए है वह शीघ्र सभा कार्यालय मे भिजवा द।

— वीरेन्द्र

अमर शहीद पं. लेखराम साहित्यकार के रूप में

(ले श्री डा, भवानीलाल जी भारतीय एम ए पी एच डी)

आर्य समाज और वैदिक धर्म पर अपने-अपने प्राणों की आहुति दे देने वाले अमर शहीद प लेखराम का जन्म ८ चैत स १८१५ वि को सैयदपुर ग्राम मे हुआ। वे वाशिष्ठ्य गोत्र के सारस्वत ब्राह्मण थे साधारण विद्याभ्यास के अनन्तर वे पुलिस विभाग मे नौकर हुए। मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी के ग्रन्थो को पढने से इनकी रुचि ऋषि दयानन्द के सिद्धांतो की ओर हुई। तब वे ऋषि दयानन्द से साक्षात्कार करने अजमेर पहुचे। १७ मई १८८० को सेठ फतहमल की वाटिका मे महर्षि के दर्शन किये तथा उनसे अपनी शकाओ का समाधान किया। वहा से पेशावर लौट कर सक्रिय रूप से आर्य समाज के प्रचार कार्य मे जुट गये। आर्य समाज पेशावर से उन्होने धर्मोपदेशक नामक उर्दू मासिक पत्र निकाला। इसके सम्पादक वे स्वय बने। उन्ही दिनो कादियां निवासी मिर्जा गुलाम अहमद एक नवीन अहमदिया सम्प्रदाय का प्रचलन कर स्वय को पैगम्बर नाम से प्रसिद्ध कर रहे थे। उन्होने बुराहीन अहमदिया नामक एक पुस्तक भी लिखी थी। जिसके चौथ भाग मे आर्य समाज और उसके सिद्धांतों की समीक्षा की गई थी। लेखराम ने इस पुस्तक का तुरन्त उत्तर लिखना प्रारम्भ कर दिया। १८८७ जुलाई मे यह उत्तर तकजीब बुराहीन अहमदिया प्रथम भाग के नाम से प्रकाशित हो गया। इसी बीच मिर्जा ने ३६० पृष्ठों की एक अन्य पुस्तक सुरमा चश्म आरिया लिखी। इसका उत्तर पण्डित जी ने नुसखा खब्त अहमदिया के नाम से दिया।

१८८७ के प्रारम्भ मे प लेखराम को आर्य प्रतिनिधिसभा पजाब के उर्दू साप्ताहिक आर्य गजट का सम्पादक बनाया गया। यह फिरोजपुर से प्रकाशित होता था। लगभग २ वर्षों तक आप पाक्षिक ने इस पत्र का सम्पादन किया। जब प लेखराम दूसरी बार अजमेर पहुचे तो वहा के आर्यों की प्रेरणा कर वैदिक विजय पत्र नामक एक मासिक पत्र प्रकाशित कराया। उनकी 'जिहाद' नामक पुस्तक इसी मासिक मे धारावाह ही प्रकाशित हुई थी। विधवा विवाह के समर्थन में अपने नियोग नेमवान नामक पुस्तक लिखी। इसे मेरठ के रामचन्द्र वैश्य ने प्रकाशित किया था। १ जनवरी १८९० के सद्धर्म प्रचारक मे लाला मुन्शी-[illegible] इस पुस्तक की समालोचना लिखी [illegible] मावरी टी विलियम्स तथा देव समाज के प्रवर्तक प शिवनारायण अग्निहोत्री ने जब नियोग के विषय पर कुछ शकायें प्रस्तुत की तो पण्डितजी ने मसलए नियोग नामक पुस्तक लिखकर उनका समाधान किया। यह पुस्तक कुल्लियात आर्य मुसाफिर के २७९वें पृष्ठ स प्रारम्भ होती है।

जिस समय लेखराम जी हैदराबाद सिंध मे प्रचार कर रहे थे उस समय ही उन्होने क्रिश्चियन मत दर्पण नामक पुस्तक लिखने की तैयारी प्रारम्भ की तथा सृष्टिउत्पत्ति सम्बन्धी अपने प्रसिद्ध व्याख्यान को तारीख ए दुनिया के नाम से पुस्तक रूप मे तैयार किया। यह सितम्बर १८९१ मे प्रकाशित हुआ तथा इस की समालोचना २९ भाद्रपद स १९४८ वि के सद्धर्म प्रचारक मे हुई। रिसाला जिहाद जो वैदिक विजय पत्र मे प्रकाशित हुआ था अब पृथक पुस्तकाकारमे भी छप गया और उसकी समालोचना १४ मई १८९२ के सद्धर्म प्रचारक मे लाला मुन्शीराम द्वारा लिखी गई। क्रिश्चियन मत दर्पण मेरठ के विद्या दर्पण प्रैस मे १८९२ मे छपी। इसकी समालोचना १२ सितम्बर १८९२ के सद्धर्म प्रचारक में प्रकाशित हुई।

जब प लेखराम ने अपने जोधपुर प्रवास मे स्वामी दयानन्द के शिष्य प भीमसेन को मास के विषय मे दृढता दिखाने के लिए गए। उन्हें विवश किया तो अर्थलोलुप भीमसेन को भी पण्डित जी की आज्ञा शिरोधार्य करने के लिए मजबूर होना पडा। जोधपुर से लौट कर प भीमसेन शर्मा ने प लेख राम की पुस्तक तारीख ए दुनिया का हिन्दी रूपान्तर ऐतिहासिक निरीक्षण के नाम से प्रकाशित किया। जिस समय आर्य समाज मे मास भक्षण पर विवाद चल रहा था पण्डित जी ने इस विषय को लेकर एक पुस्तक लिखी आर्य समाज मे शान्ति फैलाने का उपाय और रामचन्द्र जी का सच्चा दर्शन। इस पुस्तक की समीक्षा ६ कार्तिक सवत १९५० के सद्धर्म प्रचारक मे प्रकाशित हुई। १८९३ मे उन्होने पुनर्जन्म की सिद्धि मे सबूत ए तनासुख नामक पुस्तक लिखी। इस्लाम के मैकदों की मुखालिफत में [illegible] एक अन्य पुस्तक भी लिखी थी 'हुज्जतुल इस्लाम' के नाम में छपी। शिव नारायण प्रसाद कायस्थ की एक पुस्तक जो सम्भवत ऋषि दयानन्द के सिद्धांतो की आलोचना में लिखी गई थी की समीक्षा में पण्डित जी ने 'साप को पांव नहीं' शीर्षक पुस्तक लिखी। यह कुल्लियात आर्य मुसाफिर के पृष्ठ १९४ से प्रारम्भ होती है। लेखराम जी के सभी ग्रन्थों की सख्या ३३ है। वे आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब की प्रेरणा से ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र भी लिख रहे थे जो उनकी असामयिक मृत्यु के कारण अधूरा ही रह गया और जिसको कालान्तर मे मास्टर आत्माराम अमृतसरी ने पूर्ण किया। यहां प लेखराम रचित ग्रन्थो की सूची प्रस्तुत की जा रही है। उनके समग्र ग्रन्थो की सख्या ३३ है।

—कुल्लियाते आर्य मुसाफिर—
(हिस्सा अव्वल)

१ तकजीब बुराहीन अहमदिया जिल्द अव्वल।
२ तकजीब बुराहीन अहमदिया जिल्द दोयम।
३ नुस्खए खब्त अहमदिया।
४ इन्तखाब अखबारात अहमदिया।
५ रिसाला जेहाद।
६ इजहारे हक।
७ हुज्जतेइस इस्लाम। तुहफतुल हिन्द का उत्तर।
८ राहे निजात।
९ सदाकत धर्म आरिया।
१० [illegible]।
११ [illegible]।

—कुल्लियाते आर्य मुसाफिर—
(हिस्सा दोयम)

१२ [illegible]।
१३ देवी भागवत परीक्षा।
१४ मूर्ति प्रकाश।
१५ इश्तहारात-जुवाब व जवाब के उत्तर में।
१६ साप को पांव नही।
१७ रामचन्द्र जी का सच्चा दर्शन।
१८ सदाकत इल्हाम। सदाकत अहवाल ६ जिल्दों में।
१९ सच्चे धर्म की शहादत। तहकीक बाबे हुक का उत्तर।
२० नियोग की असली तारीफ।
२१ सदाकत ऋग्वेद। माहियत ऋग्वेद का उत्तर।
२२ मसलए नियोग।
२३ क्रिश्चियन मत दर्पण-इ जील की हकीकत आइना इजील का उत्तर।
२४ सदाकत असूल व तालीम आर्य समाज। (हिस्सा दोयम)
२५ तारीखे दुनिया दो जिल्द।
२६ सबूते तनासुख।
२७ श्री कृष्ण का जीवन चरित्र।
२८ स्त्री शिक्षा।
२९ स्त्री शिक्षा के मसायल।
३० आर्य हिन्दू नमस्ते की तहकीकात।
३१ मुर्दा जरूर जलाना चाहिये।
३२ पतित उद्धरण।
३३ धर्म प्रचार।

बन्दगी तू कर

ले०—श्री वीरेन्द्र-कुलदीप 'साथी' जालन्धर

तर्ज—बीत जाता पल—

बन्दगी तू कर ओ बन्दे, छोड दे तू छल-ओ बन्दे रे—
तभी तो ये होगा तेरा जीवन सफल—बन्दगी तू कर—
१ खाली हाथ आया था तू खाली हाथ जाएगा
बस तेरा कर्म ही-तेरे सग जाएगा—हो रे
सुकर्म कमाले तू इस जग मे,
वेद प्रचार कर पग २ मे—ओ बन्दे रे—
वेदो के बनाए हुए रास्ते पर चल-बन्दगी तू कर—
२ बीत गया दिन फिर कभी नही आएगा—
चुग गई खेत चिडिया तो पछताएगा—ओ—
जीवन मिला है न इसको गवा-प्रभु जी की शरण मे ध्यान लगा-
ओ मनवा रे-मिला अनमोल जीवन-जाए न निष्फल—
३ दुख में तो तू भी बन्दे प्रभु नाम लेता है
आवे जब सुख तो उसे भुला देता है—हो—
सुख में अगर प्राणी सिमरन करे
दुख फिर काहे को आन पडे-ओ 'साथी' रे—
प्रभु नाम जप ले तू हर घडी हर पल
बन्दगी तू कर-ओ बन्दे छोड दे तू छल —

—

ऋषि दयानन्द की जीवनी : कुछ तथ्य

लेखक — श्री डा भवानीलाल जी भारतीय

(गतांक से आगे)

थियोसोफिस्ट मे प्रकाशित यह आत्म वृत्तान्त पूना प्रवचन में प्रदत्त आत्म कथन से भी संक्षिप्त हैं तथापि लिखित रूप में भेजे जाने तथा समकालीन पत्र मे प्रकाशित होने के कारण इस वृत्त की प्रामाणिकता निर्विवाद है।

३० अक्तूबर १८८३ को दयानन्द के परलोकगमन के समय तक उनके भक्तो एवं अनुयायियो का ध्यान अपने आचार्य के विस्तृत जीवन लेखन की ओर नही गया था यह खेदजनक तथ्य है। यह अवश्य है कि फर्रूखाबाद निवासी एक महाराष्ट्रीय सज्जन गोपाल राव हरि पुणताकर ने स्वामी जी के जीवनकाल मे ही उनका जीवन वृत्त दयानन्द दिग्विजय शीर्षक से लिखना आरम्भ किया तथा उसके दो खण्ड स्वामीजी के सामने ही प्रकाशित भी हुए थे।१ स्वामी दयानन्द के दिवंगत होने के लगभग पांच वर्ष पश्चात् आर्य प्रतिनिधिसभा पंजाब ने एक प्रस्ताव स्वीकार कर आर्यसमाज के प्रवर्तक का विशद एवं प्रामाणिक जीवन चरित लिखाने का निश्चय किया।२ इस महद् कार्य को सम्पन्न करने का दायित्व सभा ने पं लेखराम आर्य मुसाफिर जैसे अध्यवसायशील अन्वेषण प्रिय तथा स्वामी जी के प्रति भक्ति भावापन्न पुरुष को सौंपा। यह निश्चित है कि यदि पं लेखराम एक हत्यारे के घातक प्रहार के शिकार होकर अकाल में ही काल कवलित न हो गये होते तो उनकी शक्तिशाली लेखनी से स्वामी दयानन्द का एक सर्वांग सुन्दर तथा प्रामाणिक जीवन चरित अवश्य प्रसूत हो जाता। इस प्रकार जीवनी लेखन का यह प्रथम सुव्यवस्थित प्रयास अपूर्ण ही रह गया परन्तु दयानन्द की जीवनी के सम्बन्ध मे एकत्रित की गई इस सम्पूर्ण सामग्री को पंजाब की आर्यप्रतिनिधिसभा के तत्कालीन प्रधान लाला मुन्शीराम ने एक अन्य विद्वान् पं आत्माराम अमृतसरी के हवाले किया जिन्होंने पं लेखराम द्वारा सकलित सामग्री को सुव्यवस्थित रूप देकर लेखनी बद्ध किया तथापि लेखराम के नाम से प्रकाशित स्वामी दयानन्द का यह प्रथम उर्दू जीवन चरित सामग्री का सकलन मात्र ही था साहित्यिक जीवनी के तत्व तो उसमें नगण्य ही थे।

आर्यसमाज के अनुयायियो के लिए तो दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित एक अद्भुत प्रेरणा स्रोत था ही, किन्तु यहां यह जानना भी आवश्यक है कि वैदिक धर्म के अद्वितीय पुरस्कर्ता तथा अतीतकालीन आर्य संस्कृति के अनन्य व्याख्याता इस महापुरुष की दैनन्दिन जीवन घटनाओं के प्रति विदेशियो ने भी कम रुचि प्रदर्शित नहीं की थी। तभी तो हम देखते हैं कि यूरोपीय भाषाओं का एक शब्द भी न जानने वाले 'तथा पाश्चात्य चिन्तन से लेशमात्र भी परिचय न रखने वाले इस व्यक्ति के अनन्य विचारो तथा व्यापक प्रभाव को परिलक्षित कर भौगोलिक दृष्टि से सहस्रो मील दूर रह कर भी मानसिक दृष्टि से भारतीय जीवन पद्धति एवं चिन्ताधारा से निकटता अनुभव करने वाले वैदिक साहित्य भाषा विज्ञान तथा भारतीय तत्व विद्या के पाश्चात्य विपश्चितो मे मूर्धन्य प्रो मैक्स मूलर जैसा विद्वान भी दयानन्द की जीवनी पर कुछ लिखने के लिये लालायित हो उठा।

स्वामीजी के निधन के एक वर्ष पश्चात् ही उसने इंग्लैंड से प्रकाशित होने वाले एक मासिक पत्र मे उनके विषय में एक निबन्ध प्रकाशित कराया।३ पुनः इसी निबन्ध को उन्होने अपने Biographical Essays शीर्षक ग्रन्थ मे उद्धृत किया।४ मैक्समूलर लिखित जीवनी पर निबन्ध भारतीय पुनर्जागरण के सूत्रधार उन्नीसवीं शताब्दी के उन महापुरुषो के रेखा चित्र प्रस्तुत करते हैं जिनके धर्म शोधन समाज सस्कार तथा राष्ट्रहित विषयक कार्यों ने इस देश मे महती जागृति उत्पन्न की थी। कहना नही होगा कि राम मोहन राय केशवचन्द्र सेन तथा राम कृष्ण परम हंस की भांति दयानन्द सरस्वती के जीवनादर्शों का मूल्यांकन करते हुए मैक्समूलर ने इन सभी समानधर्मा युग पुरुषो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया था। उसके अनुसार दयानन्द सरस्वती के जीवनादर्शों का मूल्यांकन करते हुए मैक्समूलर ने इन सभी समान धर्मा युग पुरुषो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया था। उसके अनुसार दयानन्द सरस्वती द्वारा आर्यसमाज की स्थापना वैदिक धर्म को पुनरुज्जीवित करने का एक प्रयास था।५

---

१ द्रष्टव्य इन पंक्तियो के लेखक द्वारा सम्पादित दयानन्द दिग्विजयार्क प्रकाशक-आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली।

२, यह प्रस्ताव अन्तरंग सभा की १ जुलाई १८८८ की अन्तरंग सभा की बैठक मे स्वीकृत हुआ था।

३ यह निबन्ध लन्दन से प्रकाशित होने वाले पाल माल गजट के जनवरी (अथवा फरवरी) १८८४ के अंक में छपा।

४ Ram Mohan to Ram Rrishna (प्रकाशक सुशील एण्ड क कलकत्ता) नामक पुस्तक जो प्रो मैक्समूलर के Biographical Essays का ही संक्षिप्त रूपान्तर है मे भी यह निबन्ध उद्धृत किया गया है।

५ This movement (The Arya Samaj) which was inaugurated by another man of the name of Dayanand Sarswati was proclaimed as the revival of ancient Vedic Religion

—

अमर शहीद पं. लेखराम जी के चरणों में श्रद्धांजली

ले०—श्री राम प्रकाश गौरव मा स बस्ती गुजा जालन्धर

कौम की बिगडी बनाने आए प लेखराम

कौम की बिगडी बनाने आए प लेखराम।
वेद की ज्योति जलाने आये प लेखराम॥
जा रहे थे अपने भाई दूसरो की गोद मे
उनको सीने से लगाने आये प लेखराम॥
आखिरी सांसों मे बच्चे को तडपता छोड कर।
सैकडो बन्धु बचाने आये प लेखराम॥
तुम ने इक जादू भरा तकरीर भी थी ला मिसाल।
देश की अजमत बढाने आये प लेखराम॥
मेरे मुरशद मेरे रहबर तुम को है मेरा सलाम।
पीने को जाम शहादत आये प लेखराम॥
ऐ शहीद कौम तुम पर है फिदा हर नौजवान।
जिन्दाबाद ऐ लेखराम जिन्दाबाद ऐ लेखराम॥

(प्रथम पृष्ठ का शेष)

२९ नाहन में आर्य समाज की स्थापना—दिसम्बर १८९१ ई०।
३० सत्यार्थ प्रकाश का उर्दू अनुवाद करने की आज्ञा मांगना—अप्रैल १८९३ ई०।
३१ गृहस्थाश्रम में प्रवेश—३६वीं वर्ष के प्रारम्भ मे (संवत १९५० वि०।
३२ धर्म पत्नी का नाम—लक्ष्मीदेवी।
३३ दीन महम्मद और महम्मद मुस्तफा की शुद्धि—जुलाई १८९४ ई०।
३४ राधा स्वामी वैदिक धर्मी बना-दिसम्बर १८९४ ई०
३५ सिक्ख रिसाले के सवारो को मुसलमान बनने से बचाया १८९५ ई०।
३६ पुत्र रत्न की प्राप्ति—१८ मई १८९५ ई०।
३७ छोटे भाई तोताराम की मृत्यु—१२ जून १८९५ ई०।
३८ पिता जी (महता तारासिंह) की मृत्यु—मई १८९६ ई० मे।
३९ पुत्र (सुखदेव) का देहान्त जालन्धर मे—२८ अगस्त १८९६ ई०
४० धर्म पर बलिदान-६ मार्च १८९७ ई०।

ओम्प्रकाश आर्य

(७ पृष्ठ का शेष)

किसी भाई का कष्ट बिना अनुभव किए रह नही सकते थे। परन्तु कभी कभी विपक्षियो पर कड़ा आक्रमण भी करते थे। इसीलिए लाला काशीराम जी ने पंडित जी के मित्र और मान करने वाले भी हैं पंडित जी को आर्य समाज के अली की उपाधि दे रखी थी। परन्तु यह निर्भयता पंडित जी के लेखो मे प्रकाशित नही हुई इसकी समाप्ति शस्तुता के साथ ही हो जाती थी।

६ मार्च सन १८९७ ई० की सन्ध्या को एक कठोर हृदय मुसलमान जो शुद्धि का बहाना करके उनके पास आया था उनके गृह मे घोंप छूरी उनके पेट मे घुसेड कर भाग गया। दो बजे रात को अच्छी से अच्छी चिकित्सा होने पर भी गायत्री मन्त्र का जप करते हुए धर्मवीर लेखराम इस नाशवान शरीर को छोड़कर अपने सच्चे देश को पधार गए और चलते समय आर्य समाज के मेम्बरो को अन्तिम शिक्षा दे गए कि— लेख का काम बन्द न होने पावे।

आर्य महिला का[illegible] धियाना में समा[illegible]

आर्य कालेज लुधियाना प्रतिवर्ष राष्ट्रीय धार्मिक तथा सामाजिक समारोहों का आयोजन करता है एवं महापुरुषों और विशिष्ट व्यक्तियों के दिन बड़े उत्साह से मनाता है। गत वर्षों की तरह इस बार भी आर्य कालेज ने १२ ११ ८० को एक विशेष बहुउद्देशीय समारोह की व्यवस्था की। इस अवसर पर आर्य कालेज महिला विभाग के हाल में तीन महत्वपूर्ण व्यक्तियों के दिन मनाए गए। प्रथम मुन्शी प्रेमचन्द जी की प्रथम जन्म शताब्दी के रूप में दूसरे युग पुरुष महर्षि स्वामी दयानन्द जी के निर्वाण दिन के रूप में तथा तीसरे महाराजा रणजीत सिंह की दूसरी जन्म शताब्दी के रूप में। इस समारोह की अध्यक्षता पंजाब के प्रसिद्ध आर्य समाजी नेता आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपप्रधान श्री श्री रणवीर जी भाटिया ने की। मुंशी प्रेमचन्द जी के जीवन और कृतित्व को लेकर पंजाब विश्वविद्यालय [illegible] के प्रख्यात समालोचक [illegible] ने अपने मौलिक विचार [illegible] इस के पश्चात डा [illegible] स्वामी दयानन्द जी के जीवन पर प्रकाश डाला। तदनन्तर राजकीय कालेज लुधियाना के भूगोल विभाग के अध्यक्ष डा बलजीत सिंह जी ने महाराजा रणजीत सिंह के जीवन पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर कालेज की ओर से प्रकाशित मुंशी प्रेम चन्द एवं स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन-परिचय पत्र श्रोताओं में बांटे गए। छात्राओं ने बड़े उत्साह से इस समारोह में भाग लिया। कुछ छात्राओं ने अपनी संगीत माधुरी के द्वारा श्रोताओं को रसास्वादन कराया। इसके बाद प्रधान महोदय ने इन तीनों महापुरुषों के सम्बन्ध में अपने मौलिक विचार रखे। अन्त में कालेज प्रिंसीपल महोदय श्री एस एल दत्त तथा महिला विभाग की अध्यक्षा श्रीमती सतीश जी ने सब प्रमुख वक्ताओं प्राध्यापिकाओं तथा प्राध्यापकों का धन्यवाद किया। यह समारोह सब प्रकार से सफल रहा।

देवदासी प्रथा को तुरन्त बन्द किया जाए

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के महामन्त्री एवं भूतपूर्व संसदसदस्य श्री ओम प्रकाश जी त्यागी ने एक प्रैस वक्तव्य में कुछ समाचार पत्रों में [illegible] इस समाचार पर खेद और आश्चर्य [illegible] किया कि प्रति वर्ष कर्नाटक के सोन[illegible] नामक स्थान पर माघ पूर्णिमा के मेले [illegible] ५००० (पांच हजार) अबोध एवं न[illegible] विद बच्चियों को बलात् देवदासी बना[illegible] जाता है और बाद में उन्हें बम्बई आदि महानगरों के वेश्यालयों के दलाल खरीद-कर उन्हें बलात वेश्या बना देते हैं।

श्री त्यागी जी ने भारत की प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी से अपील करते हुए प्रार्थना की है कि भारतीय नारी का यह परम सौभाग्य है कि आप [illegible] महिला भारत की प्रधानमन्त्री [illegible] के रहते हुए भी यह प्रथा यदि [illegible] तो भारतीय नारी जाति का [illegible] होगा। उन्होंने प्रधानमन्त्री [illegible] है कि जिस प्रकार सरकार [illegible] से सती प्रथा को बन्द [illegible] उसी प्रकार इस देवदासी प्रथा को बन्द कराने के लिए तुरन्त कड़े कदम उठाकर अबोध बालिकाओं पर होने वाले इस अत्याचार को रोका जाए। यदि इस के लिए भारतीय संविधान में परिवर्तन करना पड़े तो करना चाहिए। भारत की देव भक्त जनता का इस दिशा में सरकार को समर्थन प्राप्त होगा।

—

श्री वीरेन्द्र जी सम्पादक तथा प्रकाशक द्वारा जयहिन्द प्रिंटिंग प्रैस जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा जालन्धर से इसकी स्वामिनि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र जालन्धर

वार्षिक शुल्क १५) वर्ष १३, अंक ४६ २३ मार्गशीर्ष सम्वत २०३७ तदनुसार ७ दिसम्बर १९८० का अंक दयानन्दाब्द १५६

पंजाब में श्री रामचन्द्रराव 'वन्देमातरम्' का भव्य स्वागत

कादियां में प्रान्तीय आर्य सम्मेलन धूमधाम से सम्पन्न

आर्य समाज के प्रसिद्ध नेता श्री रामचन्द्र राव वन्देमातरम हैदराबाद आन्ध्र प्रदेश से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के निमन्त्रण पर कादियां में होने वाले प्रान्तीय आर्य सम्मेलन में भाग लेने के लिए २९ ११ ८० को पंजाब पधारे पहले लुधियाना स्टेशन पर लुधियाना के आर्य भाई बहिनों ने उनका स्वागत किया जब उनकी गाड़ी जालन्धर स्टेशन पर पहुंची तो उनके दर्शनों के लिए जालन्धर के आर्य बन्धु उमड़ पड़े। उनके साथ सार्वदेशिक सभा के प्रधान ला० रामगोपाल जी शालवाले भी थे। सैंकड़ों आर्य भाईयों और बहनों ने इस अवसर पर दोनों का भव्य स्वागत करते हुए फूल मालाओं से उनके गले को भर दिया श्री वन्देमातरम जी जिन्दाबाद के जयघोषों से आकाश गूंज उठा। आर्य स्कूल से आए स्कूल बैण्ड की ध्वनि गूंज पड़ी।

इस अवसर पर जालन्धर की लगभग सभी आर्य समाजों के आर्य बन्धु तथा आर्य हाई स्कूल बस्ती गुजां आर्य गर्ल्ज हाई स्कूल बस्ती नौ तथा हाथा हा० सै० स्कूल जालन्धर के सभी अध्यापक अध्यापिकाएं और जालन्धर की स्त्री आर्य समाजों की आर्य बहनों और सभा के सारे स्टाफ तथा सभा के सभी अधिकारियों ने स्टेशन पर पहुंच कर अपने नेता का स्वागत किया।

३० ११ ८० को कादियां में प्रान्तीय आर्य सम्मेलन के अवसर पर सारे पंजाब के आर्य बन्धुओं ने श्री वन्देमातरम् जी का भव्य स्वागत किया। यह महान् सम्मेलन धार्मिक एवं सामाजिक कार्यकर्ता देशभक्त क्रान्तिकारी वीर श्री वन्देमातरम जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ और इसका उद्घाटन सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री ला० रामगोपाल जी शालवाले ने किया। इस सम्मेलन को दयानन्द मठ दीनानगर के अध्यक्ष श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज तथा दयानन्द मठ इस मुहल्ला जालन्धर के श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज का आशीर्वाद भी प्राप्त था। यह सम्मेलन कादियां के प्रत्येक प्रकार की विचार धारा रखने वाले संगठन की सहानुभूति और सहयोग प्राप्त करने में भी सफल रहा। इस सम्मेलन में आर्य समाज के अतिरिक्त सनातन धर्मी बन्धु सिख बन्धु जैन बन्धु तथा राजनीतिक पार्टियों के प्रतिनिधि भी स्वागत समारोह में बढ़ चढ़कर सम्मिलित हुए और धर्म वीर पंडित लेखराम जी के चरणों में भाव भीनी श्रद्धांजलियां अर्पित की।

इस अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री वीरेन्द्र जी ने कहा कि विख्यात स्वतन्त्रता सेनानी श्री रामचन्द्र राव ने स्वतन्त्रता

देश को सांप्रदायिकता से खतरा

आर्य समाज मुकाबला के लिए कृत संकल्प

श्री वन्देमातरम जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण देते हुए कहा कि आज देश को साम्प्रदायिकता से खतरा है आज साम्प्रदायिक बने रहे हैं यह भारत में मुसलमानों को ... उनको उकसाया जाता है यह सब अन्तर्राष्ट्रीय इस्लामी ... के अंग हैं इसी प्रकार ... भी ... भी भेष बदल कर विध्वंसक कार्यवाईयां करते हैं इन सभी का मुकाबला आर्य समाज ही कर सकता है

आपने कहा भारतीय संस्कृति में महिमा एवं पूजा योग्य होती है। इसी तरह मातृभूमि भाषा व संस्कृति की भी पूजा होनी चाहिए किन्तु हम इस ओर से उपेक्षा दिखा रहे हैं जो देश अपनी भाषा संस्कृति को भूल जाता है वह स्वतन्त्र नहीं रह सकता

आपने कहा हमारा देश शूरवीरों ऋषिमुनियों और तपस्वियों का देश है। हैदराबाद सत्याग्रह के समय हमने यह बात सिद्ध कर दी थी कि आर्य समाज बड़ी से बड़ी शक्ति के आगे भी झुकेगा नहीं। आपने कहा मैं श्री वीरेन्द्र का आभारी हूं जिन्होंने मुझे यहां बुलाकर आप सब भाई बहनों के दर्शन करने का अवसर प्रदान किया है। मैं कादियां के लोगों का भी आभारी हूं जो शहीद लेखराम स्मारक बना रहे हैं। आपने आन्ध्र प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से स्मारक को ५ हजार रुपया देने की घोषणा की। उनसे पूर्व श्री वीरेन्द्र जी ने आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से ११ हजार रुपया देने की घोषणा की। फिर बहुत से सज्जनों ने दान दिया।

—

संग्राम में जो बलिदान दिया है उसके आधार पर यह जीवित शहीद हैं। इन्होंने अपने रक्त से आजादी के वृक्ष को सींचा है। वन्दे मातरम का नारा लगाने पर इन्हें २४ कोड़ों की सजा दी गई किन्तु यह हर कोड़े के साथ वन्दे मातरम का नारा लगाते रहे आज यह हमारा सौभाग्य है कि हम इनका स्वागत कर रहे हैं।

(विशेष विवरण अन्दर पढ़ें)

श्वेताश्वेतरोपनिषद कथा माला—

परमेश्वर ही सृष्टि का कारण है

ले०—श्री सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार दिल्ली

(गतांक से आगे)

उपसंहार

इस उपनिषद् का आदि तथा अन्त एक ही दृष्टि कोण के अंग हैं। ब्रह्मवादी लोग एकत्रित होकर विचार कर रहे थे कि सृष्टि का कारण क्या है? कारणों पर सोचते हुए उन्होंने भिन्न भिन्न विकल्पों पर विचार किया। वे विकल्प थे—काल स्वभाव नियति यदृच्छा भूतानि योनि पुरुष इनका संयोग। योनि तथा पुरुष को अलग अलग गिनाने का अभिप्राय स्त्री तथा पुरुष से है। क्या सृष्टि का कारण स्त्री है या पुरुष है। इन आठों पर विचार करके यह निश्चय हुआ कि ब्रह्म ही सृष्टि का एकमात्र कारण है। प्रथम अध्याय तथा षष्ठ अध्याय के बीच जितने अध्याय आये हैं उन सब में इसी दृष्टिकोण से विचार किया गया है। अब अन्त में इस विचार प्रक्रिया का उपसंहार करते हुए कहते हैं।

कई विद्वान कहते हैं कि सृष्टि का कारण स्वभाव है—स्वभाव एके कवय वदन्ति कई दूसरे भ्रम में पड़े हुए कहते हैं कि सृष्टि का कारण काल है—काल तथा अन्ये परिमुह्यमानाः। परन्तु यह तो उस परमात्मदेव की संसार में महिमा ही है—देवस्य एष महिमा जिससे यह ब्रह्मचक्र घुमाया जा रहा है येन इदम् भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम् ।१। इस उपनिषद् के प्रथम अध्याय के छठे श्लोक में भी भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम्—इन शब्दों का उल्लेख है।

सृष्टि का कारण वह ब्रह्म कैसा है? वह ऐसा है कि जिससे यह सारी सृष्टि ढकी हुई है—येन आवृत नित्यम् इदं हि सर्वं जो सब कुछ जानता है ज्ञः जो काल का भी काल है—कालकारः जो दया ज्ञान आदि गुणों से युक्त है—गुणी जो सब विद्याओं को जानने वाला है—सर्वविद् य: ऐसा परमात्मा सृष्टि का रचयिता है उसी की अध्यक्षता में तेन ईशितम् कर्म निश्चय से चल रहा है कर्म विवर्तते है।

यह कहना कि पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश ये अपने आप सृष्टि का संचालन कर रहे हैं पृथ्वी अप तेज अनिल खानि यह बात चिन्तनीय है ठीक नहीं है—चिन्त्यम् ।२।

सृष्टि का आदि कारण ब्रह्म क्या करता है? वह सृष्टि रूपी कर्म का संचालन करके उस कर्म से फिर उससे निवृत्त हो जाता है—विनिवर्त्य भूय। हां सृष्टि चलती रहे इसके लिए तत्त्व का तत्त्व के साथ संयोग वह कर देता है तत्त्वस्य तत्त्वेन समेत्य योगम्। इस उपनिषद् के प्रथम अध्याय में काल स्वभाव नियति यदृच्छा भूत योनि संयोग आत्मा ये आठ सम्भावित कारण गिनाये गए थे इन्हीं को यहां तत्त्व (Elements) कहा गया है। काल से लेकर सूक्ष्म आत्मा तक जो तत्त्व हैं उनमें से एक दो तीन या आठों तत्त्वों के संयोग से ब्रह्म सृष्टिचक्र का निर्माण करता है—एकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टभिर्वा ।३।

अभी कहा कि ब्रह्म रूपी कर्म का तत्त्वों के संयोग से आरम्भ करता है। किस प्रकार आरम्भ करता है? आरम्भ में सत्त्व रज तम—इन तीन गुणों से युक्त कर्म को अपने भाग में प्रवृत्त कर देता है। यह कर्म क्या है? प्रकृति का विकासोन्मुखी होना ही सृष्टि का आदि कर्म है। प्रकृति में सत्त्व रज तम—ये तीन गुण हैं सत्त्व रज तमसा साम्यावस्था प्रकृति। इन तीनों गुणों वाली प्रकृति के विकास कर्म को आरम्भ करके—आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि उसमें जीवात्मा के काम क्रोध मोह आदि भावों को जो जोड़ देता है भावांश्च सर्वान् विनियोजयेद् य: वही सृष्टि का आरम्भ कर देता है। अगर काम क्रोध मोह आदि को समाप्त कर दिया जाए—तेषा अभावे तो जो कर्म किया है उस का नाश हो जाता है—कृत कर्म नाश। कृतकर्म के नष्ट हो जाने पर—कर्मक्षये वह आत्मा अथवा परमात्मा—सृष्टि की रचना करने वाले आठों तत्त्वों से अलग हो जाता है याति स तत्त्वत अन्य ।४।

पहले कहा था कि सृष्टि की रचना एक दो तीन या आठ तत्त्वों के संयोग से होती है। इन तत्त्वों का संयोग ही त्रिगुणात्मक प्रकृति का कर्म है। परन्तु इस कर्म में काम क्रोध लोभ मोह आदि भावों के नियोजित होने पर ही कर्म में जान पड़ती है अन्यथा त्रिगुणात्मक प्रकृति तो जड़ ही है। काम क्रोध आदि भाव जीवात्मा के द्वारा प्रकृति का उपभोग करने पर प्रकृति को जीवित बनाते हैं और त्रिगुणात्मक प्रकृति के कर्म में कामनादि भावों से सम्मिश्रण न किया जाए तो कर्म का क्षय हो जाता है। प्रकृति के कर्म अर्थात् उसके विकास में या तो ईश्वर द्वारा जीवन पड़ता है या जीव द्वारा उसमें भाव का संचार कर देने से प्रकृति जीवित बन जाती है और सुख-दुःख का कारण बनती है। जीवन का गुर यह है कि त्रिगुणात्मक प्रकृति में जीवात्मा भाव का संचार न करे। भाव का संचार न करने से कर्म नहीं रहता उसका क्षय हो जाता है उदाहरणार्थ—

हम बुरा काम करते हैं। क्यों? एक व्यक्ति ने हमें गाली दी। उसे क्रोध आया था उसकी गाली सुनकर हमारा क्रोध भी भड़क उठा हमने गाली का जवाब गाली से दिया। मामला बढ़ गया डंडे चल पड़े कत्ल हो गया। यह सब क्यों हुआ? क्रोध से हुआ यह क्रोध ही तो भाव है कामना है भाव न होता तो कर्म न होता तो कर्म का जो लम्बा चौड़ा सिलसिला चल पड़ा वह भी न होता। असली वस्तु कर्म जो प्रकृति का त्रिगुणात्मक रूप है वह नहीं परन्तु भाव है—यह भाव ही कर्म में जान डालता है कर्म के—प्रकृति के त्रिगुणात्मक पाश से छूट जाने का उपाय भाव से—कामना से मुक्त हो जाना है। इसी को गीता में निष्काम कर्म कहा है। प्रकृति का त्रिगुणात्मक कर्म जीव को तभी तक बांध सकता है जब तक प्रकृति के कर्म में जीवात्मा के भाव का समावेश हो। भावों से अलग हो जाने पर कर्म तो चलता रहता है परन्तु क्योंकि उन कर्मों में भाव नहीं होता इसलिए कर्म बन्धन का कारण नहीं बनता। इसी को इस श्लोक में कृत कर्मनाश या कर्मक्षय कहा है।

वह ईश्वरों का परम महेश्वर है—त ईश्वराणां परमं महेश्वरम् वह देवों का परम देव है—तं देवतानां परमं च दैवतम् वह स्वामियों का परम स्वामी है—पति पतीनाम् जो कुछ परे है वह उससे भी परे है परमं परस्तात् ऐसे भुवनों के स्तुति योग्य देव को हम जानें—विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ।७।

उसे अपने लिए कुछ काम नहीं है अपने लिए कुछ करना नहीं है न तस्य कार्यं वह जो कुछ करता है उसके लिए किसी साधन की भी उसे आवश्यकता नहीं है न करणं च विद्यते उसके समान कोई नहीं दीख पड़ता न तत् समः च न उससे बड़ा ही कोई दीख पड़ता है अभ्यधिक दृश्यते। सुनते हैं उसकी परम शक्ति है पराऽस्य शक्ति भिन्न भिन्न प्रकार की है—विविधैव श्रूयते। उसमें ज्ञान बल क्रिया ये तीनों स्वाभाविक हैं—स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च ।८।

लोक में उसका कोई पति नहीं है अर्थात् उस पर शासन करने वाला कोई नहीं है न तस्य कश्चित् पति अस्ति लोके न उससे अधिक ऐश्वर्य वाला कोई है—न च ईशिता न ही उसका अपना कोई चिह्न है—न च तस्य लिंगम्। वह जगत् का कारण है स कारणम् वह साधनों के स्वामियों का भी स्वामी है—स करण अधिप अधिप उसका कोई उत्पादक नहीं है न च अस्य कश्चित् जनिता और न ही उसका कोई स्वामी है न च अधिप ।९।

जो परमात्मदेव मकड़ी की तरह ऊर्णनाभ इव प्रकृति के तन्तुओं से प्रधानजै तन्तुभि देव एक अपने को आवृत कर लेता है—स्व आवृणोत वैसे वह परमात्मदेव हमें स्वयं अपने में धारण करे और अपने में लीन करे दधातु ब्रह्म अप्ययम् ।१०। कहने का अभिप्राय यह है जैसे मकड़ा अपने भीतर के तन्तुओं से अपने को ढक लेता है जैसे ब्रह्म अपने को प्रकृति (प्रधान) से ढक लेता है वैसे ब्रह्म हमें अपने से ढक ले अर्थात् हम ब्रह्म से घिर जाएं।

परमदेव भगवान् ही एक है एक देव जो स्थावर-जंगम के अन्तस्तम में व्याप्त हैं सर्वभूतेषु गूढ। वे सब जगह व्याप रहे हैं सर्वव्यापी सब भूतों के अन्तरात्मा तक में विराजमान हैं सर्वभूत अन्तरात्मा। हमारे सब कर्मों के अध्यक्ष उनके फल देने वाले वही हैं कर्माध्यक्ष। सब स्थावर जंगम का उसी में अधिवास है केवल वही है अद्वितीय है सत्त्व रज तम इन गुणों से रहित है साक्षी चेता केवल निर्गुण च ।११।

वह अकेला संसार के निष्क्रिय तत्त्वों में सक्रिय है। इन तत्त्वों को अपने वश में रखने का काम वही इकला कर रहा है एक वशी निष्क्रियाणां बहूनाम् वह इकला इस बीज रूप प्रकृति से जो अपने आप में निष्क्रिय है अनेक नानाविध नाना रूप संसार बना देता है—एक बीजं बहुधा य करोति। जो इस नानाविध संसार के कण कण में उपस्थित है उसे जो अपने भीतर भी देख लेते हैं—त आत्मस्थं ये अनुपश्यन्ति धीरा उन्हें निरन्तर सुख प्राप्त होता है वैसा सुख शाश्वतम् दूसरों को नहीं न इतरेषाम् ।१२।

जो नित्यों का नित्य है नित्य नित्याणाम् चेतनों का चेतन है चेतन च चेतनानाम् जो एक होता हुआ अनेक जीवों की कामनाओं को पूर्ण करता है एक बहूनाम् विदधाति कामान्। सांख्य तथा योग से जाना जाता है कि सृष्टि का वही कारण है तत् कारणं सांख्य योग अधिगम्यम् यह जीव उस देव को जानकर सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशैः ।१३।

(शेष ८ पर)

आर्यसमाज के इतिहास के लिए महत्वपूर्ण सामग्री जुटाने के कार्य में सहयोग देने की प्रार्थना

आर्यसमाज के इतिहास की योजना को प्रस्तुत करते हुए मैंने आर्य जनता से निवेदन किया था कि आर्यसमाज का प्रामाणिक तथा सर्वांगपूर्ण इतिहास तभी तैयार किया जा सकता है जबकि उन सब पत्र पत्रिकाओं व पुस्तकों का संग्रह कर लिया जाए जिनका प्रकाशन महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवनकाल में ही प्रारम्भ हो गया था। इनमें वे समाचार तथा लेख आदि विद्यमान हैं जिनसे आर्यसमाज के प्रारम्भिक इतिहास पर प्रकाश पड़ता है, और जिनका उपयोग कर आर्यसमाज के प्रचार प्रसार तथा कार्यकलाप के विस्तार का विवरण लिखा जा सकता है। हमारा प्रयत्न यह है कि एक ऐसा संग्रहालय बनाया जाए जिसमें कि अब तक प्रकाशित सम्पूर्ण आर्य साहित्य एवं पत्र पत्रिकाएं एकत्र हों ताकि आर्यसमाज सम्बन्धी अध्ययन तथा शोध के लिए उन का उपयोग किया जा सके।

इस सम्बन्ध में हमें कैनबरा (आस्ट्रेलिया) की नेशनल यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर जी जोर्डन्स का एक पत्र प्राप्त हुआ है जिसमें उन्होंने ये विचार प्रकट किये हैं आर्यसमाज के इतिहास की अत्यन्त महत्वपूर्ण दुर्लभ तथा बहुमूल्य सामग्री उत्तरी भारत के छोटे छोटे पुस्तकालयों एवं व्यक्तियों के पास बिखरी पड़ी है और दिनप्रतिदिन नष्ट होती जा रही है। सब से पूर्व आपको चाहिये कि इस सामग्री को एकत्र करें और एक स्थान पर उसका संग्रह कर सही ढंग से उसकी सूची तैयार कराएं। निस्संदेह यह काम बहुत बड़ा है। पर यदि इसे अब न कर लिया गया तो इस अमूल्य सामग्री का बड़ा भाग सदा के लिये नष्ट हो जाएगा। इस काम में बहुत अधिक धन व्यय करना पड़ेगा पर आर्यसमाज के लिए इससे बढ़कर धन का अन्य सदुपयोग नहीं हो सकता। आप सब मे पूर्व इस कार्य पर ध्यान दें। आर्यसमाज का प्रामाणिक इतिहास तैयार कर सकना तभी सम्भव हो सकेगा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती पर प्रोफेसर जोर्डन्स का ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है। और उन द्वारा लिखित स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थ शीघ्र प्रकाशित होने वाला है। आर्यसमाज की गतिविधि व कार्यकलाप उनके अध्ययन के विशेष विषय हैं। हमें विश्वास है कि आर्य जनता उनके विचारों को समुचित महत्व देगी और आर्यसमाज के इतिहास की आवश्यक सामग्री का संग्रह करने में उसका सक्रिय सहयोग हमें प्राप्त हो सकेगा। आपसे प्रार्थना है कि (१) आपके पास या आप के परिचित किन्हीं सज्जनों के पास या किसी स्थानीय पुस्तकालय में हिन्दी उर्दू अंग्रेजी बंगला गुजराती आदि भाषाओं की पुरानी पत्र पत्रिकाओं की फाइल या उनके फुटकर अंक हों तो उनकी जानकारी हमें देने की कृपा करें (२) उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण तथा बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में आर्य समाजों तथा आर्य पुस्तक प्रकाशकों द्वारा जो बहुत सा साहित्य प्रकाशित हुआ यदि उसकी कोई पुस्तक ट्रैक्ट आदि आपके परिचित किन्हीं सज्जनों के पास हो तो उनके विषय में भी हमें सूचित करने की कृपा करें।

हम इन पत्र पत्रिकाओं तथा साहित्य को समुचित मूल्य पर खरीदने को तैयार हैं। यदि आप इन्हें अपने पास ही रखना चाहें तो आपकी अनुमति से हम अपने खर्च पर इनकी कापी करा सकें। हमें विश्वास है कि इस कार्य के महत्व को दृष्टि में रखकर आप हमें पूर्ण सहयोग प्रदान करेंगे।

—सत्यकेतु विद्यालंकार आर्य स्वाध्याय केन्द्र ए १ ३२ सफदरजंग एन्क्लेव नई दिल्ली ११००१९

क्या आपने हस्ताक्षर कर दिए?

राष्ट्रपति को पंजाब में हिन्दी का सम्मानित स्थान दिलाने के लिए जो ज्ञापन देना है क्या उस पर आपने हस्ताक्षर कर दिए हैं? यदि नहीं किए तो अपने नगर की किसी भी आर्य समाज में जाकर वह ज्ञापन ले लें और उस पर हस्ताक्षर कर दें।

जिन फार्मों पर हस्ताक्षर हो गए हैं वह शीघ्र सभा कार्यालय में भिजवा दें।

—वीरेन्द्र

गुरुकुल कांगड़ी में वाद-विवाद प्रतियोगिता

हरिद्वार गत दिनों गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के विद्यालय विभाग के तत्वावधान में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ही आधुनिक शिक्षा का एक मात्र विकल्प है विषय पर अन्तर्जनपदीय वाद विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया समारोह की अध्यक्षता विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति आचार्य प्रियव्रत जी वेद वाचस्पति ने की। विश्वविद्यालय के आचार्य डा० निरुपण विद्यालंकार ने अध्यक्ष महोदय की सेवाओं का परिचय देते हुए प्रतियोगिता के महत्व पर प्रकाश डाला। विश्वविद्यालय के वर्तमान कुलपति श्री बलभद्र कुमार जी हूजा आई ए० एस० ने विश्वविद्यालय की शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों की प्रगति पर सन्तोष व्यक्त करते हुए भावी योजनाओं पर प्रकाश डाला मुख्य अतिथि तथा नगर के प्रसिद्ध उद्योगपति एवं कर्मठ कांग्रेस के कार्यकर्ता श्री पारस कुमार जैन भूतपूर्व अध्यक्ष नगरपालिका का परिचय देते हुए डा० विष्णुदत्त राकेश ने विश्वविद्यालय तथा नगर के गणमान्य नागरिकों के पारस्परिक सम्पर्क के आवश्यकता पर बल दिया। पुरस्कार वितरण करते हुए श्री जैन ने विगत वर्षों के विश्वविद्यालीय सम्पर्क का जिकर किया तथा विश्वविद्यालय में शान्ति व्यवस्था तथा शिक्षा का समुचित वातावरण बनाने के लिए कुलपति जी को धन्यवाद दिया। वाद विवाद प्रतियोगिता में चल विजयी पुरस्कार ज्वालापुर इन्टर कालेज के छात्रों को मिला श्री राजीव लोचन ज्वालापुर इन्टर कालेज प्रथम कु० अर्चना सिंघल केन्द्रीय विद्यालय रुड़की द्वितीय तथा विपुल कुमार पार्श्वनाथ शिक्षा मन्दिर बी एच ई एल तृतीय रहे। प्रतियोगिता समारोह का संचालन विद्यालय के मुख्याध्यापक श्री ह० दीन नाथ जी शर्मा ने किया। सहायक मुख्याधिष्ठाता श्री जितेन्द्र जी गुरुकुल राजकीय स्नातकोत्तर कालेज के आचार्य डा० सुरेशचन्द्र जी शास्त्री वि्श्वविद्यालय स्नातकोत्तर विभाग के भूतपूर्व निदेशक डा० सत्यदेव जी मिश्र तथा गढ़वाल विश्वविद्यालय के संस्कृत रीडर डा० कृष्णकुमार जी ने गुरुकुल के अतीत गौरव को पुनः प्रतिष्ठापित करने पर बल दिया।

—

आर्य वीर दल के सदस्यों का नंगल में स्वागत

श्री राजासिंह आर्य सार्वदेशिक आर्य वीर दल के शिक्षक की अध्यक्षता में आर्य वीर दल के १७ नवयुवक नंगल पहुंचे भाखड़ा देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए खाद फैक्ट्री देखी तथा स्थानीय समाजों के सदस्यों से विचार विमर्श किया।

—दयानन्द मलिक
मन्त्री

—

आवश्यकता है

आर्य समाज श्रीगंगानगर (राजस्थान) में एक ऐसे वीतराग महात्मा संन्यास अथवा वानप्रस्थी महानुभाव की आवश्यकता है जिन्होंने अपना जीवन वैदिक धर्म प्रचार हेतु अर्पित कर रखा हो आर्य समाज की ओर से ऐसे पूजनीय महात्मा का पूरी श्रद्धाभाव से सेवा सत्कार किया जाएगा और वैदिक धर्म प्रचार हेतु सब साधन जुटाए जायेंगे। कृपया मन्त्री आर्य समाज से सम्पर्क करने का कष्ट करें।

—मन्त्री आर्य समाज
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

—

आर्य प्र नि सभा हि प्र का वार्षिक निर्वाचन

प्रधान श्री स्वामी सदानन्द जी वरिष्ठ उपप्रधान श्री सत्यप्रकाश महेन्द्रीरत्ता शिमला उपप्रधान—श्री गोविन्दराम चौलधरा श्री धमदास बिलासपुर मन्त्री श्री भगवान चन्द्र उपमन्त्री—श्री मनोहर लाल आचार्य चम्बा श्री वेद प्रकाश जी नाठियाणी विजय मोहन सालन कोषाध्यक्ष श्री कृष्णचन्द्र आर्य सुन्दरनगर वेद प्रचार अधिष्ठाता—श्री केवलराम ज्वाला मुखी प्रचार मन्त्री—सदन कपूर।

अन्तरंग सदस्य—स्वामी सुमेधानन्द चम्बा प० विश्वम्भर चम्बा केदारनाथ सुन्दरनगर आचार्य रामानन्द सुन्दरनगर रामशरण सुन्दरनगर शक्ति मिलन सोलन श्री बंबूराम गोपाल सराहां स्वामी ब्रह्मानन्द राजगढ़ श्री इन्द्रजीत भाटिया श्री देशराज सूद शिमला श्री धनलाल शिमला श्री विद्यानिधि शास्त्री कसौली श्री भगवती प्रसाद प० चम्बा श्री महाशय तोताराम हमीरपुर।

प्रतिष्ठित—श्री रमेशचन्द्र जीवन कांगड़ा स्व० विवेकानन्द स्व० सुरेन्द्रानन्द परवाणू माता भागवती शिमला श्री रूपसिंह चौहान विधायक सभा संयोजक दीनानाथ एडवोकेट।

—भगवान चन्द्र मन्त्री

गुड़गांव में—

महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी

आर्य [illegible] प्रवर्तक महर्षि दयानन्द की [illegible] शताब्दी १ १२ ८० से ३-१२-८० [illegible] (हरियाणा) में मनाई [illegible] अवसर पर [illegible] आत्मा विद्व न आर्य नेता [illegible] तथा महर्षि के कार्यों पर प्रकाश डालेंगे तथा महर्षि को श्रद्धांजलि देंगे। शताब्दी पर ग अनुभूति द्वारा चित्रित ऋषि दर्शन चित्र [illegible] लगाया जायेगा। गुड़गांव और फरीदाबाद जिलों में ५० [illegible] [illegible] शताब्दी [illegible] प्रचारार्थ सभी ग्रामों पर किये जाए गे। शताब्दी की तैयारियां जोर शोर से शुरू कर दी गई हैं स्वागत समिति के सदस्य बनाये जा रहे हैं। शोभा यात्रा समिति पण्डाल समिति ऋषि लंगर समिति आवास समिति तथा

[illegible] बलि रहे हैं।

आर्य समाज [illegible] में राम मन-धन से स [illegible] का परिचय दें [illegible]

—रामचन्द्र [illegible]

—

आचार्य देवप्रकाश जी [illegible]

आय बचत के प्रसिद्ध विद्व न् वैदिक सिद्धान्तों के तथा इस्लाम आदि [illegible] के पूर्ण ज्ञाता और कुरान परिचय आदि [illegible] पुस्तकों के रचयिता श्री आचार्य देव प्रकाश जी [illegible] से गम्भीर रूप से रोग ग्रस्त हैं। क्योंकि वे [illegible] वृद्ध (९५ वर्ष) के हैं अत उन [illegible] चिन्ताजनक है। उन्होंने [illegible] (विशेषकर मुसलमान [illegible]) [illegible] इस ९५ वर्ष की आयु में भी ग्राम-ग्राम में ईसाईयों को शुद्ध करके वैदिक धर्म में सम्मिलित करते रहे हैं।

इन दिनों श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज उन्हें दयानन्द मठ दीनानगर

[illegible] के गए हैं। [illegible] उनकी पूर्ण [illegible] को [illegible] के स्वास्थ्य तथा [illegible] आयु के [illegible] भगवान से हार्दिक प्रार्थना करनी चाहिए।

—[illegible] शर्मा [illegible]

—

(४ पृष्ठ का शेष)

११ त्वं हि न पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।

(ऋ ८-९८-११)

१४ अस्माक मस्तु केवल

(ऋ १७-१०)

१५ इन्द्र प्रात ईशानहे।

(ऋ १११९)

[illegible]

[illegible] विश्व व भुवनों [illegible]

एक सद् विप्रा बहुधा वदन्त्य-ग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

(ऋ० १।१६४।४६)

—

[illegible] तब सूर्य [illegible] और न तारों का यहा [illegible] प्रकाश, वहाँ बिजलियां [illegible] चमकती न हुआ [illegible] अग्नि [illegible] सब [illegible] प्रकाश है उसी के प्रकाश से सूर्य चन्द्र, तारे, बिजली अग्नि को [illegible] अनुभाति सर्वम् उसी के प्रकाश से ये सब प्रकाशमान हो रहे हैं [illegible] इदम् विभाति।१९।

जब लोग मन व आकाश को लपेटने [illegible] मानव [illegible] देव के जाने बिना [illegible] देव [illegible] दुःख का अन्त होगे [illegible] दुःखस्य अन्त भविष्यति।२०।

अर्थात् जैसे मनुष्य [illegible] [illegible] देव को [illegible] दुःख [illegible] सकता।

[illegible] आदि से [illegible] सर्वांत [illegible] को भी [illegible] में [illegible] से सम्मिलित होकर उनके पास ज्ञान प्राप्त करने आए थे उन्होंने उपदेश दिया

श्री वीरेन्द्र जी सम्पादक तथा प्रकाशक द्वारा जयहिन्द प्रिंटिंग प्रेस जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय गुरुदत्त भवन चौक किशनपुरा जालन्धर से इसकी स्वामिनि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र जालन्धर

वार्षिक शुल्क 15) वर्ष 13, अंक 47 30 मार्गशीर्ष सम्वत् 2037 तदनुसार 14 दिसम्बर 1980 का अंक दयानन्दाब्द 156

पंडित लेखराम के चरण-चिन्हों पर चलने का संकल्प लें

साहित्य प्रचार के साधनों को सुदृढ़ बनाएं

30 नवम्बर को कादियां में सम्पन्न हुए श्री पण्डित लेखराम स्मारक प्रान्तीय आर्य सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्ताव—

प्रस्ताव नं० १

अमर शहीद पण्डित लेखराम जी आर्य मुसाफिर का जीवन काल सन १८५८ से सन १८९७ का था। कुल मिलाकर उन्हें जीवन के चालीस वर्ष मिले थे। सन १८८० में अजमेर में उन्होंने महर्षि दयानन्द के दर्शन किये थे। इससे पूर्व उन्हें श्री मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी की पुस्तकों से ऋषि दयानन्द और आर्य समाज का परिचय मिल चुका था किन्तु इस मुलाकात में उनके बचे खुचे संशय भी समाप्त हो गये और उनके दिल में वे नास्तिकता ही हो गई और वह सदा के लिए आर्य समाज के हो गए। आर्य समाज और ऋषि दयानन्द के प्रति उनकी श्रद्धा और निष्ठा का यह परिणाम था कि वह पुलिस सर्विस में चार वर्ष से अधिक न टिक सके और सन १८८१ में सारजैण्ट लेखराम से पण्डित लेखराम बनकर आर्य समाज के प्रचारक बन गए।

इसके पश्चात उन्हें लगभग तेरह वर्ष काम करने के लिये मिले इस समूचे काल में वह दिन रात आर्य समाज के प्रचारार्थ सफर में रहे। इस लिए वह आर्य मुसाफिर तथा आर्य पथिक के नाम से प्रसिद्ध हुए कई शास्त्रार्थ किये सभा के पत्र आर्य गजट का सम्पादन किया और समूचे राजस्थान तथा ऋषि से सम्बन्धित अन्य प्रदेशों में घूम फिरकर ऋषि दयानन्द महाराज का जीवन चरित्र संकलित किया और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि अपने इतने व्यस्त जीवन में छोटी बड़ी तैंतीस पुस्तकें उर्दू भाषा में लिखकर छोड़ गए जिन्हें उनकी शहादत के पश्चात महाशय मुन्शीराम ने कुल्लियात आर्य मुसाफिर के नाम से प्रकाशित कराया। इन सभी पुस्तकों से उनके विस्तृत स्वाध्याय तथा गम्भीर अनुसंधान का पता चलता है।

वस्तुतः वह एक आदर्श प्रचारक निर्भीक वक्ता सिद्ध शास्त्रार्थ महारथी स्वसेवी कार्य मिशनरी तथा आर्य समाज के एक ऐसे त्यागी तपस्वी और तपस्वी त्यागी उपदेशक थे जिन्होंने न केवल अपने धर्म की रक्षा के लिए शास्त्रार्थ उठाये प्रत्युत विधर्मियों पर भी ऐसे भरपूर आक्रमण किये कि जिससे उनकी गति मन्द हो गई। यहां तक कि उन्हें हमारे धर्म ग्रन्थों की आलोचना के स्थान पर अपने धर्म ग्रन्थों की व्यवस्थाएं बदलनी पड़ीं परिणाम स्वरूप सहस्रों लोग हिन्दू धर्म परिवर्तन के पाप से बच गए।

निश्चय ही आज उस कर्मठ महापुरुष के स्मारक के उद्घाटन के अवसर पर हम पंजाब प्रान्त के सब नर नारी हृदय से उनके चरणों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके आर्य समाज के लिए किए गए महान् कार्यों के लिए उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं और प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वह हमें उनके चरण चिन्हों पर चलने की शक्ति और बुद्धि प्रदान करें।

प्रस्ताव नं० २

पंजाब के आर्य समाज का यह प्रान्तीय आर्य सम्मेलन अमर शहीद पण्डित लेखराम के स्मारक के उद्घाटन के अवसर पर उनके अन्तिम सन्देश (वसीयत) को बड़ी श्रद्धा के साथ स्मरण करता है और पंजाब के आर्य बन्धुओं से यह सानुरोध आग्रह करता है कि वे निजी रूप में और सामाजिक रूप में आर्य समाज में लेख के काम को उन्नत करने में अपना भरपूर सहयोग दें। अपने परिवारों तथा समाज के सदस्यों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़ाने के लिए उनमें आर्य समाज का अच्छा से अच्छा साहित्य वितरित करें और अन्य समाजी पत्रों का अधिक से अधिक प्रसार करें तथा उन्हें ज्यादा से ज्यादा संख्या में दें। आज के प्रसार युग में प्रचार का सबसे उत्तम साधन साहित्य और प्रचार पत्र है। यह सम्मेलन पंजाब के आर्य जगत को अपने इन दोनों साधनों को सुदृढ़ बनाने की अपील करता है और आशा रखता है कि वह सभा को इस सम्बन्ध में भरपूर सहयोग देंगे।

अंग्रेजी का स्थान हिन्दी को दिया जाए शिक्षा माध्यम चुनने का अधिकार माता पिता को हो।

प्रस्ताव नं० ३

जब से पंजाब का बटवारा किया गया है पंजाब के हिन्दी प्रेमी बार बार यह मांग कर चुके हैं कि पंजाब में हिन्दी को भी राज प्रबन्ध में उचित स्थान मिलना चाहिए परन्तु पंजाब की कोई सरकार हमारी इस मांग को अभी तक स्वीकार करने को तैयार नहीं हुई। यद्यपि सुप्रीमकोर्ट भी यह कह चुका है कि पंजाब में एक भाषायी अल्पसंख्यक भी है जिनकी भाषा हिन्दी है और अब भाषायी अल्पसंख्यक आयोग ने भी यह कह दिया है कि पंजाब में भाषायी अल्पसंख्यक है फिर भी सरकार हमें वह अधिकार देने को तैयार नहीं हुई जो विधान के अनुसार और समय समय पर केन्द्रीय सरकार के निश्चयों के अनुसार हमें मिलने चाहिए। हम पंजाब सरकार के लिए कोई नई समस्या खड़ी करना नहीं चाहते हैं परन्तु इसी के साथ हम यह भी आवश्यक समझते हैं कि हमें वे अधिकार मिलने चाहिए जिनके हम अधिकारी हैं इसलिए पंजाब की सरकार का ध्यान इस समस्या की ओर दिलाते हुए उससे यह मांग करते हैं कि—

१ शिक्षा माध्यम के निर्णय करने का अधिकार बालक और बालिका के माता पिता को होना चाहिए

२ प्रदेश के राज्य प्रबन्ध में हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ले

हम पंजाबी के विरोधी नहीं हैं उसकी उन्नति और प्रचार के लिए सरकार जो कुछ भी करेगी हम उसका स्वागत करेंगे परन्तु उसी के साथ यह भी आवश्यक है कि हिन्दी जो कि देश की राष्ट्र भाषा है और पंजाब की बहुत बड़ी संख्या की मातृ भाषा भी है और आम प्रयोग की भाषा भी है उसे भी उचित और आदर स्थान दिया जाए। इसी के साथ यह बात बिल्कुल स्पष्ट कर देनी चाहिए कि हम पंजाबी के विरोधी नहीं हैं हिन्दी के समर्थक अवश्य हैं और यह वह भाषा है जो सन्तों और महात्माओं की भाषा रही है और आज भी है और जो कि गुरुगोविन्दसिंह जी महाराज की मातृ भाषा थी। इस भाषा को पंजाब में उचित स्थान दिलाना प्रत्येक हिन्दी प्रेमी का एक कर्तव्य बन जाता है। इसलिए पंजाब सरकार से यह मांग करते हैं कि वह पंजाब में हिन्दी को वह ही न्यायोचित स्थान दे जो दूसरे प्रदेशों में वहां की अल्पसंख्यक भाषाओं को मिला हुआ है।

मनसा परिक्रमा-प्रथम मंत्र

ले०—सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम ए एल टी १७१ आफुरा बाजार गोरखपुर)

ओं प्राची दिगग्निरधिपति
रसितो रक्षितादित्या इषव ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो
रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्योऽस्तु ।
योऽस्मान द्वेष्टि य वय द्विष्मस्त
वो जम्भे दध्म । अथर्व०३ २७-१

(प्राची) आगे बढने की (दिक) दिशा है उस प्राची दिशा में (अग्नि) अग्नि स्वरूप भगवान (अधिपति) स्वामी है। वह आदर्श है। (असित) बन्धन रहित होने का भाव (रक्षिता) रक्षा करने वाला है। (आदित्या) आदित्य ब्रह्मचारी गण सच्चे विद्वान् (इषव) प्रेरक या सहायक हैं। (तेभ्य) उस (अधिपतिभ्य) अग्रणी भगवान को (नम) नमस्कार है। (इषुभ्य) प्रेरक या सहायक आदित्यों को (नम) नमस्कार हो। (एभ्य) इन सब को नमस्कार (अस्तु) हो (य) जो (अस्मान) हमको (द्वेष्टि) द्वेष करता है (य) जिसको (वय) हम (द्विष्म) द्वेष की भावना से देखते हैं (त) उस द्वेष भाव को (व) आपके (जम्भे) दाढ में (दध्म) रखते हैं।

साधक मन की स्वच्छन्द दौड समाप्त करता है। वह मन के द्वारा अब वह विशेष प्रकार की परिक्रमा करता है वह प्राची दिशा की ओर चलता है। प्राची शब्द प्र तथा अञ्च् शब्दों से मिलकर बना है प्र शब्द का अर्थ प्रकृष्ट रूप से अच्छी तरह से उत्कर्ष की ओर अञ्च का अर्थ है गति करना इसका मतलब हुआ कि हम जीवन मे आगे की ओर बढ़ने का प्रयत्न करें। जीवन की दौड में आगे बढना साधक का लक्ष्य है।

मनुष्य मे आगे बढने की महत्वाकांक्षा रहती है ऋग्वेद ८ १० ५ मन्त्र मे हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं प्रथम न रथ कृधि हे प्रभो मेरे जीवन रूपी रथ को आगे कर दो जीवन रूपी रथ को आगे बढाना अग्नि अग्रणी भगवान की सच्ची उपासना है निरुक्त में अग्नि शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है अग्नि कस्मात् ? अग्नि क्यो कहते हैं ? अग्रणी भवति सबसे आगे रहता है और अग्र यज्ञेषु प्रणीयत यज्ञो मे सबसे आगे ले जाया जाता है इसलिए अग्नि नाम पडता है अग्नि का अर्थ है आग और आग का काम है आगे बढना ऊपर उठना मनुष्य के जीवन का भी यही ध्येय होना चाहिए आगे बढना ऊपर उठना।

चलते चलते कई बार आदमी को ठोकर भी लगनी है वह फिसल भी जाता है गिर भी जाता है तो गिरने के बाद क्या करना चाहिए ? यदि तुम गिर गए हो तो फिर मन पर ध्यान उठो फिर आगे बढो यह जीवन आगे बढने के लिए है उपर उठने के लिए है अग्नि तुम्हारा आदर्श है उसके सामने रुकावट आती है तो क्या वह रुक जाती है। नही वह ता उसे जलाके आगे ही आगे बढती है। इसलिए यदि तुम दुनिया में सुखी होना चाहते हो उन्नत होना चाहते हो तो आगे ही आगे बढने की बात सोचो सुख चाहते हो तो दुख का चिन्तन छोड दो। वैभव पाना है तो निर्धनता से निराश होना छोड दो तुम स्वय विजय हो विजय के लिए ही तुम्हारा जन्म हुआ। जीवन के इस सघर्ष मे निराशा को कोई स्थान नही है तुम अपनी शक्तियो और योग्यताओं पर विश्वास करो याद रखो तुम महान लक्ष्य की ओर आगे ही आगे बढते जाओगे आगे बढने का एक गुर मैं तुम्हें बताता हू ऊचे से ऊचे स्थान पर पहुचना चाहते हो तो अपने उद्योग को नीची से नीची सतह से आरम्भ करो और उसके प्रत्येक स्वरूप को समझ कर धीरे धीरे काम करो। आपका जीवन उच्चता के शिखर पर पहुच जाए इसके लिए आवश्यक है कि आपके पास साहस का भण्डार हो जब आपको अपनी अनन्त शक्ति का विश्वास हो जाएगा तब आप ऊचे ही ऊचे चढते चले जाएगे। यही है प्रभु के अग्नि रूप की उपासना। ऋग्वेद १० ७३ मे कहा है

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छ
क्नवाम तदनु प्रवोलहुम

हम देवो के मार्ग पर गमन करें जिससे कि उनके मार्ग पर चलते हुए उनका अनुसरण करते हुए हम अपने कर्तव्य भार को उनकी भान्ति वहन करने मे समर्थ हो सके वेद का यह ओजस्वी मन्त्र अपने जीवन का लक्ष्य बना लो

उत्क्रामत पुरुषमाव पत्था मृत्यो पड्वीशमव मु चमान । मा च्छित्था अस्मा ल्लोकादग्ने सूर्यस्य सदृश ।

अथर्व० ८ १ ४

हे पुरुष ! उठ खडा हो आगे बढ उन्नति कर नीचे मत गिर अवनति की ओर मत जा यदि मृत्यु भी तेरे सामने आकर खडी हो जाए तो भी उसकी परवाह मत कर मौत की बेडियों को काटता हुआ आगे बढ सदा उस अग्नि और सूर्य के सम्मान परमेश्वर की ज्योति का ध्यान कर। इस प्रकार आगे बढना हमारा लक्ष्य हुआ और अग्रणी भगवान अग्नि स्वरूप भगवान आगे बढने के लक्ष्य मे आदर्श हैं। अर्थात अग्नि के प्रकाश भस्मशीलता और आगे बढने का गुण हमें धारण करना चाहिए। सदा सोचिए मैं आगे बढ गया। ज्ञान विज्ञान वीर्य शूरता स्वाध्याय दानशीलता व्यापार में आगे बढू या अथवा नो रथ कृधि मेरा शरीर रूपी रथ आगे रहेगा—सबसे आगे रहेगा।

अग्नि मे घबराहट नही चिन्ता नही रुकना नही ठहरना नही। जब तक प्राण है तब तक आगे बढ़ो जरूर। कही एक छोटी चिंगारी भी रह जाए तो आगे बढते हुए वह महा प्रचण्ड ज्वाला का रूप धारण कर गाव के गाव को सपूर्ण नगर को जलाकर राख कर देगी। ऐसे ही मेरे भाई निरन्तर आगे बढो आगे बढो।

हा कहा तक आगे बढे। आदर्श अग्नि परमात्मा है। ज्ञान बल इत्यादि गुणों की वह पराकाष्ठा है। वह अन्तिम सीमा है जहा तक कोई बढ सकता है। राम कृष्ण बुद्ध दयानन्द महात्मा गान्धी स्वामी श्रद्धानन्द इत्यादि महापुरुष अग्रणी हैं। परमात्मा परम अग्नि है। वह अग्रणियों मे अग्रणी है। हमे उसी प्रभु को लक्ष्य रखकर बढते चलना है।

इस प्रकार साधक प्राची दिशा की ओर अपने कदम उठा रहा है। अग्निस्वरूप परमेश्वर उसका लक्ष्य है। साधक यह निकलते वाला असित रास्ते के जीवन के लिए आगे के पाथेय चाहता है। पाथेय की उस पोटली मे क्या रखकर निकला है साधक ? मन्त्र कहता है असितो रक्षिता बन्धन रहित होने का भाव ही रक्षक है। असित शब्द सिञ् बन्धने धातु से बना है। सिञ् धातु से सित शब्द बना है सित का अर्थ है बन्धा हुआ और असित का अर्थ है न बन्धा हुआ है।

अग्नि को आदर्श बनाकर पथिक प्राची की दिशा की ओर चल रहा है। आगे बढने मे उसे बन्धन रुकावट के रूप में आकर बाधा डालते हैं। यह बन्धन कौन से हैं—विषय या भोग विलास। विषयो का चिन्तन आगे बढने से रोकता ही नही हमे विनाश की ओर ले जाता है आगे बढने का नाम न लेता है न समतल आगे बढने के लिए निश्चय इच्छा शक्ति हिम्मत और लगन चाहिए। वह व्यक्ति जो विषयो के बन्धन तोडकर और परिश्रम से आगे बढता है ऐसे व्यक्ति का ससार प्रणाम करता है लोग उससे प्रेरणा लेते हैं उसके पास खिंचे चले आते हैं। यह विषय कैसे बाधते हैं ?

फ्रायड इत्यादि पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक विषयो स्वतन्त्र सेवन से विषय समाप्त हो जाते है भोग भोगने से मानसिक तृप्ति हो जाती है। परन्तु हम देखते हैं और अनुभव करते हैं कि विषय वासना शान्त होकर फिर जागती है यह उसका स्वभाव है। इसीलिए मनु जी ने कहा है—

न जातु काम कामानामुपभोगे
न शाम्यति
हविषा कृष्ण वर्त्मेव भूयएवाभिवर्द्धते।

अर्थात—उत्पन्न हुई वासना वासना के उपभोग से शान्त नही होती परन्तु घी डालने से जैसे आग बढती है वैसे ही बढती जाती है। (क्रमश)

श्री प्रेम प्रकाश जी को आघात

आर्य समाज ऋषि कृष्ण पक्का बाग के कर्मठ कार्यकर्ता श्री प्रेम प्रकाश जी की सुयोग्य सुपुत्री उषारानी एम० ए० बी० एड० का स्वर्गवास ५ १२ ८० को लुधियाना मे उनके ससुराल गृह में स्टोव से आग लगने पर हो गया। उषारानी के विवाह को अभी ८ मास भी नहीं हुए थे। सुपुत्री के स्वर्गवास से श्री प्रेम प्रकाश जी व उनके परिवार को जो आघात पहुचा है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। बहन उषारानी सभी से स्नेह करने वाली तथा बडी मधुर भाषी लडकी थी जिसकी मृत्यु का समाचार पाकर सभी को बडा दुख हुआ।

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब और आर्य समाज ऋषि कृष्ण पक्का बाग जालन्धर ने एक शोक प्रस्ताव पारित करते हुए दिवगतात्मा की सद्गति और श्री प्रेम प्रकाश जी के परिवार को इस असह्य दुख को सहन करने की शक्ति देने की परम पिता परमात्मा से प्रार्थना की।

सम्पादकीय—

सदा स्मरणीय महापुरुष

एक मास के अन्दर ऐसे दो दिन आ रहे हैं जबकि हम अपने दो महापुरुषों के चरणों में श्रद्धाञ्जलि भेंट कर सकेंगे। १२ दिसम्बर श्री गुरु तेगबहादुर जी का शहीदी दिवस है और १२ जनवरी श्री गुरु गोविन्द सिंह जी का जन्म दिवस है। इन दोनों के साथ हिन्दू जाति का एक विशेष सम्बन्ध है। गुरु तेग बहादुर जी ने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपना बलिदान दिया था। औरंगजेब ने उन्हें स्वयं दिल्ली नहीं बुलाया था। किन्तु जब काश्मीर के ब्राह्मणों ने उन्हें जाकर कहा कि उन पर अत्याचार हो रहे हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि इसे रोकने के लिए एक बड़े बलिदान की आवश्यकता है। कहते हैं कि नौ वर्ष के गोविन्द राय उनके पास बैठे थे। अपने पिता जी की बात सुन कर वह कहने लगे कि आप से बड़ा बलिदान और क्या हो सकता है। इस पर गुरु महाराज ने काश्मीरी ब्राह्मणों से कहा कि वे औरंगजेब से जा कर कह दें कि यदि तेग बहादुर इस्लाम स्वीकार कर लें तो हम भी कर लेंगे। इस पर काश्मीरी ब्राह्मणों ने औरंगजेब से जा कर कहा कि वह उन्हें क्यों तंग कर रहा है। वह गुरु तेग बहादुर को बुला कर उन्हें इस्लाम स्वीकार करने के लिए कहे और यदि वह तैयार हो जाएंगे तो हम भी हो जाएंगे। इस पर गुरु तेग बहादुर को दिल्ली बुलाया गया। वहां जो कुछ हुआ वह अब हमारे इतिहास का एक ऐसा अध्याय बन चुका है जिसे हम जितना भी गर्व करें कम है। १२ दिसम्बर को गुरु तेग बहादुर को शहीद कर दिया गया। हमारे अकाली मित्र तो कहते हैं कि उनका हिन्दुओं के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। उन्हें यह कहते हुए शर्म भी महसूस नहीं होती। जब वह यह कहते हैं तो गुरु तेग बहादुर का अपमान करते हैं। गुरु महाराज यदि हिन्दू धर्म को अपना धर्म और हिन्दुओं को अपना ही भाई न समझते तो उन्हें अपना बलिदान देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। किन्तु अकाली जो कुछ कहते हैं हमें उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। हमें तो यह देखना है कि गुरु तेग बहादुर का हमारे ऊपर जो उपकार है हम उसे कैसे उतार सकते हैं। १२ दिसम्बर को बलिदान दिवस मनाकर उस महापुरुष के चरणों में हमें अपनी श्रद्धाञ्जलि भेंट करनी चाहिए। जैसा कि मैं पहले भी कई बार लिख चुका हूं कि अकाली हिन्दुओं में शामिल नहीं होना चाहते तो न हों। हम भी उन्हें अपने साथ शामिल करना नहीं चाहते। वे हिन्दुओं से दूर ही रहें तो अच्छा है। किन्तु गुरु साहिबान को तो वे हम से छीन नहीं सकते। इतिहास साक्षी है कि गुरु नानक देव जी से लेकर गुरु गोविन्द सिंह तक सभी गुरु साहिबान हिन्दू थे। गुरु गोविन्द सिंह ने खालसा को सजाया था तो हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए। इसलिए हमारे दिल में गुरु साहिबान के लिए वही श्रद्धाभाव है जो हमारे अन्य महापुरुषों के लिए है। गुरु तेग बहादुर के प्रति विशेष श्रद्धा है क्योंकि उन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपना बलिदान दिया था।

जहां तक गुरु गोविन्द सिंह जी का सम्बन्ध है एक तो उन्होंने अपने पिता को धर्म की रक्षा के लिये अपना बलिदान देने के लिये तैयार किया। और दूसरा यह कि वह हिन्दू देवी-देवताओं के उतने ही भक्त थे जितना कि कोई अन्य हिन्दू। वह नयनादेवी तथा आनन्दपुर साहिब दोनों स्थानों पर हवन यज्ञ करवाते रहे। लेकिन मैं तो उन्हें इसलिये भी कभी भूल नहीं सकता कि वह हिन्दी साहित्य के एक बहुत बड़े कवि थे। आज के अकाली तो हिन्दी के विरुद्ध हर समय लठ लिये फिरते हैं। गुरु गोविन्द सिंह जी ने तो कभी भी किसी से यह नहीं कहा था कि वह हिन्दी न पढ़ें। उनका लिखा हुआ विचित्र नाटक सारा ही हिन्दी में है। और गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी तो यह भी कह चुकी है कि उनकी मातृ भाषा हिन्दी थी। ऐसी स्थिति में जब कि पंजाब में हिन्दी का नामो निशान मिटाने का प्रयत्न हो रहा है तो जिन लोगों के दिल में गुरु गोविन्दसिंह के लिए वास्तव में ही श्रद्धाभाव है उनका यह कर्तव्य है कि वे पंजाब में हिन्दी को जीवित रखने के लिये जो कुछ भी कर सकते हैं करें। गुरु गोविन्द जी ने तो कई लोगों को बनारस भेजा था कि वे वहां जाकर संस्कृत पढ़ें। और उन्होंने बनारस से एक पंडित को भी बुलाया था जिससे वह स्वयं हिन्दी और संस्कृत पढ़ते रहे। आज हम जब यह मांग करते हैं कि हमें यह अधिकार दिया जावे कि हम अपने बच्चों को हिन्दी माध्यम से शिक्षा दे सकें तो अकाली हमारी बात स्वीकार करने को तैयार नहीं होते। लेकिन हमने वह रास्ता नहीं अपनाना जो अकाली करना चाहते हैं। इसलिये हमारा यह कर्तव्य बन जाता है कि पंजाब में हिन्दी की रक्षा के लिये जो कुछ भी कर सकते हैं करें। यह इसलिये भी आवश्यक है कि आगामी वर्ष के आरम्भ में जनगणना भी होने वाली है। उस समय भी हमारे सामने यह प्रश्न आयेगा कि हम क्या हैं और हमारी भाषा क्या है? भाषा के सम्बन्ध में तो अब मामला स्पष्ट हो गया है। कोई हमसे पूछे कि तुम्हारी मातृ भाषा क्या है तो हम कह सकते हैं कि वही जो गुरु गोविन्दसिंह महाराज की थी अर्थात् हिन्दी। दोनों और भाषा में धरती और आकाश का अन्तर होता है अकाली इसे नहीं समझ सकते। इसके लिये विचार की आवश्यकता है। गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज इस समस्या को अच्छी तरह समझते थे। इसीलिए उन्होंने हिन्दी में इतना साहित्य लिखा। स्वयं हिन्दी पढ़ी और दूसरों को पढ़ने के लिये कहा। जब मैं यह कहता हूं कि १२ जनवरी का दिन जो गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज का जन्म दिन है वह हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाये तो यह केवल इसलिए कि उस भाषा का प्रचार किया जाय जिसमें गुरु गोविन्द जी ने अपना साहित्य लिखा था। हिन्दी पढ़े बिना गुरु गोविन्दसिंह का साहित्य भी नहीं पढ़ा जा सकता। मैं तो यह भी कहूंगा कि जो लोग हिन्दी और संस्कृत नहीं जानते वे ग्रन्थ साहिब को भी ठीक तरह से नहीं समझ सकते। उसमें कुछ ऐसे सन्तों की वाणी है जो पंजाबी बिल्कुल नहीं जानते थे इसलिए यह और भी अनिवार्य हो जाता है कि हम हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाएं पढ़ें। इनके साथ अब पंजाबी भी पढ़नी चाहिए। और भी जितनी भाषाएं पढ़ सकते हैं पढ़ें किन्तु हिन्दी अवश्य पढ़ें। इसलिए १२ दिसम्बर का दिन गुरु तेगबहादुर की स्मृति में बलिदान दिवस के रूप में मनाया जाए और १२ जनवरी का दिन गुरु गोविन्दसिंह की स्मृति में हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाए।

—वीरेन्द्र

कहां गये वे भारत लाल

सन् १८५७ के प्रथम संग्राम की कहानी बड़ी प्रेरणादायक और उस समय के वीरों के अद्भुत साहस देश भक्ति तथा बलिदान की भावना का परिचय देने वाली है। काश कि आज उन बलिदानी वीरों के जीवनादर्श हमारे बच्चों को पढ़ाए सुनाए जाते। इन्हें उसी समय ढांचे में ढालने का व्यवस्थित यत्न किया जाता—हमारा देश अन्दर से कितना सुदृढ़ होता हमारे नवयुवक और नवयुवतियां जो आज विलासी बनते जा रहे हैं—वे देश भक्ति की पवित्र भावना से भरपूर होते और घर घर देश भक्ति के तराने गाए जाया करते तब भारत देश भूमि भारत सचमुच संसार का पूजनीय गुरु बना होता परन्तु दुर्भाग्य है कि हम ऐसा न कर सके। हमारे शासकों का तथा प्रजा जनों का ध्यान उन बलिदानों की वीर गाथाओं के महत्व को समझते हुए उधर खिंच सके इसी भावना से कर्नल मेडोज टेलर द्वारा लिखित स्टोरी आफ माई लाईफ नामक पुस्तक से हम एक छोटी आयु के राजा की वीर गाथा उद्धृत कर रहे हैं।

सन १८५७ की आजादी की पहली लड़ाई का नाम अंग्रेज विप्लव या गदर का नाम देता रहा। ऐसा नाम देकर ही वह मनमाने अत्याचार कर सकता था और कौन नहीं जानता कि इस नाम की आड़ लेकर उसने जी भर अत्याचार किए। जिस वीर की हम गाथा लिख रहे हैं वह हैदराबाद के समीपस्थ शोरापुर नाम की एक छोटी सी रियासत का राजा था। उसने अंग्रेजों से लड़ने के लिए अरब और रोहिला पठानों की एक फौज तैयार की थी। सन १८५८ ई० की फरवरी में राजा हैदराबाद आया था। निजाम के स्वामी भक्त वजीर सालारजंग ने इस की सूचना पाते ही उसको बन्दी बनाकर अंग्रेजों के हवाले कर दिया।

कर्नल मेडोज टेलर जिनकी पुस्तक से यह वृत्तान्त लिया गया है वहां एक उच्चाधिकारी थे। राजा का इनसे बड़ा प्रेम था और राजा इन्हें अप्पा कहा करते थे। जेलखाने में मेडोज टेलर ने राजा से मिलकर उनसे दूसरे विप्लवकारियों के नाम पूछे। अपनी पुस्तक में टेलर लिखते हैं कि राजा ने बड़े से उत्तर दिया—नहीं अप्पा! मैं उनके नाम कभी नहीं बताऊंगा। मैं अपने प्राणों की भिक्षा मांगने वालों में से नहीं हूं? जैसे मैं दूसरों की दया पर जीवित रहना पाप समझता हूं वैसे ही अपने देश बन्धुओं के नाम भी प्रकट करना सर्वथा अनुचित समझता हूं।

कर्नल एक दिन फिर बन्दीगृह में जाकर बालक राजा से मिले और उनसे कहा यदि तुम दूसरों के नाम बतला दोगे तो तुम्हें क्षमा कर दिया जाएगा। राजा का उत्तर भारत की परम्परा के अनुरूप यह था अप्पा साहिब जब मैं मृत्यु के मुख में जाने की तैयारी कर रहा हूं तब क्या मैं विश्वासघात करके अपने देशवासियों के नाम आपको बतला दूं? नहीं नहीं तोप या कालापानी ये सब मेरे लिए इतने भयंकर नहीं हैं जितना भयंकर विश्वासघात है।

कर्नल टेलर ने कहा राजन! तुम्हें प्राण दण्ड दिया जाएगा। देह नाशवान और आत्मा अमर है इसे आग जला नहीं सकती पानी गला नहीं सकता हवा उड़ा नहीं सकती अस्त्र शस्त्र इसका छेदन भेदन नहीं कर सकते इस सत्य सिद्धान्त को हृदय से स्वीकार करने वाले राजा ने उत्तर देते हुए कहा अप्पा! मेरी एक प्रार्थना है मुझे फांसी पर मत चढ़ाएगा। मैं चोर नहीं हूं। मुझे तोप से उड़ा दीजिएगा फिर देखिएगा मैं कितनी शान्ति से तोप के सामने खड़ा रह सकता हूं।

(शेष पृष्ठ ४ पर)

सत्याचरण

ले०—श्री सुखदेवराज आर्य शास्त्री विद्यावाचस्पति
अध्यापक—गुरु विरजानन्द स्मारक संस्कृत विद्यालय करतारपुर

परम पिता परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ मे मानव मात्र के कल्याण के लिए चार ऋषियो के हृदयो चारो वेदो का ज्ञान दिया। वेद की एक सूक्ति है कि अहमनृतात्सत्यमुपैमि अर्थात हे अग्ने प्रकाश स्वरूप परमात्मन् मैं झूठ से परे हटकर असत्य को त्याग कर सत्य को धारण करता हू। इस संसार में सत्य की बडी महिमा गाई है। वास्तव मे सत्य ही जीवन को यशस्वी बनाता है और सत्य ही ईश्वर की ओर ले जाने वाला मार्ग है बगैर सत्य के मनुष्य न इस लोक मे सुख प्राप्त कर सकता है और न ही परलोक मे। सत्य क्या है? सत्य का अर्थ है यथार्थ ज्ञान जैसा देखा सुना या अनुभव किया हो उसे वैसा ही कहने का नाम सत्य है। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज के शब्दो मे जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना लिखना और मानना सत्य कहाता है। मुण्डकोपनिषद मे लिखा है कि सत्य की ही जीत होती है असत्य की नही दिव्य जीवन का मार्ग सत्य से ही प्रशस्त बनता है। आप्त काम ऋषि इसी मार्ग द्वारा सत्य के परम धाम तक पहुचते हैं। सत्य के पथ पर चलने वाले मनुष्य की परमात्मा ही रक्षा करते है

भीष्म पितामह ने बडा सुन्दर कहा है कि—

परित्यजेयं त्रैलोक्यं राज्यं देवेषु वा पुनः
यद्वाप्यधिकमेताभ्यां न तु सत्यं कथञ्चन।

अर्थात् मैं त्रिलोकी के राज्य को त्याग सकता हू देवताओ के राज्य को ठोकर मार सकता हू। जो इन दोनो से ज्यादा महत्वपूर्ण होगा उसे भी परित्याग कर सकता हू। परन्तु सत्य को नही छोड सकता। महात्मा कबीर ने भी कितना सुन्दर लिखा है—

साच बराबर तप नही झूठ बराबर पाप
जाके हृदय सांच है ताके हृदय आप।

पद्म पुराण मे लिखा है कि—सत्य से पवित्र हुई वाणी बोलनी चाहिए। गुरु नानक देव ने भी ठीक ही कहा है कि आदि मे सत्य था युगादि में सत्य था सत्य आज भी है और आगे भी सत्य रहेगा। मनुष्य को जीवन मे कभी भी असत्य नही बोलना चाहिए सत्य को धारण करता हुआ अपने जीवन का निर्माण करे। असत्य बोलने से मनुष्य की आत्मा गिर जाती है। जो व्यक्ति बात बात मे झूठ बोलता है उसका संसार मे मान न होकर सर्वदा ही अपमान होता रहता है और दु ख सागर मे गिरकर अपने जीवन को बरबाद कर देता है। उसे संसार के लोग घृणा की दृष्टि से देखते हैं। इसीलिए मनुष्य को चाहिए कि वह असत्य को छोडकर सत्य का जीवन में धारण करे। क्योकि सत्य का मार्ग लम्बा होता है।

संसार के अनेको महापुरुषो ने सत्य से ही अपने जीवन को ऊचा उठाया और सत्याचरण करके उस पर चलने का संसार को उपदेश दिया राष्ट्रवादी महर्षि दयानन्द सत्य के पुजारी थे वह सत्य के मानने और कहने मे सर्वदा ही तत्पर रहते थे। उन्होने आर्य समाज के चौथे नियम मे लिखा है कि सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोडने मे सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। इसका मतलब यही है कि जीवन में सत्य को धारण करो सत्य बोलने से मनुष्य संसार मे बड़े से बड़े पाप से बचकर सुखगामी बन जाता है योग दर्शन के प्रणेता महर्षि पातञ्जलि ने सत्य की परिभाषा करते हुए लिखा है कि जो मन में हो वही वाणी में और वही कर्म से होना चाहिए। हमारी भारतीय संस्कृति व परम्परा में मानव जीवन की प्रथम अवस्था से ही सत्याचरण पर बहुत बल दिया जाता है। जब ब्रह्मचारी गुरुकुल से स्नातक बनकर निकलता है तो उस समय आचार्य उसको उपदेश (शिक्षा) देते हैं कि हे शिष्य! सत्यं वद अर्थात अपने जीवन में सदा सत्य बोलना धर्म का आचरण करना। उसका उत्तर देते हुए शिष्य कहता है कि—सत्यं वदिष्यामि मैं आपकी आज्ञा का पालन करता हुआ सदा सत्य ही बोलूंगा। तत्पश्चात शिष्य अपने गृहस्थाश्रम में पदार्पण कर गृहस्थाश्रम को सुखी बनाता है। क्योंकि मन भी तो सत्य से ही शुद्ध पवित्र बनकर एकाग्र होता है कहा है कि मन सत्येन शुध्यति और मन एकाग्र होकर परमात्मा का (अनुभव) साक्षात्कार होता है। इसीलिए मनुष्य का परम कर्तव्य है कि वह सत्याचरण के पालन में प्रयत्नशील रहे। आओ! हम सभी सत्य को अपने जीवन में धारण कर सुख शान्ति और आनन्द को प्राप्त करें

लोग क्या कहते हैं

(महर्षि दयानन्द सरस्वती के विषय में संसार के सुप्रसिद्ध व्यक्तियों की सम्मतियां)

१ योगी अरविन्द—संसार के महापुरुषों की यदि पर्वतों की चोटियां माना जाये तो महर्षि दयानन्द सरस्वती सबसे ऊंची चोटी है।

२ सर यदुनाथ सरकार—जब भारत के उत्थान का इतिहास लिखा जायेगा तो नंगे फकीर दयानन्द को सर्वोच्च स्थान दिया जाएगा।

३ महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी—महर्षि दयानन्द भारत के आधुनिक ऋषियों में सुधारकों में श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे उनका ब्रह्मचर्य उनकी विचार-स्वतन्त्रता उनका सबके प्रति प्रेम उनकी कार्य कुशलता इत्यादि गुण लोगों को मुग्ध करते थे।

४ माता कस्तूरी बाई—स्वामी दयानन्द केवल आर्य समाजियों के लिये ही नहीं वरन सारी दुनिया भर के लिए पूज्य हैं।

५ कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ टैगोर—आलस्य और प्राचीन ऐतिहासिक तत्व के अज्ञान से मुक्त कर भारत को सत्य और पवित्रता की जागृति में लाने वाले गुरुवर दयानन्द को बार-बार प्रणाम है।

६ मौलाना हसरत मुहानी—मिथ्या ढकोसले को जो हिन्दू जाति में विद्यमान था स्वामी दयानन्द के स्थापित आर्य समाज ने नितान्त हटा दिया।

७ श्री एन० सी० केलकर—स्वामी दयानन्द जैसे परमोदार पर संकीर्णता का दोष लगाना भ्रमात्मक और अयुक्त है। मैं आर्य समाज को आदरणीय समाज उसे पूज्य दृष्टि से देखता हू और देखता रहूंगा।

८ श्री एस० एल० पोलक (लन्दन)—स्वामी दयानन्द एक महान आत्मा और निर्भय पुरुष थे। वह अपने धार्मिक विश्वासों मे अटल रहे।

९ डा० पी० सी० राय—आर्य समाज ने हमारी मातृ भूमि के उद्धार के लिए बहुत कुछ किया है। अत अब वह हमारी चिर कृतज्ञता का पात्र है।

१० श्री पीर मुहम्मद यूनिस—महर्षि दयानन्द ने अपने विद्या बल कर्मबल और तपोबल से सारी निर्बलताओं अकर्मण्यताओ और बुराईयो को दूर कर दिया, हिन्दुओ को सच्चा और वेदानुयायी बनाया।

११ सर एडवर्ड डगलस मेक्लेगन (भूतपूर्व गवर्नर) पंजाब में जितने समाज हैं उन सब मे आर्य समाज सर्वोत्कृष्ट है। उसका संगठन बड़ा उत्तम है। वह राजनीतिक संस्था नहीं अपितु धार्मिक समाज है।

१२ बर्नेस मरकाट (अमेरिका)—नि सन्देह स्वामी जी एक 'महान् पुरुष' संस्कृत के गम्भीर विद्वान उत्कृष्ट साहस और स्वावलम्बन से युक्त तथा मनुष्यों के नेता थे। (उनका दिव्य तेज दुश्मनों को भी आकर्षित करता था)।

१३ महात्मा सी० एफ० एण्ड्रूज (इंग्लैंड)—स्वामी दयानन्द मृत्यु पर्यन्त निर्भय रहे मृत्यु आई तो उन्होंने मुस्कराते हुए उसका स्वागत किया। वे प्रसन्नता पूर्वक चोटों को सहते पर किसी दूसरे को चोट पहुचाने से घृणा करते थे। (कितना अद्भुत ब्रह्मचारी) प्रोफेसर मैक्समूलर (जर्मनी)—स्वामी दयानन्द एक विद्वान् थे जो अनेक दशा के धार्मिक साहित्य से पूर्ण परिचित थे उनके धर्म नियमो की नीव ईश्वरकृत वेदों पर थी। उनको वेद कण्ठस्थ थे। उनके मन व मस्तिष्क में वेदों ने घर किया हुआ था।

१४ लोकमान्य तिलक स्वामी दयानन्द निश्चित प्रतिभाशाली पुरुष थे। हिन्दू समाज में विशेषकर उत्तरीय भारत में समस्त जागृति का श्रेय उनको है।

(३ पृष्ठ का शेष)

कनाल टेगर के कहने से प्राण दण्ड के बदले काले पानी की सजा दी गई। जब उन्हें काले पानी भेजा जा रहा था तब राजा ने हसते हसते ही अपने साथ पहरेदार की सिपाही को भी और कबड्डी खाकर अपने अन्दर गोली खाकर गोली खाने से पहले उन्होने कहा—मैं काले पानी की अपेक्षा मृत्यु को अधिक पसन्द करता हूं। कैद और काले पानी की तो मेरी सजा का एक दृश्य से दुश्मन भगाकर भी पैदा नहीं करेगा तब मैं सो सकता हूं।

क्या आज के विद्यार्थी इन्हीं बलिदानियों के जीवन का ध्यान कर और लाखों पीड़ितों तथा बलिदानी राजा का अनुकरण करके उस बालक राजा की अमर गाथा से कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे।

—पुष्पेन्द्रनाथ जैन आर्य गाजियाबाद

तुमने भोजन दिया सभी को, तुमको अर्पण करते हैं

—डा० रामनाथ वेदालंकार

आजकल मैं गोविन्दवल्लभ पन्त औद्योगिक एवं कृषि विश्व विद्यालय पन्तनगर में निवास कर रहा हूं। यहां एक गृह विज्ञान महा विद्यालय भी है। इसमें शिक्षण प्राप्त करने वाली कन्याओं को बालमनो विज्ञान से परिचित कराने के लिए बालक बालिकाओं का एक छोटा सा स्कूल भी चलता है गृह विज्ञान की एक-एक छात्रा को एक-एक बालक सौंप दिया जाता है वही विद्यालय की पढ़ाई के समय में उस बालक की देख रेख करती है तथा पढ़ाती सिखाती भी है। मैंने अपने सवा तीन वर्षीय पौत्र स्वस्ति को इसी विद्यालय में प्रविष्ट कराया है।

एक दिन हम भोजन की मेज पर बैठे थे और भोजन प्रारम्भ करने ही वाले थे कि सहसा वह बोला—सबसे पहले मेरे साथ यह बोलो—

प्रभु हम सब छोटे बच्चे हैं
तुमको शीश झुकाते हैं।
तुमने भोजन दिया सभी को
तुमको अर्पण करते हैं॥

इसे वह अपने विद्यालय से सीखकर आया था। वहां सब बच्चे इकट्ठे बैठकर मध्याह्न करते हैं तब इससे पूर्व यह प्रार्थना दुहरायी जाती है।

यह देखकर मुझे प्रसन्नता हुई। मुझे गुरुकुल कांगड़ी के अपने छात्रावस्था के दिन स्मरण हो आए। जब मैं गुरुकुल में प्रविष्ट हुआ था तब निम्नलिखित मन्त्र भोजन से पूर्व बोला जाता था—

ओं सह नाववतु सह नौ भुनक्तु
सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु
मा विद्विषावहै॥

जब महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह चला रहे थे तब गुरुकुल के छात्रों ने मजदूरी करके कुछ धन इकट्ठा किया था तथा महात्मा गांधी को भेजा था। इससे वे गुरुकुल के बहुत प्रभावित थे। इसीलिए जब वे दक्षिण अफ्रीका से भारत आए तब अपने साथियों सहित गुरुकुल महात्मा मुन्शीराम के आतिथ्य में गुरुकुल आकर रहे थे। उस समय भी उपर्युक्त मन्त्र ही भोजन से पूर्व बोला जाता था। वे भी गुरुकुल से यह मन्त्र सीख गए और जब उन्होंने आश्रम खोला तो वहां भी भोजन से पूर्व यही मन्त्र बोला जाने लगा। एक बार आचार्य देव शर्मा जी ने गांधी जी के आश्रम में इस मन्त्र को बोला जाते हुए सुनकर गांधी जी से कहा कि इस मन्त्र का तो भोजन से कोई सम्बन्ध नहीं है। तब उन्होंने उत्तर दिया कि इसे तो हम आपके गुरुकुल से ही सीख कर आए हैं। वर्धा आश्रम में भी यही मन्त्र चलता था। विनोबा जी को भी आचार्य देव शर्मा जी ने टोका। तब विनोबा जी ने कैसे तैसे इसकी संगति भोजन के साथ लगाकर बतायी। आचार्य जी ने हम छात्रों को यह घटना सुनाते हुए बताया था कि विनोबा जी ने जो संगति लगायी उससे तो मैं प्रभावित नहीं हुआ किन्तु यह देख प्रसन्नता अवश्य हुई कि यह लोग गुरुकुल से कुछ सीखते हैं।

वस्तुतः उक्त मन्त्र प्राचीन समय में अध्ययन प्रारम्भ करने से पूर्व गुरु और शिष्य मिलकर बोलते थे। इसमें आए 'भुनक्तु' शब्द को देखकर भोजन वेला में इसका विनियोग कर लिया गया। परन्तु भुज धातु यद्यपि धातु पाठ के अनुसार पालन और भोजन अर्थ में यह आमने वाली होती है। प्रस्तुत मन्त्र में परस्मैपदी प्रयुक्त होने से इसका यहां पालन अर्थ ही होना चाहिए सम्पूर्ण मन्त्र का अर्थ इस प्रकार होगा—

(ओ३म्) परमेश्वर (नौ) हम दोनों गुरु शिष्य की (सह) एक साथ (अवतु) आपत्तियों से रक्षा करे (सह) एक साथ (नौ) हम दोनों का (भुनक्तु) पालन करे। हम दोनों (सह) एक साथ (वीर्य करवावहै)। विद्या बल आत्मिक बल एवं शारीरिक बल का संचय करें। (नौ) हम दोनों का (अधीतं) अध्ययन (तेजस्वी अस्तु) तेजस्वी हो। हम दोनों परस्पर (मा विद्विषावहै) द्वेष न करें।

यह मन्त्र गुरु शिष्य के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में एक आदर्श प्रस्तुत करता है। आजकल यदि शिक्षा जगत् में इस मन्त्र में प्रतिपादित आदर्श लागू हो जाए तो शिक्षा जगत की सब समस्याओं का स्वतः समाधान हो जाए।

जब हम गुरुकुल में विद्यालय के छात्र थे तब उक्त मन्त्र के स्थान पर कक्षा में उपाध्याय के आने पर खड़े होकर यह मन्त्र बोलते थे—ओ३म् नमस्ते अस्तु भगवन् ... सह नौ यशः ... इत्यादि।

मन्त्र का शिक्षा सम्बन्धी अर्थ हमने देख लिया किन्तु यदि भोजन के साथ इसकी संगति लगानी ही हो तो भुनक्तु में णिच् का लोप मानकर इसका अर्थ भोजयतु करना होगा। तब आशय यह होगा कि परमेश्वर हम गुरु शिष्यों को एक साथ भोजन कराए गुरु शिष्य साथ बैठकर भोजन करें यह भी प्राचीन गुरुकुलों का एक आदर्श था।

बहुत समय तक गुरुकुल में भोजन वेला में सह नाववतु मन्त्र ही बोला जाता रहा। बाद में इसका स्थान यजुर्वेद के निम्न मन्त्र ने ले लिया—

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य
शुष्मिणः। प्र प्र दातारं तारिष
ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे।

यजु० ११।८३

अर्थ—(अन्नपते) हे अन्नों के अधिपति परमेश्वर आप (अनमीवस्य) स्वास्थ्य प्रदायक (शुष्मिणः) बलदायक (अन्नस्य) अन्न को (नः देहि) हमें प्रदान कीजिए। हमें आपके अन्नों को प्राप्त कराने का जो माध्यम बने उस दातार) दाता को आप (प्र प्र तारिष) अतिशय समृद्ध कीजिए। अन्न के द्वारा आप (नः) हमें और (द्विपदे चतुष्पदे) सब दोपाये चौपायों को (ऊर्जं धेहि) बल और प्राण प्रदान कीजिए।

इस मन्त्र का भोजन से सीधा सम्बन्ध है। जब हम गुरुकुल में महाविद्यालय के छात्र थे तब भोजन काल में इसी मन्त्र को बोलते रहे जैसे सह नाववतु मन्त्र शिक्षा विषयक आदर्श का प्रस्तुत करता है वैसे ही अन्नपते मन्त्र हमें भोजन सम्बन्धी आदर्श सिखाता है। हम ऐसा अन्न खाएं जिससे हमारा शरीर मन आत्मा नीरोग रहें। शारीरिक एवं आत्मिक बल और प्राण शक्ति प्राप्त हो सके ही जगत में कोई भूखा न रहे न केवल मनुष्यों को अन्न प्राप्त हो अपितु पशु पक्षी भी उससे वंचित न रहें दाता का भी कल्याण हो यह वैदिक भावना है।

पन्तनगर के छोटे से शिशु विद्या मन्दिर में नन्हे नन्हे बच्चे भोजन से पूर्व जो प्रभु को शीश झुकाते हैं और प्रभु का दिया भोजन प्रभु को अर्पण करते हैं वह भावना भी इस मन्त्र में ध्वनित हो रही है।

—

एक आवश्यक सूचना : भ्रान्ति निवारण

सब आर्य सज्जनों को सूचित किया जाता है कि आर्य समाज के युवा स्तम्भ सदाचारी तेजस्वी विद्वान कुशल वैदिक प्रवक्ता आचार्य नरेश जी के बारे में कुछ व्यक्तियों ने ये भ्रान्ति फैलाई है कि उन्होंने लन्दन यात्रा के लिए पैसा एकत्र किया व लन्दन न जाकर पैसा अपने पास ही रख लिया। इस प्रकार का निराधार प्रचार करने वाले व्यक्तियों को ये निश्चित रूप पता नहीं कि यदि आचार्य नरेश जी को पैसा ही एकत्रित करना होता तो वे अपनी इंजीनियरिंग की नौकरी समस्त परिवार तथा माता पिता के मोह को ठोकर मारकर आर्य समाज को अपना जीवन दान न देते और अपने अन्य भाइयों की तरह आज कहीं नौकरी तथा व्यापार करते हुए कोठी और कार के मालिक होकर बसते। इस प्रकार के लोगों को बोलने से पहले अवश्य ही विचार लेना चाहिए कि ऐसे व्यक्ति पर धन के लोभ का आरोप लगाना निराधार है।

सर्वजनों को विदित है कि ब्रह्मचारी आर्य नरेश जी को पैसे ही विदेश जाने तथा वेद प्रचार करने की भावना के प्रशंसा की था तथा ब्रह्मचारी जी का विचार बनने पर उनकी यात्रा व्यय के लिए कुछ राशि एकत्र की थी। समय कम होने से हम पूरा पैसा जुटा भी नहीं सके तथा दूसरा पासपोर्ट समय पर न बन पाने के कारण ब्रह्मचारी जी लन्दन नहीं जा सके जो पैसा लन्दन यात्रा के लिए एकत्र किया गया था वह अब भी हमारे पास सुरक्षित है अब हमारी इच्छा है कि इस पैसे में कुछ और वृद्धि करके ब्रह्मचारी आर्य नरेश जी को पुनः प्रचारार्थ विदेश भेजने का सफल प्रयास करें ताकि भारत की तरह ही बाहर देशों में भी वे वेद तथा ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों का प्रचार कर सकें।

— श्रीमती कान्ता गौड़ प्रधाना
स्त्री आर्य समाज दयानन्द
बाजार लुधियाना।

—

भूल सुधार

आर्य मर्यादा के ७ दिसम्बर के अंक में श्री पं० रामदयालु जी शास्त्री का एक लेख श्री पं० बिहारीलाल जी शास्त्री की चिन्ता कैसे दूर हो? छपा है। ऊपर पता श्री पं० रामदयालु जी शास्त्री ठीक है। परन्तु लेख के नीचे भूल से पं० शिवदयालु शास्त्री छप गया है। पाठक शिवदयालु के स्थान पर रामदयालु ही पढ़ें।

—सम्पादक

ठनी भी खूब और बनी भी खूब

ले०—श्री काशीराम जी चावला लुधियाना

(२१ नवम्बर से आगे)

बनी भी खूब और ठनी भी खूब यह एक पारिवारिक कहानी है। इस कहानी मे पारिवारिक समस्याओ और आज के वातावरण मे पले लड़के-लड़कियो का चित्रण अच्छी प्रकार से किया गया है। इस कहानी के लेखक श्री काशीराम जी चावला (लुधियाना) हैं और इसका उर्दू से हिन्दी मे अनुवाद सभा के पुस्तकाध्यक्ष तथा आर्य मर्यादा के व्यवस्थापक श्री आशानन्द जी भोला (लुधियाना) ने किया है।

—सह सम्पादक

इन दोनो लड़कियो मे कुछ चीज ऐसी थी जो उस भांति की थी अन्त मे उसने एक कागज पर उन दोनों लड़कियो के नाम लिख कर उनके गुणो को नम्बर देने आरम्भ कर दिया नम्बर भी उनके गुणो के एक जैसे आने से वह बड़े झंझट मे पड़ गया उसने दिए हुए नम्बरो मे घटा बढ़ी करने का यत्न किया परन्तु वह न कर सका। उसके मन मे कई बार विचार आया क्या अच्छा हो कि उसका विवाह दोनों लड़कियो से हो जावे क्योंकि दोनो मे से एक को पसन्द करना उसके लिए बड़ा कठिन था। परन्तु यह तो केवल उसके मन का बहलावा था। इन्हीं विचारो में उसे अपना खाना पीना नहाना धोना सब भूल गया। वह दोनों चित्र सामने रखकर सिर झुकाए सोच में पड़ा रहता। अन्त मे एक दिन उसकी माता ने आकर पूछा शिवकुमार तुम किस संकट में फसे हुए हो। पहले तो हमारे प्रस्ताव को अस्वीकार करके तुमने हमे चिन्तत किया। अब स्वयं चिन्तत हो रहे हो। मुझे तो अपनी समस्या बताओ जिस मे तुम फस कर इतने फिकर में डूबे हुए हो

तब शिव कुमार ने अपने पूरे विचार अपनी माता को सुनाए और जिस जिस खूबी के जितने नम्बर इन दोनो लड़कियो को दिए थे वह भी माता जी को पढ़ सुनाए।

यह सब कुछ सुन कर उसकी माता ने पूछा कि खानदानी शराफत उसकी सेहत घर के काम काज के सम्बन्ध मे नम्बर क्यों नहीं दिए। उसके उत्तर मे शिवकुमार ने कहा कि खानदान तो खाली कल्पित हैं, और बाकि बातो का तो प्रश्न ही नहीं उठता मैंने तो केवल वही बातें अपने मन मे रखी हुई हैं जिन की मुझे आवश्यकता है। शिव कुमार की माता बेटे का यह उत्तर सुन कर हैरान रह गई। कि जो गुण लड़की में होने चाहिए उनकी वह जरूरत नहीं समझता फिर उसने शिवकुमार से कहा बेटा कि खानदानी शराफत से मेरा मतलब उनके खानदान होने से नहीं था मेरा अभिप्राय था खानदानी शराफत और अच्छा।

यह सुनकर शिवकुमार ने नाक चढ़ा कर कहा यह भी कोई सोचने योग्य बात है, अच्छा आप मुझे एकान्त में छोड़ दें मैं इन व्यर्थ बातो के सम्बन्ध में अपना अमूल्य समय बरबाद नही कर सकता।

अपने बेटे के यह शब्द सुनकर बेचारी माता अपना सा मुख लेकर वहा से चुप चाप चली गई। परन्तु दिल ही दिल स कहती जाती थी कि वाह भगवान यह दिन भी आने थे और हमने देखने थे। न जाने इन बच्चो की बुद्धि पर क्या परदा पड़ गया है जो बातें अतिआवश्यक हैं और जिनका ज्ञान प्राप्त करना अति आवश्यक हैं उनकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता और जो बातें बेमर्थ हैं। उनकी ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। मैं चाहती थी कि किसी ऐसे घर की लड़की आती जिस के सम्बन्ध मे हमें पूरा-पूरा ज्ञान होता ताकि वह लड़की आकर मुझ आराम और सुख देती मैंने बहुत प्रार्थनाए करके यह बेटा पाया था और कितने दुखो से इसे पाला था केवल इसी आशा पर कि इसकी पत्नी आकर मेरे घर के काम काज में सहायक बनेगी और मेरी सेवा करेगी अब न जाने यह लड़की जो शिव कुमार लाएगा कैसी होगी। उसका स्वभाव कैसा होगा और मेरे साथ कैसा व्यवहार करेगी।

जब शिव कुमार, की माता उसके पास से चली गई तो वह पुन उसी धुन में लग गया। परन्तु किसी निर्णय पर न पहुच सका। भावुक और पतले जिस्म मे वह अधिक रुचि रखता था इस लिए उसका झुकाव श्यामा की ओर था। परन्तु दूसरी लड़की प्रभा का हस मुख चेहरा और बोलने का ढग बहुत अच्छा था फिर भी वह श्यामा की ओर अधिक झुकता था।

काफी विचार के पश्चात उसने निर्णय किया कि हर प्रकार से श्यामा का नाता लेना मेरे लिए ठीक होगा।

शिव कुमार ने श्यामा के पिता को अपनी स्वीकृति का पत्र लिख भेजा और प्रभा का चित्र वापस भेज दिया। पढ़कर श्यामा के माता पिता बहुत खुश हुए उन की तीन लड़कियां थी उन्होंने सोचा चलो एक से छुट्टी मिली थोड़े दिनों के पश्चात् विवाह की तिथि नियत हो गई। और नियत दिन शिवकुमार की बारात गई और रीति अनुसार विवाह कर के श्यामा को पत्नी बना कर खुशी खुशी घर ले आया।

इस विवाह पर शिवकुमार खुश भी था और उसे अपने चुनाव पर गौरव भी था कि उस ने पूरे सोच विचार के साथ और छान-बीन कर के अपनी पत्नी को चुना था। श्यामा नियम के अनुसार कुछ दिनों के लिए एक बार अपने पिता के घर गई और शीघ्र ही शिवकुमार उसें जाकर वापस ले आया।

श्यामा के पिता ने उस को शिक्षा तो पूरी ग्रहण करा दी थी। परन्तु उसकी माता उससे कुछ न थी क्योंकि खाना घर के कामों को हाथ न लगाती थी। श्यामा जब ससुराल गई तो वहां भी उसकी वही आदत रही, वह प्रात काफी देर से बिस्तरे से उठती और वहां ही चाय पी लेती फिर कोई नावल उठाकर पढ़ने लगती। इसके पश्चात अपने बनाव सिंगार मे लग जाती इस प्रकार दिन के ग्यारह बज जाते फिर वह एक दो पत्र लिखती। उसके पश्चात् किसी आने वाली से मिलती दोपहर का भोजन खाकर सो जाती। उठने पर अपने बाल ठीक करके मेकअप करती और फिर कोई नावल लेकर अपने कमरे का दरवाजा बन्द करके अन्दर बैठ पढ़ती रहती। इतने में चाय का समय हो जाता। जो लड़कियां उससे मिलने आती कभी कभी उन्हें भी चाय पर बुला लेती। इस प्रकार गपशप लगाते शाम का समय हो जाता तब वह शिव कुमार के साथ या फिर अपनी सखीं के साथ बाहर सैर करने चली जाती और वहा से काफी देर के पश्चात् वापस आती खाना खाने के पश्चात कोई कहानियो की पुस्तक या नावल पढ़ने बैठ जाती, इस प्रकार उस का दिन का कार्यक्रम चलता।

शिव कुमार को उसके पिता ने अपने एक मित्र के कारखाने में कार्य पर लगवा दिया था। वह शाम काम वहां से वापिस आकर श्यामा के साथ इधर उधर की गप्पें मारता और फिर दोनों पति पत्नी सैर को निकल जाते। शिव कुमार बहुत आनन्द से जीवन बिताने लगा। वह बहुत खुश था कि उसको वैसी ही पत्नी मिली जैसी कि वह चाहता था। वह सदा अपने मन में कहता अच्छा हुआ कि मैंने प्रभा को पसन्द नहीं किया, वह इतनी भावुक न थी। थोड़ी देर दोनों हस खेलकर सो जाते। अगले दिन उसी प्रकार प्रोग्राम चलता।

श्यामा की सास ससुर को उसका कार्यक्रम बहुत अखरता था, क्योंकि वह सब कुछ उनकी उम्मीद के विरुद्ध था। और शिव कुमार की माता की सब आशाओं पर पानी फिर गया था परन्तु वह दोनों बहू बेटे का रंग ढग देख रहे थे। ऊपर से वह चुप थे परन्तु अन्दर ही अन्दर घुल रहे थे।

(क्रमशः)

ज्ञानी रामसिंह उपदेशक द्वारा शुद्धि कार्य

ज्ञानी रामसिंह जी ने आर्य समाज बस्तिगुजा (?) जालन्धर तथा अन्य आर्य बंधुओं के सहयोग से अपने पिछड़े भाईयों को वापिस लाने और अपनी बिछड़ी जाति का अंग बनाने का अभियान प्रारम्भ कर दिया है, जाब सिम्बियां तथा रोहुखान (?) में क्रमश ११२ तथा ४३८ ईसाई शुद्ध किये गये। ग्राम कुलवीक (जालन्धर) में २६३ व्यक्तियों को जो मुसलमान बन चुके थे, शुद्ध किया गया। अन्य कई ग्रामों में भी शुद्धि का कार्य भी ज्ञानी जी कर रहे हैं।

क्या आपने हस्ताक्षर कर दिए?

राष्ट्रपति को पत्राव में हिन्दी को सम्मानित स्थान दिलाने के लिए जो ज्ञापन देना है क्या उस पर आपने हस्ताक्षर कर दिए हैं? यदि नहीं किए तो अपने नगर की किसी भी आर्य समाज में जाकर वह ज्ञापन ले लें और उस पर हस्ताक्षर कर दें।

जिन फार्मों पर हस्ताक्षर हो गए हैं वह शीघ्र सभा कार्यालय में भिजवा दें।

—वीरेन्द्र

अमर शहीद पं. लेखराम जी नूं श्रद्धांजलि

श्री जसवन्तराय जी राय ने कादियां में १० नवम्बर को यह कविता पं
लेखराम जी को श्रद्धांजलि भेंट करते हुए प्रान्तीय सम्मेलन में पढ़ी।

लेखराम सदे सा के जिन्दगी नू
रब कौम ते नवां चढ़ा गया ए।
अमर आत्मा फानी है जिस्म साडा
गीता ज्ञान दा राज समझा गया ए।
कल्ली जान पर लक्खां दी जान अन्दर
सदके जान करके जान पा गया ए
सानू जिन्दगी दी जाच सिखा गया ए।
सानू मरन दी जाच सिखा गया ए।
हुन्दे अमर शहीद नहीं कदे शहीद मरदे
ओहदी आत्मा कादियां वसदी ए
वेखो मैंना कराया वे वेहड़या ते
लेखराम दी आत्मा हसदी ए।

×	+	★

लेखराम ने लई अंगड़ाई ऐथर
उधर मौत अंगड़ाइयां लै रही सी
साडे नाल दी नाल यमदूत फिरदा
मुहो मूंह सारी बकवक कह रही सी
ज नाल दी जीवन दी शाम हो गई
मौत जिन्दगी दे नाल खेल रही सी
इक इक बूंद चों होवेगा वीर पैदा
अमर वीर दी आत्मा कह रही सी।
लेखराम दी आत्मा कादियां च,
जग जगावदी हिन्दु जवानियां नू।
केहड़ें योद्धा दा खून खौलदा ए
कौन भिकसदा योद्धा कुरबानियां नू।

+	★	★

साडे नबा नू साडे सबके ने
हिन्दु योद्धा अजब अडोल ते सही
दयानन्द दे उसदे मोड फिकरे
मुड़ के मूंह इतिहास दा मोड़ ते सही।
श्रद्धानन्द जी ते लेखराम पंडित
दयानन्द साईं रिश्ता जोड़ ते सही
अर्जुन शूर प्रताप दे वांग वीरा
मुड़ के वैरी दी धौण मरोड़ ते सही।
वन्दे मातरम् तो सिख दी सबक कोई
चालन इसदी चमड़ी उतारदा सी
कोड़े खा खा एह पर रामचन्द्र,
वन्दे मातरम दा नारा मारदा सी।
ववरे केहड़ पुलेके च पै गया ए
वीर हिन्दुआ है हिन्दुस्तान तेरा।
अनुष बाण गाण्डीव सभाल ता सई
कौन जम्या करे अपमान तेरा।
जरा अपणा आप पछाण ते सई
पायी जरेगा फेर जहान तेरा
इह जो आकड़ फिरन सिपाही काहदे,
इक दम खत्म कर देऊ अग्नि बाण तेरा।
लेखराम कुर्बानी ना देवदा सी
करदा रहेगा पूजा ससार ओहदी।
अमवीर शहीद दी वेख राए
कवी-कवियां च जयकार ओहदी।

नि०—श्री जसवन्तराय जी राय वानप्रस्थ

यज्ञ की महिमा

लेखिका—डा० पुष्पावती जी वाराणसी

मीमांसा दर्शन कहता है स्वर्ग कामो यजेत स्वर्ग का अर्थ है सुख।

सुख क्या है? प्रत्येक व्यक्ति सुख की कामना करता है। सुख क्या है? इच्छित वस्तु की प्राप्ति का नाम सुख है यज्ञ के द्वारा सुख प्राप्ति सम्भव है इसलिए ऋषियों ने यज्ञ का विधान किया है यज्ञ क्या है? मन्त्रोच्चार पूर्वक हवन कुण्ड में आहुति दान का नाम यज्ञ है। यज्ञ का दूसरा नाम हवन है। हु धातु से हवन शब्द की निष्पत्ति है। हु का अर्थ है दान और आदान अर्थात् कुछ देना और कुछ लेना अथवा कुछ देकर कुछ लेना अथवा कुछ लेकर कुछ देना ससार का यह अटल नियम है कि कुछ देकर ही कुछ लिया जा सकता है या कुछ लेने के लिए कुछ देना ही पड़ता है। यज्ञ के द्वारा यह लेने देने की प्रक्रिया सम्पन्न होती है। यज्ञ में हम कुछ घृत व सामग्री का दान करते हैं और बदले में प्राप्त करते हैं कामनाओं की पूर्ति। यह कैसे सम्भव है?

इसका रहस्य है कि जो परोपकार करता है दूसरों को सुख पहुंचाता है उसका भी मन प्रसन्न होता है और स्वयं भी सुखी होता है। यज्ञ परोपकार का सर्वोत्तम साधन है। यज्ञ में छोड़ी हुई आहुति सबको (हिन्दू मुसलमान ईसाई आदिकों का) सब धनी निर्धन छोटे बड़े सभी को समान रूप से प्राप्त होती है।

पशु तक को उसका लाभ पहुंचता है। विदेश तक में वह पहुंचती है और लाभान्वित करती है। वायु मण्डल की शुद्धि करके प्राकृतिक शक्तियों को परिपुष्ट करती है। वे शक्तियां बदले में जगत को सुख प्रदान करती हैं। इस प्रकार यज्ञ के द्वारा सारी सृष्टि का कल्याण होता है तो उसके बदले में यज्ञकर्ता को सुख मिले तो आश्चर्य व असम्भव क्या है?

यज्ञ से एक बड़ा लाभ और भी है कि इसके साथ वेद मन्त्रों का उच्चारण भी सन्निहित है। वेद मन्त्रों के पाठ से मन बुद्धि की सम्पन्नता होती है तथा वेद रक्षा भी हो जाती है। वेद मन्त्रों का यदि अर्थ ज्ञान हो तो सोने में सुहागा मिल जाता है। वेद मन्त्रों की संरचना ही अलौकिक व अपौरुषेय है अतः मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण में ही वैशिष्ट्य तथा प्रभावोत्पादकता है।

अतः यज्ञ अनेक विध लाभदायक व पुण्य विधायक है। इस समय देश में अभाव अन्य महंगाई से हाहाकार मच रहा है। दूध घी जैसी वस्तुएं जिनकी जीवन निर्माण में प्रथम आवश्यकता है दुर्लभ प्राप्त हो रही हैं। भ्रष्टाचार से की हुई कमाई से अनुशासनहीनता प्रेम सद्भाव का नाश चारित्रिक पतन मर्यादा भंग अराजकता आदि दुर्भाव प्रवृत्त हो रहे हैं और प्रत्येक व्यक्ति दुःखी है। यह सब रोग शास्त्रीय विधि से किये हुये यज्ञानुष्ठान से ही दूर होंगे। यज्ञ सुख (इहलौकिक व पारलौकिक) की प्राप्ति निष्ठा व साधना प्रधान वैज्ञानिक प्रक्रिया है इसीलिए यह समान रूप से सबको (ईसाई मुसलमान सिख पारसी आदि) को करने योग्य है। वैदिक संस्कृति के तत्व व प्रक्रियाएं सार्वकालिक व सार्वजनिक हैं अतः यज्ञ अनुष्ठान ही सभी के लिए समान उपयोगी है।

—

श्री देवदत्त जी को बधाई

सभा के मुख्य लेखक श्री देवदत्त नारंग के सुपुत्र श्री अनिल कुमार जी नारंग का शुभ विवाह गत दिनों वैदिक रीति अनुसार बड़ी धूम धाम से जालन्धर में सम्पन्न हुआ। विवाह संस्कार सुयोग्य विद्वान् प० धर्मदेव जी ने करवाया। इस विवाह में नगर के बहुत से गण्य मान्य लोगों ने पधार कर वर वधू को आशीर्वाद दिया।

—व्यवस्थापक

—

बधाई

पठानकोट आर्य समाज के प्रसिद्ध कार्यकर्ता श्री स्वतन्त्र कुमार जी का शुभ विवाह ३० ११ ८० को वैदिक रीति के अनुसार जालन्धर में सुयोग्य पंडित श्री निरञ्जनदेव जी के पुरोहित्य में सम्पन्न हुआ। हम सभा की ओर से श्री स्वतन्त्र कुमार जी को बधाई देते हैं।

—व्यवस्थापक

—

अनाथ हिन्दू बच्चों को धोखे से ईसाई बनाने की साजिश

यह देखकर स्तम्भित रह जाना पड़ता है कि जिम्मेवार सरकारी अधिकारी और प्रतिष्ठित नागरिक जो सब स्वयं हिन्दू ही हैं एक ऐसी घृणित साजिश में लिप्त हैं जिसके अनुसार अनाथ और परित्यक्त हिन्दू बच्चों को विदेशों में भेजा जाता है ताकि वहां उनका धर्मान्तरण हो सके। इस साजिश की पुष्टि स्वयं माननीय न्यायाधीश श्री देसाई ने अपने एक निर्णय में की है।

यह भी आशंका व्यक्त की जा रही है कि इस षड्यन्त्र के अन्तर्गत ईसाई बनाने के लिए विदेशों में अवैधानिक ढंग से भेजे जाने वाले बच्चों की संख्या बहुत अधिक है। पर उनमें से बहुत कम मामले ही प्रकाश में आ पाते हैं। इस शोचनीय और दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का एक कारण यह भी है कि उन अभागे बच्चों के रक्षक ही उनके भक्षक बन जाते हैं जैसा कि हाल के कुछ मामलों से स्पष्ट है।

इस अराष्ट्रीय अधार्मिक और असामाजिक दुष्प्रवृत्ति को रोकने के लिए शासन को अविलम्ब बाल कल्याण गृहों जैसी संस्थाओं में ऐसे ईमानदार और ध्येयनिष्ठ अधिकारियों को रखना होगा जो विदेशी मिशनरियों के दलालों की भूमिका न निभाएं। मिशनरियों के षड्यन्त्र में शरीक लोगों को कड़ा दण्ड देना भी जरूरी है।

(विश्व हिन्दू परिषद की ओर से)

दिल्ली आर्य महासम्मेलन

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा रामलीला ग्राउंड दिल्ली में २५ से २८ दिसम्बर १९८० तक दिल्ली आर्य महासम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। इसके अध्यक्ष हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के वीर सेनानी रामचन्द्रराव वन्दे मातरम होंगे।

महासम्मेलन के अन्तर्गत आर्य सम्मेलन वेद सम्मेलन संस्कृत सम्मेलन भारत रक्षा सम्मेलन युवक सम्मेलन महिला सम्मेलन तथा जनगणना सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है।

महासम्मेलन का जलूस २५ दिसम्बर को श्रद्धानन्द बलिदान दिवस के जलूस में सम्मिलित होगा।

—विद्यासागर सभा मन्त्री

मुरादाबाद के दंगों में पीड़ित बन्धुओं की सहायता की जाए

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने मुरादाबाद में साम्प्रदायिक दंगों में पीड़ित हरिजनों को आर्थिक सहायता देने की घोषणा की। इसके अतिरिक्त आग से जलाकर नष्ट किये गये मकान बनाने, रोजगार चलाने तथा अन्य सहायता सामग्री भेजने का भी निर्णय लिया गया।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री लाला रामगोपाल जी शालवाले भूतपूर्व संसद सदस्य श्री प्रो० बलराज मधोक तथा सभा के उपसचिव श्री सच्चिदानन्द शास्त्री ने स्थानीय आर्य समाजी नेताओं के साथ ३० अक्तूबर को हुए दंगों में मुरादाबाद में बरबाद वाल्मीकियों तथा कुम्हारों की बस्तियों का निरीक्षण किया। इन्दिरा चौक तथा बलालपुरा स्थित वाल्मीकियों की बस्ती में अनेक मकानों को जलाया गया था तथा जुलकर लूटा गया था। आर्य नेताओं ने वहां के निवासियों से डट के पुनः साम्प्रदायिक शान्ति स्थापित करने की अपील की।

श्री शालवाले ने सर्वोच्च ढंग से सारे मामले विदेशी धन की जांच तथा अवैध शस्त्रों की खोज का काम तेजी से करने की मांग की। उन्होंने धड़ाधड़ गिरफ्तारियां कर आतंक फैलाने वाले अधिकारियों को तुरन्त स्थानान्तरित किये जाने की मांग की।

प्रचार विभाग

आर्य समाज खेमकरण में वेद प्रचार

आर्य समाज खेमकरण में २७ अक्तूबर से २ नवम्बर तक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक श्री प० रामनाथजी सिद्धान्त विशारद ने सात दिन तक बड़े प्रभावशाली व्याख्यान दिये अच्छा प्रभाव रहा।

— आर्य समाज फरीदकोट में ऋषि निर्वाणोत्सव डी० ए० वी० प्राईमरी स्कूल की ओर से बड़ी धूमधाम से मनाया गया। श्री प० रामनाथ जी सिद्धान्त विशारद महोपदेशक के व्याख्यान होते रहे बड़ा अच्छा प्रभाव रहा।

—मन्त्री

श्री वीरेन्द्र जी सम्पादक तथा प्रकाशक द्वारा जगहिन्द प्रिंटिंग प्रेस जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा जालन्धर से इसकी स्वामिनि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र जालन्धर

वार्षिकशुल्क 15) वर्ष 13, अंक 48 7 फाल्गुन सम्वत् 2037, तदनुसार 21 दिसम्बर 1980 का अंक दयानन्दाब्द 156

शुद्धि अर्थात मस्तिष्क का राष्ट्रीयकरण के प्रबल समर्थक—

अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी सरस्वती

अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन की संक्षिप्त झांकी

पिता का नाम—श्री नानकचन्द जी नाम पूर्व नाम—मुन्शीराम
जन्म—तलवन ग्राम जिला जालन्धर (पंजाब) फरवरी १८५६।
विद्यारम्भ (बनारस) १८६६। धर्म विरोधी भाव १८७५
ऋषि दयानन्द का सत्संग (बरेली) १८७९।
आर्य समाज में प्रवेश (लाहौर) १८८४।
वकालत परीक्षा पास की १८८७ प्रथम पुत्र हरिश्चन्द्र का जन्म १८८७
धर्म प्रचार का धन एवं कांग्रेस से सर्वप्रथम सम्बन्ध १८८८।
द्वितीय पुत्र इन्द्र का जन्म—१८८९
सद्धर्म प्रचारक का प्रकाशन १२ अप्रैल १८८९
धर्म पत्नी का देहान्त—१८९१।
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान निर्वाचित १८९२।
गुरुकुल खोलने का संकल्प—१८९ ।
गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना २ मार्च—१९०२।
सार्वदेशिक सभा के प्रधान निर्वाचित १९०९।
हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति (भागलपुर) १९०९।
संन्यास आश्रम में प्रवेश (नाम श्रद्धानन्द) २ अप्रैल १९१७।
गढ़वाल के दुर्भिक्ष पीड़ितों की सेवा १९१८
राजनीति में सक्रिय भाग १९१८।
अमृतसर कांग्रेस का स्वागताध्यक्ष बनना १९१९।
देहली की जामा मस्जिद में उपदेश १९१९।
पुनः गुरुकुल में (दो वर्ष) ११ फरवरी १९२०।
श्रद्धा का प्रकाशन (पौने दो वर्ष) १९२०।
असहयोग आन्दोलन में १९२१ २२। गुरु के बाग का मोर्चा १९२२
शुद्धि तथा दलितोद्धार सभा की स्थापना फरवरी—१९२३।
हिन्दू संगठन—१९२३।
दक्षिण भारत में अस्पृश्यता निवारण—१९२४।
दयानन्द जन्म शताब्दी का नेतृत्व मार्च—१९२५।
लिबरेटर का प्रकाशन अप्रैल १९२५।
बलिदान दिवस—२३ दिसम्बर १९२६।

श्री श्रद्धानन्द वचनामृत

जो पुराने संस्कारों या लौकिक कामनाओं के वशीभूत होकर अपने आत्मा और धर्म की कुछ भी कीमत नहीं समझते उनको उचित यह है कि वे अपने आपको धार्मिक न नाम कहना छोड़ दें।



जो पुरुष अपने को संसार की बहुतायतों से परे नहीं रख सकते जो मित्र को पाप करते देख कर उसे रोकना तो दूर रहा उसके पाप में मिल जाते हैं उन्हें किसी धार्मिक संस्था के नेता होने का अधिकार नहीं।

आदर्श नेता

उत्तम नेता में सब सौम्य गुणों का निवास होना चाहिए। जिसका स्वभाव सरल न हो जो विपत्तियों को प्रसन्नता पूर्वक सहन नहीं कर सकता जिसे कष्ट उसके उच्चासन से डिगा सकता है वह नेता होने के योग्य नहीं। नेता का धर्म यही नहीं कि कर्मवीर हो किन्तु उसका यह भी कर्तव्य है कि कर्महीन पुरुषों को कर्मशील बनाए। तब उसे सब कर्मवीरों से भी आगे होना चाहिए अर्थात कर्मवीरों में भी उत्तम कर्मवीर होना चाहिए।

कीर्ति का त्याग

जो लोग कीर्ति के पीछे भागते हैं कीर्ति उनको त्याग देती है परन्तु जो कीर्ति की परवाह नहीं करते कीर्ति उनके पीछे भागती फिरती है।

(इस अंक का मूल्य ४० पैसे)

सर्वस्व त्यागी आदर्श नेता स्वामी श्रद्धानन्द

ले०—श्री ओम्प्रकाश आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष

ओ३म्

स्वामी श्रद्धानन्द जी का नाम लेते ही एक समर्पित और क्रियात्मक जीवन उभर कर सामने आ खड़ा होता है। इस महामानव के जीवन की कहानी बड़ी विचित्र विस्मयकारक और प्रेरणाप्रद है किस प्रकार दोषपूर्ण जीवन मे आकण्ठ डूबा हुआ एक धनी परिवार मे उत्पन्न तथा सिटी कोतवाल का पुत्र सर्वथा निव्यसनी बन देश का सर्वमान्य नेता बना यह अपने आप में एक अद्भुत परन्तु सर्वथा सच्ची बात है।

आदर्श नेता मे कौन कौन से गुण होने चाहिए इस पर यजुर्वेद के निम्न लिखित मन्त्र मे अच्छा प्रकाश डाला गया है—

भद्रो यज्ञस्य रजस्य नेता
भवा निवदभि सचस विभाभि।
दिवि मूर्धानम दधिष स्वर्षा
जिह्वामग्ने चकृष हव्यवाहम।
१५ २१

अर्थात—जो कल्याणमयी नीतियो से संयुक्त हो।

सत्याचारी ज्ञानवान् धार्मिक परिनिष्ठित मन्त्रकार अज्ञान निवारक ज्ञान प्रसारक तथा अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करने वाला हो। जिस की वाणी अर्थक हो—सबको अपने पीछे लगा सकने की जिसकी वाणी में शक्ति हो और जो सदा सरल और शीघ्र कार्य का अवलम्बन करता हो वही नेता हो सकता है। वेद मन्त्र मे वर्णित नेता के सारे गुण स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन मे घटित होते हैं। आगे की पंक्तियो में हम इस बात को सप्रमाण सिद्ध स्पष्ट करने का यत्न करेंगे पाठक ध्यानपूर्वक पढ़ने की कृपा करें।

+ नास्तिक से आस्तिक

पाश्चात्य विद्वानो के ग्रन्थो को पढ़ कर तथा अपने धर्म में ईश्वर की सच्ची उपासना के स्थान पर पारस्परिक भेद भाव तथा ऊंच नीच को उत्पन्न करने वाली और मानव चेतना तथा बुद्धि को कुण्ठित करने वाली जड़ पूजा ने आपको नास्तिक बना दिया था। पिता ईश्वर भक्त थे परन्तु अधिक पढ़े लिखे न होने के कारण अपने पुत्र के तर्क पूर्ण प्रश्नो का समाधान न कर सकते थे अतः सदा इस चिन्ता मे निमग्न रहते थे कि पुत्र का नास्तिकपन कैसे दूर किया जाए? ला० नानकचन्द जी उन दिनो बरेली मे शहर कोतवाल थे जब महर्षि दयानन्द बरेली पधारे। व्याख्यान के प्रबन्धक मुन्शीराम जी के पिता ही थे। एक दिन उन्होंने मुन्शीराम जी से कहा कि एक दण्डी स्वामी आए हैं उनका उपदेश सुनने से तुम्हारे सारे संशय दूर हो जाएंगे इसलिए वहां अवश्य जाना। मुन्शीराम जी ने अपने पिता जी से पूछा कि क्या दण्डी स्वामी जी अंग्रेजी जानते हैं? पिता की ओर से नकारात्मक उत्तर मिलने पर झट कह दिया कि फिर काम की बात क्या खाक बताते होंगे परन्तु पिता जी की विशेष प्रेरणा पर मुन्शीराम जी व्याख्यान सुनने चले गए। महर्षि दयानन्द के ब्रह्मचर्य के तेज से युक्त मुख मण्डल ने और उनकी प्रभावशाली वक्तृता ने मुन्शीराम जी को अत्यन्त प्रभावित किया। तीन दिन लगातार महर्षि चरणो मे उपस्थित होकर शंका समाधान करते रहे और अन्त मे यह निवेदन किया कि महाराज आपने मेरे तमाम प्रश्नो का उत्तर देकर मुझे निरुत्तर तो कर दिया है परन्तु ईश्वर पर अभी तक मुझे विश्वास नही हुआ।

ईश्वर के सच्चे उपासक गुरुजन को धर्म विभूत करने वाले महान् तपस्वी महर्षि दयानन्द का उत्तर स्पष्ट था मुन्शीराम तुमने प्रश्न किये—मैंने उत्तर दे दिए मैंने कब कहा था कि ईश्वर पर मैं तुम्हारा विश्वास भी करा दूंगा। भाई ईश्वर का विश्वास तो तुम्हें तब प्राप्त होगा जब ईश्वर तुम्हें अधिकारी समझ कर तुम्हारा वरण स्वयं करेगा।

+ यमेवैष वृणुते तेन लभ्य ●

इतिहास इस बात का साक्षी है कि समय बीतने पर ला० मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) सच्चे और पक्के ईश्वर विश्वासी बने और इस पर जीवन भर आरूढ़ रहे

उनके जीवन से हमें निम्नलिखित शिक्षाएं मिलती हैं जीवन में निराशा को अपने निकट कभी मत आने दो पतित से पतित व्यक्ति भी यदि पुरुषार्थ करे तो ऊंचा उठ सकता है। पूर्वाग्रहीन बनो। सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने के लिए सदा तत्पर रहो।

× हिन्दी प्रेम ★

आपने १३ अप्रैल १८८९ को जालन्धर से सद्धर्म प्रचारक नाम का साप्ताहिक पत्र फारसी लिपि मे निकालना शुरू किया था भाषा इसकी प्रायः शुद्ध हिन्दी हुआ करती थी। उस युग में फारसी लिपि के माध्यम से हिन्दी भाषा के प्रचारका कार्य का यह कार्य अत्यन्त सराहनीय समझा गया। सद्धर्म प्रचारक सम्पादकीय तथा अन्य लेखों ने लोगो का मन मोह लिया परन्तु महर्षि दयानन्द जी के अनन्य भक्त और सच्चे अनुयायी मुन्शीराम जी इतने से सन्तोष नही हुआ। १९०७ ई० मे एकाएक सद्धर्म प्रचारक पत्र को देवनागरी लिपि मे प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया। ग्राहको की संख्या घट गई घाटा पड़ा परन्तु व्रती महात्मा मुन्शीराम ने इन बातों की रत्ती भर भी परवाह न की। आज के नेता हिन्दी का शोर तो खूब मचाते हैं परन्तु हिन्दी भाषा के साथ उनका जीवन जुड़ा हुआ दिखाई नही पड़ता। यही कारण है कि देश की स्वतन्त्रता के ३३ वर्ष पश्चात् भी हिन्दी भाषा की स्थिति दयनीय बनी हुई है। यदि आज के नेताओ की कथनी और करनी पवित्र और एक प्रकार की होती तो देश की कितनी ही समस्याओ का समाधान हो चुका होता। स्वामी जी धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से बहुमुखी क्रान्ति के उपासक थे। अपने व्यक्तिगत जीवन मे भी उन्होंने इस क्रान्ति की उपासना की थी। पुरानी सामाजिक रूढ़ियो और धार्मिक अन्धविश्वासो का उन्होंने जड़ मूल से नष्ट करने का सतत प्रयत्न किया। व्यक्तिगत जीवन और समष्टिगत जीवन की पवित्रता और एकरूपता के वे प्रबल समर्थक थे। जिस सिद्धान्त की सत्यता में उनका विश्वास हो गया उसे जीवन मे घटाकर क्रियात्मक रूप देना उन्होंने अपना परम कर्त्तव्य समझा।

— दलितोद्धार —

वे अछूत भाईयों को अछूत न कहकर दलित कहा करते थे उनका विचार था कि इन्हें सामाजिक अन्याय का शिकार बनाया गया है यह हमारी जाति और राष्ट्र का आधार हैं इनके साथ किसी प्रकार का भेदभाव पूर्ण व्यवहार न होना चाहिए। अपना व्यक्तिगत सेवक एक भंगी कुलोत्पन्न को बनाया अपने पुत्रो और पुत्रियो के विवाह भी जात-पात तोड़ कर किए और जब १९१९ में अमृतसर कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष बने तब वहां कांग्रेस के इतिहास में पहली बार ब्रह्मचर्य प्रधान शिक्षा प्रणाली राष्ट्रीय चरित्र निर्माण और जन्मगत जाति पाति को सर्वथा मिटा और समूचे देश को एक मानकर बिना किसी प्रकार का भेदभाव के सबके साथ पक्षपात रहित न्यायपूर्वक व्यवहार करने का सन्देश दिया उस समय उनका प्रस्ताव था कि दलितोद्धार को कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम मे सम्मिलित करके कांग्रेसी बन्धु अपने घरों मे निजी नौकर के रूप मे अपने दलित भाईयो को रखना प्रारम्भ करें परन्तु खेद है कि उस समय के नेताओ ने इस दूरदर्शी नेता के इन विचारों की गम्भीरता को अनुभव न किया फलस्वरूप यह हरिजन पूर्ण की समस्या [illegible] और धर्मपरिवर्तन की समस्या [illegible] की समस्या उर्दू और हिन्दी की समस्या आदि जिनके कारण यह अखिल देश पुनः खण्ड-खण्ड होने की तैयारी में है कभी उत्पन्न ही नहीं होती।

१९२०-२१ में तिलक स्वराज्य फंड के लिए एक करोड़ की निधि जमा होने के बाद स्वामी जी ने कांग्रेस महासमिति में उस फण्ड में से केवल पांच लाख रुपये दलितोद्धार के लिए पृथक रखने की मांग की थी जो स्वीकार न की गई। आज चाहे जो पार्टी अछूतोद्धार का श्रेय लेने की होड़ लगाती है। परन्तु इस महत्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्य के महत्व को समझने और क्रियात्मक रूप देने का सौभाग्य महर्षि दयानन्द और उनके सच्चे अनुयायियो को ही प्राप्त होता है।

शिक्षा म राष्ट्रीयता की पुट +

जब देश मे स्वतन्त्र राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता सबसे अधिक अनुभव की जा रही थी और देश की राजनीति नई करवट ले रही थी तब लार्ड मैकाले द्वारा १८३४ ई० मे प्रारम्भ की गई अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के विरुद्ध सक्रिय विद्रोह के रूप में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना करके स्वामी जी महाराज ने देश की शिक्षा धारा मे आमूल परिवर्तन कर दिया था। स्वदेश स्वभाषा और स्वसभ्यता का नाद चहुं ओर निनादित होने लगा। गुरुकुल कांगड़ी मे सभी कुछ स्वदेशी था एक भी वस्तु विलायती दिखाई नहीं पड़ती थी यहां तक कि अन्न भी स्वदेशी ही था। ऐसे अद्भुत विद्यालय को देखने जब रेम्जे मैकडानल्ड वहां पधारे तो आश्चर्य चकित रह गये। अपने गुरुकुलीय संस्मरणों को उन्होंने अपनी पुस्तक में छपाया था जिसमे स्वामी जी के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा था कि एक मांसलकाय दर्शनीय मूर्ति हम से भेंट करने आती है। आधुनिक समुदाय का कलाकार ईसा की आकृति बनाने के लिए आदर्श के रूप मे इसका स्वागत करता है। मध्यकालिक रुचि का चित्रकार इसमें सन्त पीटर का रूप देखता है।

जीवन भर देशहित और आर्यत्व की सेवा सुरक्षा मे रत रहने वाले इस महामानव का बलिदान साम्प्रदायिक संकीर्णता की बलि वेदी पर हुआ यह बड़े दुःख की बात है।

जब तक वेद की सत् शिक्षाओं और सत्य सिद्धान्तों का ठीक ढंग से प्रचार न होगा। देश जाति के सच्चे सपूतों का जीवन असुरक्षित ही रहेगा और अन्ध विश्वास का बोलबाला होता रहेगा। २३ दिसम्बर का दिन प्रतिवर्ष इस महामानव के पुनीत जीवन गाथा और बलिदान की कहानी सुनाने आता है क्या इस बलिदान पथ का कोई पथिक बन सकता है?

—

सम्पादकीय—

इन शहीदों के बलिदान को न भूलें ?

दिसम्बर का मास हमारे लिए एक विशेष महत्व रखता है। हम प्राय २३ दिसम्बर को अमर बलिदानी श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का बलिदान दिवस मनाते हैं। परन्तु हम भूल जाते हैं कि उससे दो दिन पहले दो और आर्य समाजियों ने अपना बलिदान दिया था। एक थे श्री रामप्रसाद बिस्मिल और दूसरे थे श्री रोशनसिंह जी। इन दोनों को काकोरी षडयन्त्र केस मे फासी की सजा दी गई थी। रोशनसिंह को १८ दिसम्बर को फासी दी। रामप्रसाद बिस्मिल को १९ दिसम्बर को। श्री रामप्रसाद बिस्मिल ने अपनी आत्म कथा मे लिखा है कि वह जो कुछ भी बने आर्य समाज के कारण। सत्यार्थ प्रकाश को पढकर उनके जीवन मे एक नई क्रान्ति आई और उन्होंने अपने देश को स्वतन्त्र कराने के लिए अपना बलिदान देने का दृढ सकल्प कर लिया। श्री रोशनसिंह के विषय में कहते हैं कि फासी पर चढने से पहले उन्होंने सन्ध्या की ओ३म का जाप किया और फिर हसते हसते फासी पर झूल गये।

मैने ऊपर जो तीन नाम प्रस्तुत किए हैं वह हमारी इस धारणा की सम्पुष्टि करते हैं कि आर्य समाज अपनी गतिविधियों से केवल धार्मिक क्षत्र मे ही क्रान्ति नही लाया अपितु राजनैतिक क्षत्र मे भी उसने कई बड़े २ बलिदान दिए थे। जहा हम एक तरफ देखते हैं कि धार्मिक क्रान्ति के लिए प० लेखराम जी स्वामी श्रद्धानन्द जी महाशय राजपाल जी जैसे आर्य समाज के नेताओं ने धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राण दिए वहा दूसरी तरफ भगतसिंह सुखदेव रामप्रसाद बिस्मिल और रोशनसिंह जैसे इन नवयुवको ने अपना सर्वस्व अपने देश के लिए न्योछावर कर दिया। हमारे देश मे कई प्रकार की सस्थाए है। कुछ राजनैतिक क्षत्र मे काम करती हैं कुछ धार्मिक क्षेत्र मे और कुछ सामाजिक क्षत्र मे। परन्तु आर्य समाज एक अद्भुत सस्था है जिसने हर क्षत्र मे अपना योगदान दिया है वह भी केवल उत्सव करके जलूस निकाल कर ही नही बल्कि अपना खून देकर। सारे देश म एक भी ऐसी सस्था नहीं जिसने इतने बलिदान दिए हो जितने कि आर्य समाज ने दिए हैं।

प्रश्न पैदा होता कि क्या कारण है कि यद्यपि आर्य समाज ने इतने बलिदान दिए हैं फिर भी देश के इतिहास मे उसे वह महत्व नही दिया गया जो उसे मिलना चाहिए था। इसमे सन्देह नही कि पिछले एक सौ वर्षों मे इस देश के जितने भी इतिहास लिखे गए हैं उनमे महर्षि दयानन्द और आर्य समाज के नाम किसी न किसी रूप मे अवश्य आए हैं। कोई भी इतिहासकार उस वैचारिक क्रान्ति की अवहेलना नही कर सकता जिसे महर्षि दयानन्द जी ने प्रारम्भ किया था और आर्य समाज ने पूरा किया। यदि हम अपने देश का विधान देखे तो हम इस परिणाम पर पहुचे बिना नही रह सकते कि इस विधान की पृष्ठ भूमि मे आर्य समाज की विचार धारा काम कर रही थी। इसलिए इतिहासकार न दयानन्द को भूल सके न आर्य समाज को। परन्तु इसी के साथ यह भी एक तथ्य है कि महर्षि दयानन्द का और आर्य समाज को वह महत्व नही मिला जो मिलना चाहिए था। इसका एक कारण यह भी है कि हमारे अपने अन्दर एक हीन भावना पैदा हो गई है। हम स्वय अपने शहीदों के बलिदान को वह महत्व नही देते जो हमे देना चाहिए। भगतसिंह का ही उदाहरण ले जो वह एक कट्टर आर्य समाजी परिवार मे पैदा हुआ था। यद्यपि आगे चलकर उसके विचारो मे बहुत परिवर्तन आ गया था परन्तु इस बात से कौन इन्कार कर सकता है कि उसका पालन पोषण एक आर्य परिवार मे हुआ था। उसके दादा सरदार अर्जुनसिंह महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त थे उन्होंने भगतसिंह के बचपन मे देश भक्ति की ऐसी भावना उस में भरी कि आगे चलकर वह अपने देश के लिए वह बलिदान करने को तैयार हो गया जो बहुत कम व्यक्तियों ने किया है। इसमे कोई सन्देह नही कि सिख धर्म की विचार धारा का उस पर कोई प्रभाव न था परन्तु आज हमारे सिख भाई भगतसिंह को एक सिख नवयुवक के रूप मे ही पेश करते हैं। अन्त समय मे उसने अपने केस कटवा दिए थे। परन्तु अब सरकार उसे सदा एक सिख नवयुवक के रूप में ही दिखाती है। यह सब हमारी शिथिलता और निर्बलता का ही परिणाम है। वास्तविक स्थिति यह है कि हमने अपने शहीदों का वह आदर और सम्मान नहीं किया जो हमें करना चाहिए था। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक आर्य परिवार के हर बच्चे को यह पता हो कि स्वामी श्रद्धानन्द जी कौन थे और वह क्यो शहीद हुए ? पण्डित लेखराम जी व महाशय राजपाल जी की हत्या क्यो की गई ? रामप्रसाद बिस्मिल रोशनसिंह भगतसिंह और सुखदेव फासी पर क्यो चढ़े यह छोटी २ कहानिया हैं परन्तु बहुत महत्वपूर्ण हैं। इन कहानियो से ही हमारा इतिहास बना है परन्तु हम इन्हे भूलते जा रहे हैं इसी का यह परिणाम है कि आर्य समाज मे भी शिथिलता आ रही है जिस सस्था ने इतने शहीद पैदा किये हो वह कितनी महान् सस्था हो सकती है इसका अनुमान करना हमारे लिए कठिन न होना चाहिए। परन्तु हमारा इस ओर ध्यान नही जा रहा। २३ दिसम्बर को हम श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का बलिदान दिवस मनाएगे। यह अत्यन्त आवश्यक है परन्तु यह भी न भूलना चाहिए कि इसी मास मे आर्य समाज के दो नवयुवक रामप्रसाद बिस्मिल और रोशनसिंह भी अपने देश के लिए शहीद हुए थे। यदि हम आर्य समाजी समय समय पर अपने इन शहीदो को याद करते रहे तो मेरा विश्वास है कि आर्य समाज म इस समय जो शिथिलता दिखाई दे रही है वह दूर हो जाएगी। उर्दू के एक कवि ने कहा है—

शहीद की जो मौत है वह कौम की हयात है

अर्थात शहीद अपनी मृत्यु से अपने राष्ट्र को एक नया जीवन दे जाते हैं। इसलिए हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि आर्य समाज के जितने भी शहीद हुए वह धार्मिक क्षत्र मे हुए हो या राजनीतिक क्षत्र मे हम उन्हे न केवल याद ही करते रहे अपितु उनके बलिदान से और जो कुछ उन्होंने अपने जीवन म किया उससे शिक्षा प्राप्त करके अपने धर्म देश और समाज के लिए जो कुछ भी कर सकते हैं करे। इसी मे ही हमारा कल्याण है।

वीरेन्द्र

जनगणना होने वाली है, जागते रहना !

अगले वर्ष के शुरू मे जनगणना का काम शुरू हो जाएगा। सरकार द्वारा नियुक्त कर्मचारी एक एक घर जाकर पता लगाएगे कि किस परिवार मे कितने लोग रहते हैं। कितने पुरुष हैं कितनी स्त्रिया हैं और कितने बच्चे हैं। इसी के साथ मे यह भी पूछेगे कि उनका धर्म क्या है उनकी भाषा क्या है वह हिन्दू है सिख हैं ईसाई या मुसलमान है। हरिजनो की भी अलग से गिनती होती है। हरिजनो के पजाब मे ३७ विभिन्न वर्ग हैं। उनके सम्बन्ध मे भी पता किया जाएगा कि कितने वाल्मीकि हैं। कितने चमार हैं। कितने मेघ हैं इसी प्रकार हरिजनो के जो दूसरे वर्ग हैं उनकी गिनती भी की जाएगी। क्योंकि चुनाव के समय हरिजनो के लिए विशेष क्षत्र निर्धारित किए जाते हैं और वहा से केवल हरिजन उम्मीदवार ही खड़ा हो सकता है। इसलिए सरकार यह जानना चाहती है कि किस क्षत्र मे हरिजनो की कितनी सख्या है। हरिजनो मे—मैं उनकी विभिन्न जातियो को शामिल करता हू जो इस समय पजाब मे हैं और जिनकी सख्या लगभग ३८ है। जिस समय सरकार चुनाव के क्षत्र निर्धारित करने लगती है वह यह नही देखती कि वहा वाल्मीकि अधिक रहते हैं या चमार या मेघ या दूसरे हरिजन अधिक रहते हैं। वह तो उस क्षत्र मे उनकी मिश्रित सख्या के आधार पर निर्णय करती है कि जिस क्षत्र मे उनकी सख्या अधिक है। उसी क्षत्र को प्राय उनके लिए सुरक्षित कर देती है। इसलिए हरिजन भाईयो को जनगणना के समय सतर्क रहने की आवश्यकता है ताकि उनकी सही सख्या लिखी जा सके।

वास्तविक प्रश्न तो यह है कि हमारे देश मे हिन्दू मुसलमान ईसाई सिख कितने हैं। उनमे भी हिन्दुओ और मुसलमानो की सख्या का सही अनुमान होना चाहिए। पिछले कुछ महीनो मे उत्तर प्रदेश और कई दूसरे राज्यो मे जो दगे हुए हैं उनका एक कारण यह भी है कि मुसलमानो का एक वर्ग वहा एक नया पाकिस्तान बनाना चाहता है। १९४७ मे जब हम स्वतन्त्र हुए थे उस समय मुसलमानो की सख्या कोई ६ करोड के लगभग थी अब वह ९ करोड तक जा पहुची है। प्राय सम्भव है कि जनगणना मे उनकी सख्या इससे भी अधिक निकल आए। १९७१ मे जो जनगणना हुई थी उसके अनुसार उससे १० वर्ष पहले यानि १९६१ से लेकर १९७१ तक मुसलमानो और ईसाईयो की सख्या इस देश मे ९ प्रतिशत बढी थी। सिखो की सख्या २४ प्रतिशत बढी थी। परन्तु हिन्दुओ की सख्या मे केवल २२ प्रतिशत की बढोतरी हुई थी। मुसलमानो और ईसाईयो की सख्या मे जिस रफ्तार से वृद्धि हो रही है अगर यह जारी रही तो शायद आगामी २० २५ वर्षों मे हिन्दू इस देश मे अल्पमत मे रह जाएगे परन्तु हमारी सबसे बडी कठिनाई

(शेष पृष्ठ १० पर)

महात्मा गांधी के नाम श्री देवेश्वर सिद्धान्तालंकार के पत्र

इस्लाम की शिक्षा क्या है?

यहां हम महात्मा गांधी जी के पत्र दे रहे हैं किन्तु इससे पहले पाठकों के ज्ञान के लिए इस विषय में उनका एक लेख उद्धृत कर देना अच्छा होगा जिससे ये पत्र आसानी से पाठकों की समझ में आ जाएं। लेख २६ जनवरी १९२७ के दैनिक लीडर में यंग इंडिया से लेकर छापा गया है। उसका हिन्दी अनुवाद हम नीचे देते हैं —

खरी टीका

लेखक एम० क० गांधी

निम्नलिखित पत्र मुझे पाठकों से छिपाना न चाहिए शहीदे धर्म स्वामी जी शीर्षक वाला आपका लेख मैंने बड़ी सावधानी और उचित श्रद्धा के साथ पढ़ा है। समालोचना करने से पहले मैंने इसे पांच बार पढ़ा है। जिससे शीघ्रता में अनुचित आलोचना न हो जाये आपका लेख बड़ी मनोरंजक भाषा में लिखा हुआ है आपकी लेखनी देखकर मुझे स्पर्धा पैदा होती यद्यपि इसमें आकर्षण है किन्तु मेरी राय है कि इसमें खतरा भरा पड़ा है। मेरी यह समालोचना आपकी उच्चरित विषयक मेरी सम्मति पर निर्भर है। मैंने अपने मित्रों से भी इस विषय में चर्चा की है। उनकी राय है कि महात्मा के भेष में आप एक राजनतिक नेता हैं और अपने देश के हित के लिए आप सत्य को त्याग देने को तैयार हैं। इसके विरुद्ध मेरी सदा यह सम्मति रही है कि आप वस्तुत संत हैं और बड़ी कठिन तथा विक्षेप करने वाली अवस्थाओं में भी सत्य का पालन करने के लिए आपने राजनतिक क्षेत्र में प्रवेश किया है। आप कृपया लिखें कि मेरी सम्मति ठीक है या नहीं यदि मेरी सम्मति ठीक न हो तब तो नीचे दी हुई समालोचना के कुछ अर्थ ही नहीं क्योंकि मेरी सम्मति है एक राजनतिक पुरुष का यह समुचित अधिकार है कि वह उस नीति का उपयोग कर जिसका आपने अपने लेख में किया है। आप इस बात से सहमत होंगे कि सत्य का छिपाना भी झूठ का रूपांतर है बुरे को बुरा न कहना जब कि मनुष्य चित्त में उसे बुरा अनुभव करता हो भीरुपना है और सत्य तथा निर्भयता नाम मात्र रह जाते हैं। क्या महात्मा जी आप यह अनुभव नहीं करते कि स्वामी जी का कत्ल एक बदमाश का क्रूर अधम नृशंस और अमानुष कार्य है जिसके लिए सारी मुसलिम जाति को शर्मिन्दा होना चाहिए फिर आप इसको ऐसा कहने से इन्कार करते हैं। इस पाप कर्म के करने वाले तथा उन सब की निन्दा करने की जगह जो इस कत्ल के जिम्मेवार हैं (अर्थात वह सब पागल मुस्लिम मुल्ला मौलवी और बम फेंकने वाले जो हिन्दू लीडरों को काफिर काफिर करके पुकारते हैं) आपने कातिल और सारे मुसलमानों की पैरवी करना शुरू कर दिया है। डायर का आपने पक्ष क्यों न लिया था क्या एक योरोपियन हमारा भाई नहीं है। आगे आप कहते हैं कि इस्लाम के अर्थ शान्ति के हैं। क्या यह सत्य है? वह इस्लाम जिसकी शिक्षा कुरान देता है और जैसा कि जन्म काल से लेकर आज तक मुसलमान इसे मानते या बरतते हैं कभी भी शान्ति का धर्म नहीं है किस भाव से प्रेरित होकर आप ऐसी अशुद्ध (दुःखप्रद) बात का लिखते हैं ईसाइयत बौद्ध और हिन्दू धर्म शान्ति के वस्तुत प्रसारक हैं परन्तु इस्लाम ऐसा नहीं है। क्या आप कृपा करके बतलायेंगे कि क्यों आप इस प्रकार से सोचते और लिखते हैं।

गवर्नमैंट का प्रतिवाद करते हुए आप कभी नहीं कतराए आर्य समाज का प्रतिवाद करते हुए आप कभी नहीं सहमे फिर मुसलमानों के स्पष्ट खुले जुल्म का प्रतिवाद करते हुए आप क्यों डरते हैं?

मुझे निश्चय है कि यदि किसी हिन्दू ने किसी मुसलमान नेता का कत्ल किया होता (परमेश्वर न करे कि ऐसा हो) तो आप कातिल और सारी हिन्दू जनता की तीव्र शब्दों में निन्दा करते। आप हिन्दुओं के लिए कठिन प्रायश्चित का विधान करते और उन्हें हड़ताल और उपवास कराते और मृत मुसलमान के लिए स्मारक चिन्ह बनवाते और अन्य कई बातें करवाते पता नहीं आप अपने मत भाईयों मुसलमानों के साथ ऐसा व्यवहार क्यों करते हैं। सत्य वक्ता किसी से भय नहीं खाता उसे इस्लाम की तलवार का भी डर नहीं होता और मुझे आशा है कि इस पत्र का उत्तर आप अपने साप्ताहिक यंग इंडिया में देकर कृतार्थ करेंगे।

पत्र का लेखक एक सच्चा और स्पष्ट वक्ता पुरुष है। सर्वसाधारण के भी इस समय ऐसे ही विचार हैं। सम्भवत कभी समय आ जावे किन्तु मुझे मौन मानने का अभी समय नहीं आया मैं अपने आपको किसी रूप में भी संत नहीं मानता किन्तु अपनी सब त्रुटियों और दोषों के होते हुए भी मेरा यह विचार है कि मैं सत्य का पुजारी हूं और लेखक की सम्मति इस विषय में सत्य है कि महात्मा के भेष में मैं एक राजनतिक पुरुष हूं परन्तु सत्य ही सर्वोत्कृष्ट है न इसलिए कभी कभी मेरे काम भारी नीति के काम दृष्टि में पड़ते हैं किन्तु सत्य और अहिंसा को छोड़कर मेरे जीवन में दूसरी नीति नहीं है। मैं तो अपने धर्म और देश की रक्षा के लिए भी कभी सत्य और अहिंसा को नहीं त्याग सकता दूसरे शब्दों में इस कहने का तात्पर्य यह है कि सत्य और अहिंसा को त्याग देने से देश का उद्धार भी कभी सम्भव नहीं है।

स्वामी जी की हत्या के विषय में लिखते हुए मैंने सत्य को नहीं छिपाया। लेखक ने हत्या के विषय में जो सम्मति प्रकट की है मेरी भी वही सम्मति है। किन्तु घातक के लिए मेरे हृदय में उसी प्रकार करुणा के भाव हैं जिस प्रकार जनरल डायर के लिए थे। किसी पत्र लेखक को भूलना न चाहिए कि जनरल डायर के विरुद्ध अभियोग चलाने के लिए किए जाने वाले आयोजन में मैंने कोई भाग नहीं लिया मेरा पक्का विचार है कि एक योरोपियन मेरा वैसा ही भाई है जैसा कि एक हिन्दू या भारतीय मुसलमान। घातक के लिए मेरे हृदय में करुणा पैदा होने का कारण यह है कि वह एक घृणित और पापयुक्त आन्दोलन का शिकार बना है जो धर्म के नाम पर चलाया गया है और इसी लिए मैं उन सब समाचारपत्रों को जिन्होंने जनता के हृदय को दूषित कर दिया है। इस हत्या का उत्तरदाता समझता हूं। मैं उन सब मौलवियों और अन्य लोगों को जिन्होंने स्वामीजी के विरुद्ध द्वेष के भाव फैलाए हैं हत्या का उत्तरदाता समझता हूं।

किन्तु मैं इसलाम को उसी प्रकार शान्ति फैलाने वाला धर्म मानता हूं जैसा कि ईसाइयत बुद्धमत और हिन्दू धर्म। इसमें सन्देह नहीं इन सब धर्मों में तारतम्य शान्ति की डिग्री का अन्तर है किन्तु इन सब का उद्देश्य शान्ति परक ही है। मुझे उन सब आयतों का ज्ञान है जो कुरान में से मेरी इस सम्मति के विरुद्ध उद्धृत की जा सकती हैं किन्तु वेदों में से भी तो उसी प्रकार के मन्त्र दिखाए जा सकते हैं (जो शान्ति परक नहीं हैं)। प्रमाणों के विषय में वेद में जो शापयुक्त मन्त्र हैं उनका अर्थ क्या है? इस में सन्देह नहीं कि आज इन मन्त्रों का भिन्न भी अर्थ है किन्तु एक समय अवश्य था जब इनका बड़ा भयानक अर्थ था। हम हिन्दुओं का जो अछूतों के साथ निन्दित व्यवहार है उसके क्या अर्थ हैं? छलनी तो छाज को बुरा न कहे। वास्तव में यह है कि हम सब ही बढ़ि कर रहे हैं। इस विषय में तो मैंने अपनी सम्मति प्रकट ही कर दी है कि मुसलमान तलवार चलाने के लिए सदा तैयार रहते हैं किन्तु यह कुरान की शिक्षा का परिणाम नहीं है। मेरी सम्मति में इसका कारण वह परिस्थिति है जिसमें इस्लाम का जन्म हुआ था। ईसाइयत का इतिहास भी खून खराबी से भरा पड़ा है पर इस का कारण नहीं कि ईसामसीह में स्वयं कोई त्रुटि थी किन्तु जिस परिस्थिति में उसने शिक्षा दी वह उसके प्रतिकूल थी।

ईसाइयत और इसलाम तो आखिर कार कल के धर्म हैं। अभी तक उनके अर्थ लगाया ही जा रहा है। मैं मौलवियों के मुहम्मद साहब के सन्देश के अन्तिम अर्थ लगाने के अधिकार को वैसे ही स्वीकार नहीं करता जैसे कि मैं ईसाई पादरियों का यह अधिकार नहीं समझता कि वह ईसामसीह के सन्देश का अन्तिम अर्थ लगाएं। दोनों का वास्तविक अर्थ तो उन मनुष्यों के जीवनों में बनाया जा रहा है जो शान्ति से अपनी जीवनी में इन सन्देशों को घटा रहे और आत्म त्याग का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। न तो शास्त्रार्थ का नाम ही धर्म है और न ही केवल विद्वान दिमागों में ज्ञान का निवास है धर्म का निवास स्थान हृदय है। हिन्दू मुसलमान और ईसाई सबको चाहिए कि अपने अपने धर्मों के अर्थ अपने जीवन से सिद्ध न कि अन्यों के रक्त से?

(यंग इंडिया)

महात्मा जी के नाम श्री देवेश्वर सिद्धान्तालंकार का पत्र इस्लाम की शिक्षा क्या है?

पूज्य महात्मा जी

स्वामी श्रद्धानन्द जी की हत्या के सम्बन्ध में आपके लेखों को मैं ध्यान पूर्वक पढ़ता रहा हूं। हाल ही के एक खरी टीका शीर्षक लेख में आप लिखते हैं —परन्तु इस्लाम को मैं उसी अर्थ में शान्ति का धर्म मानता हूं जिस अर्थ में ईसाई बौद्ध और हिन्दू मतों को।

यह कहा जाता है २६ दिसम्बर को जब आपने गोहाटी में स्वामी श्रद्धानन्द जी की मृत्यु के सम्बन्ध में प्रस्ताव उपस्थित किया था तो आपने कहा था कि मैंने कुरान को उतनी ही श्रद्धा के साथ पढ़ा है जैसे गीता को परन्तु मुझे ऐसी कोई बात नहीं मिली जो इस प्रकार की हत्या की आज्ञा दे जैसी यह की गयी है।

भिन्न भिन्न विद्वानों द्वारा कुरान का अध्ययन केवल यही नहीं कि आपके मत का समर्थन न करता हो वरन उसके विरुद्ध सिद्ध करता है।

मैं आपको कुरान की कुछ आयतें भेज रहा हूं (जो अभ्युदय में प्रकाशित हुए मेरे लेख स्वामी जी की हत्या और इस्लाम की शिक्षा में दी गई हैं) मुझे विश्वास है कि इस प्रकार की आयतें जो हत्या और खून खराबी की केवल इस लिए आज्ञा देती है कि एक मनुष्य के विश्वास भिन्न हैं और वह खुदा और रसूल मुहम्मद को मानने से इन्कार करता है इस बात का

मूल कारण है कि मुसलमान खून बहाने को तैयार रहते हैं ।

इस्लाम ही एक ऐसा धर्म है जो कुरान का मत फैलाने के लिए तलवार चलाने की आज्ञा देता है और उनके वध की आज्ञा देता है जो धर्म के मामले में भिन्न मत रखते हैं ।

वेदों का तो कहना क्या हिन्दुओं के पवित्र ग्रन्थों में कहीं भी इन आयतों के समान वाक्य नहीं मिल सकते और मैं आप से प्रार्थना करता हूं कि कृपा करके आप मुझे वेदों के वे मन्त्र बतलाएं जिनके आधार पर आपने ये वाक्य लिखे हैं

मैं उन आयतों को जानता हूं जो इसके विरोध में पेश की जा सकती हैं । परन्तु इसी भांति वेदों से भी मन्त्र सम्भव हैं । छलनी तो छाज को बुरा न कहे

महात्मा जी यदि यह मान भी लिया जाए तो भी वह विचित्र तर्क है जिसका आप उपयोग करते हैं । दो गलतियां मिलकर एक काम को ठीक नहीं ठहरा सकतीं । आप वेद और कुरान दोनों को असहिष्णु कह सकते हैं परन्तु वेद इस्लाम की कुरान शिक्षा देती है और जिसके ऊपर आरम्भ से मुसलमान अमल करते आये हैं उसको आर शांति का धर्म नहीं कह सकते फिर आप कहते हैं कि बात यह है कि हम सब बढ़ रहे हैं । मैं अपनी राय दे चुका हूं कि इस्लाम के अनुयायी खून बहाने को सदा तैयार रहते हैं परन्तु इसका कारण कुरान की शिक्षा नहीं है मेरी राय में तो इसका कारण वह अवस्था है जिसमें इस्लाम की उत्पत्ति हुई थी । ईसाई और इस्लाम मत आखिर कल के ही धर्म हैं । उनका अभी अब नवाया जा रहा है ।

महात्मा जी आप मुझे यह कहने की आज्ञा दें कि हमारी मातृ भूमि की राजनीतिक समस्या को हल करने के उद्देश्य से इस्लाम का शांतिमय अर्थ लगाने के लिए आप सत्य व उच्च और उत्तम भावों से प्रेरित मालूम होते हैं । परन्तु क्या आप समझा सकते हैं कि विकास या उन्नति के क्रम में भी सांप के बच्चे से चिड़िया किस प्रकार पैदा हो सकती है । हम प्रकृति में पाते हैं कि एक वृक्ष उन्हीं गुणों को लेकर बढ़ता है जो उसके बीज में होते हैं और यदि अवस्था प्रतिकूल हो तो वह मुर्झा सकता है और सूख सकता है परन्तु जैसी एक हिन्दी की कहावत है बबूल का बीज बो कर आम नहीं खाया जा सकता । शान्ति और सहिष्णुता का बीज मैं कुरान में देखना चाहता हूं और मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूंगा यदि आप उन बातों पर प्रकाश डालें जिनके कारण आप आशावादी हो गए हैं और इस्लाम का अर्थ शान्ति बतलाते हैं । बहुत से दूसरों की भांति मेरे लिए तो इसका अर्थ असहिष्णुता और लोलुपता है जिसमें अहिंसा का चिताकर्षक वर्णन किया गया है जो आकर्षक सौन्दर्य की हूरों से भरा हुआ है और जिसमें सुन्दर बाग हैं जिनके नीचे शराब पानी और दूध की नदियां बहती हैं । अब्दुलरशीद ने कहा था कि काफिर को मार कर मैं स्वर्ग जाना चाहता हूं । जब हम कुरान पढ़ते हैं तो हम पाते हैं कि वह अपने धर्म पर आरूढ़ हैं परन्तु आप कहते हैं कि वह एक भला भटका भाई है धर्म के नाम पर किये गए हमारे अधार्मिक प्रचार का शिकार है । आप अपने अहिंसा और सत्य के नाम से माप कर उसको भले ही भला भटका कहें परन्तु प्रश्न यह है कि क्या वह कुरान की नीति से भी गलती पर है ? कदापि नहीं और यही कारण है कि आज भारत के सब मुसलमान उसको देश के कानून की जकड़ से बचाने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं और उसकी सहायता करने के लिए चन्दा इकट्ठा किया जा रहा है और उस पर ईश्वर की कृपा कराने के लिए मस्जिदों में प्रार्थना की जाती है ।

वेदों के सम्बन्ध में आपके कथन के विषय में मैं यही कहना चाहता हूं केवल यही बात नहीं कि मतभेद के कारण वध अथवा अत्याचार की वेदों में कहीं आज्ञा हो है वरन उसके विपरीत प्रति प्राचीन काल से हिन्दुओं में ऋषि (द्रष्टा) माना गया है याम वसन वेदों का एक अंग है और कपिल मुनि जिनको नास्तिक कहा जाता है और उनका ग्रन्थ सख्या दर्शन वेदों का एक उपांग है वैदिक धर्म में कर्म ही मुख्य है । यह केवल इस्लाम की ही शिक्षा है जिसके अनुसार महात्मा गांधी का एक नये गुजरे मुसलमान से बदतर कहा जा सकता है क्योंकि वह मुसलमान कुरान के खुदा और उसके रसूल मुहम्मद को मानता है ।

अछूतों के साथ हिन्दुओं का जो व्यवहार है वेदों में उसका समर्थन कहीं नहीं पाया जाता और इस लिए उनको दोष नहीं दिया जा सकता । वेद मानव जाति का विभाग गुण कर्म के अनुसार करता है जैसे आम और वस्तु जिनका अर्थ अच्छा और बुरा है और फिर आर्यों का ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चार जातियों में विभक्त करता है जो सब एक ही समाज शरीर के अंग हैं ।

अन्त में मैं विश्वास करता हूं कि उपयुक्त प्रश्नों का अपने सम्मानित साप्ताहिक पत्र में अथवा निजीपत्र में उत्तर देकर आप मुझे कृतार्थ करेंगे और इसको ईमानदारी के साथ की हुई आलोचना समझेंगे ।

प्रणाम भवदीय

२९ जनवरी ह देवेश्वर सिद्धान्तालंकार

महात्मा जी का पत्र

(हिन्दी अनुवाद)

नन्दी हिल
मसूर स्टेट)
२ ५ १९२७

प्रिय मित्र

आपका २९ जनवरी का पत्र उत्तर देने के लिए मैंने सुरक्षित रख लिया था यह पत्र मुझे दौरे करते हुए मिला था और पिछले तीन दिनों में अपके भेजे कागजों को पढ़ने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ है रोग शय्या पर पड़ पड़ मैंने धीरे धीरे अपनी एकत्रित डाक को देखा है । मैंने उन उदाहरणों को पढ़ा है वह मूल्यवान हैं । किसी किसी स्थान में आपका अनुवाद मूल से नहीं मिलता किन्तु मेरा विचार है कि ऐसा असावधानी से हुआ है क्योंकि आपने बड़ा अनुवाद करने का पूरा कष्ट उठाया है

जो उदाहरण आपने इकट्ठे किए हैं उनको देखकर अवश्यमेव एक आदमी सोच में पड़ जाता है । यद्यपि धार्मिक ग्रन्थों का गहरा अन्वेषण या तुलनात्मक अध्ययन मैंने नहीं किया किन्तु कुरान तथा अन्य सब धार्मिक ग्रन्थों का मैंने धार्मिक आश्वासन या आनन्द प्राप्ति के लिए पढ़ा है और इसी लिए इन सब वाक्यों (कुरान और हदीस के प्रमाणों) का जो प्रभाव आपके चित्त पर पड़ा है वह मेरे चित्त पर नहीं पड़ा धर्म में बलात्कार नहीं चाहिए (ल इकरा फद्दीन) इस आयत पर जो भाष्य मैंने किया है वह मेरे लिए सबब नया है और उस भाव से बहुत भिन्न है जो बिना किसी भाष्य के आयत से निकलता है । तो भी इस बारे में मैं अपने मुसलमान दोस्तों से पूछ था । किन्तु आप द्वारा एकत्रित सब उदाहरणों या वाक्यों को सावधानी से पढ़ने के पश्चात भी मेरा यह विचार है कि इस्लाम तलवार का धर्म नहीं है परन्तु अन्य सब मुख्य धर्मों की तरह यह भी एक शांति पूर्वक धर्म है इस कथन में युक्ति यह है कि मुझे कई ऐसे मुसलमान मित्रों से मिलने का अवसर हुआ है जो मेरी और आपकी तरह भिन्न मतवालों को मारने का कभी विचार नहीं करते और ऐसे मुसलमानों को झूठा मुसलमान नहीं कहा जा सकता वह अपने धर्म पर दृढ़ हैं । सूफी लोगों की सारी श्रेणी की श्रेणी जिनकी कुरान के प्रति श्रद्धा के विषय में शक नहीं किया जा सकता उन की प्रेम और शान्ति युक्त उज्ज्वल फिलासफी का उद्गमस्थान कुरान ही है । मैंने मौलाना शिबली की लिखी पैगम्बर साहब की जीवनी नामक पुस्तक पढ़ी है और अबुलकलाम के भी कई भाग पढ़े हैं मैंने पैगम्बर साहब के साथियों के जीवन के कुछ पन्ने नामक पुस्तक भी पढ़ी है । इन पुस्तकों के पढ़ने से मेरे चित्त में उत्तम प्रभाव पड़ा है और मैं समझता हूं कि आपकी कभी यह सम्मति नहीं हो सकती कि मौलाना शिबली और इन जैसे ऐसे ही लेखकों ने जो कुछ लिखा है वह लोगों की आंखों में धूल झोंकने के लिए लिखा है और वह उसमें विश्वास न रखते थे किन्तु यह सब कुछ लिखने का मतलब मेरा यह नहीं कि मैं यह मानता हूं कि मुहम्मद साहब ने पूर्ण आदर्श का जीवन व्यतीत किया या कुरान एक पूर्ण पुस्तक है । हमारी अपनी और अन्य सब धर्म पुस्तकों की तरह कुरान में भी ऐसे वाक्य आते हैं जिनके समझने में कठिनाई होती है परन्तु अन्य धर्म पुस्तकों के समझने में जो कठिनाई होती है उससे यह कठिनाई अधिक नहीं है ।

मैं अनुमान करता हूं कि हम इसको तो अपने मस्तिष्क में जम सकते हैं किन्तु ओल्ड टैस्टामेंट को आप देखिए जो ईसाई धर्म पुस्तक का एक भाग है खून खराबी से भरा पड़ा है और ईसाइमत के आदि इतिहास में ईसाइयों के हक में कोई प्रशंसनीय चीज नहीं है ।

आपने मुझ से पूछा है कि वेदों में से ऐसे वाक्य (कुरान की असहिष्णुतायुक्त व्यवहार से पूर्ण आयतों की तरह) निकाल कर आपका बताऊं अपने दस्युओं की तरफ तो स्वयमेव संकेत किया है दस्युओं विषयक इन वेद के मन्त्रों का जो भाष्य आप करते हैं वह सर्वथा ठीक होगा पर क्या यह ठीक नहीं है कि कुरान के श्रद्धालु भाष्यकार भी कुरान के संदिग्ध वाक्यों को इसी प्रकार समझाते हैं । दस्यु तो अपने आपको पापात्मा नहीं समझते थे प्रत्येक आदमी अपनी संदिग्ध क्रियाओं (रीतरिवाजों) का न्याय संगत सिद्ध करने के लिए उन प्रमाणों का सहारा बताता है जिन्हें वह अप्रिय मानता या जिन पर मतभेद करता है जनरल डायर का भी तो यही विश्वास था कि यदि वह इस प्रकार गोलियों से भारतीयों को न मारता तो अंग्रेज स्त्री पुरुषों के जीवन खतरे में हो जाते । किन्तु हम लोग जिनको सब बात भली प्रकार से मालूम है इसे क्रूरता और नीच बदले के नाम से पुकारते हैं । किन्तु जनरल डायर अपने विचार से न्याय और धर्म पर था । कई हिन्दू संजीदगी से यह मानते हैं कि उस आदमी को जो गाय को मारे मार डालना चाहिए और कई धर्म पुस्तकों का उद्धरण दे कर या अन्य प्रकार से अपने कार्य को न्याय सम्मत सिद्ध करते हैं किन्तु अन्य मतावलम्बी जो गाय की पवित्रता को स्वीकार नहीं करते एक गाय के मारने के बदले एक मनुष्य को मारना निन्दित समझते हैं ।

गुरु नानक जिन्होंने अवश्यमेव कुरान पढ़ा था और कहा जाता है मक्के भी गए थे इस्लाम के बारे में बड़ी श्रद्धा के भाव हृदय में लेकर वापिस आए थे । कबीर और दादू दोनों के ऐसे ही विचार थे । इसलिए मेरा यह विचार है कि कुरान को बुरी पुस्तक सिद्ध करने का तथा कुरान के मानने वालों का और भी बुरा बतलाने का यत्न निरर्थक और अवाञ्छनीय है । मेरी सलाह में यह अच्छा होगा कि हम इन पुस्तकों में से उन बातों को चुनें जो

सुन्दर और उत्तम हैं और जिनके कारण उन मनुष्यों के जीवन जो उनमे विश्वास रखते हैं उच्च बने हैं। यह खतरे की बात होगी यदि हम इस्लाम की परख उन मुसलमानो के कामो से करें जो भारत मे इस्लाम के झूठे प्रतिनिधि हैं और फिर उनके निन्दित आचरण का कारण कुरान की शिक्षा को बताएं। यह सिद्ध करने के लिए कि साधारणतः कुरान की सारी शिक्षा का रुख शान्ति की तरफ है मेरे लिए यह जरूरी नहीं कि मैं किसी मुसलमान के दुष्कृत की निन्दा करूं या उन कुछ पापो का कारण समझाऊं जो मैं अपने चारो तरफ होते हुए देखता हूं। कुरान के विषय मे उदारता पूर्ण भावो के कारण ही मैं मुसलमानो से उसी तरह भाव का व्यवहार करता हूं जैसा मैं हिन्दू भाईयो से करता हूं। किसी एक धर्म को लेकर उसी को सच्चा सिद्ध करना और अन्यो को मिटा देने का यत्न करने की अपेक्षा यह सुगम काम है कि संसार के सब धर्मों को सम सहानुभूति की दृष्टि से देखें। मैंने आपके पत्र का लम्बा उत्तर इसलिए दिया है कि मेरा विश्वास है आप सत्य के प्रेमी या जिज्ञासु हैं। यदि कुछ और भी पूछताछ आप करना चाहें तो प्रसन्नता से मैं आपका उत्तर दूंगा

आपका

एम० के० गांधी

नोट —

क्या आप समय निकाल कर इस्लाम की खण्डनात्मक समालोचना अब भी मेरे लिख कर भेजेंगे जिससे उसका उत्तर मैं अपने मुसलमान मित्रो से प्राप्त कर सकूं।

एम० के० जी०

४२ सम्बाद मैन्शन

कारपोरेशन लेन कलकत्ता

२५ जुलाई १९२८

श्री पूज्य महात्मा जी

सादर नमस्ते।

आपका ३२ मई का पत्र इलाहाबाद से लौटाया जाकर मुझे यहां मिला जिसके लिए आपको बहुत धन्यवाद है।

आपने इतना लम्बा पत्र लिखने से अपना अमूल्य समय देकर बड़ी कृपा की है मैंने आपका पत्र बहुत ध्यानपूर्वक कई बार पढ़ा है किन्तु मुझे यह लिखते हुए संकोच होता है कि उससे मेरे इस्लाम के विषय में विचारो में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ आपसे प्रार्थना है कि मेरे भेजे हुए लेखो को आप सम्पूर्ण रूप से पढ़ने की कृपा करें मैंने कुरान के श्रद्धालु भाष्यकर्ताओं के लेखो का उद्धरण दिया है जिससे पढ़ने से आपको प्रतीत होगा कि लिखने से पहले कुरान में और इस्लाम के विषय मे मेरे चित्त मे कोई द्वेष भाव न था

विशेष कर उन वाक्यो का जिनका आपकी सम्मति में अनुवाद ठीक नहीं हुआ यदि आप स्पष्ट रूप से उनका निर्देश करेंगे तो बहुत कृपा होगी।

आपके पत्र मे लिखी अन्य बातो का उत्तर निम्न प्रकार है —

१ इस बात मे सन्देह है कि गुरु नानक जी ने कुरान का पाठ किया था क्योंकि न तो उनको भाषा ही आती थी और न उन दिनो मे कुरान का भाषान्तर अनुवाद ही प्राप्य था।

इस के सिवाय गुरु नानक और कबीर के वचनो से यह प्रतीत होता है कि इस्लाम के सिद्धान्तो मे उनकी श्रद्धा न थी।

गुरु नानक न तो इस्लाम के मसभूत सिद्धान्त मोहम्मद साहब के पैगम्बरी को ही मानते थे और न मक्का की पवित्रता ही को स्वीकार करते थे। उनकी जीवन सम्बन्धी एक घटना का उल्लेख इस प्रकार से किया है कि वह एक समय मक्का की तरफ पांव पसार कर लेटे हुए थे जब कुछ मुसलमानो ने यह देखकर उन्हें भला बुरा कहा जिसके उत्तर मे गुरु साहब ने फरमाया कि तुम मेरे पैर उस तरफ कर दो जिधर मक्का न हो ज्यों ही उन लोगो ने गुरु साहब को पांव से पकड़ कर दूसरी तरफ फिराया कहानी है कि मक्के का मन्दिर भी उसी तरफ फिर गया।

ग्रन्थ साहब मे गुरु नानक जी ने एक जगह लिखा है —

छोड़ झूठ रसूल दी सेवे एक खुदाय

जिसका अर्थ स्पष्ट है कि पैगम्बर को छोड़कर एक प्रभु का ही आश्रय लेना चाहिए

कबीर जी ने भी इस्लाम के विरुद्ध लिखा है

सुन्नत कीने तुरक जो होइगा तो औरत का क्या करिये।

अर्द्ध शरीरी नार न छाड़ ताते हिन्दू ही रहिये ॥

कबीर जी का पालन पोषण एक मुसलमान जुलाहे नीरू ने किया था फिर भी उन्होंने इस्लाम को ग्रहण नहीं किया क्योंकि उसके सिद्धान्तो को वह नहीं मानते थे।

मुसलमान सूफियो के अन्दर भी कई ऐसे हुए हैं जिन्होंने कुरान के सिद्धान्तो का खण्डन किया है।

तुलसीदास जी ने अपनी पुस्तक घट रामायण के पृष्ठ ९४ पर मनसूर के निम्नलिखित वाक्य दिये हैं —

कुछ किताबो मे नहीं है कुल कुराना छल है।

वह पिया आलम को अखियो से नहीं कुछ दूर है ॥

जिससे स्पष्ट है कि सूफी मनसूर की कुरान के विषय मे अच्छी सम्मति न थी वह इसे निकम्मी पुस्तक बताते है।

२ ओल्ड टेस्टमेंट की बाबत आपने जो सम्मति प्रकट की है उसके विषय मे मुझे यह लिखना है कि न्यू ईसाई धर्म नहीं है ईसा मसीह के आने की भविष्य वाणी के सिवाये ओल्ड टेस्टमेन्ट मे ईसा मसीह की दी हुई कोई शिक्षा नहीं मिलती उसमे या तो यहूदियो का इतिहास और या यहूदी मत का प्रतिपादन है उसमे कहीं भी ईसामसीह पैगम्बर के रूप मे प्रकट नहीं हुआ उनके जीवन का इतिहास और उनकी शिक्षाएं न्यू टेस्टामेंट के अन्दर दी हुई हैं। यद्यपि यह ठीक है कि ईसा मसीह को यहूदी धर्म प्रवर्तक दाय भाग मे मिला था किन्तु उन्होंने अपनी शिक्षा द्वारा यहूदी मत के हिंसात्मक सिद्धान्तो का प्रतिवाद करके उनके स्थान मे दया और प्रेम के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया उनकी मृत्यु भी अपने सिद्धान्तो को प्रचार करते करते हुई।

न्यू टेस्टामेन्ट मे कोई वाक्य ऐसा नहीं मिलता जिससे खून बहाने या बदला लेने के भाव की गन्ध आती हो। ईसा मसीह की मृत्यु के चार सौ वर्ष बाद तक का ईसाइयो का इतिहास अद्भुत स्वार्थत्याग और आत्म बलिदान का इतिहास है।

सोलह हजार ईसाइयो की मृत्यु या तो अपने गुरु की तरह फांसी के तख्ते पर लटकाये जाने से हुई या उनको शेर के आगे डाल दिया गया। कईयो को उबलते हुए तेल के कड़ाहो मे फैंक दिया गया और कइयो की जीते जी चमड़ी उतारी गई।

धर्म की वेदी पर इन जीवन समर्पण करने वालो मे बहुत से तो युवक और युवतियां थीं जिस प्रकार आपके नानको आपरेशन के सन्देह को सन्देश को मानने वालो मे से एक बड़ी संख्या उन स्कूल और कालेज के लड़को की थी जिन्होंने आपकी आज्ञा मानकर इन सरकारी संस्थाओं को त्याग दिया था यह उपमा देते हुए मुझे इस लिए विशेष मान प्रतीत होता है क्योंकि आपको इस समय का दूसरा ईसा मसीह कहा जाता है।

ईसाइयत के इतिहास मे क्रूसेड नामी जिन लड़ाइयों का वर्णन आता है वह युद्ध योरुप के ईसाई राजाओ ने किये थे और उसमे ईसाई चर्च का विशेष हाथ न था।

कुरान की तरह बाइबल कभी तलवार के जोर से लोगो के सर पर नहीं मढ़ी गई ईसा मसीह जहां बड़ा भारी आत्म बलिदान करने वाला हुआ है वहां दूसरी तरफ मोहम्मद साहब बड़े लड़ाका थे इस लिये इन दोनो की समता बताना उचित नहीं।

भारत के इतिहास मे तो हिन्दू और बौद्ध दोनो इतिहासो मे एक भी घटना ऐसी नहीं मिलती जब धर्म का प्रचार शक्ति या धर्म परिवर्तन शारीरिक बल की सहायता से किया गया हो।

इस शान्तिपूर्ण व्यवहार का कारण आर्य जाति की वर्ण व्यवस्था थी जिसमे राज नैतिक या धार्मिक शक्तियों या अधिकारों का जुदा जुदा मनुष्यो के हाथ में रखना है।

क्षत्रिय नाम जिनके हाथो मे तलवार की शक्ति थी उनका देश के प्रबन्ध या राजनीति से तो सम्बन्ध था पर धर्म के क्षेत्र मे ब्राह्मण लोग गुरु थे और सब प्रकार की धार्मिक शक्ति उन्हीं के हाथो मे रहती थी।

भारत के धर्म प्रचार को और संन्यासियो जैसे समर्थ गुरु रामदास गुरु नानक और चैतन्य की तुलना ईसामसीह से की जा सकती है बुद्ध और महावीर की गणना भी इस प्रकार के प्रचारको मे है और यह तो है।

इसलाम के इतिहास मे इतनी खून खराबी क्यो पाई जाती है इसका कारण यह है कि वहां एक ही पुरुष के अधिकार मे दोनो शक्तियां राजनैतिक और धार्मिक रही है।

इस्लाम के खलीफा जो धार्मिक गुरु माने जाते रहे हैं राजशक्ति के भी अधिपति थे और उन्होंने इस्लाम का प्रचार करने के लिए निस्संकोच होकर अपनी राजनतिक शक्तियो या तलवार का उपयोग किया बौद्ध धर्म और ईसाइयत के प्रचार के लिए जहां बौद्ध भिक्षु और स्वार्थत्यागी मिशनरियो की सेनाएं भेजी गई वहां इस्लाम के प्रचार के लिए नौकर पेशा सैनिको की फौजें भेजी जाती रहीं। मारकस राड ने इसको बड़ी उत्तमता से वर्णन किया है —

निस्सन्देह इस्लाम की सफलता का एक बड़ा कारण उसका तलवार का उपयोग हुआ है। इस्लाम के बिना अरब निवासी संसार विजयी कदापि न हो सकते थे किन्तु बिना युद्ध के इस्लाम ही न होता। यहां युद्धक्षेत्र मे लड़ाई पर तलवार के भय से धर्म परिवर्तन किया गया है। कितनी ही जातियों को केवल एक घण्टे में इस नवीन धर्म की सत्यता को स्वीकार करना पड़ा कारण कि उनके लिए उस समय सर्वनाश के अतिरिक्त और कोई मार्ग न था। (मारकस राड)

शरीयत या कुरान के कानून के अनुसार हिन्दुओ की क्या स्थिति है यह दर्शाने के लिए हम एक उद्धरण लेनपूल Lane Pool की पुस्तक Mediaeval India Under Mahamuadan Rule से उद्धृत करते हैं। यह प्रसिद्ध पुस्तक है और इलाहाबाद यूनिवर्सिटी मे इन्टरमीडियेट और डिग्री के विद्यार्थियो की पाठ विधि मे है इसमें पृष्ठ १०५ पर लिखा है —

बगैर किसी धार्मिक कानून के आधार के सब धाराओ का लागू किया गया था। अलाउद्दीन की राय मे गवर्नमेंट का शरीयत के कानून से कोई सम्बन्ध विशेष न था और अलाउद्दीन को जो कुछ भला मालूम होता था वह करता था और कभी

उसने यह नही पूछा कि अमुक बात शरीयत के अनुसार है या नही। एक दिन अलाउद्दीन ने अपने कोर्ट मे बियाना के काजी को देखा और उससे कहाकि मुझ तुम से कुछ बातें पूछनी हैं जिनका मैं ठीक ठीक उत्तर चाहता हू। काजी ने भयभीत होकर कहा मेरा अन्तकाल समीप आया मालूम होता है। सुलतान अलाउद्दीन ने प्रतिज्ञा की कि वह उसे न मरवाएगा और तत्पश्चात एक विचित्र वार्तालाप प्रारम्भ हुआ —

अलाउद्दीन न कहाकि मैं पहले कानून (शरीयत) की दृष्टि से हिन्दुओ की स्थिति जानना चाहता हू। काजी ने उत्तर दिया कि हिन्दुओ का नाम खिराज गुजार या करदाता है इन पर विशेष कर लगाया जाना चाहिए और कर सग्रह करने वाले सरकारी हाकिम जब उनसे चादी मागे तो उन्हे बिना हील हुज्जत के नम्रता पूर्वक सुवर्ण देना चाहिए। यदि हाकिम उनके मुख मे थूकना चाहे या गन्द डालना चाहे तो उन्हे अपना मुह खोल देना चाहिए और उन हाकिमो को थूकने देना चाहिए। हाकिमो के प्रति सम्मान दिखाने का हिन्दुओ के लिए यही तरीका है और इस प्रकार कर देकर और अपने मुखो मे थुकवा कर वह इस्लाम के प्रति सम्मान दिखाते हैं। इस्लाम के प्रति सम्मा हिंदुओ को दासता मे रखना मुसलमानो का धार्मिक कर्तव्य है खुदा की भी ऐसी ही आज्ञा है कि हिन्दुओ को दबा करके रखो क्योंकि वह रसूलमुहम्मद साहब के कट्टर शत्रु हैं।

सुलतान अलाउद्दीन न उत्तर मे कहाकि मुझ यद्यपि विद्वान काजी का एक वाक्य भी समझ मे नही आया किन्तु मैंने की मैंने राज्य मे ऐसी व्यवस्था कर दी है कि वह मेरे हुक्म से डरकर चूहो की तरह अपने बिलो मे घुस जाने को तैयार हैं।

३ मेरा यह कभी भी तात्पर्य नही कि इस्लाम मे कुछ भी अच्छापन नही या कुरान सर्वथा बुरी पुस्तक है मेरा तात्पर्य केवल इतना है कि कुरान इस्लाम के प्रचार के लिए बल-प्रयोग या तलवार चलाने की आज्ञा देता है और मुसलमान जब सब काफिरो (हिन्दुओ) को मारते लूटते या उनके मकान जलाते हैं तब यह सब काम वे उस कुरान की शिक्षा के प्रभाव मे आकर करते हैं जो उनके मुल्लो या मौलानाओ से मिलती हैं।

आपका यह कहना सर्वथा सत्य है कि हमे इस्लाम की उत्तम बातो या सच्चाइयों को देखना चाहिए पर यह बात भी भुलाई नही जा सकती कि किस मिश्रित धर्म की तरह हम कभी ऐसी पुस्तकों को उस श्रद्धा से ग्रहण नही कर सकते जिस श्रद्धा से धर्म पुस्तको का ग्रहण होता है।

क्योकि भिन्न भिन्न मतो की धर्म पुस्तकें परस्पर विरुद्ध बातो से भरपूर हैं। हम समान भाव से उन्हें सच्चा या आदरणीय भी नही मान सकते। सत्य सिद्धातो की रक्षा के लिए असत्य और हानिकारक सिद्धातो का हमे खण्डन करना ही पड़ता। इसमे सन्देह नही कि यह काम बड़ा कठिन है और सावधानी से किया जाना चाहिए जिससे किसी का दिल न दुखे। हमे चित्त मे सदा इस बात को अकित रखना चाहिए कि शाति और प्रेम से धर्म का प्रचार करने से ही जनता का कल्याण होता है किन्तु इस कार्य मे किसी प्रकार का समझौता नही किया जा सकता। सहनशीलता ब्रह्मचर्य और त्याग के भावो को फैलाने के लिए हमे दुराचार लूटमार और भोगवाद के सिद्धातो का खण्डन करना होगा चाहे वह कुरान में मिलें या पुराण मे।

यहा भारत वर्ष की स्वतंत्रता और राजनैतिक एकता का प्रश्न हमारे सामने आता है। भारत वर्ष मे एक शक्तिशाली विदेशी जाति मौजूद है जो सदा हिन्दु मुसलमानो के झगड़ो से फायदा उठाती है और इसी लिए हमारे देश के नेता यह नही चाहते कि लोग परस्पर सदा धार्मिक वादविवाद मे लगे रहे जिससे देश की अधोगति होती रहे। यह वस्तुत बड़ा ही सराहनीय भाव है पर कोई भी विचारशील पुरुष इस बात का भुला नही सकता कि हिन्दू मुसलिम दंगे फसाद और झगड़ो का कारण मुसलमानो का वह विश्वास या मानसिक भावना है जिसके अनुसार वह हिन्दुओ को काफिर समझते हैं और यदि वे काफिर उनके इस्लाम सेवा के मार्ग मे बाधक सिद्ध हो तो उन्हे मारना भी वह धर्म समझते है। इन अवस्थाओ मे ऐसे मामले को सुलझाना हमारे नेताओ का कर्तव्य है। मेरी सम्मति मे कुरानादि धर्म पुस्तकों से एकता के साधन ढूढने की जगह या धर्म को राजनैतिक क्षेत्र मे घसीटने से यह अच्छा होगा कि हमारे नेता भारत की मुसलमान जनता के हृदय मे यह भाव जमाने का यत्न करें कि भारत उन की जन्मभूमि है और अपने देश के कल्याण या स्वराज्य प्राप्ति के लिए हिन्दुओ का सहयोग देने मे उनका अपना भला है।

मुसलमान भाष्यकर्ताओ की टीका टिप्पणीसमेत मैंने कुरान और हदीस के उद्धरण आपकी सेवा मे भेजे हैं और आशा है कि समय पा कर आप उन्हे पढ़ेंगे।

४ वेदो के विषय मे मैं फिर इस बात को दुहराता हू कि उनमे कहीं भी इस प्रकार की शिक्षा नही कि हम इस लिए किसी आदमी से बुरा व्यवहार करना चाहिए कि उसका मत हमसे नही मिलता और न मतभेद के लिए वेदो मे किसी को किसी प्रकार का दण्ड देने का ही विधान है। केवल पाप कर्म करने के कारण ही किसी को दण्ड देने की आज्ञा है जब इस्लाम की दृष्टि मे कोई मनुष्य केवल अपनी स्वतंत्र सम्मति विशेष या विचार के कारण काफिर समझा जाता है जैसे मुहम्मद साहब को पैगम्बर न मानना। बड़ा आश्चर्य की बात है कि मुसलमानो के नेता मौलाना मुहम्मदअली) आप सरीखे महापुरुष से एक नीच और अधम मुसलमान को इस लिए अच्छा समझते है क्योंकि वह मुसलमान है।

वेद मे आए दस्युओ विषयक मन्त्रो के सम्बन्ध मे आपको भ्रम हुआ मालूम होता है। दस्यु नाम से वेद मे किसी जाति विशेष का बोधक नही है। आर्यों मे ही पाप करने वालो को दस्यु कहा जाता था और वैदिक कोष के अनुसार दस्यु शब्द का यही अर्थ है। यही कारण है कि वेन [१] दण्डक रावण और दुर्योधन को जो आर्य जाति मे उत्पन्न हुए थे उनके पाप कर्मो के कारण दस्यु कहा जाता है। इस लिए दस्यु लोगो को पापी सिद्ध करने का कोई प्रश्न ही पैदा नही होता जैसा आपने लिखा है कि प्रत्येक पन्थ अपनी बुरी बातों या सदिग्ध रीति रिवाजो को युक्ति सगत सिद्ध करने के लिए उन पुरुषो को पापी सिद्ध करता है जिनको वह अविश्वास की दृष्टि से देखता है।

आगे आपने लिखा है कि जिनको दस्युकहा जाता था वे अपने आपको बुरा नही समझते थे। आप ही विचारें यह युक्ति कहा तक किसी पापी को बचाती है कि वह पाप कर्म करते हुए अपने आपको पापी नही समझता। सदाचार की कसौटी स्वतंत्र और स्वत सिद्ध है। भिन्न भिन्न मनुष्यो की सम्मति या विचारो के अनुसार उसे बदला नही जा सकता। अन्यथा सामाजिक सदाचार की रक्षा के लिए कोई कानून ही नही बनाया जा सकता

आपने यह सब लेख अंग्रेजी मे अनुवाद करके आपकी सेवा मे भेजने के लिए आज्ञा दी है। मैं उसे पालन करने का शीघ्र यत्न करूगा।

मैं एक बार फिर आपके पत्र के लिए आपका धन्यवाद देता हू कि आपने अपना इतना अमूल्य समय देने की कृपा की है विशेष कर जब आपका स्वास्थ्य इन दिनो म इतना निर्बल हैं।

आपका श्रद्धायुक्त
देवेश्वर।

बगलोर अ० बु० ३

प्रोफेसर साहब

जस्टिस अमीर अली की किताब मैंने इसी बिमारी मे दुबारा देख ली। वे भी तो इतिहास वेत्ता हैं। इस्लाम का प्रचार तलवार से नही हुआ है इस बात का समर्थन जस्टिस अमीर अली किस तरह करते है उसे आप देख। आखिर कार जिस तरह भारत वर्ष के इतिहास के लिए हम विदेशी टीकाकारो का अभिप्राय सहमत नही होगे परन्तु हमारे ही राष्ट्राभिमानी इतिहास वेत्ता का अनुसरण हम करेंगे इसी तरह से हमारे इस्लाम की तवारीख और कुरान का अभ्यास करना उचित है। मैने पढ़ा तो नहा है परन्तु सुना है कि टी डब्ल्यू आर्नल्डने बड़ परिश्रम और सशोधन के बाद एक किताब लिखा है जिसका मतलब यही है कि इस्लाम का प्रचार तलवार से नहा हुआ। आधुनिक भारत वर्ष के मुसलमान का बर्ताव कैसा भी बुरा माना जाए परन्तु यदि हम उस बर्ताव से इस्लाम के लिए कुछ भी अभिप्राय कायम करें तो न्याय दृष्टि नहा मानी जायेगी। न हम को जगत के साथ मैत्री करने के लिए इस से कोई सामान मिल सकता है।

आपका
मोहनदास गाधी।

(श्री महात्मा जी के १७ अगस्त १९२७ के पत्र का हिन्दी अनुवाद)

बगलोर से १७ अगस्त १९२७

प्रिय मित्र

आपके लम्बे पत्र और आपकी लेख माला की पुस्तक के लिए धन्यवाद है। इन लेखो को दूसरी बार पढ़ने के लिए समय निकालने का मैं यत्न करूगा

आपका अंग्रेजी मे लिखना मैं अधिक पसन्द करूगा। मुझ स्मरण नही कि क्या मैने अपने पिछले पत्र मे आपको यह लिखा था कि अंग्रेजी का अनुवाद मुझ अपने लिए नही अपितु उन मुसलमान मित्रो को दिखाने के लिए चाहिए जो कि कुरान का भली प्रकार से जानते है। मेरा कुरान का अध्ययन सर्वथा पूर्ण नहीं है। यह तो केवल मेरे अपने मन तोष के लिए था।

आपका विचार है कि दस्यु शब्द का वेद मे वह अर्थ नही है जो कि काफिर के इस्लाम मे है। बगैर प्राचीन ऐतिहासिक काल की तरफ झाकको से जाने के लिए मैं आपका ध्यान उस इतिहास की तरफ खीचता हू जो कि हमारे बीच मे आज कल गुजर है। क्या हजारो हिन्दू मसल

---

[१] वेन को अपने अत्याचार और पापो के कारण चालर्स दी फर्स्ट की तरह राज्यच्युत किया गया था। इस घटना से प्रजा को शिक्षा देने के लिए कि पाप के कारण एक आर्य राजा को आर्य राजा को आर्य जाति से पृथक किया जा सकता है उससे राज्य भी छीना जा सकता है वेन राजा के इतिहास को पढना श्रीमद्भागवत म धर्म माना गया है।

मुसलमानों को अपना बन्धु नहीं समझते और समझते हैं कि या तो उन्हें शुद्ध कर लेना चाहिए या मार देना चाहिए। और क्या कई शिक्षित भारतवासी अंग्रेजों को पापी नहीं समझते। मान लीजिए कि एक ऐसा आदमी जिसमें कि असीम उदारता का भाव न हो हमारे और अंग्रेजों के पारस्परिक सम्बन्ध का वर्णन करते हुए एक विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ लिखे तो क्या वह अंग्रेजों को ऐसा दस्यु या आततायी न बतावेगा जिनको कि देखते ही मार डालना चाहिए और मान लीजिए कि यह ग्रन्थ काल के भयानक परिवर्तनों से सुरक्षित रहकर लोगों का धर्म पुस्तक माना जाने लगे तो क्या आने वाली सन्तति वही गलती न करेगी जो हम दस्यु शब्द के अर्थ लगाने में कर रहे हैं और कहेगी कि यह दस्यु भारत की उस समय के राजनैतिक लुटेरे ही नहीं अपितु दुष्ट पुरुष थे। दूसरा दृष्टान्त लीजिए। असहयोग आन्दोलन का जन्मदाता होने से मुझे यह बात मालूम है कि कई असहयोगी सहयोगियों को घृणा की दृष्टि से देखते थे मानो वह बड़े राक्षस हों और यदि आज्ञा दी जाती तो वह इन गरीब सहयोगियों का नाश कर देते। क्या सहयोगी दस्यु हैं? असली बात यह है कि ज्यूं ही आप इस सिद्धान्त को मान लेते हैं कि उन मनुष्यों को मार देना चाहिए जिनको कि आप पापी समझते हैं तो आप बाजी हार जाते हैं और उसी श्रेणी में आ जाते हैं जिसमें कि कुरान का लेखक है।

नानक देव और कबीर के विषय में जो कुछ आपने लिखा है उसके विरुद्ध भी मैंने सम्मतियां सुनी हैं परन्तु यह बहुत ही साधारण बात है।

जब आपकी पुस्तक को पढ़ने का मुझे अवसर होगा तो मैं आपको उन उद्धरणों (कुरानादि की आयतों) के बारे में लिखूंगा जिनके विषय में मैंने यह समझा था कि आपका अनुवाद यथोचित नहीं हुआ

आपका विश्वासपात्र
एम के गांधी

कलकत्ता ४ अक्तूबर १९२७

श्री पूज्य महात्मा जी

नमस्ते

आपका १७ अगस्त का पत्र मिला जिसके लिए अत्यन्त धन्यवाद है। कि आप स्वामी श्रद्धानन्द जी की हत्या या इस्लाम की शिक्षा नामक पुस्तक दूसरी बार पढ़ने का यत्न करेंगे इस के लिए मैं आपका आभारी हूं मैंने अंग्रेजी में लिखने का इस लिए विचार किया था क्योंकि आपने अपने २८ ५ २७ के पत्र में Post Script में पैंसल से यह शब्द लिखे थे

Could you find time to write out you indictment of Islam in English so as to enable me to get a reply from Mussalman friend

अस्तु।

दस्यु शब्द के विषय में मेरा यही मत है कि इस शब्द के वेद या वैदिक साहित्य में सर्वथा वह अर्थ नहीं है जो काफिर शब्द के इस्लाम में है। मुसलमान लोग बिना किसी विचार के अन्य मतावलम्बियों को काफिर कहते हैं चाहे उनका आचरण या जीवन कितना भी ऊंचा क्यों न हो। इस्लाम के सिद्धान्तों के अनुसार मौ महम्मद अली सरीखे विद्वान को आप सरीखे उच्च जीवन व्यतीत करने वाले कर्मयोगी के लिए मुसलमानों की सभा में यह कहने के लिए बाधित होना पड़ा कि एक शराब पीने वाला और दुराचारी मुसलमान भी महात्मा गांधी से श्रेष्ठ है। इस्लाम किसी मनुष्य को उसके कर्तव्य (जीवन आचरण वाले व्यवहार) से नहीं अपितु केवल मन्तव्यों से जांचता है। जो मनुष्य कुरान के खुदा और मुहम्मद साहब को पैगम्बर नहीं मानता वह काफिर है और कुफ्र के दण्ड का पात्र है। उसका जीवन कितना भी ऊंचा परोपकार युक्त और जितेन्द्रिय त्यागादि गुणों से युक्त क्यों न हो वह काफिर ही कहलावेगा। इसके विपरीत वेद व वैदिक धर्म मनुष्य या उसके कर्मों और मन्तव्य विचारों दोनों में उत्तम है जिसमें से कर्तव्य प्रधान क्रियात्मक जीवन की प्रधानता और विचारों मन्तव्यों या सिद्धान्तों की गौणता है। जो मनुष्य सदाचारी श्रेष्ठ कर्म करने वाला है उसका नाम आर्य है और इसके विपरीत जो परहानि में लगा हुआ दूसरों की हिंसा करने वाला है वह दस्यु कहाता है। आर्य और दस्यु ये दोनों शब्द यौगिक अर्थात् धातु से बने होने से यौगिक अर्थ युक्त हैं। १ प्राचीनकाल से वेदों के सब टीकाकार इन शब्दों के यही अर्थ करते आए हैं। ऋषि दयानन्द सरस्वती और सायणाचार्य इस विषय में सहमत हैं। ऋग्वेद १० ४९ ३ अहमत्कम न यो ऽऽ आर्य नाम दस्यवे इस मन्त्र में सायण आर्य का अर्थ श्रेष्ठ करते हैं।

वाचस्पत्य कोष में आर्य शब्द के ऊपर लिखा है कि स्वामी गुरु सुहृद श्रेष्ठ कुलोत्पन्न पूज्य श्रेष्ठ आदि अनेक अर्थ में आर्य शब्द आता है। ऋ धातु से रायत प्रत्यय होने पर आर्य शब्द बनता है। और स्मृति में इसकी व्याख्या यों की है —

कर्तव्यमाचरन् कार्यमकर्तव्यमनाचरन्।
तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य
इति स्मृतः॥

अर्थ —कर्तव्य कार्य को करता हुआ अकर्तव्य को न करता हुआ। अपने प्रकृताचार धर्म में सदा स्थित पुरुष आर्य कहाता है।

इससे सिद्ध हुआ कि चाहे कोई मनुष्य मत से मुसलमान ईसाई यहूदी आदि कुछ भी क्यों न हो और चाहे वह किसी देश का भी निवासी क्यों न हो यदि वह सदाचारी है और अपने कर्तव्य कर्म Duty का ईमानदारी से पालन करता है तो वह आर्य कहावेगा। और इसके उलटा जो कर्तव्य कर्महीन है दूसरों का नाश करता चोरी हिंसा दुराचार करता है उसका नाम दस्यु है। चाहे वह आर्य जाति में या आर्यावर्त देश (भारत वर्ष) में ही पैदा क्यों न हुआ हो। एक प्राचीन स्मृति में आर्य का अर्थ करते हुए स्पष्ट यही बात लिखी है —

वृत्त न भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया अर्थ मनुष्य उत्तम आचरण से आर्य कहाता है न कि धन या विद्या से। परन्तु इस्लाम के अनुसार कोई मनुष्य कितना भी सदाचारी और Duty ful अपने कर्तव्य का पालन करने वाला क्यों न हो उसको तब तक मुसलमान (जिसके आचर्य यद्यपि आर्य शब्द सरीखे ही हैं अर्थात् जोकि अपने ईमान पर पक्का हो) नहीं कहा जा सकता जब तक कि वह कुरान के खुदा और मुहम्मद साहब को पैगम्बर न माने। वह तो तो काफिर ही कहलावेगा। इस के विपरीत वेदों के अनुसार मुसलमान आर्य और ईसाई आर्य भी हो सकते हैं और दस्यु हिन्दुओं में और मुसलमानों में दोनों में हैं।

इस विषय में बहुत से भ्रम का कारण यह है कि योरोपियन विद्वानों ने अपनी ऐतिहासिक पुस्तकों में इस थ्योरी का प्रतिपादन किया है कि आर्य लोग प्रथम २ भारत में उत्तर पश्चिम की ओर से ईरान और अफगानिस्तान की तरफ से आए। भारत वर्ष के आदि निवासियों को युद्धों में हराकर परास्त करके इस देश पर अपना अधिकार जमा लिया। इनको वह दस्यु नाम से पुकारते थे और इन पर अत्याचार करते। इन्हीं के मारने का वेद में वर्णन है इत्यादि २।

प्राचीन आर्य धर्म शास्त्रों के देखने से सिद्ध होता है कि यह थ्योरी निर्मूल है और मनुष्य जाति की प्रथम सृष्टि तिब्बत में हुई। यही प्रदेश भूमि पर सब से ऊंचा धरातल है और इसी लिए यहीं जल में से प्रथम २ बाहर आया। तिब्बत से आर्य लोग भारत में आए और इस देश को जल वायु और अन्न फल आदि की उत्पत्ति की दृष्टि से उत्तम निवास योग्य देखकर इस में बस गए।

१ ये दोनों शब्द वेद में साथ साथ आए हैं। आर्य शब्द का प्रयोग प्रथम दिखा कर फिर दस्यु शब्द का प्रयोग देखने पर यह विषय स्पष्ट हो जावेगा इस लिए आर्य का प्रयोग मैं आपके सामने उपस्थित करता हूं।

वेदों में किसी जाति विशेष के साथ पक्षपात युक्त व्यवहार की आज्ञा नहीं है। और न आर्य और दस्यु दो भिन्न भिन्न जातियों का नाम है अपितु श्रेष्ठ मनुष्यों का नाम आर्य और पापियों का नाम दस्यु है। दस्यु या पापी मनुष्यों को वश में करने दण्ड देने और मारने की आज्ञा वेदों में है यह सत्य है और इसका मण्डन मैं आगे चल कर करूंगा।

दस्यु शब्द दसु उपक्षये इस धातु से बना है। इसका अर्थ है वह मनुष्य जो प्रजाओं में उपक्षय अर्थात् विनाश (ह्रास) पहुंचाया करे।

दस्यु किसी जाति का नाम किसी प्राचीन भाष्यकार या टीकाकार ने नहीं लिखा। दस्यु दस्यतेः क्षयार्थात्। उपदासयति कर्माणि।

दसु उपक्षये धातु
(उणा ३ २०)
निरुक्त अ ७ पा ६
खण्ड २२।

कुछ और प्रमाण भी प्राचीन वैदिक साहित्य से मैं नीचे देता हूं जिससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि दस्यु उस समय किसी जाति विशेष का नाम न था मुसलमान या अंग्रेजों के लिए दस्यु शब्द का प्रयोग वैदिक नहीं है। Non co operator और सहयोगी Co operator का दृष्टान्त इस स्थान में इसलिए नहीं घटता क्योंकि वैदिक सिद्धान्त के अनुसार मन्तव्य या विचार भेद के कारण किसी को दस्यु नहीं कहा जा सकता जो धर्म विरुद्ध चले वही दस्यु है और धर्म का एक Universal सर्वमान्य त्रैकालिक लक्षण वैदिक शास्त्रों ने कर दिया है जिसके अनुसार नाश करने चोरी करने अत्याचार या व्यभिचार करने वाला दस्यु कहाता है। Co-operation सहयोग या असहयोग Non Co-operation कोई कूटस्थ तीनकाल में न बदलने वाले सिद्धान्त नहीं हैं यथा झूठ न बोलना चोरी न करना आदि इस लिए जैसा आपने दर्शाया है असहयोगियों का सहयोगियों को दस्यु कहना व्यर्थ है।

आचारहीन होने पर आर्य लोग ही दस्यु कहाते थे इस में ऐतरेय ब्राह्मण ७।१८ से एक वाक्य नीचे उद्धृत करता हूं —

तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा आसुः पञ्चाशदेव ज्यायांसो मधुच्छन्दसः पञ्चाशत्कनीयांसः। तद्ये ज्यायांसो न ते कुशलं मेनिरे। तानन्वव्याजहार अन्तान् वः प्रजा भक्षीष्टेति।
त एतेऽन्ध्राः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दा मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः

(अर्थ) इस प्रकार आज्ञा भंग करते हुए उन पुत्रों से विश्वामित्र ने कहा कि तुम्हारे सन्तान नीच जाति को प्राप्त

होवे सो वे य श द पु ड शबरादि नीच श्रेणि के मनुष्य हुए।

दस्यु कर्म करने वाले को दस्यु कहते हैं इस में महाभारत भी साक्षी है।

मान्धातोवाच

यवना किराता गान्धाराश्चीना

शबर बर्बरा ।

शकास्तुषारा कङ्काश्च पह्लवा

श्चान्ध्र मद्रका ॥१३॥

पौण्ड्रा पुलिन्दा रमठा काम्बोजा

श्चैव सर्वश ॥

ब्रह्म क्षत्र प्रसूताश्च वैश्या शूद्राश्च

मानवा ॥१४

कथ धर्माश्चरिष्यन्ति सर्वे विषय

वासिन ।

मद्विधैश्च कथ स्थाप्या सर्वे वै

दस्युजीविन । (१५)

एतदिच्छाम्यहे श्रोतु भगवस्त

ब्रवीहि मे ।

त्व बन्धुभूतोह्यस्माक क्षत्रियाणा

सुरेश्वर । (१६)

महाभारत शान्तिपर्व अ ६५।

राजा मान्धाता इन्द्र से पूछते हैं कि यवन किरात गान्धार चीनादि तथा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र य सब कैसे धर्म करें क्योंकि ये दस्यु कर्म से जीवन व्यतीत करने लगे है। और दस्यु जीवी पुरुषो की स्थापना हम कैसे कर सकते हैं आप कृपा करके ये विषय मुझे सुनाव। इन श्लोको से स्पष्ट है कि पाप करने से ब्राह्मणादि आर्य ही दस्यु कहाते हैं कस रावण दुर्योधनादि जिनको सस्कृत साहित्य मे दस्यु और राक्षस करके कहा गया है ये सब आर्य जाति के सदस्य थे। रावण पुलस्त्य ऋषि की सन्तान था और कस कृष्ण भगवान का मामा था।

कृष्ण जी ने जिन कस जरासधादि दैत्यो का सहार किया वह भी तो जाति से आर्य ही थे। इससे सिद्ध होता है कि आर्य और दस्यु शब्द वैदिक काल मे गुण परक ही थे हा पीछे से जाति रूप मे कहीं कहीं इनका प्रयोग किया जाने लगा। जब हिन्दुओ पर विदेशी यवनादिको ने आक्रमण किए और वह यवनों से पराजित हो उनके अत्याचारो से पीडित हुए तो मुसलमानो आदि विदेशियो के लिए उन्होने दस्यु शब्द का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। और फिर क्रमश सब विदेशी जातियों के लिए घृणा से इस शब्द का प्रयोग होने लगा।

वेद मे मनुष्यमात्र के उनके कर्मो के अनुसार ही विभाग किए हैं आर्य और दस्यु। देखिए ऋग्वेद १ ११ ५ विजानी ह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्। राजा के लिए उपदेश है कि राजेन्द्र। तुम दस्यु और आर्य दोनो प्रकार के मनुष्यो को पहचानो और जो दस्यु है उनका शासन करो उन्हे वश मे लाओ और यदि वह शासन को न माने तो उनका नाश करो इत्यादि।

अब रहा प्रश्न दस्यु और आततायी को मारने का सो इस विषय मे वैदिक धर्म की आज्ञा तो स्पष्ट यह है कि दस्यु को राजदरबार और आततायी को प्रत्येक मनुष्य दण्ड दे सकता है। शास्त्र की आज्ञा है —

गुरु वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मण वा बहुश्रुतम् ।

आततायिनमायान्त हन्यादेवाविचारयन्

मनु

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहा।

क्षेत्रदार हरश्चैव षडेते आततायिन ।

मनु।

समस्ते त्वाततायी वधोद्यते

अमरकोष

अर्थ —घर मे आग देने वाला विष देने वाला हाथ मे शस्त्र लेकर जो मारने आ रहा हो धन छीनने वाला स्त्री और क्षेत्रादि पर आक्रमण करने वाले इन ६ पुरुषो का नाम आततायी है। सम्मुख आते आततायी को बिना विचारे मार डालना चाहिए वह आततायी अपना गुरु बालक वृद्ध और ब्राह्मण ही क्यो न हो आत्मरक्षण मुख्य धर्म है।

हां नहीं दस्यु है। आपको य तो स्वीकार ही होगा कि धर्म के कुछ ऐसे भी लक्षण हैं जो सर्वमान्य हैं जिनको सब धर्मों के सब लोग सब कालो मे मानते चले आए हैं और सौभाग्यवश धर्म ग्रन्थों मे जो लक्षण धर्म के दिए हैं वह Sectarian एक मत विशेष के न होकर सर्वमान्य था Uu versal है जैसे देखिए मनुस्मृति —

धृति क्षमा दमोऽस्तेय शौच मिन्द्रिय

निग्रह ।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशक धर्म

लक्षणम्।

अर्थ —धैर्य क्षमा अपने मन को वश मे रखना संयम चोरी न करना अर्थात दूसरो के पदार्थों अधिकारो वा स्वतन्त्रता का अपहरण न करना वा प्राणियो को किसी भी प्रकार से धोखा न देना मन वचन कर्म से शुद्ध रहना ब्रह्मचर्य इन्द्रियनिग्रह पराई स्त्री को कुदृष्टि से न देखना भी पवित्र विचार चिंतन मादक द्रव्यो के सेवन से बचना और अपनी बुद्धि की रक्षा करना धर्म शास्त्रो का पठन या विद्वानो की सेवा और सत्सग सदा सत्य मानना बोलना और सत्याचरण और क्रोध का त्याग

nouvoilence के प्रचार मात्र से नियम मे रक्खे जा सकते है एक पवित्र आकाक्षामात्र या मीठा स्वप्न है जो ससार के इतिहास मे न कभी पूरा हुआ और न होगा। सब देशो सब जातियो और सब कालो मे कानून की रक्षा राजदण्ड से की जाती रही है और कानून या धर्म विरुद्ध कर्म करने वाले को दण्ड Punishment देना धर्म का अग माना जाता रहा है। यह दण्ड बदला लेने के भाव से या बदला लेने के रूप मे न होकर पापी के सुधार के लिए होना चाहिए यह तो सब विद्वान मानते हैं। मनु जी ने इस विषय पर सुन्दर लिखा है

दण्ड शास्ति प्रजा सर्वा दण्ड

एवाभि रक्षति ।

दण्ड सुप्तेषु जागर्ति दण्ड धर्म

विदुर्बुधा ।

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति

पापहा ।

प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु

पश्यति ।

दण्ड से प्रजाओ का शासन होता है और दण्ड से ही दुष्ट पुरुषो से प्रजाओ की रक्षा होती है दण्ड सब के सोते जाग कर रक्षा करता है और दण्ड ही को विद्वान धर्म कह कर पुकारते हैं। जिस स्थान पर पाप नाश करने वाला कृष्ण वर्ण और रक्त नेत्र वाला दण्ड वर्तमान रहता है और उस दण्ड का नियोजक शासक या न्यायाधीश ज्ञ वक्ता रहता है।

जिस कानून व धर्म के पीछे उसको मनवाने वाली राज शक्ति Soveregn outhority नहीं उसको आज भी Juris prudence धर्म शास्त्र के अनुसार कानून नहीं माना जाता। कहने का तात्पर्य यह है कि दुष्ट को भी न मारना ऐसी अहिंसा को आर्य शास्त्र ने नहीं माना। अपितु दुष्टो को मारना श्रेष्ठों की रक्षा करना धर्म की स्थापना इसी रूप से धर्म की व्याख्या की गई है।

ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार

आर्य मर्यादा के इस विशेषाक में हम श्री प० देवेश्वर जी सिद्धान्तालकार का श्रीयुत गांधी जी के साथ सन् १९२६ में हुआ वह पत्र व्यवहार प्रकाशित कर रहे हैं जो श्री प० देवेश्वर जी सिद्धान्तालकार की पुस्तक स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या और इस्लाम की शिक्षा जहाद को पढ़ने के पश्चात श्री गांधी जी की प्रतिक्रिया से प्रारम्भ हुआ था। इस पत्र व्यवहार का विशेष ऐतिहासिक महत्व है। आशा है आर्य मर्यादा के पाठक इसे अवश्य पसन्द करेंगे। —आर्यप्रकाश आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष

वैदिक धर्म मे अहिंसा वा सब भूतहित को महान धर्म गिना है पर आत्मरक्षण (Self defencc) के लिए आततायी को मारना वा धर्म युद्ध मे क्षत्रियो का अपने शत्रुओ का वध करना न केवल यही कि हिंसा नहीं अपितु धर्म माना गया है।

जो जिसको बुरा पापी या दस्यु कहे या माने वह उस को मार डाले यह तो वस्तुत बुरा है जैसा कि आपने लिखा है कि —

The fact is that imme diately you accept the doctrine of slaying people whom you cons der to be wicked you really Surren der the whole case and come under the same cate gary as the writer of the Koran

(रेखाकित मैंने कर दिया है)।

किन्तु वैदिक सिद्धान्त ऐसा नहीं है जो वस्तुत पापी और धर्म का शत्रु

आत्मभाव से रहना ये सर्वमान्य धर्म है।

ये धर्म का ऐसा उत्तम लक्षण है कि प्रत्येक मनुष्य का आत्मा इसको स्वीकार करता है। इसलिए य प्रश्न नहीं हो सकता कि क्योंकि प्रत्येक मजहब के अनुसार धर्म और अधर्म पाप और इसी प्रकार पाप और पापी के लक्षण तो जुदा जुदा हैं फिर किस प्रकार इस बात का निश्चय हो कि अमुक मनुष्य पापी है और यदि पापी को मारने का सिद्धान्त मान लिया जावे तो ससार मे अनर्थ मच जाएगा। वस्तुत सत्य तो यह है कि यदि पापी को दण्ड देने और मारने के लिए सिद्धान्त को न स्वीकार किया जावे तो ससार मे उधम मच जावे और कोई भी सज्जन पुरुष शान्ति से जीवन व्यतीत न कर सके। पापी और दुष्टात्माओ का ही राज्य हो जावे। यह समझना कि जन साधारण राजदण्ड वा आत्मदण्ड के स्थान पर केवल धर्मोपदेश से और देश काल सम्मानार्थ ... अहिंसा धर्म The conditional

हम विषय मे इस्लाम से वैदिक धर्म का अन्तर इतना है कि इस्लाम जहा केवल मन्तव्य के विचार से लोगो को काफिर बना देता है वहा वैदिक धर्म कर्तव्य और मन्तव्य दोनो का विचार करता है और प्रधानता मनुष्य के जीवन के कर्तव्य को दी जाती है न कि मन्तव्य को वैदिक धर्म मे हिंसा और अहिंसा किसको माना गया है इस विषय मे दो चार शब्द स्पष्टीकरण के लिए लिख देने आवश्यक हैं। स्वार्थ व अपयश या मूर्खता से अथवा यो कहिए कि काम क्रोध लोभ व मोह दि के वशीभूत होकर जो दूसरे को किसी प्रकार से भी हानि पहुचाना है उसी का नाम हिंसा है। अपने कर्तव्य

(शेष पृष्ठ १० पर)

(१ पृष्ठ का शेष)

यह है कि हिन्दुओ की कोई ऐसी संस्था नही जो इस खतरे की तरफ उनका ध्यान दिला ए।

हमारे सामने सबसे बडी समस्या पंजाब की है। जब तक यह विचार रहा कि हिन्दुओ और सिखो मे कोई अन्तर नही हमने अपनी जनगणना की तरफ अधिक ध्यान नही दिया यह भी समय रहा है जब हर परिवार में एक बच्चे के सिर पर केश जरूर रखे जाते थे ताकि वह सिख बन सके। परन्तु उस समय के हिन्दुओ और सिखो मे कोई अन्तर न होता था। अब स्थिति बिल्कुल बदल गई हैं अकालियो ने स्पष्ट रूप से कह दिया है कि हिन्दू और सिख दो अलग अलग कौमें हैं। इसी के साथ उनमे से कुछ ने खालिस्तान का नारा भी लगाया है। जिसके

अब मैं यह सेता हू कि जिस प्रकार मुहम्मद अली जिन्नाह ने दो कौमो के सिद्धांत पर पाकिस्तान की माग की थी उसी प्रकार हिन्दू और सिख दो कौमे हैं। इस सिद्धांत पर अकाली किसी समय एक अलग स्वतन्त्र और स्वाधीनता प्राप्त देश की माग भी कर सकते है। जब वे बारा बार कहते हैं कि हिन्दू और सिख दो कौमे हैं तो उसके इसके अतिरिक्त और कोई अर्थ नही कि वे कीच या देर मे वह ही माग पेश करेंगे जो मुहम्मद अली जिन्नाह ने की थी। इस स्थिति मे आगामी जनगणना का महत्व और भी बढ जाता है अगर अकालियो के इस सिद्धांत को मान लिया जाए कि हिन्दू और सिख दो कौमे हैं तो दो कौमो का न तो एक धर्म हो सकता है न ही एक भाषा हो सकती है। इसलिए मैं पंजाब के हिन्दुओ को विशेष रूप से सतर्क करना चाहता हू कि उन्हे आगामी जनगणना के समय सजग रहना चाहिए। हिन्दुओ मे भी विशेष रूप से अपने हरिजन भाईयो को एक चेतावनी देना चाहता हू यह तो मेरा विश्वास है कि खालिस्तान नही बन सकता। परन्तु हमे यह न भूलना चाहिए कि जिस भारत सरकार ने पंजाबी सूबा बनाया था कल मालूम नही कल को और क्या बना दे हमे सरकार का सहारा नही लेना चाहिए। परन्तु अपने संगठन को मजबूत करके अपनी शक्ति को और भी अधिक बढाना चाहिए जब अकाली कहते हैं कि वह एक अलग कौम है। उनका धर्म सिख है और उनकी जुबान पंजाबी है तो हम भी कह सकते हैं कि हमारा धर्म वैदिक धर्म है। जो हिन्दू धर्म लिखाना चाहते है वह हिन्दू धर्म लिखा सकते हैं। मैं अपने हरिजन भाईयो से विशेष रूप से कहना चाहता हू कि वह अपनी कोई जाति लिखवाय। उन्हे साथ यह जरूरी लिखवाना चाहिए कि वह हिन्दू हैं और जहा तक भाषा का प्रश्न है अकालियों ने हमारा रास्ता बिल्कुल साफ कर दिया है। अगर राष्ट्र मे दो दो कौमें नही हो सकती तो दो कौमो की एक भाषा नही हो सकती। अकालियो की यह कोशिश होगी कि वह यह प्रमाणित कर सकें कि सारा पंजाब एक भाषी राज्य है। इसलिए उनकी खालिस्तान की माग उचित है। इसका हम एक ही उत्तर दे सकते हैं कि हमारी मातृ भाषा हिन्दी है। अगर गुरु गोविन्दसिंह की मातृ भाषा हिन्दी हो सकती थी तो हमारी मातृ भाषा हिन्दी क्यो नहीं हो सकती। गुरु नानक देव जी ने अपनी सारी शिक्षा हिन्दी संस्कृत और फारसी मे प्राप्त की थी। उस समय पंजाबी नाम की कोई भाषा न थी। गुरमुखी लिपि भी उनके बाद गुरु अंगदेव जी ने बनाई थी। गुरु गोबिन्दसिंह ने अपना बहुत सा साहित्य हिन्दी मे लिखा था। इसलिए हमे हिन्दी भाषा लिखवाने मे कोई शर्म महसूस नहीं करनी चाहिए। अकाली पंजाब को जो कुछ बनाना चाहते है हमें वह स्वीकार नही है। न ही उनका आनन्दपुर साहब का प्रस्ताव स्वीकार है न उनका दो कौमो का सिद्धान्त स्वीकार है। कोई आन्दोलन जो हमारे देश की अखण्डता और संगठन को कमजोर करता है हमे उसका डट कर विरोध करना है। अगर अकाली हमारे भाई बनकर रहना चाहते हैं तो हम भी उनके भाई बनने को तैयार हैं। परन्तु अगर वह एक अलग कौम बनकर रहना चाहते हैं तो पंजाब के हिन्दुओं के लिए जरूरी है कि वह भी अपने अस्तित्व का न केवल प्रमाण दें परन्तु उसका प्रदर्शन भी करें। यह एक ही तरह से हो सकता है कि हम आगामी जनगणना मे यह ध्यान रखें कि हमारा धर्म और हमारी भाषा को सही ढंग से लिखा जाए। इस मामला मे तनिक सी असावधानी हमारे लिए विनाशकारी साबित हो सकती है।

—वीरेन्द्र

स्वामी श्रद्धानन्द निराला

ले०—श्री सत्यभूषण जी वेदालंकार

★+
×✶

ऋषि से सच्चा ज्ञान प्राप्त कर
छोड दिया अपना प्यारा घर
जंगल मे जा कुटी बनाई
ऋषियो की शिक्षा अपनाई
वैदिक संस्कृति दीप जलाकर
ज्ञान ज्योति का किया उजाला
स्वामी श्रद्धानन्द निराला ।१।

दलितो को था गले लगाया
सब पर प्रेम अमृत बरसाया
जाति धर्म की रक्षा के हित
किया खुशी से सर्वस्व अर्पित
क्षार बेड़या पिया निडर हो
देश भक्ति के रस का प्याला
स्वामी श्रद्धानन्द निराला ।२।

जला ज्वाल मे वह जीवन भर
ज्वाला बडी गोलियां खा कर
फली वह आर्यों के मन मे
चमकी वह उनके जीवन मे
आर्यो कभी न बुझने पाए
यह शहीद की उज्ज्वल ज्वाला
स्वामी श्रद्धानन्द निराला ।३।

—

(९ पृष्ठ का शेष)

का पालन करते हुए धर्मात्माओ की रक्षा करने के लिए दुष्टो को दण्ड देना मारना या धर्मयुद्ध मे लडना है उसका हिंसा नही है। महाभारत मे इस विषय में एक श्लोक आता है —

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्य मण्डल भेदिनौ।
योगी योग समायुक्त शूरश्च समरे हत ॥

समाधियोग से प्राण त्यागने वाले योगी और धर्मयुद्ध मे मरे शूर की गति समान कही है।

पत्र को समाप्त करने से पूर्व इस विषय मे वैदिक धर्म और इस्लाम का स्पष्ट अन्तर मैं फिर समक्ष रख देता हू।

१ मुसलमान सब नानमुस्लिम को बिना किसी अन्तर के काफिर बताते हैं।

२ इस्लाम और तर्क वाद विवाद या (Logic) का वही सम्बन्ध है जो मच्छर और वायु का। एक की उपस्थिति मे दूसरा नही रह सकता। किन्तु वैदिक धर्म में तर्क को ऋषि माना गया है और तर्क से धर्म का निश्चय करने वाले को ही तत्ववेत्ता समझा जाता है।

यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्म वेद नेतर ॥मनु० ॥

इस्लाम तर्क करने ही से मनुष्यों को काफिर कह देता है

हरचे शक कारद काफिरे गरदद वैदिक तर्क शास्त्र अथवा न्याय दर्शन का पढना धर्म माना गया है और न्याय दर्शन की गिनती धर्म शास्त्रों में है। फलत इस्लाम असहिष्णुता की मूर्ति और वैदिक धर्म सहिष्णुता का सागर है। सच तो यह है कि इस्लाम संसार की उन्नति के मार्ग मे भारी खतरा है।

इंगलिस्तान के प्रधान मन्त्री ग्लेडस्टन ने सत्य कहा था —

The Khalifa of Turkey is the greatest enemy of civilisation!

इस्लाम का खलीफा संसार की सभ्यता का सबसे बडा शत्रु है।

३ वैदिक धर्म एक ईश्वर को मानना आस्तिकपन के लिए पर्याप्त समझता है। पर इस्लाम बगैर मुहम्मद को माने ईश्वर को मानने का भी कुफर गिनता है।

पत्र लम्बा हो गया है जिसके लिए क्षमा चाहता हू।

अत्यन्त आदर और स्नेह के साथ
आपका कृपा पात्र—
देवेश्वर सिद्धान्तालंकार

सत्यार्थ प्रकाश और स्वामी श्रद्धानन्द

ले०—श्री यशपाल आर्य बन्धु आर्य निवास चन्द्रनगर मुरादाबाद

ऋषि दयानन्द का क्रान्तिकारी ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश ऐसा अनुपम प्रकाश स्तम्भ अथवा रोशनी का मीनार है कि जो अगिणित भूले भटके मानवों को सुपथ दर्शा चुका है। इसके स्वाध्याय से न जाने कितनों के जीवन बदल गये। अनेकों के लिए यह ग्रन्थ दिशा सूचक बन गया था। अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द ऐसे ही महामानव थे कि जिनको बनाने में महर्षि के इस अनुपम ग्रन्थ का बहुत बड़ा योगदान था मुन्शीराम एक नास्तिक नवयुवक था और ऐसा नास्तिक कि जिसे अपनी नास्तिकता पर गर्व था। बरेली में जब महर्षि दयानन्द पधारे तो मुन्शीराम के पिता श्री नानकचन्द जी जो वहां नगर कोतवाल थे एवं महर्षि दयानन्द के भाषणों में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने को नियुक्त हुये थे। महर्षि के दर्शन किए। वे अपने पुत्र की नास्तिक प्रवृत्ति से खिन्न थे। उन्होंने यह अच्छा अवसर समझा और अपने पुत्र से कहा कि एक वेदों का ज्ञाता संन्यासी बरेली पधारा हुआ है एवं बड़े बड़े लोग उन्हें सुनने को जाया करते हैं। अच्छा हो कि कल तुम भी सुनने चलो। मुन्शीराम ने पिता को स्वीकारोक्ति तो दे दी कि तु मन में यही शंका रही कि केवल संस्कृत का ज्ञाता बुद्धि की बात क्या करेगा। दूसरे दिन निश्चित समय पर पिता जी ने चलने को कहा। बेटा वे मन से साथ हो लिया। वहां जाकर देखा कि नगर के अनेक गणमान्य एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति भाषण सुनने को उपस्थित थे। पादरी स्काट और अन्य यूरोपियन भी वहां उपस्थित थे। इसे देख मुन्शीराम के मन में बड़ी उत्सुकता बढ़ी और भाषण प्रारम्भ होने की तीव्रता से प्रतीक्षा करने लगे। प्रथम दिन के महर्षि दयानन्द के एक भाषण ने ही मुन्शीराम पर वह जादू कर दिया कि उनके जीवन को ही बदल कर रख दिया। स्वामी श्रद्धानन्द स्वयं इस तथ्य को स्वीकारते हुये अपनी आत्म कथा में लिखते हैं कि— वह पहले दिन का आत्मिक आह्लाद कभी भूल नहीं सकता। नास्तिक रहते हुये भी आत्मिक आह्लाद में निमग्न कर देना ऋषि आत्मा का ही काम था। इतना ही नहीं वे तो यहां तक लिखते हैं कि—यद्यपि आचार्य दयानन्द के उपदेशों ने मुझे मोहित कर लिया था तथापि मैं मन में सोचा करता था कि यदि ईश्वर और वेद के ढकोसले को पण्डित दयानन्द स्वामी तिलांजलि दे दें तो फिर कोई भी विद्वान उनकी अपूर्व युक्ति और तर्कना शक्ति का सामना करने वाला न रहे। मुझे अपने नास्तिकपन का उन दिनों अभिमान था। एक दिन ईश्वर के अस्तित्व पर आक्षेप कर डाले। पांच मिनट के प्रश्नोत्तर में ऐसा घिर गया कि जिह्वा पर मुहर लग गई। मैंने कहा महाराज! आपकी तर्कणा बड़ी तीक्ष्ण है। आपने मुझे चुप तो करा दिया परन्तु यह विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर की कोई हस्ती (अस्तित्व) है। दूसरे दिन भी ऐसा ही करने पर महर्षि ने उनसे कहा कि— देखो! तुमने प्रश्न किए मैंने उत्तर दिये— यह युक्ति की बात थी। मैंने कब प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारा परमेश्वर पर विश्वास करा दूंगा। तुम्हारा परमेश्वर पर विश्वास उस समय होगा जब वह प्रभु स्वयं तुम्हें विश्वासी बना देंगे।

सत्यार्थ प्रकाश का जादू—

जो मुन्शीराम महर्षि दयानन्द से भी आस्तिक नहीं बन पाया था वहीं उनके विचार पूर्ण सत्यार्थ प्रकाश के स्वाध्याय से आस्तिकता का प्रबल प्रचारक बन बैठा। पर वह कैसे? सत्यार्थ प्रकाश के गहन और गम्भीर स्वाध्याय से। उनकी आत्म कथा में इस का वर्णन इस प्रकार है— संवत् १९४१ का मघ मास और शनिश्चवार का दिन है। नास्तिकपन के गढ़ से मैं निकल चुका हूं। ब्रह्म विषयक गहरे आन्दोलन के पश्चात् सत्यार्थ प्रकाश का पाठ दिन रात आरम्भ कर चुका हूं। मथारकली के पास रहमत खां के अहाते में एक तीन कमरों वाली कोठी के दाईं ओर के कमरे में प्रातः ६ बजे कुर्सी पर बैठा हूं। सत्यार्थ प्रकाश का आठवां समुल्लास सामने खुला पड़ा है किन्तु मैं हाथ पर सिर रखे किसी गम्भीर विचार में निमग्न हूं इतने में अन्दर का द्वार खुला और मेरे मित्र सुन्दरदास जी ने अन्दर प्रवेश किया। उनके पैर की आहट ने मुझे विचार निद्रा से जगा दिया। सुन्दर दास जी रावलपिंडी के रावलपिन्डि में रहते वकील लाला गंगाराम के भाई आर्य जाति की उन्नति के दृढ़ पक्षपाती थे। सुन्दरदास जी जानते थे कि आस्तिक बनने के पश्चात मेरा अधिक झुकाव ब्राह्म समाज की ओर हो रहा है। उन्होंने पूछा किस चिन्ता में हैं। कहिए कुछ निश्चय हुआ? मेरी ओर से उत्तर मिला पुनर्जन्म के सिद्धान्त ने फैसला कर दिया आज मैं सच्चे दिल से आर्य समाज का सभासद बन सकता हूं। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज यहां सत्यार्थ प्रकाश के प्रभाव को सुस्पष्ट शब्दों में स्वीकार कर रहे हैं इतना ही नहीं अपनी आत्म कथा कल्याण मार्ग का पथिक की भूमिका में आज विचार हो महर्षि दयानन्द के महत्व को स्वीकारते हुये लिखते हैं कि मैं क्या था इसे इस कहानी में मैंने छिपाया नहीं मैं क्या बन गया और अब क्या हूं? यह सब तुम्हारी कृपा का ही परिणाम है

सत्यार्थ प्रकाश प्राप्ति की कहानी—

मुन्शीराम द्वारा महर्षि के इस अनुपम ग्रन्थ को प्राप्त करने की उत्सुकता भरी अत्यन्त रोचक कहानी है कि जो उन्हीं के शब्दों में देनी उचित समझते हैं। सत्यार्थ प्रकाश को खरीदने के लिए उनके मन में कितनी उत्कण्ठा थी इसका भान इससे पाठकों को स्वतः ही हो जाएगा। वे लिखते हैं कि मैं सीधा बच्छोवाली आर्य समाज मन्दिर की ओर सत्यार्थ प्रकाश खरीदने के विचार से चल दिया विक्रय पुस्तक भण्डार बन्द था। चपरासी ने कहा कि लाला केशवराम पुस्तकाध्यक्ष के आने पर पुस्तक मिल सकेगी मैंने उनके घर का पता लिया और दो घंटों की आवारागर्दी के पीछे उनका घर ढूंढ निकाला। केशवराम जी घर न थे बड़े तार घर गये थे क्योंकि वह तार बाबू (सिगनलर) का काम करके ही आजीविका प्राप्त करते थे मैं तार घर का पता लगाकर वहां पहुंचा उस समय वह छुट्टी में जल पान के लिए घर गये थे। मैं फिर उनके घर लौटा तो वे तार घर लौट गये थे। पूछने से पता लगा कि वे डेढ़ घंटे में दफ्तर से लौटेंगे। मैंने वह डेढ़ घंटा पास की गली के अन्दर मटरगश्त में बिताया। एक सज्जन बाबू केशवराम जी के घर में जाते दिखाई दिए। मैंने उन्हें जा घेरा महाशय जी मुझे सत्यार्थ प्रकाश खरीदना है। उत्तर मिला निवृत्त होकर कुछ खा लूं फिर आपके साथ समाज मन्दिर चलूंगा। मैंने अपना सारे दिन का इतिहास सुनाकर बाहर ठहरने की इच्छा प्रकट की। केशव जी का मुख सहानुभूति से चमक उठा और उन्होंने कहा— महाशय जी चलिए पहले आपको पुस्तक दे दूं जब तक आपका काम न कर दूं मुझे इत्मीनान न होगा समाज मन्दिर में पहुंचने पर सत्यार्थ प्रकाश मेरे हाथ में रखा गया। मैंने मूल्य दिया और इस प्रकार आह्लाद पूर्वक लौटा मानो बड़ा कोष हाथ लग गया है। मेरे साथी मुझे प्रातः काल के भोजन में सम्मिलित न देख विस्मित थे। जब मैं पहुंचा तो सायंकाल का भोजन परोसा जा रहा था खूब भूख लगी थी भोजन रुचिपूर्वक किया। शाम को भ्रमण के लिए गया ही नहीं लैम्प जला सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका समाप्त कर प्रथम समुल्लास के स्वाध्याय में लग गया। पाठकगण! सत्यार्थ प्रकाश की प्राप्ति और उसके स्वाध्याय की इससे बढ़कर उत्कंठा और क्या हो सकती है। यही कारण था कि सत्यार्थ प्रकाश उनके जीवन में अभूतपूर्व क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने में समर्थ हो सका। जानते हो यह कौन सा सत्यार्थ प्रकाश था। यह था सत्यार्थ प्रकाश का प्रथम संस्करण जिसे आदिम सत्यार्थ प्रकाश भी कहा जाता है। स्वामी श्रद्धानन्द जी उससे इतने प्रभावित थे कि उन्होंने आदिम सत्यार्थ प्रकाश और आर्य समाज के सिद्धान्त नामक ग्रन्थ भी लिखा था। यह ग्रन्थ एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके स्वाध्याय से भी पता चलता है कि स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज सत्यार्थ प्रकाश से कितने प्रभावित थे। महर्षि का सत्यार्थ प्रकाश उन्हें सत्य मार्ग का पथिक बना गया। काश हम भी महर्षि के इस ग्रन्थ को अपना प्रेरणा स्रोत बना सकते।

क्या आपने हस्ताक्षर कर दिए?

राष्ट्रपति को पंजाब में हिन्दी का सम्मानित स्थान दिलाने के लिए जो ज्ञापन देना है क्या उस पर आपने हस्ताक्षर कर दिए हैं? यदि नहीं किए तो अपने नगर की किसी भी आर्य समाज में जाकर वह ज्ञापन ले लें और उस पर हस्ताक्षर कर दें

जिन फार्मों पर हस्ताक्षर हो गए हैं वह शीघ्र सभा कार्यालय में भिजवा दें।

—वीरेन्द्र

हरियाणा आर्य प्र. नि. सभा का वार्षिक चुनाव सम्पन्न

रोहतक ३० नवम्बर—आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा का वार्षिक साधारण अधिवेशन यहां दयानन्द मठ रोहतक में सम्पन्न हुआ। हरियाणा भर से आर्य समाजों के ५५० प्रतिनिधियों ने भाग लिया। वेद प्रचारादि विभाग के लिए ५१० ११५ रुपये का बजट स्वीकार किया गया।

आगामी वर्ष १९८०-८१ के लिए सर्वसम्मति से निम्न प्रकार पदाधिकारी चुने गये।

१ प्रधान—श्री शेरसिंह आर्य गालीपत (जिला करनाल) २ उपप्रधान—प्रो० शेरसिंह मलिक गुरुकुल झज्जर [illegible] रोहतक ३ उपप्रधान—श्री [illegible] ४ उपप्रधान श्री डा० हरिप्रकाश अम्बाला छावनी ५ मन्त्री—महाशय भरतसिंह वानप्रस्थी रोहतक ६ उपमन्त्री प्रो० सत्यवीरसिंह शिव नगर रोहतक ७ उपमन्त्री श्री सत्यवीर शास्त्री डालोहर जिला रोहतक ८ कोषाध्यक्ष—आचार्य वेदव्रत शास्त्री रोहतक ९ पुस्तकाध्यक्ष [illegible] सिंह शास्त्री कृपा गुरुकुल [illegible] जि० सोनीपत।

अमृतसर में स्वामी [illegible] बलिदान समारोह

स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस के उपलक्ष में २१ १२ ८० को दोपहर ९ से ४ बजे तक एक धर्म महासम्मेलन का आयोजन लोहगढ़ अमृतसर में होगा। जिसमें आर्य विद्वानों के अतिरिक्त सामाजिक और राजनीतिक नेता भी स्वामी जी को श्रद्धांजलि अर्पित करेंगे।

श्री [illegible] द्वारा प्रस्तुत धर्म की स्वतन्त्रता बिल का घोर विरोध करें

सार्वदेशिक सभा का आह्वान

सार्वदेशिक सभा का सभी आर्य समाजों को आदेश है कि अपने साप्ताहिक सत्संग में २१ दिसम्बर १९८० रविवार को श्री रामजेठमलानी द्वारा प्रस्तुत धर्म की स्वतन्त्रता बिल १९८० के विरोध में एक प्रस्ताव पारित कर उस प्रस्ताव की प्रतिलिपि १ श्री राम जेठमलानी ७ बी जनपथ नई दिल्ली। २ श्री अटल बिहारी वाजपेयी अध्यक्ष भारतीय जनता पार्टी नई दिल्ली। ३ श्री अध्यक्ष जी लोक सभा संसद भवन नई दिल्ली। ४ प्रधान सार्वदेशिक सभा दयानन्द भवन रामलीला मैदान नई दिल्ली को तुरन्त भिजवा दें।

प्रस्ताव का प्रारूप

आज दिनांक २१ १२ ८० को आर्य समाज की यह बैठक श्री राम जेठमलानी के धर्म स्वतन्त्रता बिल १९८० का घोर विरोध करती है साथ ही भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष श्री अटल बिहारी वाजपेयी से यह अनुरोध करती है कि वे श्री राम जेठमलानी को इस बिल को वापिस लेने के लिए बाध्य करें अन्यथा उन्हें पार्टी से निष्कासित कर दें।

—सार्वदेशिक सभा प्रचार विभाग

१ यज्ञ प्रातः ९ बजे से ११ बजे तक। २ ध्वजारोहण ११ बजे। ३ ऋषि लंगर आर्य ११ से १ बजे तक। ४ महासम्मेलन १ बजे से ४ बजे तक।

—ओमप्रकाश आर्य संयोजक

श्री वीरेन्द्र जी सम्पादक तथा प्रकाशक द्वारा जयहिन्द प्रिंटिंग प्रैस जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय गुरुदत्त भवन चौक किशनपुरा जालन्धर से इसकी स्वामिनि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

कृण्वन्तो — ओ३म् — विश्वमार्यम्

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र जालन्धर

वर्ष 13, अंक 51 28 पौष सम्वत् 2037 तदनुसार 11 जनवरी 1981 का अंक दयानन्दाब्द 156

सभी आर्य बन्धु 12 जनवरी को गुरु गोविन्दसिंह जी का जन्म हिन्दी दिवस के रूप में मनाएं

...वरी को मकर संक्रान्ति का पर्व ...वरी को स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती का जन्म दिन और

...जनवरी को भारतीय गणतन्त्र दिवस सभी आर्य समाज ...एं उत्साहपूर्वक मनाते हुए जनचेतना को न भूलें।

पर्व राष्ट्रीय जीवन को प्र...वान बनाने का कार्य करते हैं। जिसने ...और श्रद्धा से अपने पर्वों को मनाने का काम जो संगठन करता है उतना ही वह प्रभावशाली और संगठित बना रहता है। वैदिक धर्मावलम्बी आर्यों के सभी पर्व अतीत का उज्ज्वल इतिहास तथा वैदिक ...यों की ...जीवन ... से ओत-प्रोत हैं। जनवरी मास में निम्नलिखित पर्व आ रहे हैं इन सभी पर्वों को आपने सभी का सहयोग लेकर उत्साह तथा श्रद्धा से मनाना है। प्रत्येक पर्व से पूर्व प्रभात फेरी निकालने का आयोजन कर ...की अनुकूल रहेगा। प्रभात फेरी से अधिकाधिक लोगों को पर्व की ...जानकारी मिलने से उपस्थिति में पर्याप्त वृद्धि की सम्भावना हो जाती है।

१२ १ १९८१ को गुरु गोविन्दसिंह जी का जन्म दिन हमने हिन्दी दिवस के रूप में मनाना है। गुरु जी हिन्दी और संस्कृत के अनन्य भक्त थे। उनकी कृतियों के आधार पर आप सभी को इस सत्य से परिचित कराएं। लोहड़ी का त्यौहार भी इसी दिन है।

१३ १ १९८१ को मकर संक्रान्ति का पर्व है जिसे आप प्रति वर्ष ...में वर्णित विधि के अनुसार मनाते हैं। जो इस अंक में पृष्ठ २ पर दी जा रही है।

२ ...१९८१ को शास्त्रार्थ शिरोमणि श्री स्वामी दर्शनानन्द जी ...का जन्म दिन है। स्वामी जी के जीवन सम्बन्धी लेख हम आ... १८ १ १९८१ वाले अंक में प्रकाशित कर रहे हैं। उन लेखों से ...लाभ उठा सकेंगे।

२६-१-१९८१ को भारतीय गणतन्त्र दिवस है यह दिन भी हम सब ...उत्साहपूर्वक मनाना है।

...जनवरी मास में गणतन्त्र पर आर्यों की होगा है। आज ...अपने कार्य ...जिन्होंने नगर ...तथा ...के हर व्यक्ति के ...सर्व-सेवा ...के स्थान पर-प्रति आर्य-आर्य ...हिन्दी ...विजयतु।

श्री जेठमलानी के प्रस्ताव का घोर विरोध

धड़ा धड़ प्रस्ताव आने आरम्भ

(पिछले से आगे)

पंजाब की सभी आर्य समाजों ने श्री जेठमलानी की संसद सदस्य के धर्म स्वतन्त्रता प्रस्ताव के विरोध में स्थान २ पर रोष सभाएं की सभी आर्य समाजों आदि से सभा कार्यालय में रोष प्रस्ताव प्रकाशनार्थ आ रहे हैं

(पिछले से आगे)

२६ मद विरज नन्द वैदिक संस्कृत विद्यालय करतारपुर

२७ मद विरजानन्द स्मारक करतारपुर

२८ आर्य समाज करतारपुर

२९ आर्य वीर दल करतारपुर

३० आर्य समाज फगवाड़ा

३१ आर्य समाज फतहेबाद भटिण्डा

३२ आर्य समाज नवल टाऊनशिप

३३ आर्य समाज रानी का तालाब फिरोजपुर

३४ आर्य समाज साबुन बाजार लुधियाना

३५ आर्य समाज राजपुरा टाऊन शिप

३६ आर्य समाज जलालाबाद (फिरोजपुर)

३७ आर्य समाज रोपड़

३८ आर्य समाज कालेज विभाग फिरोजपुर

३९ आर्य समाज दयानन्द बाजार लुधियाना

४० आर्य समाज नवाबहुर दाबा

४१ स्त्री आर्य समाज स्वामी दयानन्द बाजार लुधियाना

४२ आर्य समाज बस्ती नौ जालन्धर

४३ आर्य समाज मोरिंडा

४४ आर्य समाज श्रद्धानन्द बाजार (धड़ा होशियारपुर) जालन्धर

४५ आर्य समाज कुल्लू (हि प्र०)

४६ आर्य समाज प नमपुर (हि प्र)

४७ आर्य समाज लोवर बाजार शिमला

४८ स्त्री आर्य समाज पक्का बाग जालन्धर

इस महत्वपूर्ण कार्य की ओर आपने विशेष ध्यान देना है जनगणना पूरे दस वर्ष के पश्चात् होती है यदि आप अब चूक गये या आपने उपेक्षा की तो बाद में पश्चाताप करने से कुछ हाथ न आएगा अपनी जिला सभाओं के माध्यम से तथा अन्य समानधर्मी बन्धुओं हरिजन भाईयों के सहयोग से संगठित होकर पूरी सतर्कता और शक्ति से यह कार्य कीजिए ताकि आपकी भाषा धर्म तथा नाम आदि को मन माने ढंग से न लिख लिया जाए।

रामचन्द्र जावद

सभा मन्त्री

मकर सौर संक्रान्ति

ले०—श्री प० भवानी प्रसाद जी

(आर्य पर्व पद्धति से)

दोहा

शीत शिशिर हेमन्त का हुआ परम प्राबल्य
दैव तुल्य तपन का अब अब में है मान्य ॥

कविता

उत्तर अयन इसी तिथि को है सविता का सुप्रवेश हुआ।
मान दिवस का इस ही कारण अब से है सविशेष हुआ ॥
वेद प्रकाशित देवयान का जगती में विस्तार हुआ।
उत्सव संक्रान्ति मकर की का जनता में सुप्रसार हुआ ।१।
तिल के मोदक खिचड़ी कम्बल आज दान में देते हैं।
दीनों का दुख दूर भगाकर उनकी आशिष लेते हैं ॥
अग्नि समन्वित समाकल्य से होम यज्ञ भी करते हैं।
हिम से आवृत नभमण्डल को शुद्ध वायु से भरते हैं ।२।

(प० सिद्धगोपाल काव्य तीर्थ कविरत्न)

जितने काल मे पृथिवी सूर्य के चारो ओर परिक्रमा पूरी करती है उसको एक सौर वर्ष कहते हैं और कक्ष लम्बी वर्तुलाकार जिस परिधि पर पृथिवी परिभ्रमण करती है उसको क्रान्तिवृत्त कहते हैं। ज्योतिषियो द्वारा इस क्रान्तिवृत्त के १२ भाग कल्पित किए हुए हैं और उन १२ भागो के नाम उन उन स्थानो पर आकाशस्थ नक्षत्र पुञ्जो से मिलकर बनी हुई कुछ मिलती जुलती आकृति वाले पदार्थों के नाम पर रख लिए गए हैं यथा १ मेष २ वृष ३ मिथुन ४ कर्क ५ सिंह ६ कन्या ७ तुला ८ वृश्चिक ९ धनु १० मकर ११ कुम्भ १२ मीन। प्रत्येक भाग वा आकृति राशि कहलाती है। जब पृथिवी एक राशि से दूसरी राशि मे संक्रमण करती है तो उसको संक्रान्ति कहते हैं। लोक मे उपचार से पृथिवी के संक्रमण को सूर्य का संक्रमण कहने लगे है। छः मास तक सूर्य क्रान्तिवृत्त मे उत्तर की ओर उदय होता रहता है और छः मास तक दक्षिण की ओर निकलता रहता है। प्रत्येक षड्मास की अवधि का नाम अयन है। सूर्य के उत्तर की ओर उदय की अवधि को उत्तरायण और दक्षिण की उदय की अवधि को दक्षिणायन कहते हैं। उत्तरायणकाल मे सूर्य उत्तर की ओर से उदय होता हुआ दीखता है और उसमे दिन बढ़ता जाता है और रात्रि घटती जाती है दक्षिणायन मे सूर्योदय दक्षिण की ओर दृष्टिगोचर होता है और उसमे रात्रि बढ़ती जाती है और दिन घटता जाता है। सूर्य की मकर राशि की संक्रान्ति से उत्तरायण और कर्क संक्रान्ति से दक्षिणायन प्रारम्भ होता है। सूर्य के प्रकाशाधिक्य के कारण उत्तरायण विशेष महत्त्वशाली माना जाता है अतएव उत्तरायण के प्रारम्भ दिवस मकर की संक्रान्ति को भी अधिक महत्त्व दिया जाता है और स्मरणातीत चिरकाल से उस पर पर्व मनाया जाता है। यद्यपि इस समय उत्तरायण परिवर्तन ठीक ठीक मकर संक्रान्ति पर नहीं होता और अयन चलन की गति बराबर पिछली ओर को होते रहने के कारण इस समय (सम्वत १९९४ वि० मे) मकर संक्रान्ति से २२ दिन पूर्व धन राशि के ७ अंश २४ कला पर उत्तरायण होता है। इस परिवर्तन को लगभग १३५० वर्ष लगे हैं परन्तु पर्व मकर संक्रान्ति के दिन ही होता चला आता है इससे सर्वसाधारण की ज्योतिष शास्त्र अनभिज्ञता का कुछ परिचय मिलता है किन्तु शायद पर्व का चलते रहना अनुचित मान कर मकर संक्रान्ति के दिन ही पर्व मनाने की रीति चली आती हो।

मकर संक्रान्ति के अवसर पर शीत अपने यौवन पर होता है। जनावास जंगल वन पर्वत सर्वत्र शीत का आतङ्क छा रहा है। चराचर जगत शीतराज का लोहा मान रहा है हाथ पर जाड़े से सिकुड़ जाते हैं रात्री बढ़ न दिवा भानु शशि में जगा और दिन से सूर्य किसी कवि की यह उक्ति दानो पर आज कल ही पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। दिन की अब तक यह अवस्था थी सूर्य देव उदय होते ही अस्ताचल के गमन की तैयारियां आरम्भ कर देते थे मानो दिन रात्रि मे लीन ही हुआ जाता था। रात्रि सुरसा राक्षसी के समान अपनी देह बढ़ाती ही चली आती थी। अन्त को उस का भी अन्त आया। आज मकर संक्रान्ति के मकर ने उसको निगलना आरम्भ कर दिया। आज सूर्यदेव ने उत्तरायण में प्रवेश किया। इस कुल की महिमा संस्कृत साहित्य में वेद से लेकर आधुनिक ग्रन्थ पर्यन्त [illegible] वर्णन की गई है। [illegible] उसको 'देवयान' कहा गया है और [illegible] स्वशरीर त्याग तक की [illegible] उत्तरायण में रखी है। उनके विश्वासानुसार इस समय देह त्यागने से उनकी आत्मा सूर्य लोक में होकर ब्रह्म धाम में प्रयाण करेगी। बाल ब्रह्मचारी भीष्म पितामह ने इसी अवसर के उपलक्ष्य तक शर शैय्या पर शयन करते हुए प्राणोत्क्रमण की प्रतीक्षा की थी। ऐसा प्रशस्त समय किसी पर्व (पर्व बनने) से कैसे वञ्चित रह सकता था। आर्य जाति के प्राचीन नेताओं ने मकर संक्रान्ति (सूर्य की उत्तरायण संक्रमण तिथि) का पर्व निर्धारित कर दिया।

जैसाकि पूर्व बतलाया जा चुका है कि यह पर्व बहुत चिरकाल से चला आता है यह भारत के सब प्रान्तो मे प्रचलित है अतः इसको एकदेशी न कहकर सर्वदेशी कहना चाहिए। सब प्रान्तो मे इसके मनाने की परिपाटी मे भी समानता पाई जाती है। सर्वत्र शीतातिशय के निवारण के उपचार प्रचलित हैं।

वैद्यक शास्त्र में शीत के प्रतिकार तिल तेल तूल (रुई) बतलाए हैं जिनमे तिल सबसे मुख्य है। इसलिए पुराणो में इस पर्व के सब कृत्यों मे तिलों के प्रयोग का विशेष माहात्म्य गाया गया है और उसका पापनाशक कहा गया है किसी पुराण का निम्नलिखित वचन प्रसिद्ध है—

तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी
तिलोदकी ।
तिलभुक् तिलदाता च षट्तिला
पापनाशना ।

अर्थ—तिलमिश्रित जल से स्नान तिल का उबटन तिल का हवन तिल का जल तिल का भोजन और तिल का दान ये छः तिल के प्रयोग पापनाशक हैं—

मकर संक्रान्ति के दिन भारत के सब प्रान्तो मे तिल और गुड़ या खांड के लड्डू बना बनाकर जिनको तिलवे कहते हैं दान किये जाते हैं और इष्ट मित्रों मे बांटे जाते हैं। महाराष्ट्र प्रान्त मे इस दिन तिलो का तीलगूल नामक हलवा बांटने की प्रथा है और सौभाग्यवती स्त्रियां तथा कन्याएं अपनी सखी सहेलियो से मिलकर उनको हल्दी रोली तिल और गुड़ भेंट करती हैं। प्राचीन ग्रीक लोग भी वधू वर की सन्तान वृद्धि के निमित्त तिलो का पकवान बांटते थे इससे ज्ञात होता है कि तिलो का प्रयोग प्राचीनकाल मे विशेष गुणकारक माना जाता रहा है प्राचीन रोमन लोगों में भी मकर संक्रान्ति के दिन अंजीर खजूर और शहद अपने इष्ट मित्रो को भेंट देने की रीति थी [illegible] संक्रान्ति पर्व की प्राचीनता [illegible] का परिचायक है।

मकर संक्रान्ति पर्व पर [illegible] शीत निवारणार्थ कम्बल [illegible] करने की प्रथा [illegible] कम्बलवन्तं न बाधन्ते [illegible] उक्ति संस्कृत में प्रसिद्ध ही है। [illegible] वैद्यक में बोझ और तेल [illegible] नाशक तथा अग्नि दीपक कहा गया है। आर्य पर्वों पर दान की वृद्धि का एक स्वरूप है अतएव [illegible] कर्तव्य है और—

देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं
स्मृतम् ।

(गीता अध्याय १७ श्लोक २०)।

अर्थ—देश काल और पात्र के अनुसार ही दिया हुआ दान सात्त्विक कहलाता है। तथा—

दरिद्रान्भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे
धनम् ।

अर्थ—हे अर्जुन दरिद्रों का पालन करो धनियो को धन मत दो

इन श्रीमद्भगवद्गीता के वचनों के अनुसार इस प्रबल शीतकाल में मकर के पहले दिन लोढ़ी का त्यौहार मनाने की रीति है। इस अवसर पर स्थान स्थान पर होली के समान अग्नियां प्रज्वलित की जाती हैं और उनमे भुने हुए चने भूमि पर पटककर आनन्द मनाया जाता है। उससे अगले दिन वहां मकर संक्रान्ति का भी उत्सव होता है जिसको वहां माघी बोलते हैं। ज्ञात होता है कि ये दोनो दिन के त्यौहार दो उत्सव न होकर दिन द्वयव्यापी मकर संक्रान्ति महोत्सव के एक ही पर्व का अपभ्रष्ट स्वरूप हैं। देश के आज सामाजिक पुरुषों का चाहिए कि वे दो दिन त्यौहार न मनाकर मकर संक्रान्ति की तिथि को ही परिमार्जित रूप में इस पर्व को मनाएं और आज सामाजिक जगत में पर्वों की एकाकारता स्थापित करने में सहायक हो।

पद्धति

गृहकृत्य—मकर संक्रान्ति के दिन प्रातः सामान्य पर्व पद्धति मे प्रदर्शित विधानानुसार गृह के परिमार्जन शोधन तथा लेपन आदि के पश्चात नवीन शुद्ध स्वदेशीय वस्त्र परिधानपूर्वक सपरिवार सामान्य हवन कर जिसके साकल्य मे तिल और शक्कर का परिमाण प्रचुर होना चाहिए और आहुतियों की मात्रा स्वसामर्थ्यानुसार बढ़ा देनी चाहिए। निम्नलिखित हेमन्त और शिशिर ऋतुओं के वर्णनपरक मन्त्रों से विशेष आहुतियां दी जाएं।

ओ३म् सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू ।

अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेताम् ।

(शेष पृष्ठ ८ पर)

सम्पादकीय—

देहली का आर्य महासम्मेलन

२१ दिसम्बर से २८ दिसम्बर तक देहली मे आर्य महासम्मेलन हुआ है, उन्हीं दिनों सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरग सभा की बैठक भी थी और आर्य विद्या सभा की बैठक भी थी। इसके अतिरिक्त मुझे देहली में कुछ और काम भी था, इसलिए दस बारह दिन लगभग मुझे देहली में ही रहना पड़ा। परन्तु मेरा अधिक समय आर्य समाज की गतिविधियों को देखने मे ही व्यतीत हुआ। जब भी कोई बड़ा सम्मेलन होता है तो उसका एक लाभ यह भी होता है कि कई महानुभावों से मिलने का एक अवसर प्राप्त हो जाता है। आज प्रत्येक व्यक्ति का जीवन इतना व्यस्त हो गया है कि कई बार अपने निकटतम मित्रो और सहयोगियो से मिलने में भी बहुत समय लग जाता है। परन्तु जब कोई उत्सव या सम्मेलन होता है तो वहां वह लोग भी मिल जाते हैं, सामान्य परिस्थितियो मे जिन्हें मिलना कठिन होता है। इस दृष्टिकोण से हम जो सम्मेलन करते हैं उनके द्वारा हमारे सगठन को शक्ति मिलती है। हम एक दूसरे के समीप आते है और एक दूसरे को समझने का प्रयत्न करते हैं। यही हमारे सम्मेलनों का सबसे बड़ा महत्व है।

यद्यपि दिल्ली का आर्य सम्मेलन २५ दिसम्बर को प्रारम्भ हुआ था परन्तु वास्तविक सम्मेलन केवल दो दिन ही रहा २७ और २८ दिसम्बर को। २५ दिसम्बर को जो शोभा यात्रा इस सम्मेलन के सम्बन्ध मे निकाली गई थी मुझे उसे देखने का अवसर तो न मिला परन्तु मैंने जो कुछ उसके विषय में सुना है उसके आधार पर मैं कह सकता हू कि देहली में इतने बड़े जलूस बहुत कम निकले होंगे। कुछ लोगों का कहना है कि यह तीन मील से कम क्या होगा ? जिस मार्ग से यह निकला उसे दुल्हन की तरह सजाया गया था। आर्य समाज का यह जलूस जिस २ मार्ग से गुजरा जनता ने दिल खोलकर उसका स्वागत किया। इसका एक परिणाम यह हुआ कि देहली निवासियो पर आर्य समाज की एक छाप बैठ गई और उन्हें एक बार फिर पता चल गया कि इसका सगठन और इसका अनुशासन कितना प्रभावशाली है। यह जलूस इसलिए भी महत्वपूर्ण और प्रभावशाली था क्योंकि इसी जलूस मे वह जलूस भी शामिल था जो २३ दिसम्बर को श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के बलिदान की याद मे प्रति वर्ष देहली मे निकाला जाता है। कारण कुछ भी हो यह एक तथ्य है कि जब दिसम्बर १९७५ मे देहली में आर्य समाज की शताब्दी के समय जो जलूस निकाला गया था यह भी उससे कुछ कम न होगा।

२१ दिसम्बर को जो यज्ञ प्रारम्भ किया गया उसकी पूर्णाहुति २८ दिसम्बर की प्रातः डाली गई। इस यज्ञ के लिए ३० हवन कुण्ड बनाए गए थे और प्रात तथा साय इन तीस हवन कुण्डों पर यज्ञ होता था। एक हवन कुण्ड पर चार यजमान बैठते थे। इस प्रकार २५० के लगभग नर नारी प्रतिदिन इस यज्ञ मे आहुति डालते रहे। अन्तिम दिन तो वहां बहुत बड़ी भीड़ थी। इसीसे हम अनुमान लगा सकते हैं कि हमारे यज्ञ आज कितने लोकप्रिय है। हम इनके द्वारा अपना बहुत प्रचार कर सकते हैं परन्तु हम करते नहीं।

दो दिन जो सम्मेलन हुआ उसकी अध्यक्षता आन्ध्र प्रदेश के वीर शिरोमणि आर्य नेता श्री वन्दे मातरम् रामचन्द्रराव ने की। इसी बीच एक सम्मेलन देश की राजनैतिक समस्याओं पर विचार करने के लिए भी हुआ जिसकी अध्यक्षता नैरोबी के उद्योगपति गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक विख्यात आर्य नेता श्री सत्यदेव जी भारद्वाज ने की। एक युवक सम्मेलन भी हुआ जिसकी अध्यक्षता अमेठी के राजकुमार श्री सजयसिंह ने की और उसका उद्घाटन मध्यप्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष श्री यज्ञदत्त जी शर्मा ने किया। इन दोनो के परिवारों का आर्य समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और आज भी है और दोनो ने ही आर्य समाज के प्रति अपनी श्रद्धा और निष्ठा प्रकट करते हुए कहा है कि आज की परिस्थितियो मे देश की समस्याओं का समाधान ढूढने में जो योगदान आर्य समाज दे सकता है वह कोई और सस्था नहीं दे सकती। दोनों ने ही यहां यह घोषणा की कि आर्य समाज की सेवा के लिए वह जो कुछ भी कर सकते हैं जरूर करेंगे।

एक सम्मेलन का उद्घाटन भारत सरकारके गृहमन्त्री ज्ञानी जैल सिंह जी ने किया और उन्होंने अपने भाषण में महर्षि दयानन्द सरस्वती को अपनी श्रद्धाजलि भेंट करते हुए कहा कि आर्य समाज की स्थापना करके उन्होंने इस देश पर जो उपकार किया है उसे हम भूल नहीं सकते। ज्ञानी जी के पश्चात् सम्मेलन के अध्यक्ष श्री वन्देमातरम् जी ने जो भाषण दिया उसने उस सम्मेलन मे एक नया उत्साह साहस और आगे बढ़ने के सकल्प की भावना पैदा कर दी उन्होंने बिलकुल स्पष्ट शब्दों मे कह दिया कि केवल आर्य समाज ही एक सस्था है जो इस देश का बचा सकती है। इसलिए उसे सक्रिय रूप मे देश की समस्याओ के सुलझाने मे अपना योगदान देना चाहिए। उन्होने यह भी कहा कि आर्य समाज को डके की चोट से कहना चाहिए कि उसे इस देश के भविष्य मे इतनी अधिक रुचि है कि वह इसके भविष्य के निर्माण का कार्य किसी दूसरे के हाथ में नही छोड सकता। सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री रामगोपाल जी ने आर्य जनता को आह्वान किया कि वह अपने सगठन को सुदृढ और सक्रिय बना कर अब आगे बढ़ें और देश को महर्षि दयानन्द के स्वप्नो का देश बनाने का प्रयत्न करें।

इस सम्मेलन की एक महत्वपूर्ण बात की ओर मैं पजाब की आर्य जनता का विशेष ध्यान दिलाना चाहता हू वह यह कि इसके ऋषि लगर मे दस हजार से लेकर पन्द्रह हजार तक लोग प्रतिदिन भोजन किया करते थे और भोजन भी शुद्ध घी से बनाया जाता था। कोई समय ऐसा नही आया जब भोजन की किसी प्रकार की भी कमी हुई हो।

इस सम्मेलन की सफलता के लिए मैं आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब की तरफ से आर्य प्रतिनिधि सभा देहली के प्रधान श्री सरदारी लाल जी वर्मा म.ए. श्री विद्यासागर विद्यालकार स्वागताध्यक्ष श्री धर्मपाल जी और दूसरे उन सब बहनो और भाईयो को बधाई देता हू जिनके दिन रात के प्रयत्न से यह सम्मेलन सफल हुआ है। परन्तु हमे यह न भूलना चाहिए कि देहली मे कोई भी सम्मेलन उस समय तक सफल नही हो सकता जब तक उसे हमारे दो आदरणीय नेताओ का आशीर्वाद प्राप्त न हो श्री रामगोपाल जी वानप्रस्थ और श्री सोमनाथ जी मरवाह इन दोनो की सहायता सहयोग और आशीर्वाद के बिना कोई सम्मेलन दिल्ली में सफल नही हो सकता। इस सम्मेलन को सफल बनाने म भी इन दोनो ने दिन रात एक कर दिया। अकेले श्री सोमनाथ जी मरवाह ने पच्चास हजार से अधिक रुपया इसके लिए इकट्ठा किया और श्री रामगोपाल जी प्रेरणा स्रोत थे और उनके आशीर्वाद से यह सब कुछ हो सका।

मैंने यह सब कुछ इसलिए लिखा है कि पजाब के आर्य समाजी भी यह जान सके कि दूसरे प्रान्तो मे हमारे भाई क्या कुछ कर रहे हैं। हम यदि उनका कुछ अश भी कर सकें तो केवल आर्य समाज का ही नही सारे पजाब का कायाकल्प हो सकता है।

—वीरेन्द्र

हिन्दी दिवस मनाओ !

बारह जनवरी को श्री गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज का जन्म दिन है। मैं पहले भी पजाब वासियो से अपील कर चुका हू और आज पुन करता हू कि वह दिन हिन्दी दिवस के रूप में मनाए। यह मैं इसलिए कहता हू कि हिन्दी गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज की मातृभाषा थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने हिन्दी के प्रचार के लिए बहुत सा साहित्य भी हिन्दी मे लिखा था। उनके बारे यह भी कहा जाता है कि हिन्दी साहित्य मे उनका स्थान वीर रस के कवियो मे बहुत ऊचा है। हमारे अकाली दोस्त गुरु गोविन्द सिंह के इस रूप को सामने नही आने देते। हिन्दी से उन्हे इस सीमा तक दुश्मनी है कि वे इसे किसी भी रूप मे सहन करने को तैयार नही हैं। वे यह भी भूल जाते हैं कि सभी गुरु साहिबान मे से किसी ने भी हिन्दी के विरुद्ध अपने मुह से कभी एक शब्द भी नही निकाला था। बल्कि उन सबने ही हिन्दी पढ़ी थी और कुछ ने तो सस्कृत भी पढ़ी थी। हिन्दी के विरोध की बीमारी अकालियों के द्वारा ही शुरू हुई। मुझे यह कहने मे भी कोई सकोच नही कि इस दृष्टिकोण से अकालियो और काग्रेसी सिखो मे कोई अन्तर नही। दोनो ही हिन्दी को सहन नही करते। न अकाली शासन मे हिन्दी को आगे बढने दिया गया न काग्रेस के शासन मे।

किन्तु इसका यह अभिप्राय नही कि चू कि अकाली और काग्रेसी हिन्दी के विरोधी हैं इसलिए हम भी हाथ पर हाथ रख कर बैठ रहें। हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा भी है हमारी मातृभाषा भी है हमारे धर्म और हमारी सस्कृति की भाषा भी है। हम किसी भी रूप मे इसकी उपेक्षा नही कर सकते। इसकी ओर ध्यान

(शेष पृष्ठ ६ पर)

आज के जीवन की मांग—मानवता (2)

ले०—प्रा० आचार्य भद्रसेन जी होशियारपुर

ॐ

अत आज यदि कोई सभ्यता (रहन-सहन बर्ताव की विधि) है, तो वह मानव सभ्यता ही है न कि केवल प्रदेश धर्ममात्र की दृष्टि से किए जाने वाले भेदमय तात्कालिक व्यवहार। तथा सभ्यता के निर्णय का मूल आधार मानवता की सुविधाएं ही हैं जिनसे दूसरे मानवो को कष्ट न हो। ऐसे ही यदि सारी मानव-जाति को सामने रखकर किसी एक मानव भाषा का निर्धारण हो जाए तो परस्पर भावो को सभी के आगे प्रकट करने मे सुविधा होगी तथा अनेक भाषाओ के सीखने के परिश्रम एव समय की बचत भी हो सकती है।

इस विवेचन के पश्चात यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से सामने आता है कि जाति धर्म संस्कृति सभ्यता का जो मूल आधार मानवता मनुर्भव जनया दैव्य जनम (ऋग्वेद १० ५३ ६) है उसका क्या स्वरूप है? इस प्रश्न पर जब हम परम्परागत साहित्य और आधुनिक स्थितियो के आधार पर विचार करते हैं तो स्पष्ट होता है कि इस धराधाम पर प्रजापति की प्रजा उत्पत्ति की प्रक्रिया की दृष्टि से चार प्रकार की है—उद्भिज स्वेदज, अण्डज और जरायुज जो इस वसुन्धरा के विविध वसुओ का अहर्निश भोग कर रही है। सभी भाषाओ के शास्त्रो बुद्धिमानो और धर्मों ने मानव को ही विधाता की सर्वोत्कृष्ट रचना माना है,१ इस सम्पूर्ण रत्नगर्भा पृथिवी पर रहने वाले सभी मानवो की आकृति शरीर एक सा ही है। केवल उस उस प्रदेश की स्थिति, ऋतु आदि की भिन्नता के कारण वर्ण तथा आकृति मे बहुत कम ही अन्तर है। हमारे जैसा ही सब का शरीर है हमारी तरह ही उनकी पाच ज्ञान इन्द्रिया पाच कर्म इन्द्रिया तथा अन्त करण-चतुष्टय है। सब के मस्तिष्को मे विचार और हृदय मे विविध भाव तरंगित होते हैं।

सभी प्राणियो म मानव की सर्वसम्मत श्रेष्ठता पर जब हम विचार करते हैं ता स्पष्ट होता है कि श्रेष्ठता का आधार शरीर और बुद्धि है। निस्सन्देह बाह्य दृष्टि से कुछ प्राणियो के शरीर मानव-शरीर से भी कहीं अधिक सुन्दर हो। पर विविध क्षेत्रो मे विकास की इच्छानुसार दिशा अधिकार जल नभ स्थल एव उष्ण के मैदानी-पर्वतीय रेतीले शीतल-सम प्रदेशो मे वास की जितनी क्षमता मानव शरीर मे है, उतनी अन्य मे दुर्लभ है। उनमे स्वाभाविकता ही है, नैमित्तिक बहुत कम है। परन्तु मनुष्य मे स्वाभाविकता के साथ नैमित्तिक विकास की भी अत्यधिक सामर्थ्य है। मानव शरीर एक ऐसा अद्भुत यन्त्र है। जिसके आधार पर ही आकाशवाणी(—कर्ण—मुख) फोटोग्राफी (—नेत्र) दूरसन्देश—दूरभाष (—ज्ञानतन्तु), कम्प्यूटर (—मस्तिष्क) आदि आज के अनोखे आविष्कार आविष्कृत हुए हैं। तथा इतना तो स्वत प्रमाणित है कि ये सभी मानव की ही उपलब्धिया है। अन्य प्राणियो की केवल जल, नभ या स्थल मे से एकत्र ही गति और अधिकार है। पर मानव ने तो अपनी गति, स्थिति और अधिकार सर्वत्र दर्शा दिया है।

इससे भी अधिक सर्वोत्कृष्टता का मूल आधार मानव की बुद्धि विवेकशीलता जिज्ञासावृत्ति है२। मानव, मनुष्य मनुज आदि शब्द मानव की विवेकशीलता के अभिव्यंजन की ओर ही संकेत करते हैं। अर्थात् सभी प्राणिया मे मानव ही एक ऐसा प्राणी है, जो अपनी बुद्धि का विविध विषयो क्षेत्रो, पक्षो मे यथेष्ठ विकास कर सकता है, क्योंकि उसका अधिकतर ज्ञान नैमित्तिक है। तथा अपनी विवेकशीलता के आधार पर मनुष्य गुण अवगुण हित-अहित, सत्य-असत्य, उपयुक्त अनुपयुक्त उचित-अनुचित रूप का विवेक, परीक्षण व विचार कर सकता है।

यह बुद्धि (ज्ञान) ही मानव की उत्कृष्टता का सर्वोत्तम साधन है, जिसके द्वारा मानव ने आज तक की इतनी उपलब्धियो, क्षमताओ, विकासो को प्राप्त कर उन्हे सफल किया है। मानव के अपने कार्य-अकार्य, कर्तव्य अकर्तव्य के निर्णय और ज्ञान का आधार भी यही है। अर्थात् मानव की सारी प्रगति एव सफलता ही नहीं, अपितु जीवन का सत्य, शिव एव सुन्दर रूप भी इसी बुद्धि पर आधारित हैं। पर इस सबकी उपलब्धि तभी हो सकती है, जब मानव प्राचीनता आदि के मोह और अपनत्व के पक्षपात से ऊपर उठ कर निष्पक्ष न्याय पूर्वक इसका प्रयोग करता है। वि—वेक विविध पक्षो सहित किसी पदार्थ का विचार, विश्लेषण, परीक्षण ही विवेक कहलाता है, न कि आख मूद कर किसी को मानना अत मानवपन की माग है कि हमारा मन वचन और कर्म से होने वाला हर व्यवहार विवेक-पूर्वक हो। जैसे आख की विद्यमानता की माग होती है कि देखा-भाला जाए। आख होते हुए भी जो ठोकर खाता है, उसको कहा जाता है क्यो अन्धे बन रहे हो? ऐसे ही बुद्धि की माग है कि हम सोच विचार कर हर कार्य करें।

मानव के लिए उर्दू भाषा मे इन्सान शब्द का प्रयोग होता है और शैतान, हैवान (पशु) इसके विपरीतार्थक शब्द हैं। शैतान का अर्थ होता है निर्बल पर अत्याचार करना, कमजोर के साथ अन्याय का व्यवहार करना। अर्थात् जो दूसरों को सतावे वह शैतान है। हैवान का भाव है जो अपने से बलवान का अन्याय अत्याचार बिना विरोध के चुपचाप सहे अत इस तुलना के आधार पर जो न तो कमजोर को सताए और न ही दूसरो का अन्याय, अत्याचार सहे वही मानव है। महर्षि दयानन्द ने कहा है, "जैसे पशु बलवान् होकर निर्बलो का दु ख देते है और मार भी डालते हैं, जब मनुष्य-शरीर पाके वैसा ही कर्म करते हैं, तो वे मनुष्यस्वभावयुक्त नही पशुवत् हैं (स प्र)

अर्थात् जो दूसरो को कष्ट न दे, अपितु हर स्थिति में उनकी सहायता करे, वह मानव है। कोई दूसरो की सहायता तभी करता है, जब उस मे सहानुभूति (दूसरो की स्थिति को अनुभव करने की भावना) उभरती है। वस्तुत सहानुभूति मानव का सब से बड़ा लक्षण या पहचान है।

नर और पशु मे क्या अन्तर है? जब हम इस पर विचार करते हैं तो स्पष्ट होता है कि मानव पशु की अपेक्षा निम्नलिखित कुछ विशेषताएं हैं जैसे—

(१) विवेक—मानव मे ही विवेक की पूर्ण क्षमता है। क्योंकि मानव का अधिकतर ज्ञान नैमित्तिक होने से वह अपने व्यवहार्य की विवेचना कर सकता है, पशु नहीं।

(२) सहृदयता—किसी दु खी को देखकर यदि वह स्वार्थ से अन्धा न हो, तो देखने वाले मानव के हृदय मे स्वाभाविक रूप से करुणा की भावना उपजती है। तब वह आत्मीयता के कारण सहानुभूति से भर कर उसके दु ख को दूर करने का प्रयास करता है। क्योंकि प्रेम, दया, शान्ति, क्षमा—ये मानव हृदय के स्वाभाविक गुण हैं ३। तभी तो मानव ने इतिहास मे समय-समय पर अपनी इस सहृदयता का अनेक रूपो मे परिचय दिया है। वस्तुत —

'यही है इबादत, यही है दीनो ईमान
इन्सान के काम आए इन्सान।'

या किसी दूसरे कवि के शब्दो मे—

'जिस ने की इन्सान की खिदमत
दुनिया मे है इन्सान वही।
जो अपना मतलब देखे,
हैवान है वह, इन्सान नही॥

सहृदयता के कारण व्यक्ति मे परस्पर सहयोग सद्भाव, सम्मान की भावना होती है ४। वह आत्मवत् भावना से भर कर दु:ख, क्लेश से घिरे दुखीं की सहायता करता है, पर पशु में यह क्षमता नही होती। पशु दूसरो को हानि पहुचाने से झिझकते नहीं, कई बार बिना किसी स्वार्थ के भी दूसरों का अहित करते हैं।

(३) आत्मनियन्त्रण—विवेक, सहृदयता की भावनाओ के कारण मानव सामाजिक प्राणी होने से, मानवीय समाज की व्यवस्थाओं को स्वय पालता है। अपने ऊपर विचार-पूर्वक स्वय नियन्त्रण रखता है। पर पशु अपनी वासनाओं का स्वेच्छा से नियन्त्रित नही कर सकता। वह दण्ड के बल से दूसरों द्वारा रास्ते पर लाया जाता है। साधारण जन पशुवत् स्वार्थान्ध होकर कार्य करते हैं। स्वार्थान्ध मे मानवता (विवेकशीलता) कहा? तभी तो ऐसे व्यक्ति कामान्ध होकर सभी प्रकार के कुकृत्य करने पर उतारू हो जाते हैं। स्वार्थ से लोभ पनपता है, जो सभी अनर्थों की जड़ है। अत चरित्र, नैतिकता मानवता का माप-दण्ड है।

(४) स्वात्माभिमान—प्राय पशुओ मे दीनता चाटुकारिता (कुक्कुरवत्) वृत्ति होती है। उन मे आत्म-विश्वास के न होने से स्वात्माभिमान नही होता। अत आत्मविश्वास मानव की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। यह मानवता की एक पहचान भी कही जा सकती है।

अत वे ही मानव हैं जिनमे सहानुभूति है विवेक है, इन्द्रियो और मन की सहज प्रवृत्तियो पर उचित अंकुश लगाने की भावना है। इन्हीं समग्र भावों को या मानव की परिभाषा को हम हिन्दी के महान् कवि श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय के शब्दो मे इस प्रकार से कह सकते हैं—

ऊच नीच का भेद त्याग, सब को
हित माने।
चींटी पर भी कभी न अपनी भौंहे
ताने।
हमे चाहिए मानव ऊचे जी का ऐसा।
अपना जी त्यों सभी जीव का जी जो
जाने।

---

१ मनस्यमानेन सृष्टा (निरुक्त ३, २, ६) गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्
(म० भा० शान्ति० २९९, २०)
भूताना प्राणिन श्रेष्ठा, प्राणिना बुद्धिजीविन। बुद्धिमत्सु नरा- (मनु १ ९६
बड़े भाग्य मानव तन पावा
(रामचरितमानस)

२, मत्वा कर्माणि सीव्यन्ति
पुनर्मनस्वीभावे मनोरपत्यम् मनुषो वा
(—ज्ञानपुत्र, ज्ञान का उत्तराधिकारी)।
(निरुक्त ३, २, १)

३ न कामये राज्यं न स्वर्गं न
पुनर्भवम्।
कामये दु खतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥
भारतीय संस्कृति का भक्त तो सदा प्रार्थना करता है।

(शेष पृष्ठ ९ पर)

हिन्दी की उपेक्षा-किसकी अपेक्षा ?

ले —श्री प्रो चन्द्रप्रकाश जी आर्य

हिन्दी की उपेक्षा के लिए उत्तर दायी कौन ? सरकार या हम ? आज देश को स्वतन्त्र हुए ३३ वर्ष हो चुके हैं। देश के संविधान में हिन्दी को राष्ट्र भाषा एवं राजभाषा का स्थान दिया गया था परन्तु क्या ३३ वर्ष बाद भी हम हिन्दी को उचित स्थान दे सके हैं या दिलवा सके हैं ? कभी इसे उत्तर भारत की भाषा कहकर दुत्कारा जाता है तो कभी दक्षिण की दुहाई देकर इसको भत्सना की जाती है। कभी अंग्रेजी आज की अनिवार्यता के नाम पर इसकी उपेक्षा की जाती है तो कभी इसमें वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली का अभाव बताया जाता है। कभी इस पर क्लिष्ट एवं कठिन होने का आरोप लगाया जाता है तो कभी इसके साहित्य को अविकसित एवं अर्द्ध विकसित करार दिया जाता है। यहा तक कि अन्य भारतीय भाषाओ के नाम मे इसे अवरोध या बाधक भी बताया जाता है। बगाल इस से खुश नही पजाब इससे नाराज तामिल नाडो की तो हिन्दी से पटती नही। स्वय हिन्दी भाषी प्रदेश भी शिथिलता का रवैया अपनाए हुए हैं। अपने ही देश मे आज यह पराई है। एक ओर हम इसे सयुक्त राष्ट्र संघ मे उचित स्थान दिलवाने के लिए कटिबद्ध हैं तो दूसरी ओर अपने ही देश में हम इस के मार्ग मे अवरोध एव रुकावट खडी कर रहे हैं। इसके लिए सरकार के साथ साथ हम जनता के लोग भी कम जिम्मेवार नही हैं। हमारे ऊपर अब भी अंग्रेजी का भूत सवार है। बोल चाल वेशभूषा खानपान आदि मे हम अंग्रेजी की सभ्यता को प्राथमिकता देते हैं। अंग्रेजी के बिना हम एक कदम आगे नही बढ सकते अंग्रेजी हमारे लिए सामाजिक प्रतिष्ठा का पर्याय एव प्रतीक बन गई है। अंग्रेजी के बिना हम समाज में सिर ऊंचा कर नहीं चल सकते। आज समाज में विशेषतया नगरो मे अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने वाले विद्यालयों में होड लगी हुई है। २६ वर्ष की आयु वाले बच्चो को भी अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा दी जाने में गौरव माना जाता है और वह भी २० से ३० रुपए तक मासिक फीस देकर। उन बालको को भले ही अंग्रेजी समझ मे न आए इस से कम से कम हमारा सामाजिक प्रतिष्ठा का यह भाव तो तुष्ट होता है। इसी प्रकार कान्वेंट स्कूलों और पब्लिक स्कूलो की कमी है च है बाग मे इन स्कूलो के बच्चे समाज की मुख्यधारा के साथ न घुल मिल सके। हमारी यह मिथ्या सामाजिक प्रतिष्ठा की भावना ही हिन्दी की उपेक्षा के लिए जिम्मेवार है।

ब्याह शादी हो या अन्य कोई समारोह के निमन्त्रण पत्र छपवाए मे तो अंग्रेजी मे ? नए वर्ष की बधाई हो या अन्य किसी प्रकार की बधाई हो पत्र भेजेंगे तो अंग्रेजी मे तार देंगे तो अंग्रेजी मे नामपटट लिखवाए मे तो अंग्रेजी मे चाहे हिन्दी के तार सस्ते पडते हो पर पता लिखने तो अंग्रेजी मे चाहे पूरा पत्र हिंदी या पजाबी मे लिखा हो अपने हस्ताक्षर करेंगे तो अंग्रेजी मे बैंक या डाकघर म फार्म भरेगे तो अंग्रेजी मे चाहे वहा हिंदी भी साथ साथ दी हुई हो दुकानो और बाजारो पर नजर दौडाइए कितने नाम हिन्दी एव पजाबी मे होगे ? इस प्रकार हमारे दैनिक व्यवहार मे अंग्रेजी की प्रधानता है सरकारी कार्यालयो अन्य प्रशासनिक विभागो तथा सामाजिक प्रतिष्ठानो की बात तो दूर है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे कितने छात्र अंग्रेजी के कारण फल या अनुत्तीर्ण होते हैं ? छात्रो का समय अंग्रेजी की पढाई मे जाता है फिर पास होने का निश्चय नही धन का व्यय समय की हानि तथा मानसिक परेशानी अलग। राष्ट्र की प्रतिभा की कितनी भारी हानि होती है स्वय अनुमान लगाकर देखें।

> राष्टभाषा पुकार रहा है कि उसमे क्या कमी है जो बगाल उससे खुश नही पजाब नाराज है तमिलनाड की उससे पटती नही और और स्वय हिन्दी भाषी प्रदेश भी शिथिलता का रवैया अपन ए हुए है।

भाषा के रूप मे अंग्रेजी से कोई विरोध या दुराव नही। अंग्रेजी से हमने बहुत कुछ ग्रहण किया है अंग्रेजी हमारे लिए वैज्ञानिक जगत से सम्पर्क बनाए रखने का साधन है यहा तक तो ठीक है। परन्तु सवाल तो राष्ट का है जनमानस का है देश की भावी पीढी का है उन पर अंग्रेजी हम क्यो थोप ? रूस में अंग्रेजी का साहित्य भारी मात्रा मे प्रकाशित होता है अनेक पत्र पत्रिकाए तथा पुस्तकें अंग्रेजी मे छपती हैं परन्तु जनमानस पर या जनता पर अंग्रेजी का दबाव नही। सरकारी तन्त्र एव भिन्न भिन्न शासकीय विभाग व्यवहार मे अपनी भाषा रूसी क प्रधानता देते हैं इसके विपरीत हमारा शासन तन्त्र अपेक्षाकृत कम सावधान है। जितना जल्दी हम इस ओर ध्यान देंगे उतना ही शीघ्र हम हिन्दी को राष्ट्र तथा संयुक्त राष्ट संघ मे उचित स्थान दिलवा सकेंगे।

प्रश्न केवल राष्टभाषा या राजभाषा का नही अपितु राष्टप्रेम का है। सवाल उत्तर और दक्षिण भारत का नही अपितु समूचे राष्ट का है। हिन्दी समस्त राष्ट को जोडने वाली भाषा है राष्ट को तोडने वाली नही। यह देश की सास्कृतिक सामाजिक एव धार्मिक परम्पराओ का प्रतिफल है हमने इसे राजभाषा भले स्वतन्त्रता के बाद ही बनाया है परन्तु यह तो बहुत पहले ही इस पद पर आसीन हो चुकी थी। विद्वानो ने इसकी कडिया देश के प्रत्येक कोनो मे खोज निकाली है। वर्तमान अनुसधानो के आधार पर दसवी शताब्दी से ही हिन्दी देश के विभिन्न भागो मे पनपती रही कभी ब्रज के रूप मे तो कभी दक्खिनी हिन्दी के रूप मे परन्तु इसकी सत्ता निरन्तर कायम रही।

आवश्यकता है आज उदार राष्ट वादी दृष्टिकोण अपनाने की ? द्वेष और पक्षपात को त्यागने की ? आवश्यकता है दृढ सकल्पी की ? दृढ सकल्प का ही परिणाम था कि लगभग १०० वर्ष तक हम आजादी की लडाई लडते रहे और मुक्त होकर ही रहे। यह तो विदेशी राज की बात थी—१८५७ की क्रांति की विफलता हमने झेली १९१९ का जलियावाला काड हमने सहन किया फिर भी हम आगे बढते रहे। क्या आज हम अपने राज मे अपनी भाषा को नही अपना सकते अपनी राष्ट्रभाषा को नही पढ सकते ? अपनी राजभाषा को उचित सम्मान नही प्रदान कर सकते ? इसके लिए हम सबकी जिम्मेवारी है—आपकी सरकार की जनता की और समूचे राष्ट की।

—

लुधियाना के ग्रामीण क्षत्रमे वेद प्रसार

नरेवाल ग्राम चमन विहार कालोनी मे डा सुशीलकुमार जी के घर पर पारिवारिक सत्सग बडी धूमधाम से हुआ हवन यज्ञ के पश्चात श्री कृपा राम जी आर्य के प्रभु भक्ति के भजन हुए श्री वेन्वत जी वेद प्रचार श्री आशा न द आर्य श्री रूप लाल आर्य ने अपने भाषणो द्वारा प्रचार किया सकडो की सख्या म स्त्री पुरुषो ने सत्सग म शामिल होकर लाभ उठाया ग्राम म काफी प्रभाव पडा डा सुशील कुमार जी ने सब को धन्यवाद कराया।

पूज्य प देव प्रकाश जी भी चल बसे

पूज्य प देव प्रकाश जी जिन्होने आयुभर वैदिक धर्म की सेवा की आपने मध्य प्रदेश मे कई वर्ष रह कर लाखो हरिजन हिन्दुओ को ईसाई होने से बचाया और उनको सच्चे वैदिक धर्मी बनाया। आप एक सच्चे त्यागी तपस्वी आर्य पुरुष थे अरबी तथा संस्कृत के महान विद्वान थे आप ने अमृतसर मे कितने वर्षों तक अरबी संस्कृत महाविद्यालय भी चलाया आपने अनेक पुस्तक भी लिखी आप इस ८० वर्ष से अधिक आयु मे अब भी शुद्धि कार्य तथा लिखने का कार्य कर रहे थे आप ३ ४ महीना से बीमार चले आ रहे थे २९ दिसम्बर १९८० को आपका दयानन्द मठ दीना नगर मे देहान्त हो गया। आपकी अन्तेष्टिपूर्ण वैदिक रीति से ३०१२८ को कर दी गई जिसमे पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी ने एक मन सामग्री तथा एक टीन घी का प्रयोग किया अन्तेष्टि मे अमृतसर तथा दीना नगर के सकडो नरनारी सम्मिलित हुए। उन को श्रद्धाजलि देने के लिये ४ जनवरी १९८१ रविवार दोपहर दो बजे से चार बजे तक आर्य समाज शक्ति नगर अमृतसर मे एक शोक सभा हुई जिसमे सकडो आर्य बन्धुओ ने पहुच कर इस महान विद्वान को अपनी श्रद्धांजलि भेंट की स्वामी सर्वानन्द जी के अतिरिक्त और भी कई आर्य बन्धुओ ने पण्डित देव प्रकाश जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए बताया कि हमसे एक रत्न छिन गया है उसकी क्षतिपूर्ति होनी असम्भव है। हमे उन के जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिए।

मथुरादास वानप्रस्थी

(४ पष्ठ का शेष)

सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद दु ख भाग भवेत ॥

४ श्रूयतां धर्मसर्वस्व श्रुत्वा चैवाव धार्यताम ॥
आत्मन प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत् ॥
(महाभारत)

न तत परस्य स दध्यात प्रतिकूल यदात्मन ।
एष सक्षेपतो धर्म कामादन्य प्रवर्तते ॥
(महाभारत)

आत्मवत्सर्वभूतेषु य पश्यति स पश्यति ।
(हितोपदेश)

श्रुति स्मृति सदाचार स्वस्य च प्रियमात्मन (मनु २ १२)

(१ पृष्ठ का शेष)

देना अब हमारे लिए इसलिए और भी अनिवार्य हो गया है कि अकाली कहते है कि हिन्दू और सिख दो अलग अलग कौमें हैं। इसी दो कौमें के सिद्धान्त पर पर वे खालिस्तान की मांग भी कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में हिन्दी प्रेमियों के लिए और भी आवश्यक हो जाता है कि वे अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए हिन्दी का दामन न छोड़ें। कुछ दिनों में जनगणना का कार्य शुरू होने वाला है। हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम अपनी भाषा हिन्दी लिखवाएं क्योंकि इसी के आधार पर अकालियों ने खालिस्तान की मांग करनी है। पंजाबी के आधार पर ही उन्होंने पंजाबी सूबा लिया है और अब इसी के आधार पर उन्होंने खालिस्तान की मांग करनी है। इसलिए वे सभी लोग जो पंजाब का नया बंटवारा नहीं चाहते उनका यह कर्त्तव्य बन जाता है कि आगामी जनगणना में वे अपनी भाषा हिन्दी लिखवाएं। हम हिन्दी को अपनाते हुए कोई पाप नहीं कर रहे। गुरु गोबिन्द सिंह जी महाराज की मातृभाषा हिन्दी हो सकती है तो हमारी क्यों नहीं? और हमारे बारे में तो सर्वोच्च न्यायालय भी यह कह चुका है कि इनकी भाषा हिन्दी है। मैं जानता हूं कि मैं जो कुछ लिख रहा हूं इस पर अकाली तिलमिलाएंगे। किन्तु इसमें हमारा कोई दोष नहीं है। उन्हें एक भ्रान्ति हो रही है। वे पंजाब के हिन्दू को अनाथ समझते हैं। उनका विचार है कि वे जो भी लाठी हाथ में पकड़ लें उससे वे हिन्दुओं को जिधर भी हांकना चाहें हांक सकते हैं। कभी संत फतेह सिंह की लाठी पकड़ ली और कभी रिजनल फार्मूला की। कभी पंजाबी सूबा की लाठी उठा ली और कभी खालिस्तान की। किन्तु अब उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि उनकी हर लाठी का जवाब लाठी से ही दिया जाएगा। आज यदि हम डंके की चोट से यह कह रहे हैं कि हिन्दी हमारी मातृभाषा है तो इसलिये कि अकाली जिधर चल रहे हैं कहीं न कहीं तो अब हमें उसका विरोध करना ही पड़ना था। दो कौमों का सिद्धान्त हमें स्वीकार नहीं है। भारत में एक ही कौम रह सकती है दो नहीं। दो कौमों वाले यहां से चले गए। यदि कुछ और पैदा हो गए हैं तो उन्हें भी वहीं जाना चाहिए जहां उनके कुछ और साथी जा चुके हैं भारत में वही लोग रह सकते हैं जो एक राष्ट्र, एक देश, एक संविधान और उसके एक ध्वज के समक्ष सिर झुकाने को तैयार हों। जो इसके लिए तैयार नहीं हैं उनके लिए इस देश में कोई स्थान नहीं हो सकता।

कुछ भी हो हमें अब यह चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि अकाली क्या कहते हैं और क्यों ऐसा कहते हैं। वही लोग जीवित रहने का अधिकार रखते हैं जो अपने भाग्य का निर्णय स्वयं कर सकते हैं। इसलिए मैं पंजाब के हिन्दी प्रेमियों से यह निवेदन करना चाहता हूं कि यदि उन्होंने इस राज्य में सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करना है तो उन्हें अपने भाग्य का निर्णय स्वयं करना चाहिए। वही राष्ट्र जीवित रह सकता है जिसकी एक भाषा हो। इसीलिये हमारे देश के नेताओं ने हिन्दी को हमारी राष्ट्र भाषा बनाया था। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे देश में कुछ और भाषाएं भी हैं। पंजाबी उनमें से एक है। हम उन सबका सम्मान करते हैं। हम देश की किसी भी भाषा के विरुद्ध नहीं हैं। जितनी अधिकाधिक भाषाएं पढ़ सकें हमें पढ़नी चाहिएं। पंजाब में पंजाबी पढ़ना भी हमारे लिए आवश्यक है किन्तु पंजाबी के लिए हिन्दी को दबाने का प्रयास क्यों किया जाए? यह हम किसी भी रूप में सहन नहीं करेंगे। यदि अब सहन कर गए तो पंजाब में रहना हमारे लिए कठिन हो जाएगा। हम समझते थे कि पंजाबी सूबा के बाद अकालियों की ओर से कोई नई मांग प्रस्तुत नहीं होगी। किन्तु वह तो कहीं रुक ही नहीं रहे। अब नई नई मांगें कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम उनके नये हमले का उत्तर देने को तैयार हो जाएं। वह एक ही हो सकता है कि गुरु गोबिन्दसिंह जी महाराज की मातृभाषा को हम अपनी मातृ भाषा बनाएं और आगामी जनगणना में यह प्रमाणित कर दें कि पंजाब का बहुत बड़ा बहुमत उसी हिन्दी भाषा को अपनी मातृभाषा समझता है जो गुरु गोबिन्दसिंह जी महाराज की मातृ भाषा थी।

बारह जनवरी को सोमवार है। इसलिए मैं पंजाब की सभी आर्य समाजों से निवेदन करूंगा कि वे रविवार ११ जनवरी को अपने सत्संग में गुरु गोबिन्दसिंह जी महाराज को श्रद्धांजलि अर्पित करें और उन्होंने हिन्दी भाषा के प्रचार के लिए जो कुछ किया था उसके लिए उनके प्रति अपनी श्रद्धा को अभिव्यक्त करते हुए यह निश्चय करें कि आगामी जनगणना में भी वह अपनी मातृ भाषा हिन्दी लिखवायेंगे।

—वीरेन्द्र

तार्किक शिरोमणि स्वामी दर्शनानन्द जी

आर्य समाज के इतिहास में गुरुकुल शिक्षा के प्रबल समर्थक और सर्वप्रथम गुरुकुल सिकन्दराबाद खोल कर गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की ओर महर्षि के अनुयायियों को प्रेरित करने वाले स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी जिनकी लौह लेखनी तथा वाणी के अपने पराये सभी प्रशंसक थे उन वैदिक धर्म के प्रचारक प्रसारक महर्षि के अनन्य भक्त तार्किक शिरोमणि स्वामी दर्शनानन्द जी का जन्म दिवस २० जनवरी १९८१ को सभी को सोत्साह मनाना चाहिए। हम १८ १२ ८० के आर्य मर्यादा में उनके जीवन तथा उन की साहित्यिक कृतियों पर प्रकाश डालने का यत्न करेंगे।

अपने पूज्य विद्वानों से सानुरोध निवेदन है कि वे भी पूज्य स्वामी जी महाराज के जीवन सम्बन्धी लेख और कविता भेजकर कृतार्थ करें।

—ओमप्रकाश आर्य
सभा कार्यालयाध्यक्ष

—

दक्षिण भारतीय सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी समारोह हैदराबाद में

अन्तर्राष्ट्रीय वेद प्रतिष्ठान हैदराबाद की ओर से ८ जनवरी गुरुवार से ११ जनवरी रविवार तक हैदराबाद नगर में दक्षिण भारतीय सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी समारोह का विराट आयोजन किया गया है।

इस आयोजन के यशस्वी संयोजक पं. वेदभूषण जी तथा महामन्त्री पं. मथुरा राम एडवोकेट (उप प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा आन्ध्र प्रदेश) मनोनीत किए गए हैं। महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु एवं केरल इन पांचों प्रान्तों का यह संयुक्त आयोजन दक्षिण में आर्य समाज के प्रचार एवं प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

—

★ परिश्रम सोने की कुंजी है इससे सुनहरी भविष्य द्वार खुल जाते हैं।

★ ईर्ष्या नेकी को इस प्रकार खा लेती है जैसे लकड़ियों को आग।

★ जीवन तथा स्वास्थ्य थोड़ी आय पर भी कायम रखा जा सकता है।

—

वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर में स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस मनाया गया

दिनांक २३ १२ ८० को वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर में अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज बलिदान दिवस बड़ी श्रद्धा और भावना उत्साह के साथ सम्पन्न हुआ। दोनों समय के सत्संगों में आर्य जगत के उच्चकोटि के विद्वान एवं विदुषि अतिथि के प्रवचन हुए।

ओजस्वी वक्ता श्री पं. देव बन्धु जी शीशकर दास जी डा. वसुदेव जी वैराग्य विदुषि श्री रामवति जी पं. विद्यानिधि जी तथा श्री जगदीश चन्द्र जी ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन पर पूर्ण प्रकाश डाला।

—ब्र. विश्वव्रत विद्यार्थी

—

जिन्दगी का रहस्य

हम देख रहे हैं कि आज का प्राणी व पदार्थ हैं वह सदा रहने वाले नहीं हैं। यह मानव प्राणधा हुआ भी अज्ञानता में देख रहा है आने जाना जा रहा है हम जाने वालों को प्रतिदिन देख रहे हैं साथ ही आने वालों को भी देख रहे हैं यह मुट्ठी बांधकर आ रहे हैं मानों कहते हैं सारे संसार को अपनी मुट्ठी मे बन्द कर के ले जाऊंगा परन्तु जब जाने वाला जाता है दोनों हाथ खाली जाता है मानो कह रहा हो मैं यहां से कुछ भी न ले जा पा रहा हूं। सभी कुछ यहीं रह गया। वास्तव में दुनियादारी की चीज आज तक किसी के साथ नहीं गई और न कभी जाने वा सकेगी। फिर हम चीजों से क्यों चिपक रहे हैं। यह एक आश्चर्य की बात है। यह जानते हुए कि इन्हें साथ नहीं जाना फिर भी छोड़ना नहीं चाहते।

देखते २ क्षण क्षण जीवन काल का ग्रास बनता चला जा रहा है। बड़े २ ज्ञानी विद्वान् ऋषि मुनि राजा महा राजा भी इस नाशवान शरीर को छोड़कर संसार से चले जा रहे हैं। हम देखते हैं जो अवस्था शरीर की बीस वर्ष पहले थी वह अब नहीं है जो अब है वह बीस वर्ष बाद नहीं रहेगी किसी ने कहा है—

> जिनके पहलु मे हजारों रश्क
> फानुस थे
> आज उनकी कबर पर है और
> निशां कुछ नहीं।

मनुष्य भोगों की ओर बढ़ रहा है मृत्यु मनुष्य की ओर बढ़ रही है किसी ने कहा है

> की बहुत तदबीर मगर तकदीर के
> हिकमत चली नहीं
> कोशिशें भी की हजारों मगर वे
> सर की बलाएं टली नहीं।

मनुष्य जीवन अमूल्य होने पर भी रोका नहीं जा सकता। परन्तु जीवन धारा का परिवर्तन किया जा सकता जीवन धारा के रुख को बदला जा सकता है प्रेय मार्ग को छोड़कर श्रेय मार्ग की ओर चला जा सकता है यह मार्ग कठिन जरूर है परन्तु ऐसी बात नहीं कि इस पर चला ही नहीं जा सकता। जब यात्री चलने के लिए तैयार हो जाएगा उसके कदम फिर आगे ही आगे बढ़ते चले जाएंगे परमार्थ का मार्ग ही वास्तव में मार्ग है किसी कवि ने कहा है—

> जिन्दगी पथ है मंजिल की तरफ
> जाने का
> जिन्दगी गीत है मस्ती से सदा
> गाने का।
> मौत आराम से सो जाने की
> बदनामी है
> जिन्दगी नाम है तूफान से टकराने
> का।

नोट—मैंने एक वर्ष के लिए आर्य समाज रामपुरा टाऊन को अपना समय दे दिया है। एक वर्ष तक मैं यहीं रहकर प्रचार कार्य करूंगा।

—परमानन्द वानप्रस्थी

—

सभा को एक हजार रुपए की राशि भेंट

आर्य समाज श्रद्धानन्द बाजार अड्डा होशियारपुर जालन्धर का उत्सव सम्पन्न

आर्य समाज श्रद्धानन्द बाजार (अड्डा होशियारपुर) जालन्धर का प्रसिद्ध आर्य समाज है जो अपना वार्षिक उत्सव प्रति वर्ष बड़ी धूमधाम से दिसम्बर मास में ही मनाता है। इस वर्ष २१ दिसम्बर से २८ दिसम्बर तक वेद मनीषी श्री हरवंश लाल जी महता लखनऊ वाले प्रभाव शाली वेद कथा करते रहे। २३ दिस रात्रि को स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस बड़ी धूमधाम से मनाया गया। स्वस्ति यज्ञ की पूर्णाहुति २ दिसम्बर रविवार को प्रात: १० बजे हुई।

२६ दिसम्बर को ध्वजारोहण श्री हरवंश लाल जी शर्मा के करकमलों द्वारा हुआ २६ २७ २८ तीन दिन प्रातः दोपहर रात्रि तीनों समय मे प्रचार का विशेष आयोजन किया गया इस सारे उत्सव मे २१ से २८ दिसम्बर तक श्री हरवंशलाल जी महता के अतिरिक्त आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कार्यालयाध्यक्ष श्री प० ओम प्रकाश जी आर्य श्री प० समदेव जी आर्य श्री प० निरंजनदेव जी महोपदेशक श्री प० राम नाथ जी सि० वि० महोपदेशक श्री श्याम सिंह जी हित कर भजन मण्डली श्री हजारी लाल जी भजनोपदेशक श्री सन्तदास तबला वादक श्री राम नाथ जी य जी श्री तुलसी देव जी गायनाचार्य श्री नरेन्द्र जी शर्मा तथा श्री कुलदीप जी प्रसिद्ध गायक ने भाग लिया।

२७ दिसम्बर को छात्र छात्राओं की भाषण प्रतियोगिता श्रीमती सन्तोष पुरी प्रिंसीपल कन्या महा विद्यालय जालन्धर की अध्यक्षता मे हुई और बच्चों को पुरस्कार दिए गए। २ दिसम्बर को हिन्दी सम्मेलन श्री ला जगतनारायण जी की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ।

यह उत्सव हर प्रकार से सफल रहा २८ दिसम्बर रविवार को बहुत ऋषि लंगर हुआ जिसमे सहस्रों श्रद्धालुओं ने प्रीति भोज किया।

इस सारे कार्यक्रम को सफल बनाने का श्रेय आर्य समाज के प्रधान श्री सेठ योगेन्द्र पाल जी तथा उनके सहयोगी अन्य अधिकारियों को जाता है जिन्होंने अपना पूरा समय लगा कर दिन रात एक करके इस कार्यक्रम को सफल बनाया है। इस अवसर पर श्री योगेन्द्र पाल जी ने अपनी आर्य समाज की ओर से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को १००० रु एक हजार रुपए (की राशि वेद प्रचार में) भेंट की जिसके लिए सभा उनका धन्यवाद करती है।

हिन्दी निबन्ध प्रतियोगिता

भारत सरकार के शिक्षा और समाज कल्याण मन्त्रालय द्वारा स्थापित केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा गत १६ वर्षों से अहिंदी भाषा भाषियों के लिए प्रतिवर्ष एक अखिल भारतीय हिन्दी निबन्ध प्रति योगिता का आयोजन करता आ रहा है इस प्रतियोगिता मे हिन्दी से बी ए के समकक्ष कोई मान्यता प्राप्त हिन्दी परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले व्यक्ति भाग ले सकते हैं इस वर्ष प्रतियोगिता का विषय हिन्दी प्रसार मे रेडियो दूरदर्शन एवं चल चित्रों का योगदान निश्चित किया गया है निबन्ध प्राप्त होने की अंतिम तारीख २८ २ ८१ है। सर्वश्रेष्ठ तीन निबन्धों के लिए क्रमश २५० २०० और १५० रुपये के तीन पुरस्कार प्रदान किए जायेंगे। इनके अतिरिक्त प्रत्येक भाषा वर्ग के सर्वश्रेष्ठ निबन्ध के लिए भी पुरस्कार दिए जाएगा। विवरण निदेशक केन्द्रीय हिन्दी संस्थान शीतला रोड आगरा २८२ ५ से अपना पता लिखा और ३५ पैसे के टिकट लगा लिफाफा साइज २२ × १० स मी भेजकर प्राप्त कर सकते हैं।

दिल्ली के आर्य मर्यादा के ग्राहकों की सेवा में

दिल्ली के आर्य मर्यादा के सभी ग्राहकों की सेवा निवेदन है कि सभा के सुयोग्य प्रसिद्ध भजनोपदेशक श्री तुलसी देव जी गायनाचार्य आर्य मर्यादा के शुल्क हेतु आपकी सेवा मे आ रहे हैं। कृपया उन्हें शुल्क देकर उनसे रसीद प्राप्त कर सभा को अपना पूरा पूरा सहयोग देने का कष्ट करें।

— व्यवस्थापक

श्री अनिलकुमार शर्मा

का आर्य मर्यादा को सहयोग

आर्य हायर सैकण्डरी स्कूल लुधियाना के अकाउंटैण्ट श्री अनिल कुमार जी शर्मा एक उत्साही युवक हैं लगनशील कर्मठ हैं। जो यहां अपने स्कूल की दिल लगा कर सेवा कर रहे हैं वहां वह आर्य प्रति निधि सभा पंजाब को भी अपना पूरा पूरा सहयोग दे रहे हैं।

गत दिनों उन्होंने आर्य मर्यादा साप्ताहिक के अनेक वार्षिक नए ग्राहक बना कर सभा को अपना जो सहयोग दिया है वह सराहनीय है। वह और भी नए ग्राहक बनाने का पूरा २ यत्न कर रहे हैं। इसके लिए हम उनका धन्यवाद करते हैं। अगर इसी प्रकार दूसरे आर्य बन्धु भी आर्य मर्यादा को अपना सहयोग दें तो इस पत्रिका मे होने वाले घाटे को बड़ी आसानी से पूरा किया जा सकता है।

मुझे आशा है कि श्री अनिल कुमार जी से प्रेरणा लेकर अन्य बन्धु भी आर्य मर्यादा को अपना पूरा पूरा सहयोग देने का कष्ट करेंगे।

—व्यवस्थापक

जिला आर्य सभा लुधियाना का निर्वाचन

लुधियाना २१ १२ ८० को आर्य समाज स्वामी दयानन्द बाजार मे जिला आर्य सभा का चुनाव श्री महेन्द्र पाल जी शर्मा संयोजक जिला आर्य सभा की अध्यक्षता में हुआ। पिछली कार्यवाही की सर्व सम्मति से सम्पुष्टि के पश्चात् निर्वाचन कराया गया।

प्रधान—श्री रणबीर भाटिया

मन्त्री—डा० एस० बी० बाधिया

कोषाध्यक्ष—श्री बलदेव राज सेठी

तीनों पदाधिकारी सर्व सम्मति से चुन लिए गए। साधारण सभा ने श्री भाटिया को अन्य अधिकारी तथा अन्तरंग सभा के सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार दे दिया। शान्ति पाठ के पश्चात वार्षिक अधिवेशन समाप्त हुआ।

—महेन्द्र पाल शर्मा संयोजक

बस्सी पठाना मे वैदिक धर्म प्रचार

स्त्री आर्य समाज बस्सी पठाना (जि० पटियाला) के प्रबन्ध में २२ दिसम्बर से २५ दिसम्बर तक बड़ी धूम धाम से प्रचार हुआ सभा की ओर से श्री प० रामनाथ जी सि० विशारद महोपदेशक तथा श्री तुलसीदेव जी सगीताचार्य पधारे निरन्तर वर्षा के होते हुए भी स्त्रियां वेदामृत पान करने आती रहीं बहुत अच्छा प्रभाव रहा सभा को १०१) रु० वेद प्रचार दिया गया।

—सुशीलादेवी मन्त्राणी

चूहनी कलां मे वेद प्रचार

आर्यसमाज चहूनीकलां जि रोपड़ मे १५ से २१ दिसम्बर वेद प्रचार सप्ताह बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से श्री प रामनाथ जी सि विशारद महोपदेशक तथा श्री तुलसी देव जी सङ्गीताचार्य पधारे कड़कती सर्दी के उपरान्त भी जनता वेद अमृतपान करती रही। उपस्थिति अच्छी होती रही प्रभाव भी अच्छा रहा १०१ वेद प्रचार दिया।

—अमरनाथ महता मंत्री।

श्री प रमेशचन्द्र शास्त्री का निधन

आर्य जगत् के उच्च कोटि के विद्वान तथा आर्य समाज अजमेर के प्रतिष्ठित सभासद एवं दयानन्द कालेज अजमेर के संस्कृत विभाग के भूतपूर्व विभागाध्यक्ष श्री प० रमेशचन्द्र जी शास्त्री विद्या भास्कर का ६५ वर्ष की आयु में गत दिनों हृदयगति अवरुद्ध हो जाने से अकाल निधन हो गया। उनके निधन पर आर्य समाज अजमेर तथा आर्य समाज से सम्बन्धित विभिन्न संस्थाओं मे शोक प्रस्ताव पारित किए गए तथा शास्त्री जी को उनकी सेवाओं के लिए भावभीनी श्रद्धाञ्जलियां दी गईं

प सुरेन्द्र शर्मा का निधन

आर्य समाज अजमेर के सभासद तथा वैदिक यन्त्रालय अजमेर के भूतपूर्व प्रबन्धक एवं सामाजिक कार्यकर्ता श्री प० सुरेन्द्र जी शर्मा का गत दिनों पक्षाघात से निधन हो गया। आर्य समाज अजमेर ने शोक प्रस्ताव पारित कर दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करने की प्रार्थना की।

—मन्त्री आर्य समाज अजमेर

(२ पृष्ठ का शेष)

कल्पेताम द्यावापृथिवी स्वाहा

कल्पन्ताम आप ओषधय स्वाहा।

कल्पन्ताम अग्नय पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रता स्वाहा।

ये अग्नय समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे। हैमन्तिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभि सं विशन्तु तया देव[illegible] स्वाहा।

यजु० अ० १५ । मन्त्र १४

ओ३म् [illegible]

[illegible] स्वाहा।

[illegible] स्वाहा।

[illegible] स्वाहा।

[illegible] स्वाहा।

ओ३म् ये अग्नय [illegible] द्यावापृथिवी इमे [illegible] माया [illegible] देवा [illegible] देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् स्वाहा।

(यजुर्वेद अ० १५ । मन्त्र ५७)।

तत्पश्चात तिल के लड्डू (तिलवे) होम यज्ञ में उपस्थित पुरुषों को कुलदेव के रूप मे समर्पण किए जाएं और स्वविस्तानुसार कम्बल सहित दीन-दु खियों को दान दिए जाएं।

सामाजिक कृत्य अपराह्न में सब आर्य सामाजिक पुरुष किसी प्रशस्त क्षेत्र मे एकत्रित होकर दण्ड बैठक और रस्सा खींचना आदि के व्यायामों का प्रदर्शन करके उत्सव के आनन्द की वृद्धि करें।

श्री वीरेन्द्र जी सम्पादक तथा प्रकाशक द्वारा जयहिन्द प्रिंटिंग प्रैस जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय गुरुदत्त भवन चौक किशनपुरा जालन्धर से इसकी स्वामिनि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र जालन्धर

वार्षिक शुल्क 15) वर्ष 13, अंक 52 6 माघ सम्वत् 2037, तदनुसार 18 जनवरी 1981 का अंक दयानन्दाब्द 156

30 जनवरी को जिनका जन्म दिवस है—

दर्शनानन्द की तर्क शक्ति, योग्यता और शास्त्रार्थ कला का अद्भुत प्रभाव



उत्तर प्रदेश के बिजनौर जिले मे ताजपुर एक रियासत रही है। यह तगाओं की रियासत थी। अंग्रेजों का समय था। कालक्रम से रियासत के मालिक ईसाई हो गए थे तब से वे मन चाह रहे थे कि उनके अन्य भाई बिरादर भी ईसाई हो जाए। इस प्रकार का पारस्परिक वाद विवाद उनमे वर्षों तक एकता न बना सका। ईसाई पक्ष वालो ने अपनी ओर से सब प्रकार से हथकण्डे फेंके जबकि तगा बिरादरी भाईयो ने भी अपने भारतीयता के मोह से सब छोड़ा।

अन्ततोगत्वा वर्षों वाद विवाद के पश्चात सबसम्मति से निश्चय हुआ कि ईसाई पादरियो और आर्य समाज के अध्यापक व महोपदेशक सन्यासियो मे शास्त्रार्थ हो।

आर्य समाज का प्लेटफार्म स्वा० दर्शनानन्द जी को प्रति पल अपने बीच देखे बिना बड़ी बेचैनी सी अनुभव करता था। स्वामी जी की शास्त्रार्थ कला की छटा तो देखते ही बनती थी और व्याख्यान को सुनते सुनते जनता अधीन थी। अर्थात एक प्रकार से यह निश्चित रहा कि स्वा० दर्शनानन्द आर्य समाज की विजय के प्रतीक हैं।

अत ताजपुर की तगा बिरादरी ने सबसम्मति से स्वामी जी को शास्त्रार्थ का निमन्त्रण दे दिया स्वामी जी जब वहां शास्त्रार्थ पर पहुंचे तो जनता इसे ऐतिहासिक कहकर ठट्ठ के ठट्ठ जमा हो गये थे शास्त्रार्थ शुरू किया गया ईसाई पादरी जाकि रियासत पर कब्जा किये हुए थे वे भी पूरी तैयारी किये हुये थे। स्वामी जी के तर्क प्रमाण कला स्वाध्याय एवं शैली पर ईसाई पादरी दांतो तले उंगली दबाते थे यह ऐतिहासिक शास्त्रार्थ सात दिन तो इससे बराबर होता रहा। स्वामी जी से वे अंत मे अधिक न भिड़ सके। उन्होंने उन सब बड़े पादरियो को जिनके कि प्रभाव मे आकर वे रियासत के मालिक बने रहते थे बड़ी बुरी तरह पराजित कर दिया। इसका शोर चारो ओर फैल गया। सारा बिजनौर जिला आर्य समाज के प्रभाव मे पूरी तरह आ गया। फल यह हुआ कि रियासत के अन्य भाई बिरादरी के लोग जोकि तगा थे न ईसाई बनने से बच गए।

यदि यह शास्त्रार्थ न हुआ होता तो ताजपुर के सब हिन्दू के भाव के साथ ईसाई हो ही जाते। सारे ही बिजनौर जिले मे ईसाई पादरी छा जाते स्वा० दर्शनानन्द ने ताजपुर रियासत को ही एक प्रकार से इस शास्त्रार्थ का केन्द्र समझ लिया हो ऐसी बात नही अपितु सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश आर्य समाज की ओर आकृष्ट हो गया।

ईसाई पादरियो मे पादरी ज्वालासिंह ही एक ऐसे पादरी थे जो आय स्वामी जी के मुकाबले मे आया करते थे पादरी ज्वालासिंह अच्छे तार्किक और [illegible] थे, उनका यों कहना चाहिए कि स्वामी जी के साथ शास्त्रार्थ करके मान घटने के लिए ही पादरी ज्वालासिंह आ जाते थे

यों तो स्वामी जी ने अपने जीवन मे अनेको शास्त्रार्थ किये परन्तु अकेले ईसाईयो के साथ किए शास्त्रार्थों की संख्या तीन सौ से कम न होगी जबकि मुसलमान और पौराणिक लोगो के बीच होने वाले शास्त्रार्थों की कोई गिनती ही नही आज स्वामी जी के तर्क युक्ति और प्रमाण के प्रयोग करने की लगन की बराबरी आर्य जगत मे क्या कोई कर सकेगा? इसीलिए स्वामी जी के नाम के साथ तार्किक प्रवर यह विशेषण आदर के साथ लगाया जाता है

कई बार वे रुड़की के रेवरेण्ड फ्रैंक पादरी के साथ शास्त्रार्थ करते थे मुरादाबाद के बड़े पादरी भी प्राय स्वामी जी से भिड़ जाते थे।

यह तो हुई बाहर की बात घर मे भी ज्वा प० गणपति शर्मा जी से वर्षो मे जीव विषय पर उनका बड़ा शास्त्रार्थ हुआ था लोग आज भी इस शास्त्रार्थ को याद करते हैं।

मुसलमानो मे मौलवी सनाउल्लाह साहब स्वामी जी के बड़े प्रेमी थे और बार बार टकराते रहते थे पौराणिकों मे महामहोपाध्याय स्व० प० ज्वालाप्रसाद विद्यावारिधि भिड़ा करते थे। उनके साथ गोहावर जिला बिजनौर मे बड़ा ही अद्भुत शास्त्रार्थ हुआ था। ऐसे ही काशी और नगीने मे स्वामी जी के श्री श्याम सुन्दर जी के साथ बड़े शास्त्रार्थ हुए

स्वामी जी के सफल टैक्टो ने भी न केवल आर्य समाज का ठोस प्रचार ही किया अपितु जनता मे जागृति भी उत्पन्न की और यदि कहीं स्वामी जी के सब शास्त्रार्थों की विवरण सहित सूची तैयार हो तो एक बड़ा भारी ग्रन्थ बन सकता है। (संक्षिप्त जीवन चरित्र से)

दिव्य दर्शनानन्द

(ले०—कविवर प्रणव शास्त्री एम ए फरीदाबाद)

धन्य है दिव्यदर्शनानन्द
धन्य है दर्शनके आधार
धन्य है आर्य शिरोमणिसन्त।
नमन है तुमको बारम्बार ॥ १ ॥

तुम्हारे जीवन का अरुणात खिला पा भक्ति किरणो का सङ्ग।
सुरभि सौन्दय समाहित हुए मिला मकरन्द मनोरम रङ्ग
प्रतिष्ठा पावनता मे हुआ।
प्रबलतम नवजीवन सञ्चार। २।

सुधीने किया सबल स्वाध्याय ज्ञान का पाया अनुपम कोष।
रत्न रमणीय हम के पञ्च तुन्हे थे मन मे अतिशय तोष।
मान कर लौकिक लोग प्रबन्ध।
प्रव्रज्या का पाया आधार। ३।

व्योम मे काली चादर तान उमड़ती तमसा छाई थी।
रसालो की अभिलाषाओ पर वदन मनकी छाई थी।
दैवता विल्कम ही अर्कण।
उजड़ने को था बाग बिहार ४।

देखकर दारुण दृश्य प्रभग जगा मन मे था व द्व विवेक
चले भिड़ने को निर्भय वीर अनेको मे थे तुम ही एक
पराजित किए पादरी पोप
मौलवी नास्तिक बन्द हजार ५।

स [illegible] समग्रा पर ताने तीर तर्क के करते अ म ध न
अलौकिक आभा पूरित थे युक्ति क पहिने कवच महान।
विजेता शास्त्रार्थों के स न
प्रतिष्ठित होता जय जय कार।

जगत में करने वेद प्रचार ब दी गरुकुल यमुना पार।
अमीरन भप अनूप मुनीश मा य की फली कीर्ति अपार
प्रणव कविता के पुण्य प्रसून बन अभिभ्रहामय उपहार ॥ ७ ॥

कठोपनिषद्—नचिकेता की अमर कहानी (द्वितीय भाग)

यमाचार्य द्वारा आत्मा-परमात्मा का वर्णन

(लेखक—डा सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार)

यमाचार्य ने नचिकेता को समझाया कि आत्मा परमात्मा शब्दरहित हैं—अशब्द स्पर्शरहित है—अस्पर्श रूप रहित हैं अरूप नाशरहित हैं अव्यय। इसी कारण है कि वे इन्द्रियों का विषय नहीं हैं विधाता ने इन्द्रियों को बनाया ही ऐसा है कि वे बाहर जाती हैं भीतर नहीं जाती पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभू। क्योंकि वे बाहर जाती हैं इसलिये बाहर का जो संसार है उसे वे देखती हैं तस्मात् पराङ् पश्यति अपने भीतर के आत्मा को नहीं देखती—नान्तरात्मन्। जो लोग शंका करते हैं कि आत्मा या परमात्मा इन्द्रियों से क्यों नहीं दीखते उन्हें यमाचार्य उत्तर देते हैं कि इन्द्रियां तो आत्मा से परे हैं पराङ् उन्हें अर्थात् संसार के विषयों को ही देखने के लिए बनी हैं फिर यह शंका करना कि इन्द्रियों से आत्मा परमात्मा के दर्शन क्यों नहीं होते एक निरर्थक प्रश्न है। विधाता ने इन्द्रियों को आत्मा परमात्मा के देखने के लिये बनाया ही नहीं है। हां अगर आंख नाक आदि इन्द्रियों को विषयों से लौटाकर बाहर के विषयों में सैर सपाटा करने के स्थान में भीतर की सैर के लिए मोड़ दिया जाए तो आत्मा के दर्शन होते हैं प्रत्यग् आत्मानं ऐक्षत।

मनुष्य अमृत की तलाश में है परन्तु जिधर भी है उधर जाने से क्षणिक ही सुख प्राप्त होता है। हमारी दौड़ विषयों की तरफ है परन्तु सब विषय क्षणिक सब ही रहते हैं। शाश्वत सुख बाहर नहीं भीतर है—बाहर के विषय मरुमरीचिका की तरह उसे भ्रम जाल में दौड़ाते रहते हैं। मरु मरीचिका में जैसे दूरी पर जल का भ्रम होता है प्यासा उसकी तरफ जितना दौड़ता है उतना ही जल का भ्रम आगे आगे चलता जाता है इसी तरह संसार के विषयों में मनुष्य आनन्द ढूंढता ढूंढता उनके पीछे दौड़ता ही रहता है हाथ कुछ नहीं आता। कस्तूरी के मृग के पेट में कस्तूरी होती है परन्तु वह उसे चारों दिशाओं में ढूंढता फिरता है इसी तरह आनन्द का स्रोत मनुष्य के हृदय में उसके भीतर ही बह रहा है बाहर के पट बन्द कर जब भीतर के पट खुलते हैं तब पता चलता है कि जिस आनन्द का हम अपने से बाहर विषयों में तलाश कर रहे थे उसका झरना तो अपने भीतर ही बह रहा था—इसी भाव को व्यक्त करने के लिये यमाचार्य ने कहा—आवृत्तचक्षु अमृतत्वमिच्छन्—अमृत की प्राप्ति के लिये अपनी चक्षु आदि इन्द्रियों को अपने भीतर लौटा लाये तो आत्मा के दर्शन हो जाते हैं। बाहर देखना या भीतर देखना—इसी में अध्यात्म का सारा रहस्य छिपा है—आवृत्त अर्थात् इन्द्रियों को बाहर से अन्दर को लौटा लाना।१।

परन्तु इन्द्रियां भीतर की तरफ नहीं जाती बाहर ही भागती फिरती हैं क्योंकि संसार के विषय बाहर हैं—पराच। यमाचार्य कहते हैं कि वे लोग बाल बुद्धि हैं—बालास्ते जो इन विषयों की कामनाओं के पीछे भागते हैं—कामाननुयन्ति। परिणाम यह होता है कि सारा जीवन इन कामनाओं को पूर्ण करने में ही व्यतीत हो जाता है—हाथ कुछ नहीं लगता। संसार के क्षण भंगुर विषयों में मृत्यु के सिवाय क्या धरा है? मनुष्य जितना विषय भोग में लिप्त होता है उतना ही मृत्यु के निकट पहुंचता जाता है। संसार के विषय मानो मृत्यु का बिछा हुआ जाल है जिसमें हम उलझते जाते हैं—मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्। जो व्यक्ति बाल बुद्धि नहीं हैं—बच्चों की तरह उतावले न होकर धैर्य से काम लेते हैं—धीरा वे यह जानकर कि विषयों में अमृत नहीं आत्म ज्ञान में अमृत है—अमृतत्वं विदित्वा क्षण भंगुर अध्रुव संसार में—अध्रुवेषु उस अखण्ड ब्रह्मानन्द की ध्रुव तलाश नहीं करते—न प्रार्थयन्ते। जब यह आभास मिल गया कि संसार के विषयों में जो कुछ भी आनन्द मिलता है वह क्षणिक है साथ ही मनुष्य को यह भी आभास है कि उसे क्षणिक नहीं परन्तु शाश्वत आनन्द की तलाश है—तब विषयों का क्षणिक आनन्द ही प्रकार उठता है कि मुझे छोड़ो वहां चलो जहां आनन्द का स्रोत सदा बहा करता है।२

बाहर की हमारी इन्द्रियां हमें कहां ले जाती हैं? रूप रस गन्ध शब्द स्पर्श मैथुन इन्हीं विषयों की तरफ ही तो इन्द्रियां भागती हैं रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शांश्च मैथुनान् परन्तु इनमें आनन्द ग्रहण करने की शक्ति कहां है? आंख-कान नाक आदि इन्द्रियां तो साधन हैं—वे कौन है जिसके भीतर से कोई झांक रहा है। वह न हो तो आंख कान, जीभ कुछ नहीं कर सकें। हमारी इन्द्रियों के पीछे जो बैठा है उसी से मनुष्य देखता सुनता सूंघता है—उसी से सब ज्ञान ग्रहण करता है—एतेनैव विजानाति। वह जो इन इन्द्रियों के पीछे बैठा रूप रस गन्ध स्पर्श को जानता है वह यह भी जानता है कि इस संसार में कुछ नहीं रहा—किमत्र परिशिष्यते। हे नचिकेता तूने जो पूछा था कि मृत्यु के बाद क्या शेष रह जाता है—तेरा तीसरा प्रश्न—येयं प्रेते विचिकित्सा'—उसका उत्तर यही है कि जिससे आंख देखती है जिसके बिना आंखें नहीं देख सकती जिससे कान सुनते हैं जिसके बिना कान नहीं सुन सकते मृत्यु के बाद शेष रह जाता है एतद् वै तत्।३।

रूप रस गन्ध स्पर्श आदि को देखना आदि का काम इन्द्रियां करती हैं परन्तु ये इन्द्रियां भी अपने आप में कुछ नहीं कर सकती। उनमें जो चेतना दिखलाई देती है वह उनकी अपनी नहीं किसी और की है। इन्द्रियों का क्या कहना रूप रस आदि भी विषयों के अपने नहीं हैं। इनमें भी जो आकर्षण दिखलाई देता है वह उसी शक्ति का डाला हुआ है जो चेतन शक्ति घट घट में व्याप्त है। इतना ही नहीं हम रात को स्वप्न लेते रहते हैं दिन को जागते रहते हैं—स्वप्न के अन्त और जागने के अन्त में अगर सोचें कि क्या शेष रहा तो न स्वप्न शेष रहता है न जागरण शेष रहता है—जो स्वप्न और जागरण दोनों के बीच बना रहता है वही शेष रह जाता है जागते समय जागरण सत्य और स्वप्न असत्य हो जाता है स्वप्न के समय स्वप्न सत्य और जागरण असत्य हो जाता है परन्तु इन दोनों के बीच में रहने वाला आत्मा ही सत्य बना रहता है जिससे मनुष्य स्वप्न और जागरण दोनों की यथार्थता को देखता है—स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति—उस विभु आत्मा को जानकर—महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीर मनुष्य शरीर के गिर जाने पर भी दुःखी नहीं होता

मृत्यु उसे दुःखदायी नहीं होती क्योंकि वह जान लेता है कि संसार के विषय नष्ट हो जाते हैं शरीर मर जाता है परन्तु शरीर में रहने वाला नहीं उसकी मृत्यु नहीं होती।४।

जो आनन्द का आस्वादन करने वाले मध्वद—जीवात्मा को निकटता से जान लेता है—य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवम् अन्तिकात् उसे किसी से भी ग्लानि नहीं होती—ततो न विजुगुप्सते। यह आत्मा हमारे भूत तथा भविष्यत् को निर्माण करने वाला है—ईशानं भूतभव्यस्य। हे नचिकेता मृत्यु के बाद क्या शेष रह जाता है—यह तूने पूछा था। आत्मा ही है जो शरीर की मृत्यु के बाद शेष रह जाता है

—एतद् वै तत्।

इसका 'मध्वद' है—मधु का आस्वादन करने वाला है। यहां इसे मिठास मिलती है अन्दर ही उस देश में। मिठास में मिठास है इस जैसी ओर से मिठास में उबाल रहता है परन्तु विषयों की मिठास क्षणिक है उनसे तृप्ति नहीं इतना ही नहीं कि उनसे तृप्ति नहीं होती वे क्रम से खोखला की तरफ ले जाते हैं। इन्द्रियां क्षीण हो जाती हैं परन्तु कामना बनी रहती है। कभी कभी इन्द्रियां जितनी क्षीण होती हैं वासनाएं उतनी ही तीव्र हो जाती हैं। जब कोई वस्तु हाथ नहीं आती तब उसे पाने की इच्छा और दुगुनी हो जाती है। इच्छा बनी रहे या बढ़ती रहे और प्राप्ति की शक्ति घटती रहे तो मनुष्य की शान्ति नष्ट हो जाती है। मधु—या मिठास पाने का एक दूसरा रास्ता भी है। जैसे विषयों को पाने में मिठास है वैसे विषयों को छोड़ने में भी मिठास है। मनुष्य जितना ही इन्द्रियों पर विजय पाता है उतना ही विजय का उल्लास उसे आनन्द विभोर कर देता है। वह आनन्द क्षणिक नहीं शाश्वत है। यह आनन्द तभी प्राप्त होता है जब मनुष्य बाहर की तरफ दौड़ने के स्थान में अन्दर को जाता है अन्तरात्मा का अन्तिकात्—निकटता से अनुभव करता है। विषयों की तरफ भागने से समय आता है जब आत्म ग्लानि उत्पन्न होती है—विजुगुप्सते आत्मा का सान्निध्य पाने से आत्म ग्लानि नहीं रहती—न विजुगुप्सते। आत्मा को निकटता से जानना अन्तिकात् बड़ा महत्वपूर्ण है। आत्मा इतना नजदीक है कि नजदीक होने के कारण ही नहीं दीखता। जो वस्तु अत्यन्त निकट होती है वही दूर चली जाती है ध्यान में नहीं आती जो दूर होती है वह ध्यान में आती है। आंख कितनी निकट है परन्तु आंख आंख को नहीं देख पाती इसी तरह आत्मा कितना निकट है परन्तु आत्मा ही अपने को भूला रहता है। परन्तु हम आत्मा को कितना ही भूले रहें वह भुलाया नहीं जा सकता। सब कुछ भूल जाने पर भी जो बचा रहता है हे नचिकेता वही आत्मा है।५

क्योंकि यमाचार्य नचिकेता को आत्मा तथा परमात्मा दोनों के विषय में ज्ञान दे रहे हैं इस लिए आत्मा की चर्चा करने के अनन्तर वे परमात्मा के विषय में कहते हैं सृष्टि की उत्पत्ति में महान प्रयत्न हुआ है इस प्रयत्न को ही तप कहा जाता है। वह परमात्मा इस तप से पूर्व विद्यमान था पूर्वम् तपसो जात इस लिये तप से पूर्व था क्योंकि उसी के प्रयत्न से ही तो सृष्टि का निर्माण हुआ। सृष्टि की उत्पत्ति में पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश उत्पन्न हुए—यह आत्मा इन भौतिक तत्वों से भी पूर्व था अद्भ्य पूर्वम् अजायत अद्भ्य अर्थात् जल आदि से वह पूर्व था अद्भ्य पूर्वम् अजायत 'उत्पन्न था क्योंकि उसी के प्रयत्न से सब भौतिक तत्व निर्मित हुए हैं। ये पांचों महाभूत मानो वे गुफाएं हैं जिनके भीतर वह बैठा हुआ है। गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तम्। इस प्रकार इन पांच महाभूतों के द्वारा वह जाना जाता है—जो भूतेभि व्यपश्यत

(शेष पृष्ठ ८ पर)

सम्पादकीय—

विचार तरंग—

जिला सभाओंके लिए नया काम

पंजाब सभा से सम्बन्धित सभी जिलों की जिला सभाओं का निर्माण धीरे-धीरे हो रहा है। अब केवल जालन्धर अमृतसर कपूरथला अन्य कुछ जिले रह गये हैं। शेष सब जिलों में अब जिला सभाओं का संगठन बन गया है और काम भी उन्होंने ने आरम्भ कर दिया है। इन सब जिला सभाओं के लिए नया काम यह है कि जनगणना के कार्य में अपने अपने जिले का ध्यान रखें और अपनी अपनी सभाओं के जिम्मे काम लगा दें और उनके द्वारा अपने अपने कार्यकर्ता नियुक्त करा दें जो यह देखें कि उन के क्षेत्र में जनगणना का कार्य ठीक हो रहा है और जाति तथा भाषा के स्थानों में उन के उत्तर सार्वदेशिक सभा के आदेशानुसार ही अंकित हो रहे हैं। सभा इस सम्बन्ध में सब समाजों तथा जिला सभाओं को अलग अपने निर्देश भेज रही है।

—सभा का गुरुदत्त भवन तथा श्रद्धानन्द भवन—

सभा के अपने भवन का नाम गुरुदत्त भवन है। सभा ने अब उसके जीर्णोद्धार का नवीनीकरण का निश्चय किया है। उसका नक्शा नगर निगम जालन्धर से स्वीकार कर लिया गया है। भवन निर्माण कमेटी को आदेश हो गया है कि वह अपना कार्य प्रारम्भ कर दें।

इसके साथ सभा ने जी टी रोड पर जालन्धर में श्रद्धानन्द भवन के निर्माण का भी निश्चय किया है। यह सभा का नया भवन होगा जिसके लिए सभा पंजाब सरकार से भी सहायता की प्रार्थना कर रही है।

★जालन्धर में उपदेशक शिविर★

सभा कुछ आवश्यक विषयों पर विचार के लिए अपने प्रचारकों तथा उपदेशकों का एक शिविर २० जनवरी को सभा कार्यालय में लगा रही है। सभी मान्य प्रचारक तथा उपदेशक महानुभाव अवश्य ११ बजे प्रातः तक पहुंचने का कष्ट करें।

×अपनी संस्थाओं की रक्षा करो+

पंजाब में आर्य समाज की अनेक संस्थाएं हैं जो सरकार की नीतियों के कारण जहां आर्थिक संकट में हैं वहां स्टाफ की यूनियनों के कारण अनुशासन में भी ढील आ रही है। इन सब संस्थाओं की प्रबन्धक कमेटियों के मान्य सदस्यों से हमारी प्रार्थना है कि वे इन कठिनाइयों के मुकाबले के लिए संगठित रहें और उनकी रक्षा और अच्छी तरह से संचालन के लिए आपस में उलझने का कोई अवसर न पैदा होने दें। अन्यथा उनकी संस्थाएं तो नष्ट होंगी ही समाज का भी अपमान होगा।

●सभा की अचल सम्पत्ति के सम्बन्ध में ध्यान रखें×

पंजाब में सभा की अचल सम्पत्ति सब तक बिखरी पड़ी है। सभा में प्रायः इस सम्पत्ति का रिकार्ड है। जहां कहीं ऐसी सम्पत्ति के नष्ट होने की आशंका लगे तो आर्य समाजों के अधिकारियों को सभा को तुरन्त इस की सूचना देनी चाहिए। मास्टर पूर्णचन्द जी हमारी सभा के मुख्तारेआम हैं। वह इस सम्पत्ति का ध्यान और प्रबन्ध करते रहते हैं। अब उनके वृद्ध होने के कारण किसी सहयोगी की नियुक्ति का भी प्रबन्ध हो रहा है। —रामचन्द्र जावेद सभा मन्त्री

स्वामी दर्शनानन्द जी का जन्म दिन 30 जनवरी को मनाएं

आर्य बन्धुओं से निवेदन है कि आर्य मर्यादा के गत अंक में हमने प्रकाशित किया था कि आर्य समाज के महान् तार्किक विद्वान शास्त्रार्थ महारथी स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज का जन्म दिन २० जनवरी को मनाएं परन्तु देसी तिथियों के अनुसार उनका जन्म माघ बदी दशमी सम्वत १९१८ के दिन जगरावां जि० लुधियाना में श्री पं० रामप्रताप जी शर्मा के घर हुआ था। इसलिए तिथि गणना के अनुसार इस बार माघ बदी दशमी ३० जनवरी को पड़ती है। तिथि देखने में भूल हो गई थी इसलिए आर्य बन्धु भूल सुधार कर लें सभी आर्य बन्धुओं से प्रार्थना है कि स्वामी दर्शनानन्द जी का जन्म दिन २० के स्थान पर ३० जनवरी १९८१ को सोत्साह मनाएं।

आर्य समाज के प्रचार और प्रसार में पंजाब ने अपना महान योगदान दिया है। महर्षि दयानन्द जी महाराज के बाद स्वामी श्रद्धानन्द जी महात्मा हंसराज जी पं० लेखराम जी श्री पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी स्वामी दर्शनानन्द जी आदि ने जो कार्य आर्य समाज का किया वह किसी से छुपा हुआ नहीं है और इन सभी महान् विद्वान सन्यासी महात्माओं को जन्म देने वाली यह पंजाब की भूमि है।

जिला लुधियाना के दो सितारे आर्य समाज के आकाश में सदा चमकते रहेंगे। एक हैं स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी मोही जिला लुधियाना में जिनका जन्म हुआ और दूसरे हैं स्वामी दर्शनानन्द जी जिनका जन्म जगरावां जिला लुधियाना में हुआ था।

स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज पंजाब की एक विभूति थे। जिन्हें वैराग्य बचपन से ही था। लखपति परिवार में जन्म लेने पर भी उन्हें भोग विलास बांध नहीं सके आरम्भ का उनका नाम श्री नेतराम और बाद में श्री कृपाराम पड़ा। उन्होंने कृपाराम के रूप काशी में अपना प्रेस लगाकर तथा संस्कृत की पाठ्य पुस्तकें महाभाष्य आदि छापकर उन्हें सस्ते दामों पर तथा निर्धन विद्यार्थियों को बिना मूल्य देकर हजारों रुपया अपने पिता का इस पवित्र कार्य में लगा दिया था क्योंकि उन दिनों महाभाष्य आदि पुस्तकें जर्मनी की लाजरस कम्पनी ही छापती थी और एक पुस्तक का मूल्य १५ से २० रुपये तक था। इसलिए निर्धन विद्यार्थी व्याकरण की शिक्षा से वंचित रह जाते थे श्री कृपाराम जी मैदान में निकले और तिमिर नाशक प्रेस काशी में लगाकर चारों ओर धूम मचा दी। परोपकार की भावना उनके जीवन में प्रारम्भ से थी इसीलिए गृहस्थ की जंजीरें उन्हें पकड़ कर न रख सकी। एक दिन उन्हें तोड़ कर वह सन्यास आश्रम में प्रवेश कर स्वामी दर्शनानन्द जी के नाम से प्रसिद्ध हो गए।

उनका प्रचार क्षेत्र केवल पंजाब ही नहीं रहा बल्कि उत्तर प्रदेश तक सभी स्थानों पर उनकी धाक जमाती थी। उनकी एक प्रबल इच्छा थी कि हमें बच्चों को गुरुकुल के माध्यम से शिक्षा देनी चाहिए। इसलिए जब भी किसी ने उनके सामने कहीं भी स्कूल खोलने की बात की तो उन्होंने उसे स्वीकार न किया वह स्कूलों के स्थान पर गुरुकुल खोलने पर जोर देते थे। इसलिए उन्होंने अपने जीवन में कई गुरुकुल खोले। ऐसे वीतराग सन्यासी का जन्म दिन मनाते हुए हम उनके जीवन से प्रेरणा लें।

कुंवर सुखलाल जी चले गए

मुझे पंजाब के आर्य जगत् को यह सूचना देते हुए हार्दिक दुःख हो रहा है कि श्री कुंवर सुखलाल जी आर्य मुसाफिर का उनके जन्म स्थान अरनिया जिला बुलन्दशहर में पिछले दिनों देहान्त हो गया है। श्री सुखलालजी देश भर के जाने हुए भजनोपदेशक थे। एक लम्बे समय तक आर्य समाज के क्षेत्र में उनके भजनों तथा कविताओं की धाक रही। लाखों लोग लाहौर के उत्सवों पर उनके लैक्चरों में दूर-दूर से पहुंचा करते थे। वह पिछले कुछ समय से रोगग्रस्त थे। परमात्मा उनकी पवित्र आत्मा को सद्‌गति प्रदान करें।

—रामचन्द्र जावेद
सभामन्त्री

आज भी आर्य समाज एक प्रभावी शक्ति है

प्रान्तीय सभाएं और भी अधिक सशक्त बनें । वन्देमातरम् श्री रामचन्द्रराव जी का दिल्ली आर्य महासम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण

बन्धुओ तथा मित्रो

इस आर्य महासम्मेलन की अध्यक्षता का आपने मुझ को सम्मान प्रदान किया है उसके लिए मैं आपका अत्यन्त आभारी हूं। हमारे मध्य अनेक वीतस्य नेता त्यागी संन्यासी वानप्रस्थी तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति विराजमान हैं। मैं उनके प्रति आदरभाव प्रकट करता हूं और अपने लिए उनके आशीर्वाद एवं कृपा दृष्टि की प्रार्थना करता हूं ताकि मैं इस महत्वपूर्ण दायित्व को वहन कर सकूं और—

१ अपने देशवासियों के कल्याण तथा २ जिन सिद्धान्तों के लिए महर्षि दयानन्द सरस्वती जीवित रहे और अपना बलिदान दिया उनके प्रसार एवं प्रचार के लिए आयोजित इस समारोह के सफलतापूर्वक सम्पन्न होने में योगदान दे सकूं।

दिल्ली से कार द्वारा एक घंटे के प्रवास की दूरी पर स्थित मेरठ नगर में सन् १८८१ में महर्षि ने एक भाषण में जो कुछ कहा था उसके आशय को मैं यहां उद्धृत करना चाहता हूं —

परन्तु मेरे भाईयो निश्चित ही मैं अधिक दिनों तक जीवित रहने वाला नहीं हूं। यह मेरा शरीर भी नश्वर है इसका अन्त भी निश्चित है। किन्तु मृत्यु से पूर्व मैं आप लोगों को आत्म निर्भर देखना चाहता हूं। मुझे विश्वास है कि आप लोगों में से ही कुछ महान व्यक्तियों के रूप में विकसित होंगे और हमने जो लक्ष्य बनाये हैं उनको प्राप्त करने के लिए भगीरथ प्रयत्न करेंगे। मुझे इस बात का भी विश्वास है कि आर्य समाज एक विशाल पेड़ के समान विकसित होकर पल्लवित पुष्पित तथा फलित होगा। प्रभु की कृपा से यह सब कुछ होगा पर यह सब कुछ देखने के लिए मैं नहीं रहूंगा

मेरठ के इस भाषण का ध्यानपूर्वक विश्लेषण करने से निम्नलिखित मुद्दे स्पष्ट होते हैं

१ अपने स्वर्गवास से पूर्व स्वामीजी हमें आत्म निर्भर देखने की इच्छा रखते थे।

२ उन्हें आशा थी कि उनके स्वर्गवास के बाद कुछ व्यक्ति ऐसे उभरेंगे जो स्वामी जी द्वारा निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करेंगे।

३ और अन्ततः आर्य समाज एक विशाल पेड़ के रूप में धीरे धीरे विकसित होकर पुष्पित एवं फलित होगा।

महर्षि के स्वर्गवास से पांच मास पूर्व घटित एक घटना का स्मरण हो आया है। २९ मई सन् १८८३ के दिन स्वामी जी अजमेर में थे महर्षि जोधपुर जाना चाहते थे स्वामी जी के कुछ भक्त आये और स्वामी जी को जोधपुर जाने से रोकने लगे इसका कारण यह था कि उन्हें स्वामी जी महाराज के साथ किसी अनिष्ट के होने की आशंका थी पर स्वामी जी ने जो कुछ कहा उसका सार था —

इसमें (मेरे जीवन के सम्बन्ध में) चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। सत्यार्थ प्रकाश अपना अमली रूप में पूर्ण हो गया है। मैंने अपना काम पूर्ण कर दिया है। मुझे करने के लिए अब कुछ नहीं बचा।

भक्तों द्वारा चेतावनी पूर्ण शब्दों के उत्तर में स्वामी जी की प्रतिक्रिया अत्यन्त स्पष्ट और बोधक है। इससे यह स्पष्ट होता है कि स्वामी जी को अपनी मृत्यु की पूर्व कल्पना थी। पं० कमल नयन जी ने इस बात का समर्थन किया है। और यह भी कि वे इस सांसारिक रंगमंच से प्रस्थान करने की पूर्ण तैयारी कर चुके थे तथा उन्होंने अपनी ओर से इस बात का हर तरह से प्रयत्न किया था कि भावी पीढ़ी को लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर होने के लिए तैयार किया जाए। स्वामी जी महाराज ने अपने विश्व विख्यात ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश की ओर भी संकेत किया था। उन्हें इस बात का भी ध्यान था कि भावी पीढ़ी के मार्गदर्शन के लिए उन्होंने अपने अनुभव की अमूल्य निधि को उस ग्रन्थ के रूप में उपयुक्त समय पर छोड़ा है। स्वामी जी ने अनेक रूपों में हमारे लिए आदर्श वचन छोड़े हैं। उन्होंने कृण्वन्तो विश्वमार्यम् का नारा दिया है एक ध्वज एक साझी भाषा और एक संगठित राष्ट्र के रूप में विकसित होने की प्रेरणा दी है। उन्होंने हमारे शानदार अतीत का स्मरण करवाया है और सनातन सामाजिक व्यवस्था वर्णाश्रम धर्म को पुनर्जीवित किया है इन सब के अतिरिक्त स्वामी जी ने हमें आर्य समाज दिया।

तात्पर्य यह कि स्वामी जी ने अपनी ओर से वह सब कुछ किया था जिससे प्रेरित होकर उनकी अपेक्षा के अनुरूप हम आत्मनिर्भर हो सकें। पर यहां एक प्रश्न उभरता है कि १८८३ में स्वामी जी महाराज के स्वर्गवास के अवसर पर क्या हम आत्मनिर्भर हो गये थे? आत्मनिर्भर होने के लिए हमारे लिए सभी बातें अनुकूल थीं। एक समय तक हम आत्मनिर्भर हो भी गये थे। स्वामी जी के तुरन्त बाद पं० लेखराम जी स्वामी श्रद्धानन्द पं० गुरुदत्त जी तथा देश के ऐसे ही अन्य अनेक सुपुत्रों ने अपने कार्यों द्वारा उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत किया। परन्तु वर्तमान स्थिति बदली हुई है। मैं निराशा का वातावरण पैदा करना नहीं चाहता। किन्तु हमें स्थिति की वास्तविकता का भी मूल्यांकन करना चाहिए। हमने करोड़ों रुपयों की लागत से आर्य समाज के मन्दिरों और शैक्षणिक संस्थाओं की भव्य इमारतें खड़ी कर दी हैं। इस दिशा में हमने मात्र अपने सनातनी भाईयों से होड़ की है। उन्होंने अति प्राचीन काल से अपने देवी देवताओं के लिए अरबों और खरबों की लागत के मन्दिर बना लिये हैं। आर्य समाज के मन्दिरों और शैक्षणिक संस्थाओं का निर्माण करना बुरा नहीं है। किन्तु ऐसी परिस्थिति का उत्पन्न होना आपत्तिजनक है कि बिना आत्मा के भौतिक ढांचे खड़े किये जाएं। राम के परमभक्त हनुमान को सीता ने उनकी सेवा के पुरस्कार स्वरूप अपनी बहुमूल्य माला दी थी किन्तु हनुमान ने जब माला की मणियों में राम के दर्शन नहीं किये तो उन मणियों का उनके पास कोई मूल्य नहीं रहा। आर्य समाज के मन्दिरों और शैक्षणिक संस्थाओं में सच्चे आर्य समाजियों का निर्माण होना चाहिए। मेरा विचार है कि चार पांच वर्षों के अल्पायु बालकों की ओर हमें ध्यान देना चाहिए और उन्हें ऐसे वातावरण में इस तरह संस्कारित करना चाहिए कि उनमें—

१ आर्य समाज के प्रति प्रेम उत्पन्न हो २ देश के प्रति प्रेम उत्पन्न हो ३ कठोर अनुशासन प्रियता तथा बड़ों के प्रति आदर उत्पन्न हो।

आर्य समाज एक समाज

महर्षि दयानन्द की श्रेष्ठता इसी में है कि उन्होंने कोई कार्य ऐसा नहीं किया जिस के पीछे कोई श्रेष्ठ उद्देश्य न हो। हर समय उनके मस्तिष्क में महान विचार आये ऐसे विचार जिनमें सामान्य मानव के कल्याण की भावना निहित हो। उनमें संकुचित मनोभाव नहीं थी वे क्षेत्रीय साम्प्रदायिक मत मतान्तर इत्यादि की सीमाओं से परे थे। तैयारी काल के समाप्त होते ही स्वामी जी ने सीधे कार्य क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया। उन्होंने पहले अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। तत्पश्चात उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की। १० मार्च १८७५ के दिन इसकी शुरूआत हुई। भारत की सुप्रसिद्ध नगरी बम्बई की इस ऐतिहासिक घटना को आरम्भ में स्वयं देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्वामी जी ने जब इस को प्रारम्भ किया था तो उन्होंने आर्य समाज के व्यक्तियों के शिथिल संगठन की कल्पना नहीं की थी जैसा कि भेड़ों या पशुओं का झुंड होता है। उनके सामने ऐसे व्यक्तियों के सुदृढ़ संगठन की परिकल्पना थी जो निम्न सामान्य सूत्रों में आबद्ध थे—

१ समान परिपाटी
२ समान संस्कृति
३ समान भाषा
४ समान धर्म
५ समान लक्ष्य और आकांक्षा

स्वामी जी ने आर्य समाज के रूप में कभी भी विषम तत्वों के समूह की कल्पना नहीं की थी।

आज भी संगठन हैं—राजनैतिक सामाजिक धार्मिक और शैक्षणिक संगठन उनके सम्मुख एक विशिष्ट लक्ष्य होता है। एक बार उस लक्ष्य की प्राप्ति होते ही उस संगठन की उपयोगिता समाप्त हो जाती है। महात्मा गांधी ने स्वाधीनता प्राप्ति के तुरन्त बाद कांग्रेस को विघटित करने की सलाह दी थी उनका चिन्तन स्पष्ट था। सन् १८८५ में जिस लक्ष्य को लेकर कांग्रेस का निर्माण हुआ था स्वाधीनता प्राप्ति के साथ ही वह समाप्त हो गया था। उन्होंने यह अनुभव किया था कि एक सामान्य लक्ष्य को लेकर जो विषमतत्व इकट्ठा हुए थे उन्हें अलग होने दिया जाए कांग्रेस एक ऐसी धुरी थी जिसके चारों ओर विभिन्न विचारों के लोग इकट्ठे हुए थे। आजादी के बाद सब तत्व अपने अपने विचारों का आग्रह करने लगे तो गांधी जी ने ऊपर की सलाह देना उचित समझा मैंने इसका उल्लेख इसलिए नहीं किया है कि कांग्रेस के संगठन की आलोचना करूं या उसके विघटन की वकालत करूं। मैंने अपनी इस बात को स्पष्ट करने के लिए इस संगठन का नामोल्लेख मात्र किया है कि स्वामी जी ने आर्य समाज की स्थापना ऐसा कोई संगठन बनाने के उद्देश्य से नहीं की थी। वे चाहते थे कि जनता आर्य जीवन पद्धति को अपनाए। आर्य समाज जीवन यापन की एक पद्धति है—एक पूर्ण जीवन दर्शन है। सार्वदेशिक सभा तथा प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाएं ऐसे संगठन हैं जिनका गठन एक विशिष्ट लक्ष्य को लेकर किया गया है। अर्थात् भारत और भारत से बाहर लोगों को आर्य जीवन पद्धति के अनुसार जीवन के लिए संगठन करना।

आर्य जीवन पद्धति का वास्तविक अर्थ ऐसी जीवन पद्धति से है जिसको आर्यावर्त की जनता ने प्रस्तुत किया था।

(शेष पृष्ठ ८ पर)

अग्निहोत्र के अंगस्पर्श मन्त्र

ले०—डा रामनाथ जी वेदालंकार

(४ १ ८१ से आगे)

★चतुर्थ मन्त्र★

अर्थ—(ओम) हे परमेश्वर (म कर्णयो) मेरे कानों में (श्रोत्रम् अस्तु) श्रवण शक्ति तथा भद्र श्रवण हो।

व्याख्या—आजीवन हमारी श्रवण शक्ति अक्षुण्ण तथा तीव्र रहनी चाहिए। हम श्रवण शक्ति से सर्वथा वंचित होकर बधिर न हो जाए न ही हमारी श्रवण शक्ति मन्द हो हमें सुनने के लिए श्रवण यन्त्र न लगाना पड़े। साथ ही कान हमें परमेश्वर की ओर से भद्र श्रवण के लिए ही मिले हैं अभद्र बात सुनने के लिए नहीं। अत कानों से हम भद्र का ही श्रवण करें—भद्र कर्णेभि शृणुयाम देवा (ऋग् १ ८९ ८)।

सुम तो कर्णों भद्र श्रुतो कर्णों भद्र
श्लोक श्रूयासम।
सम् तिष्ठ मौर गु तिष्ठ मा
हासिष्टाम।

अथर्व० १६ २ ४ ५

मेरे कान सब अच्छा सुनने वाले हो मेरे कान भद्र का श्रवण करने वाले हो। मैं भद्र श्लोक का सुनू। तीव्र श्रवण शक्ति और सूक्ष्म श्रवण शक्ति मुझे न छोड़े

पञ्चम मन्त्र—

अर्थ—(ओम) हे परमेश्वर (म बाहवो) मेरी भुजाओ मे (बलम अस्तु) बल हो।१

व्याख्या ससार मे आत्म रक्षा के लिए आततायी शत्रु के विनाश के लिए भुज-बल की आवश्यकता है। अत एव वेद विजय के लिए प्रेरित करता हुआ कहता है

प्रेता जयता नर इन्द्रो व
शर्म यच्छतु।
उग्रा व सन्तु बाहवो
नाधृष्या यथासथ॥

ऋग् १० १०३ १३

हे वीरो आगे बढ़ो विजय प्राप्त करो वीर प्रभु तुम्हें रक्षा प्रदान करे। तुम्हारी भुजाओ मे बल हो जिस से तुम किसी से पराजित न हो सको

★षष्ठ मन्त्र★

अर्थ—(ओम) हे परमेश्वर (मे ऊर्वो) मेरी जाघो मे (ओज अस्तु) अवष्टम्भ सामर्थ्य।२ अर्थात शरीर को धारण करने की शक्ति हो।

व्याख्या—जाघ दुर्बल होने पर वे अपने मे उसके सारे शरीर को धारण नहीं कर सकती ठीक वैसे ही जैसे भवन के स्तम्भ यदि कमजोर हो तो भवन स्थिर नही रह सकता। जाघो को यहा पैर से लेकर कटि सधि तक सम्पूर्ण टागो का उपलक्षण समझना चाहिए। टागें धारक शक्ति से युक्त होगी तभी मनुष्य लम्बे मार्ग को तय करना दौड़ना भागना भार उठाना आदि क्रियाओ को कर सकेगा।

★सप्तम मन्त्र★

अर्थ—(मे अगानि) मेरे शरीर के अग प्रत्यग और तनू) शरीर(अरिष्टानि) अविनष्ट और अक्षत रहें। वे अग (मे तन्वा सह मेरे शरीर के साथ (सन्तु) स्वस्थ रूप मे विद्यमान रहे।

व्याख्या शरीर के कतिपय प्रमुख अगो मुख नासिका चक्षु आदि का उल्लेख तथा उनकी शक्तियो के अक्षुण्ण बने रहने की भावना प्रथम छह मन्त्रो मे की जा चुकी इस मन्त्र मे सामान्य रूप से सभी अगो का ग्रहण हो जाता है जिनमे अवशिष्ट अग भी आ जाते है। हमारे शरीर का कोई भी अग अगम से मधु पर्यन्त हिंसित या क्षतिग्रस्त न हो हमारे हाथ पर अगुलिया मस्तिष्क हृदय फुफ्फुस पृष्ठवंश आदि सब सदा ठीक प्रकार से कार्य करते रहे यह भावना इस मन्त्र मे गृहीत की जाती है। मन्त्र मे कहा है कि जब तक शरीर रहे तब तक सब अग स्वस्थ बने रहे। ऐसा न हो कि शरीर तो शतायु या सौ से भी अधिक आयु का हो जाये किन्तु अग शनै शनै दुर्बल होते जाए और वृद्धावस्था मे मनुष्य पराश्रित हो जाए। दीर्घ आयु तो वह श्रेष्ठ है जिस मे अन्त तक सब शरीर अपने अग प्रत्यगो सहित स्वस्थ रहे।

पवित्र जल से मुख नासिका चक्षु आदि अगो के स्पर्श की विधि यहा है वेद मे जलो को शारीरिक दोषो और मानसिक पापो का अपहर्ता कहा गया है जलो मे अमृत है जलो मे औषध है—अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम (अथर्व १ ४ ४) जल औषध है जल रोगविनाशक है। आप इद वा उ भेषजीरापो अमीवचातनी (अथर्व ३ ७ ५) हे जलो जो मेरे शरीर मे दोष और मल है उसे यहाँ से बहाओ—इदमाप प्रवहत अवद्य च मल च यत (अथर्व ७ ८९ ३)। जल दोष और पाप को दूर करने वाले हैं हमसे दोष और पाप दूर हो जाए अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत (अथर्व १६ १ १०) जल हमसे पाप को दूर कर दुस्वप्न के भयकर परिणाम को दूर कर—

आत्मदेवो बहुत प्रदुष्वाब्य बहुत (अथर्व) अत एव जलो से अगस्पर्श करते हुए हम अनागत इन्द्रियविकारो से दूर रहने का तथा आगत इन्द्रिय विकारो के शमन का सकल्प लेते हैं। अगस्पर्श की विधि इसका प्रतीक है कि आवश्यकता पड़ने पर हम जलो का उपयोग कर शारीरिक और मानसिक दोषो से मुक्त होते रहें।

★अगस्पर्श का वैदिक मन्त्र★

उपर्युक्त अगस्पर्श के मन्त्र पारस्कर गृह्यसूत्र के पूर्वोद्धृत सूत्र मे ओम मे अस्तु मत पदो को बढ़ा कर पठित किए गए हैं पारस्कर के टीकाकार भर्तृयज्ञ कर्क जयराम हरिहर गदाधर एव विश्वनाथ द्वारा यह परिवर्धन अनुमोदित है।३। पारस्कर के इस सूत्र का वैदिक मूल मन्त्र यह मन्त्र है—

वाड म आसन नसो प्राणश्चक्षुरक्ष्णों
श्रोत्र कर्णयो।
अपलिता केशा अशोणा दन्ता
बहु बाह्वोर्बलम।
ऊर्वोरोजो जघयोर्जव
पादयो। प्रतिष्ठा
अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्ट।

अथर्व १९ ६० १ २

---

१ तुलनीय बल धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानडुत्सु न बल तोकाय तनयाय जीवसे त्व हि बलदा असि

ऋग ३ ५३ १८

२ मेदिनी कोश मे ओजस की दीप्ति अवष्टम्भ सामर्थ्य प्रकाश और बल अर्थ कहे है—ओजो दीप्तावष्टम्भे प्रकाशबलयोरपि। मेदिनी ३२ २०

३ द्रष्टव्य पूर्वोक्त सूत्र १ ३ २५ पर इन आचार्यों की टीका

४ यह लेख लेखक की नवीन पुस्तक यज्ञ मीमासा का एक अश है। पुस्तक विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द नई दिल्ली ५ से शीघ्र प्रकाशित हो रही है।

फूल खिलाता चल

रमाकान्त दीक्षित

काटो की चुभन मिटाने
पग पग फूल खिलाता चल

लूटी बहार
पतझर छाया
अगारो ने
जाल बिछाया।

मरुथो के कमल खिलाने
पल पल सुख बरसाता चल

मन उन्मन है
आख गीली
पथ अकम्पन
नम हठीली।

क्या श्रम—लज्जा का फिर
कोई रह बनाता चल

अनाचार का
युग आया है।
भ्रान्त न जग को
भरमाया है

ताप झुलसते तन मन को
शीतल बादल छाता चल

अपनो ने भी
मुख मोड़ा
हृदय घार का
घट फोड़ा है।

नफरत करने वालो मे
भी मन प्यार सजाता चल

30 जनवरी जिनका जन्म दिवस है

वीतराग, महान् तार्किक स्व. स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

ले —श्री ओम्प्रकाश आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष

आर्य समाज की पहली पीढ़ी के कर्मठ और विद्वान् उपदेशकों तथा शास्त्रार्थ समर के अजेय सेनानियों में स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी का एक विशिष्ट स्थान है। महर्षि दयानन्द के पश्चात् आर्य समाज में साहित्य निर्माण और प्रचार का जितना कार्य हुआ है, उसके आधे से अधिक प्रचार का श्रेय स्वामी दर्शनानन्द जी को ही है। आपने जीवनकाल में कितने प्रैस खोले, कितने समाचार पत्र निकाले, कितने ट्रैक्ट लिखे कितने व्याख्यान किए कितने शास्त्रार्थ किए और कितने सहस्र मील प्रचारार्थ भ्रमण किया। इसका ठीक ठीक अनुमान लगाना कठिन है। स्वामी दर्शनानन्द सच्चे आस्तिक वैदिक धर्म के निर्भीक प्रचारक और महर्षि दयानन्द जी के अनन्य भक्त थे। आप उत्साह और विश्वास एवं सरलता की साकार प्रतिमा थे। निष्काम, निःस्पृह और वीतराग इतने कि संस्थाएं खोलते जाते थे पर मोह तनिक भी नहीं रखते थे 'दूसरों को सौंप कर एकदम प्रचारार्थ चले जाते थे। निन्दा स्तुति तथा राग द्वेष से सर्वथा मुक्त थे। ऐसे ही वीतराग महामानवों के लिए कहा गया है—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात्
पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः

इस उक्ति को कहने वाले तो सर्वत्र मिलते हैं परन्तु इसके अर्थ पर अक्षरशः आचरण करने वाले स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज ही थे।

जन्म परिचय—

कालुष नदी की पूर्व दिशा में लुधियाना जिलान्तर्गत जगराम (जगरांवा) नाम का एक छोटा सा नगर है। इस नगर में मोहयाल गोतीय सारस्वत ब्राह्मणों का काली नामक प्रशस्त वंश शताब्दियों से वास करता था। इसी वंश में प० दौलत राम के सुपुत्र प० रामप्रताप जी के घर श्री कृपा राम (स्वामी दर्शनानन्द) जी का माघ बदि-दशमी सम्वत् १९१८ को जन्म हुआ

—प्रारम्भिक शिक्षा—

श्री कृपा राम की प्रारम्भिक शिक्षा जन्म ग्राम में हुई, पिता ने स्कूल में उर्दू-फारसी पढ़ाई के कारण संस्कृत पढ़ाई की व्यवस्था घर पर ही कर दी एक पंडित जी इन्हें घर पर आकर पढ़ा जाया करते थे परन्तु कृपाराम मन मौजी थे अपनी इच्छानुसार ही पढ़ते थे,

होनहार बिरवान के होत चीकने पात —

छोटी आयु में ही इनकी प्रवृत्ति वैराग्य धार्मिक कामों की ओर थी। इन के पिता जी ने एक दुकान खोल दी जिसका नाम इन्होंने सच्ची दुकान रखा सत्य व्यवहार से दुकान को लाभ हुआ परन्तु कृपाराम न तो कुछ और ही करना था, इनके चाचा दयाराम जी की यौवनावस्था में ही अचानक मृत्यु हो गई प० श्री रामप्रताप जी (स्वामी जी के पिता) ने अपनी भौजाई की इच्छानुसार बनारस अस्सी घाट लोलार्क कुण्ड पर एक पक्का तिमंजिला मकान बनाकर दे दिया, माई बीर कौर ने अपना समस्त वैधव्य जीवन बनारस में ही ईश्वर भक्ति में बिताया। प० रामप्रताप जी ने वहां ब्रह्मचारियों के लिए एक अन्न क्षेत्र भी खोल दिया था और कुछ समय आप भी बनारस में ही व्यतीत करने लगे। कृपा राम जी प्राय पिता जी के साथ ही रहते थे। काशी के विद्वानों से मेलजोल का अच्छा अवसर प्राप्त रहा,

★काशी में विद्याध्ययन★

इनके पिता जी ने समझा कि कृपाराम घर पर पढ़ेगा नहीं इस लिए इस को काशी भेज देना ठीक होगा। कृपाराम काशी चले गए और २-३ वर्ष रह प० परमेश्वरदत्त आचार्य और प० हरिहरनाथ शास्त्री (स्वामी मनीष्या नन्द) जी से संस्कृत का अच्छा अध्ययन किया, स्वामी मनीष्यानन्द दर्शनों के प्रकाण्ड विद्वान थे, अतः कृपा राम जी ने दर्शन शास्त्र के अध्ययन का पूरा पूरा लाभ उठाया,

—आर्य समाज की शरण में—

उन दिनों सर्वत्र महर्षि दयानन्द जी के व्याख्यानों तथा शास्त्रार्थों की चर्चा थी धर्म जिज्ञासु होने के कारण आपका प्रभावित होना स्वाभाविक था महर्षि कृत ग्रन्थों को पढ़ना प्रारम्भ कर दिया,

महर्षि दयानन्द सचमुच एक विचित्र और विलक्षण जादूगर थे, सच्चा जिज्ञासु बनकर जब भी कोई उनके चरणों में बैठा था उनके ग्रन्थों को पढ़ता उनका ही हो जाता, यही कुछ श्री कृपा राम जी के साथ हुआ, वेद शास्त्र के मर्म बूझे, स्वामी जी के प्रभावशाली व्यक्तित्व और शिक्षा तथा कार्यों ने उन्हें उनका दीवाना बना दिया, पिता जी ने यद्यपि गृहस्थी बना दिया था परन्तु इनकी रुचि प्रचार और धर्म कार्यों में ही अधिक होने के कारण इन्होंने १९०० ई० में सन्यास की दीक्षा ले ली और अब सर्वत्र घूमघूम कर प्रचार करने लगे,

— निःशुल्क शिक्षा प्रवर्तक—

आपने काशी प्रवास में श्री कृपा राम निर्धन विद्यार्थियों की दीन दशा का गहराई से अध्ययन कर चुके थे, इधर वेद शास्त्र के विशेष मनन से आप इस निष्कर्ष पर पहुंच चुके थे कि जैसे शरीर की सुरक्षा के लिए परमात्मा ने सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि आदि सभी दान रूप में दे रखे हैं ऐसे ही आत्मोत्थान के लिए शिक्षा भी निःशुल्क ही होनी चाहिए

अतः आपने निःशुल्क शिक्षा देने वाले अनेक गुरुकुल स्थापित कर दिए जिनमें गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर गुरुकुल सिकन्दराबाद गुरुकुल बदायूं, गुरुकुल पोठोहार और गुरुकुल झेहलम विशेष उल्लेखनीय हैं, इन गुरुकुलों में सहस्रों विद्यार्थी दीक्षित होकर देश विदेश में वैदिक धर्म और आर्य संस्कृति का प्रचार कर रहे हैं

—शास्त्रार्थ महारथी—

वह आर्य समाज का प्रचार युग था आर्य समाज का प्रत्येक सदस्य वैदिक धर्म का प्रचारक बना हुआ मस्ती में भर कर कष्टों पर कष्ट झेलता जाता था परन्तु प्रचार से मुख न मोड़ता था। उस समय नमस्ते का अभिवादन आर्य नाम का ग्रहण उच्चारण और अपने आपको ऋषि दयानन्द का अनुयायी कहना एक अपराध समझा जाता था पग पग पर विरोधियों का सामना करना पड़ता था परन्तु वाह रे धर्म दिवानो सर्वस्वस्वाहा करके भी धर्मध्वजा को आपने ऊंचा ही उठाए रखा, पैतृक सम्पत्ति छोड़नी पड़ी तो छोड़ दी, घर गृहस्थी त्यागनी पड़ी तो त्याग दी बिरादरी से बहिष्कृत होना तक स्वीकृत किया परन्तु आर्य समाज रूपी मां की प्रतिष्ठा बनाए रखी—सपूत हो तो ऐसे हों।

मुनिवर प० गुरुदत्त स्व० पं० लेखराम, स्वामी दर्शनानन्द जी स्वामी श्रद्धानन्द जी महात्मा हंसराज जी सभी के उज्ज्वल जीवन से यही आदर्श स्थापित हुआ, जैसाकि लिखा जा चुका है, उन दिनों आर्य धर्म के प्रचारक का कार्य आसान न था, रास्ता रोकने के लिए पौराणिक के अतिरिक्त जैनी, ईसाई और मुसलमान सभी सर्वदा सन्नद्ध रहते थे। पौराणिकों के साथ प० कृपाराम शर्मा और प० आर्य मुनि भिड़ते थे और यवनों से निपट लेते थे पं० लेखराम जी। वैसे प० कृपाराम शर्मा प्रत्येक मतावलम्बी से प्रत्येक विषय में शास्त्रार्थ करने में पूर्णतया समर्थ थे। उनकी युक्ति प्रबल रहती थी, वे विधर्मियों को ऐसा कह दूध उत्तर देते थे कि विपक्षी निरुत्तर हो जाते थे। उदासीनवर्य स्व. स्वामी यावानन्द जैसे विद्वान् सन्यासियों की शास्त्रार्थ में बोलती ही बन्द कर दी थी। स्व. पादरी ज्वालासिंह जैसे शास्त्रार्थ पटु ईसाई और मौलवी सनाउल्ला जैसे कट्टर मौलवी आपके सामने आने से कभी कतराते थे। प० गणपति शर्मा जैसे शास्त्रार्थ कला के सिद्ध और प्रतिवादी बनकर भी कभी-कभी विनोद लाभ के लिए स्वामी जी से भिड़ जाते थे और शास्त्रार्थ की समाप्ति पर स्वामी जी के पांव पकड़ कर क्षमा के प्रार्थी होते थे।

★ लेखनी के धनी ●

स्वामी दर्शनानन्द जी की लेखनी में जबरदस्त जादू था। उनके लिखे छोटे-छोटे ट्रैक्टों को पढ़कर अनेक व्यक्ति आर्य समाज के सुयोग्य उपदेशक और व्याख्याता बन गए। क्योंकि उनके छोटे से ट्रैक्ट में इतनी अधिक सामग्री होती थी कि पढ़ने वाले के सन्देह और शंकाओं का उच्छेद होकर वैदिक धर्म के प्रति श्रद्धा का भाव उसके हृदय में जागृत हो जाता था। आज भी कई उपदेष्टा उनके ट्रैक्टों के आधार पर अपने व्याख्यान तैयार करके यश लाभ उठा रहे हैं। अपने जीवनकाल में छः उपनिषदों का प्रश्नोत्तर रूप में विस्तृत भाष्य इस ढंग से किया कि प्रत्येक धर्मावलम्बी उससे पूरा-पूरा लाभ उठा सकता है। दर्शनों का भी आपने भाष्य किया। लगभग तीन सौ ट्रैक्ट विविध विषयों पर लिखे। इस प्रकार स्वामी जी के जीवन पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि वे निश्चय ही असाधारण पुरुष थे। वे पक्के योगवादी थे। अकाल मृत्यु को नहीं मानते थे। बीमारी में कभी किसी की दवा खाते ही नहीं थे। हानि-लाभ में यश, अपयश में स्थित प्रज्ञ पुरुष की भान्ति समवृत्ति रखते थे। वे मृत्यु से तनिक भी न डरते थे। अन्तिम घड़ी में जो लोग स्वामी जी के साथ रहे थे, उनके द्वारा जो वृत्तान्त मिले थे, उनसे ज्ञात होता कि स्वामी जी मृत्यु का वैसे ही आह्वान करते थे, जैसे एक परममित्र का। इस पुण्यात्मा, प्रतापी निर्लोभी, निरहंकारी त्यागी, विद्वान् वीतराग सन्यासी का ११ मई सन् १९१३ ई० को हाथरस (उत्तर प्रदेश) में देहावसान हुआ।

यह लज्जा और चिन्ता की बात है कि ऐसे वीतराग सन्यासी का स्मृति दिवस या जन्म दिन आज तक नहीं मनाया गया। सार्वदेशिक सभा के मान्य अधिकारियों की इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। क्योंकि अपने महापुरुषों को जो समाज, राष्ट्र या जाति विस्मृत कर देती है उसका संगठन छिन्न-भिन्न होकर उसका अस्तित्व भी समाप्त प्राय हो जाता है।

इस वर्ष स्वामी दर्शनानन्द जी का जन्म दिवस ३० जनवरी को पड़ता है। सभी आर्य समाजों में यह दिन पूरे उत्साह और श्रद्धा से मनाया जाना चाहिए, क्योंकि—

शतेषु जायते शूरः । सहस्रेषु पण्डितः
वक्ता दशसहस्रेषु त्यागी भवति वा न वा।

आह ! त्यागमूर्ति आचार्य देवप्रकाश जी

लेखककर्ता—श्री नरदेव राज वर्मा ९१० कटरा मोहरसिंह अमृतसर

सर्वदा सादा वेश भूषा खादी की ढीली लम्बा कुर्ता गले में वैस्किट सिर पर पगड़ी फिर खादी टोपी और पाव में कपड़े का जूता। इकहरा शरीर गन्दमी रंग छोटी २ मूछ और हंसमुख आकृति के व्यक्तित्व का नाम तपोमूर्ति आचार्य देव प्रकाश जी था। ओजस्वी वक्ता तपस्वी जीवन विनम्र स्वभाव लेखनी के धनी और अनूठी स्मरण शक्ति के भण्डार आचार्य देव प्रकाशजी का जन्म पंजाब के गांव दीनानगर जि० गुरदासपुर मे सरकारी स्कूल के अध्यापक श्री मुन्शीराम जी के घर संवत् १९४६ विक्रमी तदनुसार सन् १८८९ ई० को हुआ, जब आप दो वर्ष के ही थे कि इनके पिता का स्थानान्तर गांव बरामला मे हो गया आपके पिता जी ने परिवार को चित्तौड़गढ़ (फतेहगढ़ चूड़िया) यहां आपके ननिहाल मे भेज दिया। तीन वर्ष पश्चात् आपके पिता ने सरकारी नौकरी छोड़कर चित्तौड़गढ़ मे ही लकड़ी का व्यापार शुरू कर दिया। श्री मुन्शीराम जी आर्य समाजी विचारो के थे और आर्य समाज के सिद्धान्तो पर प्रायः चर्चा होती रहती थी। जैसे महात्मा बुद्ध ने रोगी बूढ़ और मृतक को देखकर राजपाट त्याग दिया तथा वैरागी ने शिकार हुई हिरणी के पेट से निकले बच्चे को देख गृह त्याग दिया और महर्षि दयानन्द को बहिन और चचा की मृत्यु ने जिज्ञासु बनने पर विवश कर दिया ठीक इसी प्रकार आचार्य देव प्रकाश जी बचपन मे अपनी माता के साथ गली मे से गुजर रहे थे एक घर के सामने कोई औरत जीती मछली के पर से छिलके उतार रही थी। पानी बिना मछली तड़प रही थी और कठोर हृदय स्त्री की छुरी बराबर चल रही थी इस घटना ने आचार्य जी के जीवन का कांटा ही बदल दिया और तत्काल द्रवीभूत हृदय ने मांसाहार मांस खाने मे घृणा पैदा कर दी। श्री देवप्रकाश जी १५ वर्ष के ही थे जब इनके पिता जी का देहान्त हो गया और स्कूली शिक्षा छोड़ व्यवसाय में लग गए। सन् १९०८ ई० मे आप अमृतसर आ गये और कटड़ा ... मे लाला कृपाराम जी सराफ के पास उस्ताद श्री ... जी के कारण एक कुशल सुनार के रूप में काम करने लग गये। बचपन से ही अपने पिता से उर्दू फारसी की शिक्षा प्राप्त की और अमृतसर पहुंच कर मौलवी नूर अहमद साहिब से मौलवी फाजिल मुन्शी फाजिल व अरबी पढ़ और मौलवी ... से फारसी पढ़। इस परिश्रम से आप मौलवी फाजल तक की कक्षाओ को पढ़ाने योग्य हो गये। बाग रामानन्द ... सिंह वाला में एक अरबी संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना की जिसमे श्री देवप्रकाश जी पढ़ाते थे। चित्तौड़ (फतेहगढ़) में ही आपकी विचार धारा आर्य समाज की ओर आकृष्ट हो चुकी थी। अमृतसर आने पर आपकी पत्नी श्रीमती सुशीलादेवी जी और पुत्री सत्यबाला स्थाई रूप से रहने लगे। आप के पुराने मित्र गुरमहल निवासी श्री बनवारीलाल जी जो लोहे मण्डी में काम करते थे उन्होंने आपकी बहुत सहायता की। आचार्य देवप्रकाश जी के ही प्रयत्न से सन् १९१२ ई० को आर्य समाज लोहगढ़ अमृतसर मे युवक समाज की स्थापना हुई जिसके द्वारा सैकड़ो लोगो की सहायता डिबेटिंग क्लब शास्त्रार्थ और शुद्धि का भरपूर कार्य किया। सन् १९१९ का अमृतसर के जलियां वाला बाग मे अंग्रेज सरकार द्वारा खूनी काण्ड किया गया। इस अत्याचार से लगभग डेढ़ हजार निहत्थे लोग मारे गये और लगभग चार हजार लोग घायल हो गये। समूचे प्रान्त में और विशेष कर अमृतसर की जनता में भय एवं आतंक का वातावरण था। आल इण्डिया कांग्रेस ने पण्डित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता मे जांच कमेटी नियुक्त कर दी परन्तु डर के मारे लोग कोई साक्षी देने को तैयार न था। ऐसे कठिन समय मई जून की गर्मी मे ३०-३० मील पैदल चलकर लोगो को उत्साहित करना आचार्य देवप्रकाश जी का काम था।

इसी प्रकार सैकड़ों बार मुस्लिम गुण्डो का मुकाबला करना पड़ा। सन् १९१३ में भारतीय शुद्धि सभा का गठन किया गया। सन् १९३४ मे आपने बिहार प्रान्त के भूचाल पीड़ित लोगो की सहायता की। उसके उपरान्त आचार्य देवप्रकाश जी महात्मा हंसराज जी और सेठ जुगल किशोर जी बिरला की आज्ञा से आसाम चले गये। वहां रावटी झाबुआ कुशलगढ़ बांसवाड़ा और जसपुर इत्यादि आदिवासी भीलों की जय कर रियासतो में शुद्धि काम किया। अक्तूबर सन् १९७२ को अमृतसर में आपका अभिनन्दन किया गया। इस उत्सव में आपको जो थैलिया भेंट की गई उस धन राशि से आपने धर्म प्रचार समिति का गठन किया जो गैर आर्य ... लोगो को वैदिक धर्म मे दीक्षित करने का काय करती थी। अन्त मे यह धन और सम्पत्ति आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को सौंप कर दयानन्द मठ दीनानगर (जन्म भूमि) मे पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी के पास चले गये आर्य समाज का वीतराग संन्यासी कुशल वक्ता एवं ४१ विषयो पर पुस्तको का लेखक एक तपस्वी सूर्य सोमवार २९ दिसम्बर १९८० को शाम ५ बजकर ७ मिनट पर सदा के लिए अस्त हो गया।

—

एक जगत् गुरु जी को करारी हार

जगत गुरु शंकराचार्य कहलाने वाले स्वामी निरंजनदेव जी तीर्थ सदा सदा आर्य समाज के विरुद्ध सदा विष उगलते रहते हैं इसलिए शास्त्रार्थ केसरी श्री अमर स्वामी जी महाराज ने अब से एक वर्ष पूर्व उनको शास्त्रार्थ की चुनौती दी जो अपनी चालाकियों से शास्त्रार्थ को टालते रहते थे अब की बार दिल्ली मे १५ से २२ दिसम्बर १९८० तक पौराणिकों का एक यज्ञ और उत्सव था उन तिथियो मे केन्द्रीय आर्य युवक परिषद दिल्ली प्रदेश का भी उत्सव था। स्वामी निरंजनदेव तीर्थ को शास्त्रार्थ की चुनौती दी गई थी १७ दिसम्बर की रात को उन्होंने अपने भाषण में कहा कि हमारे सामने कोई भी आर्य समाजी शास्त्रार्थ के लिये नही आ सकता।

महात्मा अमर स्वामी जी महाराज का भी नाम लिया कहा कि है कोई माई का लाल जो हमसे शास्त्रार्थ करे साथ ही कहा हम आर्य समाज की वेदी पर नहीं जाएंगे।

१८ दिसम्बर को प्रातः केन्द्रीय युवक परिषद दिल्ली प्रदेश के अध्यक्ष श्री ... राजसिंह जी और श्री प० प्रेमपाल जी शास्त्री एक पत्र लेकर जगत गुरु जी के पास पहुंचे जिसमे लिखा था यदि आप आर्य समाज की वेदी पर नहीं आ सकते हैं तो स्थान एवं समय का निश्चय करिए जगत गुरु जी ने वह पत्र ले लिया और उनको अपशब्द बोले १८ की रात को फिर उनका भाषण हुआ भी वो ही डींग फिर मारी आर्य युवको ने कहा कि हम शास्त्रार्थ के लिए अभी यहीं आ जाते है जगत गुरु जी ने श्री राजसिंह जी को तो पुलिस की हिरासत मे करवा दिया और अन्य आर्य युवक दौड़कर रात्रि के ग्यारह बजे श्री महात्मा अमर स्वामी जी महाराज श्री प० ओमप्रकाश जी शास्त्री और श्री प० रामदयालु जी शास्त्री को ले आये जगत गुरु जी अपना उत्सव समाप्त कर चुके थे आर्य शास्त्रार्थ कर्ता उसी मंच पर जा बैठे थे आर्य समाज के लिये दूसरा मंच नही बनाया था। महात्मा अमर स्वामी जी महाराज ने अवतारवाद पर शास्त्रार्थ आरम्भ कर दिया और कहा अवतारवाद वेद विरुद्ध है अनेक वेद मन्त्र बोल और बताया पुराणो मे अवतार के तीन कारण लिखे है

१ वरदान २ शाप ३ कर्म फल भोग धर्मोद्धार के लिये कोई अवतार नहीं हुआ शास्त्रार्थ लगभग एक घण्टा से अधिक ही हुआ था जगत गुरु जी से कोई उत्तर नही बन सका था इसलिए जगत गुरु जी ने घोषणा कर दी अब शास्त्रार्थ नहीं होना चाहिए मंच पर बैठे उनके चेले चपाटो ने सब हू हू हू हू करके उछलना आरम्भ कर दिया ये सब तमाशा जगत गुरु जी के द्वारा इशारे पर ही था। सारे पौराणिक हुल्लड़ मचाने लगे शास्त्रार्थ महारथी प० ओमप्रकाश जी शास्त्री को गुण्डो ने मारने के लिए पकड़ लिया शास्त्री जी बड़ा साहस करके उनसे छूट गये अनेक आर्य युवको के साथ भी यही हुआ पुलिस ने आकर और सिक्खों के मंच पर कब्जा कर लिया आर्य लोग सुरक्षित बाहर आकर सड़क नगर मे अपनी जय की घोषणा करते हुये स्वस्थान पर आ गये आर्यों की प्रसन्नता की कोई सीमा न थी आर्यों ने अपने शास्त्रार्थ केसरी महात्मा अमर स्वामी जी महाराज की और वैदिक धर्म की बार बार जय बोली और स्वामी जी महाराज पर नोटो की वर्षा की। जगत गुरु जी की यह दशा हुई—

शेख जी रखन थे शेखी का गुरूर
यार के कूचे मे आ उनकी हजामत बन गई।

नामधारी जगत गुरु जी उसी रात मे बाल ... को वापिस प्रस्थान कर गये।

—प्रकाशचन्द्र
(सम्वाददाता)

—

सुयोग्य वरो की आवश्यकता

सुन्दर स्वस्थ सुशिक्षित बहुकार्य मे दक्ष युवा आर्य प्रभाव कन्याओ के लिए योग्य सुशिक्षित सेवारत अविवाहित आर्य वरो की आवश्यकता है। साथ ही पूर्ण विवरण सहित निम्न पते पर प्रार्थना पत्र भेजें।

—मन्त्री दयानन्द बाल सदन
चांद बावड़ी रोड अजमेर
(राजस्थान)

(२ पृष्ठ का शेष)

स्वामी जी ने आर्य समाज के जिन दस नियमों का निर्माण किया है वस्तुतः वे हमारे शास्त्रों का सार भाव हैं। इन्हीं सूत्रों को लेकर आर्य जीवन पद्धति का ताना बाना बुना गया है। वर्णाश्रम धर्म क्या है? यह एक सामाजिक व्यवस्था है जिसके द्वारा समाज को चार वर्णों में और एक व्यक्ति के जीवन को चार भागों में विभक्त किया गया है। आर्यों की इस जीवन पद्धति की अपनी यह विशेषता है जो दूसरों से सर्वथा भिन्न है। समाज को इसी आधार पर संगठित करने की स्वामी जी की इच्छा मूल रूप से नहीं सकी यद्यपि १०५ वर्ष बीत गए। आर्य प्रतिनिधि सभाओं के साधन विस्तृत कार्य क्षेत्र है। इस ओर से अकर्मण्यता के परिणाम निश्चित ही कष्टदायक होंगे।

जनसमूह राष्ट्र का प्राथमिक मौलिक तत्व है अतः यह स्वाभाविक ही था कि स्वामी जी ने समाज के सुधार की ओर प्रबल ध्यान दिया। किन्तु उनके कार्य की यह इतिश्री नहीं है। इस बात के अब प्रमाण मिल चुके हैं कि १८५७-५८ में प्रथम स्वाधीनता संग्राम के अवसर पर स्वामी जी ने महत्वपूर्ण कार्य किया था। किसी भी जाति को राजत्व प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि उनके लिए एक भाषा हो एक शासन हो और पूर्ण प्रभुसत्ता हो इसीलिए स्वामी जी ने अंग्रेजों को देश से निकालने भारतीयों की पूर्ण प्रभुसत्ता दिलाने और स्वशासन की स्थापना के उस प्रयत्न में पूर्ण योगदान दिया। आर्य प्रतिनिधि सभाएं स्वामीजी के इन कार्यों से मार्ग दर्शन प्राप्त कर सकती हैं। आर्य समाज में कुछ लोग हैं जो राजकाज में भाग लेने का विरोध करते हैं। वे केवल आत्मा और परमात्मा से सम्बन्धित ज्ञान के प्रसार तक ही आर्य समाज को सीमित रखने में ही सन्तुष्ट हैं। उनका विश्वास है कि यही उनके कार्य की अन्तिम रेखा है।

(क्रमशः)

(२ पृष्ठ का शेष)

सृष्टि की रचना जिन पांच तत्वों से हुई है वे तत्व ही पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि वे स्वयं कुछ नहीं हैं वे सब तो उसी के सहारे टिके हुए हैं। कोई स्थिर भौतिक तत्व रह नहीं सकता जब तक उसको शक्ति का सहारा न हो। भौतिक को तोड़ते तोड़ते अभौतिक निकल आता है। अब परमाणु को वैज्ञानिकों ने तोड़ा तो भीतर से विद्युत का आविर्भाव हो गया विद्युत एक शक्ति है जो दीखती नहीं भौतिक द्वारा ही दीखती है। हम बल्ब को देखते हैं उसमें जब फिलेमैंट को देखते हैं जिसमें प्रकाश प्रकट होता है विद्युत की धारा तो करेंट रूपी कक्षा में छिपी ही बैठी है। इसी को यमाचार्य ने कहा भूतेभि अव्यक्त भौतिक से अभौतिक के दर्शन होते हैं। इस प्रकार दृश्य में जिस अदृश्य के दर्शन होते हैं हे नचिकेता वही परमात्मा है जिसके विषय में तूने पूछा था एतद्वै तत् ।६।

(क्रमशः)

आर्यसमाज दीवान हाल दिल्ली का १०३वां उत्सव

समाज के मन्त्री श्री सूरजभान गुप्ता ने बताया कि आर्य समाज दीवान हाल का १०३वां वार्षिकोत्सव दिनांक १३, १४, १५ मार्च १९८१ को रामलीला मैदान में मनाने का निश्चय किया है।

इस अवसर पर युवा सम्मेलन, राष्ट्र रक्षा सम्मेलन, संस्कृत सम्मेलन, आर्य सम्मेलन तथा यजुर्वेद पारायण यज्ञ का आयोजन किया गया है।

उपरोक्त कार्यक्रमों में देश के प्रसिद्ध महात्मा विद्वान् व राजनेताओं को आमन्त्रित किया गया है।

श्री वीरेन्द्र जी सम्पादक तथा प्रकाशक द्वारा जयहिन्द प्रिंटिंग प्रेस जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय गुरुदत्त भवन चौक किशनपुरा जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

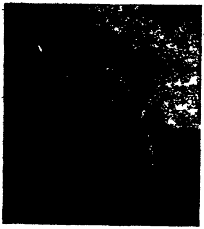
आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र जालन्धर

वार्षिक मूल्य 15) वर्ष 13, अंक 53 13 माघ सम्वत् 2037, तदनुसार 25 जनवरी 1981 का अंक दयानन्दाब्द 156

जिनका जन्म दिन 28 जनवरी को है–

पंजाब केसरी लाला लाजपतराय जी



देश के स्वतन्त्रता सेनानियो व शहीदो मे अमर शहीद लाला लाजपत राय का नाम अपना विशेष स्थान रखता है देश भक्ति उनके रोम रोम मे बसी हुई थी। अपने देश जाति व समाज के लिए वह बड़े से बड़ा बलिदान देने के लिए सदा तत्पर रहते थे। इस अमर बलिदानी का जन्म जिला फिरोजपुर के ढोडी नामक ग्राम में २८ जनवरी १८६५ मे हुआ था। छात्र जीवन से लाला जी का झुकाव समाज सुधार की ओर था। वह अपने समाज में सुधार लाना चाहते थे। उस समय ब्रह्म स के सदस्य भी वह सुधार की भावना को ही लेकर बने थे परन्तु जब ब्रह्म समाज का खोखला पन देखा तो उसकी सदस्यता से त्याग पत्र दे दिया परन्तु महर्षि दयानन्द जी महाराज के व्याख्यानों की चर्चा सुनकर उनके जीवन मे आशा की किरण जगी। महर्षि दयानन्द के प्रवचनो ने उन पर जादू का सा असर किया। वह आर्य समाज की विचार धारा से प्रभावित होकर वैदिक धर्म का प्रचार करने मे स्वामी श्रद्धानन्द महात्मा हंसराज और दूसरे आर्य समाजी नेताओ के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने लगे। वह भारतीय जनता में जागृति पैदा करने के लिए स्कूल और कालेज स्थान २ पर खोलना आवश्यक समझते थे। वह चाहते थे कि हम अपने स्कूलों व कालेजो में बच्चों को ऐसी शिक्षा दें जिससे वो बच्चे हमारे स्कूल कालेजों से निकले वह देश भक्त हों और अपने देश के लिए अपना तन मन धन न्यौछावर करने की भावना से ओत प्रोत हो जिस कालेज के प्रिंसिपल महात्मा हंस राज हो और मन्त्री श्री लाला लाजपतराय जी हो उसमे ऐसे बच्चे क्यो न निकले? इसीलिए तो उस समय अंग्रेज सरकार की आर्य समाज के स्कूल कालेजो पर विशेष नजर थी। आर्य समाज के कालेज व स्कूल उस समय विद्रोह विशेष के स्थान समझे जाते थे।

लाला जी चाहते थे देश के सभी धर्मावलम्बी एक ही झण्डे के नीचे आ जाए सभी मिलकर एक होकर भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ इस भावना को लेकर उन्होंने लाहौर मे एक सवधर्म सम्मेलन भी बुलाया था और अपने देश वासियो को आह्वान करते हुए कहा था कि—आप सब

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का आर्यसमाज के साथ कोई सम्बन्ध नहीं

सार्वदेशिक सभा की घोषणा

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली की अन्तरंग सभा म २६ १२ ० को वयोवृद्ध आर्य नेता प० व मुदेव शर्मा (वि न राष्ट्रीय स्वय सेवक संघ और आर्य समाज के आपसी सम्बन्धो की तक विचार बिन्दुओ पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की उन्होने चेतावनी दी कि आर्य समाज की कमजोरी का लाभ आर० एस एस उठा रहा है

प० वासुदेव शर्मा के उपरान्त कथन पर सार्वदेशिक सभा मन्त्री श्री ओमप्रकाश जी त्यागी श्री रविदत्त जी श्री जय राम दशमन्त्री श्री रामचन्द्रराव कल्याणी श्री वटकृष्ण वर्मन प शिवप्रसाद श्री वीरेन्द्र जी श्री पृथ्वीसिंह आजाद स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती श्री मनोहरलाल गुप्त प० शिवकुमार शास्त्री प० राजगुरु शर्मा श्री ओ० पी० गोयल आदि ने अपने अपने विचार प्रकट किये सभा मन्त्री श्री ओमप्रकाश जी त्यागी ने स्पष्ट बताया कि आर्य समाज का राष्ट्रीय स्वय सेवक संघ के साथ किसी भी प्रकार का आपसी सम्बन्ध नहीं है। उन्होने बताया कि सन १९४३ मे भी इसी प्रकार की शंकाए प्रकट की गई थी उसे सार्वदेशिक सभा ने निर्मूल सिद्ध करते हुए स्पष्ट घोषणा की थी आर्य समाजियो के लिए आर० एस० एस० की मलभूत भावना को मानना असम्भव है। और आर्य समाज मन्दिरो मे उसे स्थान देना सम्भव नहीं। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा और आर्य समाज का संगठन अभी तक उक्त निर्देश का ही पालन कर रहा है

सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि सार्वदेशिक सभा पुन यह घोषणा करती है कि आर्य समाज के साथ राष्ट्रीय स्वय सेवक संघ का कोई सम्बन्ध नहीं है। आर्य समाज मन्दिरो मे आर० एस० एस० अपनी शाखा नहीं लगा सकता।

रामगोपाल शालवाले वानप्रस्थ

कठोपनिषद् नचिकेता की अमर कहानी (द्वितीय भाग)

यमाचार्य द्वारा आत्मा-परमात्मा का वर्णन

(लेखक डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार)

ॐ

(गतांक से आगे)

यमाचार्य परमात्म तत्त्व का पुल्लिंग में वर्णन करने के बाद स्त्रीलिंग में वर्णन करते हुए कहते हैं—वह देवतमयी परमात्म-शक्ति मातृ तुल्य है उसे अदिति कहा जा सकता है—अदिति अर्थात् जो खंडित नहीं हो सकती नष्ट नहीं हो सकती जो नित्य है—अदितिर्देवतामयी। परमात्मा की यह शक्ति अदिति है माता के समान है जिसे प्राणायाम से अनुभव किया जा सकता है या प्राणेन सम्भवति प्राणायाम एकाग्रता का सबसे बड़ा साधन है। प्राणायाम से ही इन्द्रिया मन के साथ और मन को आत्मा के साथ निबद्ध कर परमात्म दर्शन हो सकता है। परमात्मा की अदिति रूपा मातृशक्ति पंच महाभूत रूपी गुफाओं में मानो छिपी बैठी है—गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ती उसे पंच महाभूतों से ही जाना जा सकता है या भूतेभिः व्यजायत—मानो पंचमहाभूतों से उत्पन्न किया जा सकता है उसे अदिति के नाम से मातृ शक्ति कहा इसलिए व्यपदेश्य की जगह यहां यमाचार्य व्यजायत उत्पन्न होने की बात कर रहे हैं वैसे तो महाभूतों को परम मातृ शक्ति उत्पन्न करती है परन्तु यहां यमाचार्य कह रहे हैं कि पंच महाभूतों से अदिति रूपा मातृ शक्ति उत्पन्न होती है। पंच महाभूतों को देखकर यही समझ पड़ता है कि इनके उत्पन्न करने वाली कोई मातृ शक्ति होनी चाहिए ये अपने आप तो उत्पन्न हुए नहीं होंगे इसलिए पंच महाभूत ही मानो कह रहे हैं कि हमारी कोई माता है उस माता का नाम यमाचार्य ने अदिति कह दिया है। अदिति इसलिए कहा क्योंकि महाभूत तो खंडित हो जाते हैं टुकड़े टुकड़े पर तु शक्ति तो खंडित नहीं हो सकती वह अखंडित है नित्य है अदिति का अर्थ ही है—अखंडित। हे नचिकेता यही परम तत्त्व शक्ति है जिसके विषय में तूने पूछा था—एतद् वै तत् ।७।

यम आगे कहते हैं कि जिस प्रकार अरणियों में अग्नि निहित होती है दीखती नहीं और उसे प्रकट करने के लिए रगड़ना पड़ता है अरण्योर्निहितो जातवेदा इसी प्रकार परमेश्वर मनुष्य के भीतर ही बैठा है दीखता नहीं परन्तु जैसे अरणियों को रगड़ने से अप्रकट अग्नि प्रकट हो जाती है अग्नि का ज्ञान हो जाता है ऐसे ही परमेश्वर को पाने के लिए अरणियों को रगड़ने की तरह कुछ रगड़ना पड़ता है रगड़ने की तपस्या करनी पड़ती है बिना तपस्या के कुछ हाथ नहीं आता अरणियां मनमाने पड़ी रहें तो क्या होगा—आग सामने है परन्तु छोटी हुई भी नहीं है। अग्नि का दृष्टान्त बड़ा महत्त्वपूर्ण है—अग्नि की दो बातें अध्यात्म मार्गी को ध्यान में रखनी हैं। अग्नि को जातवेदा कहा—जातवेदा अर्थात् जाते जाते विद्यते हर वस्तु जो जात है जन्मी है उसमें अग्नि है पर दीखती नहीं परमात्मा भी हर जात उत्पन्न वस्तु में है परन्तु दीखता नहीं। अग्नि के विषय में दूसरी जानने योग्य बात यह है कि इसकी लपट ऊपर को जाती है नीचे को नहीं जिसके साथ अग्नि का सम्पर्क हो जाता है उसकी गति ऊपर को जाने लगती है। पानी नीचे को बहता है परन्तु अग्नि के सम्पर्क में आकर वह भाप बनता है ऊपर जाता है। मनुष्य भी परमात्मा का सान्निध्य पा ऊपर ही ऊपर जाता है फिर उसके पतन की कोई सम्भावना नहीं रहती जैसे अग्नि अरणियों के भीतर छिपा बैठा है और तपस्या की रगड़ से वह दीखने लगता है जैसे गर्भवती स्त्री का ध्यान चौबीस घंटे अपने गर्भ पर टिका रहता है इसी प्रकार जो जागरूक मनुष्य है—जागृवद्भिः मनुष्येभिः उनका ध्यान अपने जीवन को हवि बनाकर हविष्मद्भिः उस प्रतिदिन स्तुतियोग्य अग्नि रूप भगवान् दिवे दिवे ईड्य अग्नि—की तरफ लगा रहता है। वे लोग अपने पास जो कुछ है उसे हवि समझते हैं अपने जीवन को उस पर न्योछावर कर देते हैं किसी वस्तु से चिपटते नहीं जैसे यज्ञाग्नि में सब कुछ स्वाहा कहकर डाल दिया जाता है वैसे यज्ञाग्नि में वे सब कुछ समर्पित कर देते हैं उनका जीवन यज्ञमय हो जाता है जैसे यज्ञाग्नि अरणियों की रगड़ से पैदा होती है वैसे ब्रह्माग्नि तपस्या से प्रकट होती है जैसे गर्भिणी का ध्यान सदा उसके भीतर विद्यमान गर्भ में अटका रहता है वैसे भगवान् के दर्शन चाहने वाले जिज्ञासु का ध्यान उसी के भीतर विद्यमान परमेश्वर की तरफ लगा रहता है ।८।

हे नचिकेता देख सूर्य कितना महान् है—इससे महान् इससे अधिक प्रकाशमान कोई वस्तु संसार में नहीं है। यह सूर्य उसी की कारीगरी का नमूना है—सूर्य का उदय सूर्य का अस्त उसी के द्वारा होता है—यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति। सूर्य ही क्या उसी के चरणों में सब का सिर नमा हुआ है—

- - - - - - - - - - -

की शक्ति को लांघने वाला विश्व में कोई नहीं है—तदु नात्येति कश्चन। यही है जिसके विषय में तूने पूछा था—एतद् वै तत् ।९।

परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि वह भगवान् यहां है वहां नहीं है वह तो सब जगह है—यदेवेह तदमुत्र। हे नचिकेता तू यह भी समझ ले कि जो यहां है वही वहां भी है—यदमुत्र तदन्विह कोई उसे मन्दिर मस्जिदों में बताता है कोई उसे सातवें आसमान में बैठा बतलाता है कोई उसे चौथे में मानता है। जहां कहीं सृष्टि का कोई भी चिह्न है वहां वहां वह मौजूद है क्योंकि सृष्टि का कर्ता सर्वत्र जो यही एक है। जो समझता है कि वह यहां है यहां नहीं है या वहां है यहां नहीं है—वह इह नानेव पश्यति—वह जन्म-मरण के बन्धन में पड़ा रहता है—मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति। उसे सब जगह देखने की आंख चाहिए। वह तो सब जगह है—धरती पर भी आसमान में भी उसे सब जगह देखने की हमारी आंख नहीं है अन्धे का दोष है

- - - - - - - - - - -

भगवान का दोष नहीं सुजाखे का दोष है क्योंकि बाहर की आंखों के होते हुए भी वह भीतर की आंखों को नहीं खोल सकता। १०।

भगवान के दर्शन करने हों तो इन आंखों से नहीं मन से उसके दर्शन होते हैं—मनसा एव इदम् आप्तव्यम् यहां इस विश्व में अनेकता का नियम नहीं एकता का नियम काम कर रहा है। नेह नानास्ति किंचन। (क्रमशः)

दो सितारे छिप गये

आर्य समाज सौभाग्यशाली माता है जिसकी गोदी में हर कला के पारखी विद्वान सपूत पले हैं परन्तु माता के दुख का भी अन्त नहीं जब एक एक करके यह सपूत इस संसार से विदा ले जाते हैं। पं० रामचन्द्र देहलवी जैसा प्रतिभाशाली विद्वान इसी मां का सपूत था विपक्षी भी जिसकी प्रतिभा की स्पर्धा करते थे परन्तु वह चला गया पं० गुरुदत्त विद्यार्थी सरीखा कला का पारखी भी इसी मां की गोद में पला परन्तु आज हम उन्हें याद ही करते हैं कहीं पाते नहीं। आज एक नया वज्र प्रहार इस समाज पर हुआ जब इसके दो विद्वान प्रतिभा सम्पन्न सपूत संसार से चले गए। एक हैं पं० देवप्रकाश जी जिनके कुरआन का ज्ञान मुस्लिम भाईयों के लिए भी स्पर्धा की वस्तु थी जिनकी सारी आयु शुद्धि के पवित्र काम में लगी जो स्व० महाशय कृष्ण और पं० लेखराम के छोड़े मिशन को लेकर कंटकाकीर्ण पथ का गामी बन गया ऐसा तपस्वी विद्वान् आर्य समाज से छिन गया। पं० देवप्रकाश का ज्ञान तथा तप अनुपम रहे हैं लोकैषणा से सर्वथा दूर एक सच्चे मिशनरी के समान इस महापुरुष ने सारा जीवन बिता दिया उसकी विद्वत्ता उसकी रचना कुरआन परिचय से स्पष्ट है और उसके तप की कथा मध्यभारत के उन वन स्थलों से पूछो जहां उसने जवानी काटी और आर्य समाज अमृतसर से पूछो जहां उन की आयु का अन्तिम काल बीता। अमर स्वामी जी ने एक समय स्पष्ट कह दिया था कि पं० देव प्रकाश के समान इस्लाम और कुरआन का जानकार आर्य समाज में कोई नहीं है ऐसे तपस्वी विद्वान का चला जाना किसकी आंखों में आंसू नहीं ला देगा ?

और दूसरी प्रतिभा के धनी जो आर्य समाज का गौरव थे वे जो आर्य समाज के मंच की गरिमा थे जो सर्वप्रिय कहे जाते थे वह थे कु० सुख लाल आर्य मुसाफिर। उनकी वक्तृत्व कला का जादू विरोधी भी मानते थे वे समीक्षक थे कवि थे शानदार वक्ता थे विद्वत्ता ने यह तीनों गुण उन्हें उदारता से दिए थे इसके साथ ही वे केवल और केवल आर्य समाज के थे न किसी भी मंच पर जा सकते थे वे चाहते तो एम० पी० बन जाते और यह भी सत्य है कि काफी से अधिक प्रतिभाओं को यह लालच बहा ले गया परन्तु सुख लाल तो आर्य मुसाफिर ही रहे आर्य समाज के प्रति उनकी श्रद्धा उनकी तड़प क्रान्तिकारी भाषण न जाने कितने लोगों को आर्य समाज का दीवाना बना गए। वे एक चहचहाते बुलबुल थे परन्तु कवि के अनुसार वे बाग से उड़ गई हम चहचहाए उड़ गए। आज उन्होंने भी दया के लिए आंखें मूंद ली लगता है आर्य समाज का मंच यदि सूना नहीं हुआ तो महिमा से तो कम हो गया है। दुख बहुत बड़ा है परन्तु निराशा की बात नहीं प्रकृति का तंत्र किसी के लिए प्रतीक्षा नहीं करेगा और हम कामना किसी नए नाम से पं० देवप्रकाश तथा कुंवर सुख लाल को आर्य समाज के मंच पर पाएंगे।

—उत्तम चन्द शरर

सम्पादकीय—

आर्य समाज और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ

आर्य समाज और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का आपस में क्या सम्बन्ध है? यह विषय पिछले कई वर्षों से विवाद का कारण बना हुआ है। १९५१ में भी यह विषय सार्वदेशिक सभा के सामने आया था और उसने एक प्रस्ताव द्वारा आर्य समाज मन्दिरों या आर्य समाज की दूसरी संस्थाओं के राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ द्वारा प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। उसके कुछ वर्ष पश्चात् यह प्रतिबन्ध ढीला हो गया क्योंकि कई आर्य समाजी राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सदस्य थे इसलिए उन्होंने यह समझ लिया कि वह दोनों संस्थाओं के सदस्य हैं इसलिए संघ पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध लगाने की आवश्यकता नहीं है। इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि संघ की शाखाओं के लिए आर्य समाज मन्दिरों और शिक्षा संस्थाओं का प्रयोग होने लगा। कई आर्य समाजों पर संघ के कार्यकर्ताओं ने अपना पूरा अधिकार कर लिया और वह अपने भिन्न भिन्न समारोहों को आर्य समाज मन्दिरों में करने लगे। इसके विरुद्ध कई आर्य समाजों के अधिकारियों को यह शिकायत पैदा हुई कि उनके मन्दिरों और उनकी दूसरी संस्थाओं में संघ द्वारा कुछ ऐसे समारोह किए जाते हैं जो आर्य समाज के सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं हैं।

२६ दिसम्बर १९८० को जब सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा की बैठक हुई उस समय फिर यह प्रश्न विचाराधीन आया कि आर्य समाज और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का सम्बन्ध क्या है? और आर्य समाज की संस्थाओं को उसके प्रयोग में लाने की अनुमति दी जाए या न दी जाए? कई घण्टे इस पर वाद विवाद होता रहा और बहुमत इस पक्ष का था कि आर्य समाज को राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से दूर रखा जाए। यह दोनों स्वतन्त्र संस्थाएं हैं। इनके अपने अपने नियम और अपने अपने सिद्धान्त हैं। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में कुछ ऐसे व्यक्ति भी हैं जो आर्य समाजी नहीं हैं। इसलिए उनकी तरफ से आर्य समाज के महत्व को कम करने का प्रयत्न किया जाता है। जिन व्यक्तियों का राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से सम्बन्ध है उनकी दृष्टि में महर्षि दयानन्द सरस्वती का वह महत्व नहीं है जो संघ के संस्थापक डा० हेडगेवार, गुरु गोलवलकर और स्वामी विवेकानन्द का है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के जो समारोह होते हैं उनमें आर्य समाज या उसके नेताओं का कोई जिक्र नहीं किया जाता अपितु संघ के अधिकारी और स्वयं सेवक आर्य समाज के संगठन का अपनी शक्ति बनाने के लिए तो प्रयोग करते हैं परन्तु आर्य समाज को किसी प्रकार का महत्व नहीं देना चाहते। यह आर्य समाज की शिक्षा संस्थाओं पर भी अपना अधिकार इसलिए करना चाहते हैं कि वहां विद्यार्थियों में उन्हें अपनी विचार धारा के प्रचार व प्रसार का अवसर आसानी से मिल जाता है। इसलिए राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की गतिविधियां आर्य समाज के लिए भी हानिकर बन रही हैं।

जो कुछ मैंने लिखा है यह विचार सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा में बहुत से सदस्यों ने व्यक्त किए थे। वास्तविक स्थिति तो यह है कि कई वह सदस्य भी जिनका जनसंघ से सम्बन्ध रहा है या अब भारतीय जनता पार्टी से है उनकी भी यह निश्चित धारणा थी कि आर्य समाज को राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से दूर रहना चाहिए। इस सारी स्थिति पर विचार करने के बाद ही सार्वदेशिक सभा ने यह प्रस्ताव पारित किया है कि भविष्य में कोई भी आर्य समाज मन्दिर या आर्य समाज से सम्बन्धित कोई शिक्षा संस्था राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को प्रयोग के लिए न दी जाए। जब संघ की शाखाएं आर्य समाज की संस्थाओं में लगती हैं तो आर्य समाज के सम्बन्ध में कई प्रकार की भ्रान्तियां भी पैदा हो जाती हैं। आर्य समाज का किसी राजनैतिक संस्था से कोई सम्बन्ध नहीं है परन्तु राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कारण आर्य समाज के विषय में भी कई प्रकार की भ्रान्तियां पैदा हो जाती हैं। अब जबकि भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने भी यह कहना आरम्भ कर दिया है कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का अपना स्वरूप बदलना चाहिए और भारतीय जनता पार्टी ने भी अब राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को छोड़कर गान्धी वाद और धर्म निरपेक्षता का आश्रय ले लिया है तो आर्य समाज संघ के कारण अपने विषय में किसी प्रकार की कोई भ्रान्ति क्यों पैदा होने दे। आर्य समाज के सिद्धान्त, उसके नियम और उस की विचार धारा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से बिल्कुल भिन्न हैं। आर्य समाज राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का विरोध करना नहीं चाहता इसी के साथ वह यह भी स्पष्ट कर देना चाहता है कि वह किसी भी दूसरी संस्था को जिसके सिद्धान्त और जिसकी विचार धारा उसके साथ नहीं मिलती यह अनुमति नहीं दे सकता कि वह आर्य समाज के महत्व को किसी भी प्रकार कम करने का प्रयत्न करे। भारत के पिछले एक सौ वर्षों के इतिहास में आर्य समाज का एक विशेष स्थान है कोई व्यक्ति या कोई संस्था उसके उस योगदान को मिटा नहीं सकता जो उसने इस देश के नव निर्माण में समय समय पर दिया है। हमारा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से कोई विरोध नहीं है उनका मार्ग और है हमारा मार्ग और है। उनका लक्ष्य भी और है हमारा लक्ष्य भी और है। हम एक दूसरे के सहायक तो बन सकते हैं परन्तु एक दूसरे के अस्तित्व को मिटाने का प्रयत्न करना किसी भी प्रकार उचित न होगा। इसलिए हम राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट पैदा करना नहीं चाहते और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से भी यह आशा रखते हैं कि वह आर्य समाज के महत्व को मिटाने का प्रयत्न न करेगा।

सार्वदेशिक सभा ने जो प्रस्ताव पारित किया है सब परिस्थितियों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के पश्चात् किया है। इसलिए आर्य समाजों के सब अधिकारियों और आर्य समाज से सम्बन्धित सब व्यक्तियों का यह कर्तव्य हो जाता है कि इस प्रस्ताव को सामने रख कर ही भविष्य में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के विषय में अपने दृष्टिकोण का निर्णय करें।

—वीरेन्द्र

गणतन्त्र दिवस आ रहा है

२६ जनवरी को हमारे गणतन्त्र के पूरे ३१ वर्ष हो जाएंगे। २६ जनवरी १९५० को हमारे देश में नया विधान लागू किया गया था और उसमें यह कहा था कि भारत के विधान का आधार जनतन्त्र होगा अर्थात् यहां जो राजनैतिक व्यवस्था होगी उसका आधार जनता के अधिकार होंगे। इस सम्बन्ध में हमें यह न भूलना चाहिए कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में अपनी जो राजनैतिक विचारधारा हमारे सामने रखी है उसमें भी उन्होंने जनतन्त्र पर बहुत अधिक बल दिया है। वह यह भी मानते थे कि जनतन्त्र की रक्षा के लिए एक राजा भी होना चाहिए परन्तु राजा वह हो जिसे जनता का पूरा समर्थन प्राप्त हो। हमारे देश के नेताओं ने महर्षि दयानन्द जी के आदेश के पहले भाग को तो अपना लिया और एक गणतन्त्र राज्य की स्थापना कर दी परन्तु उसकी रक्षा के लिए जो राजे बने हैं उन्हें जनता का वह समर्थन प्राप्त नहीं हो सका जो होना चाहिए था। यही हमारी वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था का सब से कमजोर पक्ष है। परन्तु इस विषय में आर्य समाज को अपना उत्तरदायित्व नहीं भूलना चाहिए। हमारा सक्रिय राजनीति में कोई सम्बन्ध नहीं। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि हमें देश की राजनीति में कोई रुचि नहीं है। किसी दूसरी धार्मिक संस्था ने देश की राजनीति में वह सक्रिय भाग नहीं लिया जो आर्य समाज ने लिया। स्वाधीनता के संग्राम में जो योगदान आर्य समाज का था किसी और का नहीं था। इसलिए हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम जागरूक रहें। देश में जो कुछ हो रहा है उसे देखते रहें और देश की सुरक्षा के लिए हम से जो बड़े से बड़ा त्याग और बलिदान मांगा जाए उसे देने के लिए सदा तैयार रहें। २६ जनवरी को सारा देश हर्षोल्लास के साथ गणतन्त्र दिवस मनाएगा। हमें भी उसी हर्षोल्लास के साथ यह दिन मनाना चाहिए। परन्तु हम को साथ उस दिन यह संकल्प भी करना चाहिए कि हम अपने इस प्यारे देश में एक वास्तविक गणतन्त्र राज्य स्थापित करने का प्रयत्न करेंगे, एक ऐसा राज्य जो जनता का हो, जनता के लिए हो और जनता के द्वारा हो।

वीरेन्द्र

सभा उपदेशकों का जनगणना सम्बन्धी कार्यक्रम

आर्य समाजें सहयोग दें

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने ८-१-८१ को निश्चय किया है कि सभा के सभी उपदेशक जनगणना के सम्बन्ध में काम करेंगे। सभी आर्य समाजों के अधिकारियों तथा शिक्षा संस्थाओं के अधिकारियों से निवेदन है कि वह जन गणना के सम्बन्ध में सभा उपदेशकों को अपना पूरा पूरा सहयोग दें।

(शेष पृष्ठ ६ पर)

आज भी आर्य समाज एक प्रभावी शक्ति है

प्रांतीय समाएं और भी अधिक सशक्त बनें ! वन्देमातरम श्री रामचन्द्रराव जी का दिल्ली आर्य महासम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण

(गतांक से आगे)

मुझे यहां पर राजधर्म के सम्बन्ध में युधिष्ठिर का स्मरण हो रहा है। भीष्म पितामह युद्ध क्षेत्र में घायल पड़े हैं युधिष्ठिर ने समीप आकर पितामह से राजकरण के सम्बन्ध में पूछते हुए कहा है

राजधर्मान् विशेषेण कथयस्व पितामह ।

सर्वस्य जीवलोकस्य राजधर्म परायणम् ॥

पितामह राजकरण प्रत्येक के लिए महत्वपूर्ण आश्रय है। कृपा करके राज के सम्बन्ध में मुझे जानकारी दीजिए

युधिष्ठिर द्वारा राजकरण को सभी के लिए महत्वपूर्ण आश्रय समझना बहुत सार्थक है भीष्म ने कहा—

उद्यन् हि यथासूर्यो नाशयत्तमसं तमः ।

राजधर्मास्तथाम् वा निक्षिमन्त्यशुभा गतिम् ॥

जिस प्रकार सूर्य उदित होकर अन्धेरे के घने को छिन्न भिन्न कर देता है उसी तरह राजकरण मानव जाति को स्वर्ग से वंचित करने वाले दुष्कर्मों से सुरक्षित रखता है

इस से स्पष्ट होता है कि राजधर्म में रुचि लेना आर्य जीवन पद्धति का एक अंग था। इसीलिए स्वामी जी ने धर्मार्य सभा और विद्या सभा के साथ साथ राजार्य सभा के निर्माण करने पर काफी बल दिया है। आज हमारे इस मातृ भूमि भारत को बाहर और भीतर के आक्रमण का खतरा लगा हुआ है हमारी क्षत्रीय अखण्डता असुरक्षित है राज्य के निर्माण में धर्म का दूसरा स्थान है और वह भू क्षेत्र जिस पर हम निवास करते हैं उसी को खतरा है। क्या आर्य समाजी मातृ भूमि के इस संकट में भी केवल दर्शक बनकर शान्त रहेंगे ? हमारे भीतर की देश भक्ति की भावना हमें ऐसा करने नहीं देगी।

हमारे देश की सुरक्षा के लिए खतरे के साथ ही साथ हमारी जीवन पद्धति के लिए भी खतरा पैदा हो गया है। एक ओर ईसाई धर्म प्रचारक दूसरी ओर ऐसे धर्मान्ध मुसलमान जो ऐसे सभी देशों को दारुल हरब कहते हैं जिनका पूर्ण इस्लामीकरण नहीं हुआ है और किसी भी कीमत पर उनको दारुल इस्लाम करने पर तुले हुए हैं और तीसरे और मास्को तथा पीकिंग ग्रुप कम्युनिस्ट हैं। ये सभी देश में विध्वंसकारी कार्य में लगे हुए हैं और ऐसे कार्यों को प्रोत्साहन देते रहते हैं। आज कल देश में जितने भी दंगे हो रहे हैं उनमें अधिकांश इन्हीं कम्युनिस्टों द्वारा आयोजित तथा प्रेरित हैं। मुरादाबाद या हैदराबाद जैसे साम्प्रदायिक झगड़ों के पीछे बड़े चतुर हाथ काम कर रहे हैं और जो निश्चित ही हमारे देश के अकल्याण के उद्देश्य से इन झगड़ों को भड़काने में साधन जुटा रहे हैं विदेशों में निर्मित अस्त्रास्त्र पकड़े गए हैं जिनका देश की आन्तरिक शांति का नाश करने के लिए प्रयोग किया जा रहा है। यह एक गम्भीर समस्या है और विशेष रूप से जब आल इण्डिया मुस्लिम लीग के अध्यक्ष श्री सुलेमान सेठ ने मई में १९८० में आयोजित मुसलमानों के एक अन्तराष्ट्रीय सम्मेलन में यह बयान दिया कि भारत में प्रतिदिन सैकड़ों मुसलमानों की हत्या की जाती है तो फलस्वरूप मुरादाबाद जैसे झगड़े फूट पड़े जिससे देश की अपरिमित हानि हुई। इनके अतिरिक्त भी देश के सामने अनेक गम्भीर संकट हैं इनमें से कुछ वैधानिक प्रकार के हैं। उदाहरणार्थ हमारे विधान की धारा (१) का मैं प्रथमतः उल्लेख करूंगा विधान की पहली अनुसूची में जिसकी ओर उल्लिखित धारा में संकेत किया गया है जम्मू काश्मीर को भारत का अभिन्न अंग बतलाया गया है। किन्तु विधान की धारा ३७० के द्वारा देश के इस भू भाग को अन्य प्रदेशों के भिन्न स्वरूप दिया गया है। विधान में प्रदान किए गए बुनियादी अधिकार का यह स्पष्ट उल्लंघन है यहां बरबस ही मुझे स्व० प्रकाश वीर जी शास्त्री का स्मरण हो रहा है जिन्होंने विधान की धारा ३७० को हटाने का प्रयत्न किया था। आप लोग जानते ही हैं कि जब भी काश्मीर की समस्या का उनके सामने उल्लेख होता था तो वे कितने उद्विग्न हो उठते थे काश्मीर की यह समस्या भीतर ही भीतर सुलगती रहती है और समय समय पर देश के भीतर ही नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के सामने भी उभरती रहती है और उसका कारण यही है कि उक्त धारा में हमने उसको पृथक महत्व दे दिया है एक बार इस धारा का विधान से पूर्ण लोप हो जाए तो दुनिया इस समस्या को ऐसे ही भूल जाएगी जैसे हैदराबाद राज्य की समस्या को भूल गई है

दूसरी समस्या उन लोगों की है जो राष्ट्रीय धारा में अपने आपको समा लेने से बचने के निरन्तर प्रयत्न में है ये लोग अपने आपको अल्पसंख्यकों के रूप में प्रस्तुत करते हैं अल्पसंख्यक कौन हैं ? हमारे विधान में इसकी कहीं व्याख्या नहीं की गई है किन्तु ऐसों के प्रति हमारी उदार चित्त वृत्ति सदा तुष्टिकरण नीति के रूप में ही प्रकट होती रही है। स्वाधीनता से पूर्व परिस्थिति कुछ ऐसी बना दी गई थी कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के हमारे हर प्रयत्न को यह अल्पसंख्यक बड़ी सफलता के साथ विटो किया करते थे ब्रिटिश सरकार के साथ उनके सांठ गांठ ने अन्त में देश का विभाजन करा दिया। १९४७ के पृथक करण से यह वर्ग सन्तुष्ट न होकर अब पुनः उसी नीति का अवलम्बन कर रहा है उनके इस भयानक षड़यन्त्रकारी कार्यों को सफल बनाने में ऐसा लग रहा है कि कुछ अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियां क्रियात्मक रूप से इस वर्ग की सहायता कर रही हैं इस परिस्थिति में आर्य समाज की चुनौती उनके बहुमूल्य सर्वस्व की क्षति के रूप में प्रकट होगी।

इस सम्बन्ध में मैं कुछ ऐसे तथ्य आप के सामने प्रस्तुत करना चाहता हूं जो बड़े उग्र रूप में हमारे सामने उपस्थित हैं। हमारे चारों ओर प्रायः सभी मत प्रधान हैं (Theocratic) राष्ट्र हैं या ऐसे राष्ट्र हैं जिन्होंने साम्यवाद को स्वीकार कर लिया है हमारे देश के दो प्रदेश भी ऐसे ही हैं—एक देश के पूर्वी तट पर पश्चिम बंगाल और दूसरा देश के पश्चिमी तट पर—केरल। दोनों का प्रशासन कम्युनिस्टों के हाथों में है। पश्चिम बंगाल पूर्णतः मार्किस्ट कम्युनिस्टों के हाथों में है और केरल में कम्युनिस्ट प्रधान संयुक्त मन्त्रिमण्डल है। ईसाई नागालैंड और उसके आसपास एक तरह से गुरिल्ला ढंग की लड़ाई लड़ रहे हैं। उनका लक्ष्य है हमारे देश की पूर्वी सीमा पर एक स्वतन्त्र ईसाई राज्य की स्थापना क्या मैं अपने आर्य समाजी बन्धुओं से पूछ सकता हूं कि जब हमारी परम्परागत आर्य जीवन पद्धति तथा देश के सम्मुख इतनी भयंकर दुर्गति की स्थिति बनी हुई है तो आप राज्य या शासन के कार्यों से अपने आपको पृथक रखकर तमाशाई बने रहना पसन्द करेंगे ? शायद कुछ महानुभावों का यह तर्क होगा हम आर्य समाजी राज्य या शासन के कार्यकलापों की ओर से पूर्णतः सजग हैं और अपनी अपनी विभिन्न राजनैतिक पार्टियों के माध्यम से अपने-अपने तरीकों से काम कर रहे हैं। हम इस प्रकार के कथन से पूर्णतः सहमत हैं। परन्तु हम उनसे एक बात पूछना चाहते हैं क्या आप पार्टी के अनुशासन को महत्व देते हैं या देश के हित को ? आज तक का अनुभव यह दर्शाता है कि पार्टी के अनुशासन को ही महत्व देना पड़ा है और देश के हित की ओर से मुख मोड़ करना पड़ा है।

आज भी आर्य समाज एक प्रभावी शक्ति है इसकी प्रादेशिक सभाएं सुव्यवस्थित और संगठित हैं। मैं यह चाहता हूं कि हमारी प्रादेशिक सभाएं और अधिक सशक्त और प्रभावशाली बनें ताकि देश की कोई पार्टी राष्ट्रीय महत्व के राजनैतिक कार्यों और समस्याओं का निपटारा करते समय आर्य समाज की सम्मति की अवहेलना न कर सकें। आर्य समाज की सभी प्रादेशिक सभाओं का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे देश की समस्याओं की ओर सजग रहकर अभिरुचि लें। मैं यह नहीं कहता कि उन्हें राजनैतिक कार्यों में प्रत्यक्ष रूप से अपने आपको झोंकना चाहिए। किन्तु राजार्य सभाएं अपने पवित्र दामन और निष्कलंक कार्य पद्धति द्वारा राज्य से सम्बन्धित फैसलों को देश के हित में स्वरूप लेने के लिए प्रभावित करें। हम सभी के साथ सहकार्य करने की भावना रखते हैं। इसके लिए देशभक्ति और जीवन के मूल्यों के प्रति आस्था यही हमारी शर्त है। अफगानिस्तान तथा राष्ट्रीय संकट की वर्तमान परिस्थिति में हमारी सहानुभूति प्रधान मन्त्री के साथ रहेगी और राष्ट्रीय महत्व की समस्याओं को सुलझाने में आर्य प्रतिनिधि सभाएं अपना सहयोग देने का संकल्प करती हैं। किन्तु हम पूरी शक्ति के साथ घोषणा करते हैं कि राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की समस्या को हल करने में हमारे प्रति उदारवाद या किसी की तुष्टीकरण की ऐसी नीति का हरगिज पक्ष नहीं लेंगे जिसके फलस्वरूप कोई हमारे सिर चढ़ जाए। राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों का हल ढूंढने में हमारे सामने सदैव देश का हित तथा जीवन के उन मूल्यों का महत्व रहेगा जिसके आधार पर हमारी जनता जीती रही और जिसकी सुरक्षा में इसने अपने प्राण उत्सर्ग किये। हम विधान में जाति पिछड़ेपन या अन्य किसी कारण से दी गई सहूलतों सुविधाओं और आश्वासनों को सदा सदा के लिए बनाए रखने का घोर विरोध करते हैं। ये सभी बातें राष्ट्र के नव निर्माण में बाधक हैं। आर्थिक पिछड़ेपन को किसी भी सुविधा के लिए आधार बनाना उचित है। आर्य समाज केवल विरोध के लिए विरोध की दृष्टि से किसी वर्ग को दी जाने वाली सुविधा का विरोध

(शेष पृष्ठ ८ पर)

लाला लाजपतराय के जीवन पर एक प्रसिद्ध नाटक—

शेरे पंजाब लाला लाजपतराय

ले०—श्री जी० एस० खोसला

श्री गुरबखशसिंह खोसला पंजाब के जाने माने नाटककार हैं वे भारतीय रेलवे के जनरल मैनेजर के उच्च पद से रिटायर हुए हैं किन्तु जीविका उपार्जन के अतिरिक्त व पंजाबी रंगमंच में प्रारम्भ से गहरी रुचि रखते रहे हैं। वे पंजाबी थियेटर के संस्थापक हैं और उनके द्वारा रचित नाटक जैसे कि बुत बैठी थी—बाद बरनड शाह के पिगमेलियन का पंजाबी रूपान्तर सर्वप्रिय सिद्ध हुए हैं।

अब उन्होंने शेरे पंजाब लाला लाजपतराय की जीवनी पर खोज करके पंजाबी में एकांकी नाटक लिखा है इसका हिन्दी रूपान्तर गुरुकुल कांगड़ी के सहायक मुख्याधिष्ठाता श्री जितेन्द्र जी के नेतृत्व में विद्यालय विभाग के अध्यापकों द्वारा किया गया है ताकि गुरुकुल के ब्रह्मचारी इस नाटक को जनता के समक्ष प्रस्तुत करके शेरे पंजाब को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करें और अन्य नाटककार इसी प्रकार स्वामी श्रद्धानन्द शहीद लेखराम इत्यादि पर नाटक रचने की प्रेरणा पाएं। आर्य मर्यादा अपने पाठकों के सम्मुख उपरोक्त नाटक शृंखलाबद्ध रूप से प्रस्तुत करने में गर्व अनुभव करता है।

सम्पादक

ओ३म्

पात्र परिचय

पहली झांकी

लाजपतराय	आयु १८ वर्ष
किशनदास	आयु १५ वर्ष
सेवक	
गुरुदत्त	
राजाराम	
डाकिया	

प्रथम अंक सन १८८३ ई० समय दोपहर का। मास जुलाई का तीन विद्यार्थियों का सम्मिलित कमरा जिसकी लम्बाई चौड़ाई ६० मी० व ४० मी० है। दो चारपाईयों पर साधारण बिस्तरे बिछे हुये थे। इनके साथ दीवार पर लगी खूंटियों पर बहुत से कोट टंगे हुए थे। दीवार के साथ लगे हुए तख्तों पर पुस्तकें धरी पड़ी हुई थी। कमरे के मध्य में एक कुर्सी और एक तिपाई पड़ी है।

जब पर्दा खुलता है तो मंच खाली है। कमरे के बाहर ताला खुलने की आवाज आती है। लाजपतराय आयु १८ वर्ष बगल में हल्का सा बिस्तरा उठाए हुए कमरे के अन्दर आता है। उसके पीछे एक १५ १६ वर्ष का लड़का किशनदास सिर पर एक छोटा सा ट्रंक उठाकर ले आता है। उसके हाथ में एक पुस्तक और एक कापी है। दोनों दरवाजे के पास जूतियां उतार देते हैं।

सिर पर फैल्ट कैप है। साधारण पहरावा घोड़ों तक लम्बा बन्द गले का कोट तंग पायजामा और देसी जूती पहनी हुई है।

किशनदास (माथे का पसीना पोंछते हुए) आपका कोट गीला है।

लाजपतराय हां मैं रेल से उतरकर टांगे के अड्डे तक आया तो ऊपर से वर्षा हो गई थी।

(कोट कमीज उतार कर खूंटी पर टांग देता है।)

किशनदास लाजपतराय जी यह ट्रंक कहां रखूं ?

लाजपतराय वहां रख दे दीवार के साथ। मैं तुझे लगवा देता हूं।

(ट्रंक रखवाता है)

किशनदास—बिस्तरा खोल दूं जी ?

लाजपत—हां खोल दे।

(दोनों मिलकर बिस्तरा खोलकर खाट पर बिछा देते हैं) और तौलिया निकाल कर लाजपतराय खूंटी पर टांगता है।

किशनदास—आप कहां कहां होकर आए हैं ?

लाजपतराय मैं कई स्थानों पर फिर कर आया हूं किशनदास! मेरठ आगरा फरूखाबाद।

किशनदास—आपने आगरे में ताज महल देखा था

लाजपत—(थोड़ा मुस्करा कर) नहीं (और चारपाई पर बैठते हुए)

ताजमहल देखने की फुरसत ही कहां थी। (आगरा प्रातः काल पहुंचा नहा धोकर आर्य समाज के कर्मचारियों के साथ बातचीत की फिर मैं सारी दुपहर अपना वक्तव्य लिखता रहा।

किशनदास—वक्तव्य क्या होता है।

लाजपत लोगों के सामने खड़े होकर जो बोला जाता उनको तकरीर या वक्तव्य कहते हैं

किशनदास—और फिर ?

लाजपत—शाम छः बजे अधिवेशन था तब उसमें मैंने अपना व्याख्यान दिया। रात के नौ बजे की गाड़ी से हम मेरठ चले गये

किशनदास—आपने अपने व्याख्यान में क्या कहा ?

लाजपत—मैंने सबको बताया कि आर्य समाज के प्रत्येक सदस्य से यह आशा की जाती है कि वह अपने लाभ की अपेक्षा जनता के कल्याण को अधिक जानें। मैंने लोगों को समाज सेवा देश भक्ति और आर्यावर्त को पुनर्जीवित करने के लिए प्रेरणा दी।

किशनदास—आपने आर्यावर्त के बारे में कुछ समझा था था

लाजपत—हां आर्य लोगों का देश हिन्दुस्तान।

किशनदास—परन्तु यह समझ नहीं सका कि पुनर्जीवित का क्या अर्थ है।

लाजपत—पुनर्जीवित का मतलब यह कि देश में फिर जान फूंक देना। फिर मैंने उनसे कहा कि यह आदर्श आपको प्यारे हैं तो इनको प्राप्त करने के लिए दिल खोलकर दान दें।

किशनदास—क्या फिर उन्होंने धन दिया ?

लाजपत—हां उस समय पांच हजार रुपया इकट्ठा हो गया।

किशनदास—आपने एक ही व्याख्यान से इतना रुपया इकट्ठा कर लिया। (और जोश में आकर) मैं आज रात आप के पास ही सोऊं ?

लाजपतराय—क्यों ?

किशनदास—मैं जागता रहूंगा और रुपए की राखी करूंगा। पिछली बारी जब आप एक हजार रु इकट्ठा करके लाए थे तब मैं सारी रात सोया नहीं था।

लाजपतराय—हां! जो समाज की अमानत है उसकी रक्षा तो करनी ही चाहिए। परन्तु इस बार रुपया मैं अपने साथ नहीं लाया रुपये की संभाल तो मेरे साथियों ने कर ली थी।

किशनदास—मुझे आज पढ़ाओगे ?

लाजपतराय—मैं आज बहुत थका हुआ हूं। परन्तु तू अचानक पढ़ने के लिए आया है। कुछ थोड़ा बहुत बता देता हूं। अलजबरा का सवाल निकालना तुझे समझाया था ना ?

किशनदास—हां जी

लाजपतराय—मैं तुझे घर के लिए सवाल दे देता हूं। ला कापी। यह चौकोन (आयत है) ए बी सी डी।

ए बी—३ इंच।

बी सी ५

सी डी=

डी बी—५

इसका क्षेत्रफल घर में निकाल कर लाना।

किशनदास पुस्तक इकट्ठा कर दूं लाजपतराय जी ? कल अलजबरा कि रेखागणित ?

लाजपत नहीं अलजबरा। तो कल ठीक है। पर तेरा ज्यामेट्री अभी बड़ी कमजोर है तूने मैट्रीकुलेशन की परीक्षा इस वर्ष देनी है।

किशनदास हां जी आप मुझे कलकत्ता यूनिवर्सिटी के योग्य बना दो।

लाजपत अभी तो चाहे जितना आदमी के अन्दर ही होता है। बाहर से थोड़ा ही ठमी जाती है मैं तेरी पूरी सहायता करूंगा। बाकी तेरी अपनी हिम्मत है।

किशनदास आपने कलकत्ता का मैट्रीकुलेशन किया था न ?

लाजपत—मैंने तो दोनों यूनिवर्सिटियों की मैट्रीकुलेशन परीक्षा पास की थी कलकत्ता और पंजाब की भी। और कलकत्ता में तो मैं प्रथम आया था।

किशनदास और पंजाब से ?

लाजपत पंजाब से तो मेरा नम्बर द्वितीय श्रेणी में आया था। १०६ विद्यार्थी परीक्षा में बैठे थे उनमें मेरा नम्बर पचपन था।

किशनदास तो फिर कलकत्ता यूनिवर्सिटि पंजाब से बढ़कर हुई न ?

लाजपत (हंसकर) यह कैसे

किशनदास (कुछ सोच कर) क्योंकि पंजाब यूनिवर्सिटी में नम्बर कठिन देते हैं।

लाजपत यह बात नहीं है कलकत्ता यूनिवर्सिटी का स्तर पंजाब से अधिक ऊंचा है इसलिए मैंने कलकत्ता यूनिवर्सिटी का मैट्रीकुलेशन करना जरूरी समझा।

किशनदास आपने कलकत्ता से प्रथम श्रेणी में पास करके पंजाब की परीक्षा में बैठ कर अपना अपमान क्यों कराया।

लाजपत मेरे पिता जी की बहुत इच्छा थी कि मैं अरबी भाषा जरूर पढ़ूं पंजाब यूनिवर्सिटी की परीक्षा के के लिए तीन विषय अधिक लेने पड़े। अरबी उर्दू विज्ञान और भूगोल। परिश्रम करना पड़ा और साथ ही मैं बीमार भी पड़ गया। मेरे माता पिता ने मेरी बहुत सेवा की थी। मुझे तो पास होने की आशा भी नहीं थी पर किसी न किसी प्रकार किनारा लग ही गया और मेरे पिता जी की बात भी रह गई।

(क्रमशः)

सन्ध्या कथा—

मनसा परिक्रमा का दूसरा मंत्र

ले०—श्री सुरशचन्द्र जी वेदालंकार एम० ए० एल० टी० १७२ आफरा बाजार गोरखपुर

ॐ

ओ दक्षिणा दिग्गिन्द्रोऽधिपति
स्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषव ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो
रक्षितृभ्यो नम इषुभ्योनम एभ्योऽस्तु ।
योऽस्मान द्वेष्टि य वयं द्विष्मस्त
वो जम्भे दध्म । अथर्व ३ २७ २

(दक्षिणा) समर्थ अथवा ऐश्वयवान होने की (दिक) दिशा है । उस दिशा मे (इन्द्र) परमैश्वर्यवान प्रभु (अधिपति) मालिक है । (तिरश्चिराजी) मर्यादा अति क्रमण न करने अथवा कुटिल चाल पर शासन करने का भाग रक्षा करने वाला है । (पितर) दूसरों का पालन पोषण करने वाले अनुभवी बजुर्ग (इषव) प्रेरक हैं । (तेभ्य) उस (अधिपतिया) ऐश्वयवान भगवान को (नम) नमस्कार हो । (रक्षितृभ्य) रक्षक भाव को (नम) नमस्कार हो (इषुभ्य) प्रेरक व सहायक भावकों को (नम) नमस्कार हो (एभ्य इन सबको (नम) नमस्कार (अस्तु) हो । (य) जो (अस्मान) हमको (द्वेष्टि) द्वेष करता है (य) जिसको (वय) हम (द्विष्म) द्वेष की भाव स देखते हैं (त) उस द्वेष भाव को (व) आपके जम्भे) वश मे (दध्म) रखते है ।

साधक न आगे बढने का निश्चय किया । विपरीत परिस्थितियो से लडते हुए वह उन्नति की ओर चलने लगा । उसने ज्ञान शक्ति ऐश्वय सम्पत्ति विद्या ममता सभी भोगो मे यथाशक्ति उन्नति का भाव पकड लिया । उसे अब ऐश्वय प्राप्त होने लगे । इस ज्ञान बल तथा लौकिक ऐश्वय प्राप्त करने के लक्ष्य का आदर्श इन्द्र है । इन्द्र शब्द का प्रयोग परमात्मा के नाम के रूप मे उल्लेख करते हुए सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास मे स्वामी जी महाराज ने लिखा है य इन्दति परमैश्वय वान भवति स इन्द्र परमेश्वर परमात्मा परम ऐश्वय मे पूर्ण है अत उसे इन्द्र कहते है । वेद के शब्दों में इन्द्र परमात्मा को कहते हैं और बतलाते है—

अहमिन्द्रो न पराजिग्य इद्धन न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन । ऋ० १० ४८ ५

मे इन्द्र हू मैं अपनी जनता को कभी हार नही सकता मैं तो मृत्यु के पञ्जे मे पडकर भी अपने का हारा हुआ नही मानता । और देखिए

इन्द्रो जयाति न पर जयाता अधिराजो राजसु राजयातै चकृत्य ईड्योव वन्द्यो पसद्यो नमस्योभवेह । अथर्व ६ ९८ १

इन्द्र आत्मवान व्यक्ति सदा विजयी होता है । वह कभी भी पराजित नही होता । वह राजाओ मे महाराज होकर सब पर शासन करता है । हे इन्द्र तू शरीर मे रहने वाले काम क्रोध आदि शत्रुओं का काटता है इसी लिए तू पूजा और नमस्कार करने योग्य है सब का आश्रय और आदर सत्कार के योग्य होता है ।

आओ हम अपने लक्ष्य इन्द्र बनने की प्रार्थना कर

इन्द्र प्रातहवामहे इन्द्र प्रयत्यध्वरे
इन्द्र सोमस्य पीतए । ऋ० १ १६ ३

प्रात काल हम इन्द्र का आह्वान कर । उत्तम ज्ञान प्रदायक यज्ञ मे भी हम इन्द्र का धारण कर आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति के लिए इन्द्र का स्मरण और इन्द्र के गुणो को धारण करते हुए हम भी इन्द्र बनें एक मत्र मे कहा है — प्र

भरिदा भूरिदेहि नो मा दभ्र भूर्या भर ।
भरि घदि इन्द्र दित्ससि

(ऋ० ४/३२।२०)

हे ऐश्वय शाली इन्द्र तू बहुत अधिक देने वाला है हमे भी बहुत दे । कम मत देना हमे धन दौलत और ऐश्वय पूरी तरह से दे दे । तू इस ससार के लिए बहुत अधिक देना चाहता है । कवि कहता है

तू दाता देता ही जाता मैं भिक्षुक
लेता ही जाता
देने की सीमा ना तेरे लेन का
कछु अन्त न मेरे ।
प्रभो उऋण कैसे मैं होऊ
किन दानो में मूल्य चुकाऊ
केवल तेरी महिमा गा गा
कर लेता मैं भी कुछ हल्का ।
चाहे कितना ऊंचा तक गाऊ
फिर भी कुछ भी पा नही पाऊ
आखो से दरिया बह जाता
रुकता कठ मूक रह जाता
न जाने केवल हू कितना
फिर भी इस मे रस है इतना
आजा मेरे दिल के राजा
आखो में बन ज्योति समाजा ।
दो शरीर हों एक प्राण हो
दो होकर भी एक जान हो ।

श्रेष्ठ ऐश्वर्य कौन से हैं ? इसका भी उल्लेख ऋग्वेद के एक मन्त्र में बडे सुन्दर ढग से किया गया है । वहा कहा है —

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्ति दक्षस्य
सुभगत्वमस्मे
पोष रयीणामरिष्टि तनूना स्वाद्मान
वाच सुदिनत्वमह्नाम ।

हे इन्द्र हमे श्रेष्ठ धन प्रदान कीजिए । क्या है वह श्रेष्ठ धन ? चित्त का उत्साह उत्तम सौभाग्य धन धान्यकी समृद्धि शरीर की नीरोगता वाणी का माधुर्य और दिनो का सुदिनत्व । यजुर्वेद मे कहा गया है —

उपहूता इह गावा उपहूता अजावय ।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो
गृहेषु न ॥
यजु ३/४३

हे इन्द्र हमारे घर गाय बकरी भेड आदि पशुओ से सदा भर रहें हैं तथा हमारे घरो मे अन्न के ढेर लगे रहे । इस प्रकार परमेश्वर सब प्रकार के ऐश्वर्यों का भडार है वह अपने ऐश्वर्यों को अनवरत रूप से बिखेर भी रहा है । जिसे उस ऐश्वयशाली प्रभु के ऐश्वय का एक कण भी भी कम ऐश्वर्य मिल जाता है वह सब के लिए महान् ऐश्वर्यशाली ही बनता है इसी लिए परमेश्वर की इन्द्र कहते हैं । ऋग्वेद में उसके ऐश्वर्यों का वर्णन करते हुए बतलाया गया है —

स्वद् विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने
वियन्ति
वनिनों न वया । ऋ० ६।१३।१

हे परमात्मन् ! हे सुन्दर ऐश्वर्य सम्पन्न जैसे वृक्ष की शाखाएं वृक्ष से निकलती हैं उसी प्रकार सब सुन्दर ऐश्वय तुम से ही विविध प्रकार से निकलते हैं । परमात्मा के इसी इन्द्र रूप को अपना आदर्श बनाता हुआ साधक अपनी साधना करता है ।

धन कमाना ऐश्वय कमाना तो ठीक है । सबसे पहले हमे सोचना है कि हम इस ऐश्वय कमाने के विचार मे कितना डूब गए—घुटने घुटने तक कमर तक या इतना डूब गए कि इस विचार से निकल ही नही सके । धन कमाने में इतना लीन हो गए कि उचित अनुचित सभी साधन अपनाने लगे । हमने चोरी करनी शुरू की डाके डाले हत्याएं करने लगे । खाद्य पदार्थों में मिलावटें करते हुए बच्चे और रोगियों तक की परवाह नही की । इस प्रकार इन्द्र स्वरूप परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग बड़ा ही दुर्गम और कुटिल है । इस मार्ग पर चलने वाले पथिक के लिए भी औषध की आवश्यकता है वह औषध पथ को भ्रष्टता से रोकने में सहायता कर सके । वह औषध की झोली ही पथिक का सहारा होगी (क्रमश)

(३ पृष्ठ का शेष)

श्री प० निरञ्जनदेव जी इतिहास केसरी जिला जालन्धर मे कार्य करेंगे और उनका केन्द्र स्थान सभा कार्यालय होगा ।

श्री प० रामनाथ जी सि० वि० जिला रोपड और जिला होशियारपुर में कार्य करेंगे और इनका केन्द्र स्थान आर्य समाज मोरिण्डा (रोपड) होगा ।

श्री सुभाष चन्द्र जी शास्त्री महोपदेशक जिला फिरोजपुर और जिला फरीदकोट मे कार्य करेंगे और इनका केन्द्र स्थान आर्य समाज लुधियाना रोड फिरोजपुर छावनी रहेगा ।

श्री प० जगदीश चन्द्र जी वसु महोपदेशक जिला लुधियाना तथा जिला भटिण्डा मे कार्य करेंगे तथा इनका केन्द्र स्थान आर्य समाज महर्षि दयानन्द बाजार लुधियाना रहेगा ।

श्री श्याम सिंह जी हितकर भजन मण्डली जिला पटियाला तथा जिला सगरूर मे कार्य करेगी तथा इनका केन्द्र स्थान आर्य समाज सगरूर होगा ।

श्री रामनाथ जी शास्त्री भजनोपदेशक जिला गुरदासपुर में कार्य करेंगे और इनका केन्द्र स्थान आर्य समाज बटाला रहेगा ।

श्री तुलसी देव वायणाचार्य जिला कपूरथला में कार्य करेंगे । इनका केन्द्र स्थान आर्यसमाज फगवाडा रहेगा ।

श्री हजारी लाल जी भजनोपदेशक जिला अमृतसर मे कार्य करेंगे और इन का केन्द्र स्थान आर्य समाज श्रद्धानन्द बाजार अमृतसर रहेगा ।

यह सभी बन्धु अपनी साप्ताहिक रिपोर्ट सभाकार्यालय को प्रति सप्ताह भेजा करेंगे ।

—रामचन्द्र जावेद
सभा मन्त्री

सम्पादक के नाम पत्र—

क्या कोई इन चुनौतियों का समुचित उत्तर देगा ?

सरिता दिसम्बर-८०(प्रथम) में महर्षि दयानन्द एवं सत्यार्थ प्रकाश विषयक उनके विचारों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करते हुए आशा करता हूं कि आपका पत्र इस अनर्गल प्रलाप का उत्तर अवश्य देगा। मैंने पूर्व भी यह सुझाव दिया था कि आर्यसमाज की ओर से एक ऐसा विभाग(सैल) स्थापित किया जाना चाहिए कि जो इस जैसे अनर्गल प्रलापों का प्रामाणिक युक्ति युक्त उत्तर दे। पता नहीं आर्यसमाज कब तक इन चुनौतियों को सहन करता रहेगा। सत्य है—

समय दे रहा है चुनौती पे चुनौतियां, देखता हूं पिए जा रहे है लोग।
कैसा पहरा है चौकीदारों का,
बाग बरबाद किए जा रहे हैं लोग॥

क्या कोई समय की चुनौती का समुचित उत्तर देगा ?

आपत्तिजनक अंश—

'प्राचीन भारत में गोहत्या एवं गोमांसाहार'

लेखक सुरेन्द्र शर्मा 'अज्ञात

"स्वामी दयानन्द ने पृष्ठ १३७ 'सत्यार्थ प्रकाश में इसी गोमेध के विषय में लिखा है जहां गोमेधादिक यज्ञ लिखे हैं, वहां पशुओं में नरों का मारना ही लिखा है, जैसे पुष्ट बैल आदि नरों में हैं जैसे वो गादि नहीं होते, जो बन्ध्या गाय होती है, उसका भी गोमेध में मारना लिखा है।

'देखें सत्यार्थ प्रकाश १८७५ पृ १०१, दयानन्द भाष्य मिलावली, पृ. २८ पर उद्धृत)'

आर्यसमाज को इस पर चुप्पी नहीं साध लेनी चाहिए। विनीत —यशपाल आर्य बन्धु मुरादाबाद

वार्षिक निर्वाचन

आर्य समाज बम्बई की वार्षिक साधारण सभा दिनांक २८ १२ ८० को सम्पन्न हुई जिसमे आगामी वर्ष के लिए निम्नलिखित पदाधिकारी सर्वसम्मति से निर्वाचित हुए।

प्रधान-श्री जयपतराय आर्य, उपप्रधान-श्री गोविन्द भाई नन्दवाना श्री ज्ञाठलाल शर्मा मन्त्री-श्री राजेन्द्रनाथ पाडेय उपमन्त्री-श्री करतमदास राणा, कोषाध्यक्ष श्री चन्द्रकान्त भट्ट (राजा) सहकोषाध्यक्ष-श्री जयनप्रसाद गौतम, पुस्तकाध्यक्ष श्री देवेश्वर शर्मा।

—जयपतराय आर्य

लुधियाना मे मकर सक्रान्ति का पर्व

१- स्त्री आर्य समाज साबुन बाजार २४-२ ८१ को मकर सक्राति का पर्व बडी धूमधाम एवं उत्साह से मनाया गया। पर्व की विशेष आहुतियां भी दी गई। श्री राम कुमार जी शास्त्री का पर्व के महत्व पर सारगर्भित प्रवचन हुआ। मान्य विद्यावती जी के रसीले भजनो से सब आनन्दित हुए। कार्यक्रम की समाप्ति पर सभी को ऋतुनुकूल रेवडियो का प्रसाद बाटा गया सभी तरह से कार्यक्रम सुन्दर रहा।

२ जेठमलानी के प्रस्ताव के विरोध मे भी सर्वसम्मति से सब बहिनो ने प्रस्ताव पास किया।

—मन्त्री सत्या देवी आर्या

(प्रथम पृष्ठ का शेष)

एक हो जाओ, अपने कर्त्तव्य को पहचानो, तुम्हारा एक ही धर्म है वह है अपना राष्ट्र। इसे मिलकर विदेशियो के चगुल से मुक्ति दिलाओ। इस सिंह गर्जना से अंग्रेज सरकार घबरा उठी कि अगर भारत देश के सभी धर्मावलम्बी इकट्ठे हो गये तो हमे एक दम भारत छोड कर जाना पडेगा। उनका सिद्धान्त ही यही था कि फूट डालो और राज करो। अंग्रेज सरकार की नीति के कारण ही आगे चलकर पाकिस्तान बना जातिवाद को बढावा मिला, और आज भी देश की एकता को खण्डित करने के लिए वही विचार धारा काम कर रही है।

लाला जी ने वहा १८९३ में बगाल व मध्य प्रदेश के अकाल पीडितो की सहायता की, वहा ईसाई पादरियो द्वारा अनाथ बच्चो को ईसाई बनाने से रोकने के लिए वहां अनाथाश्रम की स्थापना करवाई, उसके बाद कांगडा भूकम्प के पीडितो की सहायता के लिए भी कोई कसर न उठा रखी।

लाला जी साथ ही साथ राजनीति मे भी बढ़ चढकर भाग ले रहे थे, सरकार की उन पर गहरी नजर रहने लगी। अंग्रेज सरकार ने लाहौर मे रानी विक्टोरिया का बुत लगाना चाहा। लाला जी न इसका खुल्लम-खुल्ला विरोध किया, जिसके कारण लाला जी को गिरफ्तार कर लिया गया।

१९०५ मे जब बग आन्दोलन शुरू हुआ। इसका नेतृत्व लाला लाजपतराय जी ने किया। सरकार ने इन्हे गिरफ्तार कर मांडले जेल भेज दिया। परन्तु लाला जी अब सार पजाब के नही सारे देश के लोकप्रिय नेता बन चुके थे। इस डर से कि जनता विद्रोह न कर बैठे उन्हे जेल से बाद मे छोड दिया गया। इसके बाद यही रहा कभी लाला जी को पकड लिया जाता था और कभी छोड दिया जाता था। लाला जी की सिंह गर्जना से अग्रेज सरकार घबरा उठती थी। लाला जी सारे देश मे 'शेरे पजाब के नाम से प्रसिद्ध हो गए। सन् १९२८ मे साईमन कमीशन भारत आया। जहां भी वह कमीशन जाता था, साईमन कमीशन गो बैक के नारे लगाए जाते थे, विरोध में जलूस निकाले जाते थे जब वह कमीशन लाहौर मे आया, इस जलूस का नेतृत्व लाला लाजपतराय जी ने किया, पुलिस ने जलूस को तितर-बितर करने के लिए लाला जी पर लाठियों की बौछार कर दी जिससे उनका सारा शरीर क्षत-विक्षत हो गया। जिसके परिणाम स्वरूप १७ नवम्बर १९२८ को लाला जी देश और जाति के लिए बलिदान हो गये।

विश्व के आर्यों से अपील

महर्षि दयानन्द निर्वाण स्मारक न्यास अजमेर

आर्य जनता से महर्षि दयानन्द निर्वाण स्मारक न्यास हेतु अपील करते हुए प्रसन्नता है कि न्यास के मन्त्री ने अपने अथक प्रयास तथा स्थानीय व्यक्तियो एवं सगठनों के सहयोग से अजमेर स्थित भिनाय कोठी को लेकर एक सुन्दर एव आकर्षक भवन बना दिया है। मैंने स्वय अजमेर जाकर (भिनाय कोठी) महर्षि के निर्वाण स्मारक को देखा है। अब आवश्यकता है कि स्मारक के सामने का भूखण्ड भी प्राप्त किया जाए और स्मारक का विस्तार किया जा सके।

इसके लिए धनी मानी एवं श्रद्धालु आर्य जनता से अपील है कि महर्षि दयानन्द स्मारक न्यास को अधिक से अधिक सहयोग प्रदान करें। अपनी राशि सीधे मन्त्री दयानन्द स्मारक न्यास जयपुर रोड, अजमेर को भेजें।

—रामगोपाल शालवाले प्रधान सार्वदेशिक सभा दिल्ली।

विश्ववेद परिषद् चण्डीगढ के डा भारतीय प्रधान निर्वाचित

मकर पूर्णिमा पर २१ १२ ८० को श्री नारायण दास जी तेल मिल वालो के गृह निवास १९९९ सै ३३ डी० मे विश्ववेद परिषद् की ओर से वेद गोष्ठी के अवसर पर जबकि आर्य समाज सै० ३२ और ३५ का सम्मिलित साप्ताहिक सत्सग का आयोजन भी साथ था। प्रि० बालकृष्ण दीवान वेदालकार का वेदो मे राज धर्म के विषय पर सारगर्भित प्रभावशाली प्रवचन हुआ और डा० भवानी लाल भारतीय को सर्वसम्मति से चण्डीगढ वि० वे० परिषद का प्रधान निर्वाचित किया गया। जो सौभाग्य से महर्षि दयानन्द विद्या पीठ पजाब विश्व विद्यालय चण्डीगढ के अध्यक्ष होकर पधारे हैं।

इस अवसर पर गृह पति महोदय ने परिषद् आर्य समाजो और वृद्धि सभा वैराखा को अपने सात्विक दान से भी कृतार्थ किया और अन्न शेष मोहन योग से भी सबका सत्कार किया।

—बाबुराम आर्य मन्त्री परिषद्

श्री विपिन शर्मा जी को पुत्र शोक

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के साहित्य विभाग के व्यवस्थापक श्री विपिन शर्मा जी के पुत्र जिसकी आयु लगभग ११ महीने थी का आकस्मिक निधन हो गया है। इस हृदय विदारक घटना से सभा के सभी कर्मचारियों को बड़ा दु ख हुआ। लड़का बड़ा होनहार था परन्तु पाच छः डाक्टर भी इकट्ठे होकर उसे बचा न सके। परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वह विपिन शर्मा जी, उनकी धर्मपत्नी तथा उनके परिवार को इस महान दु ख का सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

आर्य समाज कठुआ के समाचार

श्री राजेन्द्रनाथ जी महाजन मैनेजर डी० ए० वी० मिडल स्कूल व सदस्य आर्य समाज कठुआ के निधन पर हार्दिक दु ख प्रकट करता हैं और उनकी आत्मा शान्ति के लिए तथा परिवार के सदस्यो को दु ख को सहन करने की शक्ति की ईश्वर से प्रार्थना करता है।

२ किश्तवाड व अन्य स्थानो पर अग्निकाड के हानि पर गहरा दुख प्रकट करता है और शेख अब्दुल्ला की सरकार से प्रार्थना है कि अपराधियो को पकडने और उचित दण्ड देने के लिए प्रयत्न करें ताकि आप जनता के जान व माल की सुरक्षा का विश्वास पैदा हो सके और सरकार पर जान बूझकर ल परवाही का दाग न लगे।

जिन लोगो को इन घटनाओ से हानि हुई है उन्हे तुरन्त हर प्रकार से उचित सहायता प्रदान करे।

३ आर्य प्रतिनिधि सभा जम्मू कश्मीर से अनुरोध करता है कि वह किश्तवाड तथा अन्य जगहो मे अग्निकाड से पीडित लोगो की सहायता के लिए योजना बनाये आर्य समाज कठुआ हर तरह से योगदान देने के लिए तैयार है।

४, स्व० राजेन्द्रनाथ महाजन जी की रस्म क्रिया पर उनके परिवार न ११ सौ रुपए दान दिया।

—मन्त्री आर्यसमाज कठुआ

दक्षिण भारतीय सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी समारोह की तिथियों परिवर्तन

अन्तर्राष्ट्रीय वेद प्रतिष्ठान हैदराबाद द्वारा ८ जनवरी १९८१ से ११ जनवरी १९८१ तक आयोजित सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी समारोह राज्य सरकार द्वारा विद्यालयों के अवकाश रद्द किए जाने के कारण इन तिथियों में स्थगित कर दिया गया है अब यह समारोह ग्रीष्मावकाश के दिनों में ७ मई १९८१ से १ मई १९८१ तक हैदराबाद में पूरे उत्साह से मनाया जाएगा

समारोह के संयोजक प० वेदव्रत ने राज्य सरकार द्वारा आकस्मिक रूप से उठाए गए शिक्षा विभाग के इस पग पर खेद व्यक्त किया है आपने सरकार से मांग की है कि परम्परागत अवकाशों में यदि परिवर्तन करना हो तो एक वर्ष पूर्व इस प्रकार की घोषणा की जानी चाहिए। जिससे इन समारोहों को आर्थिक क्षति न उठानी पड़े

—वसुकान्त आर्य

गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन हीरक जयन्ती समारोह

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन (मथुरा) का चिर प्रतीक्षित ९६वां वार्षिकोत्सव दिनांक ४ ५ ६ तथा ७ फरवरी १९८१ तदनुसार माघ कृष्णा २ से माघ कृष्णा ३ सम्वत् २०३७ बुधवार से शनिवार तक हीरक जयन्ती के रूप में समारोह पूर्वक कुलभूमि में सोत्साह आयोजित किया जा रहा है

उत्सव में आर्य जगत के मूर्धन्य नेता केन्द्रीय एवं प्रान्तीय स्तर के मन्त्री उच्चकोटि के साधु सन्यासी महोपदेशक एवं भजनोपदेशक पधार रहे हैं

सुरेन्द्र आर्य
मुख्य अधिष्ठाता

(४ पृष्ठ का शेष)

नहीं कर रहा हूं हम किसी को सुविधा से वंचित करने की दृष्टि से भी इन बातों का विरोध नहीं कर रहे हैं हमारे विरोध का कारण यह है कि जाति के आधार पर दी जाने वाली ये सुविधाएं और रियायतें हमारी जनता में एक संगठित राष्ट्र के निर्माण की भावना के मार्ग में अब तक बाधक बनी हुई हैं और जब तक यह नीति प्रचलित रहेगी एक संगठित राष्ट्र के निर्माण में रुकावट बनी रहेगी

उपसंहार से पूर्व मैं आपके सामने दो महत्वपूर्ण सुझाव रखना चाहता हूं और आशा करता हूं कि आप इन पर अमल करेंगे

१ आर्य प्रतिनिधि सभाएं अपना ध्यान व संगठनात्मक कार्य के कार्यक्रम उत्साह से करते हुए आध्यात्मिक कार्य सिद्धान्तों का जिन्हें महर्षि ने हमारे लिए निर्धारित किया है प्रचार करते रहें और साथ ही साथ राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार गोष्ठियों (सेमीनारों) का आयोजन करें और उनके विषय हों :

१ एकेश्वरवाद
२ जन्मादि वाद और
३ मोक्ष की उपयोगिता

२ राज्य सभाओं को व्यवस्थित करके उनके द्वारा आर्य के राष्ट्रीय महत्व वाले कार्यक्रमों का सफलता के साथ निरीक्षण किया जाए तथा निम्न विषयों पर विचार गोष्ठियों का आयोजन किया जाए

१ प्रजातन्त्र पश्चिमी और भारतीय
२ सामाजिक व्यवस्था पश्चिमी और भारतीय

मैं पुनः एक बार सबके प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हुआ अपना भाषण समाप्त करता हूं

आर्यमर्यादा में विज्ञापन देकर लाभ उठाए

श्री वीरेन्द्र जी सम्पादक तथा प्रकाशक द्वारा जगद्गुरु प्रिंटिंग प्रेस जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय गुरुदत्त भवन चौक किशनपुरा जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र जालन्धर

वार्षिकशुल्क 15) वर्ष 13, अक 54 20 माघ सम्वत् 2037, तदनुसार 1 फरवरी 1981 का अक दयानन्दाब्द 156

आर्यमर्यादा की लोकप्रियता

सम्पादक के नाम पाठको के पत्र—

आर्य मर्यादा दिन प्रतिदिन उन्नति कर रहा है। ऐसे लेख समय समय पर आर्य मर्यादा मे प्रकाशित किये जाते है जो आर्य जनता का मार्ग दर्शन करते है। प्रत्येक महापुरुष तथा आर्य नेताओ के जीवनो पर प्रकाश डालते हुए प्रेरणा दायक लेख इस पत्रिका में प्रकाशित होते है साथ ही साप्ताहिक सत्सगो मे पढकर सुनाने योग्य आध्यात्मिक लेख भी इस पत्रिका मे दिए जाते है।

श्री बी० एस मण्डा प्रधान आर्य समाज अररा कालोनी भोपाल लिखते है कि पिछला अक आर्य मर्यादा का अभी तक नही मिला हम आर्य मर्यादा की बडी बेकरारी से इन्तजार करते है क्योकि साप्ताहिक सत्सग में हम आर्य मर्यादा के लेख पढकर सुनाते है। इसलिए अक पुन भेज दे

श्री शिवराम जी बहल (भू० पू० प्रधान आर्य समाज लोअर बाजार शिमला) बल माग मण्डी नगर (हि० प्र०) से लिखते है कि

मुझे हर्ष है अब आर्य मर्यादा मे ऐसे लेख भी आ रहे है जिनके पढने से जागृति पैदा होती है और यदि नवयुवक पढे तो उनका स्वभाव बदल जाता है। २१ १२ ८१ के अक मे इस्लाम की शिक्षा क्या है? महात्मा गाधी के नाम श्री देवेश्वर सिद्धान्तालकार के पत्र। तथा १८ १ ८१ के अक मे वीतराग महान तार्किक स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के सम्बन्ध में लिखे लेख बडे प्रभावशाली है। आशा है आप ऐसे ही लेखो से जन मानस तृप्ति करते रहेगे

मैं १९५७ से आर्य मर्यादा को पढ रहा हू पहले जब श्री प रतो प्रसाद जी के उपरान्त स्व० श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती सम्पादक थे तब ऐसे लेख आते थे।

इसी प्रकार से और भी कई पत्र पाठको के आर्य मर्यादा के सम्बन्ध मे आये है हम प्रयत्न कर रहे है कि आर्य मर्यादा को और भी लोकप्रिय बनाया जाए। परन्तु यह कार्य तभी सम्भव हो सकेगा जब आर्य मर्यादा के विद्वान लेखक जीवनोपयोगी सामग्री लिखकर हमें भेजने की कृपा करेंगे। इसलिए मेरी सभी सुयोग्य विद्वान् लेखको से प्रार्थना है कि अपने सारगर्भित लेख समय समय पर हमें भेजने की कृपा अवश्य करें।

—सम्पादक

9 फरवरी से पंजाब में जनगणना आरम्भ हो रही है सभी आर्य बन्धु सावधान रहें

पंजाब के सभी आर्य बन्धुओ से निवेदन है कि ९ फरवरी से पंजाब में जनगणना आरम्भ हो रही है। सभी आर्य बन्धुओ का यह कर्तव्य है कि वह अपने आस पास रहने वाले लोगो को सावधान करें कि उनकी जनगणना ठीक हो आर्य बन्धु समय निकाल कर अपने आस पास के क्षेत्रो में भी सम्पर्क करें क्योकि पढे लिखे लोगो मे तो मन्दिर के द्वार भी प्रचार हो सकता है परन्तु देहात मे नही। अभी भी बहुत सी महिलाएं व बहनें अपनी भाषा उर्दू व पंजाबी लिखवा देती है, जाकर उन्हे समझाए कि वह अपनी मातृ भाषा हिन्दी लिखवाए और धर्म आर्य (हिन्दू) लिखवाए

आर्य बन्धुओ अगर अब आप चूक गए और अब भी गफलत की तो फिर यह मौका दस वर्ष तक हाथ नही आएगा यह समय सोने का नही जागने का है सावधानी से काम करे किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

न समझोगे तो मिट जाओगे ए हिन्दोस्तां वालो
तुम्हारी दास्तां तक भी न होगी दास्तानो मे

अगर अब भी आर्य बन्धु न सम्भले तो फिर ऐसा मौका कठिनता से हाथ आएगा। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के सभी उपदेशक जनगणना का प्रचार कार्य कर रहे है। सभी बन्धु उन्हें अपना सहयोग दें और स्वयं भी कार्य करें।

जौनपुर में आर्यसमाज के कार्यकर्त्ताओं की गिरफ्तारियां

जौनपुर और शाहगज मे ईद मेला उत्सव के जलूस पर दंगा हो जाने से आर्य समाज के प्रधान श्री बाबूराम जी तथा अन्य ९४ कार्यकर्ताओ की गिरफ्तारी के समाचार से सार्वदेशिक सभा के प्रधान माननीय श्री लाला रामगोपाल शालवाले ने उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री तथा केन्द्रीय गृहमन्त्री ज्ञानी जैलसिंह जी को तार तथा पत्र लिखकर मांग की है कि इस काण्ड की न्यायिक जाच कराई जाए उन्होने कहा कि जिलाधीश ने बिना सोचे समझे इस प्रकार के साम्प्रदायिक जलूस की अनुमति दे दी जो पहले वहां कभी नही निकला था। उन्होने स्पष्ट किया कि जलूस वालो ने साम्प्रदायिकता को बढाने का कार्य किया और झगडा हो गया।

श्री शालवाले ने पुलिस द्वारा एक तरफा गिरफ्तारियो की निन्दा करते हुए आर्य समाज के सम्मानित नागरिको की तुरन्त रिहाई की मांग की और सरकार से न्यायिक जांच कराने का अनुरोध किया। यह स्मरणीय है कि आर्य समाज के प्रधान श्री बाबूराम व अन्य गिरफ्तारियो के विरोध में जौनपुर शाहगज में हडताल की गई।

कठोपनिषद—नचिकेता की अमर कहानी (द्वितीय भाग)

यमाचार्य द्वारा आत्मा-परमात्मा का वर्णन

(लेखक—डा सत्यव्रत सिद्धांतालंकार)

ओ३म्

(गतांक से आगे)

जहा हम नाना देखते हैं वहां गहरे में चले जाये तो नाना ही एकता की तरफ खींच जाती है। प्रकृति के पदार्थ नाना हैं अनेक हैं परन्तु उनके कारण की खोज की जाए तो सब एक हो जाते हैं। कोई समय था जब भारत के दार्शनिक पांच तत्व मानते थे—पृथिवी जल अग्नि वायु तथा आकाश। यह उनके विचार का तरीका था। पश्चिम के वैज्ञानिकों ने खोजा तो पहले उन्होंने ११२ तत्व खोजे ऐसे तत्व जो शुद्ध कहे जा सकते थे ये नाना थे परन्तु खोज चलती चली गई अब ३ तत्व माने जा रहे हैं—इलैक्ट्रोन प्रोटोन न्यूट्रोन—ये भी सिर्फ विद्युत के रूप हैं। भौतिक जगत् मे अनेकता मे से एकता को पा लिया गया है। इसी प्रकार आध्यात्मिक जगत में भी अनेकता नहीं है—एक ब्रह्म ही सबत्र व्याप्त है। व्यक्ति परिवार समाज देश संसार का भला ही एकता के दर्शन से ही हो सकता है जब हम नाना को अनेकता को देखते हैं—य इह नानेव पश्यति—तब मत्यु के सिवाय कुछ हाथ नहीं आता—मत्योः स मत्यु माप्नोति। जीवन का गुर एकता मे है मत्यु का माग अनेकता म है। इस मे सन्देह नहीं कि ऊपरी तौर पर देखने मे हमे सब बिखरे दिखाई देते हैं परन्तु बिखरेपन को दखन मे मत्यु है गहराई में जाकर देखे तो बिखरे मोती भौतिक तथा अध्यात्म के सूत्र मे पिरोए हुए हैं—अनेकता मे एकता का सूत्र देखने वाला जीवन के रहस्य को समझता है। ११।

सृष्टि मे परमात्मा का दर्शन तभी होता है जब नानात्व अनेकता की जगह एकता का दर्शन हो। परमात्मा को योग दर्शन मे पुरुष विशेष कहा है—क्लेश कर्म विपाकाशयै अपरामृष्ट पुरुष विशेष ईश्वर। वह परम विशेष कहा है? यमाचार्य कहते हैं कि ईश्वर—पुरुष विशेष मानव शरीर मे ही बैठा है मध्य आत्मनि तिष्ठति—वह कहीं दूर नहीं अपने भीतर ही विद्यमान है उसे ढूंढने के लिए बाहर नहीं जाना पड़ता अपने भीतर जाना होता है। आत्मनि का अर्थ है शरीर मे भी है आत्मा मे भी है। शरीर म भी परमात्मा के दर्शन होते हैं आत्मा मे भी। कसे? जसे मुट्ठी मे चारो तरफ से घिरा हुआ अंगुष्ठमात्र—अर्थात अंगूठे जितना। शरीर या आत्मा मे सारा परमात्मा कस समा जाएगा—मध्य आत्मनि तिष्ठति कसे घटेगा? हम अपने शरीर या आत्मा मे परमात्मा के दिव्य स्वरूप को जान पाते हैं वह ऐसा ही है मानो हमने उसका अंगूठा मात्र पकड़ लिया यह ठीक ऐसे है जसे बालक अपने पिता की अंगुली पकड़ कर समझ लेता है कि उस ने अपने पिता को—सम्पूर्ण पिता को—पकड़ कर उसका सहारा ले लिया।

परमात्मा मानव के हृदय मे अंगूठे के बराबर विद्यमान है—यह यमाचार्य का कथन है। इसका भावार्थ समझ लेना चाहिए। इसमे दो बातें कही गई हैं। पहली यह कि वह अंगुष्ठ मात्र है दूसरी यह कि वह हृदय मे है। परमात्मा तथा आत्मा को उपनिषदों मे ज्योति रूप कहा गया है जसे ज्योति छोटी हो बड़ी हो दीपक की बत्ती के बराबर हो या मशाल जैसी हो वह सारे मकान को प्रकाशित कर देती है वैसे ही आत्मा अंगुष्ठमात्र भी क्यों न हो सम्पूर्ण शरीर में चैतन्य भाव संचारित कर देता है। अंगुष्ठमात्र का यह अथ नहीं है कि उसका परिमाण अंगूठे जितना है। अगर वह अंगूठे जितना हो तब वह भौतिक हो जाता है आध्यात्मिक नहीं रहता अंगुष्ठमात्र शब्द का यहां प्रयोग सिर्फ यह समझने के लिए है कि परमात्मा का थोड़ा सा भी ज्ञान सम्पूर्ण ज्ञान के बराबर है। परमात्मा का हृदय में निवास है—यह कहने का इतना ही अथ है कि जिस प्रकार हम कहते हैं कि मेरे हृदय में प्रेम है द्वेष है इसी प्रकार परमात्मा का भाव भी हृदय मे होता है।

परमात्मा भूत तथा भविष्यत का शासक है—ईशान भूतभव्यस्य। संसार के हर पदाथ मे वह विद्यमान है हर वस्तु का स्वामी है। संसार से किसी न किसी समय ग्लानि हो जाती है परन्तु जिसके सम्बन्ध मे यह जान लिया जाए कि वह भगवान हर वस्तु का स्वामी है उसके प्रति ग्लानि नहीं हो सकती—न ततो विजुगुप्सते। हे नचिकेता यही वह ब्रह्म है जिसके प्रति तूने पूछा था—एतद् वै तत् २१।

वह परमात्मा जिसे यमाचार्य ने अभी आत्मा में विद्यमान अंगुष्ठमात्र पुरुष कहा ऐसी ज्योति है जिसमें धुए का नामोनिशान नहीं—ज्योतिरिव अधूमक। धुए के बिना ज्योति का क्या अर्थ है? हम जहां भी आग जलाते हैं वहा आग के साथ धुआं भी होता है। दीए की लौ में उसी रसोई की आग मे धुआं जहां जहां आग हो वहां वहां धुआं परन्तु परमात्मा एक ऐसी ज्योति है जहा उस ज्योति को मद्धम करने या मिटा देने वाला धुआं नहीं है। ज्योति के साथ धुए का क्यो साहचर्य दिखाई देता है? ऐसा इसलिए दिखलाई देता है क्योंकि लकड़ी गीली होती है उसमे पानी होता है। आग का काम ऊपर जाना पानी का काम नीचे जाना है परमात्म ज्योति आग के समान है वह ऊपर ही ऊपर ले जाती है वह धूम सहित ज्योति के समान नहीं है—वह अधूमक ज्योति है निर्मल ज्योति शुद्ध ज्योति। वह भूत तथा भविष्यत का स्वामी है ईशानो भूतभव्यस्य वही आज है वही कल होगा वह सनातन है—स एवाद्य स उ श्वः। हे नचिकेता यही वह ब्रह्म है जिसके प्रति तूने पूछा था—एतद वैतत् । १३।

वह एक है परन्तु अनेक दिखाई देता है। जिस प्रकार ऊंचे दुर्गम शिखर पर बरसा हुआ पानी—यथा उदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतो के भिन्न भिन्न मार्गो मे भागता फिरता है—पर्वतेषु विधावति परन्तु पानी भिन्न नहीं होता एक ही होता है भिन्न भिन्न धारों में वह भिन्न भिन्न दिखलाई देता है, इसी प्रकार परमात्मा की सृष्टि में प्रकृति तथा शक्ति के भिन्न भिन्न रूपों को देखकर—एवं धर्मान् पृथक् पश्यन्—मनुष्य सृष्टि में व्याप रही एकता के सूत्र को भुलाकर पृथकता अनेकता के पीछे भागा फिरता है—तान एव अनुधावति—यद्यपि मूल रूप में एक ही शक्ति काम कर रही होती है। १४।

जैसे शुद्ध जल मे शुद्ध जल मिला दिया जाए तो वह शुद्ध यथार्थ वैसा ही बना रहता है—यथोदक शुद्ध आसिक्तम् तादृगेव भवति और अशुद्ध मे मिला दिया जाए तो अशुद्ध हो जाता है इसी प्रकार हे गौतमवंशीय नचिकेता ज्ञान-कार व्यक्ति को एव मुने विजानत समझ लेना चाहिए कि शुद्ध आत्मा का परमात्मा से सम्पर्क होगा तो आत्मा भी शुद्ध रहेगा। शुद्ध आत्मा का अशुद्ध प्रकृति से सम्पर्क होगा तो आत्मा में अशुद्धता आ जाएगी—आत्मा भवति गौतम।

हम प्रकृति के विषयो में फसे रहते हैं इसलिए आत्मा पर विषयो की बात नाए ही छायी रहती हैं। अगर विषयों को छोड कर परमात्मा के ध्यान जीवन बिताने लग तो परमात्मा के रूप हमारे जीवन में उतरने लगेंगे। १५।

(क्रमश)

कुंवर साहब के प्रति—

ले०—कविवर प्रणव शास्त्री एम० ए० फिरोजाबाद (उ० प्र०)

ओ३म्

भारतीय संस्कृति के पावन पुजारी रहे
मातृ भूमि भारत के वीर वीर लाल थे।
व्याख्यान कला के कुशल जादू भर जाल—
हार मानवार भाषण में माने थे निशान थे।
राष्ट्रीय भावना के भास्कर थे के अध्ययन
नीति रीति प्रीति के प्रचारक कमाल थे।
सजल सितारे हिन्दी हिन्दी के अनूठे भक्त
भारत प्रसिद्ध श्री कुंवर सुखलाल थे

देव दयानन्द के भक्त अनुराग रत्त
अमर कीर्ति आकरी क सागर पाताल को।
आर्य समाज के जहाज के जो कर्णधार
बार में भी धारे रहे पतवार हाल को।
शास्त्रार्थ समर मध्य अकुय चरण थे
चरखा प्रसिद्ध को विरोधियों के काल को।
प्रणव प्रणाम होवे आज जाति का प्रकाम
स्वीकृत स्वर्गीय श्री कुंवर सुखलाल को।

—

बाल मजदूर : राष्ट्र के माथे पर कलंक

हमारे देश के निर्धन परिवारों के बच्चों का चाहे वे शहरों में रहते हो या गांवों में, बचपन होता ही नहीं। बेचारे बचपन से ही काम करने लग जाते हैं और इस प्रकार उस आयु में जब सम्पन्न वर्ग के उनके हम उम्र बच्चे खेलने-खाने और पढ़ने-लिखने में समय व्यतीत करते हैं। इन बेचारों को अपने परिवार के प्रौढ़ सदस्यों की भांति ८-१० घण्टे कड़ी मेहनत कर अपने परिवार का कमाऊ सदस्य बनने को विवश होना पड़ता है।

गांवों में इन अभागे बच्चों को लकड़ी काटते बोझ ढोते या मुश्किल के काम करते देखा जा सकता है और शहरों में ये हैं घरों या दुकानों में बर्तन साफ करते झाड़ू-बुहारी लगाते या मजदूरी करते देखा जा सकता है।

असमय में ही बूढ़े हो जाने वाले या बुरी संगत में पड़कर आवारा और अपराधी बन जाने वाले इन बच्चों की शिक्षा और विकास के बारे में कुछ करने की फिक्र न उनके परिवार के सदस्यों को है और न सरकार को। उनके परिवार वाले तो उन्हें अपने समाज परिवार की एक आर्थिक ईकाई मानते हैं और सरकार के पास उन्हें स्वस्थ शिक्षित सुसंस्कृत तथा समाज का एक उपयोगी सदस्य बनाने के लिए न कोई योजना है न आवश्यक धन।

चूंकि समाज के प्रत्येक वर्ग द्वारा इन अभागे बच्चों की निरन्तर अवहेलना की जाती है इसलिए उनमें निहित रचनात्मक शक्ति का कभी विकास नहीं हो पाता और बड़े होकर भी वे पशुओं जैसी जिन्दगी बिताते हैं।

बाहरी दुनिया में अनभिज्ञ व गुमनाम मजदूरों जैसी जिन्दगी बिताने का विवश इन बच्चों की मूल समस्याओं और सामाजिक आर्थिक स्थितियों के उत्पन्न प्रश्न जब तक अनकहे और अनसुने रहेंगे तब तक उनकी भटकती जिन्दगियां हमारी विकास की सब यशोगाथाओं का मजाक सा उड़ाती रहेंगी।

(भारत कल्याण प्रतिष्ठान की ओर से)

पं. देव प्रकाश के प्रति—

कविवर—प्रणव शास्त्री एम० ए० फिरोजाबाद (उ० प्र०)

१

वैदिक विचारणा की प्रेरणा के प्राणाधार
प्रबल प्रचार का जो करते प्रयास थे।
डिगते नहीं थे कभी शास्त्रार्थ रण क्षेत्र में
वरद विवेता लिए सब का विश्वास था।
लेखन कला के मानो लेखराम थे द्वितीय
अद्वितीय लेखन में रखते उल्लास थे।
आर्य समाज के लौह स्तम्भ धन्य
धन्य आचार्य पण्डित श्री देवप्रकाश थे।

२

बुद्धि सब का ही लक्ष्य जो बनाते रहे
जिनसे सदा ही रहे विलग महान् थे।
अरबी और संस्कृत के पाण्डित्य की धार से ही
सदा विपक्षियों के पक्ष से उखाड़ थे।
ईसाई बहाई इस्लाम के जमातों के भी
कम वीरता से ही गुमान नाश डाले थे।
प्रणव प्रणाम सदा उनको हमारा होवे
विजय नृसिंह से जो सदा ही दहाड़े थे।

—

मेरी काशी यात्रा

ले०—श्री उत्तमचन्द जी शरर

काशी पौराणिकों का मोक्ष धाम है परन्तु आर्यों का प्रयाण स्थल। ऋषि दयानन्द ने इस पौराणिक गढ़ को अपने शास्त्र बल से कई बार पराजित किया। मेरे मन में सदा यह इच्छा रही कि शंकर के त्रिशूल पर बसी उस नगरी को देखूं जिस मूल शंकर ने अपने तर्क बल से पछाड़ा। आर्य समाज सन्तापुर ने आखिर मुझे यह अवसर प्रदान किया। मैं काशी गया तो सही परन्तु मैंने वहां अपनी कल्पना की नगरी को नहीं पाया। पश्चिम का जादू प्राय भारतीय नगरों पर छाया हुआ है और हमारे धार्मिक स्थान भी इसका अपवाद नहीं है।

आर्य समाज सन्तापुर एक समर्पित कर्मठ युवकों का समाज है। श्री ज्वलन्त कुमार जैसे विद्वान इस समाज की शोभा हैं जो करपात्री जी का खण्डन कर रहे हैं। इस समाज के अधिकारियों की शालीनता भी नवागन्तुक के मन को मोह लेती हैं उत्सव पर श्री स्वामी सत्यप्रकाश जी भी पधारे हुये थे उनके सारगर्भित तथा मौलिकता पूर्ण प्रवचन सुनना तो अपने आप में एक सौभाग्य है। इधर आर्य समाज के लिए दिन रात एक करने वाले तरुण की साक्षात प्रतिमा भाई राजेन्द्र जी भी आ गये। वहां के स्थानीय विद्वानों का भी समाज को सहयोग मिलता रहा और उत्सव पूरी आशा से सम्पन्न हुआ।

मेरी इच्छा वहां पर तीन स्थानों को देखने की विशेष थी—श्री जिज्ञासु जी का स्मारक पाणिनी विद्यालय ऋषि दयानन्द तथा पौराणिक पण्डितों का समर स्थल आनन्द बाग तथा हिन्दू यूनिवर्सिटी। मुझे पाणिनी कन्या विद्यालय को देखकर विशेष प्रसन्नता हुई। बहिन प्रज्ञा जी तथा मेधा जी के सतत् परिश्रम और तप तथा भाई ओम्प्रकाश जी वर्मा तथा अन्य आर्य पुरुषों के उदार सहयोग से यह संस्था काशी में न केवल आर्य समाज की विजय पताका बनकर फहरा रही है अपितु समस्त काशी नगरी के लिए गौरवास्पद बन चुकी है। सारे भारत से आई ५० के लगभग कन्याएं यहां व्याकरण तथा वेद और ऋषि के दर्शन का अध्ययन कर रही हैं। विद्यालय का अपना शानदार भवन दानी महानुभाव जी का यशोगान कर रहा है। आप्ता बहिन प्रज्ञा जी तथा मेधा जी की विद्वता की काशी भर में धाक है आर्य समाज इस विद्यालय पर जितना गर्व करे उपयुक्त है।

हिन्दू यूनिवर्सिटी अपनी भव्यता में महान है संसार भर के महापुरुषों के चित्र तथा वेद और गीता के वचन दीवारों पर अंकित हैं। एक और यज्ञशाला है जहां ऋषि दयानन्द का चित्र सुशोभित है सचमुच ऋषि के विरोधी भी मन में उसका सत्कार करते हैं यह ऋषि की विजय है।

आनन्द बाग उतना भव्य तो नहीं हां आर्यों के अधिकार में है करपात्री जी को इस की पीड़ा सताती है परन्तु उस स्थान के स्वामी राजा रणञ्जयसिंह आर्य समाजी हैं अतः करपात्री जी मन मसोस के रह जाते हैं।

इसके अतिरिक्त बौद्धों का सारनाथ तथा पौराणिकों का विश्वनाथ मन्दिर भी देखा परन्तु शोभा तथा भव्यता की दृष्टि से मानस मन्दिर कहीं सुन्दर है। सारा राम चरित मानस दीवारों पर अंकित है मन्दिर भी विशाल है।

विश्वनाथ मन्दिर की दीवार के साथ खड़ी मस्जिद औरङ्गजेब के अत्याचारों का मुंह बोलता चित्र है कब भारत के मुसलमान इन स्थानों को हिन्दुओं को लौटाकर मानवता का रख पाने। मेरे निरीक्षण में हैं कि काशी में ...
ज्वलन्त कुमार शास्त्री हैं बहिन प्रज्ञा जी तथा मेधा जी हैं।

—

वार्षिक निर्वाचन

महाराष्ट्र आर्य प्रतिनिधि सभा का वार्षिक अधिवेशन आर्य समाज परली वैजनाथ में रविवार दिनांक २१ दिसम्बर १९८० को श्री पं० उत्तम मुनि वानप्रस्थी प्रधान महाराष्ट्र आर्य प्रतिनिधि सभा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ जिसमें महाराष्ट्र की ४५ समाजों के प्रतिनिधियों व कार्यकर्ताओं की संख्या लगभग ४०० थी इसी अवसर पर साधारण सभा ने एक प्रस्ताव द्वारा यह भी निश्चित किया कि प्रतिनिधि सभा का कार्यालय वैदिक सेवाश्रम बाजे गांव नान्देड ४३१६०२ में रहेगा १९८०-८१ के लिये निम्नलिखित पदाधिकारी प्रतिष्ठित महानुभाव सार्वदेशिक प्रतिनिधि व अन्तरङ्ग सदस्य चुने गये—

प्रधान श्री आनन्द मुनि जी वानप्रस्थी निलंगा उपप्रधान श्री केशवरावजी होलीकर श्री आर्यमुनिजी वानप्रस्थी, श्री कृष्णचन्द्र जी मन्त्री श्री हरिश्चन्द्र गुरुजी उपमन्त्री-सचकी प्रा० कुशलदेव जी शास्त्री दौलतराम जी चड्ढा प्रा० नरदेव जी विद्याभास्कर कोषाध्यक्ष श्री सत्यपालजी राठौर पुस्तकाध्यक्ष डा० सुग्रीव जी एम० एस० सी पी० एच० डी०।

—

मदनलाल ढींगरा—एक स्वतन्त्रता सेनानी

भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन मे भारतीय नौजवानो ने बढ चढकर हिस्सा लिया और अपनी जान पर खेल कर अपनी भारत माता को परतन्त्रता की बेडियों से मुक्त कराने का प्रयास किया। अपने देश मे ही नही इंगलैंड मे जाकर अपने साहस का परिचय देते हुए अंग्रेज शासको के छक्के छुडा दिए। सन १९०७ मे स्वतन्त्रता आन्दोलन की पच्चासवीं वर्षगांठ थी और अंग्रेज शासको का आन्देशा था कि भारतीय क्रान्तिकारी हमारे विरुद्ध कोई आन्दोलन न छेड दें। अतः उन्होने देश के चोटी के नेताओ लाला लाजपतराय सरदार अजीतसिंह और बाल गंगाधर तिलक को गिरफ्तार कर लिया उन्ही दिनो कुछ क्रान्तिकारियो ने अंग्रेजो के विरुद्ध कुछ लेख लिखे थे उन्हें भी कलकत्ता मे गिरफ्तार कर लिया गया। उन दिनो वीर सावरकर ने स्वतन्त्रता संग्राम की पच्चासवी वर्षगांठ इंगलैंड मे बड़े उत्साह पूर्वक मनाई।

उधर इंगलैंड मे वीर सावरकर और उनकी गतिविधियो पर वहां की पुलिस कड़ी नजर रखे हुये था उन्हें हर समय गिरफ्तारी का भय रहता था उन्होने एक मद्रासी युवक तरनाचारी को वहां की पुलिस मे भरती करवा दिया वह पुलिस की कारवाईयो की सूचना उन्हे हर समय देता रहता था और वे अपना काम चलाये जा रहे थे

सर कर्जन वायली उन दिनो इंडिया आफिस मे अण्डर सेक्रेटरी थे। वे इंगलैंड मे भारतीय विद्यार्थियो पर कड़ी नजर रखे हुए थे वे ही भारत के वायसराय को भारतीय क्रान्तिकारियो पर सख्ती बरतने के आदेश दिया करते थे। उनके अत्याचार से तंग आकर मदनलाल ढींगरा ने कर्जन वायली को मार देने का निश्चय किया। जुलाई सन १९०९ को इम्पीरियल इन्स्टीच्यूट की एक सभा मे मदनलाल ने सर कर्जन वायली को गोली मारकर हत्या कर दी। मदनलाल गिरफ्तार कर लिया गया। इस सनसनीखेज समाचार से विश्व के क्रान्तिकारियो के हौंसले ऊंचे हो गये। मदनलाल पर मुकद्दमा चलाया गया। उसने अपने बचाव के लिए जोरदार ब्यान दिए। अंग्रेज सरकार उसे छपना नही चाहती थी पर वीर सावरकर के प्रयास से वह ब्यान १६ अगस्त १९०९ को मुख्य समाचार के रूप मे छपा। मदनलाल को फांसी की सजा दी गई। उसके अस्थि अवशेष आजादी के अठाईस वर्ष बाद भारत लाये गये सारे देश मे उसका जोर शोर से स्वागत हुआ।

आज मदनलाल ढींगरा हमारे बीच मे नही है परन्तु उसके परिश्रम और संघर्ष का सुख आने की पीढी उठा रही है आज गणतन्त्र दिवस के अवसर पर इन स्वतन्त्रता सेनानियो को हम भाव भीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते है।

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा।
हम देखते है अपना वतन मुबारिक
गुम्ब हमारे दिल के इस खाक मे मिलेंगे।
इस खाक से उठ है इस खाक में मिलेंगे
—मेरा रंग दे बसन्ती चोला
जिसे पहनकर वीर शिवा ने मां का बन्धन खोला।

— वेदराज गर्ग दिल्ली

आर्य मर्यादा के ग्राहक स्वयं बनो और दूसरों को बनाओ
आर्य समाज के सदस्य स्वयं बनो और दूसरो को बनाओ
हिन्दी भाषा—स्वयं भी पढ़ो और दूसरो को भी पढ़ाओ



श्री वीरेन्द्र जी सम्पादक तथा प्रकाशक द्वारा जयहिन्द प्रिंटिंग प्रेस जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय गुरुदत्त भवन चौक किशनपुरा जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

PART II

PROBLEMS CORRELATED WITH ABILITIES

Chapter IV

MENTAL DEFICIENCY OR FEEBLE-MINDEDNESS

Definitions

Like the poor, the feeble-minded have been, and always are, with us Yet it is only in relatively recent times that definite study has been made of this condition, and definitions formulated. Even today there is no universally accepted concept of what the condition is One reason for this is that the feeble-minded may be regarded from at least four points of view—medical, sociological, pedagogical and psychological—and unfortunately the criteria based upon each of these do not always coincide.

Medical Definition —Without digression into the history of the care and treatment of feeble-mindedness by the medical profession, we may quote Tredgold's definitions. The earlier one (1908) concludes with the statement that feeble-mindedness is a "state of mental defect . . . due to incomplete cerebral development"

This was later modified (1914) to a "state of restricted potentiality for, or arrest of, cerebral development" A definition of this same general purport was given by Berry and Gordon as recently as 1931. They say: "Mental deficiency is a partial or complete premature arrest of brain growth and development, especially of the minute cells of the brain, which occurs either before birth or at some time between birth and the age of puberty." The chief difficulty with this sort of definition is that while it may possibly be logical in theory, it has not been very well supported by experimental findings except in the case of certain pathological groups.

Sociological Definition.—The most widely quoted definition from the point of view of social adjustment is that propounded by the British Royal Commission on the Feeble-minded (1908). This has served widely as a prototype of socio-legal definitions. The Commission says that the feeble-minded are "persons who may be capable of earning a living under favorable circumstances, but are incapable

from mental defect existing from birth or from an early age (a) of competing on equal terms with their normal fellows or (b) of managing themselves and their affairs with ordinary prudence"

Tregold (1914) says: "The condition is a psychological one, although the criterion is a social one, and we may accordingly define amentia as a state of restricted potentiality for, or arrest of, cerebral development, in consequence of which the person so affected is incapable at maturity of so adapting himself to his environment or to the requirements of the community as to maintain existence independently of external support."[1]

Binet and Simon (1916), in proposing a social criterion, recognize that such a definition cannot have definiteness, but is variable with circumstances. They say "The most general formula that one can adopt is this an individual is normal when he is able to perform work sufficiently remunerative to supply his personal needs, and finally, when his intelligence does not exclude him from the social rank of his parents."

Porteus (1921), in criticizing these and other definitions of intelligence, points out that any definition should make evident

1. That feeble-mindedness results in a condition of permanent social inadequacy

2 That this social inadequacy is essentially dependent upon a psychological condition (This, in turn, may be dependent upon a physical condition, but as the latter is not always demonstrable, it is omitted from the definition.)

3. That there are excluded other socially inadequate groups, not feeble-minded, such as the insane, the deaf and dumb, the blind, the physically defective, the criminal and the immature It should include all forms of feeble-mindedness, whether congenital or acquired.

The definition which he proposes is: "A feeble-minded person is one who by reason of mental defects, other than sensory, cannot attain to *self-management* and *self-support* to the degree of *social sufficiency*." It will be noted that this definition does not meet all of the criteria that Porteus himself sets forth.

The British Mental Deficiency Committee defined mental deficiency (Wood, 1929) thus "Our concept of mental deficiency, therefore, is that of a condition of incomplete development of mind of such a degree or kind as to render the individual incapable of adjusting

[1] Reprinted by permission of The Williams & Wilkins Company

himself to his social environment in a reasonably efficient and harmonious manner and to necessitate external care, supervision or control." Further the Committee says, "The only really satisfactory criterion of mental deficiency is the social one." Doll (1917, 1917a, 1935) has long advocated a threefold criterion of feeble-mindedness that emphasizes social inadequacy resulting from intelligence which is low because it has been arrested in the course of its development. In the last article cited he points out that the importance of a social criterion is recognized by every competent authority

The social criteria are variable, but this is at once their weakness and their strength. A weakness because it suggests arbitrariness, and makes the feeble-minded condition depend on the contingencies of the moment From a scientific or technical point of view this is, perhaps, undesirable. Pintner (1933) says "All these sociological definitions are merely practical guides as to who should be committed to special care or supervision." It is, however, just this sort of definition that is most useful in clincal work It seems hardly justifiable to call a man feeble-minded because of low test performance or poor school attainment when he is successfully adjusting to the economic and social environment Diagnosis which carefully considers this social criterion recognizes that adequate social adjustment at the present time is no guarantee that such adjustment will continue An instance of this is shown in the history of the Dorbet family (Louttit and Frith, 1934) When Mr. Dorbet was first seen he was making, for him, an adequate economic adjustment. This was on a level but one step removed from begging, and with the onset of the economic debacle of 1929 and the following years, this means of support was inadequate During these years, this man with an eight-year performance ability found himself unable to cope with the responsibilities of maintenance for himself and his wife, and became a public charge.

Pedagogical Definition.—Successful adjustment in our society is most usually dependent upon a modicum of school training—at least an elementary ability with the three "R's" For this reason the low educational attainments of the feeble-minded make their social adjustment even more difficult It was the recognition of the school retardation of defectives, with its attendant evils, that led the school commissioners of Paris to appoint Binet and Simon to study methods of detecting such children in the school system. A definition of

feeble-mindedness based on a pedagogical criterion would appear to offer greater precision than either of the two already discussed Such definitions have been proposed.

As early as 1838 Esquirol formulated a clear definition of idiocy (which was then the generic term for mental deficiency) that was pedagogical in character. He said, "Idiocy is not a disease but a condition in which the intellectual faculties are never manifested or have never been developed sufficiently to enable the idiot to acquire such an amount of knowledge as persons of his own age, and placed in similar circumstances with himself, are capable of receiving"

Binet and Simon (1914, 1916) say that idiots cannot talk, imbeciles cannot read or write, and morons cannot deal with abstract concepts. Similarly, Gesell (1913) says that the feeble-minded "cannot be taught to read, write, or cipher, with any marked advantage to themselves or society." While it is true that school retardation, even in a rather serious degree, may be due to factors other than mental defect, yet a retardation of greater than three years is at least most suggestive of feeble-mindedness. In addition to being excessively retarded, the feeble-minded child is usually found to be doing rather poor work in his grade, especially in abstract subjects such as arithmetic.

Psychological Definition —Definitions that may be classed as psychological are usually based upon performance on intelligence tests such as we have discussed In other words, these definitions are phrased in terms of M.A. and I Q This use of numbers has in many instances given a false sense of precision, making possible serious abuse of what otherwise is a very useful way of describing feeble-mindedness In 1911, the American Association for the Study of the Feeble-minded adopted the following definition of feeble-mindedness:

1. The term "feeble-minded" is used generically to include all degrees of mental defect arising from arrested or imperfect mental development, as the result of which the person so affected is incapable of competing on equal terms with his normal fellows or managing himself or his affairs with ordinary prudence.

2. Idiots are those so deeply defective that mental development never exceeds that of a normal child of about two years.

3 Imbeciles are those whose development is higher than that of an idiot but does not exceed that of a normal child of about seven years.

4 Morons are those whose development is higher than that of an imbecile but does not exceed that of a normal child of about twelve

years. This is the first definition to be clearly formulated in terms of the psychological concept of mental ability

The upper limit for morons given in this definition was widely adopted and used in the earlier days of mental testing. Doll (1917) says that the mental capacity does not exceed "that of a twelve-year-old normal child" With the Stanford revision of the Binet, Terman set the upper limit of feeble-mindedness at an I Q. of 70 Taken in in relation to his claim of 16 years representing the upper limit of mental development, this would mean a mental age of 11 2 years As pointed out in Chapter III, 16 years is too high an upper limit; probably 14 years is more justifiable With an I Q of 70, this would mean that the upper limit of feeble-mindedness is 9-11 years To use even this value strictly in diagnosing feeble-mindedness would be precarious. Probably the best expression of modern opinion, together with reasons, is that given by Pintner (1933) "If we apply these limits [8-6 as adopted in the British Mental Deficiency Report of 1929, and 9-11 calculated from an I Q of 70 with an average adult C.A. of 14] to the Army results, we note that an upper limit of M.A. 8-6 would cut off about 3.7 per cent; an upper limit of M.A 9-11 would include about 10 per cent. Similarly, when applying these limits to a random sampling of 17,502 school children, not including children in special classes, I find that 1.28 per cent fall below I Q. 60, and 5.72 per cent below I.Q. 70. It is therefore probably wiser to consider the upper limit of feeble-mindedness as lying somewhere in the neighborhood of I.Q. 60 and M A 8-6"[2]

The percentages quoted introduce another way of defining feeble-mindedness which is dependent upon psychological measures, i.e., the statistical. The percentage of feeble-minded found in different surveys has varied widely. The British Royal Commission (1908) reported a percentage of 0 4, while at the other extreme Anderson (1922) reports 6.1 per cent in a Minnesota county Probably the lowest one to two per cent of the population would include all persons who should be so called. Any percentage selected would not hold in all countries or even in different sections of the same country. Burt has suggested that different localities might set up their own standard However, there does not seem to be any practical advantage gained by this sort of criterion.

[2] Reprinted from page 814 of *The Handbook of Child Psychology*, 2nd ed., C. Murchison, editor, by permission of the Clark University Press.

Summary—The very fact that such different criteria of feeble-mindedness have been proposed reflects the truth that this condition cannot, in itself, be considered a disease entity It is also pertinent to note that the various definitions do not coincide, which makes clinical study of such people difficult It is hardly profitable to add to the already long list of definitions, but we may consider the four types that have been presented from the point of view of clinical diagnosis

The medical criterion may be eliminated at once In so far as it deals with retarded cerebral development, it is sterile There are no clinical methods available for determining such a condition Other aspects of physical conditions, anatomical defects, endocrine dysfunction, etc, are so inconstant that they will not serve for differential diagnosis; and in the specific clinical types where such defects are most frequently found the diagnosis can be established without difficulty.

As we have previously shown, educational and social achievements are to some extent indicated by test performance Therefore the psychological test affords a convenient tool for indicating retardation. This does not mean that test results alone are sufficient. At the lower level, represented by I Q 's of less than 40 to 50, probably no further information is needed. At higher levels diagnosis must consider not only psychological test performance but also educational and social adaptation It seems fair to conclude that practical diagnosis depends upon psychological, social, pedagogical and medical criteria in that order

Degree of Deficiency—In addition to considering feeble-mindedness as a general condition, we may at this point distinguish four degrees that are commonly enumerated The definition of the American Association for the Study of Feeble-mindedness given above included three such divisions. In the light of subsequent investigations four groups might well be described

The lowest grade of mental deficiency is *idiocy* Idiots never have a mental development greater than two years, and in children this is represented by an I Q of from 0 to around 15 They are unable to look after themselves adequately. The lower grades usually cannot feed, dress, or keep themselves clean, and cannot protect themselves from common physical dangers The highest grades can be taught to care for themselves within narrow limits.

The next higher level is *imbecility*. Imbeciles range in M A from about three years to six or seven, and in children have an I.Q range from about 15 to 45 or 50 They can rarely be taught to read or write, cannot profit from ordinary school work, but may be trained to do simple manual labor

The highest degree of feeble-mindedness is called, in America, *moronity*. Adult morons have mental ages from six or seven to eight or nine, and in children the I Q. range is from 45 to 50 to about 60. Morons may learn reading, writing and arithmetic in a very elementary fashion. They can be trained to do many unskilled and semi-skilled tasks and may successfully work under supervision.

The fourth and highest class that we would divide mentally deficient persons into may be called *border-line*, or *subcultural normals* These individuals have a mental age from eight or nine to eleven or twelve, and in children have an I Q. from 60 to 70 Such persons may achieve as high as fourth or fifth grade in school, may be trained in many semi-skilled occupations, but usually require a good deal of supervision The final diagnosis of feeble-mindedness in these cases must rest on their social history

Causes

From the above discussion of various definitions of amentia or feeble-mindedness, it is evident that the condition is determinable only in terms of behavior, on a test, in school, in society, or elsewhere. In so far as feeble-mindedness is a deficient sort of behavior, then any consideration of etiology must take into account all factors which may reduce the efficiency of behavior. Some such factors are eliminated by differentials in the definition; thus the blind, the insane, the deaf, etc., are excluded. Such conditions as these are diagnosed with sufficient facility to cause no confusion. The principal differential is that the defect shall be ontogenetic, i e., it shall have been evident in the development of the individual concerned. On this basis it is usual to divide etiologic factors into two major groups: primary and secondary. The former includes hereditary or congenital factors, while the latter is devoted to post-natal conditions that affect development.

Since Goddard's study of the Kallikak family in 1913 and his insistence upon the importance of heredity in the etiology of amentia, this has been almost too tenaciously held as the most important cause.

Hollingworth (1920) decided that about 90 per cent of all cases were inherited, and Tredgold (1929) put the percentage at 80.

Larsen (1931) classified 762 cases from 1000 studied as endogenous feeble-mindedness. This included 115 cases of Mongols, microcephalics and endocrine dystrophies which are congenital but probably not hereditary About half of the remainder were classed as hereditary on the negative grounds of no other cause being found. Factors known to be of possible hereditary significance were present in probably not more than a third of the thousand cases. This reduced figure is of the order of those reported by Doll and Penrose as given below

In 1933 Pintner could say with almost dogmatic finality, "Amentia caused by disease or accident is, therefore, a relatively minor consideration." Yet Doll (1934), reporting a rather careful survey of the population at the Vineland Training School, divided the cases into 30 per cent plausibly hereditary, 30 per cent secondary, and 40 per cent unknown or unclassified because the etiological factors were not clear Penrose (1934) reports similar findings. In a careful survey of 513 institutional inmates he found 29 per cent classifiable as primary aments, i e, hereditary; 9 per cent secondary, and 62 per cent unclassifiable in the dichotomy because the hereditary and acquired factors could not be separated. This would suggest that the future may show a decided change in the attitude toward the etiology of feeble-mindedness.

The evidence in favor of heredity as a cause of feeble-mindedness has come entirely from studies of the families of defective individuals. Dugdale (1877) presented the first study of a degenerate family called the Jukes. He traced this family through seven generations starting about 1740, and in 1915 Estabrook (1916) continued the history to that date This family had an extremely disproportionate number of paupers, criminals, prostitutes and other socially degenerate persons. Dugdale thought of these asocial forms of behavior as inherited, but said little about feeble-mindedness. Estabrook felt that mental deficiency was an outstanding characteristic of the family; and yet of the 2820 persons included in his study, only 131 or 4.5 per cent were sufficiently defective as to require custodial care. When one realizes that psychological diagnostic methods were lacking at that date, and then compares this percentage with those reported in some surveys, it would appear that the emphasis on feeble-mindedness may have been misplaced.

Probably the best-known studies in the heredity of feeble-mindedness are those by Goddard. His first study is of the Kallikak family (1913), stemming in two lines from the union of one Martin Kallikak, first with a barmaid, and later with a lawful wife The first line shows a much higher proportion of social degenerates than the second. Goddard, of course, attributes this degeneracy to feeble-mindedness in the family line descending from the barmaid. It appears somewhat surprising how uncritically this study has been accepted almost universally as proof that feeble-mindedness is inherited. One might like to know just how a field social worker in 1911 could really be sure that a barmaid in a tavern during the American Revolution was feeble-minded. While test performance is not all-important, yet it would be interesting to have data, at least for the living members of the clan, on those tests that were available in 1911. It appears also that no particular account was taken of the fact that these people were living in a poor, isolated community and therefore had opportunity of learning to behave only as those about them did. Perhaps a careful study of the original data upon which this book is based, if they are still in existence, might well repay the effort expended. Under the stimulus of this work, Goddard proceeded to study family histories wholesale; and in a second volume (1914) he presented about 300 family histories of feeble-minded persons. He concludes that 54 per cent of the histories show indubitable inheritance—in fact, as definite and simple inheritance as is exhibited by hair or eye color. Furthermore, 11 per cent were classed as probably hereditary, and 12 per cent as having neuropathic ancestry, a total of 77 per cent resulting from heredity Compare this figure with the 30 per cent given by Doll (1934), based on inmates in the same institution. It hardly seems possible that both of these can be right.

Studies by Danielson and Davenport (1921), Estabrook and Davenport (1912), and Kite (1913) merely reiterate the findings in the Jukes and Kallikaks It must be mentioned that Davenport by 1921 changed from his apparent agreement with Goddard that feeble-mindedness was a Mendelian recessive trait to the position that it was a sociological condition caused by the absence of various sets of traits in individual cases.

When one considers these studies carefully it appears that they may not be as crucial as many would believe. None of them can answer the question whether the social condition of these people was

as it was because they were feeble-minded or whether they were feeble-minded because of their social condition As Darrow (1925) points out anent the often-made comparison between the Jukes and the Edwards families, "The Jukeses in a barren, rocky, isolated community are contrasted in the literature of eugenics with a family in the fertile Connecticut River valley—a family in which a few members having fame were able to pass this heritage to others down the line. Why go out of the way to even infer that the germ-plasm had anything to do with either case? The generations back of Max [Jukes] and those back of Jonathan [Edwards] were infinitely greater in number than the generations that have so far followed In any fairly homogeneous community one needs only to go a little way back to find the lines crossed and the germ-plasm mixed Otherwise there couldn't possibly be enough ancestors to go around. These two historical sires are first discovered living less than 200 miles from each other. I, for one, am willing to contend that it is safe to bet that Max came from the East, and a not unreasonable guess that the ancestors of the Edwardses and Jukeses were mixed"

In spite of the widespread acceptance of the theory of inheritance of feeble-mindedness, based upon such studies as we have mentioned, scientific caution demands the withholding of final judgment until all possibilities of social inheritance are adequately controlled We cannot accept sociological studies as evidence of biological inheritance.

This does not mean that biological inheritance may not contribute to the etiology of amentia. This condition, we have shown, is a way of behaving, and there are grave doubts that behavior as such is inherited However, the feeble-minded exhibit an inferiority in physical as well as mental characteristics; and in so far as the biologists can show the inheritance of biological abnormalities, just that far can we accept heredity as an etiologic factor Deficient biological make-up may set limits to behavioral achievements, and it is this last which indicates feeble-mindedness. In this indirect sense, feeble-mindedness may be inherited.

Another class of causative factors of primary amentia is congenital, i.e., they are operative *in utero* While a number of such factors may be suggested, there is a paucity of data concerning them Nutritional deficiencies, accidents, and infections during pregnancy have all been mentioned as possibilities Among infections, syphilis in the mother has often been considered important because almost inevitably the

offspring of an untreated syphilitic mother will exhibit signs of congenital syphilis. Davis (1935), after carefully surveying the literature on this question, concludes that there is little evidence of a direct causal relationship between congenital syphilis and feeble-mindedness. She calculated an incidence of 3.68 per cent from the data of 16 studies including 177,216 children from hospitals and institutions who were presumably unselected on any direct basis of mental ability From 23 studies including 19,712 feeble-minded children in hospitals and institutions the calculated incidence was 7.3 per cent. This difference in incidence is hardly great enough to demonstrate a widespread relation between the two conditions, although in those cases where both conditions are observed the syphilis may well be of etiologic moment

Doll (1929) has described a case of microcephaly apparently resulting from X-ray irradiation of the mother during pregnancy Even more definite evidence of this possibility is suggested by data published by Murphy (1928) on the offspring of mothers who had been subjected to therapeutic pelvic irradiation. The pertinent data are summarized in Table XII.

TABLE XII —EFFECTS OF PELVIC X-RAY IRRADIATION OF PREGNANT WOMEN ON THEIR CHILDREN

Treatment	Mothers Number	Children							
		Normal		Microcephalic		Otherwise Abnormal		Abortion	
		No	%	No.	%	No	%	No	%
During pregnancy	53	17	32 1	14	26 4	13	24 5	9	17 0
Before pregnancy	265	188	70 9	1	38	9	3 4	67	25 3

Mongolism is apparently due to abnormal physiological conditions in the mother, and true cretinism is associable to a hypothyroidism in the mother. (See page 127.) Whatever the factors are which are operative in producing developmental anomalies such as clubfeet, congenital dislocation of the hip, malformation of the heart, and the like, they may of course affect the nervous system crucially, or, perhaps more important, they may interfere with the biologically ade-

quate integration of the organism, this interference shows itself as deficient behavioral adjustment The significance of such factors must not be underestimated because of the lack of information about them. Rather the need of more careful histories of pre-natal condition is indicated.

Secondary or post-natally acquired amentia may be grouped into at least three etiologic classes· traumatic, infectious, and endocrinopathic. The most important of the traumatic group is trauma associated with labor and delivery, i.e., birth injuries. Doll, Phelps and Melcher (1932) have recently reemphasized the importance of this etiologic factor. Head trauma during infancy and childhood is of doubtful etiologic moment. While this is the favorite reason assigned by parents for their child's deficiency, there appears to be little actual evidence of its importance In the infectious group, encephalitis leth- [illegible] ance. Other infectious processes that [illegible] es include cerebrospinal meningitis, polioencephalitis, measles, or any infection that has a widespread neural involvement. Endocrinopathies of significance in mental deficiency include hypothyroidism (cretinism) and pituitary dysfunctions. We shall more fully discuss the various conditions of secondary amentia in connection with problems of diagnosis

As feeble-mindedness is primarily evidenced by social inadequacy there is a possibility that certain individuals may exhibit what amounts to amentia because of lack of opportunities While probably infrequent, this possibility must not be neglected Such lack may come from isolation or entirely inadequate environmental conditions. The following case illustrates how presumably feeble-minded behavior was caused by difficulties in making speech contacts with other people, and the effect of their attitudes on the subject. There might, of course, be some question of the diagnosis of mental deficiency

The case was studied several years before the advent of standardized tests, so that we can take the author's estimate of "at least a dozen years" retardation only as a subjective estimate. In modern terms, this boy would be classed as a moron, both on the history of behavior given and on the estimated mental age. His interest in mathematics might have suggested that the community's estimate of him was too low. However, in view of all the evidence, it seems fair to believe that if he were brought to a clinic today he would be classed as high-grade feeble-minded.

Case Number 1 (Makuen, 1898). My attention was first called to the great importance of the training of speech as a factor in mental development by a patient who was referred to me in the autumn of 1894, and perhaps I can begin my paper in no better way than by relating briefly the history of this interesting case

The patient was a lad 19 years of age, in fairly good physical condition, although he was round-shouldered and sunken chested to such an extent as to amount almost to a deformity This I attributed to his laborious farmwork, coupled with very faulty breathing and vocalization Mentally he was younger than his age by at least a dozen years and although he had been in school rather more than the average country boy he was exceedingly backward and evinced a great distaste for study of all kinds, with the possible exception of mathematics. This will not be wondered at when I tell you that his speech was entirely unintelligible except to those in his immediate family who had learned, by long association, to decipher the greater part of his limited vocabulary which consisted of the veriest jargon. It was only after the most earnest persuasion by their friends that his people were induced to consult me with reference to his speech, for they had been led to believe by consultations with their family physician and others that the boy was feeble-minded, imbecilic, and incapable of much, if any, improvement Judging from his appearance, this diagnosis seemed a most plausible one, for the face was void of any expression, the mouth was open, the nose prominent, and the eyes staring, the whole picture being strikingly characteristic. There were no adenoid vegetations in the vault of the pharynx nor was there hypertrophy of the faucial tonsils or other glands in the region of the throat and neck. No other members of his family were similarly afflicted and only a slight tubercular taint was revealed in his history.

A positive diagnosis was withheld, nor could a prognosis be ventured until after further study of the case. The fact that he showed a fondness and a certain aptitude for mathematics made it clear that the perceptive and reasoning faculties of the mind were intact and only possibly awaiting development Will power was not wanting, as was shown by a marked desire to overcome the obstacles which lay in his way and which he seemed to think his friends and physician did not understand or appreciate.

His emotional nature was developed to some extent as was evinced by an intense dislike for the physician and others who said that he was feeble-minded and incapable of being improved. In short, the various faculties of the mind seemed to exist in a dwarfed condition and only

needed something to lead them out, and stimulate them to growth and action. It was observed that he had a defective tongue. This organ was so bound down to the floor of the mouth as to make any free action of it quite impossible. An operation was performed by means of which the tongue was given greater freedom of motion, and the improvement in speech from that time was most marked and satisfactory The geniohyoglossus muscle was too short Dr Daniel G Brinton informs me that the Ancients observed that a defect in this muscle was frequently associated with feeble mentality and that it was supposed in some way to have a causal relation to imbecility. However that may be, my patient showed very little disposition to improve until after the defect was corrected, although the same careful training was carried on for several weeks before the operation that was so effectual after his operation.

I was able to enlist the interest and service of a young woman who was by no means an expert, but who carried out my theories of training with great accuracy and in nine or ten months the boy learned to recite whole scenes from Shakespeare with great articulatory precision and with some considerable dramatic appreciation His mental grasp of the subject matter was no less marvelous than the clearness and sharpness of his articulation The special speech-training continued for about two years and it seemed to open up to him a new world He was constantly not only hearing but seeing and feeling things he had never dreamed of before He became very ambitious and decided to prepare for Harvard College He went to a boarding school for a year, where he gave a very excellent account of himself, and he is now in the Neff College of Oratory, Philadelphia, where I am told he is doing very good work, and he still hopes to go to Harvard.

Diagnosis

Diagnosis of feeble-mindedness has real value only in relation to its function in determining a basis for management Potter (1933) says· "The generally used terminology of moron, imbecile and idiot, as sub-groups of mental deficiency, is entirely inadequate for clinical purposes and represents merely a psychometrically determined differentiation based on the relative inadequacy of the functioning of intelligence" He then proceeds to argue that a really serviceable diagnostic classification of the feeble-minded should be based on organopathological grounds While there is no doubt that such medical diagnoses are of the greatest importance, it is absurd to say that classification by degree of defect is inadequate. The problem of han-

dling the feeble-minded is a social one; it must aim to train or care for those individuals so that at least they will not be harmful elements in society, and at best they may make some contribution. Within limits —perhaps narrow ones, it is true—it is just these "merely psychometrically determined differentiations" that afford one of the most economical methods of determining how much training may be possible. Furthermore, the degrees of idiot, imbecile, and moron are not wholly defined by psychometric results, nor does any capable clinical psychologist today attempt to so define them

Essentially our diagnostic problem is this Given a child who exhibits difficulty in acquiring those forms of behavior thought desirable or necessary for social adjustment, we are to find, first, whether or not this inability is due to deficiencies which experience has taught us will make it impossible for him ever to acquire them to a satisfactory degree, and, secondly, to determine how severe those deficiencies are

It is quite true that test results or mental ages alone will not solve either of these questions Fernald (1917) says: "The writer once assembled in a room 252 individuals with a mental age of 8 years. The individuals in this group varied in physical age from twelve to fifty years Some of them had learned to read, while others had not been able to do so. Some were capable of elementary computations, while others found the simplest concept of numbers almost beyond their capacity. We had been able to develop some of them to become fairly expert mechanics, but others were able to do only the simplest sort of manual labor. Some were conscientious and relatively trustworthy; others were most untruthful, dishonest and unmoral In some, sex proclivities seemed to be the dominant interest, while in others the sex interest seemed to be entirely normal. This variability shows that a measureable intellectual level is not the only factor in the study of the feeble-minded and in the working out of the type of care and training that they need." Anyone who has worked with the feeble-minded recognizes the accuracy of these observations. Still it is not at all obvious that classification of cases on the basis of organic pathology will further the desired ends to a greater degree, or even as far as the determination of intelligence level.

An adequate diagnostic schedule for use with the feeble-minded is almost coextensive with the history schedule presented in Chapter II We must, however, consider certain phases of the history in general relation to the problem of feeble-mindedness.

The problem of diagnosis divides itself into two parts (1) in relation to the lower grades of mental deficiency, and (2) in relation to the moron and border-line case.

The first of these offers little difficulty. By definition, the idiot is incapable of anything but the most elementary activities largely concerned with his own well-being Low-grade idiots are even incapable of this; they cannot feed themselves or keep themselves clean, they do not avoid ordinary dangers. Their limitations are roughly comparable to those of the infant of less than two years Therefore a criterion in terms of a mental age of less than two years in adults, or an I Q. of less than 15 in children, would appear to be legitimate In ordinary circumstances the history of the child's development and present behavior is sufficient to establish a diagnosis Psychometrics can only add a tentative quantification and thence a basis for prognosis.

A difference between high-grade idiots and low-grade imbeciles is indistinguishable The boundary usually accepted, i e., a mental age of about two years, is only an arbitrary, convenient value. Therefore problems of diagnosis are similar to those for idiots Developmental history and present behavior may be sufficient to establish a diagnosis, with psychometric results adding something to prognosis.

Medical diagnosis is important in these lower grades of defects, especially for determining possible etiology. But such medical diagnosis does not, *per se,* enable one to establish the fact or degree of mental deficiency On the other hand, the determination of an M A. or I Q does not solve the problem of management Such figures may indicate the limits of achievement in the majority of cases; but final disposal must rest upon further data, as discussed subsequently in relation to the moron and border-line groups.

Border-line diagnosis requires careful interpretation of data from psychological, social, educational, medical, and other examinations. That it is not a simple matter is attested to by the number of writers who have discussed the problems involved. Even this widespread attention to the problem has not resulted in a wholly satisfactory diagnostic method As late as 1935 Doll could say. "The conclusion suggested by this dilemma [the inadequacy of test results] is that serious work must be done toward improving the criteria of mental deficiency or at least of validating more precisely the limits within which the criteria are valid" We shall not undertake to offer the final method of diagnosis

but shall be content to call attention to what appear to be significant methods.

One further preliminary word must be said Regardless of how adequate a plan is presented, of how precise are the differential factors, of how detailed are the directions, diagnosis cannot be read about in a book and then applied to clinical cases. Differential diagnosis of feeble-mindedness is an art, and as an art is improved through experience. The physician learns diagnosis not from the textbook but in the clinic. Likewise the clinical psychologist must see the textbook account in operation with living patients, and he must take an active part in the examinations. Clinical experience is the *sine qua non* of all diagnostic ability

Some twenty years ago the late Dr. Fernald (1917) proposed ten "Fields of Inquiry" as a working basis for individual case study in border-line diagnosis This plan is a prototype of all subsequent proposals. The ten fields to be covered are shown in Table XIII The data for each of these fields were evaluated from case histories, if a case showed evidence of defect it was marked minus, if it did not evidence defect it was marked plus In his paper several charts are presented showing the frequency with which the various fields were marked minus in several groups of patients. The figures in Table XIII are estimated from his chart number 1 which is based on 614 feeble-minded subjects and 61 diagnosed as "not feeble-minded" Comparison of these percentages suggests something of the relative importance of the various fields of inquiry Presumably those fields which are negative with much greater frequency in the feeble-minded group are of more diagnostic significance than those which are almost the same in each group.

In the following summary of diagnostic points all of the ten fields suggested by Fernald are included, but we have made some rearrangements and condensations. Further information concerning the items of this outline was given in Chapters II and III

1. *Psychometric Examination*.—At least one verbal (Binet) and one non-verbal performance test should be given. These should be supplemented by a variety of tests whenever possible Consistently low scores on several types of tests, i.e., with I Q.'s or performance ratios consistently below about 60, are strong diagnostic evidence of feeble-mindedness Consistent performances represented by ratios from 60 to

TABLE XIII.—FERNALD'S TEN "FIELDS OF INQUIRY"

	Feeble-minded A	Not Feeble-minded B	A-B C	$\frac{A}{B}$ D
1 Physical	80	33	47	2 42
2 Family history	73	56	17	1 30
3 Personal developmental history	90	53	37	1 70
4 School progress	95	33	62	2 88
5 Examination school work	95	16	79	5 94
6 Practical knowledge and general information	86	6	80	14 33
7 Social history and relations	89	39	50	2 28
8 Economic efficiency	85	30	55	2 83
9 Moral reactions	72	70	2	1 03
10 Mental examination	95	13	82	7 30

75 or 80 may indicate feeble-mindedness but require strong support to establish the diagnosis Inconsistent performances on tests of different types must be interpreted only in the light of other data

The following two cases illustrate some characteristics of feeble-minded test performance Case Number 2 reproduces exactly the order of presentation of the Stanford-Binet items and the child's responses Case Number 3 presents an analysis of the test performance of an unstable moron boy

Case Number 2 (I U. Clinic, B-1140) C B, female, C A 12-2 In ungraded group in school in which she is doing primary work. Binet M.A. 6-8, I Q 55 The exact order of presentation of the Binet items and the girl's responses were as follows.

IX, 1 (Date)—"Wednesday, June, 1934." (Correct Wednesday, November 14, 1934)

VIII, 2 (Counting backwards)—20, 19, 18, 17, 16, 15, 16, 14, 15, 16, 17, 12, 11, 10, 9, 8, 7, 6, 5, 4, 3, 2, 1

IX, 3 (Making change)—(a) 4 from 10, "five cents"
(b) 4 from 25, "twenty-five cents"

VIII, 3 (Comprehension)—(a) "Pay back."
(b) "Run"

IX, 5 (Making sentences)—(a) (Boy, river, ball, "I have a dog." Directions were repeated "I have a ball" Directions again repeated No response Examiner demonstrates
(b) (Work, money, men) "The men do work."

VIII, 5 (Definitions)—(a) Balloon. "Play with it."
(b) Tiger "A great big."
(c) Football "Play with it"

VII, 2 (Pictures)—(a) "House, little girl crying, woman sitting in chair, cat asleep"
(b) "Boat in the water, men driving it, man helping push, man and woman"

VII, 5 (Differences)—(a) "Fly is little and butterfly is big"
(b) "Stone is wood and egg is glass."
(c) "Glass is glass and wood is wood"

IX, Alt 1 (Months)—"June, July, August, September, November, December, August, November, December"

IX, 6 (Rhymes)—(a) (day) "Today, may, may, no I got that" (Time limit up)
(b) (mill). "Mill, nil" (Time limit up)

(Digits forward)—(641) "641"
(4739) "4739"
(31759) "3759"
(42835) "4285"
(98176) "8916"

VIII, 4 (Similarities)—(a) (Wood and coal) "Burn the same."
(b) (Apple and peach). "Apple tastes different and peach tastes different."
(c) (Iron and silver) "Iron is iron and silver is silver"

VI, 6 (Repeat sentences)—(a) "We are having a good time They are a mouse in the trap."
(b) "Walter did have a fine time on vacation time. He went fishing everytime."

(Digits backwards)—(283) "382"
(6528) "6528"
(4937) "4937"
(8629) "629"

VI, 4 (Comprehension)—(a) "Run, bring umbrella."
(b) "Run out, call fireman"

VI, 5 (Knowing coins)—"Nickel, penny, quarter, dime."

The other three tests of year VI—right and left, omissions, and counting—she successfully passed

(Vocabulary)—(1 gown). "You wear"
(2. tap). "Wear on your head." Examiner gave word again. "You dance in"

(3 scorch). "Scorch your clothes"
(4 puddle). "Water."
(5. envelope) "Put letters in"
(6 rule). "Not talk."
(7 health) "You eat thing and make you health"
(8 eyelash) Pointed to eyebrow.
Did not know the next five words.

Case Number 3 (Ordahl, 1923). This case is presented as an illustrative analysis of the Binet test performance of an unstable, high-grade moron It is evident that such analysis of the test responses is of value in the qualitative interpretation of test results

Male, Age 18-7. M.A 10-5. I.Q 65 Psychopathic. In year VIII patient responds as follows· To test No 4 "In what way are (c) Iron and silver alike?" Ans "You use both" (d) "Ship and automobile?" Ans "You use both too" In (c) and (d) above, patient is entirely satisfied with his answers and disinclined to reconsider his statements. To be satisfied with results when questioned is not in keeping with the mental level of ten The responses are not strictly in accord with the situation presented in the question The similarity is too general. Had attention been focused on the idea of similarities common to the two objects in question, more particular relationships would have come into consciousness For these reasons, the responses are irrelevant.

In year group IX, there are no irrelevant responses, but in year group X, reactions are significant In vocabulary definitions, pork is defined as meat from a lamb; dungeon, a place away down. (No further idea of use) These responses are scored as irrelevant, because life experience, as shown by reactions, has been favorable, and mental level adequate for more perfect associations to have been made Questioning reveals an acquaintance with the various meats, also with animals used for meat, and yet the relationship between a particular meat and the animal producing it has not been noted To know that a dungeon is a place "away down," and not to know its use, indicates an erraticism in fundamental perceptions, a satisfaction with superficial relationships, and a tendency to make irrelevant associations

In recall of ideas in paragraph just read, year X, for "three houses burned," recalls, "A lot of people were burned" This is classed as irrelevant, for the reason that it is contrary to fact and would indicate that memory images are incorrectly related in consciousness In comprehension test (c) of this same year group, "Why should we judge a person more by his actions than by his words?" patient answers, "I can tell by their actions whether they like me or not" This response is not only irrelevant, but has miscarried, i e., the purpose of determin-

ing the qualities of another person has become changed to the problem of determining the other person's attitude toward himself In thus diverting trends of thought to the personal self, there is, aside from irrelevancy of association, an indication of psychopathy

In year XII, dissected sentence (a): "For the started an we country early at hour," rearranged to read. "We started for the country, and started early at hour" (Other two dissected sentences were correctly arranged, but patient failed to correct (a) after error was pointed out.) Reactions of this kind do not admit of definite analysis; but, in general, failure on one of a series of tests of apparently the same degree of difficulty, not corrected when error is pointed out, is suggestive of instability. In repeating five digits backwards, all three series are given in disorder. On stern command to "Do as I tell you, and repeat these numbers straight backwards," succeeded on the first of three series, but failed on all of a third series. This ability to achieve success when extraordinary means are taken to focus and sustain attention is indicative of instability due to some cause other than lack of intelligence

In the similarities test, there is success only on the last of five similarities Typical of responses for this group of tests "Cow, snake and sparrow ain't alike. They don't talk alike." Urged to try to find some likeness, replied with a friendly air of having gotten rid of the bother, "I just got through telling you they don't talk alike."

In year XIV, response to clock test, which follows, is typical of all responses for this year group Given 22 minutes past 6, to interchange hands of watch and tell what time it would be. Solution. "You see, the short hand would be on 6 or a little past, and the longer hand would be on 4 or a little past: then, if you change them, the long hand would be on 6, or on its way to 7. Why! That would be 25 minutes to 7 o'clock" Examiner: "Are you sure you didn't make a slip?" Subject: "Let's see What did you say was the time?" Examiner: "22 past 6." Subject: "Oh I see! the little hand would be near 4. Well! Then it would be halfpast 4 about." This response is typical Subject comprehends the problem, and he has the necessary imagery or ideas to solve the problem, but proper elements are not on tap at the right time to prevent mental processes from slipping away on a tangent.

Diagnosis: Moron. Intellectually unstable, probably psychopathic; not likely to adjust Irrelevant associations occur two years below the mental level obtained, e.g., mental age is 10-5; irrelevant responses occur in year VIII. On the other hand, intellectual capacity—not sufficient to score, however—extends into year XIV. He can repeat five digits backwards, in XII, if sternly commanded to do so. He solves

one of the arithmetic problems in year XIV, and gives evidence of ability to solve the other two, but processes miscarry in the same way as shown in the clock problem, year XIV. The presence of a slightly distracting stimulus is apparently sufficient to upset a relative trend of associations, and to render results practically absurd

The capacity to thus function at a level three years above the mental age earned suggests a fundamental tendency to irrelevancy of association. Irrelevancy of association occurs in 13 out of 32 tests and extends from year VIII to year XVI The "scattering" is not so significant as is the active qualitatively irrelevant associations made, and the evident higher intellectual capacity possessed, which for some reason is interfered with and not permitted to function to its fullest extent

Inferior use is made of capacity possessed, and irrelevancy of association extends to ideas as well as to relations which may be simply perceived. It is manifestly a simpler process to note similarities between an apple and a peach than to determine why one should judge by actions rather than by words The patient's response to the latter problem indicates an almost total miscarriage of ideas and a pathological regard for self.

Emotional responses appear normal, with the exception, however, of a tendency to laugh slightly at situations not intrinsically or by association funny On account of the prevailing tendency to irrelevant associations, inferior application of intelligence possessed, and a slight variation in emotional attitude, this case is referred to the psychiatrist.

Physical examination· Negative

Psychiatric examinations and observation· Psychopathic personality, without psychosis.

School Grade VII. Attended several private schools, dismissed from all on account of conduct, stealing and "would not study."

Occupation· At junior republic, became interested in gardening and is reported to do well at this kind of work At this institution, he has been tried over a period of from 4 to 6 weeks at various occupations, but trainers report: "Makes no progress, too unstable"

Conduct reported: Pathological liar and a petty thief. At institution is inclined to lie, but does not steal

Heredity Father reported to be irresponsible Capable but does not make sensible use of capacities One sister had convulsions from infancy to seven years of age. Otherwise history negative.

2 *Educational Examination*—The division made by Fernald between school progress and educational achievement would seem to be a good one School retardation of three years or more is very suggestive

of deficiency amounting to feeble-mindedness There is no necessary close relationship between school advance and educational achievement as measured on standardized tests Dull children are often promoted on a basis of physical size rather than classroom achievement Accomplishment ratios of 100 or less in children having I Q.'s below 60 to 70 strengthen the diagnosis of feeble-mindedness If the accomplishment ratio is over 100 it would suggest that the child's intelligence test performance is spuriously low

As poor reading ability brings both intelligence test and achievement test performance down, the possibility of its influence must be eliminated. Especially in clinical work with school children does one find children referred as defective who, upon examination, are found to be average but have a special reading disability. Teachers' reports of children's academic ability or intelligence must be carefully evaluated. However, the teacher's judgment as to comparative ability in the mechanics of reading, arithmetic or spelling, and the more abstract aspects of these subjects, may be important. Defectives may do fairly well in the former; but they seldom, if ever, show aptitude in the latter.

3. *Social History*—In the social history are included Fernald's "Fields of Inquiry" numbers 6, 7, 8, and 9. Environmental circumstances are probably of little diagnostic value. While feeble-mindedness, especially of the higher grades, is frequently found in the lower socio-economic classes and those living under less desirable environmental conditions, the converse does not follow, that people living under such conditions are usually feeble-minded Economic or vocational adjustments may be important Frequent changing from one unskilled, ill-paid job to another suggests inability to make an economic adjustment Reasons for leaving jobs as reported by the subject or the employers may be suggestive Long tenure on an unskilled, monotonous job may also indicate a lack of ability to profit by experience and thus advance.

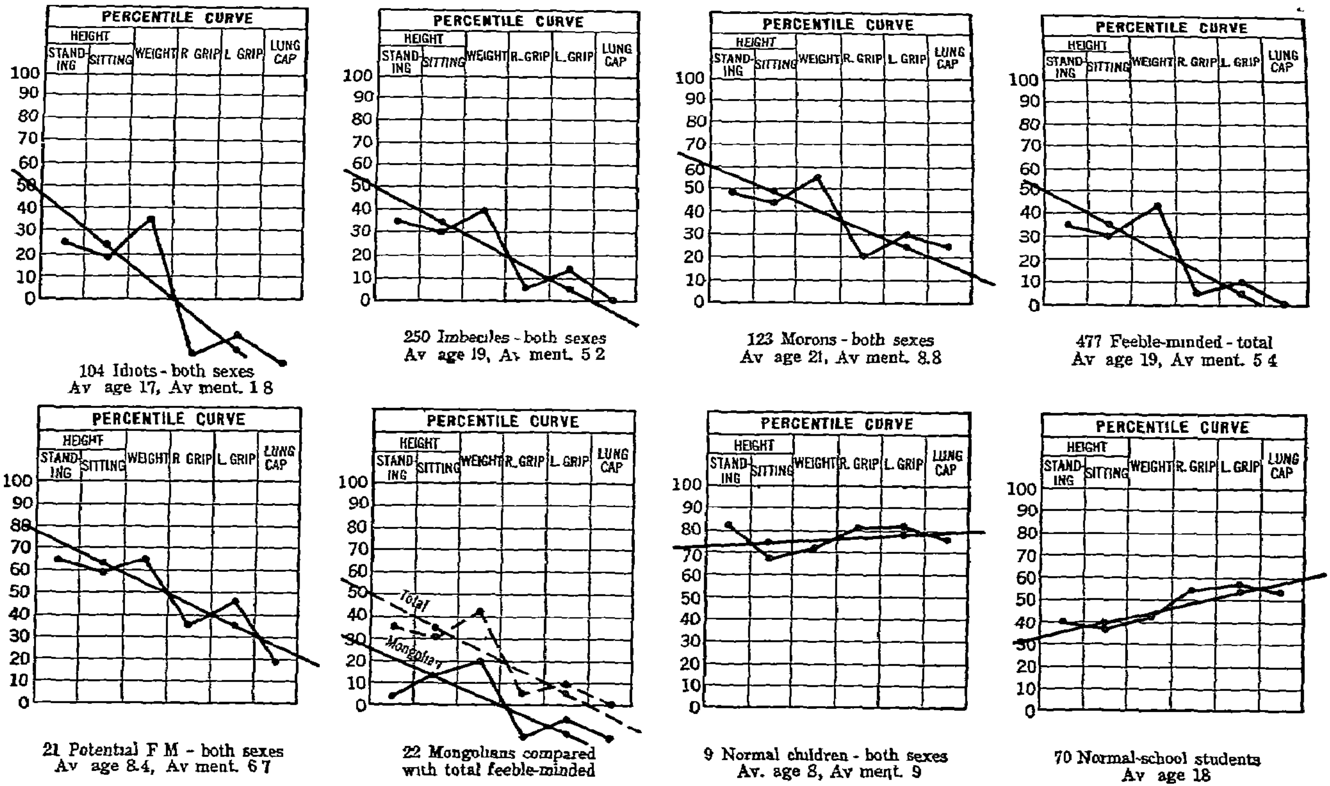
In children perhaps the most easily observed social behavior is in connection with play interests and companions Consistent enjoyment and contentment with play material decidedly below the child's chronological age, and preferred association with children much younger are valuable corroborative evidence of low ability General knowledge of current affairs of local or more extensive import appears [illegible] to be extremely significant. Such knowledge

may be sampled by informal questions appropriate to the time and place The examiner must exercise care in keeping the questions uniform for different subjects.

Overt delinquencies, as such, are probably not very indicative. Pintner (1931) lists data from forty-one studies reporting the percentages of feeble-mindedness among juvenile delinquents These percentages range from 7 to 93, with a median at 30. However, when the studies are divided into two groups on the basis of their dates of publication, the earlier 21 studies have a median of 45 per cent, while for the later 21 studies the median is only 21 per cent Miner in 1918 carefully evaluated the evidence available at that date and concluded, "I see nothing in the present evidence from mental tests to indicate that the frequency of mental deficients who might justly be sent to institutions from among the ordinary children who come before the juvenile courts of the country would be over 10 per cent." It is true that the average I Q 's found for groups of delinquents agree somewhat more closely, and such averages are usually around 80 But these figures are found on children in courts or institutions for delinquents, i.e., on those children who were caught From other evidence it would seem reasonable to expect less intelligent children to be caught; therefore average I Q.'s found with such children may be misleading

Probably of more diagnostic significance than the mere fact of delinquency is the type of offense and the circumstance under which it took place Crimes or misdemeanors committed at the instigation of another person may be evidence of suggestibility, which as a characteristic of feeble-mindedness may afford added weight to a diagnosis. Thus stealing and sexual immorality among the feeble-minded are frequently at the suggestion of another, usually not feeble-minded, person. The evidence, however, hardly admits delinquency, *per se,* as a very significant factor in diagnosing feeble-mindedness.

4. *Developmental History*—The ontogenetic history of feeble-minded children usually shows retardation in several directions There may be delayed dentition or other indication of slow physiological development Locomotor behavior, talking, bowel and bladder control, habits of feeding and dressing and the like will frequently be established at significantly later ages than in normal children Such findings are of significance because they indicate that the retardation has been present at an early age and is not something of recent appearance.



104 Idiots - both sexes
Av age 17, Av ment. 1 8

250 Imbeciles - both sexes
Av age 19, Av ment. 5 2

123 Morons - both sexes
Av age 21, Av ment. 8.8

477 Feeble-minded - total
Av age 19, Av ment. 5 4

21 Potential F M - both sexes
Av age 8.4, Av ment. 6 7

22 Mongolians compared
with total feeble-minded

9 Normal children - both sexes
Av. age 8, Av ment. 9

70 Normal-school students
Av age 18

Figure 8 —Typical Curves of Anthropometric Measures (After Doll)

may be sampled by informal questions appropriate to the time and place. The examiner must exercise care in keeping the questions uniform for different subjects

Overt delinquencies, as such, are probably not very indicative. Pintner (1931) lists data from forty-one studies reporting the percentages of feeble-mindedness among juvenile delinquents These percentages range from 7 to 93, with a median at 30. However, when the studies are divided into two groups on the basis of their dates of publication, the earlier 21 studies have a median of 45 per cent, while for the later 21 studies the median is only 21 per cent. Miner in 1918 carefully evaluated the evidence available at that date and concluded, "I see nothing in the present evidence from mental tests to indicate that the frequency of mental deficients who might justly be sent to institutions from among the ordinary children who come before the juvenile courts of the country would be over 10 per cent." It is true that the average I Q 's found for groups of delinquents agree somewhat more closely, and such averages are usually around 80. But these figures are found on children in courts or institutions for delinquents, i.e., on those children who were caught From other evidence it would seem reasonable to expect less intelligent children to be caught, therefore average I Q 's found with such children may be misleading.

Probably of more diagnostic significance than the mere fact of delinquency is the type of offense and the circumstance under which it took place Crimes or misdemeanors committed at the instigation of another person may be evidence of suggestibility, which as a characteristic of feeble-mindedness may afford added weight to a diagnosis. Thus stealing and sexual immorality among the feeble-minded are frequently at the suggestion of another, usually not feeble-minded, person. The evidence, however, hardly admits delinquency, *per se,* as a very significant factor in diagnosing feeble-mindedness.

4 *Developmental History*—The ontogenetic history of feeble-minded children usually shows retardation in several directions There may be [illegible] ogical development. Locomotor behavior, talking, bowel and bladder control, habits of feeding and dressing and the like will frequently be established at significantly later ages than in normal children Such findings are of significance because they indicate that the retardation has been present at an early age and is not something of recent appearance.

Percentile	Number of Cases
5– 10	18
11– 20	6
21– 30	1
31– 40	3
41– 50	3
51– 60	2
61– 70	3
71– 80	3
81– 90	4
91–100	7

It may be that Porteus has placed too much emphasis on the value of these measurements, as for instance Paterson (1930) claims. Porteus' statement, "the use of brain capacity estimation and the resulting percentile tables will not detect all cases of even possible mental subnormality [but it does] form a rapid method of obtaining a first approximation," would seem however, to be a conservative estimate of their diagnostic importance.

Some of the difficulties of diagnosis are illustrated in the following two unusual cases Regarding the first one, Dr Babcock says: "She is selected as a case of a mentally inferior type of individual whose social background has also been extremely unsatisfactory Without mental examination the fact of her mental deficiency would not have been apparent She would probably have been committed to the Industrial School until twenty years of age and then have been turned adrift in the community"

Case Number 4 (Babcock, 1927). When Philomena was about 8 years old, her father, a Filipino plantation laborer, killed his wife's lover, and was sent to the Oahu, Hawaii, prison The child's mother promptly deserted her and Philomena was left to get on as best she could She lived around the plantation with the Filipino men, the property of various ones in turn, doing their simple housework, and receiving none of the usual privileges of childhood

In November (1926), alarmed by their belief that Philomena, then 12 years old, was pregnant, the Filipinos decided that the responsibility might be fixed upon them, so they brought the girl to Honolulu to her father who was still in jail The situation was naturally too much for the father, but a Chinese storekeeper who lived near the jail took the child to the Salvation Army Girls' Home, where she remained for two months

Later developments showed that the former fears were ungrounded; but then, since some arrangements had to be made for the child's future, she was turned over to the Child Placement Bureau. The

problem presented was whether or not, if she were given a good home and regular schooling, Philomena could become capable of self-management and self-support, and put these very sordid early experiences behind her Before any steps were taken toward such home placement she was brought to the Clinic for a mental examination.

The Binet and Porteus Maze tests both placed her at a 6-year mental level, with an I Q of 48 In the Binet tests she could not differentiate right and left, could not detect the missing features, repeat 5 digits in order or 3 digits backwards. In spite of the fact that she presumably had been housekeeping for various men for at least 4 years, she did not recognize all of the coins, could not make change or even count backwards from 20 to 1 If she had 10 cents, and spent 4 cents for candy, she believed that she would have 5 cents left. She expected 10 cents change when she bought 12 cents' worth of candy and gave the man 15 cents She could write her last name, a word of three letters, but "Philomena" was too difficult for her.

In the Porteus Maze test she was very willing to cooperate but failed to understand the instructions for the 5-year test She did pass the VI- and VII-year tests but the higher ones were too difficult for her, so that her Porteus Maze test age also was 6 years

The cards of circumstance appear to have been stacked against Philomena She had been abused from early childhood until she neither knew nor expected any different treatment She was so dull that even long-continued training could not be adequate insurance against her going back to the same sort of life she had been living if once she were free to try to take care of herself She was a girl for whom permanent supervision and care were absolutely necessary; she did not have sufficient intelligence to warrant even the slightest hope for her successful adjustment For this reason she was committed to Waimano Home for the Feeble-minded where she will undoubtedly learn to be a very useful member of that special community and will be spared the miserable existence she was fairly launched upon.

The second is a remarkable case showing an almost complete lack of growth after eight years of age The author emphasizes hereditary factors as of the greatest importance in this case, but these would not explain the patient's apparent normality during early childhood.

Case Number 5 (Adams, 1926) Grace N—— is a striking case of potential feeble-mindedness. Her life history further illustrated the apparently hereditary persistence of undesirable behavior tendencies in spite of favorable environmental control

Born of native American parentage in a little village in New Jersey

in September, 1903, Grace started life with a serious hereditary handicap. In presenting the history of this "pretty, attractive child," Goddard writes: "The mother is feeble-minded and of feeble-minded ancestry, but the father seems rather to be a degenerate and probably of a good family, as his ancestors, as far back as we can trace them, seem to be entirely normal." The father was immoral and brutal He cursed and beat the mother during Grace's pregnancy and after Grace and a younger sister were born deserted the family

While Grace was a mere child the mother seemed anxious to rid herself of the care and responsibility of her children and asked that Grace be admitted to The Training School. She claimed that the child lacked self-control, was obstreperous and seemed feeble-minded The younger sister, who has lived with relatives and various families, is a moral delinquent. The father now lives with a third wife in a near-by community, and the mother keeps house for an unmarried man.

The mother's request was granted and Grace was admitted to The Training School at the age of 7 3 years She was examined in the psychological laboratory and tested practically at age on various types of tests Her social and educational reactions seemed normal She was well-developed and presented a good appearance These characteristics gave rise to some doubt whether Grace was really a mental defective and whether she should remain in an institution for defectives. Thus an apparently normal child with a record of social inadequacy became the object of institutional study and observation. This report presents the history of Grace's social and mental development during fifteen years of continuous residence at The Training School.

Grace is the older of two children. The pregnancy and birth are reported as normal She has a history of some developmental retardation. Dentition was delayed until the end of the first year, and walking and talking began in the third year She walked clumsily and spoke brokenly at 7 years She was reported to have St Vitus's Dance at 4 years and there was a twitching of the face at the time of her admission to The Training School All other etiological and pathological history is negative or not reported.

When admitted she was a pretty, attractive child She seemed to play normally and to enjoy the other children The ability to dress and undress was only partly developed and she was inclined to "whine" and to invite undue attention For the most part she was cheerful, active and affectionate. She was obedient and willing, but at times was stubborn and mischievous. Her health was good. Her physical measurements, except vital capacity, fell well within the range of normality

She was placed in the kindergarten and gave promise of excellent progress. She did her work nicely. Her powers of observation, imitation, and attention were good. She knew the number concepts to 4 and could name and match the primary colors. She enjoyed music and the rhythmic games. Her learning was rapid, but constant drill was necessary for retention. Her conduct was good in the schoolroom and in the cottage.

At this time, aged 7.3 years, her Binet mental age was 6.3 years, I.Q. 86. On the Goddard form board her test age was 9.0 years. She showed a general backwardness in average development by being unable to give her age, distinguish right and left or tell the number of fingers on each hand.

Special care was taken that Grace have normal contacts both educationally and socially at The Training School. She lived in a cottage with little girls of her own mentality who, like her, were border-line children. She was neat and attractive and had a winning personality. Many of the officers of the School gave her personal attention. She was taken on visits to Philadelphia and other cities. She enjoyed special privileges and had many opportunities for normal social contacts. Later, the care of the supervisor's room was intrusted to her, and she got much pleasure from waiting on tables in the main dining room. She became proficient as a waitress and as a helper in all household duties. She enjoyed the better things of life, and showed many normal reactions as a result of all this special training.

During her early years she showed good school progress. She was active, obedient, and rather easily controlled. She learned quickly, but needed much drill in order to retain well. She was very fond of the smaller children and helped in washing, dressing and caring for them. But during these first years she showed practically no gains in general intelligence. With the advancing years she showed signs of arrested mental development. At the age of 8.1 years her Binet mental age was 7.0 years, I.Q. 86 as on admission, but four years later at the age of 12.8 years she "tested" only 7.3, with an I.Q. of 57.

She began having difficulties during her pre-adolescent period. Her temperamental and general social reactions grew more and more typical of the mental deficient. She developed a jealous attitude toward the older girls and occasionally had pouting spells. At the same time she became untruthful, dishonest, and sly. It was hard to teach her anything, but after she had learned she did her work nicely. She made almost no progress in formal school work. She found great difficulty with the academic work, but got along well with household arts.

By the time Grace was fifteen years old she had become so untidy,

careless and irresponsible with other people's things that the care of the attendant's room was denied her. She accumulated "junk." Her temperament was variable. She liked to remodel her clothes and she did beautiful crochet and embroidery work. Her school record was now typical of feeble-mindedness. She read poorly from the second reader, recognized words very slowly and was unable to tell new words by sound. Her physical exercises showed apathy. The quality of her work varied. She could do good work, but was careless unless constantly supervised. At the age of 14.9 years her Binet mental age was 8.2 years, I.Q. 55. Her Porteus test score was 6.0 years, while on the Goddard form board her score averaged 11.0 years. She ranked zero percentile for girls of her age on all these mental tests. Her physical and psychophysical measurements were two years retarded for the average girl of her age.

During her adolescence she showed an increase in definitely feeble-minded characteristics. She advanced more slowly in school. At the age of 17 she worked one period a day for four weeks trying to learn a poem of five verses, and was never able to recite it twice the same way. In reading and spelling she did third-grade work. She learned to add without carrying, but was unable to understand the simplest problems requiring arithmetical reasoning. She learned to tell time, but had great difficulty in grasping the idea. Her sewing and loom work were good. She was willing, but showed little initiative and resourcefulness. At this time she showed signs of developing sexual consciousness, but not to an abnormal degree. Her conduct was good and she seldom gave any trouble, although she needed constant supervision. At 20 years of age her mental age was 8.7 years, an increase of 2.4 years over her ability at the time of admission thirteen years before. She was now diagnosed as definitely feeble-minded, of low moron level, stable and trainable.

From the time Grace was 20 up to the present she had been a serious sex problem. Because of her fondness for children she had been trained to be a pupil helper in the kindergarten class. In this class she needed constant supervision on account of being unable to resist "petting" the small boys to an undesirable extent. Some notes written by her to the older boys in the institution are most obscene. When questioned about such notes she takes it as a matter of course, and exhibits no remorse or shame. Because of such exaggerated sex interests she requires constant supervision at school, about the grounds, and in the cottage. From a sweet-natured, honest, truthful girl she has become one of the least trustworthy of the children. She is not trusted with the new girls

because of her bad influence. It has been necessary to relieve her of the care of and help with the smaller children. She shows great emotionality when in the presence of boys or men. She is deceitful and vulgar, in spite of her quiet, unassuming, nice-appearing manners. She dresses carefully, has nice clothes and likes to make a good impression She is very susceptible to flattery and pours lavish praise upon any stranger who gives her attention. Those who do not know her weakness would have difficulty in understanding why she should remain in an institution for the rest of her life

A study of Grace's mental growth as indicated by her reactions to the Binet tests is of special interest From the time of her admission up to the present she has been "tested" 21 times by many different examiners The consistency of the test results not only is an evidence of her arrested mental development and the mental stability of the feeble-minded, but also witnesses the remarkable reliability of the tests as a measure of mental ability With wide differences in the personality and skill of the examiners, with ample opportunity for learning the tests from repeated examinations and from contact with higher-grade children, with constant intensive training at school, her performance is nevertheless remarkably consistent The mental age scores from these examinations are given in Table XIV, which also shows the dates of the examinations and the corresponding life ages, I Q.'s and years of

TABLE XIV —M A ON SUCCESSIVE EXAMINATIONS

Date	C A	M A	I Q	Retardation
1-13-11	7 3	6 3	86	1 0
7-12-11	7 8	6 2	79	1 6
10-27-11	8 1	7 0	86	1 1
1- 1-12	8 3	7 0	84	1 3
3- 6-12	8 5	7 1	84	1 4
7-22-12	8 7	7 0	80	1 7
4-28-13	9 6	6 3	66	3 3
6-30-13	9 7	7 2	74	2 5
8- 4-13	9 9	7 2	73	2 7
7-17-14	10 8	7.2	67	3 6
2-10-15	11.4	7 2	63	4 2
1-25-16	12 3	7 2	59	5 1
7-26-16	12 8	7 3	57	5 5
1-26-17	13 3	8 2	62	5 1
7-28-17	13 8	7 3	53	6 5
8-14-17	13 9	8 2	59	5 7
7-26-18	14 8	8 0	54	6 8
8- 8-18	14 9	8 2	55	6 7
11- 2-23	20 2	8 7	54	
11-10-24	21 2	9 0	56	
3-24-26	22 5	8 7	54	

retardation. The Goddard-Binet was used until 1918, the Stanford-Binet thereafter.

As a kindergarten helper she showed little or no judgment, insight, originality or resourcefulness, and yet she loved children, was willing and did her work well, after it had been planned One day she was asked to select a game and teach it to the class She evidently confused several games. She put colored balls in a box and then blindfolded a child and asked him to tell her the color of the ball she removed from the box She played this game for twenty minutes and was unable to see the absurdity. In all her school and cottage life she has been unable to plan, but follows well. For several years she has been an excellent waitress here, but at times she is very irritable and complains about being overworked. On the whole, however, she is well contented, and seems to be quite happy. From a social standpoint she typifies incompetence, and daily demonstrates her inability to get along in the outside world. She is still unable to do more than second- or third-grade school work, and her general mental ability is still between 8 and 9 years.

Special Types

In a fairly small percentage of feeble-mindedness diagnosis is facilitated by certain physical signs. These signs occur in syndromes, making possible a division into clinical types which, in spite of their relatively small number, are of great interest and importance. Such clinical types may be grouped into three classes: Mongolism, endocrinopathies, and neurological conditions. We shall briefly describe these types, although problems of diagnosis here tend to be more medical than psychological

MONGOLISM

This interesting, but baffling, condition was named and first described by Langdon-Down (1866), although it was undoubtedly known many years earlier. The name was given because of a supposed resemblance to Orientals, mainly because of the almond-shaped eyes Langdon-Down attempted a rather elaborate ethnic classification of idiots which, through lack of evidence, has lost whatever importance it might have had, although very recently Crookshank (1931) has stressed the origin of these peculiar individuals from Oriental ancestors. The attention paid to this condition appears out of proportion to the frequency of occurrence. Penrose (1934) has shown from his own and Van der Scheer's (1927) figures that the crude incidence in the total

population is of the order of 1 in 10,000. After correction for the high mortality rate and other factors, the number per live births is probably about 1 in 1000

The description and enumeration of the physical conditions of Mongolians have engaged the attention of many writers. A large number of symptomatic signs have been listed in one place or another, but they are not of equal diagnostic significance. For more elaborate descriptions of the condition, the reader is referred to Brousseau and Brainerd (1928), who have published a monographic treatise on the condition A brief description is given by Penrose (1934), who acknowledges his chief source to be the excellent account given by Stewart (1926). Kuenzel (1929) summarizes the characteristics thus. "As a *differential* condition the typical Mongolian is best described as having almond-shaped eyes, set in shallow and widely separated eye-sockets, with epicanthic folds and puffy eyelids His bright red tongue is unusually long, thick and broad, pointed at the end when protruded, with many deep transverse fissures, and usually protrudes from the mouth His lips are thick and transversely fissured, the corners of the mouth are drooped and the lower jaw is thrust forward He has a depressed nasal bridge, flattened occiput, small ears, hypotonic muscles, hyperflexible joints, and when asked to be seated he sits tailor fashion. The hands of the Mongolian are dry and chapped, his voice is coarse, and his gait is described as shambling" This condensed summary does not do violence to any of the other descriptions and it serves adequately in the present place. The condition is so similar in all cases that, as Penrose says, "to see and examine one is to obtain a very good idea of the characteristics of the type"

Penrose (1934) and Kuenzel (1929) have both presented data in relation to significant signs Table XV has been elaborated from Penrose. In the upper half are listed seven characteristics, with the percentage frequency of occurrence in a group of 50 Mongols and 350 non-Mongolian but otherwise unselected institution cases These data show that an I Q between 15 and 29 (imbecile) and a cephalic index 83 or greater are about three times as frequent in Mongolians as in non-Mongolian feebl[illegible] r signs are considerably more frequent. The lower half of the table is read thus 2 per cent of the Mongolians and 53 7 per cent of the non-Mongolian group had none of the seven characters, while 8 per cent of the former and none of the latter group had five of the seven characters In the last two lines it is

TABLE XV.—DIAGNOSTIC SIGNS OF MONGOLISM

Trait Name	Mongols (A)	Non-Mongols (B)	A/B
Number of cases	50	350	
	Per Cent	Per Cent	
I.Q. between 15 and 29	70	25.8	2.7
Cephalic index 83 +	44	17.4	2.5
Epicanthic fold	52	3.4	15.3
Fissured tongue	74	7.4	10.3
Conjunctivitis	30	1.4	21.4
Transverse palmar line	44	3.8	11.6
Only one crease on minimal digit	18	2	90.0
Number of Traits			
0	2	53.7	
1	4	35.4	
2	20	9.1	
3	30	1.4	
4	28	0.3	
5	8	0.0	
6	8	0.0	
7	0	0.0	
0-2	26	98.5	
3-7	74	1.5	

shown that while 98.5 per cent of the non-Mongolian group exhibited not more than two of the traits, only 26 per cent of the Mongolian were so limited. Combinations of three to six of the seven traits occurred in 74 per cent of the Mongolian and in only 1.5 per cent of the non-Mongolian. Thus, a complex of several traits is nearly 50 times as frequent among Mongolians.

A similar but less extensive study was published by Kuenzel (1929), who scored the members of 31 matched (for C.A., M.A., and I.Q.) Mongolian-non-Mongolian pairs on some 90 traits supposedly characteristic of the condition. The thirty most important traits arranged in order of their value in differentiating were as follows:

Almond-shaped eyes
Flattened occiput
Depressed nasal bridge
Pointed tongue
Unusually long tongue
Deeply fissured tongue
Thick lips
Epicanthus
Puffy eyelids
Thick tongue
Broad tongue
Coarse tongue

Somewhat depressed nasal bridge
Transversely fissured tongue
Hyperflexible joints
Assumes tailor's posture
Shallow eye-socket
Very wide distance between eyes
Chapped hands
Dry skin
Many fissures in tongue
Small ears
Transversely fissured lips
Hypotonic muscles
Drooped corners of mouth
Lower jaw thrust forward
Fissured tongue
Bright red tongue
Protruding tongue
Shambling gait

Only the first seven characters in this list did not occur at all in the control group

Penrose's choice of an I.Q between 15 and 29 as an important criterion is supported by other findings relative to the mental ability of these persons. Over half of Kuenzel's group of 31 cases were imbeciles, the highest M A. being 7 9 years; and nine of the subjects had mental ages of one or two years Brousseau and Brainerd (1928), in classifying 206 Mongols, found 38 per cent idiots, 61 per cent imbeciles and 1 per cent morons.

The cause of this condition is essentially unknown. Glandular dysfunction, exhaustion of fertility of the mother, heredity, Oriental ancestors, frequent pregnancies, and other causes have all been suggested as significant Because careful examination shows about 1 in 50 sibships with more than one member affected; because parents, who are themselves not Mongolian, sometimes show some of the signs, and because the condition does occur in twins, it is possible that a genetic factor may be involved. Russell (1933) described a case of female biovular twins, both of whom were Mongolians, and reports finding eight other cases in the literature. Herrman (1917) tentatively concluded that "the evidence that Mongolian imbecility is a unit character and recessive, although not conclusive, is certainly suggestive" The question of a genetic factor has, however, not been sufficiently investigated

[illegible] on to glandular [illegible] er The former [illegible] (1928) in their monograph, and the recent reports of Mateer (1935) appear to contribute much to this view. Mateer found that the administation of pituitary extract to certain selected cases, together with specialized training, resulted in definite improvement in test performance

Exhaustion of fertility accompanying advanced age of the mother as a cause has strong support. Van der Scheer (1927) showed that the

mother's average age at the birth of Mongolian children was significantly higher than of mothers in general. Similarly, Penrose (1934) found that the average age of mothers at the birth of 154 Mongolians was 37.2 years, while the average age of the same mothers at the birth of non-Mongolian siblings was 31.2 years. This difference of 6.0 years has a standard error of only 0.6 and so is of undoubted significance. Penrose also shows that the age of the father and the order of birth in the family are of little or no importance.

After examination of even one case of Mongolism, diagnosis is not difficult. Mild or atypical cases may present difficulties, but a judgment can usually be made by determination of the presence or absence of the crucial signs suggested above The flattened bridge of the nose which is common to some cases of Mongolism and to some of congenital syphilis may be confusing at times, but the presence of other clinical signs should establish a diagnosis Cretinism, especially in younger children, may sometimes be confused, but probably not by experienced examiners

The treatment of Mongolism as a pathological condition is entirely medical. Glandular therapy has been tried, but the results of different observers are conflicting Mateer (1935) reports the most encouraging results from polyglandular therapy. Seven of a series of 34 consecutive cases of Mongolism improved in test performance after such therapy to such an extent that they were raised above the level of feeble-mindedness. Four of these children had I.Q.'s over 90, and the other three were 78 or more. One case is reported to have increased his I.Q from 28 at two years of age to 106 at six years No details of the case are given. This work of Mateer's, while inadequately reported, is extremely suggestive Psychological or educational management is the same as for any feeble-minded child.

ENDOCRINOPATHIES

Cretinism.—The most frequent specific endocrinopathy associated with mental deficiency is hypothyroidism. Children with such a condition, or adults who have exhibited the condition from early childhood, are called cretins About three to five per cent of institution inmates show some hypothyroidism.

These children are characterized by an evident physical dwarfing. The body is thick-set, legs short; extremities—feet, and hands—are short and stubby; they are often cold and may be cyanotic. The skin

is dry and thickened and gives the appearance of being too large for the individual's body. There is little perspiration. Subcutaneous fat is abundant. The hair is scant, dry and brittle The tongue and lips are thickened; the teeth, which appear late, are peg-shaped and chalky, and exhibit early decay The abdomen is prom[illegible] and umb[illegible] hernia is common. They exhibit a [illegible] normal temperature Sex development is retarded and they seldom mature sexually The course of the abnormal condition is slow Many extreme cases die at an early age; milder cases may live to be adults Early deaths are usually immediately due to complicating factors rather than to the hypothyroidism itself. The mental ability may range as high as dull normal. There appears to be a fairly close correspondence between the degree of physical and mental defect.

Hypothyroidism is definitely known to be the cause of cretinism. However, it may be possible that hereditary factors may predispose certain individuals Emerson (1935) insists that a distinction must be made between true cretinism and infantile myxedema. The former occurs only in so-called goiterous regions and is due to a thyroid deficiency in both the pregnant mother and the child Goiterous regions are those areas of the world, such as the Swiss Alps, and the Great Lakes region in America, where there is apparently a deficiency of iodine intake, and this element is an important constituent of thyroxin, the chemical principle of the thyroid hormone Infantile myxe[illegible] [illegible]dren of parents with normal t[illegible] to a pathologic condition of the child's thyroid. Therefore *in utero*, at birth, and while nursing from the mother's breast these children may show no untoward symptoms. But when they can no longer depend upon thyroxin from the mother, typical symptoms appear

As earlier mentioned, these cases are sometimes confused with Mongolians, but the syndromes are quite distinct One important differential is the cephalic index, which is usually high in Mongolians but normal or low in cretins. In doubtful cases, the establishment of a definite diagnosis is a purely medical problem.

Treatment by the administration of thyroid is common, but must of course be carried on under medical supervision. Such therapy often shows definite physical improvement, but behavioral improvement is rare One case which has been followed during several years, illustrates this.

Case Number 6 (I. U. Clinic, I-3023). Mary R. was first examined at the age of seven years and two months in 1931. At this time the mother reported she had not walked until almost three years of age, that she had said words at 18 months and sentences at two years, but "no one except the family could understand her." At the time of examination the girl was repeating the 1B grade. The school authorities complained that she was troublesome because she was not able to do the school work and would interfere with the other children by wandering aimlessly about the room. At home she was not very active and played at about the level of a three-year-old Her Binet performance at this time gave her an M.A of three years and eight months and an I.Q of 51. The first trial on the Witmer form board was 163 seconds, which was the zero percentile for her age and was below the median for the first half of the 4th year She had been placed on thyroid therapy one month preceding the examination. This therapy was consistently followed during the next year On a second examination exactly one year later, her Binet age was four years and four months, with an I.Q. of 53. Her work and attitude in school had greatly improved and she had been promoted to the 1A grade. At home her mother had found it possible to intrust her with small errands On the Witmer form board her first trial had decreased to 55 seconds, which is the 15th percentile for her age. For the first time she was given the Porteus Maze test on which she had a five-year, six-month performance, with an I.Q. of 67 Following a second year of therapy she was examined in 1933. At this time her Binet performance was four years and six months, with an I.Q. of 55. Her school performance has consistently improved, and she exhibits initiative in many activities. Later examinations have shown a test performance represented by an I.Q. around 50 but the mother reports a very definite improvement in her physical condition and in her everyday behavior

Other Glandular Conditions—Hypothyroidism is the most frequent glandular dysfunction associated with mental deficiency. There is no reason, of course, why any other endocrine disorders found in mentally normal subjects may not also occur in the feeble-minded. However, no such disorder has yet been demonstrated to be of important etiologic significance.

Pituitary disorders, especially dystrophia-adiposogenitalis, or Fröhlich's syndrome, are not infrequently found. Occasionally gigantism is noticed. Mateer's (1934) report suggests a possible pituitary involvement in some cases of Mongolism, and in a later report (1935) she

calls attention to the possibility of polyglandular disturbances reducing efficiency.

NEUROLOGICAL GROUP

Several neuropathological conditions are associated with amentia, probably in a causal relationship. Four of these are of particular significance here because they represent rather well-defined syndromes that recur with some frequency in clinical work with the feeble-minded.

Hydrocephalus.—The most evident sign of this condition is the enlarged cranium, the circumference of which is not uncommonly 55 to 70 centimeters The head may be normal size at birth and a few days to months later exhibit a rapid growth in all directions The enlargement is limited to the cranium, hence the parietal or frontal regions may be extremely prominent, while the relatively non-changing size of the face makes it appear small and triangular in shape At even advanced ages, sutures between the skull bones may be open and the fontanels large and sometimes bulging

Hydrocephalus is due to an accumulation of cerebrospinal fluid because of congenital or post-natal pathological conditions leading to (1) exce (2) obstruction in the path of circulation, or (3) insufficient absorption There is little clinical evidence that the first of these is a very important cause of hydrocephalus The second is the most common cause of internal hydrocephalus, and the third, of the external form. Of these two last types, probably internal hydrocephalus is the one most frequently associated with mental deficiency

After formation in the lateral ventricles, the cerebrospinal fluid passes to the third ventricle through the foramen of Monroe and thence to the fourth ventricle via the Sylvian aqueduct. From the fourth ventricle it escapes through the foramina of Magendie and Luschka in the inferior (anterior) medullary velum into the subarachnoid space which is here expanded into the cisterna magna It then descends into the spinal subarachnoid space and ascends in the subarachnoid space about the base of the brain and the cerebral hemispheres, here following the deeper channels over the main cerebral sulci. Obstruction of this circulation may be caused by tumor growths, by foreign tissue formed following meningeal inflammation, or by congenital malformation of the various areas involved. The obstruction

may occur at any of the foramina mentioned, i.e., at the foramen of Monroe, resulting in distention of one or both lateral ventricles; in the aqueduct of Sylvius, causing distention of the lateral and third ventri-

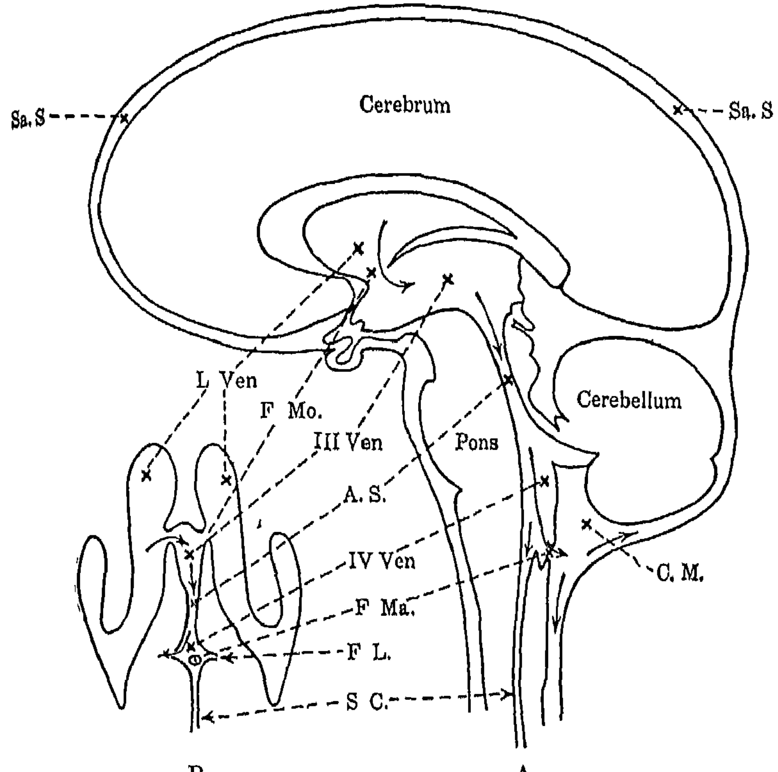


Figure 9.—Diagram of the Circulation of the Cerebrospinal Fluid. L. Ven., lateral ventricles; F. Mo., foramen of Monroe; III Ven., third ventricle; A. S., aqueduct of Sylvius; IV Ven., fourth ventricle; F. Ma., foramen of Magendie; F. L., foramina of Luschka; S. C., spinal canal; C. M., cisterna magna; Sa. S., subarachnoid space. A is a sagittal section redrawn from Rasmussen (1932), and B is a diagram of the ventricular system redrawn from Dandy and Blackfan (1917).

cles; in the fourth ventricle; in the foramina of Magendie and Luschka. Finally, obstruction may occur in the subarachnoid space, especially at the level of the tentorium cerebelli above which level about four-fifths of the absorption probably takes place.

The mental ability of these patients apparently has some relation to

the degree of hydrocephalus present It may range from idiot to normal However, the external appearance is not always a good indication of the degree of defect. A boy of 11 years and 3 months, examined in the Indiana University Psychological Clinic, had a head circumference of 78 centimeters which the mother said had not changed in size since the boy was five years old His Binet performance gave him an M A of 8 years 10 months and an I.Q. of 78

Medical diagnosis to determine the type and degree of hydrocephalus is essentially neurologic and does not concern us here Treatment for the pathologic condition has been attempted by surgical interference directed toward reestablishing ventricular circulation. This has been of doubtful success. The prognosis is unfavorable, with some very mild cases showing recovery, some cases showing no change after a certain point, and severe cases dying in infancy

Microcephalus and Macrocephalus—These conditions have in common a congenital malformation of the skull and mental deficiency Microcephalus is sometimes used to characterize any small-headed person, but technically should be restricted to a particular pathologic condition. Chief among the signs of this condition is a cephalic index averaging about .75; hence the head is long and narrow, the length more nearly approaching normal than the height or width. The skull is rarely over 17 inches in greatest circumference, and the brain is extremely small, with a simple pattern of cortical convolutions The condition occurs in not more than one per cent of institutional patients. The cause is unknown, but the effect of irradiation, mentioned earlier (cf. Table XII), is suggestive Mental ability is seldom above the imbecile level.

Macrocephaly is an enlargement of the skull wh[illegible] and is therefore distinguishable from hydrocephal[illegible] responding increase in brain size as the increase is in supporting structures and not nervous elements

Birth Injury—The recent experimental work at Vineland reported by Doll, Phelps and Melcher (1932) introduces a new phase of interest in this group of neurologic conditions associated with amentia While birth injuries have long been thought of as possible causes of mental deficiencies, there appears to have been a comparatively small amount of inquiry into possible relationships

According to Melcher (1929), the physical characteristics of children so injured may include "spastic paralysis, athetosis, choreic movements,

speech defects, and perhaps hydrocephalus and secondary epilepsy" The frequency of some degree of mental defect is probably high, although adequate data are not available. Smith (1926) reports 75 per cent of a group of 50 cases of cerebral accidents in childhood to be mentally defective. Doll (1933) reports that, at the Spaulding School in Chicago, "in a miscellaneous group of 150 cases of infantile palsy in children of school age most of which are presumably due to birth lesions, one-third are rated as mentally subnormal and two-thirds as mentally normal" The converse figures, that is, the percentage of birth injury cases among feeble-minded, are much lower Larsen (1931) classified about eight per cent of his cases as birth-injured; and Doll, *et al.* (1932), say that from six to ten per cent of their mentally deficient subjects were found to be birth-injured

Of the possible injuries to the nervous system occurring during labor, the intracranial ones are of greatest importance in the etiology of amentia. Such injuries, chiefly hemorrhagic in nature, may involve cortical or sub-cortical areas and may affect either the pyramidal (motor) or non-pyramidal systems The type of motor or other disturbance evident is of course related to the region and type of hemorrhage. Other brain conditions may be important in mental deficiency, such as infections or neoplasms, although these are not related to birth trauma.

Diagnosis aimed at discovering the nature and extent of the lesion, and whether it occurred at birth, is entirely medical and cannot be gone into here. Doll (1933) suggests six fields of inquiry necessary for a complete psychological diagnosis: (1) clinical status, (2) birth and pre-natal history, (3) neo-natal history, (4) ontogenetic history, (5) history of pathology other than that associated with birth lesions, and (6) heredity The important neo-natal evidences of intracranial injury summarized from Tredgold (1929), Ford, *et al* (1927), and Ehrenfest (1926) are asphyxia, especially of the pallid type; difficulty in inducing respiration, which may then be slow and irregular; feeble pulse; child usually sluggish and unresponsive and does not cry, although widespread injury may be indicated by restlessness and incessant crying; disinclination or refusal to nurse, convulsions, with rigidity and even opisthotonus; fontanel may be tense and bulge, especially in extreme cases; spinal fluid, on lumbar puncture, is bloody and shows increased pressure; evidence of paralysis.

The psychometric examination of these children is difficult and apt

to be misleading. Their motor and speech handicaps make it impossible for them to show adequate responsiveness and this may mask a real ability Doll, *et al.* (1932), found that the Binet and the Myers Mental Measure were the most useful tests with their cases. The Porteus Maze was satisfactory, but form boards were not. In any case it is suggested that allowances must be made in interpretation

Treatment by physiotherapy aimed at muscle training was tried with some of the Vineland group but was not continued long enough to give clear-cut evidence of its value. The motor disability of these cases makes the problem of vocational training quite different from that of physically normal children.

Other Neurological Conditions—It would seem only reasonable that if congenital or natal injury or infection of the nervous system, especially of the cerebrum, results in mental deficiency, similar conditions at an older age might have similar effects. There is evidence that this is true. Congenital syphilis, with or without juvenile paresis, may have an etiologic relation to amentia in some cases (see page 105). Cerebrospinal meningitis, encephalitis, and other neural infections may have a similar relationship

A great deal of interest has been shown in the mental sequelae of encephalitis lethargica We shall consider these at greater length in another section of this book, but we may here point out the possible relation to feeble-mindedness From a summary of the literature, Hetherington (1933) says, "Children under three who have suffered from the disease have not been known to attain normal mental development afterward." While she says further that character changes are more frequently found as sequelae in older children, there is evidence that mental defects may occur Dawson and Conn (1926, 1931) found that 53 post-encephalitis cases had an average I.Q. of 83 9 ± 1.2, while 1020 unselected patients in the same hospital had an average I.Q of 90.27 ± 0 31 The difference between these averages is 4 1 times its probable error and is therefore significant

In cases of encephalitis, especially in school children, there is usually some evidence in test results or school achievement by which one can indicate the presence of mental deterioration. This is not true if the cerebral inflammation or injury has occurred in early infancy, and it is therefore difficult to be sure that the amentia predated or postdated the acute febrile attack. In any case, the evidence that such neurological

conditions may be significant etiologic factors in amentia requires that disease history in early life should be secured for every case.

Management

In dealing with the mentally defective—and every clinical psychologist, whether or not he is officially connected with an institution, is constantly having to do so—it is not enough to diagnose and label. The psychologist must be ready to make recommendations for care and training, and he is often expected to attempt a prognosis. To be able to do these things, he must be familiar with, although not an expert in, special education, institutions, vocational opportunities, and methods of social control of the subnormal In this book we can present only the more general features of the various questions of management, we refer the reader to more technical discussions for details

Most usually the psychoclinician must make his recommendations and prognoses to parents or other relatives; on occasion, to professional workers in other fields, such as teachers, social workers, physicians, ministers, or lawyers It must be made perfectly clear to the persons concerned, if they do not already know it, that we know of no method for curing feeble-mindedness, i.e., of making the patient normal It is sometimes very difficult, even impossible, to make parents believe the truth of this. One family brought their nine-year-old idiot son to the James Whitcomb Riley Hospital Neurological Clinic, after having taken him to at least a dozen physicians. Each of these men had told the family just what the neuropsychiatrist did, that medical science or art had nothing to offer in the way of curing this boy. In spite of careful explanation of the boy's probable neuropathology in terms the parents could understand, the father's only answer was, "If you can do nothing for us we are going to take him to Dr. ——— in St Louis." With such stupid refusal to face the facts, little can be done As soon, however, as parents recognize that the feeble-minded child cannot be made normal, but that he can be greatly helped to live a happier and more useful life, then reasonable plans for their guidance can be formulated

We have already mentioned that medical and surgical therapeutic procedures have been tried on certain pathological types of feeble-mindedness with little or no success. Glandular therapy, especially with hypothyroid conditions, has beneficial results in improving gen-

eral physical condition, but there is little evidence that the mental condition is similarly improved Surgical interference has been of no avail in microcephalus, and only rarely have there been desired results in hydrocephalus Of course, this does not mean that medical attention should not be given to the feeble-minded Good health, good physical condition, good physical hygiene are as important for these people as for any other group But there is no evidence that such medical attention does anything to improve the mental condition Physiotherapy, as shown by Doll, *et al* (1932), is an important aspect of treatment in the birth-injured, paralytic feeble-minded, but here again there is no claim that such exercise results in any significant improvement in mental ability.

Psychoanalytic psychiatrists have turned their attention to therapy with the feeble-minded While these workers do not deny that a lack of intelligence is fundamental to feeble-mindedness, they believe that in some cases, maybe in all, part of the difficulty is due to emotional blocking of the abilities possessed As Clark (1933) says, "The general distribution of libido is such as to restrict the dynamic forces available for intellectual use" On this theory, workers, notably Dr L. P Clark of the Psychoanalytic Sanatorium at Rye, N Y., and Dr. Menninger at the Southard School at Topeka, Kansas, have tried an active therapy of a psychoanalytic nature aimed at releasing emotional blockings in the feeble-minded. There is no claim that improvement in intelligence follows such treatment, but the reports of the work do indicate that the general behavior of some children does improve.

The possibility of aid to the feeble-minded in making their life happier and more useful lies in training, and in this alone It seems safe to say that a large share of the social problems of the mentally defective—delinquency, dependency, immorality, crime, and all the rest of a long list of socially pathological conditions—may be accounted for by the difficulty in, and the lack of, suitable training for them. The feeble-minded, are not all criminals, or all dependent, or all immoral. The same reasons that may be found to account for social pathology in any group are found among mental defectives. But, in addition, the ament lacks foresight to see the consequences of his acts. He is suggestible and readily follows a leader, and all too often the circumstances of his existence scarcely offer a desirable model Evidence is available in great quantity to prove that these

mentally inferior people may play useful parts in the scheme of things—but in most cases they do so only with training and supervision

Obviously, the training of the feeble-minded child, as well as of the normal child, must begin in the home Therefore, one important task of the clinical psychologist is to help parents to help their children This can be done, of course, only if the parents are themselves capable and willing. When they are capable but unwilling, or incapable but willing, or neither, then society must take the initiative in training the child When the parents are both willing and reasonably capable of helping the child, there are certain things which they must clearly understand We may list several of these

1 The performance ability of the mentally retarded child is growing in much the same fashion as the normal child's, but at a slower rate. The rate of growth, as well as the level reached at any particular time, is roughly indicated by the I Q

2 Within limits, the establishment of desirable habits is possible. The six-year-old with an I Q of 50 can hardly be expected to be, or do, all the things that a normal six-year-old is or does, but he can be expected to do those things usual for a three- or four-year-old.

3 The establishment of such habits of behavior as elimination control, talking, feeding, dressing, politeness, cleanliness, etc, is quite possible—and necessary But they cannot be established at as early an age as with normal children Further, one can expect that they will take longer to establish.

4. Children of very low-grade ability (e g., I.Q's below 40) will probably never be completely independent of the parents or some other persons. Therefore, provision for their future must be made

5 In homes where one child is defective and other children are normal, the defective child must have only his share of the parents' attention, but he must not be denied that. Oversolicitude for, or rejection of, the defective child is as undesirable as similar attitudes toward normal children

6 There is, or rather should be, no stigma attached to inferior mental ability Therefore, any available assistance should be accepted for the child.

7 Specifically, number 6 means that special educational regimes, either in the public school or in private or state institutional schools, should be taken advantage of

8. It must always be kept in mind that the best welfare of the child is being sought. Therefore, questions of expediency, comfort, or family pride must be secondary.

The psychologist and the teacher can be of great help to the parents in advising and planning specific training procedures However, no amount of help will be of avail if the parents expect too much or too little from the child. The clinical psychologist must take it as one of his tasks to follow closely a child's progress and to be ready with aid, so that the child may make the best use of his possibilities.

After the age of six, society insists on more formal education than that usually provided for by the home This is reflected in the free public schools and the compulsory attendance laws. Such compulsory education laws make little or no exception for the subnormal Therefore, we must assume that the schools have as much responsibility for the training of subnormals as they have for normals At first, the schools undertook the responsibility by trying to teach the subnormal child in the regular classroom The difficulties in trying to do this were early recognized, and the first special class for subnormals was organized in Providence in 1896 Within the next five years classes were started in Springfield, Chicago, Boston, New York and Philadelphia. Since that time many classes have been started, but today they are not to be found in even half of the city school systems Table XVI shows the prevalence of classes for subnormals in 1932 according to the data of Foster, Isdell, *et al* (1933) Evidently there are many communities which do not have special class facilities for these groups of children Where this is true, of course, the psychoclinician cannot recommend special class attendance. The enrollment in the classes reported was 75,099, with an additional 13,786 in state and private residential schools, making a total of 88,885 subnormals

TABLE XVI —DISTRIBUTION OF SPECIAL CLASSES FOR SUBNORMALS

Population Group	Cities, 1930 Census	Cities Reporting	Cities with Special Classes
100,000 and more	93	482	70
30,000–99,999	222		131
10,000–29,999	667	797	165
2,500– 9,999	2183		117

having the advantage of special educational facilities According to the 1926-1928 Biennial Survey of Education of the U S. Office of Education (1930), there were slightly over twenty-three and a half million children in the schools of the United States. If one accepts two per cent of these as being sufficiently defective to require special educational facilities, there are some 470,000 such children It is evident from the figures quoted above that only about 21 per cent of these children are being cared for in special classes or residential schools.

The aims of special education for subnormal children are essentially the same as the aims of any education, but with slightly different emphasis in the direction of preparing for a more circumscribed socio-economic life. Specifically, the aims of education for the subnormal may be stated as follows (cf. Ingram, 1935):

1 *Health.*—Adequate habits of good physical hygiene should be formed As with the formation of all habits in the feeble-minded, this must be done specifically Generalities on the need for cleanliness, care of teeth, avoidance of infection, etc, will not be sufficient. The mentally deficient child must be taught to brush his teeth, wash his hands and face, and so on, each as a special habit.

2. *Tool Subjects.*—Reading, writing and arithmetic should be taught, of course, but the child's limitations must determine how extensively Simple counting, number recognition, making change, and similar processes in arithmetic; ability to read signs and newspapers; writing hi [illegible] should be a basic minimum in all cases

[illegible] should be directed toward teaching the subnormal child something concerning his relations to social institutions. He may be taught some conception of the part he may play in political, religious, industrial, recreational, or other aspects of community life. More immediately, such social training may concern itself with his place in the family group and the contribution he may make to it

4 *Personality and Character.*—It is as important for the subnormal child to have a stable, well-integrated personality as for the normal child Perhaps it is even more necessary with this group to teach social [illegible] such as honesty, industriousness, and [illegible]

5 *Leisure.*—Perhaps one of the most difficult problems of all education is training in wise use of leisure. For the subnormal many leisure-time activities are impossible Therefore, it is all the more necessary to devote attention to this problem in the education of the

mentally deficient. Music, athletics, handicrafts, group games and other types of non-intellectual activities offer an extensive field of exploitation for the subnormal It is quite probable that lack of socially acceptable means of occupying leisure time is the indirect cause of delinquency among the feeble-minded.

6. *Vocation.*—Occupations open to the subnormal are limited (see Table XIX), and most of them require manual, concrete activity. Therefore, the schools should emphasize pre-vocational work in developing manual skills The use and care of tools in carpentry, masonry, electricity, and mechanics, form the basis of more advanced training in a specific trade. While all of the preceding aims are important, this one, which is related to the mental defective's whole economic adjustment, is probably most important.

An excellent generalization of the aim of special subnormal education has been made by Dr. C. S. Berry (1926), who says, "Since about 20 per cent of the adult population are engaged in unskilled labor the folly of attempting to prepare children of the most inferior intelligence for skilled labor or for electrical work is self-evident The aim of the teacher, after a thorough trial in the special class has demonstrated the impossibility of the pupil's ever successfully doing regular grade work, should be to prepare him to become a law-abiding, self-supporting citizen in the simplest occupations."

The clinical psychologist's recommendation for special class work must be guided by several factors. In the first place, there must be special class facilities available. Where there are none, the regular classroom teacher may be able to help the subnormal if she is aware of the child's limitations, and what they mean in connection with academic achievement Secondly, the ability levels accepted in the special class will influence recommendations I.Q.'s from 70 to 80 constitute the upper limit, and about 50 the lower limit, for most classes. Children within these limits whose school achievement or placement is low, should be placed in special classes, at least for trial periods Sometimes children with I.Q.'s below 50 are able to profit somewhat by work in the special class. Beyond the upper limit, children with I.Q.'s in the 80's and 90's may occasionally be sent to special classes for a limited period in order to bring specific academic achievement up to a satisfactory grade level

Frequently, neither the home or the school is entirely satisfactory in training feeble-minded children Extremely low I.Q., inadequate

home conditions, and established socially undesirable habits, are three of the reasons. In such cases, training may best be carried on in a residential school or institution. As reasons for institutionalization are more social than educational, we shall discuss them in the next section.

Social Control

The most serious problems presented by the feeble-minded are their social maladjustments. This has long been recognized, and much energy has been devoted to the study of such problems. From these studies it has been concluded that all of the feeble-minded are potentially criminal, immoral, delinquent, or in general socially pathological. While this is no doubt true, it is also true that every individual is potentially anti-social. The basic difference is not in intelligence, but in the ament's lack of recognition of responsibility for, or consequences of, his acts.

This conclusion, that the feeble-minded were all potentially anti-social, was followed by attempts to discover means by which society could protect itself from the insidious influence of its less fortunate members. Chains, bars, floggings, and later a more humane three meals and a place to sit around, were long the best solutions that society could offer. Even today many institutions offer little more than this last. There is, however, a growing realization that many of the evils once attributed to low intelligence, *per se*, are really due to inadequate training of those with low intelligence. This statement is perhaps difficult to prove because emphasis on training in social adaptability is relatively new, and therefore there are few data available. But the contrast evident in the next two sections—the first indicating the socially undesirable aspects of the behavior of the feeble-minded, and the second illustrating socially desirable possibilities—does indicate that a start has been made in the direction of realizing the social values as well as the social liabilities of the feeble-minded.

Social Maladjustments.—Studies such as those of the Jukes, the Kallikaks, the Nams, the Hill Folk and other socially degenerate families and communities show the possible close association of feeble-mindedness and anti-social or asocial behavior. Louttit and Frith's (1934) study of the Dorbets illustrates social dependency without criminal tendencies in a feeble-minded couple who have traveled widely. Figure 10 from Hodder (1918) is an excellent illus-

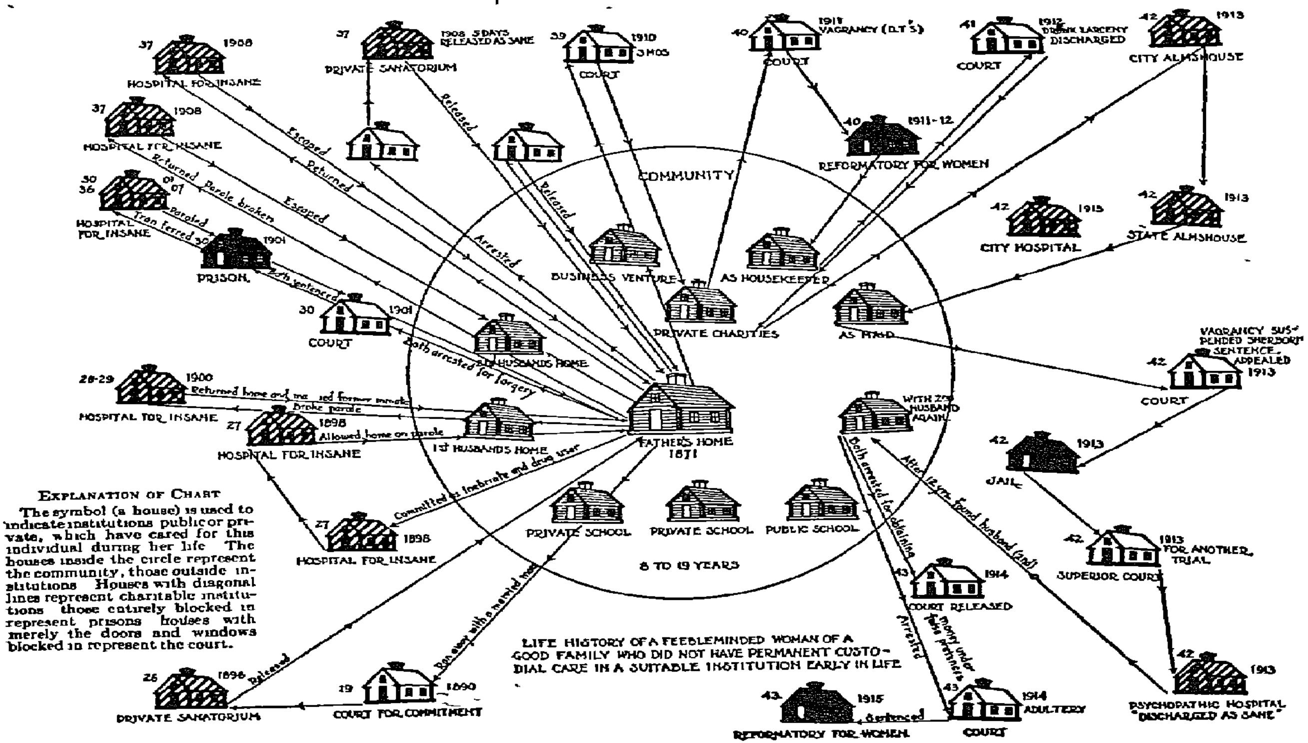
tration of the social incapacity of one feeble-minded woman. After thirty years, the state was still spending money in having this woman tried in court and sent to institutions, only to have her released While it is much more extreme, her history is similar to that of the Dorbets, and shows the same involvement with public agencies as a result of inability to assume responsibility for her acts

The frequency of feeble-mindedness among juvenile delinquents is much higher than in the general population. Data from Pintner's (1931) summary of published surveys have been quoted earlier. When the proportion of feeble-minded in the total population of all of the reports is calculated, it amounts to about 26 per cent. Dependent children also show a high incidence of feeble-mindedness. Pintner also lists studies on dependent children from which an average incidence of 16 7 per cent may be calculated.

The following cases illustrate typical problems of the defective delinquent In the first account, that of an inveterate criminal of moron ability, it is interesting to note the absurd reason given for killing, and the almost childish spontaneity in confessing the crime after two years. This one criminal act of a feeble-minded man cost the county many thousands of dollars which would have been avoided if his mental condition had been considered, in at least one of his many trials, and if he had been committed to an institution for the feeble-minded

Case Number 7 (Thacher, 1917). Bill —— is a man of about 39 years He is a low-grade moron, is physically slight and weighs about 120 pounds. His head is asymmetrical and his hands are so small that he can slip them out of an ordinary pair of handcuffs with ease He appears weak and peaceable, but his own family say that he is exceedingly mean and bad-tempered. He was in the reform school as a youth, and says in a laughing fashion that he has been in the county jail a dozen different times. He is now serving his second sentence in the penitentiary. He is a hopeless thief, and, according to his half-sister, his half-brother served a term in the penitentiary for accepting or buying some stolen goods from him Firearms have an unholy fascination for Bill, and he is serving his present sentence for larceny of a gun.

His reputation as a thief is such that the sheriff of Washington County asked for the privilege of taking him, in May of 1917, to the county seat to clear up certain crimes. Bill began to tremble



EXPLANATION OF CHART

The symbol (a house) is used to indicate institutions public or private, which have cared for this individual during her life. The houses inside the circle represent the community, those outside institutions. Houses with diagonal lines represent charitable institutions, those entirely blocked in represent prisons, houses with merely the doors and windows blocked in represent the court.

Figure 10.—Social Maladaptations of a Feeble-minded Woman (After Hodder)

when he was told that he was to be taken to Washington County and was so frightened that he could not change his clothes to go, but had to be dressed by a guard. He finally could contain himself no longer and blurted out to the sheriff, after reaching his destination, "I know what you want me for; you want me for killing Booth." The sheriff was thunderstruck, but asked him some questions and soon had a complete confession of how he killed William Booth on October 8, 1915 This occurred in a partly wooded field in an adjoining county. Bill told where he hid the revolver he used in killing Booth and gave a number of facts capable of being verified

To go back to the murder in 1915, Booth's wife of about 35 and a young man of 23 by name of Branson, who was a family connection, were arrested for the murder, and after three trials they were finally convicted on the purely circumstantial evidence that certain witnesses had seen them, not together but separately, go along the road adjoining the field where Booth was shot. The theory of the prosecution, that Branson and Mrs Booth were guilty lovers, had the support of neighborhood vicious gossip but there was no direct evidence. Mr James E Burdett, one of the lawyers who defended Branson and Mrs. Booth, writes me that for his own satisfaction he spent much time and energy tracing these scandalous rumors but could not find anything to support them He says he is thoroughly convinced of their innocence, "for in all my conversations with them, they have never said or done anything that would lead me to believe them guilty, but to the contrary their actions have strengthened me in my belief of their innocence" Mr Burdett has been a prosecuting attorney and his opinion is of value. From conversations with Mrs Booth I am entirely satisfied of her innocence I find from criminal lawyers that their guilty clients invariably give themselves away in little details, so that by the end of a criminal trial the defendant's lawyer is in a better position to estimate the guilt or innocence of the accused than either the judge, the jury or the prosecuting attorney.

The first trial in the case resulted in disagreement, the second in a conviction which was reversed by the supreme court, and the third in conviction These three trials cost Yamhill County eleven thousand dollars, and Mrs. Booth and Wm. Branson were sentenced to the penitentiary.

Taking up the confession of feeble-minded Bill, while there was much incredulity, yet Governor Withycombe, who has shown an interest in the problem of the feeble-minded, at the request of the Oregon Prisoners' Aid Society, directed the warden of the penitentiary to go over the ground with this feeble-minded man. Sure

enough, Bill took the warden directly to the spot, some 50 miles from where the murder was committed, and found a 38 cal. revolver where he had placed it. It was covered with rust, due to 19 months' exposure. The balance of the story also checked up accurately, including the hiring of a certain pony by Bill to ride to the town where Booth lived, which the owner remembered Bill was also remembered by a camping party he stopped with on his way to Tillamook where the revolver was found, and he was remembered as wearing hobnailed shoes, and also by his peculiar conduct which led the campers to keep watch all night. Tracks of hobnailed shoes were found near the murdered body of Booth, and Branson, who was convicted, was shown to have worn button shoes without the hobnails at that time.

As for Bill's motive in killing Booth, he said Booth had called him a "con" and had threatened him, and he believed he had "tipped him off" to the game warden. To those who know the feeble-minded there is nothing remarkable in Bill's confession

One of the most serious social problems presented by the feeble-minded girl is sexual promiscuity. The subject of this next case cannot be called immoral because acceptance or rejection of the moral code implies some understanding of it Custodial supervision of girls of this type would appear to be the wisest provision for the girl as well as for society.

Case Number 8 (Thacher, 1917). In March of 1916, Mary ——, a decidedly attractive girl seventeen years of age, was picked up on charges of sexual delinquency, and four men were tried in the circuit court of Multnomah County on the charge of contributing to the delinquency of a minor. Two boys were tried in the juvenile court on the same charge Two men were convicted and sentenced to jail for four months each, and two men were acquitted by the trial juries The two boys pleaded guilty in the juvenile court and were sentenced to the reform school, one of them being paroled. About six more men and boys were accused informally of cohabiting with this girl but the charges against them were not pressed. These offenses were committed between August, 1915, when she left the convent, and February, 1916 The girl was held in the House of the Good Shepherd during the grand jury investigations and trials in the criminal court, but in July of 1916 she was released from its custody though there was a charge of delinquency pending against her. The District Attorney's office estimates that these cases in which the girl was involved cost the county some fifteen hundred dollars

This pretty girl was examined by Dr Rowland and was found to have the mentality of a ten-year-old child. She complained of having dizzy headaches and of suffering pain in her eyes. She stuttered in the characteristic fashion of the feeble-minded and was unable to read well. She had no power of abstract reasoning and could not tell the time—never could learn to do so She was also entirely lacking in the capacity to estimate the passage of time. An occurrence which consumed a minute's time she was liable to say took from three to five minutes However, she had a fairly good memory and composed doggerel verse which impressed the careless observer as an indication of mental power Mary's mother is weak-minded and her brother, who is about 21, has epileptic fits and heart disease and from all accounts is also probably weak-minded Mary was living at home at the time she was cohabiting with a dozen different men and boys, and her mother was as incapable of directing her daughter's conduct or even knowing what she was doing as a ten-year-old would have been.

Just before Mary was arrested for delinquency, the mother discovered that Mary's half-sister, a little girl seven years of age, had been raped. A young man who had been cohabiting with Mary and who admitted sexual relations with her less than 24 hours before the rape of the little sister occurred, was charged with this offense and indicted by the grand jury It was alleged that the rape of the girl had occurred during the time that Mary left the room, leaving her little brother and sister with this young man. Mary said she had gone out of the room and stopped a moment in the hall, and because of inability to estimate the passage of time said that she was gone between five and ten minutes

An investigation was made and it was found that Mary's brother had warned this young man just before he was arrested that the little girl had been raped The family thought this young man was guilty, and the brother suggested that he run away and leave the state An attempt was made to see Mary's brother to question him, but he was not at home at the time an officer called When he did return the same afternoon and learned of the inquiry for him, he took a train that evening for California, beating his way, and has not returned to Portland up to the present time All of the circumstances of the case indicated that Mary's weak-minded brother was probably the guilty one in the matter of the rape, and the charge against Mary's lover was dropped, though he served four months in jail for cohabiting with Mary.

Mary's mother begged so constantly for Mary's release from the

House of the Good Shepherd that the District Attorney's office consented on the ground that she was irresponsible and had been more sinned against than sinning. The weak-minded mother promised to take Mary to a farm and care for her. This was in July of 1916

In April, 1917, a request came to W. G. MacLaren of the Pacific Coast Rescue and Protective Society to get Mary and take her away as she had been left to her own devices by her mother (who had gone back to the city), and had become a public nuisance. Investigation showed that Mary was cohabiting with various men and boys, and was infected with gonorrhea, and was pregnant On the day she was brought back to Portland she wrote to one of her boy lovers that she would not tell on him, but when her babe was born she would kill it and then rejoin him

Then she made a half-hearted attempt to kill herself which necessitated several hours' work over her. She is now in the Louise Home being treated for gonorrhea and awaiting the birth of her baby.

Data showing the frequency of delinquency and dependency among the feeble-minded are not available Still, it is hardly necessary to dwell further on the possible social dangers of these mental deficients. Case studies and statistical surveys agree in pointing out that the feeble-minded constitute an appreciable proportion of the socially abnormal classes Therefore, all programs for the guidance and management of a feeble-minded patient must consider the possibility of existing or future social difficulties.

Social Adaptation.—The other side of the picture is presented in a number of studies dealing with the vocational and economic adjustments of feeble-minded persons The general findings of these studies are fairly summed up in the following quotation from Shimberg and Reichenberg (1933): "We conclude that it is possible, after individual study of defectives, to estimate with considerable accuracy the conditions under which they will make satisfactory adjustment. This study seems to show that the defective can be so treated as to be a positive asset in the community"

Fairbank (1933) has published one of the most interesting of these studies. She reported on the social adjustments of a group of children from the Locust Point District of Baltimore studied by Campbell (1917) seventeen years before. Of the 166 children who could be traced, 122 were found defective by Campbell. The adjustments of this defective group were compared with those of a group of 90 children who had not been diagnosed as subnormal by Campbell.

TABLE XVII.—ECONOMIC STATUS OF SUBNORMAL AND NORMAL GROUPS

	Subnormal Group (122)		Normal Group (90)	
	Cases	Percentage	Cases	Percentage
Self-supporting	50	41 0	48	53 3
Supported by husband	29	23 8	24	26 7
Husband and wife both working	16	13 1	7	7 8
Total self-supporting	95	77 9	79	87 8
Partially self-supporting	6	4 9	2	2 2
Family Welf Ass suppt tempor	8	6 6		
Family Welf Ass suppt prolong	4	3 3		
No job, with parents	5	4 1	9	10 0
State care or widow's pension	4	3 3		
Total cases	122		90	
Own or buying home	37	30 3	22	24 4
Saving money	19	15 6	32	35 6

TABLE XVIII.—TYPES OF OCCUPATION OF SUBNORMAL AND NORMAL GROUPS

	Subnormal Group (122)				Normal Group (90)			
	Men	Women	Cases	Per-centage	Men	Women	Cases	Per-centage
Factory worker	17	26	43	35 2	1	19	20	22 2
Unskilled laborer	5	—	5	4 1	2	—	2	2 2
Domestic worker	—	8	8	6 6	—	3	3	3 3
Chauffeurs	9	—	9	7 4	3	—	3	3 3
In R R shops and yards	10	—	10	8 2	2	—	2	2 2
In ship yards, etc	7	—	7	5 7	6	—	6	6 7
Supervisors (tally-keepers, etc)	3	—	3	2 5	3	—	3	3 3
Skilled laborers	9	1	10	8 2	7	—	7	7 8
Clerks, stenographers	4	2	6	4 9	8	21	29	32 2
Dictaphone operator	—	—	—	—	—	1	1	1 1
In business	3	1	4	3 3	3	1	4	4 4
In city or government jobs	1	—	1	8	3	—	3	3 3
In profession	1[a]	—	1	8	1[b]	2[c]	3	3 3
Never worked steadily	3	—	3	2 5	1	—	1	1 1
Worked only at home	—	12	12	9 8	—	3	3	3 3

[a] Barber
[b] Lawyer
[c] Teachers

The data in Tables XVII and XVIII show the economic and occupational adjustments of these two groups. Certain other findings may be briefly summarized: there were more marriages and slightly more sex delinquency among the subnormals; there was more dependency shown by affiliation with charitable agencies among the subnormals; the living conditions of the self-supporting subnormals were not as good as those of the normals; there were more juvenile court records among the subnormals, but the police court records were about the same; there was greater migration to better parts of the city by the normals. When one considers that this report deals with people for whom no special supervisory efforts were made, one may conclude that the dark picture of social degradation of the mentally defective is not entirely true.

Channing (1932) has prepared a monographic report on the occupational adjustment of 949 boys and girls who had attended special classes for subnormals in seven cities in different parts of the country, and of 167 persons discharged from two Illinois state schools for the feeble-minded. This study clearly shows the possibility of industrial placement of the subnormals. The types of jobs held for at least one year by persons of various mental age levels are shown in Table XIX. The following cases illustrate something of the occupational histories. The type of occupation in which the boy in the first history has been so successful is the sort in which one expects to find the feeble-minded. In this case, supervision apparently plays a large part in the successful economic adjustment.

Case Number 9 (Channing, 1932). Edward, another boy whose intelligence quotient was less than 50, had been steadily employed. When he left the institution with the approval of the authorities after a stay of five years, he was 19 years of age. He had never been a behavior problem but was dull in appearance and could mutter only a few syllables and grin when interviewed by the Children's Bureau representative. At least partly through the efforts of his relatives, his industrial adjustment had been successful and he had given no trouble at home. He had had a great deal of difficulty in finding work when he first returned home. The employment bureau to which a social agency had sent him said it could not find anything for him because of his mental defect. Finally, five months after he left the institution, his brother-in-law obtained a job for him at a large meat-packing plant in which he was employed. Edward's mother took him to

work for the first few days, and his brother-in-law looked after him in the shop. After leaving work in the afternoons, the boy went directly home and stayed in the house until his mother returned from her work. Outside of working hours he went nowhere unless accompanied by his mother. *From the day he first went to work to the day he was visited, nearly 3.5 years later, the boy had held the same job, that of laborer, opening and shutting refrigerator doors.*[3] He was said by his employer to be a very regular worker, never missing a day. His wages had been raised at the time of a general raise in the plant, from $15 to $20 a week.

Two points in the next history are noteworthy. One is the great stability of employment shown by the girl in staying at one job for four years. Of more particular interest is the work required by her in the first place. While we are not told from how many different labels she had to select, nevertheless the perceptual habits involved might ordinarily not be expected from a girl of this low level.

Case Number 10 (Channing, 1932). Anna's intelligence quotient was 47 (Goddard revision) about the time she left the institution, but was 57 according to an earlier test. She had worked steadily between 80 and 90 per cent of the seven years since she had left the institution. Her parents were illiterate and unable to speak English. Her father was a laborer. Anna came to the attention of the juvenile court because of sex delinquency when she was 12 years of age and in the third grade at school. She was sent to the state institution for the feeble-minded, where she remained 2.5 years, until she was 15 years of age.

Upon returning home, Anna found a position almost at once in a paint manufacturing establishment through a forewoman who knew her family. At first she pasted labels on bags of plaster and later labeled paint cans, work that involved picking out the right kind of label for the different kinds of paint. She stayed in this place nearly four years, her wage was raised from $13 to $17 a week. The superintendent of the factory said that she had been a regular and careful worker until about two months before he finally discharged her, when she began to stay out so late at night that she was unable to do her work properly the next day. Anna then got a position in a candy factory wrapping candy, which she kept for more than a year. At the end of this time she married, but she continued to live with her parents and to work. Her next position was in an establishment

[3] Italics not in original.

that manufactured felt products She was employed to string felt washers for gaskets at $12 a week, later being advanced to $15 She left this position after six months because she was pregnant. A few months before the girl was visited by the bureau agent, her husband had been killed by a police officer while robbing a store At the time of the interview Anna was staying at home, keeping house for her father and her sisters, and making clothes for the baby she was expecting.

The following case illustrates the exceptional type of occupation that feeble-minded persons may occasionally engage in. The special interest and supervision of his employer is probably the most important single factor in the boy's development in a skilled trade.

Case Number 11 (Channing, 1932). Chester (intelligence quotient 54) was an automobile mechanic, one of the few skilled workers found. He had had but one position and had been employed practically the whole time since he ran away from the institution.

Before his commitment to the state institution for the feeble-minded, Chester's home surroundings had not been favorable. His parents and other members of the family quarreled frequently, and his father had finally died in an institution for the insane His mother, according to the records of a relief agency that had formerly aided the family, was crippled and at one time used to sit in a big chair with a whip to discipline the children When Chester was 17 years of age he was brought to court on a charge of raping an eight-year-old girl. He was sent to the Lincoln institution and remained there two years

Chester had had two positions before going to the institution, driving a wagon for a junk collector and working in a stable caring for horses. About two weeks after his return, a friend of his brother employed him in a small automobile repair shop and taught him to clean and repair cars. At the time of the study, about 35 years later, Chester had become a skilled automobile mechanic, and his pay had been raised from $22 to $30 a week. His employer stated that he was slow but never forgot what he had learned, and had deft fingers He apparently had no behavior difficulties after returning from the institution. He had left his home several times on account of the family quarrels and stayed at his employer's home. At the time of the study, his mother having died and his home having broken up, he had lived with his employer six months. His employer said that he was as fond of Chester as of his own children, and that on account of his mental defect he supervised him more carefully than his own boys.

The next two cases are perhaps more typical of the industrial adjustment of the feeble-minded.

Case Number 12 (Channing, 1932). Mental defect appeared to be the chief reason that Irene, a girl with the low intelligence quotient of 35 (Goddard revision), was unemployed much of the time. During a period of nearly six years she had worked 1 5 years with two employers

Her home surroundings were good Her father, a Russian Jew, kept a prosperous-looking grocery store, and her mother appeared to understand her limitations When Irene was 15 years of age, she was criminally assaulted and brought into the juvenile court. After a mental examination she was committed to the Lincoln Illinois State School, where she remained for about a year and a half The authorities there considered her "a quiet, well-behaved little girl."

After her return home, her parents kept her at home for a few months and then through friends got her a position in a laundry Her mother said Irene managed to do the simple work of ironing collars successfully and found her way to the laundry without difficulty, although it was necessary to take two street cars. After six months the laundry burned down, and Irene lost her work. After several months of unemployment her mother found a position for her in a paper-box factory, folding boxes at $7 a week Here Irene remained for a year, when, according to her mother, she was laid off on account of slack work. During the following four years the family made no effort to get work for the girl, her parents said that they were afraid she might get into some trouble away from home At the time of the inquiry Irene was helping with the housework and occasionally helped in her father's grocery store, although she was not able to make change and, according to her sister, "could not even sell candy."

Case Number 13 (Channing, 1932). Vincent's instability as a worker no doubt was largely due to his mental defect. His intelligence quotient was 45, he had never been in court for delinquency and was not difficult to manage except for occasional outbursts of temper He had been sent to the Lincoln Illinois State School for feeble-minded at the request of his mother, who said that the boy had run away from home because his father had beaten him. His father was a steady worker, but alcoholic His parents were not on good terms; his mother finally left her husband to live with another man. Vincent was 14 when committed to Lincoln, and 17 when he was sent home to his father on a vacation During the four years that followed his return home, he had had 11 positions but had been unemployed

only about six months in all Six times he had worked on a machine in the same paper-box factory but had been laid off on account of slack work. The nature of the machine at which he worked was not learned. Three times he had been employed in a piano factory, varnishing piano backs. The foreman there stated that he had twice discharged him because, although he was a good worker at times, he could not concentrate on his work long and would stop to play, and it was not possible to supervise him closely enough to keep him at work. The boy had also worked as a laborer for a coal company loading baskets of coal, but, according to that employer, was unable to make deliveries even in the next block because he could not find addresses. He left this job after an outburst of temper when his employer refused to let him drive the horses. The longest time he had stayed in any one position was six months He had earned as much as $18 a week in the piano factory but was getting only $12 a week, tying boxes in bundles at the box factory, at the time of the study

In Table XIX various types of occupation engaged in by persons of different mental age levels are shown. The sources of these data are: (a) Hanna (1924), whose placements were based on grade of work within an institution for the feeble-minded, (b) Beckham (1930), whose tables are based largely on Hanna, but who includes material from other sources which he does not specifically mention; (c) Channing (1932), from the tables showing the last employment of boys and girls earning more than $20 a week. Only positions held for more than one year by individuals with I Q 's less than 70 have been selected This selection merely shows what sort of jobs have been held It must be understood that the placement of occupations in these tables does not mean that all persons with the specified mental age could do the work. But it does indicate the sort of jobs held for appreciable periods of time and therefore suggests possible jobs that the mentally subnormal might be trained to do. Mathews (1922) reports the following jobs held by persons with mental ages less than eight years Roofer's helper, restaurant helper, learning upholstering trade, fire tender in roundhouse, repairing auto radiators, nailing boxes, machinist helper, elevator operator Unger (1926) concludes from a study of attempts to train subnormal girls as garment machine operators, that no attempt should be made to train any subnormal girl (a) with a mental age below 8 years or an I Q below 70, (b) who shows

TABLE XIX.—OCCUPATIONS SUITABLE FOR VARIOUS MENTAL AGES

BOYS

M A 5	M A 6	M A 7	M A 8	M A 9	M A 10
(a) Rope braiding Stable work Clothes sorting Handle freight Brush making Handle garbage Net making Handle cinders Garden work (b) Sandpaper furniture Scrub floors Operate mangle	(a) Laundry work Farm work Dairy work (b) Mow lawn Mix cement Kitchen scullion Bricklayer's assistant (c) Common laborer	(b) Rough painting Drive team Plow Cane chairs Make brooms Simple carpentry (c) Spray paint Clean automobiles Teamster Drive truck Helper on truck	(a) Blacksmith helper Repair mattresses Painter's helper (b) Clean boiler tubes Load hay Cut hair and shave Shingle and set glass Make wooden toys (c) Machine operator (automobile industry) punch press trimmer buffer drill press grinder sprayer gluing leather cutter Tempering clay (machine) Peddler Stock boy	(a) Shoe repairing (b) Operate foot-power printing press Block paper into pads Repair furniture Paint toys Harvest crops Learn alto horn and drums Fancy brush making (c) Machine operator tenoner straightening wire-bending Shackling (food products) Operate motion picture machine Vest maker	(a) Carry mail (institution) Printing (b) Set and sort type Paint signs Electrician's helper Steamfitter's helper Make forms for cement Shellacking and varnishing Learn bass horn and cornet (c) Auto-top builder (hand) Operate gear-cutting machine Boilermaker apprentice Shipping clerk

Press clothing
Baker s helper
Lather
Assembling dials (electrical)
Feeding tack machine
Soldier

GIRLS

(a) Domestic work Operate mangle Prepare vegetables Sew carpet rags	(a) Hand ironing Fold clothes Hand weaving Knitting	(a) Hand sewing Machine sewing	(a) Rug weaving Basketry	(b) Knit stockings and mittens Make cloth toys Make pottery Operate automatic *rug loom* Cut out and make dresses Plain cooking Sew mounts on cards Sew buttons	(b) Raffia and reed work (pattern) Swedish embroidery Operate sweater machine Operate looper for stocking toes
(b) Follow pattern in simple sewing	(b) Crochet open mesh Weave rag rug with pattern Simple laundry work	(b) Plain and *Italian* hemstitching Cross-stitch *Braiding* Simple packing of small articles	(b) Operate bead loom Stencil work Dress doll without help Operate scarf loom Make dresses cut out by others High-grade domestic work	(c) Core maker Operate drill press Assemble metal *horns*	(c) Sales girl
(c) Folding paper boxes	(c) Operate small punch press	(c) Bunch maker (tobacco) Machine pack tobacco Bottle vinegar Fell sleeves by hand Case sausage Housework	(c) Factory inspection of auto head lights Baste canvas and patches by hand *Serging sleeves (machine)* Time keeper Operate tag-cutting machine Wrapping		

visible signs of mental retardation, (c) who shows emotional retardation, (d) who has inferior personality make-up.

This brief résumé of the occupational and economic success of mentally subnormal individuals indicates that social degeneration is not their necessary lot. It also suggests that training and supervision are important in the adequate socio-economic adjustment of the feeble-minded. One place where special attention is given to the necessary training is in special classes which have been discussed earlier. Another place for such training is the private or state residential institution.

Segregation.—Segregation of the feeble-minded has long been held to be a solution of the social problems presented by these defectives. The preceding two sections illustrate the two major arguments for segregation. The earliest in point of time, and perhaps the one most frequently thought of today, is the protection of society. A later argument, and one which would seem to have greater value, is the possibility of training the defective to occupy a valuable, if humble, place in society. A third argument may be advanced, that in a limited number of cases, where ability is extremely low, or where socially undesirable habits are firmly established, the ordinary agencies of the community cannot take care of these defectives and therefore it becomes an obligation of the state.

The most usual argument against segregation is economic. The cost of maintaining institutions is too great. In 1932, the per capita cost of maintaining state institutions for feeble-minded and epileptics was $262.59, according to data of the U. S. Bureau of the Census (1934). This amount is either too high or reasonably low, depending upon how one looks at it. It is too high if it is thought of as an outright expenditure for which the state gets no adequate return. On the other hand, it is quite probable that the cost of maintaining these people in the community is at least as much and in many cases may be a great deal more. For example, during the year 1932, the per capita cost in Indiana was $187.69; it would have cost the state $375.38 for Angel and Albert Dorbet (cf. Louttit and Frith, 1934). During this year, however, this couple were living in the community and were being supported by a weekly basket from the township trustee, a weekly allowance from the Family Welfare Society, and the charity of a landlord who gave them an apartment (rent $15 per month) rent free. The expenditures from these sources were about

$360.00. Moreover, Angel was beginning to engage in commercialized prostitution, the possible cost of which to the community cannot be estimated. At no time had this couple played a useful economic part; in fact, they had never risen above a begging level. Surely wise economy would segregate them

It is true that it is physically impossible to provide institutions for all of the mentally defective. But this is neither necessary nor desirable. There are three functions of institutions. First, to afford custodial care for the idiot and imbecile patients who are completely unable to care for themselves and who have no family in a position to do so adequately Secondly, to afford custodial care for the defective delinquents who are social dangers Thirdly, and probably most important, to provide training for, and subsequent supervision of, the patient's vocational and social adaptation to the community in which he lives. Every institution for the feeble-minded is today making an effort to make the third of these its most important work, although they vary a good deal in the success with which they do so

We cannot be concerned here with all of the many questions that arise in connection with the problem of segregation of the feeble-minded Neither can we discuss the work of the psychologist within the institution. The clinical psychologist in school, court, or other clinics is constantly faced with the question whether or not a given child should be institutionalized There is, of course, no general answer that can be given to this question, but perhaps some tentative guiding suggestions may be useful.

Institutionalization *should* be recommended:

1 For idiots and low-grade imbeciles when the family is unable or unwilling to care for them, or where there is no family

2 For all grades of feeble-minded where definite anti-social habits are present, and where the persons present a menace to other people. Such persons should be committed to state schools for the feeble-minded rather than to jails or prisons.

3. For the higher-grade feeble-minded when the community does not provide adequate training and supervisory facilities. Such institutionalization should be for a period sufficient for training, and should be terminated only on the definite demonstration that the person involved can adapt to the social life of a particular community Even then, his life should be officially supervised

4. For girls of higher-grade ability, at least temporary custodial institutionalization is probably more necessary than for boys

5. For either (1), (2), or (4) in this list, private residential schools should be recommended if those responsible for the patient can afford to send him

Institutionalization *should not* be recommended, or should be only tentatively recommended.

1. For children of any grade where parents are willing and financially able to care for them by providing sufficient private training and supervision.

2. For younger children who have not had an opportunity of demonstrating whether or not they can adjust. This is true only if satisfactory training and supervisory facilities are available in the community.

3 For any child, even though he has a definitely inferior performance level, if he is satisfactorily adjusting, and gives promise of continuing to so adjust, to the community in which he lives.

Chapter V

SCHOOL RETARDATION

In a preceding chapter it was pointed out that when the test scores of a large number of children are plotted, the distribution takes a form approximating the normal probability curve. On such a distribution the lowest one per cent or so of the scores are thought of as representing feeble-mindedness. Between these and the score which marks the lower boundary of the middle 50 per cent of the cases are those who are neither normal nor feeble-minded. Terman classifies cases within this range as border-line between 70 and 80 I Q., and as dull between 80 and 90 I Q. While we have earlier argued against the use of such definite boundaries, they do indicate the class of children with whom we have to deal. In their school adjustment, and also in other life adjustments, these children are retarded However, there are reasons for retardation in school other than mild to severe degrees of intellectual lack. Therefore, the problem of school retardation for the clinical psychologist is rather more extensive than is often recognized by the classroom teacher

Definition

Unlike other groups of problems discussed in this book, retardation is peculiarly related to the school. Therefore, any definition must be educational. To be retarded means that a child is over-age for his grade The reason for his retardation may lie with the child, with the teacher, with the school system, with the family, or with two or more of these. It is the clinician's task to determine what are the causative factors, and institute measures to correct them. Thus our concern is with each individual child who is retarded, and not with the administrative problems involved in promotion or non-promotion.

It will be suggestive, however, to indicate something of the number of retarded children in school. Mort and Featherstone (1932) secured data on promotion practices from 36 school systems carefully selected to represent an adequate sampling of all city school systems In Table

TABLE XX —PERCENTAGE OF ACCELERATION AND RETARDATION IN THIRTY-SIX CITY SCHOOL SYSTEMS (AFTER MORT AND FEATHERSTONE)

	Semi-annual Promotion			Annual Promotion		
Grades	1	7	10	1	7	10
Under age	5 5	14 2	12 2	22 8	19 7	22 0
Normal age	78 4	46 4	40 8	73 9	58 6	62 1
Over age	16 1	39 4	47 0	3 3	21 7	15 9

XX are condensed data showing the percentage of accelerated and retarded in the three key grades—first, seventh or first-year junior high, and tenth or first-year senior high school. The increase in percentage of children retarded in the higher grades is clearly evident in both annual and semi-annual promotion schools. These data would suggest the desirability of closer individual attention to pupils in the lower grades so that when adjustment is possible it may take place early in the school career.

These data give no indication of the degree of retardation of various children in these classes In Table XXI are shown the percentages

TABLE XXI —AMOUNT OF RETARDATION OF SIXTH-GRADE CHILDREN

Amount Retarded		Annual Promotion Schools	Semi-annual Promotion Schools
Years	Semesters	Percentage	Percentage
	1		10 8
1	2	20 5	11 1
	3		2 4
2	4	5 3	2 1
	5		5
3	6	1 2	3
	7		0
4	8	2	

found by Mort and Featherstone of all children in the sixth grade who are retarded in various degrees. The slighter degrees of retardation are evidently much more frequent, but there is an appreciable number who are retarded two or more promotion units—years or semesters, as the case may be These more extremely retarded children must have failed more frequently than the others A pertinent question arising from this is, "In what grades are failures more frequent?"

Heck (1927), from a study of 25 annual reports of city school superintendents, found that the percentage of failures in the various systems ranged from 4 to 17, with a median at 9 1. Seventeen of these reports presented the data in such a way that the percentage of failures in the various grades could be determined. When the grades were arranged in rank order, with the grade having the highest percentage of failures first and the grade with the lowest percentage eighth, the following average rankings for the first eight grades were found;

Grade	Rank
I	1 8
II	3 7
III	5 4
IV	5 8
V	4 1
VI	4 9
VII	4 6
VIII	6 4

This rank order is corroborated in all essentials by the work of Mort and Featherstone, to which reference has been made They report for annual promotion schools 18 8 per cent failure in the first grade, 8 9 per cent in the fifth grade, and 0 7 per cent in the seventh grade. Their data for semi-annual promotion schools are essentially the same.

In the material just presented, and in similar studies which we shall not attempt to summarize, there are at least two findings that have a decided significance for our particular interests First, it is evident that by the fifth or sixth grade approximately seven per cent of the children are retarded two or more years. When we investigate the grade location of the failures which produce such retardation we find that the lowest grades have an extremely high failure rate. Therefore, attempts at helping the children who fail should begin in the lowest grades Among several of the methods that have been suggested, and tried, for alleviating the administrative problems of failure and retardation, is clinical study This method, probably more so than any other, not only helps in the administrative problem, but is also of fundamental importance in helping the child to adjust to his school work and to his life problems in general.

Causes

The first task of a clinical approach to the problem of retardation is the determination of the cause or causes of a particular child's retardation. The classroom teacher who has watched the child's work for

a semester or a year and then decides that she cannot promote him, surely can be expected to express a reason or several reasons for his failure. Suggestions given by teachers may be excellent starting points in the study of the child, although they may be incomplete or at times completely erroneous. As an example of reasons for failure given by teachers, we present the data in Table XXII, taken from Percival (1926). This table also shows the frequency with which the various reasons are mentioned by teachers in city and country schools. The percentages are based on a total of 9342 failures—representing about 16 per cent of the total number of children repeating grades reported for the year 1924-25 in the State of California

TABLE XXII —TEACHERS' REASONS FOR SCHOOL FAILURES

CAUSE	Percentage of Cases	
	Cities	Counties
Learns very slowly	36 7	36 9
Lack of application, attention, etc	35 5	33 3
Entered with weak foundation	22 5	22 3
Change of schools during year	17 8	19 0
Absence (illness)	16 7	10 9
Foreign language handicap	13 0	14 6
Intelligence tests show pupil subnormal	12 9	20 5
Immaturity	12 7	11 0
Poor home conditions	10 0	13 7
Absence (other than illness)	8 5	8 2
Poor health (pupil not absent)	5 2	3 9
Defective vision	2 3	3 0
Other physical defects	2 1	2 8
Defective speech	1 8	1 6
Defective hearing	1 0	1 1
Total number of pupils failing	7531	1811

This list does not exhaust possible reasons for a child's failing work in school Other factors which have been mentioned include specific disabilities in one or two school subjects, teacher's attitudes, work habits, personality and conduct difficulties, teaching methods, etc. It is at times a knotty clinical problem to decide whether certain of these factors stand in a cause or effect relation to poor work at school. For discussion of these several factors we may conveniently classify them into three groups. (1) those primarily concerning the child,

(2) those in which the school, in its system or personnel, is at fault, and (3) those in which the home conditions play an important part.

1. *The Child.*—A low level of intelligence as represented by test performance probably accounts for a larger amount of retardation than the percentages indicated under that head in Table XXII would suggest. Most of the children in the groups "learn very slowly"; similarly, "immaturity" would probably be found to have low test performances. Children with similar low performances would be found in significant numbers scattered throughout all the remaining classes. The larger proportion of these mentally slow children do not exhibit a deficiency sufficiently severe to be classed as feeble-minded as described in the last chapter Ingram (1935) claims that about two per cent of school children are sufficiently retarded, with I.Q.'s between 50 and 75, to require a special educational program organized in the form of special classes In school systems where special classes are available they are usually ungraded and therefore the children in them can hardly be considered academically retarded in the sense that we are using the term here In systems without special classes, of course, these very low-grade children would be counted among the retarded.

A considerably larger number of school children, approximately 15 to 18 per cent according to Ingram, have an ability level lying between the feeble-minded and the conventionally accepted average group. The I.Q.'s of this group range from 70 or 75 to 90 or a little below. There is probably some rough correspondence between the level of test performance of these children and their school success Those having I.Q.'s in the 70's will be more retarded and have a more difficult time with school work than those high in the 80's. This is, of course, far from a perfect correlation.

We can calculate certain theoretical minima of retardation if we allow certain assumptions, such as the adequacy of test measures, the constancy of the I.Q., equality of all factors other than ability, etc. While in a specific case one or more, or even all, of the assumptions will not hold, still such theoretical data as shown in Table XXIII indicate what may be expected from children with I.Q.'s approximating those given. In the second column of the table is shown the C.A. at which a child with the specified I.Q. will have an M.A. of six years—when presumably he is able to start first-grade work with some hope of adequate achievement. If we assume that these children start to school when they are exactly six years of age and are kept in the

first grade until they show adequate achievement, they will be retarded to approximately the extent shown in the third column. If they stay in school until they finish the eighth grade, they may do so at the C A.'s shown in column four and will then be retarded as shown in column five It is hardly possible that these theoretical figures will

TABLE XXIII —THEORETICALLY EXPECTED RETARDATION

I Q	First Grade		Eighth Grade	
	C A	Retardation	C A	Retardation
70	8 57	2 5	18	5
75	8 00	2	17 3	4 3
80	7 50	1 5	16 25	3 25
85	7 06	1	15 3	2 3
90	6 60	5	14 4	1 4

be satisfied in a specific case For example, if a child is too large, thus making social adjustment to smaller children difficult, teachers are apt to promote him. On the other hand, older children who are retarded lose interest in school work and increase their retardation by lack of application, leaving school as soon as they legally may In spite of such factors, calculations such as those shown do have some value in prognostications of academic adjustments.

The actual attainments of this group of children in one or more subjects may be greater or less than theoretical expectancy. They are over-age for their grade, and their additional years of life have afforded experiences greater than those of younger children Therefore, we may expect to find their interests, and to some extent their ability to satisfy them, in advance of their M A Other factors discussed in this chapter, such as attitude toward school, attentiveness, and home attitude, may affect the achievement of a subnormal child in the same way that they affect the performance of normal or superior children The task of the clinical investigator is first to establish a mental level and then to examine the possible influence of other factors Only in those cases where the I Q. is 100 or more can one feel satisfied that the child is making the most of his opportunity

The management of this problem, when it is uncomplicated with others, is primarily educational and therefore is most satisfactorily handled by the school. Where special classes are organized, children

with I.Q.'s below about 75 should be transferred to them. Children in the higher I.Q. groups may be placed in special classes for temporary periods, or the classroom teacher may undertake to teach a few of them at a slower pace than that for the rest of the class. In school systems where special classes are not available, the impossibility of normal advancement rate must be recognized and each teacher must meet the problem by more individualized work. Various plans which are directed to the individual advance of each pupil have been proposed or tried in the administrative organization of the school. In such situations children with subnormal abilities have somewhat greater opportunities to achieve their own pace

Only in the case of those children with low abilities is the management problem one of adjusting the school curriculum to them. When children are retarded for any of the reasons now to be discussed, management will be largely concerned with the physical or social adjustment of the individual child to the end that he may make the most of his abilities.

Defective *physical condition* of a child often results in retardation. Sensory defects in vision and hearing, malnutrition, cardiac conditions, tuberculosis, and various types of crippling defects are among the most important of such physical difficulties The importance of such illness in respect to school achievement alone is sufficient justification for adequate and periodic health examination of all school children. As far as the clinical psychologist is concerned, he must accept the physician's diagnosis, but he must be alert to the possibility of such defects existing, and when in doubt secure a thorough physical examination. Unfortunately, sensory defects—faulty vision in particular—may exist for several years without being recognized. Through these years the child struggles with his class work without success, and perhaps is subjected to a series of failures. Following recognition and correction of the defect his achievement improves, and, given sufficient mental ability, he may overcome his retardation. A case from our files illustrates the point, although the child has not been followed a sufficiently long time to show much improvement in his school work.

Case Number 14 (I. U. Clinic I-4017) Robert was nine years and ten months old when first referred to the Riley Hospital Psychological Clinic by the Director of Special Education in the Indianapolis City Schools because he appeared to be unable to read. At this time he

had a Binet M.A. of 8-10 and an I.Q. of 90. On the Witmer form board his first trial time was at the 50th percentile, but on the Porteus Maze his performance was only at six years. The examiner noted that he had a strabismus of the right eye; but as the boy wore glasses it was assumed that expert attention had been given to his vision. A year later his mother brought Robert back to the Clinic with the complaint that he still was unable to read. At this visit the boy was wearing a cover of adhesive tape over the left lens of his glasses. Upon inquiry it was found that this had been placed there only two weeks before on the physician's prescription to cover the stronger eye. Although his vision had been examined at a very early age, no one had discovered that diplopia interfered with visual perception until the boy reported blurred images. With a very simple test of word recognition it was found that his greatest trouble was in identifying the common small words which had no unique patterns; thus "was" and "win" or even "one" were confused, while longer words like "rabbit" or "wagon" were consistently identified. He was again given the Porteus Maze test and with monocular vision his performance was at fourteen years and six months. The contrast in the two performances separated by a year may be shown thus:

Maze	At Age 9–10	At Age 11–0	
V	1	1	
VI	½	1	
VII	½	1	
VIII	f	1	
IX	½	1	
X	f	1	
XI		½	
XII		1	4 years
XIV		1	
Score	6–6	14–6	

The boy said that his work, other than that involving reading, was satisfactory, but that always the words had been blurred. He felt that even his reading had improved in the two weeks that he had been wearing the patch.

This problem could be summed up thus. Due to the lack of fusion, visual images had been blurred throughout the period when reading should have been learned. As a result, in this subject and those depending upon it attainment was low. The failures on his Binet examination also gave evidence of his inability to read, so his I.Q. of 90 may have been too low. It seems most certain that his Porteus Maze

performance was decidedly affected by this visual difficulty Thus we have a boy who, because of the sequelae of lack of visual fusion, has been placed in a special class for retardates although his ability in test performance is normal.

Specific disability in one or more school subjects, especially in the first three or four grades, is frequently a contributing factor to general retardation. The tool subjects—reading, writing, spelling, and arithmetic—are all important for successful achievement in the content subjects in the higher grades. Therefore, if a child is unable to read, as was the case just described, all of his work suffers. The problems involved in such specific disabilities are so extensive that we shall devote the next chapter to their consideration.

Personality or conduct difficulties may, in individual cases, be important reasons for poor school work. Also, children are found whose personality or conduct disorders are aggravated, if not initiated, by their inadequate adjustment to school. From a study of 123 children who were problems in the classroom, and 107 truants, whom she compared with non-problem children, Johnson (1925) concluded that while retardation and misconduct were frequently associated, either might be a cause or a result of the other

A number of other studies have been made of behavior disorders among retardates from which one can draw conclusions corroborating Miss Johnson Burt (1921) reports that his delinquent group was retarded two years in general intelligence but was twice as retarded—four years in all—in educational achievement. Irwin and Marks (1924) also point out the educational retardation of criminals Gates (1924), from a correlational study of educational achievement scores and measures of social and emotional maturity, concluded that socially and emotionally normal children, according to his criterion, showed no advantage over those children who were below his criterion Dr. Richards (1921) found that the retardation of nineteen mentally normal children in a Baltimore school was "associated with, if not the disguised expression of, such faulty psychobiological reactions as shyness, laziness, inattention, and vicious tendencies, sensitiveness to criticism, daydreaming, hypochondriacal fears. . . ." Paynter and Blanchard (1929) studied the educational achievement of 330 problem children, half of whom had been seen in a demonstration child guidance clinic in Los Angeles and the others in a similar clinic in Philadelphia They introduce their concluding section thus: "It seems

safe to conclude, tentatively at least, that problem children show no [illegible] to [illegible]cational achievement." They do point out [illegible]y have behavior problems even though statistical study of a group does not show such a trend. Unfortunately, they did not have a control group for comparison, nor do they cite any illustrative case material The percentage of problem children in the Los Angeles group having an A.Q. below 100 was 64 7, while among 4325 public school children in the same city the percentage was 66.2. Thus, about the same proportion of non-problem children as problem children were doing poor work. In this same city, only the children in the following personality and conduct groups varied significantly from this percentage

Inferiority feelings	81 3	per cent	with	A Q	below	100
Fearful	59 0	"	"	"	"	"
Sex experiences	59 0	"	"	"	"	"
Disobedience	55 5	"	"	"	"	"

Even these variations are hardly large enough to demonstrate a causal connection between the specified problem and retardation

In spite of the conflicting evidence, the possible influence of a behavior problem on school attainment must be considered by the psychoclinician. A child with a feeling of inferiority arising originally in the home may feel himself incapable of competition with his classmates, with the result that he falls behind. Another child from an undesirable home may have built up a social habit such as stealing, truancy, or the like, attention to which distracts from his school work. On the other hand, for a child of superior abilities school may be so boring that he finds other non-school outlets and neglects his school work In any case, there is an association between the two problems, and both must be detected and cleared up before the child can be expected to make an adequate adjustment

Inefficient *habits of work*, especially at the junior and senior high school or college levels, are frequently a most significant reason for failure. Reavis (1926) reports the following causes of poor educational achievement in 132 problem cases at the University of Chicago High School These are arranged in the order of decreasing importance as causes. inefficient work habits, personality difficulties, training deficiencies, physical disabilities, mental disabilities, and psychophysical defects An aim of elementary education, as important as achievement in the tool subjects or mastery of content, should be the

formation of successful methods of study. In those cases where such habits have not been formed, it is imperative that attention be directed to them before much improvement in content attainment can be expected.

2. *School*.—*Age at entrance* may be a reason for over-ageness. The most usual age of entrance in the majority of school systems is six years. At least one system with which the author is acquainted adheres so strictly to the rule that a child who will be six years old a week or two after the opening of school must wait until the second semester to enter. This means that he then starts school retarded a semester. Some children in such circumstances find it impossible ever to make up the lost time. Other children, because their home is isolated and a long distance from school, because of illness, or because the parents do not want to send a small child a long distance to school, do not start until they are seven or more years old. Many of these children are never able to make up this initial retardation. Children who enter school at a very young age may also have difficulties. Keyes (1911) says, "Practically one-half of all children who begin the first grade after reaching their seventh birthday, or before reaching their fifth, may be expected to lose a year at some time during the grammar school course." While this is an administrative problem, and as such does not concern the clinical psychologist, it must be remembered as a possible partial explanation of a child's retardation; therefore the age of entering school should always be found.

Changing schools, especially during term time, frequently has serious consequences. School is not merely a place where the child goes and absorbs a certain amount of knowledge, simultaneously with such activity he must learn to adjust to his classmates, the teachers, other children met on the playground, teaching methods, and academic requirements of all sorts. These requirements are not simple for anyone, and perhaps less so for the young child. They take time; many children may require months, a semester, or a year to find himself and his place. If in the course of his attempts to make an adjustment he is transferred to another school, he may find himself forced to begin over again. The academic standards vary and different school systems, sometimes schools within the same system, are loath to accept the judgment of another school. Therefore, they "try" the child in a lower grade, or refuse to recognize a promotion when the transfer is made before the beginning of a new year. For some children

this is all right, it may retard them, but they or their parents are not concerned For other children, even one such unpleasant experience is discouraging Multiply such an experience only two or three times, and one cannot help but sympathize with one of our cases who said, "What's the use? I don't try to do anything" This boy has been in the 1B grade three terms and the 1A twice, although his mental ability was slightly above average. In this two and a half years he had changed schools four times He had been referred to our clinic by the school principal, who felt that he must be so retarded mentally that he should be sent to a special class. In the following case similar etiological factors resulted in poor skill in reading, and subsequent discouragement:

Case Number 15 (Blanchard, 1928) Ronald was referred for clinical study and treatment because of his daydreaming, absent-mindedness, and poor memory, also because he was failing in his work in the seventh grade at school He was fifteen years old at the time of reference

According to the social history, the family life was unusually wholesome The father was dead, but the mother used excellent judgment in bringing up the two boys and in adjusting her relationship to them The younger boy was thirteen years old, and also in the seventh grade There was an unfortunate situation in the mother's conviction that Ronald was subnormal which reacted upon the boy There had not been overt comparison of Ronald with his younger brother, but the boy could not help drawing comparisons for himself. The mother tried to console him by telling him that school marks did not mean everything, that the really important thing in life was to develop a good character; but in spite of her efforts Ronald often spoke of his lack of brains and his "dumbness"

Ronald's early school history was a story of continual failures and fresh beginnings, through circumstances that were beyond his control. He entered school at the age of seven The family was then living in Los Angeles He was ill much of the time during the first year. In the summer, they moved to New Orleans, and Ronald started the first grade all over again His health was better, but in the middle of the school year they moved to Austin, Texas, and he was placed in the second grade there The same spring, they moved back to New Orleans, and he was tried in the third grade Thus, in his second year at school, he had to make adjustments to three different grades in two different school systems He was unable to do the third-grade work; and when the family moved again, this time to Minneapolis,

he was once more back in the second grade This school year passed uneventfully, and he was promoted to the third grade in Minneapolis, but unfortunately it became necessary for them to return to Austin. He was tried in the third grade there, but was soon demoted to the second grade

These changes from one city to another were necessitated by the father's profession, but they confused and discouraged the boy He disliked school and wept when he was compelled to go. His attitude toward attendance improved somewhat after the family moved to Philadelphia, where they remained after the father's death and where he was able to stay continuously in the same school. He then made regular progress until he reached the sixth grade, but he had to repeat that, and, as stated above, was failing the seventh grade at the time of his reference to the clinic A group intelligence test administered to his class gave him an intelligence quotient of 75.

At the time of the psychological examination at the clinic, he was fifteen years, five months in life age His mental age by the Stanford-Binet test was fourteen years, six months; intelligence quotient 94. (If fourteen were used as C A, the I Q. would be 104) Reasoning, auditory-memory span, and concrete visual imagery were above average On Series 1 of the Stenquist Mechanical-assembling Tests, he made a perfect score, a performance far above the highest norms for fifteen-year-old boys and ranking with the uppermost one per cent of adult army men

On educational tests, Ronald's achievement was very poor for both life age and mental ability On the Otis classification test, the only subject in which he made a record satisfactory for his age and mental ability was arithmetic He was particularly poor in spelling and English grammar, while geography and history were at least two years below his mental age.

On the Thorndike-McCall reading scale, his subject age was only eight years, eight months That is, his reading proficiency was no better than that of the average pupil at the end of the third grade Other tests confirmed this rating On the Monroe silent-reading test, even on material adapted to grade three, his comprehension was only satisfactory for that grade His oral reading, as measured by the Gray oral reading test, was also a poor third-grade performance

Diagnostic tests revealed several parts of the reading process in which Ronald was strikingly deficient. His slow reading rate was the result of a short span of visual perception (he could take in only three syllables at a glance) and slow vocal-motor reactions. On the Thorndike vocabulary test, his score was only five when he was

asked to read the words for himself, but when they were read to him, he doubled the score His visual vocabulary was adequate for only fourth grade, his auditory vocabulary was satisfactory for eighth grade Thus, poor visual-verbal recognition and an inadequate reading vocabulary were also a part of his reading disability On the Trabue language-completion test, on which there was no time limit, his score was equivalent to the norms for thirteen years and for sixth grade This showed that he was able to grasp meaningful material fairly well, and that his comprehension of what he read would probably be good if he could read more rapidly and if he had a larger visual-verbal vocabulary

The physical examination was practically negative. Even with a special eye examination, only a slight hyperopia was found In view of his difficulty with reading, however, glasses were recommended

The psychiatric examination was revealing chiefly of his conviction of mental incapacity, his feeling of inferiority, his tendency to self-depreciation, and his abnormal degree of daydreaming

In the light of these facts from the social, psychological and psychiatric angles, it is easy to understand the difficulties for which Ronald was referred to the clinic. He appeared absent-minded in recitations because he could not read well enough to become familiar with the material discussed He seemed to have a poor memory because of this same deficiency, he could not remember what he had not been able to read and comprehend He had rated low on the group intelligence test given at school because he was unable to read rapidly and was therefore penalized by the time limit The oral question-and-answer type of test (Stanford-Binet) which he was given at the clinic showed that he had average intelligence and a superior memory span His daydreaming, in which he pictured himself as a great inventor, was the only way in which he could escape from the feeling of inferiority which the school failures, caused by his reading disability, had produced.

So far as the origin of the reading disability is concerned, it is probably safe to assume that it is found in the early experiences at school He was called upon to adjust to the teaching methods in at least five different schools during the first three or four years. Moreover, the many demotions which he suffered as a result of these transfers must have given him a sense of failure that would almost inevitably condition his emotional responses As we have said earlier, Gates has suggested that in such emotional conditions we may find the source of reading disabilities in many instances His sense of failure and the feeling of inferiority were probably increased by the

contrast to himself which he saw in the excellent school adjustment of his younger brother who had started school at a more stable period of the family life.

The first step in treatment was to go over the psychological findings very carefully and in enough detail to make sure that he understood just what the tests had shown about him. He was assured that he had average intelligence, and was not, as he had been led to believe, intellectually deficient in any way. His really superior memory span, excellent reasoning, and unusual mechanical aptitude were stressed in giving him this information An explanation of the development of his reading disability and of the effect this would necessarily have on his school work was made, and he was assured that with special methods of instruction he would soon be able to read well enough to do his school work efficiently In order to emphasize this optimistic point of view, he was told of other cases of reading disability, as serious as his own, which had been discovered and corrected This conversation did not remove his feeling of inferiority at once, nor did it enable him to give up his refuge in daydreams immediately; but it did relieve him of his besetting anxiety about his mental status, and put him in a receptive mood for beginning the remedial teaching

A tutor, skilled in the use of the special methods of teaching necessary for the correction of his reading disability, was secured The McCall standard test lessons were utilized as a daily text, and the boy was able to check his own progress by correcting each lesson and mapping out the curve of improvement from day to day and week to week. Drill in word recognition, for the purpose of increasing his reading vocabulary, was given according to the methods devised by Fernald and Keller, with an employment of the kinesthetic factors in learning to supplement the auditory and visual elements An important feature of the tutoring was taking every opportunity to comment upon even the slightest indication of improvement, so that the boy would feel that he was successful and thereby stimulated to continued interest and endeavor. His scores on the McCall daily lessons were recorded in graphic form so that he was able to watch the ascending curve of progress. This concrete evidence gave him much encouragement.

At the end of the summer vacation, during which the remedial teaching was given, another form of the Thorndike-McCall reading scale was given On this test, Ronald attained a reading age of thirteen years, six months, and his proficiency was satisfactory for the

end of the sixth grade. This was an advance of four years over the reading age that he was able to achieve before tutoring

By special arrangement with the principal he returned to school with a conditional promotion to the eighth grade For the first time in his life, he was reading for pleasure during his leisure moments, and much of the daydreaming had dropped out of the picture He began to gain confidence in himself and in his own abilities He passed the eighth-grade work successfully, and at the present time is in high school, taking the mechanical-arts course, and getting excellent marks now on his report card Although modest and unassuming, he is now quite self-assured and shows a great deal of practical ability in assisting his widowed mother in the management of the family affairs.

In Table XXII it was seen that teachers gave changing schools as a reason for non-promotion in about eighteen per cent of the cases. Keyes (1911) reports the following percentages of 683 repeaters as having changed schools:

Grade	Percentage
I	29
II	50
III	42
IV	49
V	41
VI	27
VII	43
VIII	28
IX	28

Of course these data cannot be taken to mean that changing school was the only reason for the child's retardation, but they do indicate something of the seriousness of this factor

Discovery of such school-changing as a contributing factor in retardation can at least be made the basis for recommending irregular promotions and special attention The difficulties for the child inherent in changing schools should suggest to school officials careful individual study as the best method of placing the transfers But the school cannot be held totally responsible—changing schools means changing homes. An attempt should be made to show parents the advantages to the child of living in one community long enough for him to make some advance Probably this stability is most desirable in the first four or five grades; after this, changing schools is possibly not so potentially harmful

Absence as a factor in retardation has long been recognized as im-

TABLE XXIV —PERCENTAGE OF ABSENCE AMONG RETARDATES

Grades	Keyes[a] (1911)	Percival[b] (1926)	
		Illness	Other Reasons
I	30	25.3	7.9
II	33	15.8	6.9
III	36	11.1	6.2
IV	20	11.9	7.2
V	19	11.3	7.8
VI	16	11.4	10.2
VII	10	13.5	15.1
VIII	23	18.6	18.0
IX	20		

[a] Absence of 20 days or more for all causes Based on 683 repeaters Years 1904–07
[b] Teacher's reasons Based on 9342 failures Years 1924–25

portant In Table XXIV are shown data on absence among repeaters or non-promoted children, gathered nearly twenty years apart. While these figures do not closely check each other, they do show a tendency for absence, as a cause for failure, to decrease from the first to the sixth or seventh grade, and then increase. Absence in the earlier grades may be a reason for failure in those grades, and it also may be an indirect cause of failures in subsequent grades because of the lack of foundation in the tool subjects. The reason for absence may also be significant. Poor health not only may mean absence, but may also result in lessened ability to work when the child is in school Home attitudes which may in themselves be detrimental are often reflected in the child's absences. In the higher grades truancy, especially among the older children, may suggest low ability and resultant dislike of school. The psychoclinician must know not only the extent of absences, but also the reasons for them

Other school conditions may be significant in explaining retardation *Weak preparation* of the child in one grade may result in difficulty in a higher grade The teacher's or *teachers' attitudes* may be important. Mary Sayles' (1925) case of Mike Romano, whose first-grade teacher said he was the worst little savage she had and who convinced the other teachers that it was true, illustrated such a situation.

3. *Home* —Elsewhere in this book we have discussed the influence of the home on the behavioral development of the child. Those per-

sonality and conduct disorders that can be traced to the home may interfere with his school work and result in sufficiently unsatisfactory work so that the child fails a grade, and is thus retarded Thus, the possible influence of behavior problems on school achievement discussed above depends indirectly, but in a large measure, on home influence It is hardly necessary to do more than call attention to this possibility here, but there are several more direct influences of the home that must always be considered.

Children from [illegible] homes frequently have difficulties in acad [illegible] statistics shown in Table XXV indicate that this is a very significant factor, especially in the

TABLE XXV —PERCENTAGE OF FAILING CHILDREN FROM FOREIGN LANGUAGE-SPEAKING HOMES

Grade	Keyes (1911)	Percival (1926)	
	City	City	Country
I	52	17 5	26 8
II	50	15 6	14 7
III	42	11 1	10 2
IV	49	13 8	16 6
V	41	7 3	11 8
VI	27	10 5	7 1
VII	43	6 8	7 9
VIII	28	4 0	2 3
IX	24		

lower grades The contrast between the data of Keyes and those of Percival is probably due to the geographic locations of the schools studied. The frequency with which failing children come from non-English-speaking homes is great enough to warrant a definite attempt at amelioration For the child, this may take the form of special classes in English, or a special type of program in the language work in those schools where a large proportion of the children are of foreign extraction. Americanization classes in English for the parents of such children may also be helpful.

The *economic condition* of the home is also a frequent determiner of the child's school work. That there is a rather significant correlation between economic condition and performance on intelligence tests has been shown a number of times The resultant correlations raise questions rather than answer them Is the performance poor

because of lack of opportunities, or do the people exist at a low economic level because of the poor performance? Whatever the answer, the retardation of such children in school is probably due in part to their poor performance ability. In some measure, also, their school attainment is low because of the inability of parents to supply suitable books and equipment, necessary clothing, or healthful food and living conditions A pair of twins—superbly named Ella Nella and Nella Ella—known to our clinic, tested on the Binet as low normals, but their school achievement was even lower than would be expected. In part, the answer was found in the fact that they had to miss school an astonishing amount of time because they lacked clothing and food In cases of this sort, especially when the child's ability is reasonably high, the psychoclinician should introduce the case to the proper agencies which care for the material welfare of children

In the following case of retardation the economic condition of the home was of decided significance in the boy's poor work. The author says, "This case represents one of the most successful adjustments that has come to the attention of the Clinic, but it shows that the bare mental test results do not always tell the whole story, and that if we are to make recommendations for child guidance it is absolutely necessary to take into account the total situation, intelligence, temperament, home situation and character traits as well."

Case Number 16 (Babcock, 1927). Fred, age fourteen years and seven months, a German-Hawaiian boy, came to the Clinic because he was accomplishing nothing in the sixth grade and the teachers said that he was paying so little attention to his school work that he would go to sleep right in the classroom

The interview with the boy and the family history obtained by the visiting teacher helped a great deal to explain Fred's present difficulties His own father had left home, and his mother was at that time living with a Negro One boy, older than Fred, was a cement inspector but his earnings were insufficient for the family For some time Fred had been selling papers and helping as best he could, but a month before had found a new job which would pay $30 a month and still permit him to go to school which he was anxious to do. He had gone to work delivering milk, going on duty at 10 P M and working until 5.30 A.M. He would then go home, sleep for about an hour, go to school and sleep again in the afternoon for a time. He enjoyed his school work and had always done fairly well until this

time, but he simply could not stay awake in school after being up all night

The test results show that Fred had a Binet age of twelve years, I Q 85. There were no special disabilities, and his response throughout was marked by care and attention to the details of whatever he was asked to do This was especially marked in the memory for designs which he reproduced in an accurate and finished manner His father was a carpenter, and Fred seemed to have some of the same qualities that would make a good workman

During the interview the examiner became more and more favorably impressed by the boy's attitude. In spite of the home situation, he had willingly assumed responsibility for the family welfare and was cheerfully giving all of his earnings to his mother. There was something very winning about the boy's manner, he had the persistence, industry, and attention to detail which is commonly associated with German blood, and he had just enough admixture of the Hawaiian good nature and cheerfulness to endear him to all of his associates His teachers were fond of him in spite of the fact that he was not keeping up with his work, and had been interested enough in his welfare to ask the visiting teacher to help with his case He was anxious to remain at school but, under existing circumstances, it seemed quite impossible

He had good ability, but, what was more important, he seemed to have such excellent traits of character that he deserved to have some opportunity to develop them. He obviously could not remain at home and still go to school as there was no assurance of permanent support, and he would be forced to give up school entirely, in at best another year.

The visiting teacher found that there was an opening at Kamehameha Boys' School (a private secondary school for children with Hawaiian blood) but they preferred to take only boys of excellent mental endowment Arrangements were finally made to take him on trial with the possibility of remaining if he proved a good student Later reports show that he is getting along very well He is not a brilliant student but is doing thoroughly commendable work and gives excellent promise for the future

The *parents' attitude toward the school* may be significant Constantly changing schools, of which we have already spoken, is often due to rather unnecessary wandering of parents. One little girl attended the Bloomington City Schools about one month Her father was an itinerant basket maker and her mother the prophetess of some

occult faith In addition, the mother was decidedly the dominating factor in the family. When she had the call to move, which she did frequently, father and daughter went with her Attempts made to show the mother the bad effects the frequent moving was having on the child were to no avail To the mother, school was a necessary evil but it must not be allowed to interfere with her activity Sometimes the parental attitude may be definitely and overtly antagonistic to the school One foster mother of a twelve-year-old boy who was a constant disciplinary problem and whose work was for this reason suffering, took the aggressive attitude that the school was totally to blame. She falsely accused the teacher, and constantly sided with the boy in his war with the school authorities. She admitted that he was hard to handle at home, but even this was blamed on the school The most probable truth in the case was that both the mother and the school were at fault; but, because of the mother's attitude, conciliation was impossible.

Management

Study of children referred to the clinic because of retardation in school must be directed primarily to determining causes or reasons for the poor work As low ability is so frequently a factor, certainly the determination of mental test level is the most important first step. In no case, except possibly for those who are unquestionably feebleminded, should the test performance be taken as the final reason. The relation between the mental ability and school achievement should be determined This may be done by using educational achievement tests and calculating the A.Q. If this ratio is less than 100, the child is not achieving to his possible limits and a reason for this must be sought In lieu of such tests, grade placement may be studied in the light of the child's school history—age of entrance, absence record, promotion record, changes in school, etc—and an estimate made as to how satisfactorily he is placed in school. Here again, if his grade placement is below that which might be expected from the history, further reasons must be sought The psychologist's task is to evaluate all of the possible factors in the complex situation and form a conclusion as to the most probable causes

In an individual case, such a conclusion may include a number of items Efforts should be made to correct, as far as possible, each of

these. Recommendations for these cases will include, where pertinent and possible

1. Correction of sensory defects
2. Improvement in general physical condition
3. Special attention by the school teacher or a special tutor in subjects (especially reading) in which difficulty is evidenced This may mean that a tool subject should be literally started over again
4. Special arrangements for extra or irregular promotion or change of class in school
5. Attendance at a special class for subnormals

Chapter VI

SPECIFIC DISABILITIES IN SCHOOL SUBJECTS

PSYCHOLOGICAL clinics have to deal not only with children presenting the problem of general retardation, but also with children presenting a retardation apparently limited to one or two subjects A child who exhibits behavior of an intelligent sort and whose academic achievement is in general good may be unable to learn to read, or to do arithmetic, or to spell, and so presents a baffling problem to teachers and parents By attending to certain details, it is possible to teach practically all such children reading, arithmetic or any other subject in which they are deficient

Our concern in this book will be with deficiencies in the tool subjects only reading, arithmetic, spelling, and writing Of course, equally serious and important problems may be presented by a deficiency in any content subject from the elementary school through college, but usually such difficulties are due to lack of interest, or to a lack in the facility with which tool subjects are used, or to defects in study habits.

If there is a wide discrepancy between achievement in one subject and that in *all* other subjects it will automatically eliminate lack of intelligence as a cause. When, however, the discrepancy is not so great, or when some degree of deficiency is evident in several subjects, then lack of intelligence might well be a contributing factor The plausibility of this is indicated in the correlations between the tool subjects and intelligence Approximate median correlations derived from tables given subsequently in connection with the discussion of special subjects are as follows·

Reading	60
Arithmetic	55
Spelling	.50
Writing	.10

We might justly conclude from these figures that a child may be very deficient in reading and somewhat so in arithmetic, but be aver-

age or satisfactory in spelling or writing For reasons to be noted later, the converse is not necessarily true Thus a child poor in spelling or writing might be excellent in arithmetic or reading But his deficiency is evidently not due to lack of intelligence—in fact, it may be related to a superior intelligence.

There are very real reasons why poor achievement in the tool subjects should be investigated and corrected. Even cursory study of the modern curriculum will show how important reading and arithmetic, at least, are to achievement in all subjects. History, geography, civics, foreign languages, science, English, etc, all depend in an intimate way upon reading facility; while algebra, geometry, bookkeeping, and science are dependent upon arithmetical ability. Therefore we shall discuss these tool subjects, especially disabilities in them, from the point of view of diagnosis and, to some extent, correction.

Relations between Language Abilities—Meumann (1907) early pointed out a communality in the linguistic activities—reading, writing, spelling and speech. Schneck (1929), using a correlational technique, demonstrated a common verbal factor The diagram in Figure 11 is an attempt to illustrate the relationships existing among the various language skills, especially in their developmental aspects.

The child's first association is usually between the sound of an object's (activity, relationship, etc) name as spoken by another person and the object itself; then, proceeding clockwise around the diagram, he learns to say the name himself, to read it, and finally to write it. In the course of this sequence other associations are made as indicated by the double-headed arrows. The numbering of these bonds approximates the ordinary sequence of their establishment. However, the definiteness of this sequence must not be relied upon too strongly, for there are evident variations in individual cases, and often one or more associations are established more or less simultaneously. Specifically, these connections may be thought of as follows

1. Association of the name, as spoken by someone else, and the object.
2. Association of the name, as spoken by self, and the object
3. Association of the sound of the name and the kinesthetic cues in speaking the word. Auditory perception and vocal articulation abstracted from the object, *per se*

The first three associations comprising the basis of spoken language

are established early in the child's life, adequately in most children by the age of two years. Their genesis is related not so much to

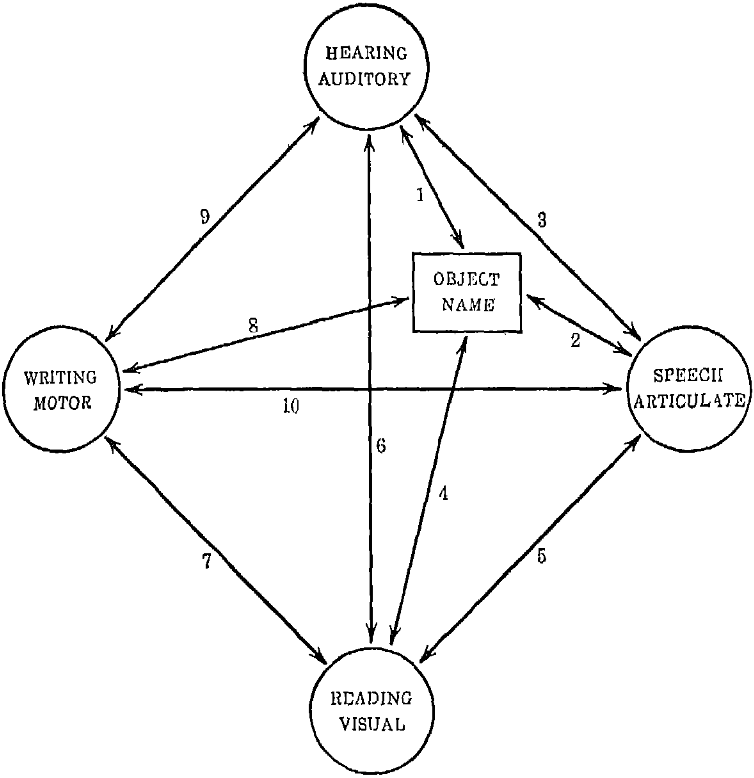


Figure 11—Relations of Language Abilities

formal training as to the complex of interactions of the child with his familial and social environments

4 Association of the written or printed name with the object
5 Association of the written or printed name with vocal articulation, as in oral reading.
6. Association of the written or printed name with the sound as pronounced by self or others.

This second group of three associations forms the basis of reading ability They are usually not well formed in children with an intelligence level much below six years This means that for most chil-

dren the formation of such associations takes place under formalized training, usually in the schoolroom

7. Association of the printed or written word with the motor skills necessary to print or write it oneself. This may or may not involve spelling, e g., Hollingworth (1923) reports a boy who could not read or spell, but could recognize his name and could draw it as he would a house, although he could not spell it otherwise.
8. Association of the object with the motor performance necessary to write its name This obviously involves spelling.
9. Association between the sound of the word and the motor act of writing it, as in writing or spelling from dictation
10. Association between the auditory and kinesthetic perception in saying the word oneself and the motor act of writing it.

The last group of associations is probably the latest to be formed and usually follows, or only in part is simultaneous with, the development of reading skills. Writing as a language skill involves spelling, and except in the case of "spelling bees" or occasional requests like "How do you spell ———?" this aspect of the language skill is always so associated.

It should be evident that if it is impossible to form any one of these associations the development of all the rest will be retarded to some extent The degree of retardation decreases from that shown by the deaf child through a fairly regular sequence to the relatively slight effect of motor paralysis or other inability to write.

Reading

Perhaps the skill most necessary to be achieved by every child is that of reading For subsequent academic work it is essential, for all types of occupation higher than the most unskilled labor it is of greater or lesser importance, and in profitable and satisfying use of leisure time it plays a significant part

We speak of reading as a skill or ability to be secured in school as though it were a relatively simple unitary type of behavior Quite to the contrary, it is psychologically very complex. Factors of a sensory, motor, perceptual, and intellectual nature are all involved. Usually two [illegible]echanical, or the ability to pronounce words in the printed sequence with or

without any expression in the reading, and (2) comprehension, or the ability to understand what is being read. The first of these may exist without the second, but under ordinary conditions the second presupposes facility in the first

Reading mechanics require sensory, motor, and perceptual normality. Thus, visual defects obviously limit the degree of reading skill that can be secured To a more limited degree, auditory defects may affect reading Kinesthetic deficiencies play some part, especially in connection with vocal articulation or oral reading, and perhaps in connection with eye movements in silent reading For the totally blind, cutaneous sensation of pressure will affect the development of skill in reading "by touch" Motor disabilities, in vocal articulation and eye movement especially, play a part in poor reading Perceptual factors—such as the lack of habit in identifying word forms or letter forms, habits of perceiving letters instead of words or words instead of phrases, too frequent or irregular eye movements influencing the perception span—are all of importance in explaining specific cases of reading disability

As we have pointed out, lack of intelligence will probably be evident in other ways, but it is of great importance in explaining deficiency in comprehension This more complex aspect of reading skill is also affected by the amount of previous experience with words, with the subject matter, with vocabulary, or with the specific language being read. Also, poor reading mechanics exert an undesirable influence on the comprehension of what is being read, although it is sometimes found that superior children may pick out a good deal of the meaning of a passage, while exhibiting at the same time only fragmentary perception of the material.

In the preceding discussion we have indicated several possible factors in the etiology of reading disabilities We shall discuss these factors in a somewhat more systematic and detailed fashion and then consider diagnostic measures related to them.

CAUSES

Intelligence.—Table XXVI presents a summary of correlations between intelligence and reading ability The wide range exhibited by these correlations is probably to be accounted for by the size of groups, their age range, and the tests used in measuring both intelligence and

TABLE XXVI —CORRELATIONS BETWEEN INTELLIGENCE AND READING

Source	Intelligence	Reading	No of Cases	Description	r
Arthur (1925)	Kuhlmann Binet M A	Haggerty comprehension	171	1	69
Burt (1921)	Binet	Own test		Ages 7–14	54
Davidson (1931)	Binet I Q	Own test	13	Pre school	69
Gates (1922a)	Binet M A	Composite test score	 c 20 c 20 c 20 c 20	Children with median I Q 116 Gr III Gr IV Gr V Gr VI	 30 35 58 71
Gates (1922)	Binet	Comprehension	c 20 c 20 c 20 c 20	Gr III Gr IV Gr V Gr VI	29 36 41 69
		Rate	c 20 c 20 c 20 c 20	Gr III Gr IV Gr V Gr VI	20 23 56 60
		Comprehension Rate	c 100 c 100	Gr IV–VIII Gr IV–VIII	49 46
	Composite group	Comprehension Rate	c 20 c 20	Gr III Gr III	72 68
Gates and La Salle (1923)'	National	Comprehension	75 75	Gr III–VI 1920 " 1921	88 87
		Rate	75 75	" 1920 " 1921	83 89
	Binet M A	Comprehension	75 75	" 1920 " 1921	74 78
		Rate	75 75	" 1920 " 1921	65 63
Goodenough (1925)	Binet M A	Stanford Achievement	100	Gr II–IX	84
Haggerty (1923)	Delta II	Haggerty Sigma 3	442	Gr IX	62
Ladd (1933)	Haggerty	Three-test composite	315	Gr III–V	71
Lee (1932)	Binet M A	Gates Silent	73 63 68 73 63 68	Gr IV Gr V Gr VI Gr IV Gr V Gr VI	23 – 01 45 28 24 55
Monroe (1932)	Binet I Q	Average of five tests	155	Reading disability cases average age 11 years	65
			101	Control group, average age 8 years	60
Porteus (1922)	Binet	Educational attainment scale	 32 26	Feeble-minded in institutions Boys Girls	 74 68
St John (1930)	Binet and group composite I Q	Composite of three tests	503 455	Boys Girls	51 60
Taylor (1928)	National	Thorndike McCall	1968	Gr IV–VIII	77
Terman (1925)	Binet I Q	Stanford Achievement	109	Gifted children, 10–11 years old	33
True [a]	Composite of three tests	Composite of four tests	218 218	Gr IV–VIII Gr IV–VIII	– 10 87

[a] This unpublished thesis was not available to the writer The coefficients given are the extremes of a range of coefficients They were obtained from Ladd (1933)

reading The significant facts regarding the distribution of these coefficients are as follows:

Decade	Number
— 10 to — 01	2
00 to 09	0
10 to 19	0
20 to 29	6
30 to 39	4
40 to 49	4
50 to 59	5
60 to 69	12
70 to 79	7
80 to 89	6

modal decade	60 to 69
median	60
mean	55

For such a series of values the median is statistically the more adequate, so we may take the correlation between intelligence and reading ability to be around .60 However, differences will be noticed in the figures based on intelligence scores per Binet and per various group tests The correlations with group intelligence tests are usually higher In the present table the median for the eleven coefficients based on group tests is approximately 75. On the other hand, when intelligence has been measured by non-verbal tests the coefficients are much lower, e g, Gates (1922a) determined such correlations and his highest coefficient was .28 There is also some evidence that the correlations between mechanical aspects of reading, speed, etc, and intelligence are lower than the coefficients based on reading comprehension In spite of variations caused by such factors, it is clear that deficient intelligence may frequently be at the basis of reading difficulties. A minimum mental age required to learn to read has not been satisfactorily settled, although serviceable reading is probably not acquired with an M.A. below six. Frequently the feeble-minded develop a surprising facility in mechanical reading, but lack adequate comprehension of what is read Porteus (1922) mentions a feeble-minded subject with an M.A of seven years and two months who scored ten in reading and only three in comprehension on his educational attainment scale.

Because of the obvious relation between intelligence and reading, the first step in the study of a case presenting difficulty in reading should be determination of intelligence Any child with an ability represented by a Binet I Q of below 80 will probably exhibit some

degree of reading retardation This should not lead to the attitude that it is useless to try attempts at improvement; but the teacher must be warned that the child's accomplishment will be low and his advance slow. However, some special attention and extra drill may well repay the effort expended.

Sensory Visual Defects —Severe loss in visual acuity obviously makes impossible the development of reading skills in the ordinary sense. Other reading methods may, however, be substituted. Gray (1917) and Monroe (1932) both report that eye defects resulting in partial acuity loss do not appear to be significant factors in causing reading disabilities This does not mean, however, that in certain cases refractive errors may not be direct or indirect causes of difficulty in reading. Therefore, careful eye examination should always be made

[illegible] Eames (1932), [illegible] 143 unselected children, found no significant difference in visual acuity, but did find that the disability cases showed a significantly greater degree of exophoria Similar findings are reported by Selzer (1933), who found that 90 per cent of 33 disability cases showed muscle imbalance, as contrasted with only nine per cent of 100 unselected school children. Case number fourteen, presented in a previous chapter, illustrates the effect of strabismus in reading The seriousness of muscle imbalance in its effects on reading indicates the need for careful examination by a competent ophthalmologist As orthoptic training methods do materially improve ocular muscle weaknesses, such training should be an early step in the correction of those cases of reading disability which show such a condition

Auditory Defects —Loss of auditory acuity is probably not nearly so serious as loss of visual acuity. While hearing loss does have an effect on the development of speech and thus could affect oral reading, it alone will not affect silent reading if suitable methods of teaching are used. Essentially this would consist of emphasizing the associations between the object and its printed or written name directly, without the usual intervening step of the heard and spoken sound

Motor Defects: Eye Movements —In reading, the eye moves from left to right not by a steady sweeping motion, but in a series of very quick jerks interrupted by pauses Figures 12 and 13, reproduced from Gray (1922), illustrate the difference in eye movements as shown

by a good and a poor reader. Gates (1922a) found in his study that eye movements were secondary to defects, rather than defects being caused by poor eye movements Increased speed and facility in read-

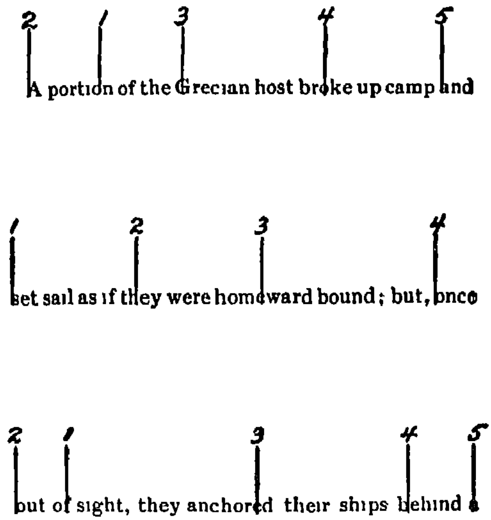


Figure 12 —Eye Pauses of a Good Sixth-grade Reader (After Gray)

ing would require fewer and shorter pauses, with fewer movements back toward the left of the line We should expect to find improvement

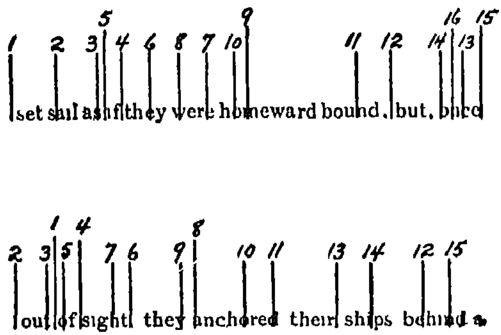


Figure 13 —Eye Pauses of a Poor Sixth-grade Reader (After Gray)

ment in these ways as children advance in school and therefore have higher reading ability Just this sort of improvement is shown in Table XXVII from data presented by Gray (1922)

TABLE XXVII.—CHANGE IN EYE MOVEMENTS IN READING WITH ADVANCE IN GRADE

Grade	Silent Reading			Oral Reading		
	Pauses per Line, Average Number	Length of Pause, Average[a]	Regressive Movements, Average Number	Pauses per Line, Average Number	Length of Pause, Average[a]	Regressive Movements, Average Number
4	9.1	12.5	2.1	13.3	14.4	3.5
5	10.0	13.8	3.5	9.3	13.7	3.9
6	7.5	12.5	3.1	9.0	13.0	5.4
7	7.8	13.6	3.5	10.6	13.1	4.2
H.S.	6.4	11.5	2.5	7.8	12.8	3.7
C	6.9	11.3	2.6	8.8	12.9	3.4

[a] Time units are fiftieths of a second

Eye movements may be observed directly or through a mirror, and are usually recorded by a photographic technique. Gray (1917, 1922) describes in detail the apparatus and method used in his studies in eye movement in reading. If inefficient eye movements are discovered in a particular case, some attention may be directed to their improvement; but such efforts alone will seldom correct the difficulty.

Vocal Articulation.—As we said when considering auditory acuity, inability to hear a word interferes with learning its pronunciation; and this in turn may affect the development of reading, especially of oral reading. However, speech difficulties are more serious in themselves than in any effect they might have on reading ability, so we shall discuss them at length in Chapter XI.

Perception: Congenital Word-blindness.—Congenital word-blindness [illegible] nosological entity since it was named by Kussmaul in 1877. It is usually described as a pronounced inability to learn to read, not because of defective intelligence, lack of training, or sensory or motor defects, but because the child apparently cannot form associations between the printed word and its sound or its meaning.

The classic monograph on the condition was published by Hinshelwood (1917), who feels that the term "should be reserved for the really grave degrees of this defect, which manifestly are the result of a pathological condition of the visual memory center, and which

have proved refractory to all the *ordinary*[1] methods of school instruction." The pathological condition referred to occurs in the cortex in the supra-marginal and angular gyri of the left parietal lobe in right-handed persons Such pathology has been found in secondary or acquired alexia, and reasoning by analogy is supposed to exist in the so-called congenital form, although there seems to be a complete lack of autopsy records confirming the supposition. Tilney and Riley (1921), in their outstanding summary of neurology, were unable to cite any cases which could be considered to afford crucial evidence that such localized pathology was basic to difficulties in reading, spelling or any other such functions. Wallin (1924) argues somewhat sarcastically that lack of evidence is no proof, and he is undoubtedly right; but he goes further and argues in favor of a neurological basis because "there must be some explanation, other than vague hypothetical mental maladjustments or malassociations, for reading disabilities which do not respond to *any* method of teaching reading, or which yield only in a *limited fashion*[1] after arduous trial." We cannot enter a prolonged discussion of the reasons why the neural pathology arguments are not sound However, the modern work of Lashley (1929) would appear to afford neurological evidence against any theory which requires circumscribed lesions.

From our point of view there appears to be even stronger evidence. In the above quotations from Hinshelwood and from Wallin, the reader will note that the present author has italicized the word "ordinary" in the former, and "any" and "limited fashion" in the latter. In regard to the use of the word "ordinary," we can only say that an unusual condition probably requires unusual measures to correct it. Wallin's use of the phrases, "any method of teaching reading" and "limited fashion," was unwise, as we shall show presently Proof lies in the results of several workers who have made extreme reading disability their special province By an intensive visual method, Gates (1922a) taught three children in his group who had been diagnosed by [opthalmologists] as word-blind Lord (1925) also found an ordinary attack through visual memory to be successful with her case Schmitt (1918) found an especially complete phonic method to be successful, while Fernald and Keller (1921) secured excellent results with a kinesthetic method involving vocal articulation and arm

[1] Italics the present author's

writing movements. The following case from Wooley and Ferris (1923) illustrates the correction of a so-called word-blind boy.

Case Number 17. (The first paragraph is condensed from the published report) On his first examination, at the age of 10-4, David had a Binet M A of 9-10, I.Q 95. Physical condition good, slight visual defect not requiring correction, right eardrum lost at age of four years. Family conditions fair, although father had deserted. Mother supported the family of four children. David had spent three years in the first grade and was then promoted to the second "because it seemed cruel to keep him another year in the first grade." At this promotion he did not know words, letters or the number combinations above ten Between May, 1918, and September, 1920, he went to a special observation class and to an oral class where a great deal of attention was directed toward his reading

David's second examination was given in September, 1920, when he was twelve years and ten months old. This time his mental age, according to the Stanford test, was eleven years and his intelligence quotient 86 On graded opposites he had a ten-and-one-half-year record No other supplementary tests were given except educational ones The examiner felt that the fall in intelligence quotient from 95 to 86 need not be interpreted as a lowering of the level of intelligence, but rather as the effect of his enormous handicap in not being able to acquire what other children do through reading, or to use reading and writing as a tool in dealing with increasingly difficult processes

David's test in reading was a disappointment It was no better than that of the average six-year-old who has been in school about four or five months. In the first paragraph of Gray's oral reading test he failed to recognize "boy," "had," "the," "into," and "ran" The only words he could spell correctly were those of the "at" family, and the word "man" Even the "at" family was not a certain possession. The word "rat" he wrote correctly the first time, but when it was dictated a second time he wrote "rut" For "can" he wrote "cmon"; for "tan," "tom", for "fan," "pom", and for "pan," "thsn" For "it" he wrote "te"

His arithmetic was better. He was given the Woody tests in addition and subtraction, and made third- and fourth-grade records, respectively

At about the same time David was examined by our psychiatrist, Doctor Fell He found nothing abnormal about the boy so far as reflexes and muscular coordinations were concerned There were no stigmata, and his glands and organs were normal. A slight deafness

was noted, but insufficient to account for his difficulty. Doctor Fell's diagnosis was "Sensory aphasia, involving mostly visual memory. Evidently a lesion, but would require complete study to work out relative importance of visual and auditory elements"

In our tests there were more evidences of defects of auditory than of visual memory His reproduction of the drawings in year ten was perfect, and he performed the memory portion of the substitution test normally for his years. His immediate auditory memory, however, was defective When the material to be remembered was not arbitrary symbols, but the content of a story, his auditory memory seemed good The real failure seemed to be in the ability to form associations between visual symbols and sounds

In thinking over the possibilities for David for the coming year it suddenly occurred to several of us that there was one untried and promising possibility left for him in our schools, and that was the school for the blind In Braille we had at hand a process of reading in which the visual elements were entirely excluded It was possible that he could form normal associations between touch impressions and heard or spoken words when he could not form the corresponding associations with visual impressions. When Miss Lawes, principal of the school for the blind, was consulted, she was enthusiastic about trying the experiment.

Just as we had the matter of the transfer of schools arranged, David arrived one morning with a note from his mother saying that the family had decided to move to Columbus the following week We were all exceedingly disappointed at this sudden end to our part of the thrilling experiment of finding some way to teach David to read, but decided at once to transfer it to colleagues in Columbus We wrote a complete report of our experiences to Mr. Collicott, the superintendent of schools in Columbus, and asked him to be on the lookout for David when he enrolled Toward the end of October letters from Columbus told us that David was found, and that Doctor C C McCracken, of the University of Ohio, and Doctor Goddard, of the State Bureau of Juvenile Research, were holding conferences about him and planning to allow some of the graduate students of the university to work with him In November, Doctor McCracken wrote us that David's family had returned to Cincinnati, and not long afterward David reappeared at the oral school

By this time Miss Ferris had secured some typewriters for her class, and another boy of about David's age had been enrolled Miss Ferris begged to have David returned to her for one more attempt before we resorted to the school for the blind. She started David and the

new boy together, using the typewriter as the chief instrument of learning. The second boy, Frank, was a hunchback, a little older than David, who had never been sent to school because of his physical condition. Treatment had finally put him into condition sufficiently good for school attendance. He impressed his teachers as normal mentally, but his intelligence quotient was only 79. He and David worked together, learning first the fingering on the typewriter. Then they committed to memory Bayard Taylor's "A night with a wolf," and read each stanza, using the word-finding method. Meanwhile, they worked at the mastery of the alphabet. Frank could call the alphabet by rote, but did not know the letters by sight. David could find many of the letters, using the small word builders. Together they patiently built up the alphabet and destroyed it time after time David seemed to learn both the letters of the alphabet and the words of the poem. At least he could find the words and letters on the board. For a time Miss Ferris thought she was succeeding, but after about five weeks it was evident that while Frank was really learning to read, David, with the same methods and an application fully as good, was not The apparent wave of progress subsided. Tested on a list of common words, such as "who" and "was," David was baffled and helpless. Miss Ferris then recommended the transfer to to school for the blind, which took place early in February, 1921 Frank remained with Miss Ferris and by June had completed first- and second-grade work

Several conferences were held with Miss Lawes during which she was made thoroughly familiar with David's history, and given copies of our various examinations and reports Miss Burdge, the teacher who was to instruct him, also studied the records carefully and visited his home to explain the new experiment to his family She found his mother eager to help. A series of photographs of David, from infancy down, impressed Miss Burdge very painfully with the gradual change in the child's expression from the unconscious happiness and sweet temper of his young childhood to the unhappy, baffled, brooding, discontented sense of failure—failure in spite of all his efforts and application—revealed in his later pictures and in his daily expression. Like all his other teachers she swore inwardly that she would teach David to read if there were any possible way of doing it

The process of learning to read through his fingers rather than through his eyes was carefully explained to David, and he was told to keep his eyes off his work. He understood and complied with the instructions absolutely. To our joy he learned the Braille alphabet with normal speed. At the end of three weeks he had not only mastered

the alphabet but was able to write simple sentences in Braille without error Miss Burdge brought us samples of his work At the end of a month his teachers made the interesting discovery that while he had conscientiously learned the Braille without the use of his eyes he was able to read it with his eyes as well as with his fingers Meanwhile, he seemed to have no confusions about the Braille letters, wrote his simple sentences without errors, and seemed to be able to remember his families of words from day to day, a feat previously impossible to him. Upon making this discovery, his teachers decided (in my judgment prematurely) that there was no point in continuing with the Braille. If he could learn one set of symbols visually, they argued, he could another. Accordingly, they abandoned the Braille, and returned once more to the attack on print The fact that David seemed to read more confidently from the very large-type books prepared for the classes in conservation of vision than from ordinary sized type led Miss Lawes to send him to the oculist of the school, Doctor Stricker, for a reexamination. The doctor discovered a defect which he thought worth correcting, and David began at once to wear the glasses.

After one more month in the class, early in April, 1921, Miss Burdge brought David in to show us his progress. He read from a primer with some help In the first paragraph of Gray's oral reading test four words had to be supplied—"woods," "wanted," "without," and "began." "After" he called "from"—obviously guessing from context. The paragraph took him over a minute He then wrote sentences from dictation The first one was, "The little boy can run" David wrote it without the word little, but when he was asked to read it, read it three times with the word "little" in it. Finally, by making him point carefully to each word Miss Burdge led him to discover his mistake. He then wrote from dictation· "A big dog can play"; "Baby likes to play"; and "Baby can roll the ball" Then, at Miss Burdge's suggestion that he write some sentence about a bird, he wrote, "The bird can fly to the nest"; but the word "nest" he wrote "tesn," and corrected it only after suggestion. The concentrated effort required to write these sentences would be hard to find excelled It seemed to us, as we looked on, that the child was entangled in a mesh of confusions, bad habits, and misunderstandings acquired during his seven years of fruitless effort. It was as though he had never before grasped the idea that each little black word on the printed page had a distinct individuality and a meaning Guessing, trying to supply words from context, and memorizing had become to him essential parts of reading. Apparently no conception of the definite-

ness and precision of reading had before crossed his mind His task was not merely to learn the new but to get rid of most of the old

By June we felt convinced that David really could be taught to read. He then knew 100 words by sight, confidently, and without the help of context The result had been accomplished in spite of the fact that during the spring he was out of school five weeks with whooping cough In order that he might not lose during the summer, we arranged to have him join Miss Burdge's summer class and go on with his instruction Toward the end of July, David suddenly disappeared from school. When Miss Burdge went to find out why, she discovered that his mother had suddenly died The poor woman had worked on, ill but uncomplaining, until she had literally dropped in her tracks without asking for aid An uncle of David's from a neighboring town came and took the family home with him. The town is a small one where there are no special facilities for dealing with problem children. David's uncle and aunt have an understanding of his peculiar difficulties and wish him to continue in our schools We hope the arrangement is now made to have David live in one of the home-like children's institutions of the city while he attends school next year (August, 1921)

The explanation of the fact that learning Braille gave David his real start in mastering print is by no means obvious In observing the process, it seemed as though starting to learn to read all over again, with a completely new set of letter symbols, was what turned the trick. The new symbols he succeeded in learning without confusion, and with a real understanding of what he was doing as he went along The process gave him his first clear conception of what reading meant and he was then able to translate into the old printed symbols, but with great difficulty because the old symbols were already a mass of confusions It is probable, however, that the explanation goes deeper than this It may be that the tactual motor type of image necessary in learning the Braille was a type for which it was possible to form normal auditory and motor associations, whereas it was not possible starting with visual images The pathways in his association tracks leading to auditory centers may be open for tactual motor cues, but not for visual ones directly. The learning of Braille may have given him control of a new type of word and letter image, into which he is learning to translate the visual perceptions before they become cues for speech or writing.

In a letter dated February 27, 1936, Doctor Wooley writes, "After his short course of Braille, the boy learned to read normally He rapidly made up the three years which he had lost in the first grade,

and finished elementary school at the customary age of about fourteen years. In high school he entered a preparatory course for engineering. . . . The boy finished high school well and won a scholarship in the College of Engineering."

Scheidemann (1931), who apparently blindly follows Wallin in holding dyslexia to be due to neural pathology, describes a case of word-blindness who was taught to read English by introducing him to French and German after other methods had failed. Even Hinshelwood believes that by special methods these children can be taught to read The evidence from these studies definitely suggests that special teaching methods are successful in retraining the "congenitally word-blind" and that the success is not in a "limited fashion."

The incidence of this condition is not high Hinshelwood could report only 31 cases encountered in fifteen years Wallin (1924) reports 4.48 per cent of 21,168 school clinic cases in St Louis. C. J Thomas (1905) calculated there was only one case among 2000 boys in the London schools, while Warburg (1911) found fourteen cases among 2000 children in the regular schools of Cologne Schmitt (1918) found fifteen cases diagnosed as congenitally word-blind among a population of 42,900 pupils in 50 schools. Gates (1935) says he has never found a case that was best described as "word-blindness," although he had studied reading in over 13,000 children The extreme contrast in these figures suggests that there is no standard diagnosis for this condition In fact, we may agree with Freeman (1920), who feels we are "justified in raising a serious question whether there is such a thing as specific congenital word-blindness or alexia"

In summary, we may grant that there are a small number of children who exhibit a severe reading disability characterized by a lack of association between the printed word and its sound or meaning. Regardless of the severity of such conditions, experience and wisdom would indicate that labeling such children as congenitally word-blind is a futile gesture, but that ingenuity in teaching may resolve the difficulty Because of the necessity of unique methods we cannot well describe them here but shall refer those interested to the works cited

Inadequate Perceptions.—Perception may be defined as an interpretative interaction with a stimulus function. Stimulus functions are not, however, necessary and characteristic attributes of objects. Rather their connection with objects is a result of training and ex-

perience For illustration let us take the simple three-letter word "tap" as a stimulus object. For the Chinese ignorant of the Roman alphabet, perception is limited to black marks on white paper in a certain shape. With knowledge only of the Roman alphabet, but none of any language using it, the perception might be of the individual letters "t," "a," and "p," plus possibly an interpretation that in this configuration they make a word Present this same stimulus object to different American children and one soon finds that many stimulus functions may be present. A child who is learning to read and who has just learned to experiment with new letter combinations may first analyze it into letters; perhaps more or less accurate attempts to pronounce it are made, and soon this object is reacted to, i e, perceived, as one of those many objects that may be pronounced—this particular one in the fashion t ă p At this stage there may be no other stimulus function in the word-object for this child. With increasing experience, when the object is met in various contexts and so on, one, two, or more further stimulus functions inhere in the stimulus object "tap," and perception of one of these will depend upon the stimulus situation Thus, meanings are stimulus functions of words. For different people, or for the same person at different times, this simple stimulus object "tap" may mean and be reacted to as meaning a slight blow, to strike such a blow, a faucet or spigot, a nut for a bolt, shoe-sole repair, a barroom, a branch of an electric circuit, to make such a branch, to lead away or draw off, to open a means of drawing off, a tool for cutting screw threads, a form of dance, to Yale men the ceremony of selecting for the senior societies, and perhaps further meanings in more provincial use.

This apparent digression is actually in point because it introduces a serious cause of reading difficulties both in the mechanics and, perhaps more serious, in the comprehension of reading. To perceive a word as anything other than merely black marks, requires learning. For the two-year-old no word has a stimulus function distinct from that shown by any similar contrast of black and white, or other color combination Even the interaction with a word as a word must be learned. The lack of such learning appears to be really basic to the condition we have just described as congenital word-blindness.

While we cannot enter into an explanation of methods of teaching reading, we may point out that two extreme methods have been used. The earlier extreme was the strictly analytic method of teaching first

the alphabet, then spelling, and thence to reading words as units The other extreme disregarded any analysis and taught reading by whole-word perception. Neither method is completely good or completely bad. Modern methods argue and teach that basic words should be learned as units with not too much attention to analysis, but that analyzing is necessary for the child in coping with new words appearing in his reading. Thus, perceptual confusion is fairly easy between pairs of words such as "made" and "mad," "saw" and "was," "the" and "they", but analytic attention to the differences between these words when the child is first introduced to them reduces the possibility of such confusion. On the other hand, perceptual confusion between "boy" and "pachyderm" is hardly to be expected, but analysis into syllables, at least, makes possible a fairer conception of the latter word.

Training—Thus we are introduced to training and experience as factors in producing reading difficulties. The causes we have earlier discussed are directly related to poor reading mechanics, as are those we are about to discuss. However, this latter group may also be directly related to lack of comprehension in reading

The following list of ten factors in training and experience, while not always mutually exclusive, represents those of sufficient importance to warrant special attention in diagnosis.

1. Inadequate Training in Visual Perception of Words.—This may be due to a too great emphasis on either of the extreme teaching methods mentioned earlier, or to unsuccessful attempts to use an intermediate method The child may spend too much time spelling or otherwise analyzing words, and so lose the meaning of the whole context On the other hand, too facile whole-word perception may result in the child's searching new material for familiar words and neglecting the unfamiliar ones (Gates, 1922a) Also to be considered here is an inefficient perception span, i e, not sufficient material perceived at each pause in the eye movement across the line. Gray (1922) points out that both reading rate and comprehension are positively correlated with the length of the span of perception.

2. Inadequate Analytical Training.—Complete lack of analytics, i.e., extreme emphasis on whole-word perception, would logically be included here. However, more to be emphasized are the results of phonic training which places correct pronunciation above clear

understanding, or which leads to a superficial exactitude Such methods may result in the child's paying too much attention to detail, and his developing narrow perceptual spans because of attention to such details. Also, the change from one analytic method to another may cause inhibitions and confusion

3. Methods and Materials of Instruction —This includes the inappropriate methods mentioned above, as well as certain aspects of some of the following points The ordinary classroom methods successful with the majority of students may be entirely unsuccessful with individual cases, but in the pressure of work no special methods are tried In some cases reading disability may date to an attempt to teach the child from material that was too difficult, and because of this, a lack of interest or even antagonism may have arisen. While it is possible that teaching methods and materials may be important etiologic factors in some cases, they are probably of greatest importance in relation to the teacher

4. Teacher's Ability and Influence —Evidently the preceding three factors are wholly, or in part, dependent upon the teacher's training for, and ability in, teaching reading. Taylor (1928) concluded, from a study of the reading achievement of children during single terms from the 4B to 8A grades, that the teacher's ability shows no effect in a single term He also points out that in the ordinary course of events a child experiences several types of teachers during several terms This would suggest that the influence of an individual teacher is negligible Even granting that this one study will be substantiated by other researches, it is evident that by the fourth grade most children have formed the all-important early habits. The crucial time when the teacher probably plays an extremely important part is in the first and second grades during the child's first introduction to this new process of reading We have examined children referred to the Indiana University Psychological Clinics because of reading difficulties, whose history and subsequent improvement point to the lack of skill, or impatience of a first-grade teacher as the outstanding etiologic factor in their problem

5 School Attendance.—Regularity of school attendance apparently shows no relation to reading achievement. Theisen (1924) and Terman (1925) both report a correlation of practically zero between the two variables, and Anderson and Kelly (1931) found no significant differences between cases of reading disabilities and their controls in

amount of training, age of entering school, or number of school changes. Theisen does suggest that excessive absence, e g., over two months per year, may be a significant factor. However true these findings may be for groups, there can be no question that absence may be important in individual cases. Thus Gates (1922a) had one child whose difficulty seemed to date from a four-month absence in grade two during the time the class was being introduced to a new step in the reading process. Changing schools may be serious, not only because it introduces problems of social readjustment, but also because it may mean a change in teaching methods to which the child may have difficulty in adapting

6. Unfavorable Reading Experience at Home.—Troubles may arise from the child's reading experiences in the home. For example, parents anticipate the formal teaching of the school and attempt to teach the child some fundamentals of reading at home. If the parents are adequately trained, there can be no objection to this. There is probably no serious objection if, even by unorthodox methods, the child has built adequate preliminary reading habits before attempting school But as relatively few parents, even those who may be otherwise well educated, have adequate training, the usual outcome of such attempts is confusion when the child starts school. The result is either the necessity of practically relearning the process or the development of a reading disability.

In contrast to such active interest in teaching the child to read are the evils of reading too much to him, or of failing completely to stimulate him toward any reading interest. Perhaps the latter of these is somewhat less serious because the school then has a free hand to develop reading interests and skills. In the former, however, the child learns to enjoy the stories read to him, and he may see little or no point in going to the labor of reading himself so long as someone else is willing to do it.

7 Unfavorable Home Conditions.—There has apparently been no demonstration that the socio-economic condition of the home has any relation to reading except as it may have a relationship to general ability However, in the case of homes of the lower socio-economic groups we might well expect a lack of stimulation toward reading or even an antagonism toward it. Other unfavorable home influences may be found in attitudes. Thus, in one of our clinic cases there seemed to be no doubt that the boy's reading difficulties originated with

the unsatisfactory methods and attitude of his first-grade teacher; but there was likewise no doubt that the continuance of his difficulty was fostered by his father's well-meant nagging and unfavorable comparison with a younger brother.

8. Foreign Language.—The personal experience of most readers of this book will indicate to them the difficulties that the child must have who is forced to think in a strange language, or who must use one language at home and another at school. Where this is necessary, children usually reach a compromise and use neither language very well. W. S. Gray (1918), O'Hern (1919) and Kirkpatrick (1926), among others, have found that the reading achievement of children from foreign homes is lower than that of children from English-speaking homes.

9. Amount of Reading and Interest in Reading.—Each of these would seem to be the criterion of the other; i.e., the child who reads a good deal is evidently interested in reading and, vice versa, the child who is interested in reading will read a good deal. It would be interesting to study the relation, using some other criteria of interest in reading, but it does not seem to have been done. From correlations based on a very small group, Lipscomb (1931) concluded that reading ability was of greater importance than intelligence in determining the quantity of outside reading That there is a relation between reading ability and amount of reading is also suggested by Zirbes' (1918) correlation of 53 between reading rate and number of books read at home These particular factors are probably not so important in relation to reading disability itself as they are in relation to other academic disabilities that depend upon reading.

10. Vocabulary —Wide reading increases the vocabulary but, in turn, a large vocabulary makes possible the wide reading Even for the small child first learning to read, the major problem is that of increasing the number of words to which he can react. Therefore, all those things which hinder the development of visual perceptual habits in reading also tend to limit vocabulary Monroe's (1932) controls had better vocabularies than her cases of reading disability, although the lack was more likely a result of the disability than a cause of it. Goodenough (1925) found the surprisingly high correlation of 79 between vocabulary score on the Binet and the reading section of the Stanford Achievement tests when C.A. was held constant.

DIAGNOSIS

Our review of possible causes suggests the information necessary for diagnostic purposes. The following outline presents a suggested procedure for the examination of cases of reading disability:

1. Psychological examination
   - a. intelligence
   - b. perception
2. Physical examination
   - a. general health
   - b. visual
   - c. special (auditory, motor, neurological)
3. Educational history
   - a. general
   - b. absence
   - c. change of school and teachers
   - d. history of reading
4. Family history
   - a. socio-economic
   - b. attitude toward child's reading
   - c. language used in home
5. Reading examination
   - a. observation of oral reading
   - b. formal reading tests

As we have already considered general examination methods at some length, it is not necessary to consider each of these in detail. Intelligence will be determined by tests; but too much dependence cannot be placed on verbal tests because performance may be affected by the reading disability Perception should be investigated for word recognition and perception span.

reading. A child with an I Q of 80 to 90 who starts school at the age of six is not yet able to profit much from reading instruction, and in such circumstances he may be promoted without adequate groundwork A history of extreme absence, of frequent changing of schools or methods, may help to explain the child's present difficulty. The history of the child's reading experiences will include methods used to teach him, and his own interest in reading.

The family history should include some evidence of the socio-economic position, especially as it may relate to the opportunities for stimulation toward reading at home. Parental attitudes toward the child's reading may include indifference, negative interest shown at times by attempts to keep the child from reading, or positive interests shown by attempts to teach, by wholesome stimulation of the child's interest in reading himself, or by too extensive reading to the child Information on the use of foreign language in the home is, of course, important

The information secured from an examination including all of the above enables the clinician to discover possible etiologic factors and, therefore, corrective measures to be taken which are not directed toward the reading itself. Remedial training requires further knowledge concerning the exact nature of the reading difficulty; this may be secured by a specific reading examination. Such examinations may use informal tests of reading, or formal standardized tests. The survey type of achievement test is of little use for diagnosis of specific disabilities as it is intended to give only a level of achievement.

Perhaps the most complete diagnostic system for studying reading is that developed by Gates (1935) We reproduce the outline of his diagnostic scheme,[2] but must refer the reader to his manual for elaboration of methods both diagnostic and remedial

I Tests and diagnoses of reading attainments·
  1. Word recognition
  2 Sentence reading
  3. Silent paragraph reading—various types examined separately for
     a. Speed
     b. Accuracy
     c. Level or power
  4. Oral reading

[2] Reprinted from Gates, *The Improvement of Reading*. By permission of The Macmillan Company, publishers

II. Techniques of reading context
   1 Objective devices and observation of use of context clues, word-form clues, phonetic devices, etc, in oral reading

III Techniques of working out recognition and pronunciation of isolated words:
   1 Objective records and observations of methods of attack upon unfamiliar words

IV Perceptual orientation and directional habits in reading context and isolated words:
   1 Objective records and observations of reversal tendencies, omissions of words, failures to observe various parts of words, dependence on general configuration, etc

V Inventory of visual perception techniques Tests or examinations for.
   1 Ability to work out phonogram combinations
   2. Recognition of various types of word elements, as
      a Initial-vowel syllables
      b. Initial-consonant syllables
      c Vowel-consonant phonograms
      d Vowel phonograms
      e Consonant-vowel phonograms
   3 Ability to blend given letters and phonograms into words
   4 Ability to sound individual vowels
   5 Ability to name individual letters

VI Inventory of auditory perception techniques, tests or examinations for
   1 Ability to spell spoken words and techniques used
   2 Ability to write words as spelled
   3 Ability to blend letter sounds into words
   4 Ability to name letters when sound is given
   5 Ability to give words with a prescribed initial sound
   6 Ability to give words with a prescribed final sound

VII Various constitutional and psychological factors
   1 Visual perception Speed and accuracy of visual recognition and discrimination of various materials
   2. Vision Tests of visual acuity, eye dominance, muscular coordination, etc.
   3 Auditory acuity and discrimination
   4. General intelligence
   5 Memory span
   6 Associative learning

7. Muscular coordination, handedness, relation of dominant eye and dominant hand, etc
8 Emotional stability, etc

VIII. Educational background and environmental influences·

1. Home conditions; language spoken, attitude toward reading difficulty, etc
2. School conditions; educational progress, methods of teaching, etc.
3 Personal relationships child-parent, parent-teacher, teacher-child; pupil's attitude toward school and reading, brothers and sisters, etc.

IX. Motivation Reading viewed in its relation to desires, thwartings, purposes

REMEDIAL TREATMENT

If diagnostic study of a case of reading disability indicates physical or intellectual defects these must be corrected if possible. As we yet know of no way to correct an intellectual defect in such cases, the psychoclinician's recommendation must be limited to pointing out the probable amount of achievement to be expected, and perhaps making suggestions concerning management of the training.

In those cases where uncorrectable physical or mental defects are not present, remedial treatment may be undertaken with reasonable assurance of improvement. The teaching technics to be employed follow those used for teaching reading under any circumstances However, the teacher's attention should be directed primarily to those specific difficulties found in the examination, e.g, in word recognition, paragraph comprehension, and so on.

As children who have not learned to read often show discouragement and lack of interest in reading, the teacher's first task is to develop in the child a desire to learn reading Gates suggests as means to this end that the materials used be easy and intrinsically interesting, that encouragement be freely given, that the child should know, and follow, an objective record of his own improvement, that the remedial lesson be given at a time that will not arouse antagonism (e g, it should not be given after school hours), and that the necessary practice and drill be so distributed that it does not become dull and boresome The type of material to be used in remedial cases, especially with older children, must be carefully selected To ask the child in the fifth grade to read a first or second reader may well be embarrass-

ing to him, and will certainly be uninteresting. Rather than formal readers, books of simple yet interesting stories should be selected In short, patient sympathy and ingenious stimulation on the part of the teacher will solve many of the problems

Description of the available teaching technics and materials cannot be given here. In most cases the classroom teacher who is properly trained can adequately handle the special work with the child. Teachers or others who undertake this type of remedial work should read carefully some of the published case material as well as text discussion of the problem. Gates' (1935) book, already referred to, is the most useful manual on the diagnosis and treatment of reading disabilities.

Spelling

When one considers the absurdities of English orthography it is not at all remarkable that many children exhibit a lack of achievement equivalent to a serious disability. It is not infrequent to find successful adults having difficulty with spelling Bronner (1917) minimized the seriousness of spelling difficulties when she said, "It is quite generally recognized that individuals differ widely in their ability to master this subject [spelling] All writers on the question have agreed that many persons well educated are unable to spell correctly" However, the close relation between spelling and the mechanics of reading on the one hand, and writing on the other, makes necessary an adequate ability in this subject. We do no violence to the facts when we say that as the rules of spelling are so loaded with exceptions it is probably easier and more economical to master spelling by memorizing each individual word. This is not so impossible a task as may at first appear because the majority of words in ordinary use in correspondence, newspapers, magazines, fiction, and such widely read material are repeated so often that a relatively short list forms the average adult's working vocabulary

This has been shown in a number of studies, of which that by Andersen (1921) is a typical example. This investigator analyzed 3723 letters written by adults engaged in some 35 different occupations in various parts of the State of Iowa In these letters there were only 9223 different words, but there was a total of 361,184 running words. When arranged in order of frequency of occurrence, the first fourteen words constituted 25 per cent of the total, the first 77 made up 50 per

cent of the total, and the first 442 words included 75 per cent of the total number From this list Andersen selected the 3087 words appearing most frequently in adult correspondence Similar studies in various parts of the country, and with different sorts of widely read material, have resulted in similar findings; consequently, the modern spelling list for schools consists of three or four thousand of the commonest words instead of the ten or twelve thousand words picked by random sampling from a dictionary that made up the older spelling books. Interest is not keen nowadays in ability to spell such words as circumflex, inveigle, solecism, anabaptist, or epithalamium, all of which appeared in *The Dublin Spelling Book*, published in 1833 Rather the aim is to automatize the spelling of the commonest words early in the school career.

There is no necessity even in the advanced grades for introducing words haphazardly Thorndike (1932) has arranged the 10,000 most common words as determined by various vocabulary studies, in the order of frequency. The order of appearance of a word in this list will give an indication of the frequency with which it will be met in general reading

CAUSES

Because of the widespread difficulties with spelling found among children and adults alike, it is difficult to decide what shall be considered a special disability in this subject For practical purposes we may define a specific disability in spelling as an apparent inability to learn the spelling of words occurring among the two or three thousand most frequently used Usually, but not always, such disability may be accompanied by difficulties in reading.

The material upon which the vocabulary studies mentioned earlier have been made were uniformly written or printed This was entirely reasonable, because [illegible] is in writing activity. Therefore [illegible] must consider it as involving association between visual or auditory perception and the motor acts involved in writing This gives us the basis for most spelling difficulties, because, apart from low intelligence level, the more serious ones are related to sensory or motor defects

Intelligence—Table XXVIII presents a number of correlations between scores on intelligence tests and spelling ability. This list has no [illegible]

claim to completeness, but it is an unselected sampling. A summary of the data may be given as follows:

Decade	Number
00– 09	1
10– 19	2
20– 29	3
30– 39	5
40– 49	4
50– 59	5
60– 69	7
70– 79	3
80–.89	2

median	r	51
mean	r	49

Evidently there is a greater variability in these correlations than in those reported for reading. However, there can be no doubt that spelling is not as closely related to intelligence as is reading—this in [illegible] and spelling are both parts of a general language ability. But as we have pointed out, spelling is perhaps more closely related to the mechanics of reading, and this in turn is less closely related to intelligence than reading comprehension. The low correlation here reported is probably due in large measure to the nature of the process necessary in learning spelling Learning to spell requires, all other things being equal, drill and repeated drill on nearly every word. Just this sort of mechanical drill appears to be suitable for those children with low intelligence; therefore, they may show a high achievement. On the other hand, the superior child is apt not to be willing to spend a great deal of time in drill, but attempts to generalize from past experience, with the result that he makes errors and thus reduces achievement. Direct support for a thesis of this sort is found in a study by Carroll (1930) In a study of the errors in spelling made by experimental groups of bright and dull children he found that the bright children made a higher percentage of one-letter errors, while the dull children made a higher percentage of group errors. Furthermore, the bright children were more likely to spell words phonetically. Carroll concluded that the "psychological explanation of each of these differences appears to be in the marked superiority of the bright over the dull in phonetic generalization ability." In spite of the apparent disproportionately high achievement of the duller child, and the disproportionately low achievement of the brighter child, low intelligence must always be eliminated as a factor in spelling difficulties in the course of clinical study.

TABLE XXVIII —SUMMARY OF CORRELATIONS BETWEEN INTELLIGENCE AND SPELLING

Source	Intelligence	Spelling	No of Cases	Description	r
Bird (1920)	Composite group	Ayres Ayres sentence	60 60	Gr IV–VIII	29 26
Burt (1922)	Binet	Own test	689	Ages 7–14 years	52
Garrison and Garrison (1929)	Binet M A	Ayres	67 124 127 192 164 131 170 54	Gr II Gr III Gr IV Gr V Gr VI Gr VII Gr VIII Gr IX	73 68 62 64 58 52 43 39
Gates (1922a)	Binet M A	Composite test score	 c 20 c 20 c 20 c 20	Children with median I Q 116 Gr III Gr IV Gr V Gr VI	 32 11 37 45
Gates (1922)	Composite group	Composite test score	c 20	Gr III	56
	Binet M A		c 100	Gr IV–VIII	31
Gates and La Salle (1923)	National	Ayres	75	Gr III–VI 1920 " 1921	85 82
	Binet M A			" 1920 " 1921	60 62
Hollingworth (1918)	Binet I Q	Modified Ayres	13 14 9 23	Ages 9–12 years " 8–13 " " 9–13 " " 8–13 "	24 08 42 12
Houser (1915)	Binet	Own test	44 36 39 35 32	Gr IV Gr V Gr VI Gr VII Gr VIII	71 60 35 49 51
Porteus (1922)	Binet	Educational attainment scale	32 26	Feeble-minded in institution — boys girls	78 68

Visual Defects—Visual defects play the same part here as they do in reading; in fact, the child whose reading is poor because of diplopia, loss of acuity, or unsatisfactory visual perception will inevitably have difficulty with spelling, at least in so far as he must learn the letter sequences from the written or printed word. However, as spelling is more [illegible] vision is not of as great [illegible]

Auditory Defects—As spelling in the classroom is usually a matter of writing from dictation, the necessity for a normal auditory mechanism is evident Of course the child's usual introduction to the spelling of a word is through copying it from a book or the blackboard. As a rule, this method is used for the most common words and before

spelling is presented as an independent subject While English orthography is not phonetic, the emphasized associations are between the sound of the word and the motor act of writing it Even when copying from printed material the child pronounces words to himself This being true, there are three ways in which difficulties may arise First, the teacher may mispronounce a word or pronounce it with a provincial accent; the child spells as he hears it Secondly, an auditory loss results in the child's not hearing the sounds clearly and spelling as he hears. Thirdly, as a result of the first two the child learns the incorrect pronunciation, and later when writing spontaneously he spells according to this incorrect pronunciation. Clinical examination must include efforts to discover possible auditory defects and erroneous pronunciation.

Motor Defects—These may be divided into defects in vocal articulation and lack of writing coordination.

The child with an articulatory speech difficulty will pronounce words incorrectly This situation is analogous to the case of the child who has learned an incorrect pronunciation, and the result in spelling may be the same. Clinical procedures in connection with speech defects will be discussed in Chapter XI.

Inasmuch as spelling is predominantly used in writing, it is evident that the child must have adequate writing habits. Lack of these may be due to an organic condition such as spasticity or athetosis, or they may be due to inadequately developed motor habits. In the latter case they can, of course, be corrected by further practice.

Memory—One behavioral characteristic developing with age and which apparently cannot be much increased by training, yet which is of the greatest importance in all memorization, has been called memory span. This span is defined as the largest number of letters, figures, or simple sounds which can be correctly repeated after only one hearing. The growth of this ability may be indicated by the digits-forward tests from the Stanford-Binet, where the arrangement is as follows.

Year	Digits
III	3
IV	4
VII	5
X	6
XIV	7
Superior Adult	8

Other things being equal, the longer the memory span, the fewer the repetitions required to memorize a long series Thus, the learning of a series of eight nonsense syllables will require fewer repetitions for a person with a memory span of six than for one with a span of only four Inasmuch as spelling may be, for some children, equivalent to learning nonsense syllables, the factor of memory span is important However, memory span and ease of memorizing are both greater with meaningful material This indicates the value of the child's knowing something about the word before, or simultaneous with, his attempts to learn its spelling.

Habit Interferences—Habits, no matter how well learned, may be interrupted, inhibited, or disorganized under certain conditions In the case of spelling habits, one such interference may come from earlier habits built up in learning the spelling of a foreign language While this may be infrequent, it indicates the need of learning something about foreign language experiences that the child has had. Another common source of disturbance is sometimes found in emotional or affective states. For example, being required to spell at the blackboard, in an examination, in a contest, or under direct scrutiny may introduce emotional tensions in some children that will interfere with their successful spelling unless the habits have been very strongly formed.

Another frequent condition is inability to spell a word aloud upon demand but perfect assurance in writing it correctly Obviously the difficulty here is that stronger associations have been made with writing movements than with vocalization of the letter sequence

Lapses and Idiosyncrasies—Hollingworth (1923) calls attention to these types of minor errors Lapses comprise those frequent mistakes of omitting or adding a letter, made even by good spellers, which are immediately recognized as errors when pointed out Idiosyncrasies are similar to lapses, and occur consistently in the spelling of some individuals who do not recognize them as errors These mistakes can be corrected by simple retraining.

Temperamental Factors—That learning to spell may easily become a boresome drill has been suggested several times Some children of superior intelligence and those children who exhibit a general nervousness or instability of behavior may be unwilling or unable to apply themselves to the required drill This will, of course, mean that the

necessary habits are not established; and this in turn will be shown by weakness in spelling.

DIAGNOSIS

Diagnostic examination of children who exhibit spelling disabilities should be directed to the discovery of causative factors This requires examination of intelligence, vision, audition, and visual perception as for reading. The child's general stability of behavior and the methods of teaching him spelling are important. While there is no doubt that the only method of learning to spell is drill and yet more drill, this does not have to be formalized, it may be made interesting through reading or games and it must be fully motivated. The use of standardized spelling scales such as those of Ayres or Buckingham, or the Iowa Spelling Scale, will indicate not only the degree of achievement, but also the words or type of words misspelled

Watson (1935), in a recent experimental study of the psychology and pedagogy of spelling, has outlined a diagnostic classification of poor spelling habits. The five groups specified are those relating to (1) syllabication, the pattern, differentiation and phonic values of syllables; (2) the establishment of new spellings, that is, the formation of basic associations between sound, spelling and printed appearance; (3) the transference to new words of learned spellings of common elements, which requires knowing the possible spellings of sound units and the use of certain sound rules in forming words, e g, doubling the final consonant before a suffix; (4) illegible handwriting; (5) motor acts resulting in lapses or idiosyncratic errors. Miss Watson advises that samples of the child's spelling be secured from themes, letters, or by use of a spelling list, and the errors found be classified according to her scheme

As a supplement to errors found in written compositions and letters, Miss Watson has compiled the following list of words for diagnostic use in the seventh to twelfth grades These words are to be dictated to the class, and misspelled words checked. No norms have been established, for the purpose of the list is not to measure achievement but to indicate the type of spelling errors which the subject shows In a personal conference the examiner checks over the misspelled words to discover whether oral spellings are also incorrect, if the pronunciation is incorrect, or other possible reasons for the errors. This diagnostic list is obviously of value.

DICTATION-LIST FOR USE IN DIAGNOSIS

1 achievement
2 boyish
3 accompanied
4 ceiling
5 advancement
6 educator
7 cameos
8 cargoes
9 changeable
10 beginning
11 performance
12 gossiping
13 believing
14 conference
15 transmitting
16 conceited
17 noticeable
18 attractiveness
19 buyer
20 cuckoos
21 boundaries
22 advisable
23 compelled
24 darkening
25 besiege
26 differed
27 serviceable
28 engagement
29 lovable
30 conceive
31 delayed
32 dominoes
33 cleanliness
34 commended
35 flattering
36 chieftain
37 echoes
38 daintiness
39 deceit
40 displayed
41 embryos
42 hopeful
43 deferred
44 measurable
45 reference
46 fiendishness
47 employer
48 portfolios
49 immediately
50 forbidden
51 deceitful
52 dutiful
53 heroes
54 movable
55 signaling
56 deceive
57 earliest
58 weakening
59 notable
60 mosquitoes
61 fiercely
62 enjoyable
63 occurrence
64 management
65 radios
66 grievance
67 perceive
68 enjoyment
69 easily
70 ratios
71. Negroes
72 movement
73 obliging
74. preferred
75 happening
76 marvelous
77 regrettable
78 troublesome
79 requirements
80 peaceful
81 potatoes
82 scenarios
83 funniest
84 volcanoes
85 handkerchief
86 joyful
87 tomatoes
88 player
89 loveliness
90 merciful
91 volleyed
92 trios
93 mischievous
94 torpedoes
95 receive
96 studios
97 priestly
98 shampoos
99 receiving
100 perceived

REMEDIAL TREATMENT

The psychoclinician, having determined the possible cause for spelling deficiency, must recommend the necessary physical corrections and, if temperamental factors seem to be of importance, must outline a program for parents and school aimed at reducing the instability. Also suggestions may be made for using teaching methods suited to the intelligence and temperament of the particular child Thus, for the bright child, attention to phonetic rules and their exceptions may be more successful than mechanical drill. For the unstable child smaller units of work and less formalized drill may be suitable. In general, the following suggestions may be useful:

1. Correct pronunciation of the word by teacher and pupil is of primary importance.

2 Correct visual perception is important, in fact, Gates (1922a)

says that incorrect perception of the word is "the most common type of difficulty"

3 Knowing the meaning of the word being spelled is an advantage

4 Longer words should be broken up into syllables and learning should be by syllables rather than by letters or haphazard division. This breaking-up takes advantage of the child's memory span

5 Emphasis should always be placed on writing the word rather than on reading the letter sequence.

6. The amount of repetition necessary to learn will vary for different children and for different words. Learning to the point of being able to write the word correctly once is not enough Adequate learning is shown by ability to write the word correctly several times in succession and also after an interval of at least several hours

7 Time need not be spent on words completely memorized Occasional reviews are helpful, but more time should be spent on learning difficult and doubtful words

Handwriting

In Figure 11 above, handwriting is shown to be intimately bound up with the whole complex of language activities. This association is accounted for by the fact that writing is used primarily to record letters, words, and digits on paper Although the same sort of arm movements are used in writing and drawing, our present concern is with the motor habits necessary to the adequate formation of letters

Standards of writing are described in terms of speed and quality The first is measured by the number of letters written per minute when the task is the repeated writing of a well-learned sentence for a period of two minutes. The second is measured by comparing the sample with a scale of handwriting quality such as that of Ayres (1915) The first of these measures is simple and objective. The second requires a subjective judgment on the part of the examiner, for the scale is composed of samples of writing with which few of the samples to be judged will exactly agree However, after several hours' practice with the scale, especially with critical supervision by an expert, the results of an examiner's judgments appear to be reliable

On the basis of these measurements, standards for various school grades have been suggested. For the sixth grade these average about 70 letters per minute, and for the eighth grade about 80. The average

Ayres score for quality is about 55 for the sixth grade and 65 for the eighth grade. There is evidence that these standards are probably higher than social or vocational requirements demand. Probably all social requirements would be met by speed and quality of 60, as suggested by Wilson and Hoke (1928)

Handwriting is basically a series of arm and hand movements associated with letter and word writing Difficulties in writing consist in lack of the proper motor coordination required to form letters legibly and with acceptable speed. Freeman (1914) offers the analytic scale for judging writing defects, the causes responsible for them being shown in Table XXIX Orton and Gillingham (1934) say that causes of special disability in writing may be divided into these groups· (1) those caused by motor difficulties, (2) those largely dependent upon apraxic factors, and (3) those arising from lack of visuo-kinesthetic association The last two of these are held to be related to failure to develop a unilateral neural dominance

TABLE XXIX —DEFECTS IN WRITING AND THEIR CAUSES

Defect	Cause
1 Too much slant	(1) Writing arm too near body
	(2) Thumb too stiff
	(3) Point of nib too far from fingers
	(4) Paper in wrong position
	(5) Stroke in wrong direction
2 Writing too straight	(1) Arm too far from body
	(2) Fingers too near nib
	(3) Index finger alone guiding pen
	(4) Incorrect position of paper
3 Writing too heavy	(1) Index finger pressing too heavily
	(2) Using wrong pen
	(3) Penholder too small in diameter
4 Writing too light	(1) Pen held too obliquely or too straight
	(2) Eyelet of pen turned side
	(3) Penholder too large in diameter
5 Writing too angular	(1) Thumb too stiff
	(2) Penholder too lightly held
	(3) Movement too slow
6 Writing too irregular	(1) Lack of freedom of movement
	(2) Movement of hand too slow
	(3) Pen gripping
	(4) Incorrect or uncomfortable position
7 Spacing too wide	(1) Pen progresses too fast to right
	(2) Too much lateral movement

The mechanical nature of writing is further suggested by the correlations with intelligence Table XXX presents a short list of published correlations The median of these is at 08 and the mean at .13, so one

may take a coefficient of the order of .10 as representing the relationship between intelligence and writing ability.

TABLE XXX.—SUMMARY OF CORRELATIONS BETWEEN INTELLIGENCE AND HANDWRITING

Source	Intelligence	Writing	No. of Cases	Description	*r*
Bird (1920)	Composite group " "	Rate Quality	60 60	Gr. IV-VIII "	.41 .02
Burt (1922)	Binet	Own test		7-14 years	.21
Garrison and Garrison (1929)	National	Thorndike	Average of 11 correlations		.37
	Binet	"	Superior children, five grades with median I.Q. 112. Average r		—.07
Gates (1922)	Binet	Composite	100	Gr. IV-VIII	.08
Gates and LaSalle (1924)	Binet M.A.	Speed and quality combined	78	C.A. held constant	.01

Remedial instruction in writing is aimed at the formation of proper arm movements necessary to maintenance of a speed neither too slow nor too fast, to accurate formation of letters, to maintenance of uniformity in the slope of letters, and the like. What exercises are to be used must be decided in the light of the needs of each individual case.

Mirror Writing.—While writing problems in general are relatively infrequent in the psychological clinic, there is one peculiar form of abnormal writing that is of clinical interest. This is mirror writing, which is descrbed as writing backward so that the script is readable in its mirror image. Figure 14, from the files of the Indiana University Psychological Clinic, is an example of the mirror writing of a twelve-year-old girl whose I.Q. was 68.

The causes of the condition are still theories. Fuller (1916) summarizes them and mentions the following types of theory: the condition results from (1) faulty external motion of the arms, (2) bilateral cerebral localizaton, (3) disorder of a single special cerebral writing center, (4) disturbances of vision or the visual center, (5) difficulties in attention, imagery, etc. Carmichael and Cushman (1932), in their excellent summary of the literature, say that all such theories are un-

necessarily complex and too inclusive. These authors believe that many observers have been misled because they neglected to consider the ontogenesis of the condition Their own view of the matter is expressed in two quotations "In fact, every observation upon the phenomenon points to the fact that it is a complex motor performance that has developed as a result of many apparently chance factors which were determined in the learning process of the individual under consideration"; and "It seems that the phenomenon of mirror writing is to be considered as an unusual motor and perceptual integration which [illegible] for the most part, but [illegible] ent writer, attributing

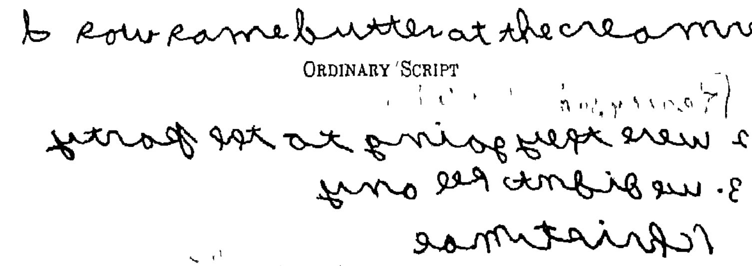


Figure 14—Mirror Writing (The first line is ordinary script written by the same subject)

the condition to the learning of a conventionally incorrect motor habit appears to be the most satisfactory theory

It is of importance to note that mirror writers are generally left-handed but, as Carmichael points out, not always so The condition is an infrequent one in any case Beeley (1918) secured questionnaire returns from 103 schools on the question of handedness. In the 106,356 children included in these schools there were only 42 cases of mirror writing reported, a ratio of approximately one in 2500 school children Gordon (1921), using actual writing tests with school children, found a higher proportion, approximately one in 200 children, while among feeble-minded children the proportion was almost seventeen times as large

Remedial training must do more than merely draw the child's attention to the defect The following plan may be followed in attempting to retrain the writing along the normal lines.

1 Stop all spontaneous writing
2 Establish regular practice periods

3. Practice should be writing slowly from copy
4. At first the teacher may guide the child's hand.
5. The letters, in large size, may be traced
6. Practice may be necessary on every letter.

Better, of course, than any remedial training is prevention, which is entirely possible if careful attention is given to beginning writers, especially the left-handed, and measures are taken to correct the first sign of reversed writing In the usual school situation it is probable that a majority of mirror writers will show spontaneous correction Mentally deficient children are probably the chief exception Persistence of the habit into adult life may be a diagnostic sign of infantile reaction. Cahen-Brach (1893) suggested that persistence beyond puberty might be looked upon with suspicion

Arithmetic

This fourth tool subject, while probably of greater importance to the child than either spelling or writing, is considered last because it only indirectly involves language ability, and it seemed better to discuss the language abilities at one time.

Included in arithmetic are three fairly distinct processes which are related in a manner similar to reading mechanics and reading comprehension The first of these is numeration, involving the idea of numbers, counting and the like; the second, computation or mechanics, including the four basic processes—addition, subtraction, multiplication, and division—used with whole numbers, fractions, and decimals; and the third, problem solving or the application of the first two processes to problems requiring arithmetic for solution. These processes are closely related; they are not identical.

Ability to count does not guarantee success with computations, nor does a rather high accuracy in computation facts necessarily mean that the child can use them in problem solving Successive steps in arithmetic skill have been shown to require higher and higher degrees of mental ability. Thus Terman on the Stanford-Binet places counting four objects at year IV, counting backward from 20 to one at year VIII, and introduces problem solving (in making change) at year IX. For computational facts Washburne (1930), in reporting investigations of the "Committee of Seven," has presented Table XXXI, which shows the minimal mental ages for learning certain of

these facts. In addition to his M.A., the child must have a certain minimum correct retention of the preceding facts which in only one case is less than 80 per cent Washburne's explanation of the table is as follows: "The following summary table indicates the mental-age levels . . . children should first attain if at least three out of four of them are to make the very modest mastery represented by a retention test score of 80 per cent in the various topics herein mentioned"

TABLE XXXI —MINIMAL MENTAL AGES FOR ARITHMETIC PROCESSES[a]

Topics	Years	Months
Addition facts		
Sums ten and under	6	5
Sums over ten	7	4
Subtraction facts		
Easier 50	7	0
Harder 50	8	3
Subtraction process	8	9
Multiplication facts	8	4 or
	10	2[b]
Simple long division, one- and two-place quotient	10	9
Meaning of fractions		
Non-grouping	9	0
Grouping	11	7
Graphs, simple bar	10	5
Percentage, Case I	12	4 or
	13	11[b]

[a] Table reprinted by permission from page 670 of the 29th *Yearbook of the National Society for the Study of Education*, with changes requested by G M Whipple, Secretary

[b] The investigators found the latter M A to meet the criteria more nearly, but the lower M A may be considered satisfactory

While higher intelligence as represented by M.A is required for successive steps in arithmetic computations, the reported correlations between abilities in these different processes are usually high Thus Scott (1919) found an *r* of 64 between abilities in addition and subtraction, and after a series of practice tests the correlation rose to 92 Correlations of about 60 to 70 and conclusions of "fairly high positive correlation" appear in practically all reports of investigation on the relations of computational abilities.

The reported relationships between computation and arithmetical reasoning or problem solving are usually low. Stone (1908) and Davies (1914), to mention only two studies, agree in finding almost no relationship between these two variables. In fact, the later investigator found an *r* of —0.06 in one class and of 0 18 in another. Collar (1920) concluded from his study of the arithmetical ability of some 200

school boys that this ability appears to be dual, i.e., one part involves skill in computing easily, and the other, power in solving problems which require a higher degree of general ability than that required for computation. It goes without saying, however, that successful problem solving requires complete mastery of computation facts, and in a large measure computation is dependent upon numeration.

CAUSES

Unlike reading, spelling and writing, arithmetic achievement is not specifically affected by sensory, motor or perceptual deficiencies. In so far as these may influence all educational achievements they are of importance here, but in our specific concern with arithmetical disability we need not discuss them. This particular educational disability may be attributed to one of three main causes: (1) lack of intelligence, (2) poor computational habits at earlier levels, and (3) inefficient methods in the operations.

1. *Intelligence*—The relationship between intelligence test performance and arithmetic achievement is appreciably high but not as high as the correlation for reading. In Table XXXII a number of correlations published in the literature are presented. These correlations may be summarized thus:

Decade	Number
20– 29	1
30– 39	6
40– 49	6
50– 59	10
60– 69	2
70– 79	6
80– 89	1
90– 99	2

Mean	55 1
Median	55
Modal decade	50–59

A coefficient of correlation of this order warrants investigation of intelligence in diagnosis The data give in Table XXXI are also indicative of the part played by intelligence in arithmetic achievement

2. *Poor Computational Habits.*—As Washburne (1930) has shown in the study already referred to, each successive step in computational facts requires not only increased general intelligence but also a certain minimum mastery of the preceding facts Thus to master the easier subtraction facts a child must not only have an M A. as shown

TABLE XXXII —SUMMARY OF CORRELATIONS BETWEEN INTELLIGENCE AND ARITHMETIC

Source	Intelligence	Arithmetic	No of Cases	Description	r
Bird (1920)	Composite group	Courtis-speed	60	Gr IV–VIII	57
		Courtis-accuracy	60	"	52
Buckingham (1921)	Illinois	Illinois arithmetic	192	Gr VII	33
			156	Gr VIII	63
Burt (1922)	Binet	Problems		Ages 7–14 years	55
		Computation		" " "	41
Dougherty (1933)	National	Missouri State Test	935	Gr VI, 1st Quart	50
			907	" 2nd "	46
			932	" 3rd "	59
			853	" 4th "	57
			2631	Gr VII, 1st "	56
			2400	" 2nd "	40
			1963	" 3rd "	49
			1696	" 4th "	68
			649	Gr VIII, 1st "	51
			795	" 2nd "	57
			826	" 3rd "	58
			707	" 4th "	72
			1952	VIIIth grade, state final	71
Franzen (1922)	Binet	Woody-McCall	81	C A constant	73
Gates (1922)	Composite group	Composite	c 20	Gr III	30
	Binet M A			Gr III	42
				Gr IV	35
				Gr V	25
				Gr VI	30
			c 100	Gr IV–VIII	30
Gates and LaSalle (1923)	National	Woody	75	Gr III–VI, 1920	91
				" , 1921	92
	Binet			" , 1920	77
				" , 1921	83
Porteus (1922)	Binet	Educational Attainments Scale	32	Feeble-minded in institution — boys	79
			26	Feeble-minded in institution — girls	76
Taylor (1928)	National	Woody-McCall	1968	Gr IV–VIII beginning semester	43
				End semester	33

in Table XXXI but he should show a retention of at least 84 per cent of the addition facts, while for the harder subtraction facts he should have a retention of addition of 96 per cent.

Computational ability is a sort of hierarchy of habits which must be automatized for facility in use Such automatization may be secured by laborious, extensive, mechanical, repetitive drill, or in more able children by some drill with an appreciation of certain of the principles involved. If the mastery of these habits is interfered with by absences, ill health, poor teaching, neglect or antagonism and so on, there will be greater or smaller portions which the child does not know and cannot use. If these are determined and special attention is paid to building up the missing habits, general improvement will follow.

3. *Inefficient Methods of Work*—Addition (especially when it involves carrying), subtraction, multiplication, and division all may be performed by several methods, each of which has its warm supporters Although a great deal of psychological and educational investigation has gone into the study of these processes, there is still disagreement as to which is most efficient However, any one of the accepted methods is much more efficient than some of the cumbersome, idiosyncratic methods devised by children Such unique methods often result in the correct answer but they are extremely slow Uhl (1917) describes the case of a boy who had developed a method of subtraction involving multiplication. For example, to subtract eight from 50 he would first get the nearest multiple of eight by temporarily neglecting two units of the minuend The multiple, 48, he then disintegrated into eights and dropped one of them. The next step was to add to this figure the neglected two units, and he had the correct answer—42! Such circumlocutions could hardly make for efficiency

Perhaps more frequently unique methods are based upon lack of clear understanding of the process, leading to an incorrect answer Such results are noted in ordinary tests merely as incorrect, but the reason for the error is not evident. Green and Buswell (1930) give concrete instances illustrating this For example, a third-grade pupil subtracted four from 86 thus: "Six and four are ten. Ten and eight are eighteen Turn it the other way makes 81" This is only one point from the correct answer, so the teacher might well believe that the subtraction fact 6 — 4 was not a sufficiently strong habit Actually the difficulty was more serious, for the child had almost no idea of the general process involved A sixth-grade pupil multiplying 35897 by two got the answer 76244 instead of 71794. Her method· "Seven 2's are 14. Seven 9's are 63, and 1 is 64. Seven 8's are 56, and 6 are

62. Five 2's are 10, and 6 are 16. Three 2's are 6 and 1 is 7" In this case the erroneous answer would suggest no reason for the error as the first one might

DIAGNOSIS

The examination of children with arithmetic disabilities probably does not need to be quite as complete as that for reading disabilities, but it should include determination of intelligence level, and those phases of the educational history which might indicate interference, because of absence or the like, with the establishment of fundamental computation habits. Difficulties in problem solving may rest upon a reading disability, for example, the child does not understand the problem when he has to read it, but he may be able to do it satisfactorily when it is read to him.

Probably the more important diagnostic problem is the determination of the nature of the disability. Merely knowing that the arithmetic achievement level is low in an individual or a class is of importance, but it does not offer a satisfactory starting point for corrective work. The disability may be one of several possible kinds, and unless the specific one is known, corrective training may entirely miss the point It is uneconomical to train the child in things he already knows Therefore results on the survey or general achievement type of arithmetic examination are of only limited value in diagnosis.

Diagnostic tests if properly devised not only point out the presence of errors but also indicate possible causes of these errors. A child may secure a satisfactory number of correct answers but in a slow, laborious manner; or he may have incorrect answers because of lack of necessary previous operations, carelessness, lack of comprehension of the processes involved, etc Thus, some children have not automatized the addition facts and are forced to count on their fingers; or they break numbers up into parts, solving 26 plus 8 by successively adding two fours to 26 because the 8 + 6 fact has not been fixed The addition $\begin{array}{c}3\\7\\\hline\end{array}$ may be easily solved when arranged in a column but utterly failed when arranged as the formula $3 + 7 = ?$. Subtraction may be difficult or impossible because of the child's weakness in addition Within any of the four fundamental processes many dif-

ferent incorrect responses are possible For example, in addition, the child may count on his fingers, carry incorrectly, use the wrong fundamental operation, subtract the carried number, forget to write down the whole answer, etc Similarly in subtraction, multiplication, division, fractions, decimals, and other computational processes, there is a lengthy but finite number of possible errors.

It is the purpose of individual diagnosis to discover such erroneous methods The frequency and something of the type of errors having been found by means of formal tests, the next step is close analysis of the child's actual activities This may be done by direct personal examination. As in all testing, the child must be put at his ease and adequate cooperation must be secured by suitable preliminaries. He should be told that you are going to give him some arithmetic problems and you want him to work them orally so that you can see just how he does them. Problems should be selected from any suitable list; or a standard individual diagnostic test, e g, that of Buswell-John, may be used The first problems should be very easy ones, which the child will certainly solve The examiner should make a complete record of the child's own verbalization of his process in solving the problem, and also a record of such things as counting fingers, tapping, and the like. If the child neglects to speak aloud while he is working he should be reminded, or, perhaps better, he should be asked to relate after he has come to a solution just exactly how he reached it By starting with very simple problems in each of the fundamental processes and working through to the point in difficulty where the child is unable to respond, the examiner has a record not only of his methods of work but also of his limits in terms of difficulty.

REMEDIAL WORK

In most clinic situations the psychologist's connection with corrective work will be limited to recommendations These will first include aspects related to conditions not primarily associated with arithmetic. Thus the child's abilities as found by intelligence tests may enable the clinician to suggest limits in achievement and so save unnecessary labor in attempting to teach fractions when the child can probably not go much further than short division. Factors of physical condition, home circumstances, or perhaps general attitudes between the child and the school should all be considered before direct remedial teaching is undertaken.

The remedial teaching directed toward the difficulties found is the task of the classroom teacher or a special teacher, and under ordinary circumstances c[illegible] He can supply [illegible] child actually uses, and perhaps make some suggestions as to how they might be removed As yet, however, there is no standard list of remedial procedures that will correct all of the possible difficulties encountered. There is no objection to giving remedial work to small groups of children if a sufficient number of them exhibit the same sort of difficulty to make the group teaching economical One generalization may be made; that is, it is unnecessary and uneconomical to teach [illegible]. Beyond that, corrective work depends [illegible]

Chapter VII

SUPERIORITY

IT MAY seem anomalous to devote a chapter to the superior child in a book otherwise devoted to undesirable deviations However, such discussion is justified because psychological clinics are frequently called upon to examine, and advise on the treatment of, superior children. Furthermore, to have superior children referred because of undesirable behavior, even including school failure, is by no means unknown

In contrast to feeble-mindedness at the other extreme of the distribution of intelligence, there is little question concerning the definition of the superior child. At no period in the world's history has there been a lack of recognition of superiority, but such recognition has had to wait upon outstanding accomplishment usually evident not earlier than adolescence and sometimes not until late adulthood. The widespread use of intelligence tests soon indicated the existence of more children with better than average performance than might have been expected from the incidence of famous men and women in the history of the world Thus, the very beginnings of the investigation of the superior person were bound up with psychological methods, with the result that the accepted definitions are almost exclusively psychological By common acceptance an I Q of 110 on a test like the Binet is taken as the minimum performance indicating superiority An IQ delimitation of this group is usable, whereas in defining feeble-mindedness it was not. This follows in part from the fact mentioned earlier, that a test score may be too low, but is seldom too high Therefore, an IQ of 110 indicates the child is probably not below this level More rigorous criteria have been proposed, as we shall see in connection with diagnosis.

Superior children appear in psychological clinics for three main reasons. First, they may be referred because of behavior not apparently related to the superior ability, but falling into almost every other class considered in this book. Secondly, they are referred because parents or teachers recognize their superiority, and want advice on

educational or vocational programs. Thirdly, they are referred by teachers or parents for the purpose of establishing the fact or the degree of suspected superiority Before considering the more specifically clinical aspects of the problem we may give some picture of the condition in general

Causes and Characteristics

The causes or reasons given for superiority parallel closely those to which feeble-mindedness is ascribed. Consistent findings that superior children come from superior families have, of course, been taken to substantiate the thesis that hereditary factors are causal Such a conclusion is not a necessary consequence inasmuch as the obvious factors of social inheritance are seldom controlled or corrected for. Regardless of the interpretation, there is no doubt that available data show the preponderance of superior children coming from superior families. In Terman's (1925) classic study two or more superior children came from 82 families, this is some 1200 times as many as chance expectancy The siblings of the children in his group averaged around 120 and 130 I Q, whereas siblings of unselected children would average around 100 I Q Galton (1869) found that 977 very eminent men from a population of about four millions had 535 equally eminent relatives; on a chance expectancy this number of unselected men would probably have about four eminent relatives.

The homes of superior children are usually found to be superior. The home ratings on such a scale as the Whittier are high, and the children live in better neighborhoods. The occupational status of the father is usually high, Terman's figures given in Table XXXIII being typical of most studies. The parents have more education, the figure commonly found showing an average of 12 or 13 years in school for both fathers and mothers.

Table XXXIII —Occupational Status of Fathers of Superior Children (after Terman)

Occupation	Per Cent
Professional	31 4
Semi-professional and business	50 0
Skilled labor	11 8
Semi- and slightly skilled labor	6 6
Common labor	0 13

While the evidence available indicates that superior children come largely from superior families and superior homes, there is as yet little reason for using these data to support either an hereditary or an environmental theory of causation The exception to the rule—like Ralph, a boy studied at the I. U. Psychological Clinic who had a Binet I.Q of 180, who lived in an average middle-class home, whose father was a grocery store clerk, and whose grandparents were in no way outstanding—would appear to invalidate either hypothesis.

As a group, mentally superior children show superiority in many other directions. We may briefly summarize the findings from Terman's group as typical These children showed physical superiority in anthropometric measures, in health status on examination, and in health history Educational accomplishment was of course superior, although not so much so as the I Q 's might lead one to expect This is probably to be attributed to the school and not the child. Their school preferences were expressed for abstract subjects, and their interests in general emphasized reading, hobbies, especially collections, more mature play interests, and so on In character and personality traits, as measured both by standard scales and by participation in group activities, the superior children were found to be decidedly above the average of unselected children.

In summary, the picture of a group of children selected because they exhibit extremely high I Q.'s is one of general all-round superiority It must be carefully noted that such a picture is for a group and that individuals may show variability in specific directions that may rate them below the average Therefore, guidance of the individual must rest upon the conditions of that individual and not upon the average condition of the group

In a subsequent study Burks, Jensen, and Terman (1930) found that after seven years the general picture of their group had not changed In most cases all the promise inherent in the earlier examinations had been fulfilled Similar findings by a number of other investigators indicate that the common belief that early superiority is apt to fail or "die out" should be relegated to some limbo of erroneous popular beliefs. Such findings strengthen the reasons for careful guidance of superior children, because without guidance there is a great possibility that they will not make the most of their ability Failure to do so means a social and economic waste.

Diagnosis

While the modern definition of the superior child is usually based upon test performance, there are other criteria which are useful for selecting the more intelligent children in a group, or in conjunction with test results.

Factors relating to the child's school work are very useful Terman found that being the youngest child in a given class was a better sign of superiority than any other criterion. Teachers' judgments of superiority are even less reliable than their judgment of intelligence in general. Varner (1922) found that teachers selected from 50 to 60 per cent of the dull children in their classes, but when asked to select superior children they selected only from 20 to 40 per cent. As class marks are to a great extent teachers' judgments, they cannot be taken as too weighty evidence of superiority or its converse. Agreement between the grading of two or more teachers increases the validity of class marks as a criterion. Active and interested participation in extra-curricular activities, especially the intellectual sorts such as journalism, language clubs, hobby clubs, and the like, is also indicative.

Another very significant sign of superiority is an active curiosity or inquiring interest Such interest in the small child is shown by the frequent, almost constant, "Why—?" "How—?" "Where—?" "When—?" In older children it is shown by active investigation of things—trees, animals, machinery, stoves, and what not—as well as in planning and construction. Furthermore, in most superior children it manifests itself in reading for information A two-month record of reading kept by children in Terman's group showed that the typical gifted child of seven read more books than the normal control children of any age up to fifteen Their reading included more science, history, biography, travel, informational fiction, poetry and drama, and less adventure, mystery, and emotional fiction, than did the reading of the control group Superior children also make greater use of dictionaries and reference books

While the establishment of the fact of superiority may be possible on the basis of criteria such as the above, the determination of degree must rest upon test performance Discussion of the I.Q.'s of superior children usually refers to such values determined by the Binet test. In his group of 995 children used to standardize the Stanford-Binet,

Terman (1916) found that twenty per cent had I Q 's of 110 or above While such individuals represent a group superior to the general population, those near the lower border would be only equal to, or even inferior to, the average professional or successful business men in ability Therefore a higher minimum boundary is necessary for delimitation. Such boundaries have been selected by different investigators at 115, 120, 130, and even 140 I.Q The approximate frequency of children at these higher I Q.'s is shown in Table XXXIV

TABLE XXXIV.—FREQUENCY OF OCCURRENCE OF SUPERIOR I Q 'S

I Q	Occurs		Reference
	Once per	Times per 1000	
110 or better	5	200	Terman (1916)
116 " "	10	100	"
122 " "	20	50	"
125 " "	33	30	"
128 " "	50	20	"
130 " "	100	10	"
140 " "	200	4 or 5	Terman (1919)
150 " "	400	2 or 3	Terman and Burks (1933)
160 " "	2000	less than 1	" " "
140–149	550	1 8	Terman (1925)[a]
150–159	850	1 2	"
160–169	2400	4	"
170–179	6000	17	"
180–189	14000	07	"
190–199	84000	012	"
200	168000	006	"

[a] These values have been calculated from Terman s data, which were based upon an actual survey of 167,812 children He suggests that as many as twenty per cent of superior children might have been missed by the survey method used As [illegible] to change them on this assumption The higher values may [illegible] ollow a true normal distribution there would be only about [illegible]

While the conventional estimation of the degree of superiority is based on tests of the Binet type, gifted children usually show high performance in all types of test However, their performance on non- [illegible] evidence of the degree of superiority.

Another series of diagnostic problems that may occur with greater frequency than the mere determination of superiority are those aimed at discovering reasons for lack of an adjustment to school or society.

Most such problems of maladjustment are due to a lack of appreciation of the superiority on the part of teachers, parents, or even the child Once the fact of superiority is established, the clinical search must be directed to the accumulation and critical interpretation of data concerning behavior and attitudes of the child under his teacher, parents, and associates A simple enumeration of some possible sources of difficulty is suggestive of desirable clinical approaches·

1 Lack of teacher's recognition of superiority leading to an antagonism toward the school as an institution

2. Lack of parental recognition of superiority with resulting lack of stimulation or positive discouragement.

3 Superiority over available associates so marked that social adjustment is extremely difficult.

4 Development of poor study or work habits because of lack of stimulation of classroom work

5 Development of misdirected, narrow or undesirable interests because of lack of guidance

6 Possible interference of sensory or motor defects with full accomplishment.

7 Development of inferiority feelings because the child's interests and activities are not socially recognized by his group

8. Development of a boastful, conceited personality because of unwise emphasis by adults.

9 One-sided personality development because of lack of normal social activities resulting from parental intervention or from number three above.

This list in no way exhausts the possibilities of difficulty that may be found in superior children The clinical examination of such children should follow any suggestion for examination made elsewhere in this book.

The following case, abstracted from an excellent account published by Warner (1930), illustrates a case of school failure in a superior boy This boy was failing in the fifth grade, in spite of the fact that his mental ability was that of about sixteen or seventeen That his poor work was the result of the school's attitude is shown by his decided improvement when placed in a special class.

Case Number 18 (Warner, 1930). Eugene, brought to Dr E. J Emerick, Director of the Bureau of Juvenile Research, for a neuro-

psychiatric examination, was eleven years and eleven months old Had done failing work in fifth grade for two years, but following the rule of but two years in one grade, was promoted to the sixth Was doing failing work in that grade when examined Eugene had a defect in vision due to far-sightedness Glasses had corrected this and the oculist said that use of his eyes need not be restricted

Eugene's father was a college graduate with grade A records. His mother a normal school graduate, intelligent and apparently stable The father was killed in an auto accident when Eugene was eight years old and he and his mother lived with the maternal grandparents. The grandfather was an active business man and thought Eugene should be left to work out his own problems and not petted or spoiled; that he was not unusual, and should have no special privileges He admired the boy and was fond of him A young uncle played the rôle of older brother Eugene's mother worked in her father's office Eugene helped his grandmother at home He was happy in a good home situation and presented no problem except when required to do school home work

His school teachers reported him as doing his best work in history; he was especially poor in "hand work" and his deportment was always poor He attended school regularly but was often tardy. For the second time he was being expelled from school. His teachers had conferred and come to the conclusion that he was mentally low, morally unclean, and a hopeless disciplinary problem. He would squirm, chew pencils, go through contortions and throw himself out of his seat, would disobey the teacher and annoy the other children—who did not seem to like him.

Eugene's own report was to the effect that he caused trouble by not minding, and he failed his grades because he did not work He said he was anxious to answer questions in class, would get restless waiting to be called upon and would "get to moving around a lot."

The pathological and physical examinations showed Eugene to be in good health, his responses quick and often nervous, with many purposeless movements

His mental and educational examinations showed startling results. His educational test did not rate him below seventh grade (at a time when he had failed fifth and was failing sixth grade) Stanford Achievement was one year and four months higher than his chronological age. Stanford-Binet was seventeen years and one month, giving him an I.Q of 142 and a ranking of superior mental ability.

During the testing Eugene seemed nervous. He jumped at sud-

den noises, his actions were quick, and his motor control poor He showed indications of instability, although his reasoning was logical.

He was accepted as day pupil in the School for Psychopathic Children at the Bureau of Juvenile Research The clinical teacher in the school said she had a hard time to keep him busy "He works so rapidly and has so much energy" "He soon devours any assignment given him He is very active and wants to be doing something all the time. He quickly exhausts a task and is ready for another The clinician feels that nothing has yet been presented him which will tax his powers enough to keep him busy He has ample time to keep ahead of the group and at the same time entertain them He wiggles constantly in his seat, jingles nails in his pockets, taps on the floor with his feet, in fact, does anything except be quiet He is apparently unconscious of his actions"

He liked the school, was never tardy, presented no disciplinary problem and did home work with a zest His arithmetic seemed hard and showed lack of having learned fundamentals He used trial-and-error method for the four processes His own comment was that he did "them every way" He was actually at this school less than six months—being out six weeks with influenza—and his test records at the end of his term showed an increase of grade equivalent exactly one grade and education age 11 years, and a mental age of eighteen years From here he went to the seventh grade of a neighboring junior high school He mastered arithmetic and made the football team. He left with the highest arithmetic grade of his class—that of 99

The three cases following illustrate the possibilities of poor school work and personality disturbances arising in superior children because of attitudes in the home In each case recognition of the child's superiority and a change in the parental attitudes resulted in satisfactory adjustments

Case Number 19 (Marcus, 1933) I am reminded of a nine-year-old boy of superior intelligence who was doing average work in the grade proper to his abilities. In the classroom he appeared abysmally unhappy, and daily besought his teacher to tell his parents that he really tried to do his work His anxiety was unrelieved by the teacher's reassurances, and finally, when the parents complained to her about the child's "mediocre marks," she referred them to the visiting teacher. The latter soon learned that both parents were continually punishing the boy for his willful failure to repeat the dazzling performances of his older brothers and measure up to old family traditions of intellectual brilliance. She told them that the child was doing good work

and presented no problem on that score Concluding that the trouble lay in the parents' relationship to the boy, she attempted to inquire into the family situation. Here they balked her as she had just balked them. She had denied their problem, now they denied hers According to their stories, there were no difficulties in family relationships Having disposed of this topic, they returned to their own immediate preoccupation. All the mother wanted was to have the boy cured of the laziness which prevented his following his brothers' phenomenal example The father felt that the only problem lay in the child's refusal to profit by home tutoring and in his lack of respect for the family's academic standards In despair the visiting teacher turned to the child himself He told her that he *knew* that he was stupid and that he must do better, and asked her, as he had asked the teacher, to tell his parents that he meant to try The visiting teacher assured him that he wasn't stupid and made an effort to find out from him something about his relations with his family, but he said that everything was all right at home He, too, persisted in returning to a problem that the visiting teacher could not see as real

Thus the case was blocked for a time by the fact that the parents and child, on the one hand, and the visiting teacher, on the other, had opposing opinions about the nature of the problem The struggle between the contending factions continued until the visiting teacher realized that a problem exists or does not exist according to the individual's feeling about it. Once she ceased to deny the problem as the parents and the child saw it, she was rewarded by the response she wanted The child, given the freedom to talk about his alleged stupidity, went on to discuss his parents' disgust with him, his brothers' taunts, his plan to run away, his wish that he were dead The mother, permitted to tell what was bothering her, revealed a secret she had kept from her husband, the existence of a feeble-minded uncle, and expressed her guilt about the possible contamination she had introduced into her husband's good family stock The father, in his turn, confided his suspicion that his wife was responsible for the child's obstinacy because she had spoiled him in his sickly childhood Thus, finally, the case was launched, because each member of the trio was talking from his individual feeling rather than from the theoretical basis the visiting teacher had had in mind

Case Number 20 (Regensburg, 1926) Take an unusually clear case of identification with, this time, a "bad mother" instead of an entirely satisfying one, in which the child, a girl of fourteen in third term of senior high school, is reported to be failing in Latin and

slumping generally in all her marks Her Latin teacher reported: "She is an average student, nothing exceptional She is serious, earnest, a hard worker, probably doing about the best she can In class, though she is attentive, she is passive, not alert, probably because her response is slow, not that she is dull As she develops, I believe she will improve as a student, but will never be brilliant" This seemed to throw light on the problem until examination revealed an intelligence quotient of 120 Evidently, then, Sarah was not doing the best she could The next step was to inquire into the social relationships of this girl in an effort to find the factors underlying the school failure, which was only one of the symptoms for which she was referred to the clinic

Among the essential facts for this aspect of her problem we find the presence of a mother of considerable intelligence whose life has been a series of thwarted ambitions in the educational field. Her desire had been to enter upon a professional career, and with that still in mind, she attends college evening courses while the girl views her efforts with contempt The mother, we find, has continually nagged this daughter about her school work, urging her to prepare for college and supervising her methods of study with exasperating attention to detail, while the girl ardently desires to make music her main study, but is unable to dominate the situation. What happened is of tremendous interest to the psychiatrist The mother has always been a splendid Latin scholar, and we find this capable girl failing in that very subject, identifying it with her mother, who is thwarting the child's natural desires and who, as an added insult, lavishes her affection only upon the younger sister We find further identification in the girl's spontaneous expression of dislike for the history teacher. The connection here lies in the fact that the mother, worried over her daughter's failing marks, had a particularly long conversation with Sarah's history teacher. As the girl herself put it, "I feel so uneasy when she (the history teacher) is around She and my mother had a talk about me and now she knows what my mother thinks and I guess she thinks the same" In other words, the history teacher now also becomes the mother, whose attitude toward her, the child feels, is unsympathetic and unfair. Sarah was quite sure she could make good marks in history if she had another teacher Instead of allowing such a change, the psychiatrist, of course, took up the matter of identifications as a mental-hygiene issue; a couple of weeks later Sarah's mark in a history test was 86 and her opinion was changed to read, "I don't know but what I like that teacher some after all" Furthermore, the patient gives full vent to her feelings about bright people in general, a protective device against all

who, like her clever, though non-understanding mother, may cause her discomfort and insecurity.

Case Number 21 (Regensburg, 1926) Take an instance in which the child showed comparative failure in both native intelligence tests and school achievement This child, a girl, ten years and two months of age when first seen, presented an unusually distressing social background. For the first four years of her life she was neglected, frightened, and abused by a mother who was in her turn driven by a tremendous emotional conflict The active abuse was later displaced for a time by a period of indifference on the part of the mother, until finally she became desirous of making a better adjustment and came to us for help At this time, the child was finding extreme difficulty in adapting to the presence of a younger brother and sister, who emphasized, unconsciously enough, her isolation from the mother. Upon coming to the clinic, she was found to be extremely upset and, in addition, unfit for fifth-grade work, her normal placement, though she obtained at that time an intelligence quotient of 115 Three years earlier at another clinic, when the problem had been not nearly so acute, examination had revealed an intelligence quotient of 128.

Study of her school record gives a history of inability to concentrate as early as her first school year In addition to this manifestation of an emotional problem, when she came to the bureau, Edith felt unwanted, thought she was no good, complained of unfair treatment, was jealous of her younger brother and unable to make friends, attempted to dominate by being bossy and demanding her own way, and ambivalently showed an overwhelming desire for friends and affection. She was growing seclusive, sat dreaming and sucking her thumb, was afraid of the dark, and had been stealing and then lying in self-defense She was failing school as a result of her inner conflict and inability to attend to anything but her emotional life, and of course was suffering great distress because of her younger brother's school success. Treatment was indicated and carried out for the mother before any change could be made in the child's reactions. Treatment for Edith herself consisted mainly in giving her insight into her feeling toward her brother and sister and her attitude toward school, as in neither the home nor the school setting did she feel any security At home she was keenly aware of her mother's partiality and favoritism, in school she felt her teacher to be unfairly critical. The child admitted that as a result she was not trying to study When threatened with demotion to her brother's class at one time during treatment, the child's distress was acute, her unhealthy

reaction being that if she were left back, she'd never study again. The insulting experience was avoided by a brief period of tutoring to which Edith responded very successfully When, after several months of treatment, she had to be transferred to a new school, she had reached the point where she could say: "I begin to understand that I am the biggest and can copy from my mother and father . . . When I get to that new school, I know that I am going to make friends all right. When I don't have just as good things, I won't mind." After the school transfer, she remarked to the psychiatrist, when questioned as to her daydreams, "I used to do it in that other school because I was so unhappy, but now everything is so much better I don't have to" A month later she had an excellent report card and was promoted at the end of the term That brings us, at the end of ten months of treatment, to the date of retesting, which gave the following result The Terman score obtained was an intelligence quotient of 136, a rise of twenty-one points over the previous testing Now just eleven years old, she was in high fifth grade, approximately normal placement for her chronological age, but of course considerably retarded for her mental age of fourteen years, eleven months. She made an improvement of two school grades on standardized arithmetic test, now scoring fifth instead of third grade. She obtained an eighth-grade, against a previous record of a fifth-grade, score in reading, though she did not improve on her previous fourth- to fifth-grade score in spelling It is obvious that the school situation cleared up with the better adjustment at home. As she felt assured of a place in her family group, assumed the responsibilities of an oldest child, and ignored opportunities to fight with the brother who was her nearest rival, the need to find satisfaction in daydreams at school and to identify her teacher with a bad mother at home dropped out of the picture The present finds Edith in a rapid-advance class where she belongs.

Management

The actual accomplishment of some superior children is so great that no effort should be spared to enable all such children to reach a similar accomplishment Hollingworth (1926) has summarized the histories of thirteen children having I Q.'s of 180 or more. Samples of the activities of these children include reading a fourth-grade book at the age of four and a half; having read 700 books by the eighth birthday; the reading of elementary English, French, and Esperanto by twins at the age of four; passing Harvard College Entrance Board

examination before twelfth birthday; M A degree at sixteen years; writing, editing, and typing a playground newspaper at seven years, devising a four-handed and three-handed checker game at ten years. These are merely samples of activities, many similar ones are related in detail With such possibilities as these, social wisdom would dictate the conservation and utilization of such human resources

The earliest source of opportunity, of course, is in the home. Frequent signs of superiority are pre-school interest and activity in reading, abstract reasoning, intellectual games and, perhaps above all, asking questions as a means of satisfying curiosity. In this last characteristic lies a rational convenient starting point for parental aid in the child's development Answer the child's questions, all of them, as completely as possible; and if you don't know admit it, but help him to search out the answer Some such dictum should always be a parent's guide The home should also provide books, which are the gifted child's chief tools If the parents are financially unable to buy books they should make full use of available library facilities Encourage the child's interests by furnishing tools and material for construction, by assisting with his collections, by making possible adequate social contacts, by helping him in every way to take advantage of his ability in carrying out his interests

A word of caution. superior children need freedom as well as guidance. Ambitious parents may do too much, may too carefully watch the child The story is told of one very gifted boy attending one of the largest universities, whose mother was his constant companion She went to classes with him, she ate with him, she took him to the library, she was his *alter ego*, she may well have been an incubus. Little wonder if this boy's abilities should fail to be evident in his vocational adjustments The gifted child not only needs intellectual stimulation, but he may need, even more pressingly, help in learning emotional control and social adaptability. John Stuart Mill is an excellent example of famous men whose early education was obtained in the home. His father undertook all his education, with the result that at four years he could read English and Greek and by eight years had read Herodotus, Lucian and Plato in the original. He was similarly advanced in all other academic studies Yet in his autobiography Mill expresses regret that the régime imposed by his father had consumed his childhood

Advice to parents of gifted children should be: help the child, stimu-

late him, guide him, but give him also opportunity to develop the independence and social skill that come, both of them, from as normal contact with his fellows as is possible For many parents the question of formal school training is a serious one "How young should the child start school?" "How much extra work should he do?" "Should he go to the regular school at all?" Questions such as these are frequently asked They can be answered for each child only in the light of his circumstances

The frequent difficult situation of the gifted child in the usual school is succinctly expressed by Osburn and Rohan (1931), who say,[1] "In the first place, granted that gifted children can learn without help, the fact remains that they are not left to themselves They are not allowed to remain out of school, as was Lincoln, and educate themselves without a teacher. Worse still, they are not allowed to learn in spite of the teacher. In the ordinary school the rule for the gifted child is. 'This much shall you learn, and no more If by chance you get through with your lesson before your fellows are through, fold your hands and wait quietly until all have finished studying'" That this is not an exaggeration could be shown in many published studies; one example will serve as an illustration Root (1921) describes a boy who at eight years had a Binet M A of sixteen years and therefore an I Q of 200 His aunt, in writing an account of the boy, says, "In the second grade he was forced to sit for twenty or twenty-five minutes, studying a reading lesson out of a book, which he could have read through in that time At home he was told to take some book to school, but the teacher refused to let him read in school, even the Cyclopedia of Common Things." But if we were to attempt to discuss the inadequacies of the usual school program for the superior child we should need a separate volume.

For those schools which are willing to recognize and attempt to meet the needs of the superior child there are four methods which have been shown to be practicable: (1) accelerated promotions, (2) enriched curriculum, with or without accelerated promotion, (3) increased extra-curricular activities, (4) special classes

1. *Accelerated Promotions*—Mort and Featherstone (1932), in their study of promotion practices in city school systems previously mentioned, found in the sixth grade of yearly promotion schools 27 per cent of children retarded, but only four per cent accelerated, and in

[1] Reprinted from Osburn and Rohan, *Enriching the Curriculum for Gifted Children* By permission of The Macmillan Company, publishers

semi-annual promotion schools 27 per cent retarded and eight per cent accelerated As intelligence has many times been shown to follow a normal distribution, these differences in percentage can be accounted for only by the reluctance of most schools to accelerate su-

teacher's inability to recognize superiority, and often her unwillingness to lose the more able children, are the least worthy. The most serious arguments against rapid promotion concerns the physical and social maladjustment that may follow. The seven- or eight-year-old is handicapped by his physical and social immaturity when compared with twelve- or fourteen-year-olds who are his intellectual equals With advancing age the discrepancy in age is less serious; thus the fifteen-year-old entering college with eighteen- or nineteen-year-olds is not too seriously out of place.

On the other hand, there is one decided advantage in acceleration. Modern preparation for professional work, taking, as it does, from seven to ten years of college and graduate training, makes it impossible for the usual student to become established in his profession much before the age of thirty. Superior children with I.Q.'s of 140, 150, or more might well be able to reduce this age five or more years if their whole academic career were condensed by accelerated progress.

Perhaps for most children a restrained use of acceleration with the use of one or a combination of the other three methods is a better all-round program In any event, the decision in a single case must be based on factors concerning that case alone

2 *Enriched Curriculum*.—The method of dealing with the education of the gifted child that is probably most practicable for schools in general is enrichment of the curriculum This may consist simply in the teacher making books and equipment available for one or a few children, or, at the other extreme, it may amount to a special class program. The latter we shall consider as a separate item. Enrichment of curriculum in the regular grades may involve cooperation of the home in the matter of special tutorial work in those cases where the family is financially able to afford such special teaching In any case, the nature of the extra work is a serious question.

One primary circumstance that makes extra work possible is the ease and speed with which the gifted child accomplishes the usual

required school tasks Experience has shown that children in special classes consistently complete the required work of a grade in one-half, or even less, the usual amount of time. In the lower grades where tool subjects constitute most of the work, drill is an almost absolute necessity This is true for the superior as well as for the average child However, the superior child requires less drill, which makes available time for extra work In higher grades, the whole program may, without interference with the rest of the class, be so modified that extra time is available The extra work may be done as individual projects in regular class hours, or at special hours On certain days in the week the gifted children might meet in groups, or, if the school program admits, the gifted child may be allowed to work at his own pace. Such administrative details can, however, be settled only by the school authorities. The home's cooperation in enriching the child's work may be directly with k be done during school hours, or it may be in the form of extra-school tutoring. In any case, enriched programs should be so planned that the work is not too heavily laden with bookishness, and the child is not deprived of the necessary social and physical activity

Hollingworth (1926) has an excellent discussion of curriculum enrichment methods, and our brief comments are greatly influenced by her work There is a disadvantage in using subjects from more advanced grades, e g., algebra, history, geometry, or Latin, as extra work because, unless the whole school system can be changed, the integration between successive grades is thereby destroyed. Where such subjects are used, it amounts to accelerated promotions Hollingworth proposes four types of enrichment that have a definite life value and at the same time do not interfere with the school program.

The first and most general of these proposals is to introduce the child to a consideration of how man got to his present stage of civilization. Such historio-social studies are nowhere treated as a unit in the school system Hollingworth presents a number of outlines for projects dealing with such subjects as food supply, laws, and so on. A second proposal closely related to the first is the study of biographies. In one public school in Manhattan, a group of superior children started to study biographies as an experiment for one semester At the insistence of the children themselves, this study was continued for two years The third proposed enrichment is of a somewhat different nature. It is the study of a modern foreign language, because for young superior children it is relatively easy and serves as

a valuable additional tool when they undertake college and more advanced work The fourth proposal, that the child be given training in art or music, depends to some extent on abilities shown in these fields which are not always equivalent to the general ability Art and music in the way of appreciation and interpretation are valuable studies for the superior child, and successful achievement is probably possible for most such children Training in performance may not be equally satisfactory

Other fields of interest offer great opportunities for additional work. More usually these fields have no place in the school's academic program and so are considered as extra-curricular. Thus, we are brought to the third method of enriching the superior child's work

3. *Extra-curricular Activities*—The inclusion of activities from extra-academic fields offers limitless possibilities for interesting and efficient utilization of the gifted child's abilities and time. Such possibilities are legion, and we shall not essay an exhaustive account of them. Osburn and Rohan (1931) have discussed at some length the administrative problems in the education of gifted children, and have presented plans in exhaustive detail for a number of extra-curricular activities Essentially, their program is the establishment of study and discussion clubs among superior children which meet regularly at times set aside for them from the regular school day. They discuss the programs for the following clubs: radio, newspaper, forestry, nurses, mechanics, salesmanship, teachers, and arts and crafts. This list includes only those clubs actually in operation in one school system Further activities of this type immediately suggest themselves, for example, nature study, automobile, aviation, stamp, and book clubs.

In many schools, educational trips have been used as a valuable addition to either curricular or extra-curricular work Such trips are made to the plants of local industries, to newspapers, large stores, museums, and other points of scientific and cultural interest These excursions probably have a greater value if they are integrated with the total program of classroom or club work Following the trip, a period is devoted to discussion by the children of things and methods seen.

4. *Special Classes*—Although there are a large number of classes organized for children of subnormal intelligence, special classes for superior children are relatively few In a recent survey of education, Foster, *et al* (1933), reported only 1834 superior children enrolled in special classes, while there were 88,885 subnormal children in special

classes and residential schools for the mentally inferior. The reasons for this difference probably are to be found in the reluctance of the school authorities to admit that they are not already dealing adequately with the superior child.

Other arguments against special classes for superior children have been urged It is claimed that such segregation from the average child will make it difficult for them to adjust later in either high school, college, or business life; by segregating the superior children, the other children lose the stimulation of having gifted children in their classes, jealousy among the non-selected children and class consciousness among the selected are contrary to democratic ideals. There is little cogency in such arguments Reports of the operation of classes for superior children uniformly negate all of them

On the other hand, strong reasons may be urged in favor of segregation. Children in special classes find adequate competition, often for the first time in their school career The possibilities offered for a program adapted to their abilities and directed toward an ultimate scholarly grasp of knowledge is perhaps the strongest positive argument The organization of such special classes must meet such problems as community disapproval, financial obstacles, geographical location, and a host of others which it is not the function of this book to discuss

In summary, probably the best method of dealing with the superior child is by well-organized and intelligently directed special classes. Where this is impossible, the psychologist may outline a program of work in which the classroom teacher and parents may cooperate.

Bibliographical Note

The classic study of superior children is that of Terman (1925), which was continued in the monograph of Burks, Jensen, and Terman (1930). A brief summary of their findings, with additions from other literature and an extensive bibliography, will be found in Terman and Burks (1933). Hollingworth (1926) has an excellent discussion of the whole problem. Of particular interest are her summaries of case histories concerning children with I Q's over 180. She also gives a very useful presentation of educational methods for use with the superior child Osburn and Rohan (1931) present an extensive account of an attempt to use extra-curricular activities for enriching the work of the superior child Stedman (1924) describes children and methods used in a special class for superior youngsters.

PART III

PRIMARY BEHAVIOR PROBLEMS

Chapter VIII

BEHAVIOR PROBLEMS INTRODUCTION

THERE is always a reason for referring a child to a psychological clinic In some instances, the reason may be only that the person referring him wants advice for educational or vocational guidance Except for cases of this type—which are relatively infrequent in clinics not organized for that specific purpose—all children referred to clinics have exhibited behavior to which someone has objected, or over which someone is concerned The complaint of the referent must always be based upon observed actions Therefore all children seen in clinics exhibit behavior difficulties. Such difficulties may be classed in three major categories: (1) those secondary to an inferiority or superiority in general abilities of the sort called "intelligence"; (2) those secondary to an organic disability, and (3) primary behavior problems, or those which are not based on either of the foregoing The first of these we have discussed in Part II, and the second will be briefly treated in Part IV Our concern in this section is with the third group.

The sources of, and reasons for, primary behavior problems are to be sought in the individual's reactional biography. Perhaps in this group of problems alone are psychological ontogenetic factors of exclusive importance Inferior abilities or physical defects will of course modify the sort of experiential history an individual may have, so that psychological ontogenetic factors have significance here also. But primary behavior problems are essentially the direct present expressions of such factors Thus the feeble-minded boy may steal; but his stealing is due in part to his lack of understanding, or his suggestibility, or some other thing characteristic of those with low intelligence Stealing in the mentally and physically normal child may, for example, simply mirror the behavior pattern of the home and neighborhood from which he comes In this case the stealing would be a primary behavior problem of one type. Similarly, temper, fears, food finicalness, lying, nightmares, and the host of other problems of behavior exhibited by children may—and probably usually do—

occur as the direct result of environmental interactions. Any attempt to differentiate types of problems in a final, theoretically absolute manner is doomed to failure. But for the practical problems of the clinic, useful distinctions can be made on the bases we have suggested.

Attempts at division become even more precarious when we essay a classification of primary behavior problems When the child comes to the clinic our starting point in examination, diagnosis, or treatment must be the complaint. And the complaint is always a statement concerning, or a description of, behavior If we consider a hundred cases of children who will not eat, we find that while the complaints are the same in all essential respects, the actual psychological problems may be quite different Efforts at grouping children into classes with similar problems from the point of view of complaint plus experiential history lead ultimately to a dichotomy One group will contain those children whose behavior is most parsimoniously explained as a direct patterning after the behavior of associates; e g, father does not like carrots, will not eat them, and takes every occasion to call attention to his idiosyncrasy, and his small son exhibits the same behavior In the other division will be those children whose environment does not afford any direct or obvious correlate of the behavior For example, the child will not eat carrots although everyone else in the family does eat and enjoy them. Therefore, we can hardly consider the child's behavior as the result of direct imitation or as correlative with the environment. However, his behavior does appear to be associated with the fact that an ill sibling is getting the parents' attention, or that by refusing to eat he can assert a superiority over the family that otherwise he lacks; or he expresses fear of the results of eating carrots; or in some other way the refusal to eat is only indirectly, if at all, associated with the eating behavior of those about him

From a pragmatic, clinical point of view a dichotomy of this sort is useful even though it may not be theoretically exact It must be noted that the classification is not one of complaints, i.e, of particular acts. The true differentials lie in the experiential history preceding the specific act or series of acts. Thus, the allocation of a certain type of problem—e g, refusal to eat, enuresis, stealing, fears, night terrors, stuttering, temper tantrums, truancy, masturbation, or what not—to one or the other class cannot be done with finality Rather, children exhibiting these problems are classified, and until some such classifying is done work with the child may be of little avail.

By way of example, we have suggested the distinction between the two classes, here we may state differentials more formally (1) *D[illegible] problems:* Cases are to be classed here if the [illegible] result of imitation of, or has patently been learned from, members of the social environment The actions complained of are the direct outcome of environmental forces operating upon the child. (2) *Indirect primary behavior problems* · Cases are to be classed here if it is evident from the history that an intermediate step appears between the influence of environmental situations and the complained-of activity. The direct result of the environmental forces here is the production of conflicts, apprehensions, fears, as well as attitudes and feelings of inferiority, inadequacy or insecurity. In short, they produce peculiarly self-related attitudes which in turn modify the subsequent environment-person interactions.

A further homely example of this distinction may be found in contrasting two boys who are exhibiting the same sort of undesirable behavior. One boy throws a stone through a store window He is pleased and amused by the loud noise and perhaps the excitement of the proprietor His mischief is wanton, not malicious It may be in perfect accord with the disregard for, or lack of recognition of, property rights found in his home or neighborhood This we would class as a direct behavior problem A second boy also throws a stone through a window, but his attitude is revengeful; he will get even with that proprietor for some supposed injury, or he is boastfully showing off before his companions Here the particular act is merely an overt way of showing the intermediate self-related attitude.

Previous attempts to classify behavior problems have established differentials on the basis of the conduct itself. Kanner (1935), in what is probably the most excellent text in child psychiatry, has divided problems into three groups · (1) those forming essential features of, or sequels to, physical illness, (2) those expressing themselves as involuntary part-dysfunctions; and (3) those expressing themselves clearly as whole-dysfunctions of the individual. Howard and Patry (1935) have essayed a classification which is imposing in the number of problems included, but which will not stand too close scrutiny in its details In addition to behavior resulting from organic disturbances and constitutional or developmental defects, they have a major group of "reactive disorders on the basis of emotional, situational, habit-

training and personality maladjustments" This long but somewhat redundant heading includes three generic groups: (1) habit-training problems, (2) aggressive or protest behavior, and (3) submissive or recessive behavior Psychoses, both psycho- and somatogenic, are treated as a major order of problems. Nosologies such as these imply a definiteness in etiology and therapy of behavior problems that does not exist in fact.

A dichotomous classification of primary behavior problems proposed by Paynter and Blanchard (1929) is less ambitious than either of the foregoing but is perhaps clinically more efficient These authors divide the problems exhibited by the cases studied into personality problems and behavior problems. Ackerson (1931) used this dichotomy with one desirable change in terminology, in his analysis of the problems presented by 5000 clinic cases He uses "behavior problem" as a genus, with "personality problem" and "conduct problem" as two species The differentials between these two as given by Paynter and Blanchard and quoted by Ackerson are: (1) personality problems are those which more directly affect the individual in his personal adjustments; (2) conduct problems are those which interfere with other people In extreme degrees the former are found in psychoneurotic and psychotic patients, while the latter are found in delinquents and criminals The author freely admits that this scheme is the starting point for the division we have described above, but exact adoption of the dichotomy had to be given up because it leads to serious clinical and terminological difficulties

Clinical difficulties are immediately evident when one attempts allocation of problems. Ackerson (1931) did this very extensively in classifying nearly 500 different problems One does not seriously question those problems listed under the "personality" heading But one does wonder why "selfishness" is conduct, while "self-centered attitude" and "self-indulgent attitude" are personality, or why "quarrelsomeness" is conduct, while "argumentative attitude" is personality Stealing is classed in the conduct group, so is nail-biting; the former does affect other people, the latter does not, at least in any material way Thus, there must be several reasons for classifying any particular form of activity in one or the other group On the other hand, as we have already pointed out, stealing may be the overt expression of a personality difficulty, and nail-biting probably usually is There is hardly need to multiply examples to demonstrate that, while this scheme may be

useful for purposes of statistical analysis, it has many shortcomings when used clinically.

The terminological difficulties are perhaps not so serious; but they do introduce the question, "What is meant by personality?" This term is used so generally in dealing with certain types of problems that we must have clearly in mind at least its two major connotations The broader of these connotations and the more technical definition may be illustrated by Kantor's (1933) statement: "Personality may be defined as the totality of a particular individual's reactions, in sum, everything the individual does and can do This series of reaction systems we may refer to as the behavior equipment of the individual Every psychological personality comprises a tremendously large number of reaction systems which in various interactional combinations constitute the individual's information, skill, abilities, and capacities" Other writers have emphasized the integration or the patterning of the totality that is personality. The essentials of statements made by various authors might be condensed to a definition expressed as follows. *Personality is the integrated totality of an individual's characteristic reaction tendencies* A technical definition such as this includes all of the reactions of an individual: emotional, temperamental, social, moral, religious, "instinctive," motor skills, abilities, capacities—in short, everything the individual does and can do In fact, the connotation becomes so broad that it is an almost unworkable clinical concept.

In a more limited sense, "personality is taken to mean the essential integration of the individual in terms of his own needs and goals It refers primarily to inner stability and as such may occur as cause or effect in adjusting the person to the world about him" (Stoddard and Wellman, 1934) It is in this more limited sense that Paynter and Blanchard use the word in the connection discussed above In this narrower connotation it is evident that we may meet personality difficulties, but we can recognize them only through overt behavior. Therefore, it is easy to confuse personality and conduct problems. In fact, it is impossible to ascribe any bit of behavior to one or the other except on the basis of ontogenetic history And thus we come directly back to the distinction we have already made between direct and indirect primary behavior problems

Classification

In the section above we have tried to show that attempts to classify problems are unsatisfactory, and that only children with problems can

be classified However, when we attempt a textbook discussion of children's behavior problems we are faced with the necessity of following some scheme. In order to do so, we are forced to make divisions of problems, and thus to classify them We shall essay a dichotomous type of classification for use here, similar to that used by Ackerson, even though it does not exactly conform to our previous classification of children with problems. This, however, does not violate what has previously been said, because certain types of action are more usually representative of direct problems, whereas others are characteristic of indirect problems. Furthermore, problems in the direct group are similar to those Ackerson calls conduct in that they are usually socially disturbing; conversely, problems in the indirect group, while they may result in socially disturbing behavior, frequently if not usually are found associated with behavior that is more specifically related to the person himself Thus, various delinquencies or eating difficulties, while they may be symptomatic of indirect problems, are socially disturbing, and therefore may be grouped together On the other hand, feelings of inferiority or fears affect the individual and his growth without being of much social significance. These forms of behavior may be a result of direct training, but they are not usually. These similarities allow us to group them together. If we follow the conventional designation, we can call the first of these "conduct problems" and the latter "personality problems." In using these terms we must be careful to understand their specific connotation in this connection and not confuse them with broader theoretical connotations.

We shall follow this plan and essay an outline grouping of the more frequently appearing problems or, perhaps more exactly, complaints. The first major group is conduct problems which are largely coincident with our "direct primary behavior problems." We may further divide conduct problems into two groups. The first would include such problems as enuresis, temper, masturbation, finger-sucking, nail-biting, and the like, which do not usually interfere with the legal and moral requirements of society These problems are more frequently recognized in the home, although some of them are important in the school situation. The second group includes those problems, such as stealing, truancy, destructiveness, and the like, which do violate the legal or moral requirements of society. While these may occur only at home and while they are usually to be traced to home conditions, they do make a direct claim on society We think of this second group as the

field of juvenile delinquency However, it must be kept clearly in mind that psychologically there is a difference only in degree between the minor problems about which a mother worries and the more severe problems about which the policeman and neighbors worry as well.

The second major group is the personality problems which are coincident with "indirect primary behavior problems." These are characterized by a lack of, or a minor and rather negative, social significance They are of far greater significance in terms of the individual's own development. Here also we may make two divisions. The first includes such things as daydreaming, worry, fears, jealousy, inferiority feeling, and the like, which interfere with, but do not preclude, suitable adjustment to reality The second division includes the more serious abnormalities, such as psychoneuroses and psychoses, which represent extreme attempts to avoid contact with reality

The following tabular summary illustrates the allocations made according to this scheme

I Conduct problems (direct primary behavior problems)

A Limited social significance

1. Particularly associated with home

a. Feeding difficulties excessive appetite, poor appetite, faulty and careless table manners, refusing to eat, refusing to feed self, gulping food, dawdling over food, food whims and fussiness, perverted appetite (pica), gagging and vomiting, swallowing air (aërophagia), regurgitation

b Elimination problems· enuresis, soiling (encopresis), constipation, diarrhoea.

c. Sleep disturbances· insomnia, restless sleep, nightmares and frightening dreams, talking in sleep, sleepwalking (somnambulism), irregular sleep, habits, inversion of the natural order of sleeping and waking, grinding teeth, drowsiness

d Sex problems masturbation, sex apprehension, excessive modesty, excessive sex curiosity, heterosexual interests and activities, fetishism, homosexual activities, other sex delinquencies or offenses

e. Nervous habits manipulation of the body, thumbsucking, nose-picking, putting things in mouth, nailbiting

f Temper tantrums: breath holding, over-inquisitive,

eccentric behavior, temperamental, disobedient, stubborn, impudent, incompatibility with parents and siblings, "nervous," excitable, overactive and irritable, irresponsible, careless, untidy.

g. Companionship problems few or no companions, difficulty in making friends, undesirable companions, irregular age choice, irregular sex choice, unpopular, non-cooperative, poor sport, play difficulties, refuses to play, plays poorly with other children, yields too easily to other children's persecution or teasing

2. Associated with home, school, and neighborhood
   a. Lying
   b Swearing, vulgar, obscene
   c. Fighting
   d. Destructive
   e Incorrigible (late hours, etc)
   f. Bullying, teasing, cruelty

B. Serious social significance. Delinquency
   1. Stealing
   2 Truancy
   3 Sex delinquency
   4. Begging and vagrancy
   5. Injury to persons—threats to harm or kill, and actual injury or murder
   6. Arson
   7. Suicide and attempted suicide

C. Speech problems

II Personality problems (indirect primary behavior problems)

A. Actively aggressive in mild or severe degree
   N.B These might include all forms of behavior listed under I, Conduct problems

B Submissive, withdrawing behavior
   1. Mild degree, making adequate adjustment difficult
      a Inferiority, lack of confidence· seclusive, bashful, shy, withdrawing, reticent, hypersensitive, self-conscious, dependent, easily discouraged, insecure, self-accusatory
      b. Self-centered boasting, dominating, egotistic, show-off, conceited
      c Jealousy
      d Fear, cowardice, anxiety and constant worry

e. Daydreaming, absent-mindedness
f Negative to others rejects affection, ungrateful, shirks duty, sly, secretive
g. Suspicious, paranoidal, feels slighted or persecuted
h. Listless, apathetic, lazy, lacks concentration and ambition

2. Severe degree, making adequate adjustment very difficult or impossible
a. Psychoneuroses
i. Hysteria
ii Psychasthenia
iii. Neurasthenia
b. Psychoses·
i Dementia praecox
ii Manic-depressive
iii With somatic basis.

A classification such as the above is, in some respects, too detailed In actual practice one seldom sees a child showing only one problem and that in a pure form. Furthermore, the frequency of occurrence of the various problems varies widely Some idea of the frequency may be secured by carefully examining Table XXXV, which has been made up from data presented in the references given in the first footnote The percentages for Groups 1 (except as noted), 4 and 5 are those published, the other two groups have been calculated by the present writer These percentages are not directly comparable one with another. Groups 1, 2, and 3 cover independent clinics to which children are referred from homes, schools, courts, etc, whereas the children in Groups 4 and 5 have all been referred by school teachers The figures for Groups 1 and 3 are the percentages of children exhibiting the specified problem whether it was a cause for referring or was discovered by the clinic. In Group 2 the distribution is based on the primary reason for referring only; therefore these figures are much lower than in any other group Groups 4 and 5 are children all referred from the same school system; these children were matched for chronological and mental age Group 4 includes children reported by their teachers as problems, the children in Group 5 were not considered problems by the same teacher. Blank spaces in the table indicate that the problem was not mentioned as occurring in that group In making the table the author has used his own judgment in combining the figures for two

TABLE XXXV.—PROBLEMS FREQUENTLY SEEN IN CLINICS

Problems	Groups[a]				
	1	2	3	4	5
Nervousness, restlessness	41	11	14	83	44
Disobedience, stubborness	40	12	34	36	6
Retardation in school	37	5			
Feeble-mindedness	31	1			
Temper display, tantrums	31	8	29	54	23
Listless, dull, lack of ambition	30				
Stealing	26	7		34	4
Childish, immature	25				
Fighting, quarrelsome	25	3		58	22
Enuresis	25	5	35		
Lying	24	6	o 4	56	6
Placement advice	24	3			
Poor school work	23	4			
Cries easily	22	2	6	28	19
Masturbation	19	2	10	4[b]	0[b]
Truancy, school	19	} 6 {		21	3
Truancy, home	18				
Sensitiveness, worry	18	3			
Shyness, bashfulness	17	3		42	52
Feeding problems	12[c]	5	28		
Finger-sucking, nail-biting	18[c]	3	18		
Sleep disturbances	11[c]	3	12		
Fear	18[c]	3	10		
Jealousy	4[c]	3	5		
Destructiveness	8[c]	1	5		
Speech difficulties	11	3	17		

[a] Groups *1*, 5000 cases, Illinois Bureau for Juvenile Research, Ackerson (1931), *2*, 3599 cases, Institute for Child Guidan[illegible] 929), *4*, 109 cases, problems and *5*, [illegible]

[b] T[illegible] per cent and two per cent suspected cases, respectively

[c] These percentages were calculated from the complete tables Ackerson warns against doing this, but these figures are indicative if not accurate

or more problems for certain groups to make them coincide with the items listed; he does not feel that this has lessened the value of the table.

While data on the frequency of various problems in children's clinics as shown in Table XXXV suggest the relative importance of the different problems, at the same time they conceal an interesting point Children represented in this table have been referred from many sources. The various referents or agencies might well have differences in opinion concerning the seriousness of the problem, but these differences would be concealed in this table. Data from studies by Wickman (1928), MacClenathan (1934), Martens (1932), and Stogdill (1931,

TABLE XXXVI.—SERIOUSNESS RANKINGS OF PROBLEMS BY DIFFERENT GROUPS

Parents[a]			Teachers		Educator-psychologists	Mental Hygienists	
1	2	3	4	5	6	7	8
MacClenathan	MacClenathan	Stogdill	Wickman	MacClenathan	Martens	Wickman	Stogdill
Stealing Lack responsibility Selfishness Lack cooperation Poor sportsmanship Jealousy Masturbation Lack consideration Lack courtesy Lack self-confidence	Stealing Lying Selfishness Temper outbursts Greediness Irritability Idleness Lack respect for authority Poor sportsmanship Aggressiveness	Stealing Masturbation Lying Cheating Unreliability Disobedience Obscene talk Playing with fire Swearing Cruelty	Heterosexual activity Stealing Masturbation Obscene talk or notes Untruthfulness Truancy Impertinence or defiance Cruelty or bullying Cheating Destroying school property	Stealing Temper outbursts Masturbation Nervousness Disrespect for authority Cruelty Lying Fear Obscenity Lack responsibility	Heterosexual activity Weep and cry easily Stealing Temper outbursts Cruelty Truancy Cheating Damage to property Bullying Deliberate refusal to obey	Unsocialness Suspiciousness Unhappy, depressed Resentfulness Fearfulness Cruelty or bullying Easily discouraged Suggestible Over-critical of others Sensitiveness	Depressed Fears Cruelty Constant whining Suspiciousness Nervousness Stealing Cheating Withdrawing Unreliability
Column							
1	3	2	2	3	1	1	0
2		2	3	4	2	0	1
3			7	6	4	1	4
4				6	8	1	3
5					4	2	4
6						2	4
7							5

[a] Column 1, parents who had had lectures on child training. Column 2, unselected parents from same district. Column 3, members of churches and clubs. See text for further details.

1933) throw some light on the question of possible differences In Table XXXVI we have listed in the order of their rankings the ten problems which each of the groups named in the table rated as most serious.

Consideration of this table quickly demonstrates that various groups have their own idea of what constitutes serious problems, and it would seem to follow that such opinions would affect their selection of cases to be referred to child guidance clinics In the lower half of the table are shown the degrees of communality between all possible pairs If we average the number of items in common for the four major groups of raters we find the following degrees of correspondence.

	Items in Common
Parents vs parents	2 33
Parents vs teachers	4 16
Parents vs educator-psychologists	2 33
Parents vs mental hygienists	1 16
Teachers vs teachers	6 00
Teachers vs educator-psychologists	6 00
Teachers vs mental hygienists	2 50
Mental hygienists vs educator-psychologists	3 00
Mental hygienists vs mental hygienists	5 00

The two groups of mental hygienists—Wickman's, consisting of 30 professional members of the clinical staffs of three child guidance clinics, and Stogdill's, consisting of 50 professional workers, largely psychologists—have five problems in common, but show little correspondence with any of the other groups The two groups of teachers—Wickman's, including 511 teachers in elementary schools in six different communities, and MacClenathan's, the staff of one elementary school—agree well in their choices, there being six problems in common. Martens describes her group of 24 educators and psychologists as being "specialists of state or national reputation who had done outstanding work in the field of child growth and development or related subjects" Although they had directions similar to those given Wickman's mental hygienists, i e., to rank in terms of seriousness to the future life of the child, this group had more problems among the first ten in common with the teachers' groups than in any of the other possible comparisons of communality With Wickman's group they had eight problems in common and with MacClenathan's group there were four in common This similarity, considered in the light of the source of Martens' study (based on work in a school clinic and published

by the U S Office of Education), might suggest that there were more educators than psychologists in her judging group, and that they may not have been far removed from classroom teaching![1] The averages given above are further evidence that this group resembles teachers more than mental hygienists. The three groups of parents—one of MacClenathan's having a series of lectures and discussions on children and their problems, the other being a comparable group from the same socio-economic class but not having the special work, and Stogdill's, comprising 110 club and church members—have surprisingly little in common with each other, nor, less surprisingly, do they have much in common with any of the other groups. The averages show that they agree with teachers more than among themselves, and with the mental hygienists least of all.

The evidence of these comparisons forcefully demonstrates that those groups which have the closest day-by-day contact with children find that behavior which interferes with *their* authority, *their* program, or with *their* ideals and beliefs is problem behavior. Only the mental hygienists, who do not, professionally at least, have a close day-by-day contact, recognize the seriousness of behavior which does not noticeably interfere with the smooth running of things

A further question of significance to those who work with behavior problems in children concerns the definition of a normal or non-problem child, or to put it differently, "Do all children exhibit similar types of problems?" Olson (1930) assumed that all children were problem children but in varying degrees. Grave (1935) reports that Dr. George Preston sent histories of children designated as normal by their teachers to a number of child guidance clinics and asked the members of the staffs to pick those who needed clinical attention The replies indicated that these mental hygienists considered that one-third of these children should have such attention Martens (1932) also presents data supporting this assumption. One of her proofs is a rank order correlation of .90 between "problem" and "non-problem" children in the frequency of occurrence of the forty-four problems in her list. Another, perhaps more significant and certainly more interesting, line of evidence is the comparison of behavior problem scores for three groups of children at the beginning and end of the experi-

[1] Further evidence in this direction is found in Martens' chart showing the ratings of the three groups. The curve for the educator-psychologist group parallels almost exactly that for teachers, but has no relation to the mental hygienists' curve

mental period. The pertinent data are shown in Table XXXVII. Each of the forty-four problems was given a weight, and each child was given as his score the sum of the weights for all problems he presented. These scores were then averaged for each group. The experimental problem group of 68 children was studied and treated over approximately a two-year period. The non-problem control group was matched with the experimental group for sex, C A, school grade, and I Q. As they were reported as not problems by their teachers they were not dealt with further except to get behavior scores The problem control group was made up of children originally reported as problems, but not treated for a variety of reasons Their first and last scores represent an interval of only one year, while for the other two groups the interval is approximately two years

TABLE XXXVII —CHANGES IN PROBLEM SCORES DURING A TWO-YEAR PERIOD (AFTER MARTENS AND RUSS)

Group	No of Cases	Years	1st Score	2nd Score	Diff	σ Diff [a]	Diff / σ Diff
Exper prob	68	2	247 3	184 7	62 6	18 77	3 33
Non-prob control	68	2	81 3	106 8	25 5	10 52	2 42
Prob. control	50	1	213 3	205 0	8 3	15 00	55

[a] The first two of the e values are calculated from Martens' data, but as she does not give the correlation between the first and last series of scores they have been calculated by the formula for non-correlated measures, therefore they are too high The last value is given by Martens

The data show that clinical attention significantly reduced the behavior problem scores in the experimental group, while in the problem control group the scores remained stationary The non-problem control group showed an increase in their score which approaches statistical reliability.

Recognizing the limitations of our survey, we may tentatively suggest three conclusions

1. Certain problems occur in the case records of various clinics with great frequency.

2. Various individuals and groups having contact with the child have different ideas as to what constitutes a problem, and different criteria of seriousness for a given sort of behavior

3 For our third conclusion we can do no better than quote from Martens: ". . all children really are 'problem' children in that they do now or may present overt behavior difficulties which should receive

attention looking toward early adjustment, and that overt problem behavior varies in degree from that which is close to zero to that which places a child in the ranks of juvenile delinquency."

Etiology

Successful diagnosis or treatment of any of the many problems we have thus far mentioned rests to a large extent on a full appreciation of the many etiological possibilities. In this particular place we are disregarding certain problems which are secondary to other conditions, as has already been mentioned In regard to the primary behavior problems we find that all factors of etiological moment are present in the reactional biography of the child. All of his behavior experiences, his interactions with members of his family group, with teachers and classmates in school, with playmates and other members of his neighborhood, and to some extent with inanimate objects of his environment all play a part of greater or lesser prominence in the development of his behavior patterns, whether they are acceptable or not The possibility of the home, school, and neighborhood influencing the child's development is of sufficient importance to warrant more extensive treatment.

Family Relationships

To assign a single factor as the cause of a behavior problem is an impossibility. We know certain things about the development of personality and the effects of its disturbances upon conduct, and we know something about the development of poor conduct patterns. Nevertheless, in the individual case we cannot depend upon generalities We must know a good deal about the child and the people with whom he comes in contact And we must know much more about them than may appear on the surface

Among all of the factors that are pertinent to the development of personality and conduct, those associated with the home are of supreme importance The child's relation to his parents, to siblings, and to other persons in the home, the parents' attitudes toward each other and toward the child, unfortunate ideas about child training held by parents, unsatisfactory material aspects of the home—all of these and a host of others play important parts in the child's development.

When we consider that the human infant for several years after birth is almost completely dependent upon his parents for his physical

needs, it at once becomes obvious that this means close interactional relationships between the child and the parents A large share of the basic segments of every individual's reactional biography is formed during these earliest years. The importance of this early period Kantor (1933) suggests in the following paragraph:

"This equipmental development begins long before school age, however. From the very earliest days of its life the organism keeps building up reactions that remain as characteristic traits. Indeed, some of the most typical behavior traits are developed through such subtle and unobserved interactions that they seem inevitable and quite ineradicable. When and where did this child acquire his particular temperamental responses, his obstinacy, and his kindliness? Only when we observe the detailed course of the individual's interaction can we discover the growth of such basic equipment. When we do so we can readily appreciate the subtle influences of the parents and other persons with whom the child is in contact" With this idea of the importance of the family to the child's development in mind, it is necessary that we point out in a rather general way those elements and relations within the family that are known to have or may reasonably be expected to have some influence on the child's growth.

The first question to be answered is how are we to define the family. Sociologically, this group, in western European culture at least, is thought of as consisting of a father, a mother, and their children, This relationship is undoubtedly true of the large majority of family units However, from a psychological point of view, especially when we are considering the influence of this institution on the child, it would appear that, in some cases at least, more elements must be considered For instance, a grandparent or grandparents often make their regular home with the family On occasion other relatives may live in the home Both of these groups may live in very intimate contact with the parents, the children, and the problems that arise in their relations In some homes we find boarders who may be merely unsettled members of the household, but who in other homes may play a rather significant part in the family constellation. The same things are true in connection with servants. Those servants most directly connected with the child should probably be considered of great importance. Damian Carbon (1541) recognized this nearly 400 years ago when he said, after enumerating qualifications for a wet nurse, "All these requirements are necessary because the child will get his

habits from the nurse more than from his father and mother" As all of these people on occasion may and do play significant parts in the family, we shall define the family as consisting of the parents and children, plus all other people who live with them with some degree of permanency

Another question which must early be considered is that of the major types of relations existing between the adults and children in a given home. The most immediately obvious relationship we call physical. In this we would include all those things connected with the feeding, clothing, sheltering of the child, supplying him with toys or tools for activity, and possibly certain types of physical contacts, as, for example, corporal punishment In so far as we are concerned with behavior, this physical aspect of the relationship is not of primary importance; we assume for our discussion that the child has a sufficiency of these material comforts This does not imply that all children do have them; but when they are lacking they introduce other problems which we shall consider later in more detail In one connection these physical relationships are significant, that is when they are overt indications of parental attitudes Sayles (1925) tells the case of Mike Romano, whose father's attitude toward him is nicely made evident by the fact that he would not buy new clothes for Mike but could afford them, and did buy them, for his other children On the other hand, Mrs. Wiggs of the Cabbage Patch had little to give to her children, but that little she gave in such a way as to indicate the harmoniousness of the household.

The other major type of relationship between adults and children we might call attitudinal, or perhaps psychological, or psychosocial. By this term we mean such things as attitudes, beliefs, interests, etc., that exist in and among the various members of the family group Specifically, it would include training problems, love, encouragement; or, on the other hand, dislike, solicitude, neglect, and the like

In the following discussion we shall not concern ourselves with the first of these relationships. In considering the second, we shall divide the problems according to the following scheme

I Adults *per se*, i.e., the consideration of adults as individuals, as well as the relationships existing between adults

II Adult vs. child. This includes the relation of the adults to the child as well as the child's relation to the adults

III Child *per se* Here we will consider the relations between

siblings both real and pseudo, including the step-siblings, or other children living in the home

I Adult-adult Interactions

Mother and Father—Among all the adults in even the most complex situations, the mother and father stand out as of probably the greatest importance It is they who have the most intimate contact [illegible] early years and perhaps throughout a good share of his childhood To quote again from Kantor (1933): "The persons with whom the infant is in first contact are the members of his family The direct auspices of basic behavior, therefore, are the circumstances of family life It follows, then, that the psychological nature of the individual definitely mirrors the kinds of objects found in his particular family and correlates highly with the activities of the family members. In other words, the kinds of abilities, beliefs, attitudes, speech, likes, and dislikes of the individual definitely represent the psychological status and conditions of the family in which they are developed. Study a child thoroughly and you understand the parents."

Since there can be no doubt of the importance of the parents, it is essential that we know rather thoroughly a good deal about them. The father and mother each have their own ways of behaving, their own attitudes and beliefs, their own personalities. And as they affect their children, so their parents have affected them in childhood The cases presented by Maude Watson (1932) illustrate in an excellent way the influences of the parents' life on the child's behavior

The most obvious data regarding the parents concern their condition at the time when the child is being studied The usual division of labor in our social culture results in the mother taking care of the home and being in much closer contact with the children Sometimes, however, economic necessity requires that the mother work, thus making it necessary for the children to be left alone or in the care of other people during a good share of the day The social interests and activities of the mother at the other end of the economic scale may result in the same lack of contact with the children.

The father, as breadwinner in most families, is out of contact with the children most of the day. Nevertheless, he should have a rather definite function in relation to his children, but he often fails to exercise it A rather quaint expression of the father's relation to the family, published in 1839 by T H Gallaudet, may be quoted with equal

force today: "How often has the faithful wife to conceal her disappointment, and sometimes to suppress her tears, while, after toiling to render *the only hours of the day* that bring her husband and the little ones whom they love together, the occasions of happy domestic enjoyment, of mutual improvement, and of a father's instructions and discipline, she finds him full of restless impatience to have the meal ready even before the appointed time, hurrying through it himself in silence, or, if speaking, using only the necessary household words, with an occasional suggestion to others to make that dispatch, of which he sets so striking an example. The children, too, have been made ready by maternal care, neat in their appearance, and smiling in their looks, to greet on his return one whom they reverence and love, and to gain, if possible, a few moments of his attention. But business presses,—letters must be written,—customers must be secured,—bargains must be made,—money must be saved or accumulated,—and the wife and children are neglected Had not the father better be the poorer at the end of the year, by some hundreds or thousands, than thus to sacrifice to mammon the dearest interests of the little flock which God has entrusted to his care?"

As we have said earlier, the psychological attitudes of the parents are a result of their experiential history. This, of course, means that their childhood and those factors in the reactional biography there laid down must be of importance in their present condition The father whose earlier home was dominated by a stern and perhaps cruel father, may carry that same sort of behavior into his relations with his own children. It is expressed in the often heard "When I was a boy I had to toe the mark; it didn't hurt me none and my boy's gotta do the same" Sometimes with the same early environmental conditions the result is quite the opposite; here, because of unpleasant childhood or lack of opportunity, the parents take the attitude that their children are not going to have to endure a similar childhood. (See Case Number 42.) Furthermore, the formal training of the parents may be a factor in the way in which they meet many problems—social, economic, psychological.

The earlier experiences of the parents may be evidenced by their own personality deteriorations, and, without doubt, these undesirable conditions will have their influences on the manner in which the parents treat their children. (See Cases Numbers 23, 25) For example, Dexter (1928) reports the case of a boy who was unwholesomely in-

terested in religion and particularly in religious practices. Although the mother denied that the boy had ever been encouraged in this, the fact that she had been thwarted by her parents in a desire to enter a sisterhood and had herself shown undue interest in church affairs quite readily explained the boy's withdrawal from normal social activities. (See Case Number 45.)

More extreme kinds of personality disorders in parents have been shown to result in similar behavior on the part of children Levy and Patrick (1928) have studied the behavior of children of parents who were subject to periodic headaches and fainting spells The results indicated that parents who had fainting spells were most likely to have children who fainted or who exhibited breath-holding or head-banging, while parents with periodic headaches appeared to have children who exhibited similar difficulties Myers (1929) contends that children of parents who have attitudes of suspicion or superiority develop similar attitudes

Marital Relations.—In addition to the influences exerted by the individual parent, the attitudes and conditions between the two parents have been shown to be a fruitful source of troubles in the child. At the most favorable extreme we find a desirable type of relation between the parents which is well expressed by Mrs Dummer (1921): "The essential home of the child lies in the attitude of the parents toward each other Jealousy, hypocrisy, antagonism between parents may cause in their children mental retardation, physical disease, or delinquency. Mutual understanding, harmony in love, create an atmosphere more important to the development of children than food or raiment Should a mental conflict or emotional shock occur to a child from an outside cause, a home atmosphere of freedom and trust is apt to dispel it A frank revealing of emotional conflict helps to restore the child physically, mentally, and morally.

"These are not the vague dreams of a visionary, but have been practically proven time and again in mental clinics in our courts, by psychiatrists in sanitaria, and often through the intuition of friendship. So long as there are parents there will be opportunity for further evolution of those physical values of love which are the home, which nourish the child, permitting healthy growth of his personality.

"The development of the child depends not so much upon the quantity and quality of good, as upon the digestion of that taken

'Better a dinner of herbs where love is than a stalled ox and hatred therewith'"

This harmoniousness implies a give-and-take attitude on the part of the parents Successful marriage involves, to some degree, the subjection of one's own desires, beliefs, and interests to those of the partner. All too frequently we find a lack of recognition of this necessity. The result is that one or the other parent tends to dominate in a greater or less degree, and this domination quite easily and naturally extends to domination of the whole family

As a result of domination by one parent, or for other reasons, we may find quarreling and discord between the parents This may take the form of rather subtle attitudes of one parent toward the other, or it may be sufficiently extreme to become evident in actual combat In any case we might speak of such parental relations as constituting a broken home in a psychological sense, although there may be no actual separation We do not know definitely what influence subtle discord may have upon the child, but certainly overt quarreling does influence his behavior

The next step in the disintegration of a family would be a complete break evidenced by actual separation Such homes are usually spoken of as "broken homes," but it is necessary to make certain distinctions On the one hand, the break may come about as the culmination of a period of discord and dissatisfaction; on the other, it may occur because of the death of one of the parents Each of these presents its own problems in the light of the child's development The possible effects of broken homes have been shown again and again in studies of the frequency of the condition in the families of juvenile delinquents It is hardly necessary to quote such references at great length, but the figures from Burt (1925) are representative He compared matched groups of delinquents and non-delinquents in the city of London, and found that various kinds of broken homes were about four times as frequent among the delinquents as among the non-delinquents

Homes broken by separation or divorce usually present a history of discord and dissension over a longer or shorter period preceding the actual separation. To this the child has of course been exposed, and he may react to the final break as the passing of even a modicum of security Through the preliminary period and at the time of separation the child is frequently torn in his loyalty to his father or mother, and

unfortunately may be quite unable to understand why the stability of this very important part of his environment should so suddenly be lost.

The loss of one parent by death probably presents quite a different psychological problem There is, of course, depending somewhat on the age of the child, more or less severe emotional disturbance, both from the loss of the parent and in relation to the other parent's emotional reaction However, it is unusual for a period of discord to precede death Burt gives some interesting figures which suggest the differences in reaction of the child to these two types of broken home. For example, the average frequency of father being dead per 100 delinquents is 12 2 and the similar figure for the non-delinquents is 12 5 For the father separated or divorced the frequency is 9.1 for the delinquents and only 0 2 for the non-delinquents The mother's death shows a quite different relation, as in the delinquents the frequency was 13 7 while among the non-delinquents it was only 4 0.

There is a third type of separation, perhaps of less frequency than the first two, which is brought about by the father's occupation This separation may be intermittent as, for example, in the case of a man whose business requires him to be away from home for varying intervals of one or two years Such cases seem to have somewhat the same influence as we find in other types of broken homes

In all of these situations there are perhaps a number of reasons why the break in the home will influence the child. Probably foremost among them is the fact that such a home lacks cooperation between the two parents in the training and development of the child As we have previously pointed out, the father has a definite function in relation to the children, in spite of the fact that it is usually the mother who is in closer contact with them It is interesting to note the contrasting figures given above from Burt in relation to one parent being dead Apparently delinquency occurred more frequently when the mother, and not the father, was dead This is probably explained by the supposition that with the mother dead the father still has to engage in his normal occupation, with the result that there is no very continuous guidance. While this lack of the influence of one parent is true in all cases of broken homes, in those broken by separation or divorce there is, in addition, the influence of the almost inevitable preceding dissension. That intra-family relationships are of greater significance than the incomplete family, *per se,* has been demonstrated

For example, Silverman (1935) studied the effect of different types of broken homes upon the development of problems in children From his data, given in Table XXXVIII, it is seen that only 25 per cent of the children from broken homes exhibited behavior difficulties. Homes broken for various reasons produced about the same frequency of problem and non-problem children The author's conclusion emphasizes the importance of attitudes. He says: "From the findings it becomes apparent that there is no significant relationship between the broken home, which results from delinquency and incompatibility of the parents, and the behavior of the children from such homes, and that where problem behavior in these children occurs it is probably related much more to the subtler emotional relationship"

TABLE XXXVIII —PROPORTION OF CHILDREN FROM HOMES BROKEN FOR DIFFERENT REASONS (after Silverman)

Cause	Total Groups		Children with Problems	
	No	Per Cent	No	Per Cent
Total	138	100	35	100
Ill health or death	50	36	12	34
Mental factors	33	23	8	22
Economic factors	18	13	3	8
Sex delinquency	87	63	19	54
Other delinquency	86	62	20	57
Serious neglect or cruelty	50	36	13	37

Other Adults—While perhaps the large majority of homes consist only of parents and the children, there are an appreciable number which include other members. If the other adults in the home are relatives, they may play a very intimate part. *A priori* there is no evil in such additions However, grandparents or other relatives frequently exert a subtle or even overt interference with the parents' discipline or attitudes toward their own children. Where this intimacy does exist, we need to have much the same sort of information suggested earlier as desirable in relation to the parents.

The other adults who are not members of the direct family include servants or boarders Here important problems are apt to arise only if these strangers have a rather high degree of intimacy with the family. This may be particularly true of servants who are directly concerned with the child's welfare, or of boarders who have lived a long enough

time with the family to be considered part of it. The possible presence of such influences should certainly be inquired into.

Another problem often introduced by boarders is that of overcrowding Babcock (1927) tells of a girl who exhibited a good deal of instability which, while not to be explained by the crowded condition of the home, was certainly greatly influenced thereby At the age of fourteen she was living in the home of her sister This home consisted of the girl, her sister and brother-in-law who had four children, a second sister and her two illegitimate children, and four male boarders (See Case Number 26)

Family as a Whole—Thus far our discussion has concerned problems and relations among the adult members of the family group We must, of course, consider the attitudes of the family group toward individuals and institutions outside of it One of the important problems in relation to the family as a social unit is connected with its economic position. Many studies have shown that there is some degree of relationship between low abilities as measured by standardized tests and the socio-economic position of the family From this we could easily reason that children in such families would be apt to have less intelligent care than children in higher-type families. Furthermore, the stress of trying to secure the bare necessities of life may result in emotional and personality distortions in the parents which are all too soon reflected in the child's attitudes

But the question of economic status is pertinent not only for families at the lower end of the scale; it may be equally so for those at the upper end Here we are apt to find too great an abundance of the material things, and too little interest on the part of parents in the child as an individual With an over-sufficiency of material goods comes what are regarded as obligations to "Society" or to charitable and public organizations Both of these may take a good deal of the mother's or father's time, with the result that the children and their development are more closely under the supervision of servants

While families at either end of the economic scale may present similar types of influences on the child's behavior, the problems presented by the child are probably quite different J Levy (1932) reports having studied children from families at the two extremes. Children of over-privileged homes most frequently exhibited disorders of personality, e g., temper tantrums, negativism, introversions, etc. The under-privileged children, in striking contrast, exhibited a greater fre-

quency of conduct problems, including stealing, lying, and incorrigibility

Attitudes toward Social Institutions—As we observe a child in all of his relations we find that after the age of five or six he has many normal contacts outside the home He is going to school or kindergarten, he has playmates from the neighborhood or the school, he may be attending or urged to attend Sunday school, and so on. Often the parents' attitude toward these outside contacts may be very important in the etiology of difficulties In many localities it is probably of great importance when the parents are of foreign birth and their attitudes have perhaps been well developed before they attempted to set up a home in a new country. The carrying with them of the social requirements of a different culture is reflected in the things they require of their children Often such requirements may be in decided conflict with the experiences and information that the child has or learns from children at school or elsewhere Levy (1933) tells of fifteen-year-old Mary Costello who was subject to fainting spells in school and who did many other things which had in common the element of attracting the teacher's attention. Mary's parents had very decided ideas of how Mary should conduct herself, and these did not coincide at all with the things that her classmates did Apparently the teacher was an adult to whom she might turn for some sympathetic understanding of her problem Instead of taking a direct approach, Mary attempted to get this attention by what amounted to disorderly conduct in the school room

In a case seen in the I U. Psychological Clinics the problem was primarily poor work in school, but the teachers felt that much of the inability was due to an extreme degree of intermittent absences and tardiness When the matter was brought to the attention of this child's mother and she was asked if she would try to have the boy in school on time, she answered to the effect that she certainly wasn't going to get up early enough in the morning to see that the child was fed and left on time—if he wanted to get up and get his own breakfast it was all right with her, but she certainly wasn't going to be bothered! Such attitudes on the part of parents may well make one wonder whether attempts to help the child adjust may not be futile.

Social Pathology—Another group of problems concerning the family as a whole are those of crime and immorality If these conditions are prevalent in the home we can expect that the child will be influ-

enced by direct example. We also sometimes find children making a comparison between their homes and those of their playmates with a frequent feeling of insecurity or of hopelessness.

II Adult-child Interactions

In the preceding section we have shown that certain psychological conditions of the parents and their relations to each other have an influence on the child's development. These factors primarily concern the parents themselves But the attitudes of the parents toward their children are also important—in many respects more important than the first

Desirable attitudes are shown in love and affection for the child, with at the same time recognition of the necessity of giving him freedom to build his own independent existence. Undesirable attitudes may be of many kinds, but all may be classed into three groups. (a) rejection of the child, (b) antagonism vs. favoritism for specific children, and (c) over-solicitude for the child

Rejection.—Probably the extreme rejective attitude of parents toward their children is one in which a particular child or all children are unwanted Even a rather cursory observation of the modern scene greatly weakens the once popular belief that there is a maternal instinct or a paternal instinct, the essence of which is a desire for children and their care It rather appears that even this so-called instinct is a product of our social conventions and the individual's habit systems of conforming to those conventions If the issue is not confused with supposed instincts, then we can discuss possible reasons why children may be unwelcome

Among the common reasons for such an attitude are the increased economic burdens that additional children bring, interference with activities of the parents, and unhappiness in marriage Probably the first reason is found more frequently in the lower economic groups where, at least during childhood, additional children mean a serious increase in the difficulties of mere living Interference with parents' activities is more frequent in higher economic levels where the parents, and more particularly the mother, have interests in social life, clubs, or perhaps careers Young children do take time and therefore do interfere with the pursuit of what to the individual are important activities In either case the brunt of the parents' attitude must usually be carried by the child Unhappiness in marriage is an understandable

reason for child rejection Regardless of the cause of unhappiness, once it exists, everything connected with the marriage will be distasteful and unwelcome This attitude may easily be extended to include children of the distasteful marriage Newell (1934), in studying 33 cases of children rejected by their mothers, found that the principal reason for the rejection was the mother's unhappiness in her marriage.

The most common attitude toward the unwanted child is antagonism The parents may have a high ideal of their duty toward the children and therefore attempt to conceal the fact that the care of this child is really a hardship to them. However, concealing such subtle attitudes is not easy. At the other extreme, the antagonism toward the child may be expressed in positive neglect or bodily harm

Antagonism and Favoritism.—As we have just pointed out, the unwanted child always has to live in a family group where the parents are antagonistic toward him. However, such antagonism may be based on other things Thus, one sometimes finds parents who are antagonistic to one child because they believe he resembles an "in-law" or perhaps some other relative whom they dislike; or during the years that the child is growing up the parents' interests have broadened and the child interferes with them; or, again, a feeling of antagonism may arise because the child does not come up to the expectations that the parents had held for him.

Antagonism may appear as a corollary to the development of favoritism for another child. So frequently with the introduction of a baby into the family, the parents tend to forget the older child and center their attention on the baby. As children grow older they do lose much of the behavior and appearance which are considered cute in babies Sometimes parents make too much of this cuteness, and as the older child loses it they make the younger the favorite There are of course dangers to the favored child He may, and frequently does, fail to develop independence to a desirable extent. A greater danger, however, in favoritism is the influence that it may have on the non-favored child

As favoritism or antagonism is usually shown by one parent toward one child, further complications may arise in the total complex of intra-family relationships. Thus, Dexter (1928) has described the case of a thirteen-year-old boy whose academic and social adjustment was seriously disturbed by his excessive daydreaming and concern with religious activities Robert's younger brother was his father's favorite

and the father invariably took the part of the younger boy The result of the father's attitude plus the mother's own interest in religion was that she favored Robert, although she disclaimed any intentional partiality These attitudes, having existed for a long period of time, made it impossible for attempts at therapy to show any appreciable results, at least in a five-month period. (See Case Number 45)

Over-solicitude.—The other extreme parental attitude which is probably as harmful to the child's development as an active dislike, is an extreme over-solicitude Such an attitude of course may be shown by a father, but judging from the evidence of clinic cases it appears more frequently in mothers. It is evident to everyone that the small infant is dependent upon the mother Unfortunately, some mothers seem to think that this dependence should be continued, sometimes even into adulthood. They continue to feed the child, to dress him, to kiss his hurts, to decide his personal questions, to fuss over him long after such activities should have stopped While there is some evidence to suggest that such over-protected children may be accelerated in school, there is even stronger evidence that their personality development is seriously handicapped (See Cases Numbers 27, 31)

The Child's Reaction—We have thus far discussed parents and their attitudes, and have only incidentally considered the child Now let us ask the question—how does the child react to these parental attitudes? To consider this we must first point out that there are a few absolutely essential needs of the child that are satisfied by the parents

Probably the most important of these is security and stability The child's world is a narrow one and in it the parents stand out as the most important elements On them he depends not only for his physical needs, but also for emotional satisfactions In the harmonious home the child's relation is not to mother or father as separate entities, but to the totality of their relationship as parents To this totality he can turn when he finds the problem of living too difficult If this unity is torn and divided because of strife and ultimate separation, the only anchorage he knows is gone True enough, he may turn to one member of the pair; but if much of his reactions have been built up in relation to stability in his parents, then separation must decidedly affect his outlook

Neumann (1928) briefly relates Frank's difficulties Frank's mother had divorced his father and married a half-breed Indian Frank's own father was alcoholic The mother was so unstable that Frank

was removed from the home and placed in an institution Here his behavior was unruly and the attendants claimed that he misbehaved primarily to irritate them. Frank explained his feeling, and indirectly his behavior, when he expressed the belief that he never should have been born in that family. He had long lost any respect for or loyalty to his father because of his drinking; he had transferred all his loyalty to the mother in spite of full knowledge of her failings, and now by marrying the Indian she had gone back on him In this discordant home, fourteen-year-old Frank had lost his feeling of security, and his behavior was analogous to that of the little boy whistling to keep up his courage (See Case Number 28.)

The stable home, the feeling of security, is fundamental to the child's mental growth, the opportunity for which is the second of the major requirements on the family for the child In the home the child may be given a great deal of stimulation and opportunity for growth and achievement along those lines that we place under the term intelligence Of equal importance with these is his growth in what Porteus and Babcock (1926) term psychosynergic traits. Such traits are those that revolve about emotional and temperamental characteristics The keynote of adequate personality development is the achievement of independence in meeting problems The wholesome personality is that one which is able to meet issues decisively on the basis of its own experience and the accumulated experience of experts.

The opportunity of achieving such independence must be furnished the child by the home Such training may be started even with the smallest infant. While, of course, it is true that the two-months-old is not sufficiently mature to perform many efficient motor acts for himself, much can be done in training him in ways of reacting to general situations. Thus, the establishment and strict adherence to routine in, for example, feeding and sleeping, apart from its purely physical values, probably helps to establish a general manner of reacting Conversely, if parents are disturbed and fuss with the child every time he cries, he soon learns that crying is a method of securing the satisfaction of desires It appears cruel to some people to allow a child to cry when put to bed, even though there is complete certainty that he is in no physical pain or discomfort. If one does pick him up and fuss with him whenever he cries under such conditions, he discovers a way of behaving—crying—by which to gain his ends. From such behavior in the infant it is but a step to the whining, demanding

child of six or seven. Better, by far, that the young infant should learn that certain aspects of the environment are inevitable Such a realization is the first step in the growth of independence.

Parents should recognize the child not primarily as *their* child but as a human individual who has the rather difficult job of living a harmonious and happy life. Such recognition on the part of parents necessitates their doing everything in their power slowly but surely to release the child from their influence It is absurd to expect the adolescent of fourteen or eighteen to select his clothes, decide on desirable dates, or make any other judgments, if the necessity for making them has been rather suddenly thrust upon him Long before, perhaps as young as five or six, the child's program should have included elements that would require him to make judgments and, having made them, to stand by the consequences. One of the author's students once told how in her family at Christmas time candy and nuts were available and the children were warned kindly that too much indulgence would probably mean suffering Beyond that there was no attempt at regulation; and, as she said, it did not take more than one or two severe stomach aches to make the children avoid over-indulgence The ideal is to train the child in such independent standards that he will know what to do when it is impossible to turn to the parent for advice

We can hardly expect the child to exhibit satisfactory growth entirely independent of some sort of guidance from the parents. Unfortunately, there seems to have arisen a belief that psychology teaches that one should not interfere with the child, he should be allowed to perform as he desires. This extreme attitude is of course ridiculous. While there should not be too much interference with the child's ordinary behavior, there are certain things that every child must learn In our social culture he should learn to use a knife and fork and not to eat with his fingers; he must learn to avoid the dangers of modern traffic on crowded streets, he must learn certain elements of polite behavior, and so forth. He could never learn these without interference from other people The question is whether this interference should come from his parents who are interested in his welfare, or from uninterested strangers who are concerned largely with the effect of his undesirable acts on them. Children who exercise with a hammer upon the dining room table, who mark and tear books from the family library, who are insolent or vicious to

guests, who destroy property, or do a hundred and one other things of a like nature are not building up conduct habits conducive to easy and satisfactory adjustment when they must compete with a world unconcerned with their wants and desires. Most decidedly must the parents give the child guidance in his efforts to achieve independence, conduct, skill.

The guidance may be given directly or it may merely be through setting an example. Great care must be exercised in child guidance. Nagging will not do. Neither will advice and correction which are based primarily upon the parents' own desires. Guidance by example may be quite unconscious The nervous, irritable mother, burdened with too much housework, should hardly be surprised when her ten-year-old girl is represented as "nervous." There is no need here to bring in any neuropathic heredity or any other factor except the unconscious example which the mother has set for the child

That the child should have at least these three things as a minimum for the best personality development is generally recognized. If the parents are wise and congenial, if the home is stable, then the course of the child's development is clear, and the chances are definitely against the development of difficulties

If such an harmonious condition does not prevail, then some distortion in personality development is almost inevitable Certain reactions of the child are generally to be expected He may resent the antagonism or injustice of a parent, or the obvious favoritism shown to a sibling Real fears may be built up by a cruel father As Bezděk (1932) has pointed out, the child may develop a feeling of inferiority because of the dominance, superiority or strictness of the parents. Furthermore, he may remain dependent on the adults in the home because their attitudes do not allow him to develop independence

Our knowledge of such personality quirks in the child is obtained only from his behavior We have elsewhere discussed the fact that while behavior problems of children may be divided into direct and indirect problems, all of them are known only by observed conduct. Different children having essentially the same personality reaction to their family situation may show quite different behavior The conduct of one child with inferiority feeling may be retiring, withdrawing, shy, a second child with a similar basic difficulty may be impertinent, disobedient, perhaps even aggressively vicious. This is not the place to discuss all of the possibilities; but in our subsequent con-

sideration of the problems that keep recurring it will again and again be seen that such personality aberrations are basic to the conduct.

III Sibling Interactions

While there is only one child in the family, only the behavior and attitudes of the parents, and sometimes other adults in the home, are operative in influencing his growth Quite obviously the addition of children changes the configuration for each member of the family The effects of position in the family or size of family on the development of a given child are relatively unknown, at least from any experimental evidence We can suggest certain possible influences, but actual studies do not always bear out the *a priori* expectations Certainly all of the influences that have been suggested do not operate on every child But because they are sometimes of importance in the practical study of a child's difficulties we must briefly consider them

Only Child.—In a recent review Campbell (1934) points out that earlier investigators were inclined to feel that growing up as an only child was universally a mentally unhealthy condition According to him, "Stanley Hall is said to have considered being an only child a disease in itself" Friedjung (1911) reports that 87 per cent of only children in his practice exhibited such behavior symptoms as fear, disturbed sleep, capriciousness, anorexia, enuresis and constipation, whereas only 31 per cent of children with siblings showed these traits Burt (1925) found 12 2 per cent of only children in his delinquent group, and only 1 7 per cent in his non-delinquent group Busemann (1928) concluded, on the basis of self-ratings of 400 children, that only children and those from small families were more introverted and dissatisfied with themselves Teachers rated such children as more restless and hyperactive. In conformance with these ratings Goodenough (1929) found only children more distractable in mental test situations, and in another paper (with Leahy, 1927) reported they were rated as more excitable and unstable On the other hand, Blatz and Bott (1927) found that only children had the best records when school teachers listed the misdemeanors of 1400 Toronto school children

In respect to school work Busemann (1928) and Bohannan (1898) report that only children are below average Wulker (1934), however, found no differences between the school achievement of 146 girls who were only children, and that of the group of 527 girls of which they

were a part Witty (1933), from a study of 153 five-year-old only children, concluded they were somewhat superior in health, physical development, intelligence and character traits. This report on physical condition is opposed to the earlier work of Bohannan (1898) and Friedjung (1911), both of whom found only children physically inferior

From even this incomplete survey it is evident that the disagreements are of such a nature as to suggest the absence of real difference between groups of only and non-only children. This is borne out by more recent investigations with modern measuring scales which rather consistently indicate that the average differences between groups are small and generally insignificant In individual cases, however, the close contact between the only child and his parents offers an excellent opportunity for the development of difficulties based upon failu[illegible] Clinically this may be of great significance

[illegible]est child in a family group also has a unique position. For a longer or shorter period of time he has been an only child and subject to whatever influences the only child may be subject to Then there is introduced into his world a new infant. If the parents have prepared him for the coming of a sibling and have led him to build up an attitude of expectant desire and anticipation, the new child may have no untoward influences If, however, as is only too often the case, the younger one is introduced more or less as a surprise, the older child may resent his coming Cases have been recorded—they are not at all infrequent—in which an older child's resentment of a younger one is sufficiently strong that he attempts bodily injury of the new sibling

This is illustrated by the following abstract of a case from Miss Sewall (1930): Myron Canway was five years old when his baby sister was born. At this time Myron had whooping cough and was told by the doctor not to cough near the baby "or else she will get sick and then you won't have a baby sister any more" Several times after this, the mother found the boy coughing into the baby's face. At another time he poured salt into the younger child's eyes and at another time he pushed the bassinet over. One day his mother taught him to pat the baby's face He did this, and when his mother's back was turned he slapped the baby hard and bit her finger

Thurstone and Jenkins (1931) and Levy (1931), both working with cases from the files of the Illinois Bureau of Juvenile Research, found

that first-born children are problem children more frequently than those in any other ordinal position. The calculated frequency of first-born children per one thousand is 227, but Thurstone and Jenkins found 386 per thousand in their problem cases Rosenow (1930), analyzing statistics from the Cleveland and Philadelphia Child Guidance Clinics, also found the incidence of first-born children somewhat higher than theoretical expectation. Stratton (1927) found that oldest children are more subject to anger than later children, but his study may be questioned as he did not correct for size of family Goodenough and Leahy (1927) concluded from teachers' ratings on 293 kindergarten children that eldest children show a reliable difference from younger children in the presence of undesirable traits. They were judged low in aggressiveness, self-confidence, and leadership, but high in suggestibility, seclusiveness and introvert tendencies. The data show that 48 per cent of the only children could be definitely classed as aggressive, while 48 per cent of the eldest-child group could be classed as introverted

Youngest Child—The youngest child holds another important position in terms of his own development Even though he is not much younger than the next oldest sibling he not only has parents, who have a superiority because of age, but he also has one or more brothers and sisters who may nag at him because of a real or imaginary authority over him. This may be especially true if the youngest child is four or five or more years younger than the next older. His being made the baby of the family in the most extreme sense presents difficulties, for the task of developing independence in this situation is much more difficult than when he has to break away from only the father and mother. The total size of the sibship, however, probably makes a great difference in the effects on the child of being the youngest. Goodenough and Leahy (1927) found that 45 per cent of the youngest children could be classed as aggressive and 44 per cent were seclusive. This contradiction suggests that other factors than mere position in the family are important.

Some psychoanalysts hold ordinal position in the family to be important Brill (1914) emphasized the peculiarity of only and of last-born children because of parental solicitude and lack of competition Hug-Hellmuth (1921) thinks the middle child feels an uncertainty about his position in the home Adler (1928), on the other hand, is impressed with the disadvantages of being the first-born.

Other Points—Intermediate children may present their own problems which are dependent upon the make-up of their family. Factors of age differences between children may operate so that an intermediate child in purely chronological terms is psychologically an oldest child, an only child, or a youngest child Thus, a child born when his older siblings are in their late adolescence or adulthood is in fact an only child as well as being the youngest, and therefore may be influenced by his position in the family

Sex differences among siblings probably play some part The only boy in a family of three or four girls, or the only girl in a family of boys, certainly has a different home environment than children with siblings of their own sex From the study of Thurstone and Jenkins (1931) it would appear that having a next older or younger sibling of the opposite sex tends to improve the chances of successful behavior adjustment

Just what the influence of position in the family may be on a given child is entirely unpredictable The possibility of jealousy among the siblings, favoritism on the part of parents, over-solicitude and other parental attitudes may be definitely influenced by such ordinal differences But that in some cases the ordinal position in the family is important cannot be doubted, and it must therefore be considered in an adequate study of a case

NON-HOME INFLUENCES

There can be no question about the importance of the home in the child's development For two or three years of his infancy his social contacts are limited largely to the members of his immediate family, and throughout his life these individuals form possibly his most intimate contacts But beginning at a rather young age, in many cases at two or three years, the child begins to make contacts outside of his home, and as he makes these the home loses a little of its influence. At first, the extra-home contacts are limited to children of his own approximate age living in the immediate neighborhood. While much evidence has been presented showing that although a child plays with others at this early age he tends to play as an individual and not as a member of a group, still these other children have some influence on his developing behavior Perhaps as early as this—for many children by the ages of four or five, and most frequently for children of five or six—a new social contact is made. This is brought

about by entrance into nursery school, kindergarten, and first grade Here, for perhaps the first time, the child comes into contact with other children who are geographically remote from him and whose socio-economic and cultural background may be quite different While hardly as important as the earlier influences of his home, this broadening of his social horizon plays a decided part in his learning to make successful social adjustment

School—For most children school entrance comes at about six years of age For the next ten or twelve years at least, he spends five to seven hours a day five days a week in the school situation Apart from any other influences, the mere fact of this long contact with the school situation would indicate that next to the home it probably plays the most important part in influencing the growth of behavior patterning

The first month or so of school attendance represents a critical period in the life of the child He comes to school with several years of limited contacts and behavior traits built up in connection with his home For the five-year-old these represent a very definite way of behaving Each of the other children similarly brings his or her home life pictured in his behavior In the first month or several months these patterns, often conflicting, must be remodeled to work smoothly together But there is still a third fact influential in the total situation The school as an institution has a whole series of rules and regulations to which the child must exhibit some conformance Often these rules are the very antithesis of the home requirements, yet ultimately each child must build up an intelligent acceptance of and conformance with the needs and desires of each other child and with the formal requirements of the school

From the child's point of view the most important element of the school as an institution is the teacher She stands out as one with authority, as the very personification of regulations to which the child must conform Therefore from a mental hygiene point of view the teacher must exhibit a stability and understanding equal to that in the most ideal parent In fact, she must do more because she represents not only the school, but in many cases all of the desirable elements of society Although within the home confines there may be little or no thought of the child's ultimate adjustment to the social mores, the teacher cannot neglect this more important desideratum

One of the serious problems to be confronted by school authorities is the mental stability of their teachers This, however, is a ques-

tion into which we cannot enter at this time We have pointed out some of the findings which indicate teachers' attitudes toward problems in children; and, as we have seen, this evidence does not present a very cheering picture It goes without saying that there are thousands of good teachers, good not because they are thoroughly familiar with their subject matter or because they are skillful in the bare mechanics of presentation, but because their subject matter and presentation are secondary to their interest in the child. Unfortunately, there are as many, if not more, teachers whose professional behavior is intimately bound up with the maintenance of discipline and the enforcement of formal rules and regulations as well as a formalized approach to their subject matter. This is largely to be laid at the doors of teacher training institutions Even today, in spite of a growing interest in the child-centered school, many of our teacher training institutions still require hours of work in so-called methods of teaching, general and special subjects, and other sorts of technical courses concerned with minutiae of organization and administration, they almost entirely neglect work directed toward understanding the child and his problems. Dr C. L Williams (1935) sent a questionnaire to fifteen teacher training institutions in the State of Indiana, asking about work in mental hygiene required of teachers The results from the thirteen schools which replied are astonishing. Only two of these required any work in mental hygiene Even normal psychology was required only to the extent of three hours in general and three hours in educational psychology Not a single institution required any work in abnormal psychology. However, in fairness it must be said that each of the schools which answered did offer further work in abnormal psychology as electives, but this does not mean much, because the educational curriculum is so filled with required technical courses that students have little time to spend on electives While these results concern only one state, it would appear that they are representative of most teacher training schools.

Although we do not argue for a direct causal relationship, such findings do help to explain the results secured by Wickman (1928) and MacClenathan (1934), dissussed above. Wickman found that teachers regarded immorality, dishonesty and transgressions against authority as more serious than disorderliness in the classroom or lack of school application These last were more serious than aggressive personality and behavior, which in turn were more serious than

withdrawing, recessive behavior Professional mental hygienists working in child guidance clinics ranked withdrawing behavior as most serious, with dishonesty, cruelty, temper tantrums, and truancy somewhat less serious, followed by immorality, lack of school application, and extravagant behavior traits, then transgressions against authority; and, finally, violations of class orderliness as least serious. MacClenathan says, after contrasting the seriousness rankings of teachers and parents, "The cardinal tendency brought out by the study of the three tables certainly is that each group tends to rank as most serious those behavior patterns interfering most with the smooth functioning of that group's affairs" Because of the similarity in the rankings of the two groups of teachers (see Table XXXVI), the conclusions of either study might well fit the other.

Similar findings concerning teachers' attitudes toward problems as well as toward children may be gleaned from case studies in practically any clinic. Thus in Miss Wallace's (1924) case of Tom M, the teacher referred a boy when she was about to give him up in despair, considering him quite beyond school control, and feeling that he was hopelessly stupid She marveled that Tom had not exhibited downright delinquency in view of his disturbing classroom behavior and his obviously undesirable home conditions. This teacher, however, was persuaded to give the boy a further opportunity; and after having been shown that the mother was willing to cooperate with the school and clinic, especially in having Tom's physical condition looked after, the teacher modified the program for him. In a relatively short time Tom's academic achievement appreciably improved.

Contrasted to this is the case of John L, who was seen in the I U Psychological Clinic several times. He was referred by the school principal with the very positive notation that he was hopelessly retarded and should without question be transferred to the special school. Fortunately, it was possible for his family to move to another school district where after a year or so this boy was doing adequate academic work. But even after this change had occurred the principal of the first school still insisted that John was the lowest-grade boy they had ever had in his school.

On the other hand, many teachers having a real interest in children, or even in a specific child, have been decided factors in the guidance of the child's whole life The author is acquainted with a young university professor whose whole career has dated from the

inspiration and counsel given him by a mathematics teacher in high school.

We may summarize by pointing out again that the teacher represents, from the point of view of the child, the most important factor in his whole school life. Since this is so, it is evident that teachers must be trained to think in terms of their children and not in terms of their subjects

Another problem which frequently appears in the child's school history is changing from one school to another. To a certain extent such changes reproduce in part the situation that the child had to face when he first entered school. He must readapt himself to new classmates, to new teachers, to new school rules and regulations, and often to new methods of teaching and standards of achievement. Such changes often result in poor school work and even lack of promotion. Blanchard (1928) found, in the case of a boy referred because of daydreaming, absent-mindedness, poor memory, and failure in seventh-grade work, that probably one of the most important factors was the school changes which were frequent in the boy's early school history (See Case Number 15.)

Kanner and Lachman (1933) illustrate another possible effect of changing schools This time a nine-and-a-half-year-old boy developed what appeared to be asthmatic attacks. While there were a number of pertinent factors in the history, it is interesting to note that the attacks began only following a change in residence of the family which necessitated transference to a new school. The boy was uneasy and unhappy about this disturbance of his established associations and objected to the longer distance he had to go to the new school

It is quite probable that for many children a similar condition ensues with the change from grammar school to high school Entrance to high school usually means contact with an entirely different school program, and with individual classmates from a still wider geographical area Similarly, the change from high school to college also introduces decided new factors In these transitional periods the child should be unobtrusively but carefully watched and sympathetic guidance given whenever there is the suggestion of too great difficulty in making the new adaptations.

There are a number of situations in the school life of the child which frequently give rise to difficulties Within the school there may frequently be antagonism between the pupil and the teacher, between

the child and his classmates because of differences in race, socio-economic status, religion, in conventions and standards, prejudices, etc Physical conditions in the way of bodily defects or illnesses, or lack of such material things as clothing or books may cause the child to feel himself inferior to his classmates Sometimes—all too frequently, in fact—classes are much too large for the teacher to give special attention to the child who exhibits some deviations, even though she is skillful enough and willing to do so. There are also conflicts because of the curriculum. For the normal child, not necessarily feeble-minded, the ordinary classroom work may sometimes be pitched a little too high. He soon finds that he is unable to compete successfully and so becomes discouraged and finally resentful of the forces which compel him to remain in such an undesirable place On the other hand, the superior child may find the work entirely too easy He does not develop adequate study methods in the lower grades and so has difficulty as he advances and the competition becomes keener Also he becomes bored with the work, finds nothing in it to stimulate him, and finally turns elsewhere for the satisfaction that he misses in school.

Other Influences—There can be no doubt that, next to the home, the school affords the growing child more stimulational opportunities than any other single agency. However, it is necessary to call attention to other influences that may be important in certain cases

The neighborhood in which the child lives is probably, after the home and school, of greatest influence, and in some cases may be more important than the school Shaw (1929) has shown that delinquency rates are higher in disintegrating neighborhoods, i e., those where residential sections have given way to industry The quality of the neighborhood is some indication of the economic status of the family Furthermore, the facilities for recreation afforded by the neighborhood greatly influence the child. Saloons and pool halls are not the most wholesome congregating places for children or adolescents Playgrounds under school, church, or community auspices are quite probably of decided value. In our discussion in subsequent chapters we shall point out more specifically possible neighborhood influences.

Companions are also of importance to the child's development. They are important for the young child making his first social contact outside of the home; in fact, they are important for the child at all ages. Nevertheless, companions may be the immediate reason for miscon-

duct. Probably not more than twenty per cent of juvenile delinquents engage in their anti-social behavior while alone. Moreover, personality difficulties may arise because of inadequate companions, as for example the effeminate boy who has opportunity to play and associate only with his sisters or other girls Lack of companionship often results in selfish behavior or other asocial traits.

Treatment

In the first chapter it was pointed out that the psychoclinician is seldom able personally to carry out his recommendations for the management of problem children, but there are some occasions in which he may deal directly with the child in a therapeutic manner. In some cases a specific retraining program may be necessary, e g, for correction of articulatory speech defects, or for improvement of skills in the tool subjects, which the psychoclinician may carry out himself Even here, however, the assistance of trained teachers and the parents is probably desirable, and may be necessary In the class of indirect primary behavior problems the child must be worked with directly. Here there is frequently need for environmental changes, but it is also necessary to attack the disturbing attitude or conflict, and this can be done only by dealing with the patient In this section we shall discuss in a general way the management of primary behavior problems, and in later sections point out specific measures in connection with particular complaints.

The child who appears in a psychological clinic is maladjusted, socially or personally, in a mild or severe degree. The first task is to discover the seriousness of the maladjustment, as specifically as possible its nature, and to formulate a reasonable hypothesis as to the reason for it When these things are done a program of treatment, designed to help the child readjust, may be outlined This sequence is necessary in any of three major groups of problems However, there are limitations imposed on what course the psychoclinician may take when the problem involves mental or physical disabilities. Management of the first of these we have considered in Part II. When physical conditions are present the first therapeutic measures must be medical or surgical in nature. If psychological problems are involved, they can be dealt with only after correction of, or recognition of the impossibility of correcting, the physical disturbance. In the latter case

it may be necessary to help the child make satisfactory adjustments to the physical handicap itself

Primary behavior problems by definition do not involve questions of mental or physical disability. As earlier pointed out, such problems arise as the direct result of the child's culturalization, or they may be symptomatic of conflicts which result from cultural influences In the first of these circumstances we have said that the child exhibits a direct primary behavior problem, and in the second that his problem is indirect This distinction is useful not alone from the etiologic viewpoint, but also as a starting point in therapy.

In one cultural milieu—the home, school, gang, neighborhood—the child has formed habits in the manner of specific skills and acts, or in a broader "way-of-behaving," that are unacceptable to other cultural groups Thus the boy in Case Number 33 formed his stealing skills under family tutelage and in that cultural milieu his behavior was not a problem. Outside of that narrow environment, in school or in the community at large, his behavior was unacceptable It is this type of problem that we think of as direct. In its essential nature this sort of behavior is poor habit Therefore, to correct the problem it is necessary to follow a program of reeducation in the formation of new and more desirable habits.

To do this, the first necessity is to change the cultural milieu which has been responsible for the present behavior. This may be effected in some situations, as in problems of eating, sleeping, elimination, obedience and others particularly associated with the home, by a change in the methods used by parents in discipline and training Thus, the mother must avoid concern over her child's failure to eat according to her arbitrary standards of quantity or kind; the father must not demand immediate response to his every arbitrary command; over-attention must be avoided when the child does not go to sleep; opportunities must be allowed for the child to play with other children, in short, attention should be paid to the parents' methods of child training and these must be changed when they are inadequate. It is evident that many problems could be avoided if proper child-training methods were known and used by parents. Thus, prevention of problems is a primary reason for parent education, but the psychoclinician is faced with the more difficult task of changing the behavior and often firmly held beliefs of parents. This task requires not only a thorough knowledge of the psychology of child

training, but also the ability to apply it in specific instances, and tact in making parents understand Therapeutic attempts in this direction absolutely require the full cooperation of the parents

In many cases it is not possible to deal with the problem through the parents in the manner just suggested. The parents may be too stupid or ignorant to understand, they may be unwilling to give up cherished beliefs, or to admit the inadequacy of their training methods by changing them, or they may not recognize that the child's behavior is a problem. Faced with situations such as these, the psychoclinician cannot hope to get the absolutely necessary parental cooperation Without this there is little hope of success, and perhaps serious question whether continued effort should be expended. As an alternative to trying to work through uncooperative parents, complete removal of the child from that environment may be desirable. Unfortunately, it is easier to write or talk about doing this than it is actually to do it. If the parents are willing, the child may be placed for a period in a foster home, a residential school, or even a hospital, and here a retraining program must be carried on If the parents are unwilling to have the child leave home, it is possible in some instances to remove them by legal action This can be done only if neglect or contributing to delinquency can be proved. As this is usually hard to do, the possibility is of significance in only a limited number of cases

This in general terms is the therapeutic program for direct primary behavior problems In brief, the program calls for changing the cultural milieu with parents' cooperation or by removal of the child from the home, and in the new milieu carrying on retraining in more acceptable behavior habits. Details of the retraining must be determined in respect to the actual behavior, the length of time it has been exhibited, details of its development—in short, in terms of the particular child's history.

To a limited extent a program as just outlined may also be serviceable in dealing with indirect behavior problems. The direct reconditioning of fears has been successfully accomplished. Withdrawing behavior may be helped by careful increase in opportunities for social contacts Daydreaming habits may profit by opportunity for more direct contact with things. Inferiority feelings may be overcome by success. Thus, change in cultural milieu and reeducation may be helpful in dealing with personal maladjustments, even without any

particular attention to the child's conflicts or attitudes This is especially true with young children, when the constantly changing matrix of personality is easily influenced

While in some cases of indirect behavior problems change of environment and reeducation alone may resolve the difficulties, and while in all cases these technics are of value, in most cases resolution can come only through overcoming or dissipating the intermediate attitude or conflict It may be well to describe again our view of the etiologic sequence in indirect problems. The starting point is again the environment or, perhaps more accurately, the cultural milieu. The cultural milieu in this sense may consist of as few as two persons. Thus, the mother and child or father and child may constitute two such cultures within the family. Any combination of either parent with siblings and the child are also to be considered further cultural units In the harmonious home these various cultural units coalesce into a larger cultural unit in relation to the child With such harmony the development of behavior patterns and behavior equipment in the child is a resultant of the behavior patterns of the group—the child's [illegible] If, however, the [illegible] example, the mother is over-solicitous while the father is domineering or even cruel, then the child's behavior equipment will reflect one or the other, or, as is more usual, will show a conflict or indecision that colors all further interactions. Similarly, sibling jealousy arises out of an actual or supposed cultural unit of younger child and parent in opposition to the interests of the older child Lack of opportunity to react to new and larger cultural groups of playmates limits the child's ability to interact adequately with such large groups at a later age. Without such opportunities the child develops fears or inferiority feelings in relation to new groups A cultural milieu which suppresses a child's activities or which belittles his achievements fosters feelings of inadequacy and inferiority Many further possibilities of such influences will occur to the reader. The direct or immediate resultant of these culturalization influences are attitudes, points of view, emotional conflicts—call them what you will—which are evidenced in overt, grossly observable behavior This may indicate passive acceptance shown by avoidance, withdrawing, non-socially disturbing behavior On the other hand, the child may aggressively oppose or compensate for such feelings by gross behavior which is socially disturbing and

which by observation is identical with the conduct based upon direct environmental influences.

The most essential part of the therapy of indirect behavior problems is the effort to help the child overcome the intermediate attitudes or conflict. It must be clearly understood by the psychoclinician and by the patient that this can be accomplished only by the patient himself. The therapist may help by counsel and guidance, but without the full cooperation of the patient all of his efforts will be without avail. This necessity presupposes sufficient maturity and ability on the part of the patient for him to have some insight into his difficulty and the reasons for it Very young children or feeble-minded persons are not open to such an approach. Fortunately, in the former group a cultural change and reeducation are usually adequate

Dealing directly with the child by means of persuasion, suggestion, conversation and so on is the task of psychotherapy. The position of the psychologist in this field is none too clear. Exploration of conflicts and emotional stresses was first undertaken by the psychiatrists, and the various psychoanalytic schools have developed elaborate systems to explain the cause and effect of such conflicts Even apart from this specialized technic, practically all modern psychiatrists take the field of so-called personality disturbances as their own This has given a decided medical tinge to the whole problem However, as the problems with which we are concerned have by definition no physical involvements, it is a little hard to understand why their treatment should be a specific medical province Under actually existing conditions there are a goodly number of teachers, ministers, and social workers, as well as psychologists and psychiatrists, who are successfully dealing with primary behavior problems Again we may point out that there is available at present no formal training specifically designed for professional workers in this field. In some respects professional training in psychology may be of greater value than professional training in medicine, in other respects medical training is extremely useful. Likewise, certain elements in the training of professional educators and professional social workers are of decided importance in the training of professional clinical psychologists

An extensive accurate history is an essential part of therapy. With the history before him, the psychoclinician must formulate an hypothesis concerning the nature of the problem Are the important etiologic elements of such a nature that persuasion or suggestion is all

that will be necessary? Or is some episode in the child's life apparently of importance, yet the child sees no relation between it and his present difficulty? Does the history appear to give only superficialities, but at the same time suggest possibilities that have been forgotten?

The child should be questioned in order to secure his account of the difficulty. The questioning should not be too detailed or too insistent Give the child opportunity to tell his own story in his own way. Search for emotional or conflict episodes antedating and postdating the onset of the present difficulty. Attention should be directed to possible relationships between early experiences and the present difficulty. When pertinent episodes are revealed, help the child to fit them into his general life pattern, instead of setting them aside to become disturbing factors

The application of such a technic as this is well illustrated in Case Number 47. Here the girl was encouraged to recall emotional experiences. After much hesitation she told of the frightening family quarrels, the effect they had upon her, and how she had tried to suppress all remembrance of the affair. An analogy between her grief over her parents' quarrels and her grief over her grandparents' deaths was pointed out to her To the latter of these she had adjusted satisfactorily because she faced it and thought about it, and after a time she forgot her initial agony. She was encouraged to take a similar course of action in regard to her parents' quarrels Even after a week or two during which she took this advice, her symptoms disappeared, and her whole attitude toward school and home was changed.

This sort of technic is probably of little avail with children much younger than eleven or twelve years of age As we have mentioned, personality problems in children younger than this yield frequently to an attack on the environing factors With children in late adolescence and with adults the relatively superficial therapy here briefly outlined would probably seldom be sufficient However, we cannot undertake to discuss the more specifically psychiatric or psychoanalytic technics which may be necessary in dealing with more profound disorders than are usually found in children.

Chapter IX

CONDUCT PROBLEMS

CONDUCT problems are those which, from the point of view of an observer, are merely socially disturbing or more seriously anti-social In our discussion of classification in the previous chapter this differential was indicated as the one used by Paynter and Blanchard and by Ackerson There is no doubt as to its practical usefulness. However, the psychoclinician must keep clearly in mind that calling a certain form of objectionable behavior a conduct problem does nothing to indicate its essential nature. It is for this reason that we have insisted that a classification of children with problems, rather than of the problems themselves, is of greater clinical usefulness. But the requirements of textbook organization appear to be better met by the less useful clinical classification

The immediate reasons for conduct problems may be (1) the habit training and culturalization of the child, or (2) a personality attitude which affects all of the child's interactions Children whose histories indicate training and culturalization to be the most important etiologic factors have a direct primary behavior problem Those whose histories show the important influence of disturbing attitudes have an indirect primary behavior problem. The disturbing attitude, or personality influence, directly arises from environmental circumstances The formation of these attitudes is intermediate between environmental influences and the behavior sequels When the behavior sequels are socially disturbing we have conduct problems belonging to the indirect group. In the subsequent discussion of certain frequently occurring problems we have considered both of these types of etiology

We may distinguish several groups of conduct problems on the basis of the seriousness of the social disturbances First are those forms of behavior which are most frequently observed and objected to in the family group. These include problems associated with eating, elimination, sleeping, and sex; "nervous" habits of body manipulation; anger displays or temper tantrums; and problems of play and

companionship Secondly, we may list problems which are important in connection with the home, but which also have wider social significance. These include such behavior as lying, swearing, fighting, destructiveness, bullying, cruelty, etc. The third group of problems are those which are of serious social significance because they violate legal requirements and therefore are broadly anti-social In the following sections of this chapter we shall discuss several of the more frequently occurring problems in the first two divisions, and reserve the third division, juvenile delinquency, for the following chapter.

Feeding Problems

Complaints concerned with feeding difficulties are among the most frequent ones made to physicians or psychological clinic workers Kanner (1935) reports that 20 per cent of the patients referred to him for psychiatric advice had feeding problems. In Ackerson's (1931) group of 5000 clinic cases, 18 per cent were found to have feeding problems, while among the pre-school children reported by Tilson (1929), 28 per cent were found with this sort of problem. Bartlett (1928) found the commonest complaint among 1471 outpatients on pediatric service to be anorexia Of these children, 349, or about 23 per cent, showed poor appetite. In 34 per cent of this group, no physical cause could be found These figures from clinic cases are in fair agreement The Committee on Nutrition of the White House Conference (1932) estimates that 50 to 90 per cent of all children beyond the age of infancy exhibit feeding difficulties These percentages are estimates and would include many children with organic disorders who would not be referred to a psychiatric or psychological clinic, and also many children who present the problem at home, but whose parents never seek outside help

In the classification of problems given in Chapter VIII, the following types of problems associated with eating were mentioned

1 Poor appetite (anorexia), including refusal to eat, and food whims
2 Excessive appetite
3 Perverted appetite (pica)
4 Undesirable eating habits, such as careless table manners, gulping food, dawdling over meals, etc
5. Gagging and vomiting

The etiologic factors in all of these difficulties are essentially similar, in fact, the complaint themselves are often associated In dealing with any of these conditions every effort must first be made to rule out the possibility of organic causes Here again the physician's diagnosis and treatment must precede any efforts of the psychologist. On the other hand, it must be recognized that often these conditions are of purely psychological origin, and that medication for a non-existing organic condition may be more harmful than beneficial. Psychological causes may, in general, be traced to a lack of training in eating habits, to over-solicitous attention to the child's eating, or to emotional arousals associated with feeding or other conditions in the home.

Poor Appetite or Anorexia.—Poor appetite is probably the feeding disorder concerning which there are the most frequent complaints. Patients are variously reported: "not to seem to want to eat at all," "won't eat cereals, potatoes, or any of a long list of foods," "he has to be forced to eat," "has to have special foods prepared," "refuses to eat unless someone feeds him," and so on, along the same general line. Two reasons may be suggested for the complaints, not for the condition Thom (1927) points out, first, that the appetite is an index of health and is recognized by the layman as such, and, secondly, that parents are perhaps too much influenced by widespread norms of physical development. In connection with the first of these, a sudden change in a child's appetite is quite properly a danger signal to be investigated, but anorexia existing from practically the time of weaning is more probably of psychological origin The blind attempt to meet average norms for height and weight is a demonstration of the parents' lack of understanding of the real meaning of such norms.

The causes of poor appetite are summarized in the following list based on that by Aldrich (1926):

I. Psychological causes
- A. In the child·
    1. negativism
    2 means of gaining attention
    3 means of gaining any desires
    4. temporary interest in other things
    5. imitation of parental or sibling patterns
    6 part of "spoiled child" picture
    7 interference of a general restlessness

8. unhappiness or other moods
9. daydreaming
10. fussy habits in food likes and dislikes

B. In parents or other persons in charge
1. inconstancy in methods of training feeding habits
2. too many attendants with different methods
3. inadequate methods of handling in general
4. lack of purpose—haphazard or no method

C. In technic of the meal:
1. forced feeding
2. nagging as a means of stimulating to eat
3. over-solicitude in relation to the meal
4. stunts or stories as rewards for eating
5. excitement preceding or during the meal
6. too much discipline, especially in relation to manners
7. unpleasant surroundings during meals
8. dawdling over meals permitted

II. Physical causes

A. Disease processes:
1. infectious—practically all, acute and chronic
2. organic pathology—especially of heart, lungs, and kidneys
3. teething
4. anemia
5. disturbance of functions—endocrine, coeliac, secretory and motor disturbances of stomach
6. mental disease
7. malignant tumor

B. Hygienic
1. lack of fresh air
2. lack of exercise
3. lack of sunlight
4. lack of sleep

C. Dietary
1. over-feeding—in general, or with one food
2. too short intervals between meals
3. eating between meals
4. too much food rich in fat, or in sugar and starch
5. lack of vitamins
6. constipatory diet

Lucas and Pryor (1931) add to the physical causes the finding

that anorexia appears to be associated with a linear build, high metabolism, and obstinate constipation. Mohr (1928) says that when all cases with disease, organic incapacity, or improper food are eliminated there still remains a large number where the causation is evidently psychological. The Nutrition Committee of the White House Conference (1932) points out that physical causes could not account for all of the anorexia and, furthermore, that the condition is seldom found in children whose homes are free from undesirable psychological factors Further evidence is found in the almost unfailing therapeutic effect of change in environment

An interesting study of home factors and poor appetite has been carried out by Roberts (1929, cf. also Morgan, 1934). Children from well-to-do homes, from farms, and from the poorest section of Chicago were observed at meals. Of the well-to-do children, 65 per cent showed lack of hunger in varying degrees Among the farm children 38 showed a similar lack. In contrast, only 14 per cent of the poor children could be classed as not-hungry. Among the well-to-do children 40 per cent had to be coaxed to eat, whereas this was true of only 5 per cent of the poor children

Excessive Appetite—Ravenous appetite is uncommon among mentally normal children. It is sometimes found among the feeble-minded as a usual form of behavior Satiation of the appetite is largely learned, and some individuals fail to learn "when to stop" This may be true of children because of inadequate training, or because of imitation of their elders. The excessive eating associated with some periods of growth, or with exercise, or with merrymaking does not concern us. Kanner (1935) mentions the pathetic, yet amusing, excessive eating complained of by mothers whose children eat more than the family can afford to supply.

Perverted Appetite or Pica—Enjoyment in eating dirt and debris is found more usually in young children or in the feeble-minded, especially of the lower grades. Kanner (1935) describes thirty cases, only one of which was as old as four years of age. The children ate such things as dirt, sand, rags, string, coal, ashes, paper, paint, wood, stones, match heads, garbage, soap, plaster, bugs, flies, etc. While it is not unknown for perfectly normal children to eat such things in a somewhat experimental manner, the reports on these children frequently say that the child refuses other food, or prefers the unusual food. As this habit occurs practically always in young children, the

prognosis is good, provided the child is of normal intelligence and steps are taken to prevent his continuing the habit This may mean merely close supervision of the child and keeping such foreign materials out of reach, or it may require temporary residence in a boarding home, hospital, or institution

Undesirable Eating Habits—Parents sometimes complain of poor eating habits exhibited by their children Perhaps the most serious of such habits from a psychological point of view is dawdling over meals. Usually this is associated with poor appetite and food finicalness Spending more than the usual amount of time in eating a meal may result from distractions presented by the environment or by the child's own imagination, or from the child's inability to talk and eat at the same time, the desire to talk being greater than the desire to eat Perhaps a more frequent reason for dawdling is the desire for attention that can usually be satisfied in this manner.

Other undesirable habits include bad table manners, sloppiness, carelessness, gulping, and eating noisily These are obviously all matters of training, and satisfactory behavior can be expected only if both parents set a desirable example On the other hand, such complaints should be carefully investigated by requiring a detailed account of the child's behavior Some parents (especially mothers) set standards so high that the six- or eight-year-old can hardly be expected to meet them.

Vomiting—Vomiting is a common disease symptom in children; therefore, in dealing with this problem any possible physical cause must be eliminated by a careful medical examination. Vomiting not resulting from organic causes may be a habitual form of behavior, or a symptom of emotional stress. Probably the latter is the more frequent Situations in which vomiting occurs may be associated with feeding, emotional states, personality disorders, or imitation of others. Vomiting at feeding time may be caused by an emotional state resulting from the mother's attempts to make the child eat; after several such experiences the child may vomit at nearly every meal as a protest, and the habit may become fully developed A similar use of vomiting as a protest or to attract attention occurs in many situations other than eating When no physical cause is found, therapy should be directed to the psychological problem, the vomiting being considered a symptom which will clear up when the underlying problem is solved.

Management.—Prevention of problems in eating is much simpler than correcting them, once they are established Training in eating should begin early, in fact, it may be started while the infant is still nursing. Feeding periods should be periods of quiet, the diet should follow the doctor's orders With weaning and the introduction of solid foods, the possibilities of problem behavior beginning are enhanced As the child has well-developed sucking movement, but little else, he is apt to suck solid food and actually force it from the mouth. In itself, this is of no consequence, but often mothers take it as refusal of food, or they fear the child will not get sufficient nourishment—in either case they react with anxiety and over-solicitude which tends to make the mealtime one of emotional tension As the child grows older new foods are introduced; sometimes he objects to the new taste or texture and refuses the food. Such objections will be reduced if new foods are introduced in small quantities when the child is very hungry, e g, at the beginning of the meal It is necessary also that the child shall not know what other food is to come Blanton and Blanton (1927) say that such refusals should never be permitted, but that all other food should be withheld and the new food offered again without anger or other emotion Of course, this is not true of those foods to which the child has an allergic reaction Davis' (1928) famous experiment in allowing children at weaning to select their own food showed that they would select quality and quantity sufficient for their dietary needs Once food likes and dislikes have been established, one might expect self-selection of foods to be undesirable from a nutrition standpoint However, this was found not to be true in an experiment carried on at the James Whitcomb Riley Hospital for Children While the child should be expected to try new foods and to eat the food offered, the mother should on occasion allow him his choice Demanding that the child eat a standard amount of food at every meal is unreasonable, for the child's appetite varies from time to time as does an adult's, and no one would expect an adult to follow a monotonously similar program of eating Well-prepared and appetizing food, quiet, cheerful mealtimes, no excessive insistence on conformance to superficial table conventionalities, plenty of time to eat, but not an excessive amount, are all of value in the building up of good eating habits Aldrich (1926) gave the mothers of his infant patients directions for training in feeding, the chief one being never to force the child to eat; the other sugges-

tions were similar to those already discussed. In a follow-up study of 200 children he found that 85 per cent had never exhibited any feeding problems.

The treatment of an eating problem for which no organic basis can be found, is to be directed toward the parent. Whether the poor eating behavior is due to a lack of training or to inadequate training, or is a symptom of a personality disorder, the therapeutic program should be essentially the same. Of course, in the latter case attention must also be directed toward resolving the personality difficulty. The usual finding in these cases is an extreme concern and solicitude on the part of parents, and the first step in therapy must be the changing of such attitudes Coaxing, nagging, anger, spoon feeding, excitement, worry, etc, usually characterize the mother's behavior in relation to the child's lack of appetite or his finicalness. Meals are often prolonged, disturbing affairs Unless the parent will consistently eliminate *all* of these, the prognosis for the development of good habits is poor.

First, the mother must learn that to miss a meal or two will not harm the child Also she must learn not to interfere with the child's eating by word or act When the parent is willing to cooperate by these changes in attitude, then an active program may be started.

1 Regular meal hours should be established and adhered to

2 No eating between meals should be permitted In many cases, it may be necessary and desirable to feed the child five times a day—a light lunch, e g., a cracker and milk, or fruit, in the mid-morning and mid-afternoon—or sometimes only an after-school lunch. These should be treated as regular meals and should be given every day at the same time.

3 Younger children, and sometimes older ones, should eat alone or with other children, not at the family table. This need be followed only in the first training period or as part of a therapeutic program

4 Small portions of well-prepared food, whatever constitutes the meal, should be put on the child's plate It is better to start with small portions and give extra servings than originally to serve too much

5 A certain time—from twenty to thirty minutes—should be allowed for the meal; at the end of this time the food should be removed However, clock watching as a ritual at mealtimes should be avoided.

6. If the child does not eat a certain kind of food, no comment should be made—adults do not always eat everything set before them, so it is hardly fair to ask the child to If it is desired that the child eat a food usually refused, it may be served in a small portion alone, at the beginning of the meal In doing this, it is better not to announce what will come next, or later—after all, if ice cream is to be served, the child will have little interest in spinach, carrots, or potatoes.

7 The whole program must be carried out in a matter-of-fact manner. No comment on the quantity or kind of food the child eats should be made To describe a "matter-of-fact attitude" is difficult, but it is essentially analogous to that of a good hostess who sets well-prepared and attractively served food before her guests without comment The guest accepts the food without comment—except perhaps commendation—and if there is food he dislikes he does not eat it, but neither does he remark about it. The child's behavior might well be analogous to that of the guest.

Change in parental attitudes and the institution of a program of retraining are the essential elements in therapy of psychogenic anorexia The cases studied by Bartlett (1928) were selected as extreme because the loss of appetite had persisted so long that there were objective signs of malnutrition. This investigator found that the addition of fresh calf's liver, broiled beefsteak, and lamb's kidneys to the child's diet were successful therapeutic measures. Such additions should be made without special attention being directed toward them. Special diets and tonics may be necessary in some cases, but in most they probably increase the psychological problem involved. The success of reeducational therapy is well illustrated in Streit's (1931) description of a three-year-old-girl. From the time of weaning, and even before, she had been a decided feeding problem Her father was a physician, and her mother an intelligent, capable woman. Every meal until the child was nearly three years of age was a long period of struggle in which she was fed, while in a partly reclining position, by her mother Six weeks following a change of her environment to a 24-hour nursery school her eating habits were entirely satisfactory.

Enuresis

In the infant, increased pressure from the accumulation of fluid in the urinary bladder is the stimulus for relaxation of the sphincter

muscles, and the accumulated fluid is voided. Control of this sphincter reflex is one of the basic tasks in child training and should be established at least by three years of age. The condition in which there is lack of voluntary control of micturition after three years of age is known as *enuresis* The more frequent type is nocturnal enuresis, or bed-wetting. There are some children who exhibit lack of control during the day (diurnal enuresis), usually, but not always, accompanied by nocturnal enuresis. The data in Table XXXIX show the relative incidence of the two types as reported by Kanner (1935) in an unspecified number of cases, and by Holt and Howland (1919) in 591 cases. These reports agree on the relative infrequency of diurnal enuresis.

TABLE XXXIX —INCIDENCE OF TYPES OF ENURESIS

	Kanner (1935)	Holt (1919)
Nocturnal only	63	34
Diurnal only	7	2
Nocturnal and diurnal	30	64

Data on the incidence of enuresis among children are summarized in Table XL. The percentages in different studies vary widely We have attempted a rough grouping of these studies into those in which the children were presumably normal from a psychological point of view; those which were stu[illegible] problems; and, lastly, thos[illegible] of the first two groups is approximately the same, while the incidences in the third group are higher From the data of this table, we may conclude that about 15 to 20 per cent of children exhibit enuresis

Thom believes that enuresis occurs in the two sexes with equal frequency, and the data of Michaels and Goodman (1934) would appear to support this. Kanner (1935) reports that 62 per cent of his cases were boys and only 38 per cent girls In contrast to this is Thursfield's (1923) report of a greater frequency among girls. Any data from clinics may be suspected because of parental hesitancy in reporting enuresis in girls.

Etiology—The causes of enuresis fall into three groups (1) physical, (2) lack of training, and (3) neurotic or emotional disability The first of these is probably of least importance. Holt and Howland

TABLE XL —INCIDENCE OF ENURESIS

Author	Description	Per Cent
Presumably normal		
Townsend (1887)	355 children	21 5
Ostheimer and Levi (1904)	1657 children from pediatric service	6 0
Slingerland (1917)	Children from 78 child-caring institutions	11 0
Emerson (1917)	136 normal children	8 0
	100 well children in special home	9 0
Pese (1920)	Asylum children	30 0
Rosenow (1920)	85 normal children	12 0
Muhl (1927)	250 pre-school children	20 0
Lewis and Ostroff (1932)	40 normal children	80 0
Michaels and Goodman (1934)	214 girls from camp	23 4
	223 boys from camp	24 7
Behavior problems		
Beilby (1904)	About 900 inmates of a State Industrial School	4–10
Dunham (1916)	800 nervous children (5-16 years)	7 0
Cimbal (1927)	Nervous children	12–15
Ackerson and Highlander (1928)	3000 cases, Ill Bur Juv Research	23 0
Healy, *et al*, (1929)	264 delinquents	15 0
Tilson (1929)	225 cases from seven pre-school clinics	35 0
Lowery and Smith (1933)	3599 cases from the Inst of Child Guid, N Y (reason for reference)	5 0
Addis (1935)	1705 child guidance clinic cases, London	18 4
Kanner (1935)	Harriet Lane Home, psychiatric service	26 0
Mentally retarded		
Wodak (1918)	Retarded children	41 0
Rosenow (1920)	253 feeble-minded children	37 0
	144 border-line children	22 0
Partridge (1927)	Male inmates of Vineland Training School	10 0

(1919) say that in 68 per cent of the cases no physical disability can be found, Woolcy (1931) suggests that the cause is non-organic in as many as 90 per cent

Among the physical causes frequently mentioned are enlarged tonsils and adenoids, adherent prepuce, narrow meatus, vaginitis, spina bifida, endocrine disorders, malnutrition, anemia, rectal irritations, and highly acid urine, especially with insufficient fluid intake There can be no doubt that such conditions as these, and perhaps other minor ones, may be the direct cause in some cases, and contributing or aggravating causes in many cases The tenor of Kanner's (1935) discussion of the organic causes is essentially that while they are important in some cases, no one of the conditions mentioned above invariably results in enuresis Bleyer (1928), from a clinico-therapeutic

study of 250 cases, reaches approximately the same conclusion This author, however, proposes that true enuresis "is a disturbance of micturition in which the physiologic control of the brain is blocked by stronger stimuli which have to do with the nervous mechanism of the bladder." That condition which most clinicians call enuresis he would name "pseudo-enuresis" because it is a "mere perversion of habits in an irresponsible, usually neurotic, and often mentally defective child." Whenever physical conditions of possible etiologic moment are present their correction or improvement must be left to the physician.

Hereditary factors have been suggested as significant in causing enuresis Recently a Russian investigator, Petrovski (1934), has gone so far as to claim that enuresis is a "recessive monohybrid hereditary disease," the anatomical basis of which is an anomalous bladder innervation. From a study of the genealogical histories of enuretics, Frary (1935) found that of 787 members of these families 239 were enuretic. She believes that enuresis is "a hereditary trait determined by a single recessive gene substitution." Although in essential agreement with Petrovsky, she does not suggest a possible anatomical basis. While one must admit the possibility of such hereditary factors playing a part in some cases, they probably have no part in many Of course, parents frequently give as a reason for their child's enuresis, "Oh well, his father was the same way," or "The poor girl, she has just inherited her weak kidneys." Prognosis and therapy are better based on other etiology than this

The remaining causes are apt to be so closely associated that it is difficult to separate them In some cases, it is quite evident that the problem is simply the result of a lack of adequate habits. Such lack of habit development may, in turn, be due to several parental attitudes. The following conditions do occur and should be discovered in taking the history· (1) *Carelessness and lack of interest on the part of the parents.* Some parents, usually of low mental status, show no concern with the training of the child in toilet habits Frequently bedwetting is accepted as a familial trait, and judging from other members of the family, the parents believe that the child will outgrow it. Some children, even under such conditions, will do so; but from the point of view of their future welfare, it is not worth taking the chance (2) *Low ability in the child* may make the training program longer and more laborious, so that parents will not exert sufficient effort That training in toilet habits is possible in the feeble-minded is demon-

strated by every mentally defective child who has satisfactory habits—and there are many of them, as shown by incidences reported in Table XL. Probably the most elaborate study of the relation of enuresis to intelligence is that of Ackerson and Highlander (1928), who found no correlation; the distribution of I.Q.'s for a group of enuretics and a group of non-enuretics both followed the usual normal curve. (3) *Parental belief in heredity,* leading to a feeling of futility in attempting training. Kanner (1935) reports this pregnant statement of one mother "I did not do anything about it because it is inherited from her father, he was twenty-two when he stopped" (during war-time service in the army)! (4) *Lack of training facilities* In some homes where the toilet is in the basement or back yard the parent neglects training because of the trouble and discomfort to herself or the child (5) *Parental (usually maternal) over-solicitude.* Such indulgence is excused on the grounds that the child is too small, too delicate, ill, nervous, or the like. Such rationalization usually indicates the mother's unwillingness to have the child develop independence of her

Aberrant personality or emotional conditions as reasons for enuresis coincide in part with certain of the factors enumerated in the last paragraph Thus, parental over-solicitude and constant rationalizing or excusing the wetting are parts of the picture of child dependence upon parents Without training and without even parental interest in the child's development of this socially desirable habit, one can hardly expect the child to show concern. Frequently the family's attitude, sometimes strengthened by the family physician, is that nothing can be done about the condition The child soon adopts this same attitude, even though his lack of control is unpleasant in many ways.

Enuresis frequently appears in children from unstable homes and families Pfister (1904) indicated a relative frequency of psychoneurotic and psychotic conditions in the ancestry of enuretics Kanner (1935) reports the conditions indicative of instability, shown in Table XLI

Such figures as these cannot be taken to mean that any one of these conditions is a direct cause of enuresis in a child. Rather they represent home circumstances that will probably be reflected in the child's total personality development and its distortions, of which the enuresis is only one symptom. This is reflected in the study of Michaels and Goodman (1934), who found enuresis, thumb-sucking, nail-biting, and temper tantrums to occur more frequently in combination than in isolation. On the basis of their study they say, "We believe that enuresis

TABLE XLI—FAMILY INSTABILITIES IN FAMILIES OF ENURETICS

Condition	Per Cent of Patients
Alcoholism in father	25
Alcoholism in mother	2
Serious emotional instability and social maladjustment of parents	80
Feeble-minded or illiterate parents	21
Major psychoses in parents, grandparents and collaterals	22
Suicide in near relation	4
Epilepsy in family	7
Criminal records, parents or siblings	10
Broken homes	27
Sex delinquency of parents	4
Illegitimate child	6

is a reflection of an ill-balanced personality, rather than an independent, unrelated, and insignificant manifestation" Kanner (1935) also finds other personality and conduct disorders occurring frequently among enuretics.

Lack of bladder control may be an indication of other personality conditions. For example, bed-wetting or clothes-wetting is often an indication of fear. Also it may be used as an attention-getting device, because the child finds it a sure way of getting attention, even though such attention may be a scolding or painful punishment. Resentment or spite toward parents or nurses may be expressed by wetting because the child realizes that this act causes them discomfort or embarrassment Lewis and Ostroff (1932) found that temporary bed-wetting was induced by merely changing the child's sleeping arrangement

An interesting case of lack of bladder control was seen in our clinic at the James Whitcomb Riley Hospital The complaint was that this fourteen-year-old boy experienced frequent need of voiding in public places, especially church and theaters. There were no medical findings to account for the complaint. The boy said that following an illness two years earlier, he had had an intense fear of strange public places; this fear had a diuretic effect. Although the fear had disappeared he still had strong feelings of having to urinate He had never been a bed-wetter, never had any unusual desire while at home or at school At the time of writing, therapeutic measures have just been started so that nothing can be said of their outcome.

Enuresis caused primarily by lack of training may become an important etiologic factor in the development of personality disorders With recognition that his bad habit is not usual, and especially with the

attitude of the family being one of hopelessness, the child suffers from discouragement and embarrassment This may lead to a withdrawing type of personality, which, in turn, may become a serious interfering factor in attempts to correct the condition.

Diurnal enuresis is usually, and the nocturnal form is occasionally, due to carelessness and inattention on the part of the child. Wetting during the daytime occurs more frequently when the child is engaged in some very interesting activity alone or with other children. Bed-wetting occurs at times because the child dislikes getting up.

It is evident from this discussion of etiology that no plan for treatment should be entered into without first securing a detailed history The history must be organized to reveal the presence of any or all of the specified etiologic factors

Management—Prevention of enuresis should be the first aim. This can be done only by an active training program. Most handbooks for parents advise beginning training for toilet habits, especially bowel control, as early as two months of age While bladder control is more difficult to establish, there is some of this training involved in the training for bowel control. Specific training for urinary control should start by nine months or one year of age. The following points afford a guide for this training:

1. As frequently as possible, put the infant on a suitable receptacle at the most probable time for urination as determined by keeping a record of urinations for several days.

2 Keep the infant as dry as possible so that he continues to react to wetness as uncomfortable This means frequent changing of diapers at first, but is less troublesome in the long run.

3. Teach the infant to make some sign, preferably a short word, when he needs to urinate, and to use this sound consistently

4 Praise the child from the first for voiding under the desired conditions. Avoid scolding or punishment for failure to do so.

Training for dryness during the night takes longer than the training for daytime dryness. The latter should be started first, and some attempts directed toward the former early in the second year. The child should be taken up about ten o'clock—earlier if found necessary—and again at midnight, and be placed upon the toilet seat as soon as he wakes in the morning. Exact times of arousing him during the night will depend upon the child. Some children void immediately before going to bed and then need to be taken up within one or two hours;

some do not require to be taken up at midnight A time schedule should be worked out on observations of the child during several nights

The clinician is usually faced with a fully developed problem so that his task is to advise procedures for correction. The first step, regardless of any possible factor discovered in the history, is to have a complete and adequate physical examination. When anatomical or physiological conditions are noted which might be aggravating the condition, they must be corrected by surgical or medical attention. Change in the diet may be indicated. Blanton and Blanton (1927) advise putting all cases of enuresis on a concentrated diet (bread, butter, cereals, potatoes, meat, eggs, and small amounts of bulky vegetables) with a restriction of liquids (no soups and only one glass of milk a day) for a few weeks. Thom (1927) says the diet should be bland and above all should avoid highly seasoned foods. Krasnogorski (1933) suggests food with a high water content early in the day and low in water late in the day. He also suggests sufficient salt late in the day to keep water in the tissue but not enough to produce thirst

For most cases without physical abnormalities, or after they have been corrected, a definite training program should be instituted. Such a program should include the following points

1. Restriction of liquids at the evening meal No liquids after this meal In some cases it may be well to allow the child a tablespoonful or two of water at bedtime.

2. Thoroughly awaken the child at ten o'clock or about two hours after going to bed, and have him void.

3. A second arousal at two or three in the morning. In some cases several awakenings and voidings may be necessary at first On each occasion the child should be th[illegible]

4. The use of star charts [illegible] graphic records has proved eminently successful Stars or other marks are awarded for each dry night.

5 The interval between awakenings should be gradually lengthened. For example, if the morning time has been 2 00, it may be changed to 2.30 and later to 3 00. The ten o'clock time should be retained longest of all.

The most important thing in any attempt at reeducation or psychotherapy is gaining the cooperation of the child, and his confidence that the bad habit can be overcome. With pre-school children this

may not be so necessary because they are often still in the original training period. In the case of older children the clinician should frankly talk over the problem with the child and get his reactions. In many cases, the child's attitude merely reflects that of the parents, and this must be changed. Kanner (1935) relates one case of a six-year-old whose problem spontaneously cleared up during the treatment for enuresis of her fourteen-year-old sister In the course of treating the older girl the family's attitude was changed and this was sufficient to correct the habit in the younger child There may be occasions when active attempts to secure the child's cooperation are not the best procedure. Thom (1927) tells of one boy for whom every conceivable method of treatment had been tried, except completely ignoring the problem The boy was seen twice in the clinic without any reference to his bed-wetting; on the third visit he brought the matter up himself. The doctor casually said that he knew the boy wet the bed, but that as soon as the boy decided to stop, the difficulty would disappear Without further comment on the problem, the interrupted conversation was continued. One week later the boy proudly reported that he had not had a wet night

In those cases where the enuresis is associated with fear, resentment, strain, etc, such conditions must be relieved. This may require a complete change of environment, and the removal of emotion-provoking stimulation. Suggestion has been used as a therapeutic measure. Siegl and Asperger (1934), after gaining the confidence of parents and child, used a bitter dose as the vehicle of suggestion. Friedell (1927) reports a high degree of success with "psychic treatment" when the treatment consisted of a hypodermic injection of sterile salt solution.

Sleep Problems

The physiology and psychology of sleep are subjects about which much has been written, but little is understood We may think of sleep as a form of behavior characterized by a minimum of psychological interaction, and during which there is opportunity for physiological recuperation of fatigued organs. The physiological aspect is most evident in very young infants, when growth and metabolism are extremely active and the need for recuperation therefore great With increasing age this need is reduced, although it never entirely disappears The infant sleeps most of the time; but with the decreasing physiological need of sleep at older ages, the hours thus spent are re-

duced, and a rhythm of waking and sleeping is established. It is in connection with this rhythm at a later age that problems arise.

Theoretical normal amounts of sleep desirable for children of different ages have been estimated by various authorities. These estimates have usually not been based on actual observation of healthy children, because when such studies have been made, they do not agree with the estimates Faegre and Anderson (1929) remark, in connection with the study of sleep made by the Institute of Child Welfare of the University of Minnesota, that either the estimated norms are too high or the children studied are getting too little sleep. However, from other evidence the second of the alternatives does not appear to be true In Table XLII are summarized several of the theoretical estimates and a number of reports of experimental observations. In the last column of the table we have essayed a set of norms approximating the average or median figure of the observational results It must be remembered that all of these figures are averages and that any given child may require more or less sleep in order to be in good health.

The times given in the table represent the total amount of sleep in twenty-four hours Below three years of age part of this time is spent in morning or afternoon naps. The daytime nap for most children is stopped between three and six years of age, usually at the instigation of the child. Whether or not the daytime nap is necessary must depend upon the particular child. If he shows no signs of fatigue or other effects of lack of sleep, if his health and behavior remain satisfactory, there would appear to be no need for insisting upon sleeping during the day Until the child starts to school he should lie down and rest for at least a short period each day. During the rest period he may be allowed to read or engage in some other quiet activity.

Sleeping problems are concerned with the adequacy of the amount and quality of sleep that the child gets. For the purpose of discussion we may enumerate the following problems:

1 Wakefulness
2. Restlessness of sleep
3 Dreams
4. Abnormal drowsiness

Wakefulness—Wakefulness usually occurs in connection with going to sleep, but it may occur after the child has once been asleep. In the infant, sleeping is fundamentally physiological His sleeping and wak-

TABLE XLII.—SUMMARY OF NORMS FOR TOTAL SLEEP OF CHILDREN

Age	Estimates (in hours)					Observations (in hours and minutes)						Summary (in hours)
	Dukes (1899)	Hess (1919)	Burnham (1920)	Brown (1926)	Seham and Seham (1926)	Terman and Hocking (1913)	Flemming (1925)	Hayashi (1925)	Chant and Blatz (1928)	Faegre and Anderson (1929)	Reynolds and Mallay (1933)	
0– 1		16–18		16	16–22		15 05			14.45		15
1– 2		12–13	12–14	15	16		13 20		13.42	13 14		13 5
2– 3		12–13	12–14	13–14	15		12.49		12.45	12.43	12 30	12 75
3– 4		10–11	12–14	13–14	14		12 30		12 52	12 07	11 23	12 25
4– 5		10–11	12–14	13–14	13		12 00		12.07	11.43	10 57	11 75
5– 6			11–12	13–14	12–13		11 21		11 30	11 18		11 25
6– 7	13 5		11–12		12	11 14		9 55	11 16	11 04		11 00
7– 8	13		11–12		12	10.41		10 04	11 03	10 58		10 75
8– 9	12 5		11–12		11 5	10.42		9 49	10 35			10 5
9–10	12		11–12		11	10 13		9 44	10 44			10 25
10–11	11 5		10		11	9 58		9 15	10 32			10 00

[illegible] and satiety, according to the studies of [illegible], Karger (1925), and others. With increase in age sleeping becomes more of a psychological activity and the child must learn to go to sleep. This process requires, according to Kleitman (1929), a relaxation of skeletal musculature Relaxation in turn can result only if attention is diverted from external stimulation, especially of the distance receptors, vision and hearing Another condition of relaxation is the absence of exciting and diverting "streams of thought." To achieve the necessary relaxation and thus to get to sleep requires time In children, while they may go to sleep much quicker, at least 20 to 30 minutes from the time of going to bed to the time of going to sleeep may be considered normal. Wakefulness beyond this time may be due to a number of causes.

Physical conditions, such as pain, may cause wakefulness. Environmental factors, such as too much light, lack of ventilation, noise—especially if it is loud or sudden—the body too hot or too cold because of the temperature of the room or the amount of bed clothes, are all common reasons why a child does not go to sleep. Most of these conditions result in temporary wakefulness and are not ordinarily of concern in psychological problems, because in a large measure the psychological problem is characterized by consistent wakefulness night after night, and even when, from other evidence, the child is obviously fatigued. The child may quickly learn to sleep under any of the above-mentioned adverse conditions While it is desirable to have good sleeping conditions, the child should not learn to sleep only where there is absolute quiet, absolute darkness, absolutely the right temperature, and so on. In other words, conditions in the household should be kept regular and normal and the child should learn to sleep under these conditions.

Wakefulness considered as a psychological problem is largely an unwillingness rather than an inability to sleep. As is true in so many problems, the unwillingness is largely due to parental mismanagement. For example, the child is called from an interesting activity, often boisterous, and put to bed. He hears the parents talk of their own difficulties in going to sleep. Some mothers say that the child will not go to sleep for hours, and that he asks for a drink, or to go to the toilet, or makes other requests—which they fulfill—but they do not recognize that the attention is what the child really wants A two-and-a-half-year-old, who did not have a real sleeping problem, on one

occasion was unable (or unwilling) to go to sleep. He cried loud and long, much to his parents' irritation. Finally his father threatened as a last resort to spank him. After a short interval of silence his baby called, "Come up and spank me, daddy"! Going to bed and to sleep is often the occasion for a "scene" such as occurs sometimes at meals There is coaxing and babying, then scolding and nagging, then anger —at least in the parents—while the child probably is delighted at the commotion caused.

Some children develop what Strauch (1919) calls stereotypias. The child can go to sleep only if he has a certain toy, or is in a certain bed, or some other factor is constant Blanton and Blanton (1927) mention a five-year-old girl who was said to be an excellent sleeper "This proved to be true if she had her own accustomed mattress and springs, her own pillow, a certain cover which she pulled partly over her face, a certain 'teddy-bear' which she held, a light burning in the room, and her mother at the side of her bed." Psychologically this child had as serious a problem as one who stayed awake and cried for attention

Fear is a frequent reason for wakefulness Fear of the dark, of being alone, of the parents' leaving, or of imaginary things, is found in the history of children who cannot go to sleep As we have said elsewhere, fears are learned, and therefore the wisest course is to prevent their ever arising. If in spite of precautions they do arise, then they must be corrected before an improvement in the sleeping problem can be expected.

In some children wakefulness is a problem not in going to sleep, but in awakening after they have been to sleep Children may be awakened by noises, a light, or increased bladder pressure, and the like, but this awakening is not a problem When the child wakens for these or other reasons and cannot go back to sleep, then the problem is usually essentially similar in nature to the inability to go to sleep when first going to bed. In this intra-sleep wakefulness the reasons are essentially the same as those earlier discussed. There is an added factor, however—the increased quietness and darkness, for the rest of the family is in bed. This may add or emphasize elements of fear or loneliness and desire for attention.

Restless Sleep.—During sleep children are not immobile, as is often thought. Studies by Marquis (1933), Johnson (1931), Irwin (1930), and particularly by Renshaw, Miller, and Marquis (1933), show that at all ages there is an appreciable amount of motility during sleep.

The conclusion of the last of these studies may be briefly summarized. Each child, under undisturbed living conditions, has a characteristic hourly motility curve, which in general is not materially affected by environmental factors such as temperature, humidity, noises, or by variation in daily activity, or by diet These curves may be modified by illness and emotional states, they show significant seasonal variations Younger children sleep more quietly than older ones

Such findings as these show that a certain amount of activity is normal during children's sleep The average length of quiet periods for all children studied was about eleven minutes. Therefore, by restless sleep as a behavior problem we mean sleep rather violently disturbed. Such disturbances may range from general motility only little greater than that exhibited quite normally by all children, to flailing of the arms and legs, gritting and grinding teeth, head jerking, crying and screaming, talking, to full awakening and going back to sleep several times during the night Restlessness may be caused by organic physical conditions or motor activity associated with dreaming, or it may be the night behavior picture of the child who during the daytime is hyperactive, restless, and excitable

Dreams—Dreaming is as normal and characteristic of children as it is of adults, although increase in variety and detail probably accompanies increase in age and intellectual activity. In general, children's dreams directly reproduce activity of the day, or are of a wish-fulfillment type in which unsatisfied desires of the day are realized. Kimmins (1931), from an analysis of over 5000 children's dreams, is of the opinion that the wish-fulfillment element is of the most importance. The actual content of the dream may be affected by physical conditions such as indigestion, bladder distention, or a disturbed circulation

It is probable that restlessness and activity during sleep are often a motor accompaniment of dreaming Children cry, talk, scream, and sometimes smile and laugh during sleep, and there is evidence with older children that such behavior is part of a dream. Sometimes it is apparent from the direction of the sleepwalking or its persistence that wish fulfillment is involved Graber (1934) has described the case of a ten-year-old boy who, almost nightly from the age of six years, had walked in his sleep to his mother's bed. Psychoanalysis indicated that this somnambulism was directly related to mother-longing

Particularly severe and extreme types of activity during sleep that

are almost certainly associated with dreaming are so-called nightmares and night terrors (*pavor nocturnus*) These two forms of behavior have in common a prominent fear element, although they are otherwise quite distinguishable. Kanner (1935) has most adequately analyzed the differences, which may be briefly summarized

Nightmare· This sort of dream is followed by waking during which the child recognizes his surroundings and can give a fairly coherent account of what has happened. There is usually no disturbance preceding the waking There are no hallucinations, no perspiration, no amnesia for the incident or the dream content. The episode is rarely over a few minutes in length.

Night terror. The fearful dream is not followed by waking, and if the child is partially awakened he does not recognize his surroundings and may hallucinate the dream elements into the room There is extreme motor accompaniment. disturbed features, sitting up in bed or even getting out of bed, screams and cries. There is usually perspiration. The child cannot be calmed during the attack, and following it he is amnesic for the episode and content. Duration may be from fifteen to thirty minutes.

The following description of a night terror in a six-year-old boy illustrates the problem. This boy usually slept quietly but had had two or three nightmares or night terrors, beginning about the age of five On this one occasion the parents' attention was attracted by a sound, half moan and half cry. When they went into the room the child was sitting up in bed with his eyes wide open He was perspiring sufficiently to make his sleeping clothes damp. When spoken to he did not respond, although he did make some unintelligible sounds An attempt was made to quiet and waken him, but without success After probably five minutes or so a wash cloth wrung out in cold water was rubbed over his face and neck. This treatment awakened him and in a few seconds he recognized his parents, but was unable to give any account of his dream After being calmed by quiet assurances that everything was all right, he went back to sleep. In the morning he did not recall anything that had occurred

Emerson (1935) says that night terrors "occur most frequently in nervous imaginative children between the ages of three to eight years" They may recur night after night. On the other hand, nightmares usually end in waking and are not so apt to recur regularly Emerson

also says that nightmares "are more often associated with ill-health and with digestive disturbances."

Nightmares are probably more common than night terrors, which decrease in frequency with age and are rare during or after adolescence Both of these forms probably indicate a pertinent personality aberration, particularly characterized by fear The correction of the symptomatic behavior involves correction and elimination of fears. In acute attacks wakening the child and then gently calming him is perhaps the most useful procedure.

Treatment—The treatment of sleep disturbances, if the possibility of physical cause has been eliminated, should *not* depend upon sedatives. Proper training of the child would prevent the occurrence of most disturbances From early infancy the child should be put to bed at a regular time, the lights put out, and be left alone. If later he awakens and cries, the parent should make sure that he is not wet, or otherwise uncomfortable, and then leave him If the child learns that going to sleep is merely one of the many normal things that everyone does in much the same fashion day by day, the chances of problems arising are small

If for some reason the problem has appeared, the correction should follow a similar plan. Going to bed, or sleeping when there, should be made merely a routine daily task, it should never be an occasion for emotional excitement Prepare the child some minutes before bedtime by having toys put away, and then have a short period of quiet activity, e g, reading of stories, provided they are not exciting If the child has developed a fear of the dark or a closed door, or if he has learned to take a plaything to bed with him, it is wiser not to change these too suddenly, for the result may be that the child will become emotionally aroused Over a period of time the light may be turned out or the toy taken away. After all, it is much less serious to allow a toy in bed, or to leave a hall light on, than to accentuate the child's fears

Restlessness will usually respond to the regulation of evening diet and activity Exciting dreams, nightmares and night terrors are probably more frequent if the child goes to bed too much excited from his evening's play, or if he is not in good physical condition Calm words following the acute attack, and a program to eliminate fear at all times helps in combating these disturbances Emerson (1935) says that sedatives should be used only when the attacks are severely disturbing the child's sleep

Drowsiness.—The converse to the problems just described is found in some children. Parents complain that the child is always tired and sleeps too much, or that he falls asleep during the daytime. The cause of such drowsiness in otherwise physically healthy children is probably most often to be found in inadequate night sleep. The child goes to bed too late, or gets up too early, or both, so that he does not get sufficient sleep. Rearrangement of the sleeping schedule will usually produce good results Kanner (1935) suggests that subnormal children, or children in certain types of communities or homes with very limited interests and activities, may sleep merely as a way of passing time Certain physical conditions, especially malnutrition, may make a child constantly tired and therefore ready to sleep. Narcolepsy and encephalitis, both of which are discussed elsewhere, are associated with abnormal sleeping.

Sex Problems

Of all the behavior problems exhibited by children, those involving sex are perhaps the most disturbing to the parents, teachers and other adults. Our social culture has established such strict taboos on all sex matters that these problems are objected to out of all proportion to their actual seriousness. Because of this unfortunate attitude of parents and others, the psychoclinician must be especially careful, when dealing with these cases, not to assume any moral attitude The child is not to be judged, but to be helped. Here, more so than in any other problem, our interest must be in what the child did and why he did it All questions of whether his behavior is right or wrong must be avoided.

The most frequent sexual problem that occurs is masturbation. Heterosexual and homosexual behavior furnishes a fairly large number of cases, and more bizarre types of sexual aberration occasionally occur Ackerson's (1931) study affords the most elaborate data on these problems In Table XLIII are given some selected figures from his report; these incidences represent only those cases for which notations were made in the case history There was no constant inquiry into the history of sex activities for every child The headings in the table include only those problems of more frequent occurrence. There are some evident sex differences, masturbation and homosexual activity being more frequent in the boys, while heterosexual activities and over-interest in sex are more frequent among girls. A race difference is evident

TABLE XLIII — INCIDENCE OF SEX PROBLEMS
(Ackerson)

	White Boys	White Girls	Colored Boys	Colored Girls
Number of cases	2853	1739	245	163
Known or suspected				
Masturbation	24	11	22	9
Coitus	3	15	9	29
Mutual masturbation, same sex	4	1	1	1
Precocious or over-interest in opposite sex	2	12	2	15
Precocious or over-interest in sex matters	4	6	3	5
Aggressive homosexual activity with same or younger age	3	0 6	4	0
Passive homosexual activity with older age	2	0	2	0
Indecent exposure	2 4	0 7	2	2
Victim of sex attack (not relative)	1 4	8	2	5

only in coitus or sex delinquency. This problem was three times as frequent among Negro boys, and twice as frequent among Negro girls, as among white boys and girls, respectively

Masturbation.—Masturbation is defined as the manipulation or self-stimulation of the genital organs for the purpose of sexual satisfaction In dealing with this problem the genital manipulation of infants and small children must be differentiated from that of older children, adolescents, or adults The infant discovers his body by exploratory manipulation He pulls his ears or nose, plays with his fingers and toes, puts his fingers in his mouth, handles his genital organs, and in many other ways becomes aware of his body. Frequently such activities are pleasurable, and the child may continue them for at least short periods. Parents are usually not concerned over these manipulative activities except those directed toward the genitals; these are thought to be debasing, unclean, and even harmful. The emotional reaction of parents to such activity emphasizes them, with the result that the child continues the practice long after other manipulative acts have disappeared. This may be one starting point for the more serious masturbatory activity of older children Unless one has a thoroughly Freudian point of view, this manipulation of the young child probably has no sexual significance If dealt with in the same manner as any infantile manipulation is dealt with, it will disappear quite as easily and quickly.

Masturbation in older children is so intimately bound up with the whole question of sex, suppressed as it is by social taboo, that it is difficult to see the problem for just what it is There can be no doubt that in some children even as young as seven or eight years masturbation is recognized as sexual activity and therefore comes under the ban of social disapproval. In others it is a pleasurable activity of a sexual kind, but the child is unaware of its nature In adolescents it is probably always a consciously sexual act.

Data on the frequency of masturbation among children are practically non-existent; in fact, there is very little in the way of statistical studies on it at any age. Ellis (1913) has summarized a number of opinions, some of which were based on investigations as to the extent of the practice. The percentages vary from 23 reported for men in the professional classes in northern Italy, to 99 estimated by Oskar Berger In Table XLIV are summarized several more recent statistical studies,

TABLE XLIV —REPORTED INCIDENCES OF MASTURBATION

Author	Group	Number Reporting	Number Admitting	Per Cent
Men				
Exner (1915)	College men	518	319	61 6
Peck and Wells (1923)	College men	188	139	73 9
Achilles (1923)	High school boys	349	197	56 4
"	College men	39	29	74 4
"	Adult men	70	60	85 7
Peck and Wells (1925)	College men	238	195	81 9
Hamilton (1929)	Married men	100	88	88 0
Total men		1502	1027	68 3
Women				
Achilles (1923)	College women	31	14	45 2
Davis (1929)	Unmarried college women	930	603	64 8
"	Married women[a]	951	381	40 1
Hamilton (1929)	Married women	100	40	40 0
Total women		2012	1038	51 1

[a] Reporting masturbation before marriage In no case was the practice begun after marriage, although in at least 62 cases it was continued afterward

based, with one exception, on questionnaire returns from adults Taken at their evident value, these data indicate that about two-thirds of the men and slightly over one-half of the women admitted masturbating It is probable that these percentages are too low because in each study there were some individuals who did not answer the question concerning masturbation at all How adequately these percentages repre-

sent conditions in general we have no way of knowing, for the present we must accept them as the best available estimate.

We are still confronted with the question of frequency of masturbation among children. Ackerson's data shown in Table XLIII report masturbation in about one-quarter of the boys and one-tenth of the girls. The author himself suggests that those figures are possibly not complete because the notation usually depended upon the examining psychiatrist, and it may have been possible that information was not consistently obtained for every case. We may find some answer to our question indirectly from reported ages of beginning masturbation in the cases summarized in Table XLIV. Davis (1929) summarized data on age of onset from the studies listed in this table, and we have condensed these in Table XLV. If we assume that the percentages for

TABLE XLV.—AGE OF STARTING MASTURBATION

Age	Davis' Summary				Calculated for Total Groups of Table XLIV			
	Men		Women		Men		Women	
	No	Per Cent	No	Per Cent	No	Per Cent	No	Per Cent
11 years and less	102	20.9	435	49.1	160	13.9	490	25.6
12–14 years	216	44.3	129	14.6	339	29.4	146	7.6
15–17 years	148	30.3	55	6.2	232	20.2	62	3.2
18 years and more	22	4.5	267	30.1	34	2.9	300	15.7
Total	488	100.0	886	100.0				

the various ages shown in the left half of the table hold for the total group of persons who admit masturbation, then we can calculate that 160, or 13.9 per cent, of the 1149 men who reported on the question of masturbation began the practice by the time they were eleven years of age. As we do not know how many individuals stopped the habit after a short interval, the percentages for different age groups cannot be totaled to represent the frequency of the habit over a larger age range. The figures can be taken only as the number of adults who had the habit sometime during childhood. In this sense it will be seen that almost twice as many girls as boys start the practice under eleven years of age. Between twelve and fourteen years nearly a third of the boys started, whereas less than 10 per cent of the girls began the

practice. Very few girls started between the ages of fifteen and seventeen, but 20 per cent of the boys did. Onset of masturbation during age eighteen and over is in decided contrast, with only 3 per cent of boys and 15 per cent of girls starting at this advanced age. We may say that girls start the habit more frequently as children or in late adolescence, while boys begin more frequently in early adolescence.

Rohleder (1902) distinguished four types of masturbation The first and most frequent is manual auto-manipulation of the genital organs. Second is instrumental manipulation in which foreign objects are introduced into the vagina and occasionally into the male urethra The other two types do not coincide with the definition given at the beginning of this section, but they must be considered as aspects of the problem The third type is mutual masturbation in which two or more children stimulate each other's genitals The fourth type may be called mental masturbation; excitement and even the orgasm is produced by means of sexual fancies or pornographic pictures or literature

Causes.—We have already mentioned the body exploration in which all infants indulge This normal handling may persist because of parental attitudes drawing the child's attention to the act, because the child does not have sufficient other things to do, or for other reasons. Lying in bed awake is an ideal setting for either the initiation or the continuance of the habit. Seventeen of 603 unmarried college women in Davis' (1929) study reported the onset in the third or fourth year. It seems reasonable that onset at such an early age may be related to the persistence of infantile manipulations

Local irritation because of skin disease, uncleanliness, or too tight clothing in the genital and perineal regions may cause the child to scratch and rub Such activity results in pleasurable genital sensations and when the irritation is removed the masturbation becomes a desired end in itself In Davis' (1929) group of unmarried women, 17.7 per cent gave such irritations as the reason for beginning the practice Sensations causing erection, even in small boys, may direct the child's attention to the genital organs, which are then stimulated artificially.

Many other experiences which stimulate the sex organs may be the starting point of masturbatory activity Unintentional handling by parents or nurses, sliding on ropes or banisters, playing in the bath, and so on, have all been given as the occasion for beginning the prac-

tice. In Table XLVI is given the frequency of different reasons as reported by Davis' subjects As the questionnaires to the unmarried and to the married group were not the same, the headings probably do not exactly coincide

TABLE XLVI —REASON FOR BEGINNING MASTURBATION
(Davis)

	Unmarried Women		Married Women Begun before 14 Years	
	No	Per Cent	No	Per Cent
Accidental discovery	322	53 4	128	52 0
Learned from others	165	27 4	102	41 5
Deliberately undertaken as an adult	49	8 1		
Did not answer or did not recall	67	11 1	16	6 5
Total	603	100 0	246	100 0

Learning the habit from others is almost as frequent a reason as accidental self-discovery In Davis' group the habit was most frequently learned from another girl—playmate, sister, or other relative—and, in some cases, from older women Similar figures for boys are not available, but clinical experience leaves no doubt that older boys who have the habit are entirely willing to introduce younger children to it. Children sleeping together affords excellent opportunity for mutual exploration and thence, mutual as well as self-masturbation.

Kanner (1935) calls attention to a circumstance that is frequently neglected In the pre-pubertal and early adolescent periods many children discover the pleasure and mechanics of masturbation themselves without any influence from local irritation or teaching We may add here that probably a fruitful source of such discovery lies in the half truths and complete untruths that comprise the sex knowledge of altogether too many children.

Boenheim (1932) emphasizes dome[illegible]
mismanagement as causes of mastur[illegible]
(1927) say that masturbation may be a sign of tension resulting from home conditions In this way it may be symptomatic of personality disturbances in the same way that nail-biting, tantrums or night terrors are Excessive masturbation, rather than the occasional practice, is more likely to be symptomatic of this sort of disturbance. Mental

masturbation, partaking as it does of the nature of daydreaming, may also be considered indicative of personality disturbances

Effects of Masturbation.—Of greater clinical importance than indulgence in masturbation is the effect of its supposed harmful sequelae Almost every kind of mental or nervous disorder, from acute mania and feeble-mindedness down, has been predicted as a result of the practice. From the time of Tissot's (1760) monograph, the dire results of masturbation were one of the chief concerns of most writers on the subject until the last quarter of the nineteenth century when, according to Meagher (1936), a more scientific approach to the problem was made Even as late as 1902 Rohleder claimed that masturbation had destructive effects on various organs of the body. Fortunately, nearly all physicians and psychologists today are emancipated from these absurd ideas, but they are still believed by too great a section of the lay public.

The best modern opinion has been well set forth by Malamud and Palmer (1932), whose conclusions we may briefly summarize. The frequency with which masturbation occurs bears no relation to the incidence of mental disorders There is no evidence that the practice, *per se,* even when carried into adult life, is a cause of mental disorders, although it may indirectly be of importance because of the patient's attitude toward his act and of what he believes are possible sequelae. In this way masturbation may be a precipitating cause of disturbances of an inferiority and withdrawing type.

It is the attitude of parents, teachers, and other adults that the habit is bad, unclean, shameful, and the like, as well as the all too frequent beliefs in the harmfulness of sequelae, that affects the child and causes him to use any means to circumvent discovery The patient himself may copy the attitude of others and in so doing cause himself much worry and create feelings of inferiority which are much more harmful than the act itself.

The foregoing must not be interpreted to mean that no attention need be paid to masturbation. Just as we are concerned with nail-biting, thumb-sucking, temper tantrums, and all the other forms of undesirable behavior discussed in this book, so we are concerned with this habit. It may be a symptom of a personality disturbance, for as Dennet (1929) says, "extreme masturbation is a symptom of neurosis rather than the cause of it." Masturbatory activities may be so frequent and uncontrolled that they interfere with the attention and

concentration necessary for school work. They may be serious because of the child's attempts to influence other children. Also there may be pathological conditions or infections of the genital organs, particularly in girls, as a result of the methods used In short, there are many reasons why clinical attention should be paid to the masturbator—although possible mental disease as a sequel is not one of them.

Treatment.—The first and, perhaps, most necessary step in the treatment of a child who masturbates is to overcome and change erroneous notions concerning sinfulness or harmfulness of the act that may be held by the parents or by the child. Until this is done, any direct attack is doomed to at least partial failure Parents must be assured of the great improbability of harmful sequelae, and be shown that their concern is potentially more harmful. Especially must they be warned of the undesirability of wrong attitudes in dealing with masturbatory activity in small children Similarly, the child's attitude toward his masturbation should be learned, and when it is unhealthy it should be changed. An unbiased and unemotional consideration of the whole problem will greatly aid the child in seeing his problem in its true light.

Careful medical examination of the genitalia is always indicated Pruritus, eczema, pediculosis pubis, or other skin irritations must be remedied. Phimosis, or tight prepuce, should probably be surgically corrected. Cleanliness of the genitalia is necessary. Children should be taught to empty the bladder before increasing tension causes sexual irritation. Young children should not lie abed for long periods while awake, unless they have books or interesting toys to occupy their time and attention Avoid petting and fondling of such a nature, or to such an extent, that it may afford sexual stimulation to the child

It must always be remembered that in many cases masturbation is symptomatic of inferiority, loneliness, unhappiness, emotional tension, and similar personality disturbances. In such cases there are always other symptoms of the underlying condition Attention must be directed first to the general condition and only later to the specific act Restraint, mechanical or otherwise, threats, severe punishment, emotional appeals, are all of little avail in attempts to cure, although they may operate to make the child cling even more strongly to his habit and to create emotional tensions that may in turn aggravate the habit.

Because of the great frequency with which masturbation occurs, and because probably all persons who have not developed the actual habit have been seriously tempted, Thom's advice—that parents remember
with masturbation—may, if tact-
rtance.

Heterosexual Problems—The child is normally curious concerning everything he sees about him To this curiosity sex is not immune. As a result of our usual cultural attitude, frank sex information is rarely provided, and so the child leans heavily on part truths and misinformation gleaned from playmates, chance observation, and frequently direct experiment with children of the same or opposite sex. In his attempts to get information on this tabooed subject, the child may engage in activities which are frowned upon by his elders Such activities are often looked upon as problems and are called to the attention of physicians, psychiatrists, and psychologists. These problems range from obscene or vulgar talk or daydreams to attempted or completed intercourse.

Sex topics may be taboo at home or with one's elders, but they certainly are not among children. Even among young children sex comprises a fair share of the conversation—often, it is true, without any real idea of the subject After ten or twelve years of age this subject may frequently be a major one—stories, real or imagined experiences, tall but thrilling tales of things seen or heard, questions and parental answers to them are usually the only methods available for the child to get knowledge of this to-be-avoided field With a cultured home background the talk may be restrained, but among other children vulgarity and downright obscenity intrude themselves The reading of pornographic literature and the writing of vulgar notes are problems that occasionally appear.

More direct methods of investigating the field of sex are often employed. Peeping, which is considered a perversion in the adult, may be perfectly normal for the older child who desires information. Peeping into unshaded windows or guests' rooms sometimes presents problems. In crowded homes, or because of unwholesome parental attitudes (e g , over-solicitude), children sometimes are forced to sleep in the same room, or even with, the parents. Under such circumstances they may discover the parents engaged in the sex act and without making known their discovery may subsequently lie awake in order to further

their observations. As early as seven or eight years of age, children sometimes seek information concerning the opposite sex by direct exploration, and occasionally they may attempt to indulge in coitus. Exhibitionism occurs, often as an inducement or suggestion to other children to exhibit themselves

Petting—which is the current slang for a form of behavior that has been variously named by each succeeding generation—includes a large variety of acts of obvious sexual import which usually stop short of actual intercourse This is a problem of adolescence, the seriousness of which depends largely upon one's point of view The greatest harm comes from the excessive emotional stimulation which frequently is uncontrolled. A sane sex education which gives the child some sense of values is of much greater usefulness than endless preachments or attempts at strict deprivation.

Sexual intercourse, particularly in adolescents, is an important delinquent problem. Intercourse may be entered into voluntarily only once or occasionally, or it may be so extensive as to be considered prostitution Assault of young girls by older boys or men, and incestuous relations, can seldom be considered behavior problems in the girl

Homosexual Problems—Homosexuality may be considered psychologically abnormal when it is the preferred type of sexual adjustment, it may be psychologically normal when it is the only sort of adjustment possible In the former case there may be constitutional reasons for the behavior, or it may be entirely a product of the patient's experiential history The latter form is found frequently in segregated institutions where boys and girls are thrown into rather close intimacy with their own sex In young children homosexual practices are frequently merely one way of securing sex experience and have no greater significance In older children either of the above-mentioned forms may occur The child may be the aggressor or he may play a passive rôle. In the latter case he may do so voluntarily or he may be the victim of attack. In institutions for delinquent, defective and perhaps dependent boys, the practices are probably a great deal more frequent than administrators care to admit. Ackerson's data in Table XLIII show approximately five or six per cent of boys exhibiting problems of homosexuality, but practically no girls There is no reason to believe, however, that homosexual acts are not indulged in

by girls. Davis (1929) found 51.2 per cent of 1181 unmarried women who were college graduates who admitted having homosexual experience. Of these, 43.5 per cent began such experience before going to college, and 35.5 per cent during college. These data indicate that the problem is not unknown among adolescent girls.

A less overt form of homosexual behavior is found in the intense "crushes" or love affairs not involving physical intimacy between members of the same sex. These are a great deal more frequent among girls than boys. They may be mutual between girls of a similar age, or they may be one-sided loves of a younger girl for a teacher or older woman. If not mismanaged by provoking the child's resentment through interference or ridicule, and if overt practices do not develop, these "crushes" usually disappear spontaneously.

"Nervous" Habits

There are a number of motor habits exhibited by children which occasion concern on the part of parents. Certain of these habits are limited to quick, involuntary movements of circumscribed muscle groups, while others, of [illegible] more widespread action [illegible] ery are usually called by the generic name, "body manipulations."

Olson (1929) has shown that habits of this sort occur in practically all children. In his study of 467 children in the first to the sixth grades, only one boy did not exhibit some form of this habit during the observation period. From a survey of a number of textbooks Olson devised the following classification of these nervous habits:

1. Oral: sucking thumb or fingers, biting nails, protruding tongue
2. Nasal: picking, scratching or wrinkling nose
3. Manual: picking fingers, writhing hands, clenching fists
4. Hirsutal: pulling and twisting hair, scratching head
5. Aural: pulling and picking ear
6. Irritational: scratching body
7. Ocular: rubbing eyes, blinking eyelids, winking
8. Genital: manipulating genitalia, rubbing thigh
9. Facial: grimacing, twitching muscles

In 459 school children 613 habits were observed. The percentage distribution was as follows.

Groups	Per Cent
Oral	54
Nasal	28
Hirsutal	23
Ocular	15
Aural	10
Genital	4

An analysis of the same data indicates that the frequency of these nervous habits does not decrease with age, and also that girls exhibit more of the habits than do boys. This was particularly true at the younger ages. In his study of possible origins of these nervous habits in otherwise normal children, Olson is led to conclude that the causation is probably multiple, with family predisposition, imitation, fatigue, and nutritional status all being significant factors.

In Olson's investigation of nervous habits no particular distinction was made between body manipulation and true tics, but in clinical practice these two should not be confused. Kanner has outlined differential characteristics which may be briefly summarized. Tics are involuntary movements by circumscribed muscle groups, usually of short duration. Each attack is practically identical with every other one. The onset of each attack is sudden and once started cannot be interrupted. In contrast, the habitual manipulations of the body are not involuntary automatisms, although they may be indulged in without full awareness. Their course may be of long duration, the onset is slow, and they may be stopped at any stage These performances are purposive and pleasurable in themselves, whereas tics have lost any such characteristic Because of these differences we shall discuss the two conditions separately

Body Manipulations—As indicated by the list of nervous habits given earlier, body manipulations may take a variety of forms. Perhaps most common among these—at least they attract more attention—are thumb-sucking, nail-biting, and masturbation. The last of these we have discussed in the preceding section

Thumb-sucking.—This habit is common among infants, and probably at this early age occasional sucking of the thumb should not be considered a problem. In a small number of cases the habit may be congenital, according to Levy (1928). More often its origin is closely associated with the infant's original feeding methods, i.e., sucking at the breast or bottle. Each nursing period begins with the child tense and restless because of hunger. As the nursing continues he becomes

relaxed, and after a fully satisfying meal he is sufficiently relaxed to fall asleep. If for some reason—physical condition, inadequate diet, hurry, or emotional disturbances—the child is not fully satisfied he may suck his thumb or fingers, which apparently continues something of the pleasures of nursing, until he has fallen asleep. There can be nothing seriously undesirable about this form of behavior, provided it does not become chronic. But if the child's feeding is not entirely satisfactory there is the danger that each period will so frequently be followed by thumb-sucking that the undesirable act will become thoroughly habitual. Morgan (1934) suggests that the most frequent reason [illegible] becoming chronic is the worry exhibited by parents [illegible] attempt to correct it by taking the child's thumb from his mouth or by using various mechanical contrivances designed for this purpose, without making any attempt to correct the underlying nutritional cause.

The thumb- or finger-sucking habit is undesirable for a number of reasons In the beginning, as we have just said, it is almost invariably an indication of some nutritional problem. If it becomes chronic it may bring about derisive comments from other children when the sufferer is old enough to start building up social contacts. This habit may also affect the development of the jaw, as was shown by Lewis (1929, 1930), who was able to observe 170 children over a five-year period. Thirty of these children sucked their thumbs and in twenty-four of these cases there was malocclusion of the deciduous teeth. Twenty-eight of these thirty children had contracted the habit in their first year, and it had been broken at ages ranging from nine months to six years. He found that if the habit were corrected before six years of age the malocclusion corrected itself, but if not corrected until after this age it remained static. In a fairly large number of cases Linder (1879) has shown that thumb-sucking is associated with other manipulations such as sucking the lip, pulling the ear, or rubbing some part of the body with the unoccupied hand.

Prevention of thumb-sucking is to be desired. As the condition is so often associated with nutritional status, the first efforts should be directed to making the diet adequate in both quality and quantity. With a full, but not too full, stomach the infant is much less likely to resort to thumb-sucking for satisfaction. If the habit persists, Thom (1927) believes that simple restraint may be desirable. This may consist of gently removing the thumb from the mouth, and perhaps giving

the child something to hold. The use of mechanical restraint or ill-tasting medication on the thumb may be useful if the child's cooperation can be secured; but if such measures are used as a punishment, or if the child does not realize their purpose, the results will probably not be satisfactory. Restraint of one arm or protection for the thumb may result in sucking of the fingers or the other thumb. Spitzka (1890) has the following footnote regarding the use of bad-tasting medicine. "In attempting, by means of a liberal application of asafetida, to check the thumb-sucking proclivities of an infant the experimenter's attention was ludicrously directed to the possibility of inculcating any drug habit, provided it be begun early enough Up to and beyond eight months the child—an intelligent one, and since become a good discriminator—was not broken of the habit by this, *a priori* one would suppose, radical measure." Until two years of age or so it is probably wiser for parents to make sure of the child's diet and not to be concerned about spasmodic thumb-sucking.

If the habit, especially in older children, persists or recurs, it is important for the child's own development that it be corrected When this habit, as is more usual with older children, is only a part of an undesirable behavior pattern, then the improvement of the total picture will result in elimination of the sucking. For example, one five-year-old spent most of his time following his mother about and sucking his fingers, in spite of a plentitude of outdoor toys and play space When a desirable companion was introduced, the toys were made use of and the sucking habits disappeared

When the habit is an isolated phenomenon, or even on occasion when it is a symptom, correction may be easily brought about, especially if the child's cooperation can be secured Heering (1932) offers the following suggestions which may be severely criticized by some, but which may prove of value in certain cases: "With older children an appeal to pride is most effective. The use of a cuff or wire 'sleeve'; taking the child away from his play to suck his thumb in front of a mirror for ten minutes; psychoanalysis; taking toys to hold when going to bed; holding bed clothes; and positive suggestions are the best remedies" The use of a star chart for recording improvement, and special privileges for success are sometimes of value

The psychoanalytic belief that thumb-sucking and other acts are substitute forms of masturbatory activity is actively disputed by most workers. Woodcock (1934) finds that sucking habits are not fre-

quently associated with masturbation and that they have no sex significance. Kanner (1935) suggests that instead of thinking of sucking habits and the like as being sexual in nature, we might more reasonably think of masturbation, at least in young children, as innocent body manipulation.

Nail-biting.—According to Thom (1927), nail-biters are more apt to be hyperactive, fidgety individuals than are thumb-suckers. Kanner (1935) says the habit is more frequently an "expression of tenseness." Very infrequently is it a primary complaint in clinic reference. The habit is widespread among children and adults, although the onset is usually after three years of age. Wechsler (1931) observed over 3000 school children in all grades and found incidences as shown in Table XLVII.

TABLE XLVII.—INCIDENCE OF NAIL-BITING IN 3000 SCHOOL CHILDREN

Age	Both sexes		Males		Females	
	No. of Cases	Per Cent Nail Biters	No. of Cases	Per Cent Nail Biters	No. of Cases	Per Cent Nail Biters
Under 3	31	0.0				
3	31	3.3				
4	40	20.0				
5			70	27.1	34	20.6
6			177	29.4	58	31.0
7			153	35.9	184	30.9
8			112	35.7	158	39.9
9			122	38.5	91	25.6
10			127	33.9	98	33.7
11			104	33.7	76	32.9
12			103	35.0	87	43.7
13			110	43.6	81	44.4
14			150	42.0	163	34.3
15			114	32.4	196	31.1
16			68	27.9	184	23.9
17			21	19.0	82	15.9

NOTE: All ages include, e.g., from 3-0 to 3-11.

Wechsler draws a parallel between the increase in incidence with age and the Freudian division of sexual development, to the end of "proving" that nail-biting is "nothing but a particular form of unconscious masturbation activity." This conclusion from the data is an excellent example of the weird logical flights of which the cult of psychoanalysis is capable.

Viets (1931-32) compared a group of nail-biting clinic cases with a group of non-nail-biters. She could find no difference in intelligence

or physical condition; the nail-biting did not seem to be associated with any pattern or problem behavior; it was not associated with masturbation; and the nail-biters did not seem to be essentially "nervous" children. The chief difference between the two groups was in the greater frequency among the nail-biters of situations indicative of tension in the home Kanner (1935) found that nail-biting was associated in his cases with other indications of tension in the child.

Corrective procedures utilizing restraint or bitter-tasting applications are even more contra-indicated for nail-biting than for thumb-sucking Therapeutic measures must be aimed at relieving the underlying tension, and this involves treatment of the child's whole personality.

Other manipulations occur with a great deal less frequency than the foregoing. Sucking the tongue or lips, biting the lips, picking the nose, pulling the ear or hair are all found. Usually they are part of a manipulatory pattern and are indicative of widespread behavior disorder. Sometimes any one of them may be a temporary reaction to a local irritation. Scolding, nagging, or otherwise attracting attention to them hinders rather than helps in their elimination.

Tics.—The circumscribed motor spasms known as tics may be manifested in a wide variety of ways. Most frequently they involve grimaces and other facial movement—winking eyes, stretching the mouth, wrinkling the nose, etc.—although neck movement and other muscular movements may be involved From his survey of the literature Olson (1929) presented a list of fifty-five acts called tics by one or more authors. Many of these are of a gross, involuntary character that are best considered body manipulations. Among the rest are included grimacing, puckering the forehead, blinking, winking, trembling nostrils, twitching mouth, twisting the neck, nodding or jerking the head, jerking hands or arms, shrugging shoulders, shaking foot or leg, blowing through the nostrils, spitting, etc.

There appears to be general agreement that tics are a symptom of "nervousness" or neuropathic tendencies. Walsh and Foote (1924) say, "Almost any normal movement may, in nervous children, come to be repeated so frequently as to become a tic." A temporary local irritation, e g , of the eye, ear, or mouth, tight clothing, irritating infections, etc., may start a perfectly normal response, which is continued until it loses its purposive character and results in the involuntary type of behavior called a tic.

Boncour (1910) reports that 417 of 1759 children between two and thirteen years of age exhibited tics. The frequency by age is shown in Table XLVIII. Most writers believe that the age of onset is after six

TABLE XLVIII.—INCIDENCE OF TICS

Age	Both Sexes	Males	Females
2–4	15		
4–5	5		
5–6	3		
6–7		27	27
7–8		23	19
8–9		39	25
9–10		19	27
10–11		14	28
11–12		50	29
12–13		11	7

years. Kanner (1935) reports that the youngest tiqueurs in his group were six years of age, which is approximately the earliest age mentioned by Thompson (1921) and by Meige and Feindel (1902)

Tics should be distinguished from body manipulation, the differentials between these have been mentioned previously. Certain neurological conditions may sometimes be confusing. Among these may be mentioned general hypermotility, chorea, and athetosis.

Therapy must first make sure that all possible physical conditions are improved. Psychotherapy must be directed toward the child and not toward the tics. False notions regarding tics and aggravating environmental conditions must be remedied. The child's own confidence and cooperation are necessary.

TEMPER

As with all other emotional behavior, anger may be a constructive, necessary aspect of human behavior. Child training must aim not to eliminate emotional reactions, but to control and socialize them Watson, in his now classic exploration of emotional reactions in infants, found that restraint of movement by holding the arms, chin, nose, or other part of the body resulted in defense reactions apparently directed toward freedom, which might be called rage. While subsequent experimenters, notably Pratt, Nelson, and Sun (1930), have found that Watson's description of behavior in this situation does not hold true for all infants, yet there can be little doubt that even very young babies

may exhibit behavior similar to that called anger when it occurs in older children or adults. In a general way hindering, interference with activity, and thwarting are the causes of anger, not only in infancy, but throughout life.

Thom (1927) points out that anger reactions may take two forms: first, the active motor and vocal reaction called temper tantrums and, second, sullenness and moodiness. The first of these is disagreeable and undesirable from the point of view of the social group, but the second is probably more serious in terms of the child's own personality development. Temper tantrums, by their very nature, are excellent attractors of attention, and the evidence is pretty clear that attention is usually what the child wants. On the other hand, sullen moodiness represents an inhibition and repression of anger that finds no outlet. It accumulates and distorts the child's outlook on life so that he is bitter and resentful, and cannot and does not freely adjust to social demands.

Goodenough (1931), in a study of anger in a group of 45 children ranging from seven months to about eight years in age, found that the behavior picture changed with age. Three-quarters of all outbursts recorded in children under three years of age were primarily displays of undirected activity such as kicking, stamping, jumping, holding the breath, stiffening or making the body limp, crying, screaming, and so on. Some 66 per cent of all outbursts for both sexes and for all ages involved behavior of this sort. Resistant behavior, such as turning the head or body, refusing to swallow, refusing to open the mouth, or running away, occurred in 44 per cent of the outbursts, with no significant variation between the two sexes or in different age groups. The third type of behavior exhibited—retaliative—such as calling names, grabbing, biting, throwing objects, threatening, etc., occurred in only about 16 per cent of the outbursts, but there was a definite tendency for these to increase with increasing age, e.g., only 6.3 per cent of the outbursts of one-year-olds were of this type, in contrast with 28 per cent of those in children four years or older. Of the 1878 outbursts of anger studied, fewer than one-third lasted as long as five minutes.

Anger displays probably occur to some degree in nearly all children. In Goodenough's (1931) group of 45 children of college graduates, with none selected as particular problems, anger outbursts were exhibited by all. The frequency varied from one four-year-old girl who

had only four tantrums in 131 days, or 0.13 per day, to a baby boy one and a half years of age who had 109 outbursts in 30 days, or 3.63 per day. Temper displays are a rather frequent problem presented by children referred to clinics. In Table XXXV above we find that 31 per cent of the cases at the Institute of Juvenile Research, 29 per cent of the children from pre-school clinics, and 54 per cent of the problem children referred to the Berkeley School Clinic exhibited this form of behavior. Even among the 109 non-problem children studied in Berkeley, 23 per cent were reported to have had temper tantrums Among 3600 cases studied in the Institute for Child Guidance, 8 per cent were referred because of tantrums Kanner (1935) reports that among all cases referred to his clinic, 16 per cent exhibited dramatic outbursts of anger

Tantrums may occur at any age, but Ackerson (1931) and Goodenough (1931) both found a consistent decrease with increasing age In Goodenough's small group of young children the greatest frequency of outbursts per hour was between one and two years of age Ackerson's large clinic group showed the greatest percentage of cases between three and four years. On the other hand, Kanner (1935) found that 11 per cent of his cases showing tantrums were four years, 13 per cent were six years, and 16 per cent were nine years of age Moreover, his data show no consistent trend.

When the frequency of tantrums is compared with M.A., both Ackerson and Kanner find a lower frequency with higher mental age Ackerson's data show the decrease starting at a mental age of four or five, in Kanner's group the frequency is 10 per cent or more for M.A.'s three to nine, the frequency being less than 4 per cent for higher M.A.'s. Ackerson finds a slight increase with I.Q., especially among younger boys Kanner's results are somewhat opposed to this, as about 40 per cent of this group were of average or greater than average ability and 60 per cent were border-line or feeble-minded.

Ackerson (1931) reports that 34 per cent of 2853 boys and 27 per cent of 1739 girls had notations of some type of anger in their histories. Kanner (1935) found that 63 per cent of his cases who showed temper tantrums were boys and only 37 per cent were girls. Goodenough (1931) found the frequency of outbursts per hour to be .09 for boys and .08 for girls These data suggest that temper tantrums are probab[illegible] boys than among girls.

[illegible] ger outbursts is always a real

or imaginary interference with, or hindrance to, present activities, or planned future activity This does not, however, explain why some children exhibit frequent tantrums while others seldom do, or why the same child may be quick to anger on one occasion but not on another. As with most other forms of behavior difficulties, the major etiologic factor is to be found in the training and attitudes of the home In the very young child, or occasionally in all children, anger outbursts need not be taken too seriously. They are problems only when, from their frequency in an older child, it is evident that he has not learned to control or inhibit his infantile reactions so that his behavior conforms reasonably to the community norms.

The influence of the home is seen mainly in, first, inadequate handling of temper outbursts, and, secondly, the presentation of models for imitation. Even the infant soon learns that he can gain attention by crying angrily, if the mother meets such episodes by satisfying his every whim. Bribing, giving in to the child's demands, diverting his attention, substituting a new activity, removing the cause of the trouble, ignoring the behavior, and isolation were found by Goodenough to be useful in terminating outbursts. However, children whose parents met the issue by giving them their own way had more frequent outbursts. Children whose parents handle tantrums unwisely have outbursts of anger to secure their own way, to secure attention when they feel they are neglected, or because of jealousy Parents who satisfy the child's desires because of his tantrums are laying the foundation for frequent, habitual spells of anger which may remain part of his behavior equipment even in adult life.

The excited, loud-speaking, angry father or mother; the nervous, fussy, inconstant mother; the drunken, brutal father, all present models for the child's anger, or situations ideal for its arousal. The parent's unthinking interruption of a child's play or plans is also frequently a reason for temper display. Often the brief resentment at being interrupted is justified because the parent has failed to consider the child's rights. But if such interference is too constant, the child may learn to respond to any and every direction with temper and refusal. There can be little doubt that the most important reason for the development of temper tantrums or any other form of anger behavior as a consistent part of the individual's behavior picture, lies in the influences of the home and parents.

Physical conditions are frequently causes of increased irritability,

and consequently any physical abnormality should be corrected. Goodenough (1931) found that temper outbursts were much more frequent when the child had a cold or was constipated or fatigued, or when it was almost time to eat. Kanner (1935) found two children who exhibited tantrums only during a period when they were suffering with scabies.

Treatment—As poor physical condition does aggravate, and on occasion may be the chief cause of, temper, it follows that any therapeutic measures must include adequate medical attention. With the child in good health, the next requirement is a stable, quiet, unemotional home environment. Thirdly, parents must learn to recognize outbursts of anger for what they are and deal with them wisely

Concern over the outcome of a tantrum, even though it includes breath-holding, head-banging, or other spectacular acts, should never be shown As soon as the child recognizes that the parents are worried, he has discovered that it is only a matter of time before he will gain his end. Exhibition of alarm and concern over the child is probably the most frequent reason for establishing and maintaining the tantrum behavior Unless the child has a serious organic disability, particularly of the heart, the chances of harm resulting from a tantrum are nil. If there is danger of the child hurting himself with, or destroying, objects in a room, he should be put in a safer place Coaxing, reasoning, and cajoling mean nothing to the child who is in a rage; yelling and beating serve no useful purpose. The wisest way of dealing with the tantrum is to ignore it at the time and forever afterward. Let the attack spend itself; if the parents cannot "stand it," they are under no compulsion to remain witnesses. Regardless of the parents' fears, or the neighbor's objection, or well-meaning advice not to cross the child, parents should never permit a child to get what he wants by means of a tantrum. Every time the child does so he strengthens by just so much this very undesirable form of behavior, and, conversely, delays by just so much his learning emotional control.

For a child referred to a clinic as a problem because of temper, therapeutic measures must attack his physical condition, undesirable home conditions, and his own habit patterns. Kanner (1935) wisely warns against "rest cures," sedatives and diagnosing the condition as caused by nervousness, because such measures do positive harm by establishing the conviction that the child is suffering from a "disease," which the parents then expect the doctor to cure. Temper tantrums are

frequently, if not usually, accompanied by other signs of emotional immaturity—fear, enuresis, stuttering, nightmares, tics, and other symptomatic behavior.

Play and Companionship

Play has been defined as doing the things one wants to do; and work, as doing the things one has to do. The adult looks upon most of the child's activity as play, although the child may think otherwise. There can be little doubt that play activities occupy most of the child's time that is not spent in school, in home duties, or in sleep It is also evident that play for children above two or three years of age is largely a social affair which introduces problems of companionship In the psychological clinic are heard the complaints, "He does not seem to know how to play," "All she does is play," "She will not take care of her toys," "He cannot get along with other children," "He has no companions," "He runs around with a gang of bad boys," and so on, in endless variety. All such complaints are based upon behavior that indicates that the child has not formed play or companionship interests in accord with the usual development.

Play activities and their changes with age have occupied a large number of investigators We can make no pretense at summarizing even the most important of them, but must be content with a brief résumé of the principal findings.[1] Below the age of two years the child's play activity is mainly non-social He plays with his body, with objects; he makes noise, he is active in locomotive exploration, he is discovering the world of objects Of course, children of this age do make reactions to social stimuli Buhler (1930) and her students investigated the development of social behavior during the first year of life, and found that from two months on the infant makes a smiling reaction to the human voice. But in play activity the young child is content without companions

By three years, play with others is becoming significant. Van Alstyne (1932) found in a group of 112 children two to five years of age, that play with material occupied 98 per cent of the time they were observed. Of the two-year-olds, 90 per cent played without active cooperation with others, and among six-year-olds nearly 70 per cent played in this manner Over one-half of all the children tended to play alone

[1] Excellent résumés of the experimental findings have been prepared by Buhler (1933) and by Stoddard and Wellman (1934, chaps xi and xii)

when playing with materials. This same investigator found the average time spent in one activity to increase with age: two years, 6.9 minutes; three years, 8.9 minutes; four years, 11.4 minutes; and five years, 12.6 minutes. Mrs. Bott (1928) found a similar increase with age in the time spent playing with a single toy. The time thus spent ranged from one to 7.5 minutes for two-year-olds, one to 12 minutes for three-year-olds, 1.7 to fourteen minutes for four-year-olds, the age group averages being 2.5, 4.7, and 5.6 minutes, respectively. Frequently parents do not recognize that a short span is normal for young children and they complain that the child does not stick to anything.

With increasing age there are gradual changes in the play activity of children. Lehman and Witty (1927) studied several thousands of school children by means of their "Play Quiz." The quiz was a list of 200 play activities, on which the children were to mark those in which they had engaged during the preceding week. It was found that, with increasing age, there was a decrease in number of activities engaged in. Boys of eight years engaged in an average of 40 activities, and girls in 34. By age sixteen both of these averages had dropped to 20, and there was a further slight decrease up to age twenty-two. The change from year to year in type of play interests was gradual, and no age period showed any prevalent type. Three-quarters of the activities reached the peak of their popularity, i.e., the highest percentage of children engaged in them, before eleven years. No age between eight and nineteen could be characterized as primarily social or primarily individualistic. This is in contrast with the findings on pre-school children, when individualistic play is more characteristic, especially at younger ages.

Foster (1930) asked several hundreds of children in the first through sixth grades to write the name of ten outdoor and ten indoor games which they had played more than once during the preceding year. Outdoor games were preferred over indoor games. Games of catch, pursuit, and hide and seek were most popular, both outdoors and indoors, among boys and girls. Table and simple dramatic games were also popular in the indoor class.

From this brief survey it is evident that childhood is preeminently the time for play, and that the younger the child the more different the ways in which he plays. Play involving other children increases in popularity up to the school age, after which there appears to be little change. During later childhood and adolescence problems of

companionship divorced from play arise. The close association between the two warrants treating them at the same time.

Irregular *play interests* are frequently a part of the clinical picture. Interest and participation in play activities found in younger children are a common characteristic of mentally retarded children. According to the findings of Lehman and Witty (1928), children of lower intelligence participate in a greater number of play activities, social games and those requiring physical activity being predominant. Studies by Terman (1925) and by Witty and Lehman (1927) agree that children of superior intelligence prefer play requiring more thinking and less physical activity, and which is only mildly social. Therefore, as we have elsewhere suggested, play interests may be of diagnostic significance in problems connected with abilities.

Unusual play interests may also result from lack of opportunities, from special environmental influences, or from personality disturbances The play activity that is accepted as usual for children of a given age must be learned through experience with materials, and can develop only if space and time are available to gain such experience. In all of these the child from a poor home is at a disadvantage. With extreme crowding in the home, with toys limited to a rag or tin can, and with lack of adequate outdoor play space, such children can hardly be expected to exhibit ordinary play interests, abilities or activities Similarly, lack of companions at the age when children's play is becoming more social interferes seriously with normal development. In some cases the preoccupation of one parent may color the play or play substitute of the child, as is so excellently illustrated in Case Number 45.

The development of social play depends in large measure upon the child's own attitude. If he is withdrawn and introverted, he avoids contact with other children. The lonely child who has lacked companions may have a whole world of enchanting playmates who are preferred to real ones. Emotional instability, especially fear and anger, interferes with forming companionships. The child who is abnormally afraid is the butt of other children's teasing and bullying. He may react with anger, or by running away. In neither case is his behavior likely to win him friends. The bully or show-off, who is frequently merely trying to conceal his real feeling of inferiority, behaves in a manner better calculated to lose friends than to gain them.

Frequently it is complained that a child does not know how to

play, or that he shows no interest in his playthings. Behavior giving rise to such a complaint may be due to diametrically opposed conditions The child who lacks play materials cannot be expected to learn to play. On the other hand, the child with a superfluity of playthings is too beset with stimuli. No one thing claims attention long enough to become interesting. Usually an abundance of toys means psychologically poor toys. Blocks, balls, a doll, a few tools are worth far more than a warehouse full of mechanical contrivances

Attempts to correct play or companionship problems must involve the full cooperation of the home and of the child. Opportunities for play must be afforded. Suitable materials should be available; restrictions imposed by parents because of their fears or other attitudes should be removed; a few constructive toys rather than abundance should be the ideal. Parental interest but not indulgence, assistance but not direction, are needed by the child. Weill (1927) says that after two years every child should have companions of his own age. If he is forced, because of unavoidable circumstance, into adult companionship, the adult should be guided by these principles. (1) Do not interfere; keep in the background ready with help and interest; and (2) follow the child, rather than lead him, in play activity.

Lying

Lying, according to the dictionary, is the telling of falsehoods with the intent to deceive. This limitation—intention—is not always included in the parent's or teacher's complaint that the child lies. The psychoclinician is faced with the complaint of "lying," and he must determine if the falsehood is really lying, and if so, why the child lies; if it is not lying he must make this fact clear.

Lying as a complaint occurs with rather high frequency. In Table XXXV we find that 6 per cent of the children seen in the Institute for Child Guidance had been referred for lying. At the Illinois Bureau of Juvenile Research lying appeared in the history of 24 per cent of the cases Paynter and Blanchard (1929) found lying in 29 per cent of their Los Angeles cases and in 37 per cent of their Philadelphia cases In Martens and Russ' (1932) study, 56 per cent of the problem children were credited with lying, and only 6 per cent of the non-problem children. These figures leave no doubt that children's lies are important problems in clinics.

In Tilson's (1929) pre-school clinic cases there were only 0.4 per

cent reported for lying. This extremely small figure is in accord with the tendency evident in Ackerson's (1931) analysis of some 5000 cases, in which the occurrence of lying was found to increase from less than 5 per cent at four or five years of age for both boys and girls, to a maximum of something over 30 per cent at nine years for boys, after which it decreased to 20 per cent at seventeen years; the incidence in girls continued to increase to nearly 40 per cent by seventeen years. It is also of interest that among children five to twelve years of age there was a marked increase in incidence with increase in I Q, while among children thirteen to seventeen years there was no very evident increase with increased I Q.

There have been a number of investigations on lying or on children who lie Slaght (1928) compared two groups of children selected on various bases as being truthful and untruthful. A more elaborate investigation was carried out by Hartshorne and May (1928). Conclusions from these studies may be briefly summarized No one is inherently honest or dishonest, although those children who cheat will lie about it This is perhaps to be expected because they hope to conceal the cheating by lying. Slaght concludes that untruthful children tend to overstatement, are more suggestible, are quicker in response, but more careless and less deliberative, and they tend to more imaginary activity Truthful children have better moral comprehension, a wider range of information, and come from a better home environment This last is corroborated by Hartshorne and May as well as by studies by Buhler and Haas (1924) and Tudor-Hart (1926) These last studies found that when asked the question whether lying was necessary, only one per cent of children from poor environments and about 50 per cent of those from good environments answered negatively, in fact, most of the former group felt that life made lying a necessity. Lying increased with I.Q in Ackerson's group; Hartshorne and May found a positive correlation, but Slaght found no significant difference in the intelligence of his two groups Hartshorne and May found that deception tends to run in families and in school classes. These authors point out that a particular example of dishonesty must be carefully evaluated and understood before any judgment is made The value of this advice is evident when one considers the types and causes of lying.

Burt (1925) has divided lies into seven types, to which an eighth might well be added. (1) *The playful lie* which is essentially the

imaginative story of the younger child or the awe-inspiring tale of the older one. (2) *The confusional lie* which occurs when the child is required to report accurately events with which he is not well acquainted, and at the same time is distracted by cross-questioning (3) *The vain lie* whose purpose is to attract attention to the teller, pleasurable if possible but unpleasant if necessary. (4) *The malevolent or revengeful lie* which the child uses as a weapon of hate and revenge. (5) *The excusive lie* which is used to avoid the consequences of forbidden acts (6) *The selfish lie* by which the teller calculates to get what he wants by the deception of others (7) *The loyal or protective lie* which is told to protect another. (8) The one we would add may be called *the cultural lie*; in this would be included the lies required by the social amenities and, in the child, those told because of parental direction The first three of these do not constitute lies in the dictionary sense of the word, and while they are frequently complained of, they are not real problems—except as others make them so Likewise the eighth type is not a real problem because of its general social acceptance.

While parents and teachers complain that the child lies, the real problem is why he does In general, we may answer the latter question by saying that lying is always a method of adjusting, albeit an unsatisfactory one This is evident in the third to seventh types of lies earlier mentioned. The child who feels neglected, unwanted, insecure, or inferior may find satisfaction in telling tales of his adventures or in recounting imaginary events because, temporarily at least, he is the center of interest In an attempt to "get even" for a real or supposed injury the child may spread accusations concerning his enemy These may or may not be true, but the essential thing is the child's telling them. When accused of some misdeed the child lies to avoid punishment. If questioned, "Did you do it?" he has two alternatives By a false denial he probably will escape punishment. If he admits his guilt and is punished he may believe he is being punished for being honest, whereas if he is not punished he may take it as permission to repeat the act In cases of this sort it is probably wiser to secure the facts of the situation independently of the child The antithetical selfish and loyal lies are similar in that they are both told to gain an end. Selfish lies may be told in situations where the child does not recognize any more socially acceptable way of getting his desires. Lying to protect a friend is sometimes praiseworthy, but

the child should be led to see that there are better means of protection, or that the other person is probably not worthy of protection.

The first two and the last types of lie can hardly be considered problems, but they may frequently be the starting points of other lying. The exaggerated stories and failure to stick closely to facts, common with young children, should be recognized as childish enthusiasm and not lying. Furthermore, the child should realize that the adult recognizes the inaccuracies. Imagination is to be encouraged, not stifled; but the adult must help the child learn to recognize facts, to see the value of restraint, and to keep distinct his imaginative tales and his actual experiences. If this is not done, then exaggeration—a species of falsehood—may become usual, or the child become lost in daydreams. If the imaginative stories and inaccuracies of the youngster are met by stern retribution and punishment, then he is forced to resort to real lying to evade the parents' anger and indignation.

The cultural lie is an accepted form of behavior, but we cannot expect that the child will be able to make distinctions among kinds of lies The mother sends the child to tell the visitor she is not at home. To the mother this is a conventional way of avoiding unwelcome experiences; but to the child it is a falsehood which he may take as the justification for telling his mother that he has done some required thing, which he actually has not done because it was unpleasant to him. This is only one of many ways in which parents unsuspectingly present falsehood as a model for the child. Promises freely made and equally freely broken without explanation, deceptions practiced to get the child to do something, getting the child to lie to the other parent, and a host of other situations of frequent occurrence do not afford an environment in which veracity can be learned.

Therapeutic attention need seldom be paid to the lying itself; rather the psychoclinician must discover the reasons for the lie. As a first step in doing this the truth should be ascertained. In some measure it may be formulated from the stories of several informants. With some idea of the actual circumstances in one or more cases about which the child is accused of lying, the examiner is prepared to hear the child's own story. Most emphatically the child should not be accused of lying—enough people have already made that accusation. The better procedure, as Hartwell (1931) so well describes, is to put yourself at the child's level and talk to him about his troubles with sincere, sympathetic interest. With his previous knowledge the examiner

is better prepared to control the conversation. Always the information sought for is why the child lied. Once this is determined, then some effort may be made to correct the child's erroneous beliefs, or the parents' attitudes, or the inadequacies of his environment, or to help in overcoming his feeling of insecurity or inferiority, or in some other way making it unnecessary for him to lie.

Pathological Lying—This term has been given to an extreme, chronic type of lying. Not more than about two or three per cent of Ackerson's (1931) cases included such a notation in their histories. Healy (1915, 1917) defines the problem as being a chronic habit of falsification, which falsification is unrelated to any discernible purpose. Epileptic, insane, or feeble-minded persons are excluded from those who may be pathological liars. The lying usually takes the form of false accusations of others or of the self, or it may consist in the formulation of stories about the person's life and experiences

Etiologic factors include predispositions of a constitutional or experiential nature similar to, or identical with, those found in more serious mental disturbances. Precipitating causes are found usually in psychic traumata, frequently of a sexual nature. In many, although not all, of the cases given by Healy, sex accusations and experiences are prominent. Occasionally the starting point for the prevarications may be found in an understandable effort to get revenge or avoid disaster. Ackerson found that the problem was more frequent in girls than in boys

Pathological lying must not be confused with extensive lying of the types earlier discussed. The pathological liar has no point to his lying, he refuses to admit that he is lying—he may even fail to recognize that he is Thus, one of Healy's cases, a girl of nineteen, fabricated convincing tales of having to support an old family retainer, and of the criminal career of her sweetheart, etc. When told point-blank that her story was false, she very quietly and demurely said, "I am sorry you think so" Such lying is probably symptomatic of serious mental conflict that may develop into a psychosis. While disciplinary and reeducation methods may occasionally be useful in therapy, the prognosis is probably not favorable if the neuroticism is too firmly set.

Other Problems

The eight types of behavior discussed in the foregoing pages by no means exhaust all of the conduct for which children are referred

to clinics, but they do represent those fields in which the more important and more frequently met problems lie In this last section we shall briefly call attention to several other problems which, while they may be important and occasion great concern in certain cases, probably do not have the significance of the foregoing.

Swearing, Vulgar or Obscene Language—All vocabulary is of necessity learned from conversation heard or, at older ages, from reading Vulgar, obscene or blasphemous terms are merely part of the vocabulary; therefore, they can be learned only by hearing them used by other people. One six-year-old boy seen in our clinic had a colorful vocabulary of curses and slang which he used in a mechanical sort of way, suggesting a complete lack of understanding of his terms Investigation showed that such language was used freely in the child's home. While perhaps disagreeable to his school teachers and of very limited value to his own adjustments, one could hardly consider this boy's language a problem. Wise teachers in the school can probably teach him the inadequacy of his vocabulary and in some measure overcome the home influence

In older children—or adults, for that matter—constant use of slang, curses or vulgar expressions indicates a lack of descriptive vocabulary. This may be due to low intelligence, or to lack of opportunity to build more adequate language habits In some cases swearing may serve as a compensatory mechanism to give a feeling of confidence, much as stealing does. In most cases correction of the habit can be secured by eliminating such language from the child's environment and then reeducating the child.

Fighting.—Most boys and not a few girls get into a fight or two in the course of their life. Only when fighting becomes too frequent, or when it becomes dangerous because the child constantly picks fights, often with smaller children, can it be considered a problem. Fighting as well as other methods of *bullying* frequently are ways of showing the world that the bully is "somebody" It is often the aggressive expression of feelings of inferiority or insecurity Warren Bertram, whose story is told by Mary Sayles (1928), fought and usually "licked" everyone, big or little He agreed to be good to a baby brother at first, saying that later they could fight His fighting and many other problems appeared to be based upon his jealousy of his brothers and father.

Destructiveness.—The child of pre-school or early school age is constantly exploring his surroundings. Such exploration may lead him

to take his toys apart, cut the drumhead to discover where the noise comes from, or even take the family alarm clock apart All too frequently parents complain of the child's destructiveness when he does things like this. The solution for this sort of destructiveness is to supply the child with toys that can be taken apart without injury, with toys for building, and with an old clock and other worn-out mechanical instruments. There will then be no occasion to destroy family property.

Destruction of toys or other playthings also frequently accompanies an overabundance. Too many toys usually mean a lot of mechanical contraptions which are amusing when first seen, but which are of even greater interest when they are taken apart to see what makes them go In fact, probably the only value to be found in such mechanical toys is what can be learned when they are taken part

Undesirable destructiveness in young children is associated with a lack of training in values, with selfishness, and possibly with personality disturbances. Children have no inherent understanding of the value of property, or the relative values of different properties The development of such an appreciation is one of the essential aims of child training Absurd, thoughtless destruction suggests inadequate training—the selfish child has received inadequate training; so have many others Sibling jealousy may be at the basis of destructiveness One mother reported that her oldest girl broke her dolls' dishes, her dolls, and other things, and then demanded that her younger sister share with her. This was only one of several indications of the older child's jealousy. This undesirable type of destructiveness should be corrected by better child training where the training is inadequate, or by attention to the personality disturbance which appears to be the basis of the behavior

In older children destruction of the property of others is, of course, a type of delinquency With these children the reasons for it are much the same as those of younger children In dealing with children thus accused, one must be sure that it wasn't accidental, and also that the accusation is not out of all proportion to the damage done.

Children's Suicides—There may be some question as to whether suicide in children is a psychoclinical problem The justification must be that suicide or attempts at suicide are symptomatic of behavior difficulties

Suicides among children are very infrequent Hoffman (1928) re-

ports that in the period 1920-1925 there were 16,505 male suicides and 85,804 female suicides in the United States registration area. Among these, children were represented as follows:

Age	Number Male	Female
5-9	1	0
10-14	4	20
15-19	274	284

Kanner (1935) cites figures for subsequent years as follows: 1926, 40; 1927, 53; 1928, 36; and 1929, 33 children below the age of fourteen years.

These data give no support to a belief in the increase in child suicides during the last decade, and earlier figures indicate that the proportion has remained essentially constant. Hoffman gives the following data: In the period 1904-1913 there were 5 boys and 2 girls' suicides between five and nine years, and 132 boys and 100 girls between ten and fourteen years; in the period 1911-1915 there were 1 boy and 1 girl between five and nine years, 78 boys and 73 girls between ten and fourteen, and 825 boys and 1073 girls between fifteen and nineteen years of age.

In the 162 cases reported between 1926 and 1929, the following were the methods used:

Firearms	79
Hanging or strangulation	44
Corrosive substances	14
Drowning	8
Poisons (not corrosive or gas)	8
Gas	5
Cutting and piercing	2
Crushing	1
Others	1

The causes of suicide or suicidal attempts in children are probably always related to unhappiness and similar depressing personality feelings. Several cases cited by Hoffman may be mentioned A sixteen-year-old boy, son of a psychiatrist, who was withdrawn and avoided social contacts, killed himself after remarking that he saw nothing worth while in this world A high school boy shot himself after writing an explanatory note that he was doing so to lighten the family expenses. A fourteen-year-old boy shot himself while angry because his mother would not let him follow his own Fourth of July plans. Another sixteen-year-old boy shot himself after leaving an

elaborate explanation, the essence of which was a confusion over the ultimate meaning of existence. This and other evidence suggests that the child with a withdrawn, introverted, schizophrenic type of personality is more apt to attempt self-destruction

Kanner (1935) calls attention to the occasional cases when a child kills himself accidentally, but which appear to be suicide. He also says that suicide and attempted suicide may be a spite reaction. Suicidal attempts may sometimes be indulged in by problem children for the purpose of attracting attention or gaining other desires.

Illustrative Cases

As one reads the records of children seen in the clinic, or the cases which various authors have selected for publication, one particularly notices the lack of specificity in the nature of the problem behavior. Chiefly for this reason it has seemed neither wise nor desirable to attempt to present cases illustrating each of the special types of problem discussed in the foregoing In the following pages we have presented a number of cases quoted from the studies cited. This small group is reasonably typical of the kind of problems being dealt with daily Some of the accounts are more complete than others and probably none of them are as complete as we might like; they are written from different points of view and for different purposes We present them without comment as illustrations, and as possible exercises for self or class discussion.

Case Number 22 (Foster, 1925). Undue concern on the part of the parents often causes marked changes in the personality of a child. After a serious illness or accident which has placed him in danger and caused anxiety in the household, it is difficult for parents to control him wisely They may cease to exert authority, fearing harm will result, and it takes only a short time for a child to learn that with his symptoms he can control his environment.

We recently saw a child of nine who had been excluded from the public schools for a year because of conduct so vicious that she could not be tolerated in the group. She had been a normal, friendly youngster until a little more than a year before, when she was knocked down and run over by an automobile. She was taken to a hospital and remained unconscious for several days. Later examinations and X-ray observation showed no evidence of injury, although she complained of abdominal pain and headache.

Her family was most solicitous The older children were made to give way to her wishes and she became the center of much attention and concern. No discretion was used in talking before the child; the whole affair was gone over in detail and the mother constantly asked her how she felt. Being easily suggestible, the youngster quickly acquired many physical complaints Her frequent response became, "I don't feel well," or "My heart bothers me." If aroused, she would explode in outbursts of temper. Her conduct at school became defiant and belligerent. On one occasion she gouged the face of a schoolmate with her finger nails Another time she pursued a boy into a delicatessen shop and threw an over-ripe tomato at him. After several trials she was finally expelled from school, having earned the reputation among the teachers and playmates of being "crazy"—a rôle which she, with her impulsive acts, well filled The family obtained a private tutor for her, and this increased her claim to invalidism and caused her to stand out still further from the group as an unusual personality When first seen at the clinic, she appeared to be in full command of her environment.

Physical examination showed no basis for her complaints Psychometric tests gave her a "low normal" rating, with good general ability. The situation was gone over carefully by the psychiatrist with both mother and child Arrangements were made to reinstate her in school The whole matter was explained fully to the teachers, who, although dubious, after persuasion agreed to give her a chance Emphasis was placed on a desire for good health, and the accident and its effects were minimized. All talk in regard to her symptoms was absolutely tabooed in the presence of the child. Her response was immediate Her difficulties outside the home did not recur. She was given many wholesome opportunities for attention and approbation in her school contacts. At home the progress, although slower, was steady The many personalities in the home made the task of changing attitudes a difficult one, but gradually this child is falling back into her proper relationship to the others in the household.

Case Number 23 (Rogers, 1933). An eight-year-old boy backed into a corner of the schoolroom, face livid, eyes partly closed, hatred in every line of his body, hurled an eraser at his teacher and shouted, "You shut your mouth! Yon can't make me do it!"

This particular tantrum on Dick's part was caused by the teacher's request that he go to his seat. Other tantrums, equally violent, made him a very difficult problem in school Dick's diagnosis of the situation given in one of his better moments was, "Satan had my father.

I have a temper just like him. It's better to have a temper—you need it When the Devil comes around, I just have to get mad" Dick had other satanic afflictions. He had a mania for knives and slept with one under his pillow, often threatening what he would do with it. He had always had night terrors, which would waken him screaming with fright. He showed a deeply sadistic streak, enjoying cruelty to pets and small animals and continually poking, teasing, and pinching children at school.

Needless to say, there was ample background to explain Dick's behavior The mother, an attractive woman, had spent most of her childhood in an orphanage, and her adult years were given over to compensating for the boredom of the institution. Her promiscuity engendered a deep jealousy in Dick's father, and his fearful temper storms gave the boy the pattern for his behavior The father's cruelty was known throughout the rural neighborhood, and his almost insane torture of some of the farm animals makes gruesome reading More than once he threatened to kill his family, and his beatings terrorized the children When he was sent to the penitentiary on a charge of rape, the mother became even more promiscuous and also more religious. She joined a revival mission and created a scandal by her actions with the minister

She visits Dick quite frequently and heaps presents on the boy as she coddles and kisses him Dick is quite upset by her visits and by her talk of taking him to live with her After these visits he becomes irritable and more inclined to temper spells He also shows a tendency to lord it over the other boys because of his more numerous possessions Were it not for this outside influence, Dick would be making a completely satisfactory adjustment in the boarding home Temper tantrums, sadistic impulses, vicious tendencies—all have disappeared.

Case Number 24 (Ebaugh and Lloyd, 1927). Genevieve, eleven years old, had stolen pretty things and food frequently during a period of three years before we saw her She was referred to the clinic by the school principal, with a report of failure in school work for two years. She was at the time doing unsatisfactory fourth-grade work. Her grandmother, or rather her mother's stepmother, considered her a problem on account of her cruelty and selfishness toward her two younger half-brothers, and her utter lack of responsibility about the home More important, however, than an enumeration of her offenses is our disclosure of some of the details of the mental mechanisms that led to her delinquencies

We found a girl of good general development and nutrition, rather

pretty, but negativistic and sullen. The grandmother gave the early developmental history, which was negative.

Genevieve's psychological examination was most illuminating. Her I.Q. was 89. At times during the examination she impressed one as the dull-normal type, while at other times her answers were brilliant. Again she would become preoccupied and would not answer at all. She was rather obstinate, and we were afraid that no contact had been made. But at the end of the interview she asked to be allowed to remain and see the other children tested. She was curious to know the names of the other children the school had referred, and very frankly asked why she had been sent.

Situation: Genevieve's mother left her father's ranch at sixteen years of age. The step-grandmother was frank to admit that the mother had resented her coming into the home and had gone to a Middle-Western city to secure employment. At eighteen years of age she became illegitimately pregnant by a married man, and returned to her father's ranch for the birth of the child. Her father and brothers were most disagreeable, and her only friend was the stepmother. She had acquired city habits and hated ranch life and food. A substantial young rancher in the community wanted to marry her, but her father objected and forced her to marry a man of his own choice. By this union there were two boys, but the marriage was not satisfactory. There were incompatibilities and financial difficulties, and at present the husband is in the state hospital for the insane—diagnosis, general paresis.

After the husband was committed, his brother came to help with the ranch work. Gossip developed in the neighborhood. The mother would have married her brother-in-law, but could not secure a divorce. She had corresponded regularly with the patient's father in the Middle-Western city, and the news of his death was a great sorrow. Shortly after the arrival of this news, the mother had an attack of flu and died. A day later the brother-in-law also died of flu. The children were alone many miles from relatives in the dead of winter. An excited, well-meaning neighbor came to the house and told Genevieve about her illegitimacy, condemning the mother for leading an immoral life. Genevieve had been curious about the relationship between her mother and uncle, but the information that her mother was a bad woman and that she was an illegitimate child, with little or no chance of escaping from becoming bad also, completely occupied her thoughts.

Bad seasons and a fall in the price of cattle forced the maternal grandfather to sell his ranch. The children came to live with the step-

grandmother in a small town, while the grandfather went to California, where he could secure employment. Genevieve began being cruel to her brothers and stealing every time she thought about her mother. Unfortunately her history was well known and she was snubbed by her school playmates. She frankly says that she steals articles that can be given as presents to the children she likes and wants to attract. She has now some preoccupation about her illegitimacy, but worries mostly for fear her step-grandmother will die, as an uncle told her that in that case she and the boys would be put in an orphanage and that dreadful things would happen there The child has thought of suicide.

This confession by the patient was a great surprise to the grandmother, as the child had never mentioned these things to her After much hysterical sobbing, Genevieve begged the grandmother to move far away. The present arrangement is that the grandmother is to move with the children to California She has excellent insight into Genevieve's difficulties, and the girl desires to remain with her When last heard from, the child was progressing satisfactorily although there were a few reports of stealing.

Case Number 25 (Richards, 1927) A. B. was a girl of nine years when she was brought to us by her foster parents because of persistent lying, petty stealing of small change from home and school, aggressive indifference, Bolshevistic attitude in school, and autoeroticism. The patient was an illegitimate child who was given for adoption at two years by a child-placing agency to Mr. and Mrs B, who were childless She had a normal development, so far as neurotic and physical data were concerned. At four the foster parents began to notice the above complaints and took her to various doctors without improvement.

Examination of the child showed a physically satisfactory girl, with an I.Q. of 125. She admitted all the accusations against her with an attitude of almost abstract indifference. The parents gave a perfectly smooth story with regard to training tactics and home influences, attributing all difficulties to bad inheritance. The child was placed for a period of study in the neutral environment of a boarding home, far enough away from Baltimore to cut off parental contacts, the parents agreeing not to visit her for a month. Two months here revealed the real facts of the case The parents insisted on coming once a week, claiming that they could not bear the separation, they sided with the child against the boarding mother, who was attempting to carry out therapeutic suggestions given by us. For example, in an

effort to interest the child in active play, to offset the auto-erotic activities, she was dressed in simple clothes, such as gingham dresses and sturdy footgear. A B rebelled in favor of her former dainty dresses and light pumps. She refused to walk half a mile to school with the other children, saying that she was accustomed to being carried in her father's car. Her conversation showed familiarity with beauty shops, movie stars, a popular love serial running in the local paper, and so forth One day the foster mother arrived, and finding the child disheveled in a rough-and-tumble outdoor game, rebuked her for so forgetting her parents as to behave in such an unladylike manner. I had a long talk with these foster parents of A. B, frankly telling them that they must choose between the health of this child and their own standards of foolish vanity which they wished to have exemplified in her. They insisted on picking on the unattractiveness of the boarding home, and finally took A. B. to Atlantic City for a month, to make up to her for what they construed as "ridiculous punishment" Our own contact with the case closed, and since then we have heard only indirectly of the child. A high-school principal telephoned me that she was on the point of expelling A. B as a bad moral influence. (She had left school one afternoon with one of the boys and stayed out all night) This teacher had asked the parents to bring the girl to us for examination, but they had refused, saying that they had already consulted our clinic and received no help whatsoever. A few months later the child-placing organization from which they had adopted A. B wrote me that these foster parents were trying to take legal measures to return her to the organization as a "degenerate" Meanwhile these same parents had been given by the child-placing organization another little girl, "to try for a few years, with the view of adopting her if she proved satisfactory" She was of good parentage and as pretty as a picture, so the organization told me Last summer they returned this child, now eight years old, to the child-placing organization, saying that she had developed all the distressing behavior traits of the unlucky A. B. Examination of her revealed the same picture presented by her foster sister almost four years before

It was hard to make this organization, or any other intelligent person or group of persons, realize that a home so satisfactory from the standpoint of hygiene, economic sufficiency, and church and club affiliations could be so absolutely demoralizing in its subtle emotional influences It is indeed hard to put the latter into words; yet the two children reflect parental attitudes and conflicts that are unmistakable The foster father is a hard-working man who has struggled to get

on in life and keep up to his wife's expectations Within the past few years their financial status has improved greatly. The foster mother is a woman who impresses one as making heroic attempts to put her best foot forward in every direction. One feels that clothes, household furnishings, and car are just a little bit better than she can really afford It is she who undoubtedly sets the family living and social standards.

To furnish material over which she could better drape her vanities, she selected two pretty, attractive little girls, whom she tried to convert into French dolls In her simplicity she forgot that these dolls were receptive personalities, richly endowed with the power of imitation They copy her scornful attitude toward social inferiors, her overbearing manner toward servants and tradespeople, her distaste for and revolt against the irksomeness of routine, expressed in many a subterfuge. But when these habit responses are turned in her own direction, the foster mother becomes alarmed, and rationalizes her failures by blaming bad inheritance for the unhealthy behavior trends. For example, she would have A B punished for lying when she herself promised in the child's presence not to visit her but once a month in the training home to which we sent her, and then went there regularly once a week.

Case Number 26 (Babcock, 1927) Elizabeth has been chosen as typical of a very common problem presented to the Clinic She is Portuguese, 16.5 years of age, and was referred for examination by the Social Service Bureau on account of a general maladjustment in the home

Elizabeth was the youngest of a family of seven girls, and with her sister Katie had been brought up in a girl's orphanage until she was fourteen years old. At the time Elizabeth came to our attention she was living in Honolulu with her sister Annie who was married and had four children, two by a former husband. Katie, on leaving the orphanage, had gone to Hawaii to another sister. The general family situation may be judged by the fact that Katie had a child by her brother-in-law and then married in haste a good-for-nothing man whom she left after two weeks, returning to live with the brother-in-law by whom she had a second child Following this, she came back to Honolulu with her two children to live with Annie.

Elizabeth then was living in a home which consisted of her two sisters, her brother-in-law, four children of Annie's, and Katie's two illegitimate children, plus four male boarders who lived upstairs in the house. Naturally, even in an ill-managed home there is a great

deal of work and Elizabeth was the family drudge, getting up at 5 A.M. to do the endless washing and the rest of the housework. Opportunities for recreation were very small; Elizabeth had been to the movies once during six months, had gone for a motor drive several times, was not allowed out on Sunday though she might have her two girl friends to see her.

The strain of overwork had the result of making Elizabeth emotional, irritable and peevish. The family continued to repress her and keep her in order. She finally discovered that her best weapon to bring them to terms was a fit of hysterics in which she would scream and yell and rouse the neighborhood. Punishment by the brother-in-law was ineffective, so that finally Elizabeth got the upper hand and would go into a tantrum on any pretext that occurred to her. The social worker was called in on one of these occasions when Elizabeth was having a hysterical fit because the sister, who was going to town to buy some furniture, broke her promise to take Elizabeth with her.

The mental examination and interview showed that Elizabeth was certainly not bright She had only reached the fourth grade in school and her mental age was 9 years 9 months She could not arrange the weights in year IX, and the X-year rote memory test (six digits) marked the limit of her ability in that direction. She could not give 60 words in three minutes, nor succeed in the reading and report test. The Porteus Maze test showed temperamental inadequacies also, her record being only 10 years. When the test became difficult Elizabeth made a very poor response.

From the interview with the girl it was seen that there were decided indications of instability and that her only way of affecting the attitude of others toward her was to give way to tempers and allow her emotional tendencies free rein. She was not able to adjust herself in a more intelligent way and lacked the initiative and planning capacity to seek any other avenue of escape It was evident to the examiner that, unless her environment was changed quickly, an hysterical habit would result and her future adjustment would be difficult if not hopeless.

She was placed in another home, allowed control of her own earnings, and encouraged to manage her own affairs as much as possible. She did splendidly for three months, and then, over some trivial grievance or other, broke out into a violent hysterical spell. She had to be removed and, after a period back in her previous home, is now ready to make a new start. The outlook is, however, not bright. Earlier contact with the girl might have resulted in control of her

psychopathic tendencies, but at present she will need close supervision and constant change of occupation.

In a letter dated December 8, 1934, Dr Babcock adds some interesting subsequent history of this case. "On Sunday afternoon a few months ago five different men, all giving the same address, came to the Emergency Hospital for the ambulance to come get their wives. Each man reported that his wife was screaming with a terrible abdominal pain. The ambulance went three times and each time found the same woman, Elizabeth, in one of her screaming spells but in no need of medical care at all. When the last two husbands arrived with the same story they just told them to let her keep on screaming until she was tired Elizabeth is a prostitute and unstable as always, but still has not had to be sent to the Territorial Hospital."

Case Number 27 (Richards, 1920) M W. was a boy of eight in the third grade when first seen in March, 1918 He was referred for examination because his mother had written the teacher that M was a "nervous child" and should be put in the open-air class Aside from being fidgety and desperately mischievous, the teacher saw no signs of "nervousness" in the child, but dared not discipline him because of his mother's note

History· The father is a steady, thrifty worker; the mother an excellent housekeeper. There is one other child—a bright, healthy girl of ten years. The patient had a normal birth and early development. His habits of eating and sleeping were good. Out of school he was constantly active, leading the boys in play and trying by stealth to reproduce mechanical contrivances which he had seen, although his mother forbade his using tools for fear he would hurt himself. Two or three nights a week he went to the movies. The patient began kindergarten at five and came up at the rate of one grade a year He has always been an excellent scholar, but "more trouble to look after than the whole room put together." Three years previously, according to the mother, M W. began suddenly to have "shaking spells" which "commenced in his hands and went all over his body" During these attacks, he would drop anything in his hands. The family physician said that he was "on the verge of St. Vitus' dance" and should be kept as quiet as possible. His mother herself had noticed that these "spells" were apt to come on when he was irritated or crossed in any way. Both the family and school physicians reported his general physical condition as good.

Examination, March, 1918: The patient was a ruddy, talkative little boy who looked the picture of health Knowing that the examiner

was a physician, he began at once to talk of his "nervousness," in which he showed an energetic interest. When asked to reconstruct the setting of the first "shaking spell," he said it came on him one day when he had been called from play to go to the bakery. On the way back, he got so "weak and trembly" that he dropped the bread in a mud puddle Since then the family had not trusted him to run errands, but had sent his sister instead. (What do people think about these spells?) "Mother is scared, and the doctor says I might have St Vitus' dance." (And father?) "He tells me to cut it out" (Who makes you mind best?) "Father I don't mind mother She just keeps on talking and telling me what she's going to do, but I know she doesn't mean it" The patient was courteous enough to explain to the examiner, as a newcomer at the school, that the open-air class sat outdoors all winter and had "swell grub, too"

Neurological examination was negative. The heart sounds were clear and the pulse was normal in every respect

Suggestions for Modification· The mother was seen again and the nature of her son's attacks was not only explained to her, but reinforced by a verbatim account of his opinion of her methods of control It was urged that she drill herself into not worrying over the child, but insisting on instant and exact obedience, utterly ignoring any flapping and shaking he might display. It was also suggested that the boy be given as many concrete outlets as possible for his energy and development of initiative along constructive lines—for example, that he be given a workshop in the cellar or backyard and be allowed to work as he wished, building aeroplanes and other machinery which he wanted to construct, regardless of possible dangers from carpenter's tools

Subsequent Notes, October, 1919 The patient is now leading the fifth grade He and a chum have a shop in the cellar where they spend hours at a time, turning out some very fair models of the neighboring dry docks. The father says that M understands every part of an automobile and often finds the hitch in a stalled truck which his repair shop mechanics fail to locate. A note from his mother reads, "Dear Doctor Please ask M is he nervous any more and who cured him?" The boy himself, in answer to the question, "How are the spells?" replies with a smile, "I don't have any more of them I run errands now"

Case Number 28 (Neumann, 1928) Typical of the children in this group, except that he was more articulate than many of the youngsters, is Frank, a fourteen-year-old boy whose family has been known to

social agencies for the last eleven years Both parents have a good background, but the father, twelve years the mother's senior, became a chronic alcoholic after the mother divorced him. She later married a half-breed Indian with whom she had already been living She was considered so unstable that the children were removed by court order When Frank was seven, he was placed in an institution—an up-to-date institution run on the cottage plan—for two years, except for a short period in a foster home. He was returned to the institution and then to his own home. The necessity for the present removal had been discussed with the boy by the child-placing agent, and he had acquiesced, although devoted to his mother At the institution Frank was described as unruly; after return to his home, he was engaged in destructive gang activity and was a disciplinary problem in the schoolroom, although adequate in school work. In the study home, he was reported as a very active youngster, who played as much as possible with other children, but often teased the younger ones; who did his work well, but often called attention to himself by annoying behavior. One attendant noted, "He thinks it smart to be troublesome" His table manners seemed to be an especially sore point with the attendants; he chattered and even sang at the table and had food fads. The matron thought that the boy really tried to please, that he tried to play with the younger children, but did not know how to go about it He was always dependable

Frank's own story to the psychiatrist gives us our insight into his problem He feels that his first mistake was a fundamental one "I shouldn't have been born into such a family" He has no regard for his father because of his drinking and refusal to provide for the family He has given all his devotion to his mother—but she also has betrayed him by remarrying He is fully aware of the relationship that existed between the mother and the stepfather before their marriage He sees many of the mother's deficiencies, but he always has an excuse for her, and nothing but hatred and contempt for his stepfather His troubles were made worse by being sent to an institution. "That ain't no life for a kid," he says, and adds, "If I hadn't been there, they wouldn't have sent me to that home in the country" He feels that the reason he didn't get along in this home was that he was never really accepted by the family as their own They made more fuss over their own children; when an accident to his hand necessitated a large doctor's bill, they shipped him back to the orphanage (We must remember that these are not corroborated facts, but the boy's feeling about the situation after a five-year interval) In regard to school difficulties he says, "Teachers say I'm too sensi-

tive and I'm flippy. I try awfully hard not to be and try to do my best, but they just don't seem to understand a kid like me." In regard to his table manners at the study home, he exclaimed, "Gee, I guess I must be talking too much I just thought I was doing the right thing in showing them all a good time."

Case Number 29 (Rogers, 1933). John came from a slovenly home in which there was little or no discipline. At the time that he and his sister, aged seven and ten, respectively, were removed from their mother because of her flagrant immorality, most of John's life had been spent in "running wild" in a very questionable neighborhood. The home situation had been such as to stimulate in the boy an overwhelming curiosity in regard to sex The mother had lived with several men, and John had spent hours at the keyhole watching his mother and her latest companion, or the actions of the boarder and his sister. An atmosphere of filthy sex talk in the home added further elements to his fund of information, and even this was supplemented by spying on older boys and girls in the neighborhood John early learned that his sex knowledge gave him a source of power and he was not slow in using it He achieved a reputation among children of his own age, not only for his talk, but for his actions. He had persuaded several of the small girls in the neighborhood to engage in sex experiments with him A complaint was lodged with the police when he initiated two other boys in various sex perversions His language was a scandal in the neighborhood, so much so that even the firemen, with whom John loved to lounge about, chastised him on several occasions as an aid to public morals.

When seen in the clinic, it was felt that John was more saturated with an unwholesome and smutty attitude toward sex, and was more aggressive in sex matters, than any boy who had ever entered the department Within a few moments after his introduction to the psychologist, he was inquiring whether that gentleman was married, and whether he slept with his wife!

The psychological tests showed that John, in spite of his alert manner, was a very dull boy, and this, combined with his attitude toward sex, made the outlook most unfavorable It was felt that whether he was placed in a foster home or an institution, he was certain to "corrupt" the children with whom he came in contact. It was a very dubious experiment, and because of his extreme youth, it was decided to place him in the Thompson home

The fear of John's influence seemed justified the first day of placement. Mrs. Thompson had been forewarned as to John's behavior,

but even she was scarcely prepared to hear a burst of obscenity directed toward the social worker as that individual started to drive away from the home. John was using his best means of gaining attention and he was highly satisfied to see the gaping astonishment on the faces of the other children. Mrs. Thompson immediately talked to John alone and told him in a kindly, but firm, manner that her boys did not speak like that and that if she ever heard such language again, she would wash his mouth with soap. This was the first and the last obscenity that John used as an attention-getting device. To be sure, when aroused, his swearing was extremely colorful, but this, too, gradually came under control. He did try other means of getting attention, as might have been expected He began to tell "tall tales," which the foster mother met by replying with even wilder statements and then laughing away both as jokes She refused to consider them as lies, and hence made it easy for John to give them up. She also gave him ample opportunity to gain attention in other ways; she asked him to perform little tasks for her; she praised him liberally when he brought home a good school paper; she told him of the improvement he was making

In four months Mrs. Thompson was able to report that John was no longer swearing and was very proud of his progress along this line. She could also say that at no time had sex talk or sex practices constituted a problem with John. When his previous behavior is recalled, this seems nothing short of astounding

A year after John's placement in the home, he was restudied at the clinic. Without a knowledge of his past, it would have been impossible to recognize this jolly, healthy, eight-year-old, full of amusing stories about life at "home," as the grave problem of the previous year. He told of earning his spending money, of the fun they had at Christmas, of his responsibility for wiping the dishes, in a frank, spontaneous fashion that seemed to have nothing in common with the smirking, sophisticated attitude of his first clinic contact. Even the memory of his own home seemed to have become dimmed and uncertain He told the interviewer confidentially that he had had "another home," but regarded Thompson's very definitely as his "real home." To cap the climax of the transformation, John spoke with genuine horror of a boy on their street who actually swore!

Three and a half years have slipped by and John's excellent record continues. Nearly eleven years old now, he has developed into an attractive, friendly boy, with a very winning smile He is truthful and dependable, though he is full of life and has to be handled with a firm and consistent hand. He is in fourth grade, doing "D"

work, which is all that could be expected of a boy of his mentality. He has developed an interest in nature study, and enjoys working with tools He is liked by the other boys, and when Mrs. Thompson chose two boys to go on a trip with her as a special treat and a reward for good behavior, John was one of the boys

Chapter X

JUVENILE DELINQUENCY

THE "bad" boy or "bad" girl exists only in so far as society sets conventional standards of behavior to which the child does not conform His non-conformance is not a disease or an inherited depravity. Rather, it is a sign of poor behavioral adaptation for which society, the home, or the child is to blame In the last analysis, stealing, lying, truancy, for example, are either results of inadequate training or symptoms of personality disturbances In no case should we think of delinquency, whether legally or morally so defined, as behavior about which nothing can be done, and therefore be content with incarceration or other punishment. The attitude in dealing with the delinquent should be, "How can we help this child?" not, "How can we get rid of the child and protect society?" This last is often a pertinent question, but should be asked only as a last resort

The auspices under which psychological clinics have operated most frequently, after the schools, are the juvenile courts and other agencies dealing with juvenile delinquents The growth of clinics as part of the juvenile court organization, and the increasing use of other available facilities, sufficiently demonstrate the value of clinical study. Healy (1919) has summed up the values of such study thus: "We know on the basis of long experience that such medico-psychological study brings out points that are absolutely essential to knowledge of causation which, in turn, is the only rational approach to treatment Short cuts to such knowledge are not possible; why should one expect to find them, considering the complexities of human behavior and mental life? And what are hours of study compared to months of effort which may be unnecessary, as in institutional life, or ineffective and misdirected under probation? Without desiring in the least to usurp the functions of the law, and without the least argument against punishment in appropriate cases as a good therapeutic agent, and holding no brief for any theory of either causation or treatment, we may insist on such study as representing a minimum standard of welfare in the

treatment of delinquency. A rational method of meeting the needs of the youthful offender, which indirectly affords, of course, the greatest protection to society by thwarting his prospective career, is only to be developed by utilizing the facts acquired through a good technic of medico-psychology This procedure, carried out with sympathy and thoroughness, will contribute greatly to the effectiveness of courts and of other human agencies which attempt some solution of the problems of delinquency. Many of the huge number of failures which occur under the ordinary system it will be possible to avoid Moreover, evaluating any method or regime as conducted under court or institutional auspices is rationally possible only when the essential facts of causation and potentialities of the human material handled form the basis of judgment."

Juvenile delinquency is technically the violation of laws or ordinances by children younger than a statutory age limit, which in most states lies between sixteen and twenty years of age From this point of view, any given delinquency may or may not be of psychological significance. If a city has an ordinance that children must not play in the streets, yet does not provide playgrounds in congested areas, then those children who must play in the streets or else not play at all are legally delinquent This delinquency could, however, be hardly considered of psychological import. There are other types of misdemeanor which are essentially similar to this one, but our discussion is not at all concerned with questions of law Rather we want to discover what anti-legal or anti-social behavior is indulged in by children, if children who engage in such behavior exhibit any distinguishing characteristics; what the reasons are for such behavior; and how we shall deal with such children

The crimes or misdemeanors committed by children include all of those possible for adults, plus one or two distinctly juvenile In Table XLIX are shown the reasons for reference to 68 juvenile courts during the year 1932, as reported to the U S Children's Bureau (1935) The categories listed are sometimes so broad that they conceal certain acts and may be misleading For example, the heading "ungovernable" probably includes a number of cases of girls who are really sex delinquents These figures show only 19 per cent of the girls as sex delinquents, which is lower than the percentages found by other investigators. Thus, Burt (1925) reports 36 5 per cent of the delinquent girls in his group were delinquent in this respect.

TABLE XLIX —REASONS FOR REFERRING TO JUVENILE COURTS, 1932

Reason for Referring	Boys		Girls	
	No	Per Cent	No	Per Cent
Auto stealing	1,672	3 70	12	16
Burglary or unlawful entry	5,351	11 85	62	84
Holdup	349	77	6	08
Other stealing	12,116	26 80	780	10 59
Act of carelessness or mischief	13,390	29 60	655	8 88
Traffic violation	1,576	3 48	100	1 36
Truancy	2,281	5 05	720	9 76
Running away	2,907	6 45	1,153	15 62
Ungovernable	2,699	5 95	2,117	28 71
Sex offense	741	1 64	1,411	19 11
Injury to person	1,129	2 48	174	2 36
Liquor or drug violation	351	78	111	1 51
Other reasons	657	1 45	75	1 02
Total	45,219	100 00	7,376	100 00

These data, furthermore, represent only the reasons for reference to the court, and frequently this may be only one of several delinquencies Fenton (1935) reports that of 400 boys at the Whittier State School, in only twenty cases did it appear from the commitment papers that the boys had been sent because of a single type of offense In Table L are summarized data from three surveys widely separated in time and space Healy's study, first published in 1915, is based upon 1000 delinquents referred to Chicago courts during the years 1909 to 1914, of whom a few were over twenty years old, but with an average of fifteen years. Burt's study, published in 1925, ten years after Healy's, is of 200 juvenile delinquents in London County Fenton's data, published in 1935, are based on 400 boys from the Whittier (California) State School. In spite of the wide variation in time and place, these three sets of data show a surprising correspondence.

They agree in showing theft of various sorts to be at least one of the delinquencies in about 75 to 80 per cent of all boys, but in only 30 to 40 per cent of girls. Sex delinquencies are more frequent in girls, with approximately 30 to 40 per cent being so charged while only around [illegible] tributed to differences in social conventions rather than to any biological difference between the sexes.

The percentage figures in this table will not total to 100 because they represent the number of times the particular act was found Thus,

TABLE L.—CLASSIFICATION AND FREQUENCIES OF DELINQUENCIES

Delinquency	Whittier State School (Fenton)	London County (Burt)		Chicago (Healy)	
	Boys	Boys	Girls	Boys	Girls
Number cases	400	123	74	694	306
THEFT					
Stealing	74 8	78 9	43 3	65 5	31 7
Burglary	29 0	3 3	0 0	7 8	0 3
Holdup	0 8			0 9	0 0
Auto theft	35 0				
Forgery and swindling	4 8	2 4	0 0	3 3	3 6
Pickpocket				1 6	0 0
SEX					
Assault	4 0	2 4	0 0	2 2	0 3
With opposite sex	3 0	11 4	36 5	4 8	58 8
With own sex	6 5	3 3	1 4	4 2	2 9
Not specified	1 2				
Masturbation, excessive		4 1	2 7	4 6	7 2
Indecent exposure		0 8	1 4	0 6	0 0
Obscenity		2 4	7 6	1 4	4 2
VIOLENCE					
To property					
Destructiveness	6 5	3 3	1 4	3 3	0 0
Malicious mischief	2 5	6 5	0 0		
Arson	1 8	0 8	0.0	1 6	1 0
To persons					
Cruelty	2 2	5 7	2 7	1 6	0 3
Fighting	2 2	8 1	5 7	6 1	0 0
Carrying firearms				1 6	0 0
Homicide	0 5	0 8	0 0	0 6	1 3
Wounding		6 5	2 7		
False accusation		0 0	4 1	0 7	5 2
Insulting		0 8	1 4		
Other violence	2 0			5 7	5 2
Attempted suicide		0 0	1 4	0 6	2 9
Threatened suicide		0 0	2 7	0 0	0 7
TRUANCY					
All sorts	51 8				
School		17 1	4 1	32 5	7 5
Runaway	49 0	12 2	7 6	37 6	24 9
Vagrancy	1 0	4 1	2 7	2 1	0 0
Sleeping out nights				12 2	10 8
EXCESSES					
Smoking	2 2				0 3
Temper	1 2	3 3	6 3	3 0	5 9
Reckless driving	1 2				
Movie-going	0 8				
Alcohol and drugs	0 8			3 8	2 6
Gambling				2 1	0 0

TABLE L.—CLASSIFICATION AND FREQUENCIES OF DELINQUENCIES (Continued)

Delinquency	Whittier State School (Fenton)	London County (Burt)		Chicago (Healy)	
	Boys	Boys	Girls	Boys	Girls
Number cases.	400	123	74	694	306
HOME AND SCHOOL					
Incorrigibility	16 0	5 5	12 2	13 3	12 8
Inadequate home	3 0				
Failure in foster home	1 8				
Bad companions	1 5				
School problem	8 0				
Loafing				10 3	6 2
MISCELLANEOUS					
Lying	4 2	4 9	13 6	15 0	26 2
Nuisance	1 0				
Begging	0 2	7.3	2 7	1 0	0 3

if sex delinquency and stealing occurred in the same boy, he would be entered twice Blank spaces are left when the author did not report the delinquency, and zeros are used when the author's material indicates that it did not occur. The scheme of classification, and allocation therein, are the present author's.

CHARACTERISTICS

In order to gain a better understanding of the general problem of juvenile delinquency, it is necessary to know something about delinquents as a group Such knowledge may be of only indirect significance in the study of an individual case, but it does give the psychoclinician insight into the conditions frequently met with A great quantity of literature has been published on sociological and psychological studies of juvenile delinquents Their physical condition, intelligence, moral knowledge, school success, families, neighborhoods, companions, emotions, and other pertinent conditions have been studied and restudied The uniformity in the findings of these many studies makes fairly definite certain characteristics of juvenile delinquents as a group It is our purpose not to review all of this vast literature, but to summarize some of the more important findings.

Three extensive studies of large groups of delinquents are representative of the whole literature of this subject. Two of these are the

studies of Healy (1915) and Burt (1925), previously referred to The third monograph is the report of Shelden and Eleanor T. Glueck (1934) on 1000 delinquents studied at the Judge Baker Foundation in Boston In our subsequent discussion we shall draw heavily from these three monographs The fact that they are in essential agreement in so many points, in spite of being based on groups separated geographically by thousands of miles and temporally by decades, argues that the characteristics of delinquent groups are stable, and gives support to the argument of the preceding paragraph. The characteristics studied may be divided into those of the child, of the family, and of the community.

1 *The Child* Physical Conditions —Observations on the physical condition of groups of delinquents have been reported by a number of authors. Glueck and Glueck (1934) found, among 967 of their group, 56 7 per cent with good physical conditions, 30.2 per cent with fair, and only 13.1 per cent with poor. Anderson and Leonard (1919-1920), studying 1000 delinquents, found the following percentages, with the respective ratings of physical conditions good physical condition, 20.3, fair, 45 4; poor, 32 7; bad (needing emergency care), 1 5 Burt (1925) reports poor physical development found in 21 3 per cent of his delinquents, and in only 5.5 per cent in the control group of non-delinquents. Physical pathology was evident in 69 per cent of his delinquents and in 54 7 per cent of his non-delinquents. It is probable that local conditions, and perhaps different standards of medical examination, are responsible for the variations in these sets of data.

Comparison of these percentages of defects with similar figures for non-delinquents indicates that physical defects are not particularly characteristic of the delinquent. For example, Burt found physical pathology in only about 15 per cent more of his delinquents than of his non-delinquent group. Surveys of school children show as high as 70 per cent with defects of one kind or another Thus, Howe and Schenck (1914) report 65 6 per cent of 124,526 school children in New York State having defects, and Ayres (1909-1910) found this was true of about 73 per cent of 3304 children in New York City.

While delinquent children as a group probably exhibit no more physical deficiencies than any group of children, it is still possible that in an individual case a poor physical condition may be of etiologic importance. Healy (1915) ascribed physical condition as a major factor

in 81 of 823 cases, and as a minor factor in 419. Burt (1925) also considered physical pathology as a major factor in about ten per cent of his delinquents. Usually, the physical defect is but indirectly a cause of delinquency, as when a crippled boy steals because he cannot earn money for food, or a child with adenoids or a debilitated condition is truant from school, largely because he cannot keep up with the class.

Intelligence.—In our discussion of the social problems of feeble-mindedness it was pointed out that many surveys of children in institutions for delinquents have been made, and that they vary widely in the incidence of mental defect reported. Miner (1918), after a careful review of all the studies made previous to 1918, concluded that probably not more than ten per cent of juvenile delinquents could be considered as proper material for admission to institutions for the feeble-minded This conservative conclusion has been well substantiated by subsequent work

Three extensive studies of the intelligence of adult criminals are pertinent in the present connection These investigations led to entirely opposite conclusions Murchison (1926) found criminals had a smaller percentage of feeble-mindedness, Adler (1920) found the proportions to be equal, while Erickson (1929) found more feeble-mindedness among criminals Zeleny (1933) has reanalyzed the data of these three studies, keeping the criterion of feeble-mindedness constant, and more accurately defining the control groups From this reanalysis he demonstrated that the ratio between the proportion of feeble-mindedness among criminals and that among the controls was

TABLE LI —INCIDENCE OF FEEBLE-MINDEDNESS AMONG ADULT CRIMINALS

Authors	Author's Interpretation			Zeleny's Interpretation		
	Per Cent Feeble-minded			Per Cent below M A 11		
	Criminals	Control	Ratio Criminals to Control	Criminals	Control	Ratio Criminals to Control
Murchison (1926)	14 4	16 3	0 88 1	17 8	14 3	1 26 1
Erickson (1929)	30 0	2 0	15 1	20 6	16 3	1 26 1
Adler (1920)	24 7	25 0	1 1	16 0	15 1	1 22 1

approximately the same in each study The pertinent data are shown in Table LI.

We may also investigate the question of the mental ability of delinquents by studies of the distribution of intelligence test performance. Several such distributions, shown in Table LII, are typical of the

TABLE LII —TYPICAL I Q DISTRIBUTIONS OF JUVENILE DELINQUENTS

I Q	Burt (1925)	Beane (1931)	Armstrong (1932)		Glueck and Glueck (1934)	Fenton (1935)	Living-ston (1935)	Theoretical Distribu-tion
Over 130	1 0					0 5	0	1
120–130	1 0			0 9	41 6	2 3	2	5
110–120	2 0	2 01	2 1			8 4	4	14
90–110	43 7	24 67	17 4	11 7		40 7	33	60
80–90	29 0	27 00	21 1	42 9	28 2	28 7	27	14
70–80	15 7	27 66	27 9		17 1	15 3	22	5
Below 70	7 6	18 65	31 5	44 5	13 1	4 1	12	1
No of Cases	197	300	660	1379	979	393	407	

usual findings It is evident that the data from each of these groups indicate a shifting of scores toward the lower I Q groups, with a rather abrupt decrease in the groups over 110 I Q. This skewness of the distribution indicates that as a group the delinquents are inferior to the general population. If, however, we make comparison with children from the same socio-economic groups who are not delinquent, such differences in distribution are not evident. Lane and Witty (1935) did this and found that delinquents compare favorably with the norms of the neighborhoods from which they come.

The average I.Q 's of delinquents in institutions have been rather

TABLE LIII —AVERAGE I Q 'S OF JUVENILE DELINQUENTS

Author	Description	Average I Q
Burt (1925)	197 boys and girls	89
Healy and Bronner (1926)	4000 delinquents	90
Merrill (1926)	236 juvenile court cases	82
Armstrong (1932)	660 runaway boys	78
	1379 N Y Children's Court	73
	553 N Y House of Refuge	78
Fenton (1935)	400 Whittier State School for Boys	92
Livingston (1935)	407 Indiana Boys' School	89

consistently found to be between 80 and 90. Table LIII shows the mean I.Q.'s found in several representative studies published during the past ten years

This brief résumé indicates that the delinquents who are in institutions, or who come before courts, are as a group somewhat below average in intelligence. However, this can hardly be taken as a significant reason for their delinquency because when they are compared with children from their own socio-economic level their deficiency is not at all evident As has been several times suggested, test performances of institutional delinquents may not be a fair estimate of the intelligence of delinquents in general because there is reason to believe that, to quote Morgan (1934), "Those who are intelligent use their intelligence to keep out of institutions whether they are criminals or not"

Temperamental and Emotional Factors —All studies agree in showing that delinquents exhibit a high incidence of abnormal mental traits that are non-intellectual in nature. Thus, 557 per cent of Glueck and Glueck's (1934) cases exhibited indications of mental unbalance. Of these, 350 individuals showed markedly abnormal suggestibility, sensitiveness, impulsiveness, and the like; 137 had aberrations in personality ranging from psychoneuroses to psychoses. Burt (1925) presents the following contrast in the incidence of emotional traits between his delinquents and non-delinquents·

	Delinquents	Non-delinquents
Abnormal instincts	59 4	12 0
General emotional instability	48 2	11 7
Abnormal interests	45 7	13 2
Complexes and morbid states	64 5	20 5

Healy (1915) lists a total of 291 cases out of 823 in whom some mental condition, other than intellectual lack, played a major part in their delinquency. The association of behavior disorders with delinquency is high. Glueck and Glueck (1934) found that 75 4 per cent of their delinquents exhibited such behavior as nail-biting, stammering, enuresis, gambling, masturbation, smoking, homosexual and heterosexual activities, drinking, and the like.

Education.—The educational achievement of delinquents is, as might be expected, inferior to that of non-delinquents. Fenton (1935) reports that 475 per cent of the boys at Whittier State School were retarded, while only 2.5 per cent were accelerated. Glueck and Glueck

found that 84.5 per cent of 935 boys were retarded one or more years; this compares unfavorably with only 37.8 per cent of Boston School boys retarded. Only 1.8 per cent of the delinquent group was accelerated. Among the delinquents studied, 397 boys had completed their schooling. Of these, 11.1 per cent had reached only the fifth or a lower grade, 71.8 per cent were in the sixth, seventh, or eighth grade, and 17.1 per cent had entered ninth grade or high school. Similar figures for Boston school children of the same age range show 1.4 per cent in the fifth or lower grades, 5.3 per cent in the sixth to eighth grades, and 93.3 per cent in the ninth or high school. Family economic need was given as the reason for leaving school by 65.7 per cent of the cases, and 15.1 per cent said they left because of dissatisfaction with school; only 2.9 per cent gave inability to do school work as a reason.

Fenton (1935) also reported that educational achievement as measured by standardized tests was low. At entrance to the Whittier State School the average boy was fourteen years of age, his M.A. was 13.2 years, but his educational age as measured by the Stanford Achievement Test was only 12.45 years. The average accomplishment ratio of this group was 95, which is lower than one would expect from an unselected group of school children of a similar intelligence level. The meaning of the poor school work is not entirely clear. It is true that delinquents tend to have inferior intelligence test performance, but the educational retardation is still greater.

Another factor of significance is the dissatisfaction with school. Burt (1925) says that in about 7 per cent of his school-age delinquents an uncongenial school was an influence. Fenton (1935) reports that of the 400 Whittier State School boys studied, 47.5 per cent had been truant before commitment, 25.8 per cent had disliked school, 18.8 per cent had had conflicts with teachers, 14 per cent had had difficulty with studies, and 11.5 per cent had been conduct problems. Bartlett (1935) found that 46 per cent of 119 boys at the Indiana Boys' School had been truants from school before their commitment. The poor social adaptation to school which is uniformly evidenced in studies of delinquents probably is partly responsible for the poor school achievement.

Vocational.—Because of the limitations imposed by age we should expect juvenile delinquents to have a very limited occupational history. About two-thirds of the Gluecks' (1934) cases were, or had been, employed. An analysis of their occupations shows that most of them

were either unskilled or not of a type who were likely to enter skilled trades. The analysis of these occupations is shown in Table LIV

TABLE LIV —OCCUPATIONS OF JUVENILE DELINQUENTS
(after Glueck)

Occupation	Number	Per Cent
Street trades, newsboys, bootblacks, etc	412	58 1
Office, stock and bell boys, clerks	110	15 5
Factory hands	81	11 4
Helpers to unskilled workers	36	5 1
Helpers to skilled workers	13	1 8
Restaurant hands	11	1 5
Night work	11	1 5
Teamsters or longshoremen	9	1 3
Other legitimate work	10	1 4
Illegitimate work	17	2 4

Companionship —Probably not more than one-fifth of delinquents engage in their delinquencies alone. In Table LV are presented

TABLE LV —PERCENTAGE OF COMPANIONSHIP IN COMMISSION OF DELINQUENCIES

Author	Description	Per Cent
Healy and Bronner (1926)	3000 cases	63 0
Illinois Crime Survey (1929)	6000 cases of stealing	90 4
Shaw and McKay (1931)	3517 offenses of 1886 boys	81 0
Armstrong (1932)	660 runaways	13 5
	70 "unlawful entry"	84 3
Glueck and Glueck (1934)	823 cases	70 2
Fenton (1935)	282 boys	82 6

the percentages of delinquents with companions reported by several authors. There is decided agreement among these investigations that usually the delinquent has one or more companions in his delinquencies The apparent exception, 13 5 per cent of 660 runaways given by Armstrong, is quite consistent because, by the very nature of the delinquency, one could hardly expect companions. Such data as these strongly suggest that companions are a significant factor in the etiology of delinquent behavior Other evidence concerning companionship supports this suggestion.

We read today a great deal concerning gangs and their criminal activities. Various investigators report different proportions of delin-

quents belonging to gangs These variations depend in part upon how a gang is defined The Gluecks (1934) say that at the Judge Baker Foundation a "gang" is defined as "a group of boys having a recognized leader, specific pass-words or rules, meeting at stated places and planning anti-social activities." A group without such formal organization is a "crowd." On the basis of these definitions, they found that 7.3 per cent of 978 boys were members of gangs, 18 9 per cent indulged in crowd activities and the rest did neither. Sullenger (1930), defining a gang as a group organized as a play group, found that 41 per cent of the delinquents in a small community were members Burt (1925) reports that 11 4 per cent of 123 boys were members of a gang with three or more members, while among 74 girls not one was a member. Burke (1930) found that 28 of 82 offenders between seventeen and twenty-one years of age from the Chicago Boys' Court were members of gangs. Among 26 confirmed offenders, fifteen were known to be members of gangs, while only five of 28 non-repeaters belonged to gangs These studies indicate that from one-quarter to one-third of delinquent boys, at least, are members of more or less formal gangs which have anti-social conduct as one of their activities, if not the most important one

The group or club activities of delinquents in socially desirable agencies presents the converse picture Reinhardt and Harper (1931) compared 40 delinquent with 40 non-delinquent boys of the same age. The non-delinquents belonged to all sorts of constructive clubs and organizations, many belonging to more than one such club. In fact, only five of these boys did not have any such affiliation In contrast, 25 of the delinquents belonged to no clubs at all. The Gluecks (1934) found a similar condition: 75 per cent of 971 cases had never been associated with such organizations as the Y M.C.A , Boy Scouts, supervised playgrounds, or social settlements

Age of First Delinquency —That delinquency begins at a surprisingly early age is shown by the data in Table LVI These studies show the same percentage of boys beginning their delinquencies while, or before, they were eight years old In the California group 57 per cent began at ten years or before, while the Boston group showed 63 per cent in this age class.

2 *The Family* Nationality and Race —As early as 1900, Drahms showed that at every census between 1850 and 1890 the proportion of foreign-born among juvenile and adult offenders was greater

TABLE LVI.—AGE OF ONSET OF DELINQUENCY

Age	Fenton (1935)		Glueck and Glueck (1934)	
	No	Per Cent	No	Per Cent
6 and younger	28	16 6	88	13 7
7–8	33	19 5	145	22 6
9–10	35	20 7	170	26 4
11–12	36	21 3	136	21 2
13–14	37	21 9	104	16 1
Total	169 Median 10 years		643 Mean 9 years, 7 months	

than the proportion in the general population. Koren (1907) more carefully analyzed the data and showed that when the foreign-born, the colored, and the native-born whites are compared on a basis of age, the first two groups still show a relatively high proportion among juvenile delinquents Practically all investigators who have considered the problem have agreed with the conclusions of Koren.

In Table LVII are summarized data on the parental nativity of delinquents. It will be seen that those studies which are based upon

TABLE LVII.—PARENTAL NATIVITY OF JUVENILE DELINQUENTS

Author	Number of Cases	Percentage		
		American	Foreign	Negro
URBAN GROUPS				
Healy (1915)	915	25 5	69 9	4 6
Edmondson (1921)	102	26 5	66 6	6 9
Burke (1930)	798	23 9	61 4	14 6
Shaw and McKay (1931)	8141	22 2	68 7	9 1
Glueck and Glueck (1934)	976	13 2	86 8	5 7
Average urban		22 2	70 7	8 1
RURAL AND MIXED GROUPS				
Beane (1931)	300	90 0	10 0	
U S Children s Bureau (1935)	32,844 white ♂	54 0	46 0	
	5,168 white ♀	63 0	37 0	
	45,284 mixed ♂			20 0
	7,427 mixed ♀			24 0

urban groups show about 22 per cent native parentage, 71 per cent foreign parentage, and 8 per cent colored.

Edmondson (1921) further analyzed her data to show the following:

	Percentages	
	Delinquents 1912–14	Population 1908
Native white	26 5	45 4
Old immigration (northern Europe)	7 8	
New immigration (southern Europe)	58 8	52 2
Colored	6 9	2 4

From these data it is clear that, for urban areas at least, foreign parentage is a frequent concomitant of delinquency

However, the distribution of cases from 68 courts throughout the country as reported by the U. S. Children's Bureau (1935) is about even; and Beane's (1931) study of Indiana, a predominantly rural state, shows a much higher proportion of delinquents of native parentage Thus it would appear that foreign parentage is a significant factor chiefly in urban communities

Foreign parentage, *per se,* is probably not the significant fact Taking the data of the Gluecks (1934) as typical, we find that native sons of native parents and foreign-born sons of foreign-born parents both contribute less than their share of delinquents, the former about 55 per cent and the latter only about 35 per cent of the expected proportion In contrast with this are the native sons of foreign-born parents, who contributed about two and a half times as many delinquents to the group as might have been expected from their proportion in the total population Similar findings have been reported by other investigators, and they have rather uniformly been interpreted as an indication of conflict between the Old World culture of the parents and the New World culturalization of the children Thus, Nick, whose story is told by Shaw and McKay (1931), at fourteen wanted to play ball with other boys of his age, whereas his parents wanted him to work When he refused to do so they interpreted his behavior as downright rebellion, and tried to cure him by beatings. Such treatment led to running away from home, minor stealing from home, and severe temper tantrums.

Economic Status —The concomitance between poverty and many kinds of social pathology has led many writers to claim a causal relationship Such a relationship may exist in some cases but probably not in all Burt (1925) says that 16 per cent of his delinquents were from families below the poverty line, and by far the majority of these offenders were reported for theft This offense constituted 81 per cent

of the offenses of poor delinquents, but only 63 per cent for those delinquents who were in a more comfortable economic position. He further contrasts this proportion of 16 per cent with only 8 per cent of the population of London living below the poverty line; the "moderately poor" groups include 37 per cent of the delinquents, but only 22 per cent of the general population The Gluecks (1934) found only 23 7 per cent of 925 families of delinquents living in comfortable circumstances, with 8 1 per cent completely dependent Beane (1931) found that 58.3 per cent of 300 girls come from poor homes and another 35 per cent come from homes rated as in "sufficient" circumstances, with only 7 6 per cent from "moderate" and "very good" financial circumstances

Healy (1915), however, reports only four out of 823 cases in which poverty is a major cause of their delinquency, and 59 cases with this as a minor cause These apparently contradictory data of Healy are not really in opposition to other figures reported, as his data represent only those cases in which he felt that poverty itself was a major or minor cause Except possibly in the case of stealing, it is probable that the concomitants of poverty—poor neighborhood, overcrowding at home, parental worry, and inharmonious homes—are of greater significance

While the Gluecks (1934) found only 8 per cent of the cases coming from economically dependent families, they found that the homes of 62 2 per cent were "unwholesome" in the sense of overcrowding and poor hygienic conditions Burt (1925) reports a similar finding inasmuch as he found overcrowding about one and a third times as frequent among the homes of delinquents as among homes from the same social level Similar evidence is furnished by Baker, Decker, and Hill (1929), who compared 84 children accused of stealing with a matched group of non-delinquents and found that while there was no significant difference between the groups in economic status there was a difference in favor of the non-delinquents in degree of overcrowding

Moral Standards —That the moral standards of the home may have a relationship to juvenile delinquency seems certain. The Gluecks (1934) found that 86 7 per cent of the delinquents studied by them had relatives with a delinquent or criminal record, and most of these were members of the immediate family. Healy's (1915) figures are much lower than these He attributes the major cause of the delin-

quencies to vicious family in only 62 of 823 cases and lists this as a minor cause in 95 more cases, i.e, in only about 20 per cent of his cases did he regard immoral or criminal home conditions as causal Burt (1925) found only two cases where there was direct criminal encouragement from home, but his data offer a vivid contrast when they show that vicious home circumstances occur in 66 per cent of his delinquents and only 10 per cent of his non-delinquents

Broken Homes —In Table LVIII are summarized a number of studies showing the incidence of broken homes among delinquents,

TABLE LVIII —BROKEN HOMES AND JUVENILE DELINQUENCY

Author	Delinquents No	Delinquents Death	Delinquents Separation	Delinquents Total	Controls Total
Breckenridge and Abbott (1912)	584	34 0	7 6	43 3	
Shideler (1917-18)	7,598	36 4	10 6	50 7	25 0
Burt (1925)	200	25 9	15 7	57 9	25 7
Healy and Bronner (1926)	4,000			49 0	
Slawson (1926)	1,649	35 6	9 6	45 2	19 3
N Y Crime Commission (1928)	201	30 0	15 0	45 0	
Crosby (1929)	314			45 5	26 0
Burke (1930)	766			37 5	22 0
Beane (1931)	300	42 3	25 3	69 0	
Shaw and McKay (1931)	1,675			42 5	36 1
Armstrong (1932)	649	39 0	13 0	52 0	
	18,976	23 5	14 4	37 9	
Glueck and Glueck (1934)	966	26 7	21 3	48 0	
Fenton (1935)	400			59 0	25 0
U S Children's Bureau (1935)	42,037♂	21 0	10 0	31 0	
	6,737♀	30 0	17 0	47 0	

and also determined or estimated incidences of broken homes in the general population There is rather close agreement among these studies that about 50 per cent of delinquents come from broken homes, the average of these percentages being 47.7. There is a similar agreement that the incidences of broken homes in the general population is about 25 per cent Thus, we find that homes are broken by death, divorce or separation about twice as frequently among delinquents as in the general population.

More detailed analysis of the figures discloses what may be pertinent conditions In the first place, as shown in Table LVIII, homes of delinquents are broken by death about twice as frequently as by separation How this proportion compares with that in the general population we do not know However, some suggestion is given by Burt's

(1925) study Among his delinquent group homes were broken by death in about 30 per cent of the cases and by separation in about 16 per cent, while among his control group of non-delinquents death was the reason in about 17 per cent and separation in less than one per cent If Burt's data are at all characteristic, it is evident that homes broken by separation with its almost inevitable preceding discord are significantly more prevalent among delinquents

Evidence on the relative effect of loss of father or mother is conflicting. The U. S. Children's Bureau (1935) data show that among 7 per cent of the delinquent boys the mothers only are dead, in 12 per cent the fathers only are dead, and in 2 per cent both parents are dead Among the girls, 12 per cent of the mothers and 15 per cent of the fathers are dead; 3 per cent have lost both parents. These figures suggest that when the child is living with the mother there is greater tendency to delinquency On the other hand, Burt (1925) reports that 16 2 per cent of his delinquents were living with the father and only 3.5 per cent with the mother Further information concerning this point would seem to be desirable

The Gluecks (1934) have distributed their cases according to the age at which the home was broken; the results are as follows.

Before 5 years	40 3 per cent
5–9 years	35 0 " "
10–14 years	22 4 " "
15 and over	2 3 " "

Armstrong (1932) has also analyzed her cases according to age at which the family break occurred, with the results shown in Table LIX The findings of these studies would suggest that the younger the child when the break in his home occurs, the greater influence it will have upon him

TABLE LIX —AGE AT WHICH BREAK IN FAMILY OCCURRED

(after Armstrong)

Age	Runaways	Incorrigibles	Unlawful Entry
Before 1 year	9 3	3 3	10 5
1– 3	19 3	36 7	10 5
4– 6	28 3	20 0	21 1
7– 9	23 2	23 3	15 8
10–12	15 3	13 3	36 8
13–15	4 5	3 3	5 3
No of cases	600	30	19

Family Relationships.—Shaw and McKay (1931) say, "Our case histories suggest that the subtle emotional relationships between members of the family are often significantly involved in the boy's delinquent behavior." Statistics concerning such factors were not available for their cases, nor are they usually available. The Gluecks (1934) report information concerning 813 families of delinquents. Among these were found 21.7 per cent broken by separation, desertion, or divorce. Of the remaining 636 families, about four-fifths of the parents were living together congenially; the other fifth exhibited "gross incompatibility but without open breach."

Relationships between parents and the delinquent child are also of importance. Again the Gluecks (1934) have data which showed that there was an unwholesome relation between father and son in 11 per cent, and between mother and son in 5 per cent, of the cases. This unwholesomeness means quarreling, lack of affection, and hostility. There was mutual indifference between father and son in 21 per cent, and between mother and son in 13.2 per cent, of the cases. These data suggest that delinquents get along better with their mothers than they do with their fathers. Similar findings are evident in Fenton's (1935) group, in which there were conflicts with fathers in 10 per cent and with mothers in only 2.8 per cent of the group. The boy's attitude toward his home as gleaned from his own comments is shown in Table LX, from Fenton.

TABLE LX.—DELINQUENT BOYS' ATTITUDE TOWARD HOME
(Fenton)

Comments	Number	Per Cent
Satisfactory home	191	49.1
Dissatisfaction	198	50.9
Conflict with father	39	10.0
Conflict with mother	11	2.8
Conflict with stepfather	17	4.4
Conflict with stepmother	12	3.1
Conflict with, or dislike for, sibling	51	13.2
Lack of affection for family	23	5.9
Feels unwanted or out of place	20	5.1
Parents favor sibling	19	4.9
Doesn't want to return home	6	1.5
Total	389[a]	

[a] More than one comment sometimes came from a single boy.

When that aspect of the parent-child relationship expressed in disci-

pline is considered, the findings appear to be very significant. Burt (1925) reports defective discipline in 60.9 per cent of his delinquents and in only 11.5 per cent of his non-delinquent group. This figure for the delinquent group is surprisingly corroborated by the Gluecks (1934), who found that about 70 per cent of both fathers and mothers used unsound discipline, including too great laxity or too extreme rigidity. With 4.1 per cent of the fathers and only 2.5 per cent of the mothers could disciplinary measures used be considered good.

3. *The Community.*—Investigators of the problems of delinquency have tended to study the child first, then his family, and lastly the community from which he comes. If not the first, certainly the most comprehensive ecological study of delinquency was made by Shaw (1929) between 1921 and 1929. This research was a socio-geographic study of approximately 60,000 juvenile and adult offenders in Chicago. In a subsequent study, Shaw and McKay (1931) presented much of this material, with confirming evidence from six other American cities. The results of these studies may be conveniently presented in summary.

(1) Juvenile delinquents are not uniformly distributed throughout the cities but tend to be concentrated in areas adjacent to the business and heavy industrial areas.

(2) There are wide variations in delinquency rate in different areas, the rate tending to vary inversely with the distance from the center of the city. Burt (1925) found an essentially similar condition in London.

(3) The areas with high delinquency rates have high rates over a long period of time.

(4) Delinquency areas are characterized by physical deterioration, decreasing population, high dependency rate, high percentage of Negro and foreign-born, and high rates of adult crime. Burt (1925) gives an essentially similar finding, with a correlation between delinquency rate and overcrowding of .77, with the poverty rate of .67, and with poor relief of .48 in the 30 Boroughs of London.

(5) The greatest concentrations of delinquents occur in areas of marked social disorganization, and in these areas delinquency is traditional behavior.

(6) While the nationality and racial composition of the high delinquency areas completely changed between 1900 and 1920, the relative rates of delinquency remained practically the same. As the older immi-

grant groups moved to new geographic locations their delinquency rates showed a decrease

From this résumé of the general characteristics of juvenile delinquency we may summarize·

(1) The delinquents show mental retardation represented by an I Q. between 80 and 90 (2) They are more apt to be emotionally and temperamentally unstable. (3) School achievement and grade placement both show retardation (4) Delinquent behavior starts at an early age, and more often occurs with companions. (5) The occupations engaged in by those delinquents who have worked are at the lower end of the economic scale (6) Delinquency is frequent in native-born children of foreign-born parents. (7) The homes of delinquents are economically and morally poor (8) The family relationship as shown by broken homes, parent-child attitudes, and methods of discipline is psychologically poor (9) The communities from which delinquents come are more frequently socially disorganized and physically deteriorating.

Causes

The description of the characteristics of delinquents, their families, and the neighborhoods from which they come, while it may afford suggestive clues, does not answer the question of etiology The average intelligence of delinquents is low, but there are some who must be classed as superior A large proportion come from broken homes, but many live in homes that would be rated high by any standards The delinquency rate is high in poorer, disintegrating areas of cities, but there are delinquents in even the best sections of cities, and certainly rural and semi-rural areas are not free from them. Many, perhaps most, juvenile delinquents exhibit a disproportionate number of other conduct and personality problems, although not all of them do; and many children exhibit behavior problems who could never be called delinquents As with all other types of behavior difficulties, we cannot speak of a cause, or even a necessary constellation of causes, of juvenile delinquency. The reasons for exactly the same delinquent behavior in two children will probably be quite different. One child steals because he is hungry, another because he has been taught to do so, another because a companion suggests it or dares him to, still another because the thing stolen or the very act of stealing gives him a feeling

of strength that is otherwise lacking. In dealing with the delinquent we must think of the child not as a violator of the law, but as one whose behavior is socially unacceptable. There is a reason for that behavior, and it is the task of the psychologist to discover it. This can be done only by careful and intelligent study of the child's history and an understanding of humanity

In Chapter IV we briefly discussed the feeble-minded delinquent, but even in such cases we cannot think of the feeble-mindedness as a *cause* of delinquency. Rather, the low intelligence is coincident with a lack of appreciation of what anti-social behavior means, therefore this person succumbs to temptations or momentary impulses more easily than a person of higher intelligence Witness Bill, in Case Number 7, who killed a man because he called him a name and then years later just as naively confessed to the crime. The feeble-minded delinquent, or even adult criminal, should be dealt with as an incompetent rather than by being punished The feeble-minded offender committed to a boys' or girls' school or a penitentiary for a number of years will be a distinctly social risk when he is discharged, whereas commitment to an institution for the feeble-minded will solve society's problem for the balance of the offender's life

That family discord and emotional strains, vicious neighborhood influences, direct stimulation and training by parents or others, economic conditions and a host of other factors are of etiologic importance in delinquency cannot be doubted It is well-nigh impossible, however, to discuss such causative factors in a general way A much better appreciation of such influences can be gained from a consideration of cases In the following pages we shall present a number of selected cases which illustrate the kinds of influences and relationships of factors which have been found in cases brought before courts on charges of delinquent behavior.

The first group of three cases (Numbers 30, 31, 32) illustrate delinquent behavior as symptomatic of personality disturbances in the children Sally is of low mentality, but she recognizes that she compares unfavorably with her sisters Hers is Cinderella's lot. She tries to escape by leaving home, and later as a kitchen drudge she steals in a pathetic attempt to make life fuller Harry tries to overcome his feeling of insecurity—arising from the conflict between the attitudes of his father and mother—by spending, and he must steal to get the money to spend Billy's delinquencies are only an incidental part of

his emotional objection to what he considers his father's immorality Thus, even these three cases show that delinquency may depend upon subtle factors in the child which are entirely unsuspected.

Case Number 30 (Tiebout, 1926) Take the case of seventeen-year-old Sally, who came to the clinic with a record of stealing. In early childhood, following a long illness during which she received an undue share of her mother's care and attention, a change in disposition had been noted She became fretful, petulant, rather demanding, feeling that she did not get the consideration due her, her actions tending to estrange her from the family. Aided by a kindly school system, she did manage to graduate from an elementary school at sixteen, but for many years she had recognized that her sisters, all of whom were younger, were of distinctly good intellectual attainments and quite able to surpass her record She came to feel herself the "ugly duckling" and developed a vivid fantasy life, which, a year before she was referred to the clinic, led to her running away to find the place of her dreams

She was apprehended and taken to the Detention Home instead There her mental age was found to be about ten years, giving her an I Q in the sixties She was paroled and, following the suggestion that she do unskilled labor, housework was found for her, despite her objection that ever since she could remember she had been helping her mother do the housework at home. However, she was informed that that was what she could best do For a year and a half she had been shifting around, hopeless, dissatisfied, and with little or no encouragement from home or anywhere else Finally she began stealing systematically from her employer, spending part of the money on herself, but adding two dollars to her weekly wage which she turned over to her mother with the pathetic statement that her work had been so satisfactory that she had been granted this raise

Surely this girl's feelings of inferiority and her unsuccessful efforts to compensate resulted not so much from her actual mental level as from her reaction to the situation in the home. Vocational guidance for Sally must take into consideration, in addition to her limited intelligence, her feelings toward her limitations Recommending housework in this case violated the tenet that a job must in some way bring compensations for previous inferiorities. The patient had been made more or less of a kitchen slave at home, had developed a profound distaste for the work, and resented the implication that she was fitted for nothing else It is not a surprising outcome that she became restless and unhappy and indulged in stealing to gain some of the satisfactions

of having money with which to splurge, as well as to make a good showing to her mother

Case Number 31 (Allen, 1927). Harry was a boy of fourteen who embezzled a considerable sum of money from his employer, and was using the money for making a big splurge at a local amusement park Previous to this serious offense, he had stolen small amounts at home The main sources of the difficulty in this case were:

1 A very over-solicitous mother who insisted upon treating this boy as an infant Before company he was always introduced as "my baby" She supervised all the details of his clothing and dressing, she gave him spending money only as he needed it, and in many other ways prevented him from growing up

2. The father, a large, masculine type, was very stern and rather repressive in his handling of the boy, and somewhat inclined to scorn his lack of virility and his rather infantile type of personality This discrepancy in the attitudes of his parents was having a very destructive effect upon the self-respect of the boy

His decision to leave school at fourteen to go to work was a significant gesture of the boy to test himself. He felt very insecure about himself, particularly in relation to the somewhat older adolescents whom he met in his work and at school. The desire to establish himself was a very keen one, but his background had given him very little confidence in his ability to do this in a normal way The stern and awe-inspiring discipline of the father, combined with the coddling of the mother, did not make a very firm foundation upon which the boy could stand when placed on his own The quickest way to gain his goal and to compensate for his obvious immaturity was to get money. He proceeded to do this and to make the impression that he felt was necessary if he was to become a "regular fellow." It was also an opportunity to prove to himself that he could do something unsupervised by his mother

Case Number 32 (Healy, 1922). A boy of almost twelve years, Billy S, has been stealing for three years, very repeatedly and from various sources, a couple of times rather considerable amounts Recently he stayed away from home on several occasions, once as long as five days. His father joined in the court complaint against him On examination the boy proved to be normal physically and mentally, although somewhat retarded in school work From school and from home we received reports that he was unusually reserved

Now, viewing the facts as they were obtained from the several

sources, one might offhand have explained this delinquency as "bad inheritance," if one's pet theory was centered on heredity; for even a little investigation showed a record of considerable family misbehavior. But then one might also have picked our poor recreational advantages or immoral neighborhood influences As a result of the ordinary investigation, the home, however, was considered good; to be sure, the mother was dead, but a housekeeper, evidently competent, kept the house neat and clean; the father earned well and was good to the children

Following the report of the boy's extreme reserve, even at home where his father was kind to him, we felt the necessity of an approach which would dig up the foundation of this mental and social reaction, not normal at all in such a degree. A chance for the boy to talk quietly and an inquiry conducted with patience first brought out the fact that there had been a companion, Dick, who had been the earliest influence in development of the idea of stealing. But the crux of the affair appeared with the revelation of unsuspected facts Suddenly, as if to lay bare the heart of his trouble, he blurted out, "I go away because I don't like to stay there; it's no good; he's not married to her Dick told me about these things."

What this boy revealed was verified curiously enough in this case with the help of the father himself, who did not conceive that his own liaison could have anything to do with his son's types of misconduct. If the situation had not come out, unfortunate ideation, repression, and delinquent reactions to the inner mental life undoubtedly would have gone on to most undesirable habit formation It was clear that reconstructive measures were needed in a complex situation that was not at all brought to light during the inquiry in court.

The next two cases demonstrate the influence of vicious, criminal parents This is also shown by the Associated Press report from Dallas, Texas, under date of February 15, 1936, that a 41-year-old man had trained his two sons to steal and with them as a nucleus had formed a gang of twelve more boys. He fed and housed the gang and gave them no opportunity to change their mode of life[1] How frequent such direct training is cannot be easily estimated, but that it does occur cannot be doubted Even without such direct teaching, the models afforded by such parents can hardly lead anywhere but to delinquency.

Case Number 33 (Shaw, 1930) My stepmother sent me out with William (my stepbrother) to pick rags and bottles in the alleys She

[1] From the Indianapolis *Star*, February 16, 1936, vol 33, no 256, pt 1, p 7

said that would pay for my board and make me more useful than fretting and sulking at home. I did not mind that in the least. In fact, I enjoyed it, because I was at least out of the old lady's reach I began to have a great time exploring the whole neighborhood—romping and playing in the alleys and "prairies," gathering rags, bones, and iron, and selling them to the rag peddlers This romping and roaming became fascinating and appealed to my curiosity, because it was freedom and adventure We played "Indian" and other games in the alleys, running through the old sheds and vacant houses. Then we gathered cigarette "butts" along the street and took them to the shed, where we smoked and planned adventure. I was little and young, but I fell in with the older boys. Outside in the neighborhood, life was full of pleasure and excitement, but at home it was dull and drab and full of nagging, quarreling, and beating, and stuffy and crowded besides. . .

One day my stepmother told William to take me to the railroad yard to break into box cars. William always led the way and made plans He would open the cars and I would crawl in and hand out the merchandise In the cars were foodstuffs, exactly the things that my mother wanted We filled our cart, which we had made for this purpose, and proceeded toward home. After we arrived home with our ill-gotten goods, my stepmother would meet us and pat me on the back and say that I was a good boy and that I would be rewarded Rewarded, bah! Rewarded with kicks and cuffs.

After a year of breaking into box cars and stealing from stores my stepmother realized that she could send me to the market to steal vegetables for her My stealing had proved to be very profitable to her, so why not make it even more profitable? I knew it was for my own good to do what she wanted me to do I was so afraid of her that I couldn't do anything but obey Anyway, I didn't mind stealing, because William always went with me, and that made me feel proud of myself, and it gave me a chance to get away from home.

Every Saturday morning we would get up about three o'clock and prepare for the venture. William, Tony, and his two sisters, and I would always go. We would board a street car, and the people on the car would always stare at us and wonder where such little kids were going so early in the morning I liked to attract attention of people and have them look down upon me with curiosity The idea of my riding in a street car at that early hour appealed to my adventurous spirit and keyed me up to stealing In the street car William would give me orders on what to steal and how to go about it I listened to him with interest and always carried out his orders He had me in the palm of his hand, so to speak. He got the satisfaction of ordering me and I

got the thrill of doing the stealing. He instructed me how to evade peddlers and merchants if they gazed at me while I was stealing. After arriving at the market, William would lay out the plan of action and stand guard while I did the stealing. He knew what the step-mother wanted, and he always filled her orders to overflowing All in all, I was a rather conceited little boy who thought himself superior to the other boys of his age, and I didn't miss impressing that little thing upon their minds. I was so little that the peddlers were not suspicious of me, and it didn't take long to fill our baskets and be ready for the journey home All spring, summer, and fall did we go to the market, and never did I get caught and never did we go home with empty baskets.

Stealing in the neighborhood was a common practice among the children and approved by the parents Whenever the boys got together they talked about robbing and made more plans for stealing. I hardly knew any boys who did not go robbing The little fellows went in for petty stealing, breaking into freight cars, and stealing junk. The older boys did big jobs like stick-up, burglary, and stealing autos. The little fellows admired the "big shots" and longed for the day when they could get into the big racket. Fellows who had "done time" were big shots and looked up to and gave the little fellows tips on how to get by and pull off big jobs.

Case Number 34 (Burke, 1930). John Zubawezas, native white, parents born at Lithuania Father in United States 35 years, mother 23 years. Present age, 21; age at time of offense, 20 Boys' court hearing November 17, 1925 Robbery. Held for grand jury Bail $10,000 Committed to county jail Charge stricken out with leave to reinstate in criminal court January 7, 1926 Lives at home. Family: Father 56, mother 40, sisters 20, 18, 13; brother 16 Sister died in 1918 when four years old. Mother works away from home.

John is a tall, well-built boy, careless in his dress. He talks little and gives the impression of being somewhat stubborn and not very bright. He has a definite grudge against society in general He was sent by the boys' court to the psychopathic laboratory, where the examination showed him to have a mental age of 12 3/5 and to be a low-grade sociopath plus dementia praecox katatonia +3.

John's court record began early In May, 1916, when nine years of age, he was in the juvenile court as a truant and was sent to the Chicago Parental School. In November of the next year he was accused of breaking into a freight car After continuances this charge was dismissed, and on a truant petition he was committed again to Chicago

Parental School in December. In January, 1919, he was sent to the juvenile court for two burglaries and a robbery. This time he was sent to the St. Charles School for Boys In May, 1921, after burglary of a garage, he was again sent to St. Charles In May, 1924, he was released from juvenile jurisdiction "with improvement" He had already been in the boys' court before this release In July, 1923, he was accused of two burglaries, in which he was said to have stolen shirts and gloves from a clothing store at night. The charges were changed to larceny, and he was sentenced to 60 days in the House of Correction and given a $1.00 fine. In March, 1924, he was again accused of burglary and this time was held for the grand jury on a bond of $15,000 He was discharged In December of that year he was accused of three holdups with a gun, and also of larceny. He was held for the grand jury on bonds of $20,000 and was sentenced to six months in the House of Correction The offense included in this study is the next and the last offense recorded against him. In December, 1925, he was accused of holding up a restaurant and on this robbery charge was held for the grand jury on bail of $10,000 He stayed in the county jail for two months, until the charge against him was stricken out with leave to reinstate

John told of all the offenses with which he had been charged. In most of these he claims to have had no share. As to the first he said "They accused me of stealing shirts, but I bought the shirts at a bargain sale I was innocent but got 60 days in Bridewell" As to the second: "They charged me with breaking into a store, but they didn't have no proof so I got off" As to the third "They claimed I held up people, and folks said they identified me, but they lied I got six months in the Bridewell" He then described a street fight after which he says he was arrested and discharged This does not appear on the police record In regard to the offense included in this study, he said "I was charged with robbing a restaurant, and it was another guy He got stuck in the Bridewell, and I got off" He says that he has been in trouble again since this offense and after the information had been obtained from the police record. "The last time was for stealing an automobile, but I didn't do it. I was knowing who did, and because I wouldn't squawk the judge soaked me 30 days in the Bridewell" He said that he has been in jail three times and that he has never had bail "When I get in trouble I just have to 'root hog or die,' as they say in the St Charles School" When asked as to conditions in jail, he said "The law means for the jail to be a bad place, and I guess the guards live up to the law in that way." He says that he has not changed his conduct at all since his appearance in court "The court

ain't got me scared one bit. I ain't got nothing against the judges, but I'll get square with the cops"

Almost everything known about John's home and life would have influenced him in the direction of an evil career. He lives in one of the worst neighborhoods in Chicago, where the tenement houses are crowded and run down, the streets are filthy, and there are many factories At the time the family first became known to social agencies the mother was forced to ask for relief from a family-welfare agency because of the irregular employment of her husband John, the oldest child, was at that time 6 years old Mr. Zubawczas had not worked regularly for two years, and during all the time that this agency knew the family (about four years) he never worked regularly Although she had four small children, the mother worked down town as a charwoman at night for $39 a month The father stayed around the house, but did not take proper care of the children All the members of the family suffered from undernourishment and periods of actual privation during these years. The father was not only shiftless but cruel and abusive. His treatment of his wife was especially brutal. The mother said that when the two youngest children were born he refused to allow her to have any help. At the birth of one of them he locked her in the house alone and for an hour after the baby's birth she had no one with her. Once when he was drunk he tried to attack his small daughter, the mother interfered and was unmercifully beaten herself. He was sent to the House of Correction, but upon his return behaved no better and bragged that no one could make a good man of him The mother was afraid to leave the little girls with him He used to eat all the food in the house and throw the dishes on the floor if there was no meat for supper. He also drank the milk which the Visiting Nurse Association left for the baby. He whipped all the children "just for fun" and whipped the baby when it was only 7 months old The father even took all the bed clothing from the mother and children for himself. During this time the mother was described as a good housekeeper and a hard-working woman, as well as a good mother. The father, however, did not allow her to discipline John. He upheld John in any wrongdoing, and when his mother tried to get him to stay in at night, the father told him to stay out as late as he wanted to. He told John to pay no attention to anything his mother said and did not remonstrate when the boy threw things at his mother The father also filled John's mind with foul language and vile suggestions. He used obscene language and performed obscene actions in his presence.

During these years the father was in the court of domestic relations

and was sent to the Bridewell several times In 1911 he served six months in the Bridewell for cruelty to the mother. In July, 1912, he was in prison for beating his wife In December, 1912, he was in the court of domestic relations charged with abusive treatment of his wife, but she refused to testify against him, as she was afraid of being beaten again. The judge gave him another chance. In January, 1913, Mr. Zubawezas was placed on probation in the court of domestic relations to pay $10 a week to the mother. In June, 1915, Mrs. Zubawezas was taken very ill and was sent to the county hospital The children were sent to a children's home to stay while the mother was in the hospital. During a 4-year period 16 different agencies were trying to help the family. At one time the home evidently became unbearable for Sophie, the oldest girl, for when she was 13 years old she ran away from home after stealing $50 worth of clothes from a store She slept in hallways part of the 10 days she was away

At the present time, however, the mother and Sophie and the other girls have succeeded in making a much better home. The family have six rooms, of which four are sleeping rooms They pay $20 a month rent The apartment is on the first floor of a 2-story and basement house The home is attractive, very neat and clean. There are starched white curtains, clean bedspreads, and shining glass in the china cabinet The work of the house is divided and arranged systematically The mother does the housework before she leaves in the morning In the evening the younger boy and girl bring coal in from the shed and start the fire, and Sophie comes home first and prepares supper The mother and sisters get along well, but the mother scolds John and John seems to have no respect for her John dislikes his sisters, and his sisters dislike him. The father has been working steadily now for two years Sophie says that he feels he is getting older, and as it is difficult for an older man to get work he sticks to his job The children have planned that as soon as the two youngest (now 16 and 13 and in the eighth grade of school) get to work the mother will stop working. She is still scrubbing office floors four days a week and sometimes five, making $16 a week Florence, the next oldest girl, works in a factory and earns $15 a week John is the only one who is not employed The father makes $25 to $35 a week as a common laborer Sophie, a pretty, attractively dressed girl, refined in manner, is a typist earning $15 a week Sophie is quite sure that she does not want to marry until she is a good deal older, for she has the example of her mother before her, who married before she was 18 and has had to work all her life She seems genuinely fond of her mother and her two sisters. She spoke sarcastically of her father. She says that Louis, the younger boy, is

almost as snippy as John but that he has not yet gotten into any real trouble. Sophie and her sister Florence have the same friends, boys and girls, and have many good times together Florence goes to business college at night. John goes with an entirely different group of people, and Sophie says that she does not know them at all. The mother gets little time for relaxation or society. The family go to church, and the younger children attend parochial school and belong to various church and school clubs.

Starting to school at 6 years of age, John was known as a truant in less than a year He attended a parochial school and completed the seventh grade. He did not return to school after leaving St Charles in 1919, as he said he got interested in other things and did not want to go back to regular school His ideas of education he stated as follows. "Schooling is all right if you get the right kind. This stuff they teach you in most schools is no good at all. What a fellow needs in school is to learn a trade and not to waste time learning a lot of history and grammar." He has no desire to study any further. In 1917 the school reported to the juvenile court that his attendance was very poor and his conduct and scholarship fair The principal of St. Charles School reported that his school work was fairly good and that his deportment was excellent.

John first went to work in 1920 as a factory hand, earning $12 a week. At the time of the offense included in the study he had no work, and he had none at the time of this interview. He says he has had about 25 jobs. When asked why he left them he said: "How do I know? Sometimes the boss did not like me and fired me off the job, sometimes I just got sore on the job and quit." As to employers he said. "They are alike Some are bad and others are worse. All they want is money, and they don't care what happens to you They ain't humans any more. If they can take from everybody else like they do, I might as well take from some who has more than I've got." His sister said that after the offense studied and before he was sent the last time to the House of Correction he worked for seven or eight months as a cook Since he has come out of the House of Correction he has not worked.

Of his various commitments to institutions, twice to the Chicago Parental School, twice to St. Charles, and three times to the House of Correction, he said. "It won't do any good for me to tell you about those places You will go up there, and they will cover things up and you will just figure I lied. If you want to try out some of them places just go get in Dutch with the cops, and then you won't need anybody to tell you"

John's sister says that he is seldom at home He occasionally comes in for supper and sometimes appears for a little while in the evening. He is never at home on Saturday or Sunday. The mother and sisters have given up trying to keep him in the house The former says that when he works he is all right but as soon as he gets out of work he goes with his gang and gets into trouble As to his early difficulties John said "I never got into no more trouble than the other boys. I got into trouble with a cop, and ever since that they have been hounding me They are to blame for most of my trouble. They started beating me when I was a kid of a boy"

John had always associated with a group of boys now known as the "——— street gang." Nine of these boys were recently convicted of manslaughter and sentenced to prisons for terms of one year to life John was not implicated in this robbery and murder, as he was in the police station at the time of the holdup He spends his spare time now with the remaining member of the gang He says that he likes dancing and the "movies" and drinks "moonshine" occasionally.

During the conversation John expressed various bits of his philosophy of life and of his reaction to life as he had seen it He is very bitter and thinks nothing worth while. He feels that it is unfair that he was born without money while others have money and never have to work He is against established authority and against society, as he knows it. He describes himself as a Bolshevik, indicating his general attitude of opposition rather than any definite social creed. As to his own behavior he said "Well, what are you going to do in this community? There ain't no place to go, and you can't stay on the streets after dark but what some copper comes along and pipes up, 'Whatcha doing there? Move on'" Again he said. "When you get out of your own neighborhood and see how lots of other folks live in this old world, how they have swell houses, cars, and everything, it makes you feel like things ain't right I just feel like jumping in the river and stopping it all."

From his earliest childhood John has lived in a home where there was domestic discord, where his mother worked, and where his father was in every way a bad influence Irregular earnings and unemployment of his father brought poverty and undernourishment to the children The neighborhood in which he grew up offered little that was better than his home It is scarcely surprising that John has grown up stubborn and anti-social It is very much to the credit of his sisters that in the same home environment they have been able to grow up into fine young women. However, John was subjected to his father's evil influence even more than the other children, and his emotional

constitution, according to the psychopathic laboratory, has always been defective. With this history the difficulties that a court—equipped as was the boys' court—had to overcome if John's viewpoint was to be changed were almost insurmountable. Nevertheless, the efforts that have been made would not have been likely to bring success in any case. Discharges of one kind or another and short sentences to the House of Correction have been the only treatment given since he left the jurisdiction of the juvenile court.

Regardless of parental attitudes toward, or activity in, delinquency, the child who lives in a vicious neighborhood or who gets into a delinquent gang will have difficulty in avoiding delinquency himself. A. B lived in a poor neighborhood and *did run* with a "bad" gang In addition, he was directly influenced by a shady junk dealer who helped and stimulated the boys to steal. Patrick, on the other hand, lived in a good neighborhood and had an apparently excellent home. But his association with a "roughneck" gang was of chief etiologic significance in his delinquency.

Case Number 35 (Shaw and McKay, 1931) In the neighborhood in which I lived there were mostly Italians and Croatians There were always street fights, drunkards, and there were all kinds of petty thieves The buildings and homes were dirty and shabby looking and the streets were likewise. Then there were some tenement houses and rooming houses and there were a few factories

I was 11 or 12 when I associated with some young roughnecks and petty thieves and I got my ideas from them We used to steal milk off people's porches and break open the bread boxes in front of the stores early in the morning after the breadman left and we would take the milk, bread, and cakes to our clubhouse in the middle of the block, and in the rear of the house facing the alley was a barn where a Negro fellow left his horse and wagon In the attic of this barn was our clubhouse and to the left of the barn was a junk yard where we used to build fires and hang around late at night To the right of the barn was a house, and next to the house was a garage. Across the alley was Mr Smith's shanty where he kept his coal and did his business. Us kids, or in other words, our gang, used to help Mr Smith make his deliveries He would sell his coal by the bag at 35 cents a bag. Whenever another coal man was making his deliveries and left his wagon load of coal sit in the alley or street, a couple of us kids would steal the wagon load of coal and take it down to Smith's shanty and unload the wagon of coal We would then drive the horse and wagon

about a mile away and leave it along the street. Then we would catch a street car and come back to the shanty to get our money Smith would give us a couple of dollars for the wagon load of coal and we would go down to Guy's restaurant and get something to eat and then we would go to the shows There we would see and hear the pretty girls dance and sing

Smith had a junk yard, too, and he bought junk and sold it He had a big bunch of us kids that stole all kinds of junk for him in the neighborhood and in other neighborhoods We would drive with Smith to some neighborhood and look around by an old house We would go in the old house and Smith would drive away a few blocks and we would get all the old iron, bottles, and lead and pile it in the alley or some safe place and then Smith would come back to get it Sometimes Smith sent us out to steal from junk yards and from junk wagons He always paid us money or candy or cigarettes I stayed with him for two years and then got into the auto racket

Smith let us have our clubhouse in his barn as pay for stealing for him. Sometimes we would sleep in our clubhouse and sometimes in summer we would sleep in the other old buildings.

I have a mother and father My father had no trade, so he worked as a common laborer whenever he could find work He was a steady worker. My mother took care of the house, as we had six boarders at the time, so it kept her quite busy at home I have two older brothers and three sisters. I would help at home by chopping wood and clean the snow off of the sidewalks in the winter and run errands for my mother. I did not realize at the time how serious these petty crimes were. I thought I was smart to do those things. I got in the habit of stealing and thought nothing of it Somebody would dare me to throw a rock through the window of a department store or steal, and I would do it for the kick I got out of it.

Case Number 36 (Burke, 1930). Patrick McGinnis Native white Father born in Ireland, mother native white. Father in United States 25 years Present age, 19, age at time of offense, 17. Boys' court hearing, July 2, 1924 Disorderly conduct Continued under supervision of a private agency Discharged September 14, 1924 Lives at home Family· Father 46, mother 44 Mother worked away from home Patrick is a neat, well-dressed, and nice-looking boy of medium height and weight He is clean cut, extremely shy but seems to have a belligerent disposition

Patrick's court record includes one charge of disorderly conduct a few days before the offense included in the study. Patrick said: "The

first time I was just in a fight on the street. I belong to the —— Ball room gang and we all got in a fight with some other gangsters and the cops picked us up They turned all of the fellows loose that they knew. The rest got stuck I didn't get a fair break from that cop that night The night copper at —— station tried to get the cop to send us home but he wouldn't." According to the court record the officer stated in court that there had been no reason for the arrest and Patrick was discharged. The next time, Patrick said, "I got arrested and I deserved it. I was with some boys and we had all had a few drinks and we were raising the devil, but the court was square with me, as well as the cops The judge gave me a chance when he could have sent me away. I appreciated the chance and it gave me a lesson." The court continued the case while it was investigated by a representative of a private agency At the same time, the boy was to report to the superintendent of the society Of this man Patrick said: "He is a good and a sensible man. He put me straight, and I have a high regard for him That man could help any boy out who has any sense or self-respect" His court experience has given Patrick a good opinion of the general effect of the court "That boys' court is a real good place for a boy to go rather than other courts I have seen I think Chicago ought to keep it, it helped me, and I know other boys it has helped." At the end of two months' supervision Patrick was discharged by the court.

Patrick's family live in a good west-side neighborhood with nice homes and a large park a block away, offering various forms of recreation. The father owns the apartment house in which the family occupies a 6-room apartment In the home, which is furnished rather elaborately but in good taste, are a phonograph, radio, books, and magazines Usually the family has only three members, but at the present time, owing to the mother's illness, her sister is there caring for her. The father is a contractor and evidently makes a good income The mother had been working for many years in a position that brought her in contact with social problems The attitude of the members of the family toward one another seems normal and natural. The parents are fond of the boy and seem to be very good to him The mother has been anxious for him to obtain a good education and has been somewhat disappointed that he did not want to go to school longer and take up a clerical or professional line of work.

Patrick entered school at 5 and left at 17, when he graduated from high school. "I have had all the school I want," he said "I would not have finished high school except that mother would have been hurt I don't care for office work or any kind that takes a lot of

schooling to do. What I like is something in the way of electricity or building. I want to be a sheet-metal worker if I can't get into the electrician's union. That is what I am trying to do now. If I can, that is all I will ever do." At the present time Patrick is not employed. Two months ago his former employer went out of business. Since that time Patrick has been waiting for an opportunity to get into electrical work. He has had several jobs offered him but has not accepted them. At the time of his court experience he was a clerk in a store at $22.50 a week, his first position after leaving school. Patrick said, "I had a very good job as a clerk and I got on fine, but I don't like work where you meet people all the time. I had rather work hard and tend to my own business than to sit around and to be all the time bawled out by some customer. If I can't be an electrician I want to be a contractor some day. Mother thinks I ought to do something else, since I have a high-school education, but I know what I like best."

In talking of his conduct difficulties before his boys' court experience Patrick gives some rather illuminating comments on life as he found it for a boy in his district. "I have had no trouble besides what all boys do. I had street fights but I never lay out of school or stole or done anything like that. If a boy keeps his self-respect and belongs to a gang or lives in a neighborhood where lots of boys are he has to fight. I don't do it because I like to but because I have to." Since his boys' court experience Patrick says that he has had no troubles except a few fights which were forced upon him. "I am learning to stay out of fights, though I find if I don't have much to say to a tough, I don't get into so much to fight about." As to his companions Patrick said. "I run with some pretty tough eggs in my gang and on the streets, but I don't see them often now since I got out of high school. Now I spend most of my time with other friends. We go to parties at each other's homes. Sometimes we go to dances and shows down town. I am better satisfied to go with these friends for they are not such roughnecks. I never have fights with them. They are civil and nice and don't have so much fight in their codes of honor." The father also says that he has had no trouble with Patrick except his fighting. However, the father thinks that it is natural in a boy and especially in his son. "I suppose he come by it naturally; I was the same way when I was coming up."

Mr. McGinnis thinks that the supervision given Patrick through the court was very beneficial. He said that the agent of the society was of real value. "His association had a good effect upon Patrick. He has been more serious-minded ever since that time." He says

that Mrs. McGinnis also approves of this supervision and that she is very much in favor of this system of supervision by a private agency.

Apparently Patrick's difficulties have arisen from his connection with a rather rough group of boys Having a harmonious home and no particular problems he will probably have little more difficulty Since his court appearance he has not been arrested and, according to him and his family, has engaged in fewer fights. For a boy of Patrick's type the supervision accorded by the court was probably very suitable treatment

The succeeding two cases are excellent illustrations of the resultants of family attitudes. Anton's home and neighborhood are vicious and poor. He has neither the intelligence nor will to avoid the temptations offered by his environment Steve's behavior and that of his brothers and sisters are evidently means of escaping from the intolerability of the home.

Case Number 37 (Burke, 1930). Anton Neita Native white. Father born in Poland, mother native Present age, 19, age at time of offense, 17. Boys' court hearing, March 27, 1924. Assault with a deadly weapon Placed on probation for six months, April 26, 1924. Discharged from probation at expiration of term. Result "doubtful" Lives with sister, at time of offense lived at home. Family. Stepfather 42, mother 40, at home. Sister 23, married and living in her own home. Sisters 17, 10, 8, 7; stepbrother 8 Father died in 1923 Sister dead Mother worked away from home until six months ago

Anton is a slender boy of medium height, undernourished in appearance, rather untidy, and not very clean In conversation he is evasive, talks little, seems dull, and gives the impression of being a backward, if not feeble-minded boy The boys' court sent him for mental examination to the psychopathic laboratory, where his mental age was found to be 10 1/5 years and he was diagnosed as a high-grade moron plus dementia praecox hebephrenia

Of the offense included in the study Anton said· "This time it was for shooting a boy I couldn't help it It was just an accident The cops said it was my fault, and they beat up on me for an hour or two down at the (detective) bureau The judge lectured to me and let me go on six months of probation, for he found out that I did not shoot him on purpose" The court records show that the charge was assault with a deadly weapon and that after a month the boy was placed on probation for six months. Before this offense Anton had been in the juvenile court on a charge of burglary. He had run

away from home and with two other boys had annoyed a young girl and burglarized a shoe-shining parlor. He was sent to the Chicago and Cook County School in November, 1923, but stayed there only three weeks This was the year his father died His conduct at the school is said to have been poor, but he was paroled and finally discharged when over 17, with a poor conduct record Again, after the offense that was heard in the boys' court, Anton was in the juvenile court on a charge of stealing bicycle parts, for which he was returned to the Chicago and Cook County School for violation of parole. The conflict of jurisdiction between the juvenile court and the boys' court was possibly due to Anton's varying statements in regard to his age On the boys' court record he appears as having been born April 1, 1907, but during the interview in connection with this study he said that he was really born in 1906 but had given the other date in order to be heard in the court he wanted. Since these experiences he has been in court twice. In February, 1925, he was held for the grand jury by a branch court, but in March no "true bill" was found. In April he was again charged with burglary and this time was sentenced by the criminal court to four months in the House of Correction Anton's description of his court experience does not tally exactly with the court record, although he describes three arrests. He said

"The first time was for running away from home I did not like to stay with my mother, so I ran away and the cops pinched me" He then described the shooting affair "The last time was on the Fourth of July, and we was all in the park and drunk and I don't know what I done, but they sent me away for four months" When questioned further about this difficulty he would not say that he knew anything more about it and finally refused to talk at all. He gave the impression that he may have been even more deeply implicated than was brought out during the trial Anton was never in jail and says he never had to put up security Each time he was arrested, however, he stayed in the police station overnight He said: "The stations are not so bad when you consider what they are for."

Probation does not seem to have made any impression upon him He showed no interest in it; probably his mental capacity is not sufficient to enable him to benefit by this sort of treatment Little opportunity was given him, however, to profit by it. He made no reports to the officer, according to the record in the probation office The probation officer reports that he called once and spoke to the mother; that he called the next month and found no one at home Another visit was not made for two months On this occasion the

officer reported that the landlady said they had moved away. No record is found of any effort on his part to trace the family Even the first visit of the probation officer to the home can have been of little use, as he reported. "The mother speaks very little English, only speaks Italian." As the mother was born in this country, and is of Polish extraction, it is probable that the right family was never once seen by the officer. At the expiration of the 6-month term Anton was discharged from probation, and results were recorded as "doubtful."

Anton was in the House of Correction from July 6 to October 31, 1926. The only expression in regard to this experience which he would make was: "Gee! that was an awful place; I never want any more of it."

Anton's home conditions could hardly have been worse Since 1914, when he was 7 years old, the family has been known to social agencies as very undesirable, and ever since that time (12 years ago) the children have been under supervision by the juvenile court, by reason of bad home conditions Six agencies have registered the family at the social-service exchange. The mother and father were both known to drink. The father several times reported to the court that his wife drank too much to give the children proper care. After the father's death in 1923 reports were received both of the mother's drinking and of her receiving men visitors at night The mother also worked away from home at least during the last 12 years. After her husband's death she worked for a time on a truck farm. To reach this work she was forced to leave home at 4 o'clock in the morning and did not return until 7 o'clock at night The children were left alone at home. In speaking of his childhood Anton said that his mother was always too busy to be interested in him, that he had never been welcome in her home, and that some of his relatives had told him that his mother had never wanted children. He said that his mother had cared little for him The mother at the present time says that the stepfather to whom she was married six months ago does not want the children in their home She also told the agent who interviewed her for this study that she did not like Anton. She had heard from a brother of hers that Anton was in the Bridewell. She herself had had no word from him for so many months that she had not known of his sentence. The stepfather wanted to visit Anton when he heard that he was in the Bridewell and was trying to persuade the mother to go with him The stepfather drinks, but there is no indication from any source other than the mother that he is not willing to have the children in his home.

During the 12 years that the juvenile-court officer has visited the

family (once every month except for 16 months when they were lost to the court) the places in which the family has lived have been very disagreeable. In one house one of the girls was bitten badly by a rat The house in which the family now lives is in a poor business and residential district, comprised of two- and three-story brick and frame apartment buildings, with many rear houses. The mother appeared to be delighted with her new quarters and mentioned as one of the advantages the fact that there were no rats The street is dirty, and the flat was dirty and untidy. The family have moved twice since Anton's offense

Anton has not lived in his mother's home lately. After coming out of the House of Correction, at the end of October, he went to his sister's home Her four-room apartment, which rents for $18 a month, is in a small brick building on a business street, near an industrial center. The community is considerably better than that in which his mother lives The apartment is clean but dark. The furniture is simple but adequate The apartment is crowded, and the atmosphere is stuffy and close There was no evidence of home recreation of any kind The family consists of the sister and her husband and their three children, of Anton and his 14-year-old sister. The brother-in-law is a construction worker making $35 a week The sister seems to be sympathetic with Anton, and the brother-in-law was on friendly terms with him. Although the relationships in this home are much better than in the mother's home, his sister and brother-in-law are probably too indulgent and do not give him the supervision that he needs.

The family at home attend church regularly The children have all lived irregularly, being sometimes at home, sometimes with relatives, sometimes in other homes, and sometimes in institutions During a long period in which social agencies have been in close touch with the family no permanent plan has been worked out for any of them. Only the oldest girl seems to have made a satisfactory adjustment. She was committed to a school for dependent girls in 1915 at the same time that Anton was committed to a training school for boys They were both kept on probation until 1919 Apparently the girl's marriage has been successful although her husband's wages are rather inadequate for the family In the same year that the two oldest children were placed in training schools as dependents the next two children (both girls) were placed with the grandmother, the father paying $2 a week for their care. They also were released from supervision in 1919. They have lived with various relatives and in other families, and one of them was in an institution They fre-

quently ran away to their mother or sister. Finally, the second girl was placed with her sister and has remained there. In 1924 the two children still younger were placed on probation to live with the oldest sister, then married They were later sent to the industrial school and ran away from there They were subsequently placed in other homes, and during the last year they have been placed in the home of a woman who wished to adopt them. The mother, however, will not consent to adoption, although she is perfectly willing for the children to stay away from home. The children still return to their mother from time to time Police have been sent to the mother's home for them, and on one occasion they hid under the bed while their mother said they were not at home One sister was scalded to death in 1923 The only delinquencies except Anton's charged against the family are against the parents. The mother in 1915 was picked up on the street drunk, fined $40 and costs, and sent to the House of the Good Shepherd for three months

At the present time the stepfather is employed in the smoke room of the stockyards and earns $35 a week. The oldest unmarried sister lives with relatives and works in an electric shop. As the next sister is with the married sister and the two younger girls are usually in another family home, no children are with the mother except the child of Anton's stepfather, a boy of 8. The younger children are in the first, second, and third grades at 7, 8, and 10 years of age, respectively.

Anton entered a parochial school at 7 years of age and remained until 12, if he is the age he now claims to be According to the date of birth given the boys' court, he was only 11 when he stopped school The mother's story is that he had stopped school at 14 and had been at work for some time before she and the boy's father were aware of it Undoubtedly she has had enough contact with school authorities and the law to realize that his work was illegal Probably this is the reason that she disclaims any knowledge of it, for Anton says that he "had to work to help father" and when asked about his mother's statement said that his parents did know when he went to work. He says he had completed four grades and had repeated one. His mother says that he had completed only three grades. Anton said. "School is a lot of bunk to me. I never liked it. I never had clothes like others, and somehow I never learned fast, and what I did learn never done me any good"

Anton said that he first worked on a truck farm with his mother At the time of the offense studied he was a driver making deliveries of daily papers for $18 to $20 a week. He does not know how many

different jobs he has had and says he "just changed when he didn't like what he was doing" Apparently he cannot keep a position long. He often gets into discussions and arguments and fights with his fellow workers and with his bosses. At the time of his offense he was paying $10 a week for his room and board and pays the same amount to his sister at present

Anton's mother said that he was a "server" at church when a small boy and used to march in the processions and attend church regularly He was a truant from school and was always unmanageable. She says his present companions are undesirable.

Of his companionships and recreation Anton said. "I don't go but with a few boys We go to shows (movies), and go riding and play ball In the summer we go to baseball games Then we hang out on the streets or in stores sometimes" He admitted that he drinks moonshine "fairly often." He does not have much time to spend with girls but frankly states that he is a constant caller on immoral women In regard to his conduct difficulties he said "I have been getting into trouble ever since I can remember, and I guess I always will be doing it, for somehow I get a chance and I can't turn it down My mother may have helped me along People shouldn't say anything about parents, and especially dead ones, but my father and mother just didn't pay me no attention when I was growing up I raised myself and made an awful mess of it."

Anton seems to have no inherently bad qualities but to have little will power and to act as others direct or lead He has no great amount of energy and no initiative Let alone, he would do little harm. In a good environment he might get along fairly well. Strict supervision and good home influence might have saved this boy from his present predicament Although he impressed the probation officer, the juvenile court officer, and the bureau agent, as of subnormal mentality, no effort was made by the agencies so closely in touch with him from the time he was 7 years old until he was 17 to have him examined mentally This failure is difficult to explain in view of his retardation in school Apparently no effort was made to adjust the school curriculum to his particular abilities. According to his mother, the school-teachers did not report Anton's absence to her after he finally stopped school "because they didn't care." For this weak but harmless boy neither his home nor his school "cared" A representative of the juvenile court attempted to supply the care which was needed, and the efforts of this one agency were not successful Later, when Anton came to the attention of the boys' court, another opportunity provided by society, probationary care, also failed to provide

the supervision that he needed Commitment to a correctional institution at least gave him discipline but for a very short time only. No provision was made for supervision of this boy or boys like him after they left the institution. To sum up, favorable conditions of living, including rather strict supervision, might have been successful with this boy in spite of the unfavorable mental diagnosis and his early environment These have not been provided.

Case Number 38 (Burke, 1930). Steve Lozinsky. Of medium height and weight, very neat, conservatively and well dressed; Steve impresses one as a clean-cut, intelligent young man with many good qualities

Steve describes his court experience and offense as follows:

"We four boys went to a dance hall and found a car unlocked We did not know the owner, but we wanted a ride, so we got in. I took the wheel, and we drove off We stopped to get some gas, and a policeman became suspicious of us, took us up, called up police headquarters, and found we were in a stolen car. They took us down town, and I called up home Father came and bailed me out for $2500. The police station was not clean The detective bureau was a regular dump The police were lots harder than there was any need for them to be. We went to court and got our sentences. I was scared nearly to death. I was mighty glad to get six months' probation, and a chance to go straight. I had two probation officers, a man for a while, then a woman. She was real good. She done me lots of good. Just to go down once a month and go to all that trouble and explain all about what you were doing was enough to make any boy who has an average mind stop and think before he goes on and gets into more trouble Probation did me more good than all the lecturing I have had given me all my life."

As to the effect of the court experience as a whole, Steve said, "It was the best thing that ever happened to me. I wish it had happened a little sooner. The court did a lot better by giving me probation than if I had been fined and my father had paid it off, or if they had not given me a chance and had sent me to the House of Correction."

The mother's opinion of the services of the probation officer did not agree with Steve's. She said, "The probation officer was a very nice lady. She came quite often and took an interest in Steve She would sit for a long time and talk real nice to him, but it didn't do any good. Steve paid no attention to her. His father told him all those things, and he is a much better lecturer than that lady was. When

she would leave, Steve would die laughing and say, 'That is the bunk, she is paid to do all that talking.'" Mrs. Lozinsky's description of Steve's offense varied somewhat from the boy's statement She said that one night after he came in very late his father gave him an unusually severe lecture, and the next day Steve left home. The family did not hear from him until the police telephoned that Steve was locked up. He had been caught in another state driving an automobile which had been stolen. Four other boys were with him, and they were all on their way to Hollywood.

The Lozinsky home is on the first floor of a rather new 2-family brick apartment building owned by the family It is located in a desirable residential neighborhood of business people The 6-room apartment is comfortably furnished and well kept The living room is rather attractive, with pots of flowers in the bay windows, a piano, and some books The house has only three bedrooms, which crowds the family of 11 members considerably.

Mr Lozinsky is a business man making about $125 a week Additional income includes $25 a week which Steve earns and $20 a week earned by the older sister, who is at home. The two children who are away from home support themselves Six children are in school in grades ranging from the first to the eighth The little boy of 4 is at home with the mother.

Mrs. Lozinsky is neat and young looking for her age. She is a high-school graduate Mr and Mrs Lozinsky are very exacting parents They make rules to which everyone in the household must conform or leave the home Mrs. Lozinsky admits that she is strict with her children, and also that they all deceive her, and that she does not trust any of them. According to his wife, Mr Lozinsky has a very hot temper and flares up suddenly, but he has no bad habits and provides well for the family He is courteous and presents a good appearance, but gives the impression of being determined and self-satisfied His idea of discipline in the family is "lecturing," but Mrs Lozinsky believes in an occasional thrashing The relations between Mr and Mrs. Lozinsky sometimes become strained After their last quarrel they did not speak to each other for three months Mrs Lozinsky says, "Worse than having children who run away is to have a husband who will not speak to you." She ascribes many of the difficulties between parents and children to what she calls "false pride" Members of the family have close connections with the church in the neighborhood, and are interested in all its affairs The girls belong to church clubs and attend their dances and parties frequently

Steve describes his father and mother as extremely religious, auto-

cratic, and out of sympathy with modern American life They think their children should work all the time and need no recreation. "At home my folks have always beat me to make me obey. I guess I have been stubborn, but what gets me is that other boys and girls don't get the same kind of treatment that we do"

The oldest boy, Charles, chafed under the family discipline and finally ran away, for some time they did not know where he was, but later learned he was in the Navy Charles returned home to live but again was unwilling to keep the hours his mother demanded, so she told him to pack his things and go to live his own life as he could not fit into the routine of the family She felt that he was having a bad influence on Steve, encouraging him to stay out late Charles left and is boarding with some friends He comes home once in a while, but Mrs Lozinsky says she does not want him to do this any more and she has decided "to cut him" the next time he comes to see the family She feels that he has already succeeded in influencing Margaret to leave home Margaret was so fond of reading that she did not scrub the kitchen floor twice a week as she was told, and she failed to clean the house as often as it should have been cleaned. She read so much that she neglected some of her studies and got very low grades in them. Mrs. Lozinsky, therefore, told her that she must go to work, that they would waste no more money sending her to school Margaret, being only 15, could get no work except that of a maid in a private family Mrs Lozinsky felt that Margaret should give her her wages The girl did this for a while but soon began to resent it She returned home to live, but after her experience away from home was not willing to conform to the rules of the house Mrs. Lozinsky admits that she beat her severely She said in connection with this that she had beat all her children severely because she believes in "giving it to them good and plenty." After this Margaret left home, and Mrs. Lozinsky does not want her back She and Charles board at the same place.

While Margaret was working in a private family her mother felt that she did not come home often enough and asked a private children's agency to see Margaret The worker from that agency found the mother emotional and almost hysterical The worker was impressed by the fact that the mother demanded and received implicit respect from all the children She found the family most interesting and unusual She also felt an undercurrent of unrest and dissatisfaction in the home, the source of which she did not discover, although she found Margaret a very nice girl with no delinquent tendencies, who had merely become negligent in her home visits and who readily

agreed that she should and would visit her mother oftener There-upon the contact of the agency with the family ceased

Fred, 13 years old and in the eighth grade, has developed a different means of escape. His mother says he is a good boy in every way at home and at school, but he loves to wander. He runs away from home for days at a time. He then comes back, takes a severe thrashing, and soon runs off again. He told the children that the pain from the "licking" lasted only about half an hour, and that in exchange for it he had three whole days of freedom and pleasure. Upon one of his recent returns from such a trip, Mrs. Lozinsky gave him what she admits was a terrible beating with a strap from the sewing-machine wheel He cried out in such pain that the neighbors up-stairs interfered. She refused to stop, and the neighbors called the police. She explained to the officers why she was whipping the child, and they told her to whip him whenever he ran away. Mrs Lozinsky feels very triumphant over this.

The oldest daughter, Helen, is 18 and according to her mother "behaves fairly well, but has crazy fits about leaving home" Mrs Lozinsky usually gets these notions out of her head by means of a sound thrashing with a strap. Helen is in high school until 3 in the afternoon. She then rides for almost an hour on the street car to a telephone exchange where she acts as an operator until 10 at night She has only one Sunday a month free from her telephone duties. Mrs. Lozinsky said that the girl did not need any time for recreation

Steve, the boy included in this study, entered school when 6 years old. He had always been a bright pupil, had made good grades, and was ambitious to finish his high school course when his school career came to a sudden end. Steve says that his father and his teacher "framed on him," and he got mad and gave up school His mother's story is more detailed Steve stayed out late one night having a date with his "steady girl," to whom Mrs Lozinsky objected His father sat up for him Steve saw him through the window and was afraid to come in, so he went around the back of the house and slipped in without his father's knowledge His father fell asleep, and when he awoke it was 3 in the morning He accused Steve of coming in at that hour, and a heated argument followed. The next day the father went to the school—a church high school—and asked the teacher's co-operation in giving Steve a severe lesson Therefore, when Steve arrived, the instructor lectured him very sternly for staying out so late the night before and said he could not have a boy like him in his school, he would have to take his books and go home The "lesson" did not work as expected. Steve took the professor at his word He

also took his books and left, refusing to return, although he lacked only a few months of graduating The experience embittered Steve, and the father was too proud to give in. This occurred when Steve was 17, a few months before his court experience. He now attends school two nights each week, studying automobile mechanics. He expects to keep on studying subjects that will be of practical value.

When Steve first left school he became a driver for a department store, earning $14 a week He regarded that as only a temporary occupation and changed when he had an opportunity to get into business. Mrs. Lozinsky says that she has been dissatisfied several times with Steve's positions and one she persuaded him to give up. After this he was out of work for a long time because he could not find a job that would please both him and his mother For two and one-half years he has remained with the same company as a clerk He is now earning $25 a week Steve and his brother and sister who have left home have followed their father's occupation Steve has a good attitude toward work and toward his employers, and seems to be successful.

Mrs Lozinsky says that Steve never got into any serious trouble except the one time he was in court He kept very late hours, however, and both his mother and his father were continually disciplining him for this. She disapproved of a boy with whom Steve formerly went, one of the boys who was involved in stealing the automobile. She thinks he has given up the girl to whom she objected. His mother does not know who Steve's friends are now, for he no longer confides in her. He goes out quite frequently, but she does not know where. He belongs to a national fraternal and charitable order and to another club. He has been interested in the piano and took lessons for a while, practicing diligently, but finally lost interest and stopped his lessons.

Steve told how he worked out a certain program enabling him to have a social life and still live at home He goes to school two nights a week and tells his parents that he goes four nights He goes out with boy friends the other two nights He says, "I never belonged to a regular gang Most boys who belong to those gangs are a tough bunch. I never drank, smoked, or anything like that, so I would not get on in a gang very well. I go with two nice boys who don't drink We go to movies, and on Saturday nights I take my girl out. I also go to see her on Sunday evenings."

Steve says that up to the time of his court appearance he had never had any trouble except at home. He also says that arguments at home have been his only trouble since his court experience. He said

that before he "got caught" he had taken out several cars and taken joy rides in them, but always brought them back. He has found out that to get away from home and into trouble just to spite his family or to be smart is only hurting himself. He never expects to get into court again.

To have been able to remain in his home under most trying circumstances and to have come through with the ability to keep himself straight are evidences that Steve is made of good stuff. He seems to have inherited his father's ability, and in addition is a very likeable person. His court experience seems to have made him realize the futility of certain means of expressing his revolt against home conditions. Probation for such a boy was apparently the correct procedure. No behavior problem exists at present. The boy's vocational problem is solved. His social situation is satisfactory, and if, as he grows older, he is able to work out his career without interference from home influences, his life may be expected to be successful.

These few cases have been selected because they introduce some of the more frequent factors that are basic to delinquency. In even these cases, however, it is evident that no one thing is ever the cause of delinquent behavior. The official charge against the delinquent is of little value in psychological diagnosis. We must have as exhaustive a history of the child as it is possible to get; and intelligent interpretation of the information included in such a history must account for the delinquency. There is always a reason; and until that reason, or those reasons, are discovered, it is impossible to deal adequately with the child.

Treatment

From a strictly psychological point of view the treatment of the juvenile delinquent differs in no essential respect from the treatment of any child who exhibits behavior difficulties. Inasmuch as the delinquent's behavior problem is of such a nature that it transgresses legal restrictions, the psychologist is not entirely free in dealing with the child. He usually sees the child only after he has been brought into court, or has been committed to an institution or placed on probation. Therefore, we must consider juvenile courts, institutions, and probation as special factors in the treatment of the juvenile delinquent.

Special courts for dealing with children's cases are of recent origin, although Platonov (1925) reports that Catherine II instituted "Courts

of Conscience" in Russia during 1775 to hear cases of juvenile delinquents, insane, and unintentional offenders, and to settle disputes by arbitration instead of by formal legal procedure Modern juvenile courts were instituted in South Australia by ministerial order in 1890 and later legalized by an Act in 1895. Earlier than this several American states had provided for the separate hearing of children's cases. The first laws establishing juvenile courts were passed in 1899 in Illinois and Colorado; they established courts in Chicago and Denver Since that time practically all states have made some arrangement for the special handling of juvenile cases.

In usual criminal procedure, the offender is accused of the commission of a specific crime. The jury and judge, following certain conventional legalistic formulae, decide whether the evidence supports the accusation If it does, then the individual is punished according to law. In contrast to this, the underlying theory of the juvenile court is that the child is ultimately a ward of the state, and when he has been brought before the court its task is to discover the conditions responsible for his appearance. In chancery proceedings of this sort the judge's action can be influenced by factors in the child's history which could not be admitted as evidence in a criminal proceeding In addition to delinquencies of children younger than statutory limits, the juvenile courts usually have jurisdiction in cases of child dependency or neglect.

The following quotation from Flexner, Oppenheimer, and Lenroot (1933) succinctly sums up the basic conceptions distinguishing juvenile from other courts: "Children are to be dealt with separately from adults Their cases are to be heard at a different time and preferably in a different place The children are to be detained in separate buildings. If institutional guidance is necessary, they are to be committed to institutions for children. Through its probation officers the court can keep in constant touch with the children who have appeared before it. Taking children from their parents is, when possible, to be avoided, on the other hand, parental obligations are to be enforced The procedure of the court must be as informal as possible. Its purpose is not to punish but to save It is to deal with children not as criminals but as persons in whose guidance and welfare the State is peculiarly interested. Save in the cases of adults, its jurisdiction is equitable, not criminal, in nature"

As shown by Lenroot and Lundberg (1925), the details of procedure

in different courts vary a good deal, but in general nature the procedure is essentially similar Children may be arrested by the police, or complaints may be made to the court officials by parents, school authorities, or other interested persons. Between the complaint and the hearing a period of a day or two to a week or more intervenes. During this time the child may be kept at home, or in official custody in a special detention home or boarding home, or, unfortunately in some communities, in the jail. The hearing itself is usually preceded by an investigation of the child's history, which may consist of little more than a statement of superficial home conditions and the opinions of persons who know the child, or, on the other hand, it may include a detailed study of the physical and mental condition of the child, his developmental history, and his home and neighborhood The history may be secured entirely by the probation officer, or it may be contributed to by such specialists as the physician, psychologist, psychiatrist, or social worker

With all the available material before him, the judge conducts a hearing Present are usually the child, his parents, the person making the complaint, and perhaps the probation officer or others who have contributed to the history of the case Conspicuous by their absence are lawyers, court attendants, jury, and a public audience The judge, alone or in consultation with expert advisers, makes a decision—not what the punishment shall be, but how the child shall be treated

In general, there are three major courses open to the judge: (1) He may merely release the child, with or without warning, to the custody of the parents (2) He may place the child on probation for a definite or indefinite period. (3) He may commit the child to a juvenile reform or correctional school

Complete release of the child to the custody of the parents is probably wise only under certain extremely suitable circumstances If the offense is the child's first, if there are no reports of other types of behavior problem, and if the evidence supports the belief that the parents are able to deal with the child, full release is probably the best procedure. Regardless of how minor the act is upon which the present complaint is based, if the child has a previous history of delinquency or behavior problems he should not be given a full release. Such a history is itself evidence that the parents are not able to deal satisfactorily with the child. Therefore, the state, through the

court, must maintain a contact with the child to the end that he shall not develop further unsatisfactory behavior tendencies.

Probation.—The court's contact with the juvenile offender is usually maintained through a system of probation. The child may be left in his own home or placed in a foster home, but in either case his activities are more or less carefully supervised by a probation officer. With a sufficient number of adequately trained officers, the probation system has much to commend it. Unfortunately, in too many communities the probation officer is a purely political appointee, and often the place is given to an entirely unsuitable person. This political aspect, the lack of money available for salaries, the absence of community enlightenment, and too large case loads often make probation an unsatisfactory method of dealing with delinquents. When probation is satisfactory, if not ideal, the officer can do a great deal in helping the delinquent. He visits and tries to gain some insight into the home; he offers counsel to the child, he should know and make use of all facilities, such as medical or mental hygiene clinics, recreational programs, boys' and girls' clubs, and the like, that exist in his community; he is not a policeman wielding a big stick, but a friend to whom the delinquent should feel free to go in times of difficulty. Active therapy by probation officers is usually in the nature of social treatment such as advising changes in home, giving occupational and educational assistance, and the like. The probationer is required to report at regular intervals to the officer. Because of the very heavy case loads usually borne by most probation officers, the reporting of the delinquent is often a rather perfunctory, formal affair. If the case loads were small, properly trained officers could be of great value in carrying out psychological therapy.

Institutions.—Separate institutions for juvenile delinquents were unknown before 1824. Before that date, children were tried, convicted and committed to the jails and prisons just as adults were. In 1824 the New York House of Refuge was opened through the efforts of the Society of Friends in New York City. Boston and Philadelphia established similar institutions in 1826, and the first State Reform School for Boys was started in 1847 at Westboro, Massachusetts. Massachusetts also had the first school for girls in 1854. Since this time, public and private institutions for delinquent boys and girls have been created in every state. From the beginning until very recently—and in the more backward schools even today—the basic idea of such

institutions has been merely to separate children from adults in carrying out the provisions of the penal code.

Since the development of juvenile courts and the changing attitude toward juvenile offenders, the purposes and values of institutions for children have been viewed in a different light. The following quotation from Bowler and Bloodgood (1935) is an excellent summary of the objectives of juvenile institutions as seen by progressive workers in the field

"An institution for delinquent boys exists for the purpose of reeducating the individual child committed to its care by the court Reeducation here means something much broader and deeper than any amount of improvement or increase in the academic instruction or vocational training which the individual child is to receive It means reshaping his behavior patterns It means giving thoughtful attention to his personality difficulties to the end that he may achieve healthy emotional development as well as growth in mental equipment or manual skill It means giving the child an opportunity to meet and experience life under controlled conditions, in order that he may be more readily redirected and guided into behavior channels that will gratify him and be acceptable to others. It also implies making quite sure before he is released that he has acquired sufficient reeducation, or redirection, to enable him to make those personal and social adjustments that will be necessary if he is to lead a fuller, happier, more productive life and if he is to avoid those conflicts which had previously brought him, and would again bring him, into conflict with society and its laws To imply that all these things can be done for all boys would be to sidestep reality flagrantly Realistically the institutions' task is to discover each boy's assets and liabilities in relation to the social scheme, and then to go as far as possible in each case toward building up a personality capable of satisfactory self-direction"

It would take us too far afield to attempt a description of the work of modern institutions. Several reports which are readily available give excellent accounts of present practices. Fenton (1935) has described the work at the Whittier State School; in this institution an effort is made to adjust the child's training program to fit his earlier experiences, his interests, and his abilities. Furthermore, before the boy is finally released he is placed in the community for a trial period during which he is supervised and helped by workers from the school.

Bowler and Bloodgood (1935) have described the programs, especially from the point of view of their treatment value, of five state institutions for delinquent boys, which illustrate current practices in a small selected group of the better institutions Reeves (1929) has published a somewhat more elaborate study and analysis of the practices of 57 training schools for delinquent girls

Probation and institutionalization in themselves do not constitute treatment; they are merely means of keeping an official eye on the delinquent child As the Gluecks (1934) point out, the judge has a primary duty to society in protecting it from further acts of this offender. In contrast, the professional specialist is concerned primarily with the child as an individual There is no real reason why these two points of view should be in conflict. To treat and cure the child mean ultimate gain to society. If there is reason to believe that the child's behavior will be inimical to the social good, there is no reason why probationary or institutional supervision should not be maintained temporarily But during such periods of supervision there should be attempts at active therapy. Institutionalization as punishment, or as an end in itself, probably defeats its own purpose. A similar statement can be made regarding probation when it is used merely as a means of watching the boy or girl while hoping he will reform, or waiting for his behavior to become so bad that he is sent to an institution

Active measures aimed at the correction of the child's behavior may deal with the parents and family, with the community and its agencies, and with the child. Upon which of these three emphasis is to be placed can be determined only by careful evaluation of all the elements involved in the history of the case. Detailed schemes of treatment cannot be set forth because they would probably not be suitable for even one actual case Furthermore, such schemes can be too easily considered as magic formulae which insure the improvement of behavior We can, however, summarize in a general way certain procedures that have been shown to be of value There is nothing new here—rather, we reiterate some things discussed in an earlier chapter

The importance of the family can hardly be over-estimated, and every effort should be made to improve the home conditions In cases where the parents are vicious or criminal, necessary legal action should be taken against them, and the child removed from the undesirable influences. Attempts should be made to improve the ma-

terial condition of the home When there are intra-family emotional tensions and conflicts, effort should be directed toward reducing them

If the child lives in an impoverished, degraded, vicious neighborhood, he should probably be removed. Among the agencies of the community, the school is of great importance. Better school adjustment through change in grade placement, modification of curriculum, and improvement of teachers' attitudes should be attempted Commercial amusements, such as pool rooms, saloons and movies, and unsupervised congregating places may have extremely bad effects upon the child, and should be controlled to the greatest legal extent

Before dealing with the child himself, it must be decided whether he is to be allowed to remain with his family and in his own neighborhood Institutions or foster homes for delinquents should be used only as a means of taking the child from undesirable conditions so that direct therapeutic measures may be more effective

How shall each child be dealt with? The answer to this quesion must be decided on the basis of etiologic factors derived from his history If this history shows that the child comes from an environment that definitely indicates inadequate or unsatisfactory training, that the child is below average in intelligence and that he is not adjusted academically, that the viciousness or criminality of the home or neighborhood has afforded excellent models for his behavior, then a program of rehabilitation is indicated Probably the child should be removed from his environment, either to a foster home or to an institution His school program must be adjusted to his ability, and perhaps greater emphasis placed upon pre-vocational or vocational courses. The retraining should also include efforts at building up habits of social responsibility.

For those children whose history indicates that emotional conflicts or personality disorders are basic to the delinquency, a more active psychotherapy is necessary While such therapeutic measures must deal directly with the child, it is necessary to remove or correct environmental reasons for them. Therefore the family must be dealt with in an attempt to reduce conflicts and stresses It may be necessary in some cases to remove the child from the home, at least temporarily Such therapy may be carried on in an institution, as has been described by Aichhorn (1935)

The first step in psychotherapy of the child is to hear his or her own story Regardless of how much other history has been secured,

or how insistent parents or others may be as to the child's guilt, or how clear the whole problem appears to be from the history, if any attempt is to be made in trying to help the child he must be allowed to tell his own story in his own way. The person undertaking to deal with the child with this sort of therapy must take no sides, must show no bias. There must be no element of "good" or "bad" deeds. The therapist is not a judge, but a friend. This must be made clear to the child, for he usually has had much experience in being judged for his misbehavior or condemned and scolded Any idea of punishment must be kept entirely out of the picture. With all ethical or moral questions out of the way, the therapy is the same as we have discussed earlier for dealing with behavior problems in general.

The Function of the Psychological Clinic in Treatment—Since the establishment of Dr Healy's Psychopathic Laboratory in connection with the Cook County Juvenile Court in 1909, a number of courts have created their own psychological departments or made use of psychological clinics available in the community. In a large measure, the work of these clinics has been diagnostic and limited to the formulation of recommendations for handling based upon the findings. Actual psychotherapy with the delinquent has at times been carried out by the clinics, although this has probably not been one of the major functions The value of psychological attention for the delinquent would lie primarily in the improvement of behavior following treatment as recommended by the clinic. That this value can be, or is, realized has not yet been demonstrated. The Gluecks (1934) found that 88 per cent of 923 delinquent boys were recidivists within a five-year period following treatment as recommended by the Judge Baker Foundation Clinic. Such a high percentage of non-adjustment taken at its face value would be a strong argument against the value of the clinic.

In investigating their cases in detail, they found that the clinic recommendations could not be carried out for reasons such as the following:

1 Legal restrictions made it impossible, e.g, in the case of recommendation for commitment to a school for the feeble-minded This would not be the case in some states

2 Parents could not or would not cooperate in carrying out recommendations. This of course would have to be met by a program that did not require the cooperation of the parents

3 Lack of proper social agencies or community facilities, and refusal or inability of established agencies to deal with problem children

4. Non-cooperation of the delinquent This may have been a refusal to attempt any change in behavior, or, in some cases, the delinquent may have escaped or run away before a therapeutic program could be carried out

5. The diversity of authority to deal with the delinquent, e g, probation officers, parole board, institution personnel, and so on, sometimes resulted in a lack of an integrated attack on the problem

6 The limitation of skill and understanding of some probation officers, social workers, or teachers, which presented difficulties in carrying out some recommendations.

7 Trial-and-error, experimental, and idealistic recommendations frequently were neglected because of many practical difficulties in carrying them out This item emphasizes the point that the clinic must make its recommendations with full realization of the possibilities of having them followed

When one considers the several reasons for non-compliance with recommendations and also that in some cases the recommendations were presumably carried out, but not under close supervision of the clinic, it is evident that the high percentage of non-adjustment cannot be taken as adverse evidence It does, however, definitely show, as the Gluecks themselves point out, that there must be closer cooperation among the court, the clinic, and various community agencies in dealing with the delinquents There is also the possibility that in many instances recommendations may be made which in general would be good, but are not of great importance in a specific case

The value of institutionalization of delinquents may also be questioned For example, Healy and Bronner found that of 311 boys sent to juvenile correction schools, 70 per cent failed to adjust after leaving the institution, while of 109 boys not committed, only 34 per cent were failures. Fenton reports that of 180 boys who had been out of the institution for a period sufficiently long to give evidence as to their social adjustment, 110 had adjusted while 70 had not. The variation in these two sets of figures is probably to be accounted for by different programs of rehabilitation and by differences in method of placement

In comparing the adjusted and non-adjusted groups on the presence of some 200 various traits, Fenton found some differences of reliable

significance between them. For example, among the adjusted boys there was a greater incidence of harmonious homes, fewer broken homes, and more constructive interests. The Gluecks found that sound discipline by either father or mother, normal school placement, non-school misconduct, late age (15-17 years) at time of first arrest, and clinical study within a year after the onset of delinquency were the most important factors favoring satisfactory adjustment These studies and certain other ones referred to in these monographs indicate that there are bases for predicting favorable outcome in the treatment of delinquency

Chapter XI

SPEECH DEFECTS

In Chapter VI we suggested that language abilities in reading, writing, and speaking should be considered as three aspects of a whole. Skills in all three develop concomitantly, with speech perhaps starting somewhat sooner than the others Because of this initial advantage the development of reading and writing may be more affected by speech difficulties, than speech will be by reading or writing difficulties. Regardless of how we view the interrelations among these three aspects of language skills, difficulties of speech present specific problems in child adjustment that make them of special importance to the clinical psychologist.

Speech we shall take to mean the production of articulate sounds and patterns of such sounds as are conventionally accepted and understood. In this limited sense speech is a motor phenomenon and the disorders are due essentially to faulty use of the elaborate mechanism required. As with all other motor performances, adequate skill must be learned The infant exhibits vocalization of a haphazard sort just as it exhibits uncoordinated movements of the arms and legs. The neo-natal vocalizations are usually of a vowel character Most authors agree that modifications of *a* or of *u* form the earliest utterances. Further vocal play during the first two or three months introduces the consonantal sounds, with the labials *m*, *p*, and *b* usually appearing earliest This early period of babbling or vocal exploration provides exercise of the speech apparatus, and during it probably most of the sounds required in the production of sound patterns or words are learned Speech as a means of communication may be learned without satisfactory development of speech as sound production Therefore, we shall not discuss the development of speech or language here, but refer the reader to the books of Shirley (1933) and McCarthy (1930), and particularly to McCarthy's (1933) excellent review of language development in the *Handbook of Child Psychology*

Shirley (1933) reports the following as the usual sequence in the

development of language (1) vocal grunts of a reflex character, (2) vocal play introducing syllabic vocalization, (3) socialized vocalization, (4) expressive tone and inflection, (5) comprehensible words, (6) use of pronouns, (7) use of phrases and sentences. Such development will not occur if the child does not hear language used by people about him. Furthermore, the words and pronunciation of the people he does hear will be the ones he learns We may think of the development of language and of speech as following the first four of the above steps Beginning with the fifth, the two may or may not be the same Words which the mother understands may be quite incomprehensible to most people because the child's articulation is so poor that his sound patterns deviate too widely from the conventional norms If spoken communication is to be made a useful addition to the child's behavior equipment, then motor habits must be formed that will produce sounds sufficiently like those used by other people.

When one considers the complexity of the speech apparatus, he must wonder, not why so many children exhibit speech disorders, but why more children do not As Travis (1933) points out, none of the many organs involved in sound production subserve that end alone, nor does their phylogenetic history suggest any such use One may think of speech as a modified type of respiration. A stream of air from the lungs, controlled by the synergic action of all of the muscles required for respiration, is forced through the larynx and over the tautened vocal cords. The vibration of these cords modifies the air stream into a series of waves whose frequency or pitch depends upon their tension and length The sound waves then pass into the oral and nasal cavities where they are further modified by selection of certain tones by the head cavities (resonance), and by interruptions of the air stream by the tongue, teeth and lips All of these parts, which anatomically are more or less unrelated, must work in perfect synchronization. Interference with the operation of any part will result in the production of poor speech sounds.

The speech problems met with in clinical practice may be conveniently divided into five types. A more technical and exhaustive classification will be found in Robbins and Stinchfield (1931). These five groups may be described thus·

1 *Delayed speech.* The child does not start to talk until much later than the average age.

2. *Articulatory disorders.* These include the production of improper sounds because of structural or training defects
3. *Rhythmic disorders.* This group is characterized by poor temporal coordination in the operation of the speech apparatus, giving rise to the condition called stuttering
4. *Voice disorders.* These include cases whose speech shows an abnormal phonation such as hoarseness, nasality, etc
5. *Symbolic disorders.* In this type the difficulty is not in the formation of sounds or in their suitable patterning, but in an inability to place words in acceptable grammatical relationship The various types of disorders in this group are called aphasias

As the methods of examination and treatment of these various types of disorders are quite different, we shall discuss each of them at some length; but before doing so we shall offer data on the prevalence of speech disorders among school children

In the report of the White House Conference (1931) on Special Education, the Committee on the Defective in Speech present probably the most extensive data on the incidence of speech defects. Forty-eight cities from the group with populations over 10,000 answered the Committee's questionnaire with sufficient completeness to permit the calculation of incidences The percentage of children with speech defects in these cities ranged from 1.0 to 21.4. The median and mean of the percentages was 6.9; an average calculated from the totals was five The wide variations in percentages reported are probably due to different standards of judging defects, active speech correction programs, and the like; but the average of five per cent does appear to be a conservative estimate Estimates based on this figure would indicate that about 1,200,000 school children in the United States have defective speech. Louttit and Halls (1936) made a questionnaire survey of all schools in the State of Indiana. On the basis of usable returns, representing about 27 per cent of the total public school population of the state, there was a total incidence of 3.7 per cent. There was a slight difference between the incidences in rural and urban school systems, shown by percentages of 3.3 and 4.3, respectively.

The White House Committee also analyzed their data to show the relative incidences of various types of disorders, as shown in Table LXI It is evident from this table that articulatory defects resulting

TABLE LXI.—INCIDENCE OF TYPES OF SPEECH DEFECTS
(White House Conference, 1931)

Type	Number of Cases	
	Reported	Per 10,000
Sound substitution	30,027	4,623 80
Stuttering	14,384	2,214 96
Oral inactivity	7,445	1,146 44
Structural articulatory	5,585	860 02
Dialectal	3,718	575 64
Voice, functional	1,498	230 67
Voice, structural	1,178	181 38
Hard of hearing	524	80 69
Paralytic articulatory	310	49 28
Asphasias	197	33
Paralytic voice	79	17

from poor habits (sound substitution, oral inactivity, dialectal) are by far the most prevalent type of disorder The next most frequent type is stuttering, structural defects, voice disorders and the aphasias are relatively infrequent.

Delayed Speech

In our clinic at the James Whitcomb Riley Hospital we have frequently had children four, five, or six years referred primarily as speech problems. Usually these children prove to be examples of the commonest cause of delayed speech, i.e., they are feeble-minded Other causes of this condition are deafness, occasionally fright, and possibly lack of speech stimulation from the people with whom the child lives

Wallin (1927) found that boys and girls of normal intelligence use simple words at an average age of one year, while the average for feeble-minded children was two years. Phrases and sentences were used by normal children at 1.7 years, and by feeble-minded children at three years These figures agree with those given by Terman and Gesell, quoted earlier (see page 27) From these figures we can expect that at least 50 per cent of the feeble-minded will exhibit a delay of more than one year in starting to talk Therefore, it is not surprising to find that the children who do not talk, or are just beginning to talk, at four or five years of age are frequently feebleminded.

The demonstration of low mental ability in such young children who do not talk must usually depend upon non-language performance tests. Unsuccessful attempts to present even the simplest of these tests may be indicative of the second most frequent cause of delayed speech, i.e., deafness, or even serious hearing loss The differential diagnosis between feeble-mindedness and inadequate behavior arising from deafness is difficult in young children In any case, where there is a possibility of a hearing defect, a thorough examination should be made by a competent otologist.

Other causes of delayed speech occasionally occur, but they are uncommon One four-year-old girl seen in our clinic had started to talk at about one year of age, and had talked for about six months At this time she had been badly frightened when the family's home had burned. She did not speak after this, and at the age of four was still mute.

Treatment of delayed speech must depend upon etiology The feeble-minded child of five who does not speak will probably do so within a year or so. There appears to be no advantage in special training until the mental age is at least three or four years Speech training of the deaf child should be undertaken by specially trained teachers, consequently recommendation for admission to schools for the deaf should always be made.

Articulatory Defects

Articulatory defects are those caused by inability to make properly the muscular movements necessary to produce a given sound Usually they involve the consonantal sounds, these being produced by faulty tongue and lip movements However, it is probably true that faulty movement of one part of the speech apparatus is accompanied by faulty action of other parts. Travis (1931) in particular emphasizes that the production of any sound requires a "set" of the whole speech apparatus; thus the difference in the initial sound in "well" and "vell" is not only in lip position, but in the total speech pattern This group of disorders includes those for which the following names, not always mutually exclusive, are employed lisping, lalling, cluttering, speech clumsiness or oral inactivity, sound substitution, certain nasalities, infantile speech or "baby talk," foreign accents.

Articulatory disorders are more frequent than any other type. This has been shown in many surveys, of which the one reported above

(see Table LXI) is most extensive and at the same time typical. Of greater importance than the gross frequency is the change in incidence

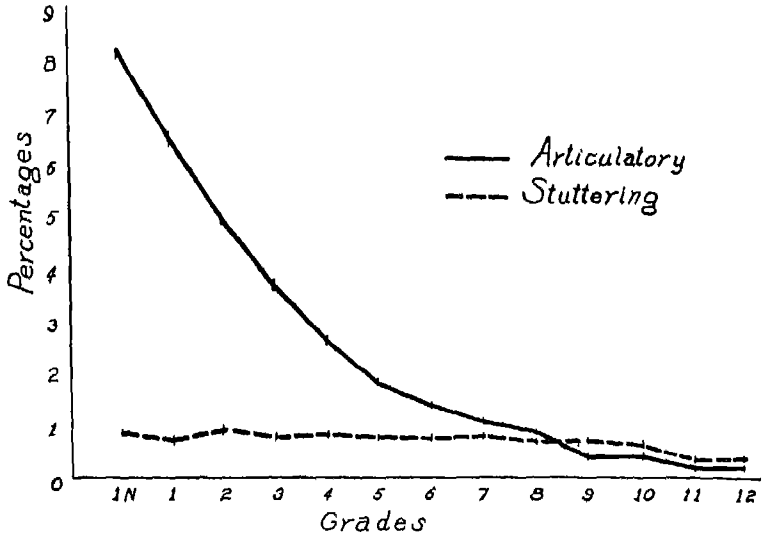


Figure 15—Incidence of Speech Defects by Grades

with increase in grade Louttit and Halls (1936) analyzed their data by grade, with the results shown in Table LXII and Figure 15. Wal-

TABLE LXII —INCIDENCE OF SPEECH DEFECTS BY TYPE AND SCHOOL GRADE

	Louttit and Halls		Wallin	
	Articulatory	Stuttering	Lispers	Stutterers
Kindergarten			2 5	2
New 1st Grade	8 27	93		
1	6 59	73	2 9	6
2	5 08	97	1 7	6
3	3 74	80	1 3	9
4	2 68	88	1 3	9
5	1 85	81	1 0	8
6	1 46	77	7	9
7	1 11	80	6	9
8	80	62	5	9
9	40	69	8	7
10	41	66	1.0	7
11	21	39	.5	5
12	23	.41	.7	4

lin (1926) has a similar analysis of types of defects by grade based on a survey of 89,057 children in the St. Louis public schools, which shows essentially the same tendencies. These data are also shown in Table LXII. It is evident that there is a decided decrease in the number of children with speech defects with increase in grade. The major portion of this drop is due to decreasing articulatory defects. In the Indiana survey articulatory defects drop from 8.25 per cent among new first graders to about 0.25 per cent in the twelfth grade, while stuttering remains fairly constant, around one per cent to the seventh grade, when it begins to fall off, and in the twelfth grade it amounts to about 0.5 per cent.

Classification of Sounds—All sounds used in speech are produced first by a vibration of the air column by the vocal cords, and then by resonance of the head and chest cavities and interruption by teeth, tongue and lips. Following Twitmyer and Nathanson (1932), the sounds may be classified as follows:

1. *Continuants.* Sounds produced by vibration in the larynx and without interruptions by tongue, teeth or lips These include the vowel sounds, a, e, i, o, and u, and their many variations
2. *Stops.* Sounds in which the vibrating air column is interrupted. These may be divided into groups according to the method of stopping.
    a. *Linguo-dentals.* Tongue against back of upper teeth at gum line T-D-N. Decreasing tongue pressure in this order with N being most relaxed and the air passing out by way of both the oral and nasal passages
    b. *Bilabials* Interruption by closing the lips. P-B-M Decreasing compression in this order with M being nasalized analogous to N in Group a.
    c. *Labio-dentals* Lower lip and upper teeth in contact F-V. More laryngeal vibration and less compression in V.
    d. *Inter- or post-dentals.* Interruption by closing teeth together or with tongue between. S-Z (post-dentals) are the former, and Th (inter-dental) the latter Z has more laryngeal vibration than S, but with same sort of dental occlusion
    e. *Front palatals.* Essential similarity in the closing of the jaws. Sh-S-Ch. Sh, close jaws and exhale through teeth;

J like Sh, but with laryngeal vibration; Ch like Sh, but with tongue against upper teeth at gum line

f. *Back palatals.* Back part of tongue used in interrupting. K-G-NG. K and G made by contact of arched tongue with soft palate, with laryngeal vibration in G. NG has more relaxed position and the air passes out of oral and nasal passages

g. *Linguals.* Sound formed by contracted position of tongue. L-R L has tongue against upper teeth. The sound is not explosive as in T The tip of the tongue may touch the edge of the teeth, the gum, or the anterior part of the hard palate, but there must be contact. R uses an upward movement of the tongue toward the hard palate, but no actual contact. Both sounds have pronounced laryngeal vibrations

h. *Aspirate* No interference with air stream. H Tongue on floor of mouth, air forcibly expelled Slightly roughened vowel sound.

This is not the only classification of speech sounds that may be made, but it is a useful one. The total number of sounds included here may be expanded by the vowel variations and modification of certain consonants Travis (1931) uses a phonetic alphabet and in the key table to it includes fifty different sounds

Examination.—For obvious reasons, information concerning the child's ability, educational achievement, home circumstances (especially language and speech patterns used), and physical condition is necessary before attempting corrective work. Methods of examination relating to all of these have been discussed in Chapters II and III in this book Such a clinical examination program as there outlined should be followed in the case of articulatory disorders. In addition, it is necessary to test for the individual sounds. A simple alphabetical phonetical test has been published by Halls (1934), and is here reproduced by permission

This list does not attempt to test all the sound variations that appear, for instance, in Travis' list It is satisfactory, however, in discovering the type of defect present The test is presented by having the child repeat the letter name or the consonant followed by a vowel sound, e.g., *bee, ell, we,* etc Words with double consonant sounds and numer-

ALPHABETICAL PHONETICAL TEST

Name Address
Birth Date Date of examination
Age when started to talk Name of examiner

A____	H____	O____	V____	1____	8____	15____
B____	I____	P____	W____	2____	9____	16____
C____	J____	Q____	X____	3____	10____	17____
D____	K____	R____	Y____	4____	11____	18____
E____	L____	S____	Z____	5____	12____	19____
F____	M____	T____		6____	13____	20____
G____	N____	U____		7____	14____	

Consonant Combinations

th-the____	sn-snow____	cr-crow____	wh-why____
th-think____	sm-smile____	dr-dry____	spr-spray____
st-stay____	pl-play____	fl-fly____	str-string____
sk-sky____	pr-pray____	fr-fry____	shr-shrill____
sh-she____	bl-blow____	gr-gray____	spl-split____
sp-span____	br-bray____	gl-glow____	sq-squall____
sl-slow____	cl-clay____	tr-try____	

Training recommended	(underline)	Yes	No
Speech Prognosis	(underline)	Curable	Trainable
Remarks			

als are also repeated. For each test sound that is incorrectly made the examiner writes as nearly as possible just what the child says.

Causes.—Articulatory disorders arise from two main causes: (1) organic defects, and (2) inadequate or faulty training In terms of the number of cases, the second of these is probably of greater importance

Training in speech articulation may be faulty because of mental deficiency and hence difficulty in learning, or because the examples set by the models the child imitates are intentionally or unintentionally faulty. As we have earlier pointed out, speech begins later among mentally retarded children Abt, Adler, and Bartelme (1929) found correlations, based on data from 1000 white children, between age of onset of speech and I Q., of $-.41 \pm 0.03$ for boys and $-.39 \pm 0.03$ for girls. This fundamental difficulty exhibited by the feeble-minded in learning to speak is reflected in the high frequency with which speech defects are found among them Wallin (1927) reports 2 8 per cent of children in the regular grades and 26.3 per cent of children in classes for the subnormal exhibiting defective speech Louttit and Halls (1936) found that 10 6 per cent of children in special classes, most of which were for subnormals, exhibited defects.

Kennedy (1930) found the following percentages of speech defects among feeble-minded:

	Number	Per Cent
Morons	249	42 6
Imbeciles	32	96 9
Idiots	32	100 0

Morrison (1914-15) found among 25 children, selected because of speech defects from a group of 218 kindergarten pupils, seventeen who were below average in intelligence, six who were average, and only two who were above average. The conclusion from these studies must be that low intelligence is often a reason for articulatory difficulties, and therefore ability levels should always be determined before corrective work is undertaken.

Faulty training resulting from poor speech environment is probably the most significant reason for articulatory defects among young children. Proper articulation and pronunciation depend upon proper models to be imitated, proper methods to be learned. If parents or older children do not articulate clearly the young child will not. Furthermore, if parents encourage a sound substitution speech called "baby talk" which they regard as cute, then the child can hardly be expected to develop suitable articulation. After the child starts to school and finds that teachers and schoolmates make many sounds differently, many of these disorders spontaneously clear up. Thus in Louttit and Halls' (1936) data the ten per cent of defects in the beginning first grade decreases to about five per cent in the third grade and to two and one half per cent in the sixth grade.

The data in Table LXI show that about ten per cent of articulatory disorders are due to structural organic defects. Such organic disorders may be in the central nervous system where certain lesions produce rather characteristic speech patterns Usually the characteristics of these patterns are in phonation rather than in articulation Structural anomalies of the peripheral speech organs, especially of the oral and nasal cavities, are of perhaps of more importance than pathology of the central nervous system. Among the more common abnormalities are unusually large or small tongue, short space between anterior end of the frenum and the tip of the tongue, and paralysis of the tongue. The uvula may be abnormally long or thick, or bifurcated even to the extent of forming a double uvula. The palatal arch may be vaulted, or incomplete as in cleft palate. The cleft in the palate may extend through the hard and soft palates and the upper lip (hare lip) in any degree. Dental abnormalities such as imperfect dental arches, irregular tooth placement, or malocclusion all interfere with the pro-

duction of sounds, although they play an entirely passive part. Pathology of the nose and sinuses interferes with both the nasal sounds and the resonance of the head cavities Enlarged adenoids interfere with the nasal passages, and sometimes following their removal training must be given in exercise of the soft palate The effect of these various conditions on articulation will be quite obvious if the reader will experiment with sound production himself.

We have pointed out that deafness is a common cause of delayed speech. Defective hearing may be a reason for articulatory disorders. If the child does not hear a sound properly he will learn the improper sound, and thus only approximate the one which is conventionally acceptable Travis and Rasmus (1931) have devised a test for determining a patient's ability to distinguish between sounds This discrimination test is of great usefulness in determining the efficiency of hearing

Management—The correction of articulatory disorders should be undertaken only with children of not less than slightly below average mental ability, who have no organic abnormalities. Consistent training of mentally low-grade children may result in some improvement, but there is a serious question whether the results justify the effort required When a child has a structural abnormality this must be repaired by surgery or orthodontia whenever possible, otherwise, there is little purpose in attempting correction. On the other hand, the repair of cleft palates has no purpose except to make possible better speech, and this can be brought about only by training following the repair Orthodontia and repair of harelips have an esthetic purpose, but here also speech will be improved with training

The correction of articulatory disorders is primarily a matter of reeducation. Travis (1931) argues that the production of any sound involves the use and coordination of every part of the speech apparatus With this postulate, he holds that corrective training should not be directed toward lip or tongue movements alone, rather "entirely new total reaction pattern must be acquired." There can be no doubt that speech habits are total patterns, but the usual training procedures are directed toward the formation of specific tongue, lip, or palate habits Whether successful results are secured because of such training, or in spite of it, as Travis claims, would seem to be immaterial

Training of a child with average, or better than average, mental ability with no structural defects is carried out briefly thus: First, the speech sounds which he makes incorrectly are determined. One at a

time, these sounds are demonstrated and the child is taught to reproduce them correctly. When he is able to do so, daily practice must be followed until the correct sound pattern becomes thoroughly habitual. A similar program is followed for each incorrect sound Exercises including syllables, words, and sentences for use in this type of reeducation have been published by Travis (1931), Greene and Wells (1927), and Twitmyer and Nathanson (1932).

Rhythmic Disorders

The production of proper speech sounds in connected discourse depends not only on the ability to articulate properly, but also on the satisfactory coordination of respiration and the activity of the whole speech apparatus. When this rhythmic coordination is interfered with, the individual is unable to speak smoothly. Observation of his speech shows repetition of initial sounds, of syllables, and sometimes an inability to produce an initial sound at all Such arhythmic disorders are called stuttering.[1]

The most immediate symptom of stuttering is, of course, the person's speech. He repeats syllables, words, or sometimes phrases, especially when starting to speak. Sometimes the repetition is only of a beginning sound, as in r-r-r-run; sometimes attempts to say words starting with particular letters may be entirely blocked in a tonic spasm Some stutterers have particular difficulties with vowels and certain consonants, while others show no specificity The disorders in speech are not, however, the only symptoms of stuttering. Travis lists no fewer than fourteen, as follows (1) Opposition of thorax and abdomen action. (2) The larnyx may move synchronously with the abdomen, the thorax, or both, instead of with the independent movement shown in normal speech. (3) Marked protraction of inspiration and expiration. (4) Marked inequality in the extent of consecutive respiratory movements (5) Interruptions of expiratory by short inspiratory movements. (6) Clonic and tonic spasms of the musculature of any part of the speech apparatus. Such muscular spasms may be evident in non-speech musculature. (7) Tremors in certain movements of the speech mechanism. (8) Tonal rigidity in the voice because of

[1] Stammering is frequently used as a synonym for stuttering However, Greene and Wells (1927) and others use this word for articulatory disorders Travis (1933) says stammering is characterized by speech blocks, while stuttering is characterized by repetitions This confusion in the use of the word stammering is a good argument for not using the word at all

abnormal tension of muscles controlling the vocal cords (9) Tones are held an abnormally long time. (10) Periodic fluctuation of breath pressure. (11) Characteristic variations in the form, extent, and length of consecutive voice waves (12) Extremely brief approximation of the vocal bands before and between tones (13) Extreme abruptness of initiation of tones. (14) Disintegration in the movements of the speech mechanism as a whole Travis (1931) has summarized the researches of himself and others and has published typical curves illustrating a number of these symptoms We must refer the reader to this work for an extended discussion of this symptomatology

In a somewhat more comprehensive fashion Brown (1931) has pointed out that most, if not all, of the students of stuttering problems are agreed on the following ten points regarding the nature of the disorder:

1 Stuttering is a disorder of speech characterized by clonic or tonic spasms of one or more parts of the peripheral speech mechanism, and by the resultant interruption or inhibition of the rhythm of speech

2. The immediate physiological cause of stuttering is neuromuscular incoordination in one or more of the peripheral speech organs.

3. This neuromuscular incoordination is usually accompanied by (a) general hypertonicity of other muscle systems, and (b) more or less marked evidences of emotional disturbances

4. With most stutterers the incoordination is greater in certain social situations than in others, while in some situations it does not occur at all.

5 Most stutterers, while stuttering, present either physical and emotional evidences of fear or anger or both, or muscular tensions indicative of suppression of the outward manifestations of these emotions.

6. Most adult stutterers say that they have a fear of stuttering, a fear of meeting strangers or persons in authority, or a fear of certain situations, that they are often angry at themselves for being afraid or because they stutter; that they are sometimes angry at others in whose presence they stutter; that they are embarrassed or self-conscious, that they have feelings of self-pity, inferiority or superiority; that they know [illegible] it

7. [illegible] mental or emotional [illegible] with the terminology to describe them as such

8. The environment, *per se,* as a rule, contains no adequate stimuli

for the production of stuttering or its physical and emotional con-[illegible], only about one person out of one hundred is stimulated to such reactions in a given situation.

9. Thorough medical and anatomical examinations reveal, in most cases of stuttering, no disease or defect of the organs of speech or of the nervous system which are adequate, in nature or extent, to produce the disorder.

10. The neuromuscular incoordinations which result in the type of speech designated as stuttering, and the physical and emotional reactions which usually accompany them, do not occur without cause.

Incidence.—The data in Table LXI from the White House Conference report shows 22 per cent of the school population surveyed ex[illegible]mely high figure Travis (1933) says that various surveys agree in finding about one per cent of the school population with stuttering defects. This lower figure is found in the survey of Wallin and in that of Louttit and Halls, as shown in Table LXII Greene and Wells (1927) estimate that there are at least 400,000 stutterers in the United States It seems most probable that the incidence of stuttering is around one per cent

Oddly enough, the incidence among boys is much higher than among girls. West (1931), on the basis of data from over 10,000 stuttering children, finds the ratio of boys to girls to vary by grade as shown in Table LXIII. In the Indiana survey the ratios, based on 1519 cases of stuttering, were slightly less Ratios found by other investigators vary from two to one, to ten to one The reason for a

TABLE LXIII —SEX RATIO AMONG STUTTERERS

Grade	Boys to One Girl	
	West	Louttit and Halls
I	3 1	3 3
II	3 4	3 8
III	3 6	3 0
IV	4 2	2 3
V	4 2	2 6
VI	4 0	3 4
VII	4 8	3 2
VIII	3 7	3 7
IX-X	3 7	2 7
XI-XII	5 5	3 9

greater frequency of stuttering among boys has not yet been satisfactorily explained.

Mental Ability.—The distribution of I.Q.'s of stuttering children approximates that of children with normal speech, as is shown in the data in Table LXIV Travis' (1931) group included only 75 children, while West's (1931) data are based on 4059 stutterers

TABLE LXIV —I Q DISTRIBUTION OF STUTTERERS

I Q	Travis	West
Above 120	9 6	7 2
110–119	16 4	13 1
100–109	37 0	20 7
90– 99	19 0	25 7
80– 89	12 0	19 9
70– 79	2 7	10 3
60– 69	1 4	2 5
50– 59		7
Below 50		07
Number of cases	75	4059

The median I.Q for West's group is 96.5, or well within the average. However, the educational achievement of stutterers is not as high as their intelligence distribution would appear to warrant. Wallin (1926) found an average retardation of over one year for stutterers, with the following distribution:

	Number	Per Cent
Retarded 0 years	90	17 7
" ½ year	5	1 0
" 1 "	185	36 4
" 2 years	134	27 5
" 3 "	55	10 8
" 4 "	24	4 7
" 5 "	6	1 2
" 6 "	2	4
" 7 "	1	2
Accelerated 1 year	6	

Evidently the stuttering child's defect operates in a decided fashion against his school achievement

Etiology—The etiology of stuttering is not at all clear, and proposed etiologic factors are intimately bound up with the theories of its nature. Brown (1931) lists seven current theories which may be conveniently reduced to five by combining three of them which are minor variations of the educational type. The five current theories may be

called (1) educational, (2) imagery, (3) personality, (4) psychoanalytical, and (5) neurological.

1. Educational Theory.—The educational theory holds that stuttering is primarily a bad habit Stoddard (1931) says that this view was held by Mr. and Mrs Frank A Reed, who established a school in 1900 in which the method of correction followed this theory. Modern proponents of the view are McDowell (1931) and Russell (1931). McDowell (1928) compared the educational and the emotional adjustments of stuttering children and found no appreciable differences except in accuracy of articulation The weight of other evidence would appear to invalidate this view, and Brown (1931) has specifically pointed out that McDowell's own conclusions rest on very insecure experimental procedures.

2 Imagery Theory.—The theory that stuttering is due to lack or inadequacy of visual imagery is most tenaciously held by the Swifts (1918, 1931) Bluemel (1930, 1931) holds an essentially similar theory. Swift claims that the stutterer lacks visual imagery in his thinking which may be permanent, or may occur only when he stutters Bluemel says that stuttering is really a thought disturbance, particularly an inability to think words clearly in the mind.

3. Personality Theory.—This theory holds the view that stuttering is symptomatic of a personality disorder, that speech disturbance arises because the individual is unable to react adequately to social situations Blanton and Blanton (1920) and Fletcher (1928) have based their work on this theory, and a study by Schroeder and Ackerson (1931) gives support to this view. By tetrachoric correlational analysis of material from case records of the Illinois Bureau of Juvenile Research the latter found relationships between stuttering and a number of other behavior problems The highest coefficients were +.29, with the notation "psychoneurotic," and +.22, with the notation "mental conflict." Other smaller positive coefficients were found for most of the traits usually taken to indicate personality disorders. Conversely, negative coefficients (highest —.27, with notation "bad companions," and —.24, with "running with a gang") were found with those traits usually taken as indicative of conduct problems It is the present author's opinion, based on the literature and on contact with stutterers, that this theory is more adequate than any of the others.

4. Psychoanalytic Theory.—Coriat (1928, 1931) has developed

the psychoanalytic theory of stuttering. In this view, stuttering occurs in those individuals in whom the libido has become fixed at the oral erotic stage of development It is claimed that the motor accompaniments of stuttering speech are replicas of behavior during nursing Stuttering is a gratification of the infantile oral tendency; thus the stutterer unconsciously desires to stutter.

5 Neurological Theory.—This theory seems to have been first suggested by Sachs (1924), although Travis is its best-known proponent. A number of researches by Travis and his students have been summarized by him in his *Speech Pathology* (1931), which is the most extensive treatment of the theory This neurological theory holds that stuttering is due to a lack of dominance of one cerebral hemisphere over the other and over lower neural levels. Because of the bilateral innervation of the various pairs of speech muscles it is necessary to have a single dominant neural control to secure integrated action of the speech mechanism This can be secured only by the existence or establishment of one-sided cerebral dominance

Obviously the etiological factors to be emphasized will vary according to which of these theories one adheres to Nevertheless, several factors of probable importance may be mentioned Heredity has been suggested by a number of investigators Makuen (1914) reported 39 per cent of 1000 stutterers as having relatives who stuttered Bryngelson (1931) reports that 55 per cent of 162 stutterers had other stutterers in the family The same investigator, as reported by Travis (1933), found 74 6 per cent of 594 stutterers who had relatives similarly afflicted These data cannot be taken directly to prove the presence of hereditary factors because they make no allowance for possible imitation of other stutterers in the family. McGinnis (1931) suggests that there may be an inherited weakness of the cortical speech areas and of a predisposition to emotional instability Whatever influence hereditary factors may exert in any sort of personality disorder would be similarly exerted in stuttering.

Injuries at or after birth may play some part Infectious diseases have been suggested as important etiological factors Gerstmann and Schilder (1921) report a stuttering type of speech disturbance as a sequel to encephalitis Liljegren (1931) reports that 45 per cent of the girls and 48 per cent of the boys in her group had or had had breathing obstructions, 70 per cent of the girls and 61 per cent of the boys had

poor or impaired health during babyhood. Such reports as these indicate that many biological factors may have some significance in the etiology of stuttering

Another possible causative factor, variously emphasized by different investigators, is the presence of articulatory defects Gifford (1931) says, "There are two distinct periods when stammering [i e, stuttering] appears The first type occurs during the acquiring of articulatory coordinations, when the child is fumbling not only for speech and language, but also is laboring under the stress of many inrushing ideas. If no serious emotional disturbance comes at this time, the child sooner or later establishes the proper coordinations, and 'outgrows' his stammering" The second period is after speech and language have been acquired; the "histories of these cases show that an emotional maladjustment, due to environmental disturbances is causing some emotional conflict." We are here concerned only with the first of these periods.

It is quite generally believed that most children pass through a temporary period of speech disturbance essentially of a stuttering nature Sometimes this disturbance persists, usually it does not The reason for persistence in some children and not in others is unknown, although differences in physical and mental hygiene are probably of greatest significance Other things being equal, the chances are greater that the child whose family reacts to the stutter in this neo-speech stage by nagging and constantly calling attention to it as a defect will retain the disorder Where the problem is met by advice to take things easy or by calling no attention to it, there is greater likelihood that it will disappear

The importance of the neo-speech stage in the problem of stuttering is shown by data concerning the age of onset of the disorder. Table LXV, based upon Wallin's (1926) data, shows that 67 per cent of 432 stutterers for whom the information was available had stuttered since before three years of age. The total percentage who began to stutter during the pre-school period was 81.5, while 18.5 per cent began during their school career. Liljegren (1931) gives the following figures, based on 333 stutterers, which are similar to Wallin's:

	Girls	Boys
Before kindergarten	50	46
Kindergarten or first grade	30	31
Second, third, or fourth grade	18	14
Above fourth grade	2	8

TABLE LXV —AGE OF ONSET OF STUTTERING

	Number	Per Cent
Indefinite age		
Always	52	12 0
Early life	12	2 8
Infancy	129	29 8
Beginning speech	17	3 9
Totals	210	48 5
Definite age		
Pre-school		
1 year	15	3 5
2 years	35	8 1
3 "	30	6 9
4 "	28	6 5
5 "	34	7 9
Totals	142	33 0
School age		
6 years	13	3 0
7 "	16	3 7
8 "	10	2 3
9 "	15	3 5
10 "	11	2 5
11 "	7	1 6
12 "	5	1 2
13–17 "	3	7
Totals	80	18 5

Associated with the occurrence of stuttering during the early speech-learning period is the coincidence of articulatory disorders and rhythmic disorders. Liljegren (1931) says that "almost 50 per cent of the girls and more than 44 per cent of the boys enrolled in our classes have or have had articulatory difficulty" In the comparison between stutterers and non-stutterers made by McDowell to which we have earlier referred, the only appreciable difference between the groups was in accuracy of articulation Other speech teachers report that they do not find articulatory disorders and stuttering frequently associated From available evidence it may be concluded that difficulties in articulation may be the starting point in some cases of stuttering, but in such cases the articulatory defect is embarrassing and the emotional conflicts resulting therefrom interfere with rhythmic speech.

Changing from left- to right-handedness has long been held to be a cause of stuttering. The neurological theory rests ultimately on this, because cerebral dominance can, according to the theory, be maintained only if a person is predominantly, in fact, wholly, either left- or right-sided Bryngelson (1931) says that 62 per cent of his cases had been shifted from left to right, 61 per cent were ambidextrous, and 44 per cent had left-handedness in the family. Ballard (1912), in an individual study of 11,939 children, found that among dextro-sinistrals (those who had been changed from the left to the right hand, especially in writing) 17 per cent stuttered and 25.8 per cent had stuttered. In contrast to this, Parson (1924) claims that after a policy of training all left-handed children to write with the right hand had been in effect for four years in the Elizabeth, N. J, schools, not a single case of stuttering among 15,000 children could be traced to the change These opposing reports are typical of many others. In summarizing a number of them, Travis (1933) says that the question is far from settled, because all studies show a significant number of stutterers who are pure dextrals and a significant number of normal speakers who are sinistrals or ambidextrous. It is quite possible that the manner in which the change in handedness is made may be significant If the child is forced to make a change in such a way that emotional disturbances arise, there may be greater likelihood of stuttering developing

In all of the theories mentioned earlier a place is made for the effect of emotional disturbances. Adherents of the habit and imagery theories admit that emotional disturbances may aggravate the disorder; the personality and psychoanalytic theories depend, in essence, on emotional disturbance; and even Travis suggests that emotional conflict may destroy the slight margin of dominance enjoyed by one hemisphere. The sources of emotional factors in stutterers have been enumerated by Kenyon (1931) as follows "(1) constitutional, congenital, emotional instability, (2) factors related to environmental conditions as such; (3) factors related to the stammerer's [i.e., stutterer's] attitude toward speech production (exactibility, rapidity, carelessness), (4) facto[illegible] toward his environment; [illegible]plicated nature of the speech disturbance, which serve to intensify all other emotionalizing tendencies."

We can picture the sequence of events in stuttering somewhat in this way

1. An emotional instability caused by organic or developmental factors.

2. A situation which increases the instability—for example, embarrassment, fear, or possible organic factors

3. Interference by the emotionalism in the delicate speech organization

4 Interruption in the rhythmic flow of speech, i e., stuttering.

5. Worry about the stuttering, and fear of speaking because of possible embarrassment

6 Increase of stuttering and the institution of a vicious circle

Management—In the symposium edited by West (1931) that we have referred to so frequently in the preceding discussion there is one point upon which all workers seem agreed Truly enough, adherence to particular theories emphasizes the great importance of special technics based upon their beliefs. But they are agreed that each case of stuttering must be treated as a new individual problem. This requires a careful anamnesis of the patient, with special attention directed toward the possible occurrence of etiological factors suggested above

Treatment methods include programs of physical hygiene, mental hygiene, and special technics

Physical hygiene is first concerned with the subject's physical health As in all behavioral problems, organic difficulties and defects must be cleared up or improved as much as possible before working with the behavioral difficulty In the case of the stutterer there are two physical conditions which always require improvement. One of these is breathing. We have earlier pointed out that abnormal breathing, at least during speech, is a constant characteristic of stuttering Breathing exercises are usually therapeutic in value These may take the form of a series of inspirations and expirations following a definite cadence; the expirations may be modified by using them to make the sound *ah*. It has been suggested that swimming is a good exercise for stutterers because it requires a rhythm between breathing and muscular movement The aim of any breathing exercise should be to teach the stutterer that the rhythm of respiration may be modified and controlled The second physical condition characteristic of the stutterer is a widespread muscular tenseness, especially during speech Therefore, effort should be made to teach the stutterer to relax. This may conveniently

be done immediately following a series of breathing exercises because the subject is then fatigued. Methods of developing relaxation have been extensively described by Jacobson (1929, 1934). Mere muscular relaxation is not the ultimate aim of such exercises; rather, the attempt should be made to teach the stutterer to act calmly in general.

Mental hygiene, at least in a broad sense, is also common to most treatment systems. This involves the discovery, recognition, and removal of any factors in the person's social environment that tend to produce emotional conflicts or other unhygienic mental conditions. One thirteen-year-old boy treated at the James Whitcomb Riley Hospital showed no improvement in his speech until certain conflicting home conditions had been alleviated. Emotional conflicts arising from fear of the listener's reaction to his speech, fear of a parent or school teacher, embarrassment in the presence of certain individuals, and other circumstances of this nature must be overcome. Usually the evil of such conditions is in the subject's own attitudes rather than in the attitudes or behavior of those who listen to him Therefore, the aim of mental hygiene is to remove the incubus of fear from the patient. Put in other terms, the task amounts to reestablishing the stutterer's confidence in himself

Specific technics depend largely on one or the other of the above-mentioned theories In common use, although probably more closely related to the personality theory, are exercises in reading aloud, recitation, or ordinary conversation. After the person is relaxed, perhaps lying down, a conversation may be started about ordinary affairs during which an effort is made to maintain the relaxation. The patient may read aloud passages of prose or poetry, or recite material that has been memorized Mrs E C Halls has had adolescent subjects prepare arguments on a selected topic and present them to her as a debate This method has proved useful in a number of cases

Practice in articulation and phonation is used by the adherents of the habit theory. The thesis is that with the achievement of satisfactory sound production the rhythmic disorder will disappear Certainly any case that shows a definite articulatory disorder should be treated for that first In such cases improvement in speech rhythm accompanies improvement in articulation However, at least half and probably more than half of all stutterers show no articulatory disorder

The psychoanalytic theory requires psychoanalytic therapy aimed at releasing the libido which has become fixated at the oral-erotic level.

This type of psychotherapy is highly specialized and should be undertaken only by those who have the proper training.

According to the imagery theory, stuttering is due to the sufferer's lack of ability to visualize the thing about which he is speaking Therapy based on this theory endeavors to train the subject in visual imagery Williams (1931) describes the method of this training What visual images or mental pictures are is explained to the child. He may then be asked to tell about some object with which he is very familiar, and he is supposed to have a mental picture of this object while speaking He may be asked to memorize a line or two of poetry and then recites the words while keeping a mental picture of them In general therapy it may be well to inquire about the subject's imagery, and if it is lacking to attempt some improvement.

The therapeutic aim, according to the neurological theory, is to establish a dominant gradient of excitation in the central nervous system—in other words, to establish the dominance of one cerebral hemisphere over the other and over lower neural centers This is accomplished, to quote Travis (1931), "along two general lines. (1) the carrying out of certain exercises to increase directly the dominance of one hemisphere over the other and lower levels, and (2) the elimination of certain psychological and environmental factors which operate against the establishment of and toward a reduction in a dominant cortical control" The first of these is brought about thus In the case of subjects whose handedness has been changed, the first step is to retrain the left hand for writing and all other unimanual activities Subjects who are to continue to use the right hand and others who have changed to the left hand, practice writing and saying words simultaneously. The exercise may consist in copying from a book or writing original material The important thing is that the motor acts of writing and speaking should occur at the same time. Later practice omits writing the whole word, only the first letter is written when the word is spoken. This procedure tends to establish the necessary one-sided dominance

Cases—The two following cases illustrate stuttering as a symptom of a personality disturbance In the first case the home and its poor speech patterns made the setting for the child's speech habits These, together with his poor physical appearance, were the basis for his feeling of inferiority and the associated embarrassment. In the second

case the personality attitudes were more subtle in origin. In both cases the stuttering yielded to treatment of the personality disturbances

Case Number 39 (Brown, 1933). A boy, fourteen years of age, IQ 92, and in the seventh grade, was referred as a stutterer. Speech examination showed, in addition to stuttering, the following disorders in such a marked degree as to make speech at times quite unintelligible. lisping, general negligence of articulation, inactivity of tongue and lips, and sound substitution of the "Lower East Side" variety, illustrated by such pronunciations as "goil" for "girl" and "brudder" for "brother."

Physically and intellectually, the boy's heredity was bad, and the home environment into which he was born was characterized by social and economic inadequacy and emotional instability. He was one of thirteen children, three having died in infancy Both parents and all of the children were physically weak and subject to many illnesses, fatigue, and in several cases indolence. The father, because of some mysterious illness, had been out of work for two years An older brother had several times attempted suicide. The family had been under the partial or complete care of charitable organizations for the past ten years.

According to the boy's mother, whose memory was quite unreliable, he began to stutter when speeech was first attempted, but the boy himself stated that it began a little after his fourth birthday during an illness which left him unable to walk properly for nearly a year. At the age of five he entered kindergarten. Besides stuttering slightly, he lisped badly and was already, he says, shy and self-conscious because he did not speak like other children and because he had "such a funny face" His upper front teeth were very large and protruded at an angle of about forty-five degrees. The kindergarten teacher, who a few months later was sent to a sanitarium suffering from a "nervous breakdown," was greatly irritated by his lisping, poorly articulated speech She disliked him from the start, he said, and attempted to cure him of his speech difficulties by scolding him, making fun of him, slapping him on the head with books and rulers. In a short time he became so "nervous" and ill that a physician advised his removal from school After a year, during which his stuttering practically ceased, he entered first grade in another school, where he began to stutter more severely.

It was possible to meet this boy for treatment only one-half hour a week over a period of ten weeks. It was felt that the correction of the mechanical disorders plus the employment of positive mental

hygiene would bring about considerable direct improvement and might serve to release certain nervous and emotional tensions, reduce the feelings of inferiority, and perhaps give encouragement and a sense of accomplishment to a very hard-working and ambitious boy, thus indirectly relieving the stuttering.

From the beginning a great deal of direct and indirect suggestion was employed. He spoke freely of his feelings of inferiority to other children, economically and socially, in personal appearance and dress, and in speech. He believed that he stuttered because he was embarrassed on account of his inferiorities and that if he could only learn to talk ("talk" meant articulate) he would not be so embarrassed and, therefore, would not stutter. This point of view was accepted and it was pointed out that his difficulties in talking were undoubtedly the result of his early physical weakness, his protruding upper teeth, the poor models of speech in his home, and the fact that no one had ever taught him the "easy" tricks of using his tongue and lips correctly in talking. He was taught how to produce all of the consonant sounds and combinations, and was given lists of illustrative words and reading exercises which he practiced every day His handicaps were passed over lightly, emphasis being placed on his abilities, courage, diligence, and application and his achievement in progressing so far in school in spite of his illness and the lack of the economic and social advantages of those with whom he competed on an equal footing in educational pursuits. He readily accepted the constantly repeated suggestions that he was making up for his physical, economic, and social inferiorities by his success in school, and that his talking difficulties could be overcome with practice.

By the end of the ten weeks his stuttering and lisping had entirely disappeared except on infrequent occasions of excessive fatigue or emotional stress, and his control of tongue and lips become practically automatic His sound substitutions still appeared when he forgot to pay attention to them, but he was fully aware of the fact that these difficulties were constantly augmented at home because the substitutions were a part of the family dialect Because of his whole-hearted acceptance of the suggestions offered, his ambition, his constant application to the task of self-improvement, and because of his growing satisfaction at his ever-increasing control over his mechanical difficulties, which had been a primary source of the emotional conflicts resulting in his stuttering, prognosis for the complete and permanent correction of all of his speech difficulties is very good

Case Number 40 (Brown, 1933). A boy in the ninth grade, fourteen

years old, I Q 129, was referred as a severe stutterer. He had been troubled with croup and colds as a baby, and continued to be very susceptible to colds and sore throat He was exceptionally tall for his age, underweight, undernourished, slightly anemic, and easily fatigued. These conditions were being treated by the family physician, who felt that they produced his "nervousness" and that his stuttering would be "outgrown" as he gained physical strength and built up resistance.

While this case presented a number of complicating factors, including a scolding invalid grandmother who kept the family in constant turmoil, the boy's mother furnished the key to his difficulty at the first interview. He had been badly affected, she said, by the death of his younger brother in July, four years ago. Since that day he had never spoken of his brother nor would he remain in the presence of others who were speaking of him. He began to stutter in the fall of the same year, the day he returned to school.

This boy was seen for one period of a half to three-quarters of an hour weekly for a period of twenty weeks, and was a member of the group of stutterers meeting once a week for conversation. Because of his high intelligence and the known existence of a serious emotional disturbance of which he was, in part, painfully conscious, his brother's death was made the point of direct attack, the conversation gradually leading up to it at the third interview. His memories of his brother, his relationships with him and attitudes toward him, the circumstances leading up to his brother's death, and his own reactions to that event were carefully and sympathetically discussed

In summary, it may be said that he had always been very jealous of his brother, had often knocked him about and hurt him, and had attempted, unsuccessfully he believed, to get his parents to see that he was the smarter and better of the two. When the brother died, he was filled with remorse for having treated him so badly and, after a few weeks, the conviction developed that he had been responsible for his brother's death, that his parents knew it and would never forgive him, and that he could never hope to attain the position in their affections that his brother had held He found some solace at first in lavishing the affection and care that he felt he should have shown toward his brother on the brother's pet dog But he was soon deprived of even this outlet when the dog was killed by an automobile, and he felt that he had lost his last friend and confidant.

Stuttering began suddenly the day he entered seventh grade in a new school, where he was lonely, in strange surroundings, and with many new and unfamiliar faces around him. On the way to school and after reaching the classroom, he kept thinking of his brother, grieving

that he had been "put away" and that he could never again come to school with him or play with him as in former years. His mind was filled with such thoughts when the teacher called on him to tell his name and give other personal information to the class. As he arose to speak, he felt strange and frightened and could think only of his brother. He could not speak his own name, for only the name of his brother came to mind. He stammered and blushed and hung his head, and when the teacher remarked, "I guess he doesn't know his name," he sat down without speaking. From this time on his speech difficulty was present, varying from time to time from fear and embarrassment which prevented him from attempting to speak, to forgetting what he wanted to say or stuttering severely after he was on his feet At home he stuttered badly and could not talk over the telephone at all.

Another conflict of major importance, centering in his curiosity regarding the opposite sex, already existed at the time of his brother's death Severe punishment and shame had followed an unsuccessful attempt to satisfy that curiosity, leaving him fearful and embarrassed when in the presence of girls, yet longing for their company. Following the onset of stuttering, this conflict determined, in a roundabout way, the direction of the outlet of his pent-up emotions. He looked forward with pleasure to the many parties, dances, and other social functions to which he was invited and in his daydreams was the most popular boy in his group Yet, as the hour of the party approached, he became nervous and anxious and often had to remain at home because of a stomach upset or a headache He told himself that his fears were due to his stuttering At these and at other times, however, he found great pleasure in reading detective stories of a romantic nature, in which he always identified himself with the hero into whose arms the beautiful maiden rushed or fell after he had rescued her As soon as he had finished one of these stories, he reconstructed the plot, and often lay awake at night creating plots of his own. In each case he accomplished the solution of the mystery through the use of an imaginary telescope of his own invention which enabled him to see through any type of material or obstruction. His ambition was to be the world's most famous detective The pleasures gained from these phantasies made the realities of school and social life even more difficult to face.

The solution of these major conflicts and the free discussion and interpretation of minor emotional disturbances, together with his return to participation in [illegible] and the acquisition of "a girl" of his own, were the chief steps taken in the reintegration of his diverse personality trends. His "nervous"

headaches and stomach upsets ceased His difficulties in speaking at school and at parties diminished until they occurred but rarely, and he was able, at such times, to master the feelings that swept over him and go ahead without any one apparently noticing that he had had trouble His mother reported that he had stopped stuttering at home and that he used the telephone at every possible opportunity. The grandmother, in fact, had begun to scold him for wasting his time talking to girls over the phone, when he should be studying.

Disorders of Voice

Disorders of the voice or phonation include conditions in which the child does not produce smooth, pleasant, audible tones. Such conditions as huskiness, hoarseness, nasality, shrillness, stridor, weakness, loudness, monotony, and the like are usually included. According to Table LXI, about four per cent of the children included exhibited disorders of this sort.

The causes of voice disorders are, according to the data of Table LXI, about equally divided between structural and functional. Structural causes may be peripheral or central. Peripheral structural disorders are referable mainly to non-oral parts of the speech mechanism, while central structural causes include neurological diseases Also in the group of organic causes must be included certain endocrine disorders. Functional causes include those disorders (which may be clinically similar to ones of organic etiology) for which no organic cause can be found and which are the result of poor habit formation.

Hoarseness and huskiness may result from laryngitis, pharyngitis, vocal cord pathology, or strain from excessive screaming or shouting. Nasality may be caused by nasal obstruction because of adenoids, infected turbinates and severe common cold. Cleft palate affects voice as well as articulation.

Neuropathological conditions may affect the voice. Multiple sclerosis has a characteristic slow, scanning, monotonous speech Cerebellar lesions affect the voice so that it is slow and monotonous. The speech in juvenile paresis may be slurring and stumbling In paralysis agitans and Parkinsonianism speech is slow and monotonous; festination is sometimes present In progressive bulbar paralysis the progressive involvement of cranial nerves affects swallowing and coughing as well as speech; speech may be nasal, high pitched, indistinct, labored, and finally entirely unintelligible. Choretic speech is jerky and irregular. The speech of epileptics is sometimes monotonous, thick, and indis-

tinct. In Friedreich's ataxia the patient has a "hot-potato-in-mouth"-sounding speech. Some endocrine disorders, such as hypothyroidism and, in males, hypogonadism, have rather characteristic voice disturbances. The cretin or myxedemous patient has a slow, coarse, rough, monotonous speech. The high-pitched, falsetto-like voice of the eunuch or eunuchoid is characteristic.

Functional disorders of the voice are usually the result of the formation of poor habits. These may be formed necessarily, e g, when the child must raise the voice in order to speak to a deaf person in the home, or in imitation of the loud or shrill voice of parents or others frequently or constantly heard Weak, timid, inaudible voices may develop as part of the syndrome of a negative, withdrawing type of personality Occasionally in hysteria there is complete loss of voice, or it is reduced to a whisper

Disagreeable or undesirable voice conditions may, when not caused by uncorrectable structural conditions, be improved by training Certain organic conditions, such as adenoid vegetations, laryngitis, pharyngitis, etc., must be treated surgically or medically, and this medical correction should be followed by speech training. Soft-palate exercises such as yawning, or saying such sounds as *ah*, *ung*, *ding-dong*, *ing-ick*, etc, are useful, especially in nasality Disorders arising from poor habits may be corrected by retraining, but the stimulating situation must be removed if the improvement is to be permanent Weak and inaudible voices occurring as part of a personality picture can be corrected only by treating the total condition.

Aphasia

Aphasia is a generic term used to denote various types of inability to deal with symbolic formulation and expression One might well argue that it is a language deficiency rather than a specific speech disorder. The condition appears to be rare in children for, according to Table LXI, it was found in less than one child per 10,000 of the school population

Classification of the various conditions subsumed under the term aphasia is difficult because of the relative lack of pure examples of any proposed subdivision One of the best-known but probably least widely accepted classifications is that of Head (1926), who describes four clinical groups: (1) *Verbal defects* in which the power to form words is defective (2) *Syntactical defects* in which grammatical structure is

affected, although words may be recognized (3) *Nominal defects* in which there is inability to detect the nominal significance of words. (4) *Semantic defects* in which there is a lack of power to combine details into a coherent whole.

Weisenburg and McBride (1935) say that this classification of Head's does not outline types that can be generally observed. They propose a fourfold classification which forms the basis of their discussion. The four groups are: (1) the *predominantly expressive*, corresponding generally to motor aphasia with the chief disorders in speech and writing; (2) the *predominantly receptive*, corresponding generally to sensory aphasia, which usually includes word-blindness and word-deafness; (3) the *expressive-receptive* group, where all language processes are extremely limited; and (4) the *amnesic*, in which the patients have difficulty in evoking such words as names of objects, acts, etc

There appears to be agreement that aphasia is caused by cerebral lesions, but there is disagreement in matters of localization, and in the structural vs. the dynamic concept The latter concept appears to be more widely held, rather than the former—the idea that the individual variations in the clinical manifestations of aphasia arise from minute variations in cerebral pathology

Tests for aphasic patients have been devised by Head (1926) and even more extensively by Weisenburg and McBride (1935). The earlier test is aimed at determining to which of Head's four types the patient belongs; Travis (1931) has summarized in tabular form the various tests used by Head The newer test is an extensive battery devised to show not only speech disorders but general behavioral differences which the authors believe are present Travis (1933) remarks on the confusion clinicians find in apparently conflicting reports, but points out that inconstant response is really a most striking characteristic of aphasics.

Management of aphasia consists in reeducation; this should be started only some time after the onset of the pathology Spontaneous improvement and relapses, as well as emotional difficulties resulting from the speech disorder, must be taken into consideration in any program for retraining

Chapter XII

PERSONALITY PROBLEMS

There is a whole series of problems that are of importance to the psychoclinician, not because the behavior is socially unacceptable, but because they represent a lack of personal adjustment We can take the greatest desideratum of personality development to be the molding of personal experiences into an integrated whole that functions harmoniously In the ideal personality new experiences are accepted and fitted into sub-patterns of the whole; there are no conflicts between such sub-patterns For example, the child, like the adult, has cores of interest about which experiences are organized—the parents, siblings, playmates, school, classmates, playground, Sunday school, etc, as well as the child himself Experiences in such areas coalesce into attitudes and habitual behavior patterns, which in turn function interdependently so that there are broader attitudes and patterns in relation to the environment as a whole Seldom, if ever, does such an ideal condition obtain.

In the course of every person's experiential history there are events which destroy or disturb the desired harmony The child is not loved, he is criticized too severely, the parental core becomes predominant because of over-solicitude, a playground experience instills fear, jealousy colors sibling relations, and in a multitude of other ways the ideal balance is disturbed. As a result, the child's subsequent experiences are affected, they do not readily fit into his personality scheme. We may give these characteristics of the total integration the name attitudes Attitudes result di [illegible] a single experience or a serie [illegible] may illustrate the process in a child who exhibits an abnormal degree of fear Up to a certain event in his life his experiences are not colored by a fear attitude The certain event is a sudden attack by a strange dog while the child is alone. There is a fear reaction which subsequently modifies that sub-pattern centering on dogs or animals But the animal was not the only factor in the stimulus situation—the road,

the house, the time of day, the child himself are all significant. The fear attitude may influence all of these areas. Each of these in turn has dependence upon, and association with, other areas; hence the attitude may spread Eventually all of the child's experiences are colored with fear. Other attitudes such as jealousy, inferiority, insecurity, hopelessness, and the like, are similarly evolved and have similar effects

It is now evident that environmental influences may have two major effects T[illegible] the development of spec[illegible] patterns, wh[illegible]

Environmental influences may also produce attitudes which in turn influence the personality development While in themselves these attitudes are of significance for the child's future, they seldom have any serious social significance. But just as they do influence future interactions, so they may give rise to behavior that is socially undesirable When this occurs it usually means that the child is actively or aggressively attempting to compensate for the influence of his attitude He does things that make him feel less insecure or less inferior, things expressive of jealousy, or things to fill his loneliness Behavior which is the direct result of such attitudes gives rise to what we have classed as indirect primary behavior problems To superficial observation the activities here are the same as those exhibited in direct primary problems Instead of attempting to compensate for the effect of attitudes, the child may give in to them, e.g., he withdraws because of his feeling of inferiority His attitude is known only by his behavior, and although this behavior is not socially disturbing it also is to be placed in the indirect class.

It will be recalled that the outline classification of primary behavior problems given in Chapter VIII included as subsections of "personality problems" the aggressive and passive types of behavior analyzed in the foregoing paragraphs. Because the complaint and description of the actual behavior exhibited in both the conduct problems discussed in Chapters IX and X and the behavior resulting from compensation of attitudes are similar, there is no need to discuss them further The passive acceptance of attitudes results in a quite different sort of behavior picture which we shall discuss in the present chapter and the one following.

Our selection and delimitation of specific personality disorders to be discussed is based upon a number of factors, of which clinical fre-

quency and significance, and traditional formulation are most important. These extended discussions do not include all of the terms listed in our outline classification, but they do include those most frequently met with and those which have been more extensively studied. Any isolation of problems of this sort must be artificial The psychoclinician must constantly keep in mind that he is dealing with a child, not with a problem. The discussion of problems can only be suggestive, it can only furnish material that may be of value in the management of a child.

Inferiority

One of the most widespread attitudes that is potentially undesirable is belief in one's own inferiority The problem of feelings of inferiority or of personal inadequacy—the inferiority complex or concept—has had a great deal of attention in the psychiatric and child psychology literature The name most frequently associated with this subject is that of Alfred Adler Originally a follower of Freud in the psychoanalytic movement, Adler soon seceded and attempted a systematic interpretation of behavior based on the motivating force of a "will to power," i e, an urge toward completeness and normalcy in physical development and in achievement Physical defects, or at least supposed physical deficiencies, thwart this urge and, according to Adler (1917), result in the child's feeling inferior Later Adler (1928) recognized that insistence on the etiologic importance of physical inferiority was limiting, and he therefore attributes the child's feeling of inferiority not only to physical abnormalities or inferiorities when compared to parents, but also to his uncertainty and lack of independence, his feeling of subordination to parents or older siblings, or similar psychosocial factors.

Recognition of one's inferior ability in various activities, such as skating, typing, writing poetry, or what not, is perfectly normal and usual It is the starting point for improving one's skills and achievements. When, however, the individual feels inferior in most ways to most of the people with whom he comes into contact, and does not make, or appears to be incapable of making, any attempt to improve and compete, then his attitude is most unsatisfactory. It is the hopelessness of this latter attitude which is found frequently, and which constitutes a serious personality problem

Feelings of inferiority are felt by probably everyone at some time

For many people they are transient and in no way—even desirably—affect the course of their life. In others, such feelings may result in longer or shorter periods of disturbance. In still others, they interfere with the development of adequate behavioral equipment Conklin (1935) reports that in a class of 297 college students of both sexes 42 per cent reported, without hesitation, recollections of troubled periods arising from inferiority experiences. Gardner and Pierce (1929) report that 48 per cent of 512 college students immediately recalled such troubles. Reports of inferiority feelings occurring among problem children vary considerably. Paynter and Blanchard (1929) found that 19 per cent of 167 cases studied in a Los Angeles clinic exhibited such inferiority, while among 163 children from the Philadelphia Child Guidance Clinic there was 54 per cent. Ackerson (1931) reports that in only 6 per cent of the 5000 cases studied were there notations of inferiority feelings. The great discrepancies in these data probably rest upon individual biases in diagnosing inferiority Such differences are easy enough to understand when one appreciates the variety in behavioral symptomatology

Conklin (1935) lists no fewer than eleven "indications of the existence of inferiority disturbances," and Thom (1927) divides the behavioral signs in children into four outstanding groups. In considering the behavioral signs one is struck with the antitheses between certain of them In a general way various symptoms may be grouped into two classes. The first of these includes certain forms of behavior that might quite reasonably be expected; the chief characteristic of this group is that the behavior tends to be socially negative and retiring. The second group, in decided contrast, consists of behavior which is socially positive and aggressive If we combine the descriptions of Conklin and Thom and then classify them according to the above scheme we have the behavioral signs described in the following paragraphs which, when they are interpreted in the light of the child's experiential history, are of diagnostic significance

The first group of signs that may be taken as suggestive of inferiority are those in which the behavior quite obviously indicates an attempt to avoid making too extensive social contacts

1 Self-consciousness as shown by complaints of frequent embarrassment, fear of public appearances or public speaking, self-criticism, and comparison of self with others.

2. The complaint that the child "never had a chance" or that "other

people always get the breaks," that he never has any luck, or even extending so far that others are accused of deliberately thwarting his efforts We can probably include here the complaints sometimes made by girls—that they wish they were boys and can see no advantages in being girls—and the occasional reverse of this complaint made by boys

3 Lack of social presence, awkwardness, lack of poise, or any other behavior showing lack of the necessary skills in conforming to the social conventions

4. Envy of the possessions or behavior of other persons, especially when such envious attitudes are so persistent as to suggest that they are substitutes for efforts to achieve.

5 Timidity and fear of attempting activities which are unfamiliar or in which the person recognizes his lack of skill Such an attitude probably represents a chronic fear of failure; the individual would rather not try, than to try and fail

6 Perfectionistic behavior—to use Conklin's term—which consists in repeating any activity because the person never feels that any given attempt is fully satisfactory Writing letters again and again, going back to reassure himself that lights or fires are out even though there is every assurance that they are, doing school work over several times for fear of errors, and similar types of behavior frequently indicate inferiority attitudes

7 Introversion or the tendency toward an introverted point of view There seems to be reason to believe that introversion is frequently, if not always, a means of escaping from the difficulties imposed from a sense of inferiority. In a more extreme form of introversion the child may build up a desirable daydream or fantasy world in which he is no longer troubled by his attitude.

The behavior to be included in our second division of possible diagnostic signs does not in itself suggest that the individual feels inferior. This behavior may in general be thought of as the result of efforts to compensate for inferiority The individual feels inferior, but instead of submitting to the feeling and behaving in any of the ways mentioned in the first group, he attempts to cover his attitudes by becoming aggressively evident to the social group We may mention five rather frequent kinds of behavior that may be classed here

1 Self-assertiveness and feelings of superiority are indicative The individual pushes himself forward, talks or acts in a loud, attention-attracting manner, acts toward his associates in a superior, overbearing

manner. The rough bullying sort of child frequently is an example of this form of overcompensation

2 Bad temper may sometimes be motivated by inferiority Decided anger reactions to teasing or other situations which are not usually provocative of emotional response are also significant here.

3 Compensatory activity of a more socially acceptable sort must also be considered Strict application leading to ultimate superior achievement in almost any field of endeavor—art, music, science, commerce, even, possibly, in athletics—may be the means taken by some individuals to compensate for, or in some measure to overcome, their inferiority.

4. Thom (1927) says that ill-health or physical incapacity, especially when there are no pertinent organic findings, may be a means taken to avoid the difficulties imposed by inferiority.

5. Overt delinquency, even of a serious nature, may be a method of compensation.

Causes—Inferiority feelings develop only when the child, in comparing himself in any fashion—physically, mentally, socially—with people about him believes he is not their equal In point of fact, he may not be, at least in the particular field of comparison. On the other hand, the child's belief may have no basis in objective circumstances. His ideas may be entirely self-developed, or they may originate and be fostered by the attitudes and remarks of parents or playmates

Real or imagined physical disabilities are one of the important bases for feelings of inferiority. The child's world is an active one; running, jumping, throwing, climbing, skipping, and active play of all sorts occupy him when alone or in a group The child who cannot do these things is held, and holds himself, an outsider He sees himself as—and from the point of view of the norms of the group he is—deficient and inferior. According to the Adlerian School, the child compares himself with his parents and finds himself lacking in strength and prowess. With his limited experience and inadequate bases for comparison he sees in his physical deficiences evidence of an inferiority too great to be overcome He then refuses to try to compete and becomes withdrawn and disturbed by insecurity

Comparison of mental or academic abilities may have a similar effect It is doubtful if the child of significantly retarded mental ability recognizes his inferiority and is affected by it. However, children of average or near average ability, in competition with others who are supe-

rior, frequently feel that their efforts are hopeless. Thence, in turn, feelings of inferiority arise, resulting in behavior pictures such as we have already described

The child with social habits, e g, colloquial speech, mannerisms, lack of cleanliness or similar behavior patterns, built up under one set of conditions may, when placed in a new social milieu, find these so different that his behavior is unfavorable when compared with that normal for the group The other children tease him, attack him, or even avoid or ostracize him. Here again feelings of inferiority develop and attempts are made to withdraw from the disturbing circumstances

The home environment is also frequently responsible for the development of inferiority As we have seen, a mother's over-solicitude keeps the child from developing independence, that is, from learning his own ability to do things. Parental requirements of too great perfection make accomplishment almost impossible, and with repeated failures come feelings of inferiority.

We may summarize the reasons for inferiority by saying that this condition always depends upon the actual or supposed impossibility of the child's achieving what appears to him to be desirable. Diagnostic efforts must be directed toward discovering the source of the child's belief. Until this is done attempts at therapy will be sterile.

Treatment—Whether the condition at the basis of the child's inferiority is real or imaginary will govern the nature of therapy If his physical condition does not allow participation in active play, efforts should be made to teach him to find satisfaction in other directions Cooperation of all members of the family to this end is most desirable. This does not mean over-sympathizing or coddling the child Rather, it is desirable that the family relations be as normal as possible, but that the group make a usual practice of engaging in some sort of activity in which the physically subnormal child may participate Whether the cause is physical, mental, or social, the aim should be to remove the child from competition in which he has no hope of success

If the reason for the inferiority is largely imaginary, treatment is more difficult The first approach must be directly with the child Through exhibition of confidence in him he must be led to establish confidence in himself. Honest praise for work well done or even for real effort cannot be used too much However, insincere praise must be avoided. Opportunities for activity should at first be simple enough

to assure a successful outcome. As the child gains confidence the tasks may become more difficult. In any case, the essential theory of treatment must be that the child shall have the opportunity of achieving so that he may be taught to recognize his own abilities, for only with the development of self-confidence can inferiority be overcome.

Jealousy

The usual dictionary definition, that jealousy is apprehensiveness of displacement by a rival, is a precise statement of the condition as we find it in children's problems. This definition indicates that jealousy involves fear, and in a general way suggests the reason for the fear The rivalry at the basis of the etiology and the behavioral symptoms of the jealousy will vary from case to case. In addition to the emotional element of fear, jealousy may lead to chagrin, humiliation, or even shame This effect is probably less true of children than it is of adults.

The symptomatology of jealousy is varied and inconstant. The conduct of the jealous child may exhibit almost every sort of undesirable behavior, from whining, crying, irritableness, to stealing, fighting, or intentional injury to the rival. Restlessness, eccentric, peculiar, unsocial, timid, lying, temper tantrums, inferiority feelings, high-strung, nervous, stubborn, are only some of the names used in describing the behavior of jealous children. Sewall (1931) reports the following frequency of symptoms among 39 jealous children

Bodily attack	26
Ignore presence of sibling	2
Deny presence of sibling	2
No outward manifestation but definite personality change	9

The behavior exhibited can usually be shown to be related to attempts to injure the interfering person or thing, or to attract attention which the child feels has been diverted from him but which is rightfully his As with other personality and conduct problems, jealousy seldom occurs alone. In Table LXVI are shown data from Foster (1927) comparing the characteristic behavior of a group of jealous children and of a group of non-jealous children. It will be noticed that a number of traits occurred twice as frequently among the jealous children as among the non-jealous ones; these traits are: special attachment shown to parents, favoritism shown, cruelty, sleep disturbances, hyperactivity, leads playmates, and playing with other children Furthermore, selfish-

TABLE LXVI —BEHAVIOR TRAITS OF JEALOUS AND NON-JEALOUS CHILDREN

Traits	Jealous Children	Non-jealous Children
Number of cases	50	100
	Per Cent	Per Cent
Personality traits		
Negativistic	8	10
Lacking in confidence	2	8
Sefish	42	27
Domineering	44	42
Stubborn	46	40
Pugnacious	62	43
Given to temper tantrums	60	53
Demanding attention	54	36
Showing special attachment to parents	28	10
Showing favoritism	32	13
Cruel	10	4
Fearful	36	24
Given to daydreaming	6	11
Undesirable habits		
Sleep disturbances	64	24
Capricious about food	58	44
Enuresis	48	32
Nail-biting	8	5
Thumb-sucking	22	15
Masturbation	14	18
Truancy	8	6
Lying	8	7
Stealing	2	3
Destructiveness	18	10
Hyperactivity	34	10
Play life		
Leads playmates	12	1
Led by playmates	2	0
Plays alone	16	16
Plays with other children	8	3

ness, pugnacity, and demanding attention were much greater among the jealous children although not to the point of being twice as frequent On the other hand, only lacking confidence and daydreaming were two or more times as frequent among the non-jealous children These data support, on the whole, the statement made earlier that the jealous child's b [illegible]

Ross (1931), [illegible] or 13 per cent, had jealousy of siblings as part of the record, found traits associated as follows

	Jealous	Non-jealous
Negativism	27	17
Fears	16	11
Sensitiveness	15	15
Inferiority feelings	22	25
Fatigability	10	10
Speech defects	13	12
Truancy from home	12	13

These data do not exhibit a very decided contrast except in the case of negativism, by which is meant refusing to do, or doing the opposite of what is asked, i e., a species of aggressive behavior

Certain other characteristics of jealous children as found by Ross in her rather extensive investigations may be mentioned here There was a decrease in frequency of jealousy in children with increase in age; 23 per cent of children three and under exhibited jealousy, while only 3 per cent over sixteen years of age showed this behavior. Eighteen per cent of the oldest children in the family were jealous, 12 per cent of the intermediate children, and only 8 per cent of the youngest There was a slight increase in jealousy with increase in I Q. Smalley (1931) found that there was an increase in jealous attitudes with increase in differences of I Q between siblings.

Several studies have shown jealousy to be more frequent among girls Four such studies report percentages as follows

	Percentages of	
	Boys	Girls
Foster (1927)	24	41
Smalley (1931)	39	43
Sewall (1931)	50	63
Ross (1931)	11	17

Causes—The etiology of jealousy always includes interference, usually by another person, with the ordinary conduct of the child's life. Attempts to avoid this interference, or to destroy it, constitute jealous behavior. Ordinary behavior with known privileges and opportunities, is more desired by the child, and if there is interference with such behavior it means insecurity and its resulting fear. Probably most often such fears are unjustified; but when they do develop, it is the child's attitude which controls the dynamics of the situation

The situation most frequently mentioned as a reason for jealousy is the introduction of a sibling into the household without any warning to, or preparation of, the older child. Adler (1927) believes that jealousy is nearly universal and that it usually begins with the birth of a

younger child There is reason to believe that this may not be as important a factor as has been supposed For example, Watson (1930) definitely attempted to arouse jealousy of a newborn baby in an older sibling The expected result did not appear. Sewall (1931) found that preparing the child for a baby's coming had no relation to the arousal of jealousy Of 33 children who were prepared for a new baby, 19 became jealous and 14 did not, while of 37 children not prepared, 20 became jealous and 17 did not As Mary C Jones (1933) points out, it is not the babe in arms who is likely to provoke jealousy, but the older child who can more definitely interfere in his still older sibling's activities

Favoritism and unfavorable comparison between siblings are probably a more significant cause of jealousy. Ross (1931) found that unfavorable comparisons were twice as frequent in the homes of jealous children as in the homes of non-jealous ones. Attitudes of favoritism in relation to the children are a part of the picture of defective discipline or familial

TABLE LXVII —CHARACTERISTICS OF THE SOCIAL ENVIRONMENTS OF JEALOUS AND NON-JEALOUS CHILDREN

Characteristics	Jealous Children	Non-jealous Children
Number of children	50	100
	Per Cent	Per Cent
Type of home		
Lack of physical necessities	8	12
Lack of training and discipline	68	62
Lack of opportunities for play	50	51
Lack of opportunities for social relationships	40	23
Home divided by friction	16	15
Type of parents		
Ignorant and irresponsible	4	9
Neurotic or "nervous"	32	33
Physically handicapped	4	10
Over-solicitous	14	17
Nagging	6	7
Relation between child and environment		
Ruled by punishment	56	23
Ruled by fear	6	4
Ruled by stronger will	4	3
Ruled by emotional appeal	2	2
Teased by parents or relatives	12	1
Teased by siblings	8	0
Teased by playmates	2	2

maladjustment In Table LXVII are given figures on homes and parents as found by Foster (1927) in contrasting jealous and non-jealous children. Here a lack of opportunity for social relationships, rule by punishment, and teasing by parents, relatives, or siblings apparently favor the development of jealousy. Sewall (1931) presents the following contrast based upon the type of discipline:

	Discipline	
	Consistent Per Cent	Non-consistent Per Cent
Jealous	18	80
Non-jealous	82	20

Miss Sewall concludes that sex, intelligence, or warning of a coming baby has little effect on the development of jealousy; differential in age, number of children in family, and poverty may have some relation; "but the overwhelming cause of jealousy seems to be the lack of consistency in discipline, and this is closely linked to other factors that point to familial maladjustment."

Other possible situations that may be factors in the development of jealousy should be mentioned. During the illness of a child, the parents' attention may be diverted from the other children. If these other children are given responsibility and are allowed to help and show attention themselves, they feel they are playing a useful part. If they are neglected they may justly resent the neglect. Comparison of children by parents is unwise, and probably equally so are comparisons made by relatives and friends. When a visitor makes a fuss over the cute blond-headed girl of six, but neglects or even laughs at, in ever so friendly a fashion, the homely, freckled-faced boy of ten, we can hardly blame the brother for his feelings of jealousy.

While attention has been largely directed toward factors in the home that may result in jealous behavior, other social groups of which the child may be a part must not be neglected. Among older children, interference with the position held in school, on the playground, on the team, in clubs, with girls or with boys, or in any other socially significant activity may be, and frequently is, a cause for at least temporary jealousy.

Treatment—Before attempting to deal with jealousy in children, one question must be clearly answered. Does the child have a real objective reason for being jealous, or does his jealousy rest on his own beliefs which do not have a real basis in fact? If the first half of the question

can be answered in the affirmative, then primary therapeutic measures must be aimed at correcting the objective condition. Methods of parental discipline must be improved; the parents must be convinced that favoritism is to be avoided; older children must be prepared for the baby's coming, and so on If the child is given an active, albeit unnecessary, part in caring for the baby there is perhaps less likelihood that he will resent the loss of attention taken from him and given to the newcomer. If there does exist an objective basis—in the home, school, or elsewhere—for the jealousy, for which there can be no correction, then the child must be taught to meet that situation.

When the reason for jealousy lies largely in the beliefs and attitudes of the child, we should expect to find further evidence of personality distortion. The therapeutic problem then is to straighten out the whole personality The child must be shown that what he believes to be favoritism on the part of his parents or teachers, or what he believes is an injustice, is, in reality, not true. He must be shown the falsity of his supposed lack of prestige, or of his belief that he has been supplanted

Here again prevention is better than correction In the home it is easier to avoid situations that may cause jealousy than to retrain the jealous child Children should be trained to share their possessions, to take turns, and to respect the rights and property of others On the other hand, it is hardly fair always to expect the older child to give up things to the younger just because he is younger. On those occasions—and they do arise—when siblings are in disagreement over the possession of a toy, it is probably better to take the toy from both children, rather than risk the possibility of favoritism by deciding that one child should have it This is not true, of course, if the parent has seen the whole development of the argument and can truthfully and fairly decide which child is at fault However, great care must be taken that the parent does not see the faults of only one child and overlook those of another.

Fear

Fear in some measure is a universal characteristic of all humans In some individuals, however, it becomes a way of reacting that interferes with other adjustments Under such circumstances we consider it a behavior problem, classed as a personality disorder, that appears frequently in clinic cases Jones and Jones (1928) say, "Fear arises when

we know enough to recognize the potential danger in a stimulus but have not advanced to the point of a complete comprehension and control of the changing situation." This succinct statement is not entirely true because it implies that all fear-provoking situations are *ipso facto* dangerous If we modify it to the extent of saying that fear arises when the person *believes* the situation to be dangerous, it is more nearly universal in its application

These same authors, in this study of children's reactions to snakes, found that definite fear behavior was not evident until after about four years of age. They point out that this appearance of fear might be explained by one of three hypotheses The first, based on Watson's (with Morgan, 1917; with Rayner, 1920) theory that fear is merely the conditioning of an elemental response to startling stimuli, they eliminate because their children had lived all their lives in a controlled environment and had had no opportunity even to see a snake The second theory which is much older and still widely held by many laymen, that the fear of snakes (and of many other stimuli) is innate, has no experimental or empirical data to support it. The third hypothesis, which they formulate, and which has been stated in the quotation above, appears to be the most satisfactory We would entirely agree with them if fears were limited to those we might for convenience call "normal" or common. Learning by imitation or conditioning is probably always of importance in abnormal fears.

The fear reactions seen in children may be roughly classified into several types having somewhat distinct characteristics, although not entirely mutually exclusive.

1. *"Normal" Fears.*—The individual who exhibited no fear with its attendant avoiding reaction would be himself abnormal and certainly not well adjusted to his environment Traffic dangers, occupational dangers, the dangers of unhygienic living, and a long list of similar environmental dangers must provoke fear responses if man is to exercise reasonable caution in avoiding them, and thus in avoiding possible injury and death from them. The Jones' statement quoted above applies to this sort of fear most aptly. In child training it is necessary to encourage the development of this type of fear habits

2 *Common but Abnormal Fears*—It is the building up of this second type of fear reaction that must be most scrupulously avoided in child training There is no evidence that fears are inborn, furthermore, there is definite reason to believe that most fears are the result of train-

ing rather than experience For example, Hagman (1932) found that the fears of pre-school children tended to correspond closely to the fears expressed by their mothers Jersild, Markey, and Jersild (1933), in a monographic study of children's fears, found that over twenty per cent of those expressed by children from five to fifteen years of age were of ghosts, corpses, skeletons, death, and the supernatural Not a single child reported any real experience or even imagined experience with such things. Eighteen per cent of the fears were of animals, but less than two per cent reported attacks by animals that might be expected to result in fear. About fourteen per cent reported fears of the dark, being alone, strange situations, and the like, but not over three per cent reported experiences of this sort. The conclusion must be that such fears arise through intentional or unintentional teaching by parents, playmates, or others. Threats of the bogey man and the policeman may be efficacious in discipline at a given moment, but they are potent sources of fears that hinder the child's development

Fears of innocuous stimuli may be limited to certain classes, such as dogs, all animals, the dark, strangers, etc, or they may be extensive. In such cases the child lives in constant dread of his surroundings This obviously makes any sort of normal, adequate adjustment impossible.

3 *Persistent Fright.*—Many situations may be temporarily frightening to children or even adults Such frights may be quite normal or even desirable However, occasionally such fright reactions may persist for days, weeks, or months, giving rise to specific fear reactions, and possibly even to phobias A six-year-old girl was brought to the family physician because, for several weeks, she had exhibited fear reactions to noise This fear extended even to such common noise as the motor of an automobile idling Neither the girl nor the parents could account for the behavior. The physician talked the case over with me It was obvious that there must be some reason for the fear, and therefore it seemed wise to insist that there was a story in the background, which was evidently forgotten Acting upon my suggestion, the physician talked over the whole matter informally with the girl In the course of this conversation she recalled an incident that had happened several weeks before. She had been playing with some other children, while on her way home from school, along a street that was being paved Intent upon her game, she had been standing near, and with her back toward, a large road-making machine when it suddenly,

and with a great deal of noise, started to operate. This noise frightened her severely at the time By the time she reached home the incident had been forgotten, or at least she did not tell her mother. In the conversation with the physician, she said that she felt this was the beginning of her fears. Following this interview the child's abnormal fear reactions to noise disappeared with unusual promptness.

4 *Phobias*—This term is given to fears which are just as unwarranted as the preceding; but in addition the patient is fully aware of the unreasonableness of the reaction, and yet can do nothing about it. As phobias are usually classed as psychoneurotic behavior of a psychasthenic type we shall discuss them briefly in Chapter XIII.

5 *Anxiety Attacks*.—Richards (1932) describes anxiety attacks as appearing in the child with a tense, easily stimulated personality, living in an environment of strain and worry, and as following a dramatic but otherwise normal situation The child may wake up in terror, with a full conviction that he is to die. A careless diagnosis of cardiac difficulty or tuberculosis or some other dreaded condition aggravates his anxiety and dread. The child and his parents direct attention to the supposed physical disorder, this is a further aggravation. As a result, the child may live for a long period in constant dread of death or permanent disability Hypochondriacal fears and anxiety might also be included here. Anxiety of a similar type may be based upon an unfounded belief that a parent, a sibling, or other loved person may die or may leave. (See Case Numbers 43 and 44)

6 *Simulation of Fear*.—It is not unknown for children to simulate fear as a means of securing something greatly desired or avoiding something disliked Cases of children reporting feelings of fear of the dark in order to keep the parents from going out, of animals as a means of avoiding going to school, of strangers in order to secure attention, and other similar ones are found occasionally.

Etiology—One can take it as axiomatic that fear reactions of any sort are based fundamentally upon the child's experiential history. The discovery of possible etiologic factors in that history is a necessary prelude to understanding or treatment. While the reasons for the development of fear reaction are as varied as the children who have the reaction, yet it is possible to group them into a few distinct types.

1. Training.—In a broad sense, training is probably the most important reason for children's fears. Within qualitative and quantitative limits, such training is desirable—children must learn to fear and thus

to avoid street traffic, fires, sharp knives, hot stoves, falling from high places, and many other similar things and situations Such fears, when strong enough to insure care and caution, but not strong enough to cause abnormal avoidance, are necessary in environmental adjustments. With older children and adolescents, the development of prudence, caution, thrift, and some conservatism is desirable for successful living, even though fear is an important element of these traits. The fears of constructive importance must be learned by the child through experience and parental guidance Such fears do not, however, enter into questions of behavior problems, for they are part of the normal, well-adjusted child's development.

Training, which is so desirable within limits, may go beyond those limits and result in the development of undesirable fear reactions. Over-cautious and over-solicitous parents may protect the child from not only real but imaginary dangers M W.'s (Case Number 27) mother would not let him have a workshop or play with tools because he might get cut. Yet just such a workshop was an important factor in this boy's rehabilitation, once the mother was shown the effect of her attitude Training in undesirable fear patterns is probably seldom intentional—the parent has fears and by his or her actions affords the child a model to copy. Moreover, thoughtless mothers keep their children quiet and maintain discipline of a sort by threatening with the policeman, the bogey man, or other harmless or fictitious characters This is as potent a means of educating in fear as any conceivable one

2. Imitation.—We have just suggested the imitation of parental fears as a kind of training in fear. Imitation and the learning of fear reactions are not always of and from the parents. The child's playmates frequently have their pet fears which they expound at every opportunity As the child imitates the speech and mannerisms of the parent, of the playmate, of the teachers, or of other persons, so he will imitate the fears and other emotional reactions of such persons Hagman's work, mentioned earlier, shows quite clearly the place of imitation in the development of fears

3 Experience.—The truism that the burned child dreads fire sums up all of the everyday observations of fears developing from direct, immediate experience It is easy to understand the fear of the child who burns his finger on the hot stove, who falls out of the apple tree, who cuts himself on the kitchen knife, or who is in some way hurt Such fears may be wholesome. They may, however, become too

extensive and interfere in adjustment. Thus the conditioning, through experience, of fear and therefore avoidance reactions to common dangerous stimuli is a necessary part of learning to adjust to such stimuli. The conditioning of fear responses to harmless stimuli, as Watson and Rayner (1920) first explored experimentally with rabbits and white rats, occurs with great frequency outside of laboratory situations. It is fear responses formed in this manner that cause troubles which are probably second in frequency only to those arising from training and imitation

Single frightening experiences, as in the case of the little girl described above, may be the basis of fear reactions that persist for some time Such experiences are often forgotten after a short time and no evidences of fear are shown until months or even years later when the person develops a phobia that may persist in spite of its irrationality

The preceding discussion merely suggests some common general reasons for fear, for in each particular case the details of etiology will be unique But in every case an intelligent interpretation of the life history will afford clues to pertinent etiologic factors which must form the basis for therapy

Treatment.—The best remedy is prevention. If the child does not develop undesirable fears, then he will not have difficulties in adjustment because of them Therefore, parents should not use fear as a means of discipline, they should eliminate their own irrational fears, they should avoid overcaution in relation to the child's play activities, they should be able to guide and help the child when he reports fears learned from playmates; in short, the parents must do all in their power to keep a child from learning fears that will hinder adjustment, while at the same time helping him to build reasonable and desirable fears in connection with the common dangers

The ease and, to some extent, the success of active therapy for the elimination of fear depend upon the length of time the fear reactions have been evident, and upon the nature of the fear Thom (1927) distinguishes between objective and subjective kinds. The former include fears of things or situations which have arisen directly from personal experience or indirectly from learning about them, or by imitation. The causes of such fears are usually obvious from the history The subjective group includes those intangible fears, the causes of which are complex or so thoroughly forgotten that they are not at all evident in even a rather complete history. Frequently these fears are of such

things as death, the dark, or purely imaginary situations that the child can neither understand nor verbalize so that the adult can gain some insight into his feelings.

Therapy for the first type consists largely in helping the child understand his fear. Frightening episodes should be talked over with him soon after they have occurred so that he may see them merely as unusual occurrences about which there is no need to have further fear. For example, if a child were frightened by a dog barking and running after him, the parent might explain that the dog wanted to play when he saw the child running, that he meant no harm, that if the child had not run the dog would not have chased him, etc In the case we have described on an earlier page, talking over with the girl the noise made by the machine, her fear of it, how similar it was to many noises she heard daily, and how the noise had not really harmed her was sufficient to dispel any further emotional response to noise.

If a child has a circumscribed fear of a definite object or class of objects it may be possible to eliminate it by careful reconditioning This method has been most clearly described by Mary C Jones (1924), who was able completely to eliminate a small boy's fear of furry objects. The *modus operandi* was to present a rabbit and food or candy in the same stimulus situation. At first the animal was kept in a cage on the far side of the room in which the child was eating On successive days the rabbit was moved closer to the child until at last he had so completely lost fear of it that he would eat his meal with the rabbit on the table. The elimination of this fear spread to others, for, as the experimenter concludes, "By 'unconditioning' to the rabbit, Peter has apparently been helped to overcome many superfluous fears, some completely, some to a less degree His tolerance for strange animals and unfamiliar situations has apparently increased" Essentially, this type of conditioning proce [illegible] object of his fears un [illegible] it can be used only with tangible concrete objects that are feared

The fear of intangible things such as ghosts, the dark, supernatural influences, death, and the like, is really fear in the mind of the child. To eliminate these fears is more difficult than eliminating fears of concrete objects. Much can be done by exploring the dark with children so that they can learn there is nothing to fear. Constructing or acting a ghost with the child's active cooperation, or in some other way making his idea of these intangibles more concrete and more associated

with what he experiences as a harmless object or situation, is a useful procedure.

Those vague, nebulous fears that Thom calls subjective are usually of fairly long standing, or, at least, the important etiologic factors have been forgotten Because what are apparently minor occurrences in the life of a child may be of decided significance in the development of fears, parents should carefully watch their children and should so have their confidence that the child will volunteer information when some event or story has frightened him. With guidance from the parent, such occurrences need not lead to a pattern of fear When such patterns are already established, therapy may take the form of helping the child to meet experientially the object of his fears with confidence in the parent or other therapist. In this way he may be brought to objectify his feelings and to recognize the fiction of fear that inheres in the stimulus With older children, talking over the fear-provoking situation and the exploration of possible etiologic conditions in earlier life may be of help in reaching the same end.

Daydreaming

Daydreaming is frequently called by other names; brooding, reverie, building air castles, musing, being in a study, woolgathering, introspection, and similar terms have become commonplaces of the language Conklin (1935) is of the opinion that adolescents are more particularly given to the sort of behavior denoted by these terms, although neither children nor adults are free from it. In some respects daydreaming and night dreaming are similar, in fact, Kimmins (1931) holds that the difference is simply one of degree. This can hardly be taken as completely true because night dreams, unless they are of the nature of night terrors or are somnambulistic, will never interfere with the individuals behavioral adjustment, while daydreams, unless carefully controlled, almost inevitably do.

Daydreaming, in greater or lesser degree, is extremely widespread Smith (1904) found that only about one half of one per cent of 1475 subjects, ranging in age from seven years to adult, were unable to recall experience of daydreams Conklin (1935) found that 69 per cent of 295 college students reported daydreaming frequently Such high frequency of daydreaming as these studies indicate leads one to wonder whether this can be a problem at all since it is so com-

mon. The answer is that for most people daydreaming is infrequent, and even then it is a means to an end and not the end itself. Planning a novel, a strategy in war, a suspension bridge, a scientific experiment, a social movement, are all essentially daydreaming. They cannot be considered as behavior problems because such dreams are the bases of action. When, however, the novel is never written, or the bridge never built, because of the dreamer's pleasure in his phantasy, then there is interference with behavorial adjustment, and so a problem.

There is evidence that the nature of the content in the daydream changes with age. Green (1923) has ably analyzed children's daydreams, and has come to the conclusion that they mirror the child's development. Between three and ten years of age the dream contents have a major reference to self—the child gets the wanted toy, or mountainous cakes and seas of lemonade are his. In the pre-pubertal period, from ten to fourteen or so, the reference is mainly to a group attitude. Our basketball team wins the championship; our gang is victorious over the gang on the next block in an heroic struggle; our school, club, even family is dreamed about as accomplishing greatly desired ends. In this period also there occurs a seriously disturbing sort of phantasy—that of not belonging to one's family. Conklin (1920) and Lehrman (1927) have explored this foster-child phantasy and found that it occurs in children of all classes and takes a variety of forms. The child may believe himself a waif or an orphan, that he is really the stolen child of wealthy or royal parents, or that he is really the child of inferior parents. During adolescence and adulthood, the content takes the form of romantic episodes. Pruette (1924) found among over 300 adolescent girls that daydreams of personal success and romance occurred much more frequently than any other type. McKaye's (1929) study of 244 high school pupils substantiates the self-reference of girls' daydreams, but finds that boys' daydreams are more frequently about objects. This interesting sex difference requires further study.

What is the relation of daydreaming to developing personality? This question cannot be answered in general terms. In a given child the daydreaming may be a means of escaping from an unpleasant reality, in another it is merely a way of filling time. In other words, it may sometimes be a bad habit, while in other cases it is symptomatic of a more serious emotional disturbance. One cannot deal with

daydreaming, *per se;* one must always consider it in relation to the child who is behaving thus Consideration of some common etiologic factors will help in understanding the varied nature of daydreaming

Etiology—Daydreaming may be a direct result of boredom or of loneliness. Boredom may be the result of a drab, uneventful home which offers no stimulation to the child's interests or activities In school, both the subnormal and the superior child may be bored—the one because he cannot grasp the work and hence makes no effort to, the other because the work is too simple to require effort The monotony of the classroom technic of some teachers, or of a too rigid routine at home, makes the child's life dull Ennui resulting from such situations is overcome by dreams, the satisfaction of activity, absent in real life, being found in the daydream

Similarly, the only child, especially when isolated geographically or by parental demand, is bored and lonely If real playmates are not available he peoples his play with imaginary ones One six-year-old girl seen in our clinic had never had an opportunity to play with other children of her own age As a substitute, she had formulated an elaborate world of imaginary playmates This unreal world became so real to her that for a year after entering school she would not play with her schoolmates. Instead, she would sit away from the others and play with her daydream companions.

Excessive repression of the child as a means of punishment, or when a minimum of activity is looked upon as a desirable standard of behavior, is another frequent basis for daydreaming. When repressive measures are successful, the child becomes overtly quiet and finds activities in dreams. Unfortunately, the parent or teacher sees in the child's quietness the success of the repressive measures. They praise him and thus foster the continuance and firm establishment of the daydream as an important part of his behavior equipment

While daydreaming arising from all of the foregoing is a serious interference to the child's possibility of development, there is one further cause that is probably more serious. This is frustration. In its simplest form, frustration of the child's activity is essentially the same as excessive repression Don'ts, maternal fears, paternal commands, and unwise parental interference all take their toll of childish spontaneity And [illegible] very essence of healthy childhood Frustration [illegible] id adolescents is apt to be much more com-

plex Here the daily experiences, friends, places and things seen, urges, social demands, are woven together to form hopes and aspirations. All too frequently social, economic, physical, or mental factors afford barriers to the attainment of such hopes Since activity in the desired direction is, or seems to be, impossible, the next best thing is to dream

Regardless of what is considered the most reasonable cause of daydreaming, the greatest evil is always this· When the dream has become an end in itself, rather than a means to an end, the person has started to lose his grasp upon reality It is here that the particular form of behavior becomes a problem, requiring definite attempts at correction

Treatment—Morgan (1934) has stated the core of all treatment of daydreaming in one sentence: "A child who has learned the thrill of real achievement will not spend an undue amount of time dreaming" With this dictum as the starting point, details of therapeutic procedure must be evolved for each individual case Parents must cooperate by avoiding too frequent intervention in, and restriction of, the child's play They must learn that constant quiet is neither normal nor desirable in the child. School teachers and administrators must make every effort to make school work interesting and suited to the child's ability The lonesome child must be allowed to have playmates, or, if the isolation is geographic, special efforts must be made to afford opportunity for some group activity

Talking over the daydreams with the child and then helping him to recognize their unreality is desirable, whereas talking to him about his daydreaming is not Sermons, admonitions, complaints serve to emphasize to the child his inadequate adjustment, and thus foster the daydream Sympathizing with his imaginings and helping him carry them into action will aid him in keeping daydreams as mere means to ends. However, successful therapy will require more than mere talking

Active measures to make environmental realities real to the child are necessary He must feel the pleasantness of accomplishment; he must treasure the rewards of successfully directed effort. His play, companions, school, work, amusements—all activities must keep him in touch with the actualities, the difficulties of his environing world. Useful tasks at home or school, trips, companionship of parents, the circus, an occasional movie, or any other activity that will require

attention to the outward world should be used Monotonous mechanical tasks that foster abstraction and do not require either attention or effort must be scrupulously avoided. The aim of therapy is not to crush and destroy imagination, but to direct it, and to make it an incidental and useful part of the child's activity

Negativism and Disobedience

A common problem which is closely related to disobedience or stubbornness, is negativism or contrariness Bleuler (1912), who has discussed the theoretical and psychiatric aspects of this behavior, points out that it is really a complex in which all symptoms are similar in that the expected things are left undone, or exactly the contrary is done This sort of reaction is often associated with the psychoses, especially dementia praecox In the present connection we are concerned with negativism not as a psychotic symptom, but with its occurrence as a problem in less extreme aberrations of child behavior

In one of the earliest studies in child psychology, Baldwin (1895), called attention to this type of behavior in children. Since then, and especially in connection with attempts to test young children, there has been considerable attention directed toward the problem Binet and Simon (1916) pointed out, in the earliest days of psychological testing, that many children around three years of age "remain silent and will not reply even to a question which they understand." Levy and Tulchin (1923), in a study of nearly one thousand children at Better Baby Conferences being held at county fairs, found that complete resistance or opposition to the requirements of their test situations began as early as six months The maximum frequency of completely negative children was found at 30 per cent of the children between 30 and 40 months of age After this age, there was decrease, although they had not completely disappeared at 60 months. When the frequency of partially and completely resistant children was combined, the maximum for boys was at 30-35 months, and for girls at 18-23 months. These maxima were both approximately 50 per cent of the children at those ages. In a more intensive study of a smaller group Levy and Tulchin (1925) found the most intensive resistant behavior—crying, bodily and verbal reactions, etc—occurred at the same ages as the maxima in the earlier study The findings of this study have been substantiated in all essentials by the work of Goodenough (1929), Nelson (1931), and Rust (1931), all of whom find

resistance in test situations occurring more frequently at the earlier ages Stutsman (1931), as we have earlier mentioned, has devised a method of compensating for this characteristic of pre-school children in her Merrill-Palmer Pre-School Scale.

Negative behavior in situations other than psychological testing has also been investigated. Reynolds (1928) set up a series of play situations utilizing blocks, in which she attempted to arouse negative behavior in a group of 229 children from one year and eleven months to five years and six months of age Some of these children made no refusals, and even those with the highest negativism scores did not always refuse. The product-moment correlation between C A and negativism score was — .53 ± .03, but between I Q. and the score the r was only — 09 ± .04 The negativism scores were unrelated to height-weight index, sex, or educational background. Caille (1933) found the maximum of resistance to playmates in a nursery school situation to occur close to the third birthday, in fact, three-year-olds showed twice as many cases of resistance as two-year-olds

Ackerson (1931) reports that a definite maximum for contrariness or negativism occurred in the clinic case studies at four years for both boys and girls. Among girls there was also a definite rise at ages sixteen and seventeen. Hetzer (1926) observed a period in which a negative sort of behavior was evident in girls between eleven and thirteen years of age In boys the same author (1927) found that a similar period occurred between fourteen and sixteen years Hurlock and Sender (1930) also found such a period in girls at a similar age and indicated that it was possibly related to inferior surroundings.

Etiology—It is generally believed that practically all children go through a longer or shorter period, usually between two and four years of age, in which they exhibit negativistic behavior. This is thought to indicate the beginnings of the child's assertion of his own personality and his resentment of domination by others. He is struggling for selfhood, for independence; and the suggestions, directions, and commands of others are not welcome. Reynolds (1928) also points out that some cases of negative behavior are quite probably the result of a conflict between the child's activity and interests of the moment and the imposition of a parental command. In these and in other situations the refusal may appear to be more severe than it actually is. The child of two says, "No!" or "I won't," because of his limited vocabulary, the four-year-old softens the refusal by saying, "In a min-

ute" or "As soon as I finish." If parental reaction to this behavior is unsympathetic and shows misunderstanding, the possibility of continued contrariness, stubbornness, and negativism is great.

The pre-pubescent and adolescent negativism that has been reported has probably a somewhat different basis Passive negativism, shown in apathy and avoidance as well as in simple refusal, may be the overt expression of feelings of inferiority and inadequacy, or it may be a protest against what the child believes are the injustices of parents, or his very circumstances of existence. Actively negative behavior, shown in doing the exact opposite, in aggressive refusal, and so on, is doubtless usually a protest against what the child conceives to be interference with his freedom of action Both imply that there is conflict between the child's desires and self-conceived needs, and the requirements imposed by those in authority or by the social conventions

Disobedience may be thought of as an extreme and consistent form of negative behavior It is a frequent complaint made of children referred to clinics. While we cannot here discuss the general problems of obedience and its training, we shall point out some of the more frequent reasons for disobedience. All such reasons are based on essentially inefficient methods used by parents in their training of the child..

Inconsistency is perhaps the greatest evil Today the six-year-old is allowed to ride his tricycle through the house, but tomorrow he is stopped because the floor has just been swept. On one occasion he is given a magazine from which to cut pictures, and at another time he is severely reprimanded because he cuts from a current magazine Many similar circumstances will suggest themselves. The inconsistency is not in forbidding the activity the second time, but in forbidding without any explanation One mother reacted to her three-year-old boy's adventures in crossing a forbidden street by whipping, threats of whipping, cajoling, coaxing, screaming, and even on occasion paying no attention Such inconsistency makes it impossible for the child to learn what can and what cannot be done

Inconsistency in discipline may also come about through *parental dissension* The father is lenient with the child, the mother strict, or vice versa, the father interferes with the mother's punishment There is no agreement between the parents on permissible actions, or on methods of dealing with acts not permitted. The child soon

learns to take advantage of such disagreement and he "plays one parent against the other" He is not disobedient, he merely obeys the parent who allows the activity in which he wishes to engage

The normal pre-school period of negativism, discussed above, is an excellent starting point for disobedience On the one hand, the parents argue with, preach at, or even whip the youngster for his apparent refusals to obey, and the child builds up a defense by avoiding obedience whenever possible On the other hand, the parents meet the refusals with a complete "giving-in"—they cannot force the issue with the innocent, cute child! Here there appears to be a pious hope that the child will overcome the negativism by act of Providence or something of the sort, without any guidance from the parents In either of these extreme positions the parents are setting the stage for future disobedience

In any discipline, at any age, the same extremes of leniency and strictness make for disobedience While parents who are too lenient may be willing to suffer the consequences of their training (or lack of it) in the undesirable and uncontrolled behavior of their child, that same child will ultimately find himself in situations that *must* be obeyed Policemen, employers, companions, and the general public care nothing for the expression of "individuality," especially when such expression is at variance with the social good The excessively stern parent may exact an outward obedience, but at the same time he builds up a smoldering, inhibited resentfulness and hate which almost inevitably make themselves felt in the child's attempts to adjust to the world

Treatment—Any attempts to handle negativism and disobedience *must* have full understanding cooperation of parents or others who have immed[illegible] tudes and actions that are always basic, we cannot hope to accomplish anything as long as the wrong attitudes exist We must first have a clear and complete picture of parental disciplinary measures When these are of the kind known to be unsatisfactory, the parents must be taught better ways Direct dealing with the child will center upon finding the reasons for his attitudes and behavior, and guiding him in forming more desirable ones with or, if necessary, without his parents' cooperation Where emotional conflicts exist because of parental behavior these must, of course, be dealt with first

Complaints of negativism in the pre-school child must be met with

assurances of the normalcy of such behavior, and the possible harm of unwise handling Make as few demands on the child as possible, and when those made are met with refusal, disregard the refusals, "No!" and "I won't," while firmly but gently insisting upon his carrying out the necessary injunctions Give him time to discover whys and wherefores, and freely explain motives and reasons for commands. Normally, the period of pre-school negativism lasts only a few months or a year at most. This is not long (although it may seem endless to the parent), furthermore, how the child is dealt with at this time is of great significance in his later life

Treatment of disobedience demands consistency in discipline, avoidance of extreme measures, and inter-parental cooperation Disobedience frequently is justified because parents make unreasonable demands, often as an expression of an assumed, but unreasonable, authority Children are not property, but human individuals, who must be helped in growing up. Parental demands must be within reason, or the child cannot be expected to obey. On occasion extreme measures *may* be justified Withdrawal of privileges, isolation, unpleasant tasks, may be imposed as penalties for specific acts of disobedience. But the parent must not fail to reward for good behavior as well as to punish for bad.

Corporal punishment is taboo The occasions when whipping is defensible are rare—but they do occur. Such punishments should not be methods of releasing the parents' anger, nor, on the other hand, should they be cold-blooded and mechanical. In one institution, whippings are still administered as punishments, although there is no evidence that they are effective. The method is the height of absurdity. An attendant requests permission from the director of the institution to whip the boy. If permission is granted the physician must first examine the boy and decide if his physical condition will allow whipping After the physician passes him (often a day or two after the request), the boy is given a certain number of strokes by the attendant in the presence of witnesses. Following the beating he is again examined by the physician. What a travesty! Better far the honest sadism of Captain Bligh. Such formality in corporal punishment is seldom found in the home. Usually whippings are highly colored by parental anger, or they are given as a sort of duty, with the remark, "This hurts me as much (or more!) than it does you" Because of the lack of any demonstrated value in whippings, and be-

cause they are seldom commensurate with the offense, it is best to avoid them entirely

Illustrative Cases

In this chapter we shall follow the plan used in Chapter IX, of presenting several selected cases instead of trying to fit specific cases to the several problems discussed The following cases emphasize the type of behavior classed as personality problems It should be noted that a number of the cases presented in Chapters IX and X involve very definite personality factors, but the socially disturbing conduct was of first importance to the complainants A comparison of this group of cases with those given earlier emphatically demonstrates the difficulties involved in classifying problems We again present these cases without comment.

Case Number 41 (Rogers, 1933). Bobbie's early environment was such as to create a multitude of personality problems At the age of seven, when he was removed from his own home, conditions were extremely bad His mother's death released her at last from several years of suffering with cancer, and from the abuse, drunkenness, and vile language of Bobbie's father. He was a large man, a steady worker, but described as "over-sexed" and abusive. In addition to the four children of his marriage, he had two children by one of his step-daughters and he had been intimate with his other step-daughter and a number of other women

Viewing Bobbie in his first two foster homes, one would have said that the prognosis was not at all good He lived in a world of his own which no one else ever penetrated He would sit and pick at a piece of string by the hour or vary this practice by biting his nails, picking at his clothes, or catching flies and insects and pulling them apart. He was indifferent to people and very quiet at school. He was fearful and suspicious of any attention paid to him. He lied when questioned about misbehavior. Toward sex matters he showed a peculiar interest, and he was removed from the foster home and brought to the clinic when it was discovered that he had tied a string so tightly around his older brother's genital organ that medical attention was required When one added to these behavior symptoms the fact that Bobbie was taking treatment for congenital syphilis, the future looked dark indeed.

A number of clinic interviews at this time did not reveal any encouraging factors in the situation. This eight-year-old lad was as

repressed and inhibited a youngster as one would find anywhere. In spite of friendly contacts, he simply refused to talk about any but superficial topics. Questions about his earlier home life or about sex matters brought a resolute silence, accompanied by hangdog looks The psychologist summarized Bobbie's needs by describing him as "a boy who is badly in need of someone, preferably a foster parent, who can draw him out and give him understanding." It was felt that Bobbie's repressed attitude must be somewhat overcome before his mental conflicts could be dealt with at all.

It was in carrying out the clinic recommendations that Bobbie was placed in the Thompson home. At first he was shy and reserved. Gradually he began to blossom out. He actually seemed happy; he acquired self-confidence, and, after a time, he even became confidential, telling the foster mother something of his earlier unhappiness at home There were very few behavior difficulties One or two violent temper storms were quickly and effectively settled with a dash of cold water Bobbie learned to play with the other boys so successfully that two years after placement it was reported that he was nearly always the leader in games, although he was neither oldest, largest, nor brightest of the boys Interestingly enough, there has never been any evidence of unwholesome sex activities of any kind. Bobbie in this home has shown honesty and trustworthiness to a high degree. Indeed, for a period of a few months Bobbie became rather domineering in his attitude toward the other boys, because he felt that he was doing all the important errands and tasks for the foster mother This was easily handled. The total picture of Bobbie's behavior during the last few months in the foster home is that of a thoroughly normal, active boy, well thought of at home and at school

One significant thing was noted during the first two years of his stay Although expressing interest at times in his family and his father, Bobbie would "shut up like a clam" on the occasions of his father's infrequent visits, and would withdraw into himself in a way highly reminiscent of his early behavior. Since that time the father has not visited him and we do not know how he might react now.

Case Number 42 (Ebaugh, 1931). E. C, a white boy of fifteen. Second oldest in family of four. Average intelligence: I.Q. 99 At present a sophomore in high school

Problem as referred Considered as a behavior problem because of the situation existing between himself and his stepfather. The stepfather had many complaints, such as patient's attempted intercourse with his daughter (patient's half-sister) and failure to get along with

the stepfather, which included an antagonistic attitude toward him and unwillingness to cooperate in the home. The stepfather had written to both school teacher and assistant district attorney, advising that patient be prosecuted for his sex act Enuresis was considered a problem from a health standpoint

Evolution of problem Ten years ago (July 10, 1920), mother of patient remarried, following the death of her husband (October 10, 1916). There had been two children by the first marriage, the patient being the younger of two boys The stepfather has never gotten along well with either boy, especially the younger. His treatment has been very inhumane; he has beaten both boys a great deal and because of this the older boy left home two years ago The stepfather wanted children of his own and when his first child died at the age of six months, he became very despondent and his treatment of his two stepsons became more unbearable However, his attitude has changed little following the birth of his two living children. He has objected to his stepsons' participation in athletics in school and has not allowed any play about the home Work is the only activity allowed The patient has to sneak away from home in order to play and on returning usually has to stand a good thrashing The father is desirous that the patient finish high school and then go to college in order that he may become a "big business man." On many occasions he has refused to allow either boy to go to school parties and entertainments. Occasionally the patient has been allowed to go to parties, and when this has happened, his enuresis has disappeared This has produced rejoicing on the boy's part At other times the patient becomes very nervous and uncertain about things and bedwetting presents itself, much to the boy's chagrin

Four months prior to the clinic visit, the patient attempted intercourse with his half-sister, five years old. When the father found out about this, he became very angry and, while attempting to control his temper, criticized the boy severely There had been no previous sex instruction and now the stepfather attempted to make a brief explanation, but under his emotional strain did a poor job of it. The boy was taken to a general practitioner—one not in good standing with the medical society—who also attempted to tell him something of sex In this talk he was told that if he continued masturbation, which he had freely admitted, he would in all probability develop a mental disorder.

The stepfather is a hard-working, economical Scotchman, owner of 162 acres of farm land in a very prosperous community He never had a chance at education and now wants to give his two stepchildren

and his own two children all the benefits denied him. In return he expects absolute obedience from all, and when this is not forthcoming, loses his temper and beats the children His wife has been instructed to keep her hands off and has been threatened with the same type of treatment. The father has patterned his action after that of his own father who was very strict and had a very violent temper. The paternal grandmother states that all four of her boys practiced self-abuse and quarreled a great deal. The paternal grandfather drank and had a temper. The patient was born in their home and lived there for five years, until the death of his father.

The mother's health was good during pregnancy Delivery was normal. Baby was breast fed. Teeth at six months. Child walked at one year and talked at one year Sphincter control was established at eleven months Health has been good, with the exception of the usual childhood diseases In May, 1930, was noted to be seven and one-half pounds underweight.

Physical examination Essentially negative.

Psychiatric examination The patient's attitude was considered good during the interview, as he entered very well into the spirit of the examination. He was very willing to talk over his troubles. He appeared surprised when no great importance was placed on his statement, "You know I raped my sister and that is the reason I am here. A doctor told me I might go insane I have worried a great deal over this It has caused me trouble in school. I daydream a great deal, thinking about things that might happen to me."

He felt that he was the equal of others at school, but at home he really felt very inferior because of the things his stepfather said to him, telling him that he was no good and criticizing every action. He began to feel that maybe he wasn't any good. At school he did take part in activities and loved to clown for the younger children He is liked by all the children at school, even though he is considered by some a bit shy and self-conscious. He gets along with children of his own age. He feels that the main trouble at the present time is between his father and himself, and that the father is greatly at fault At school he has made a good adjustment with the pupils and teachers. Teacher says he is a bit slow at times and hard to draw out of his dreams

He feels that he must stay in the family to protect his mother, but has told her that if he was making it harder for her, he would leave home He gets along very well with all members of the family save his stepfather.

He has been greatly concerned over the episode with his half-sister

In his daydreams he has pictured himself away from home, where things might be a good deal more congenial and happier He has wanted to take his mother with him. There is no history of any night dreams He desires to finish high school and go to college, perhaps to agricultural college.

Formulation We are here dealing with an adolescent boy who is attempting to make his adjustment to life in face of a great deal of difficulty in the home. Marked abuse on the part of the father has made the boy feel very antagonistic and inferior The relationship between the boy and the problems presented by the father's attitude can readily be understood

It was felt that this case represented a very important problem which centered around the stepfather and his attitude. As the stepfather had received little education, his one desire in life was to give his children the things he had missed In his attempt to accomplish this, he had stressed school work to the exclusion of all other interests He became very resentful whenever the boys had any other desires and objected bitterly to their attempts to fulfill their own wishes Gradually he had become more rigid in his attitude toward the children and felt that they were not appreciative of his efforts. On this basis he had become critical and abusive in his relationships with them The oldest boy refused to tolerate such an attitude and emancipated himself by leaving home, while the patient felt that he could not do this because of his feeling of responsibility for his mother The father accepted our explanation of the difficulty, and was very cooperative in further psychiatric interviews, which resulted in the development of insight into the problem.

The main recommendation made in regard to the patient was that he leave home and secure work for room and board while continuing school This was easily accomplished Further treatment recommended dealt with explanations of sex phenomena to the patient and attempts to desensitize him to his feelings of insecurity and inferiority This gradually resulted in improvement in proportion to the change in attitude assumed toward the boy and his problem Follow-up reports one year later indicate continued adjustment

Case Number 43 (Richards, 1923) This boy of nine was brought to our dispensary in November, 1920 He is the fifth in a family of six boys. The parents are Russian Jews who came to this country shortly after marriage and, in spite of rearing a large family, have managed to establish themselves in a small, but fairly well-paying,

tailor's business The four older boys went through the lower grades and are working, so that the family budget is comfortable

The parents describe themselves independently as "nervous" and "not so strong," but in spite of constant complaining, there has been no real incapacitation The father of late years has been seeking doctors and patent medicines for "bladder trouble." The mother has been a frequent visitor in various departments of our Hopkins dispensary, where "palpitation" has figured largely in her complaints and "neurasthenia" in her diagnoses. The older boys glided through school and family training without acquiring the evidence of much supervision or direction. Each left school and got work as soon as he was eligible, proclaiming his emancipation from authority in ways that made him a desperate hero to his younger brothers The parents attempted to deal with this insubordination by loud arguments, empty threats, tears, and supplications, so that one could not cross the family threshold without being definitely conscious of a spirit of contention

The patient's personal history was relatively uneventful. There has been some enuresis and night terrors in his background, but their occurrence had either been too transient or too slight to elicit a voluntary recital from the parents. His school career included a repetition of the first grade, the result of poor attention, mischievousness, and irregular attendance. When out of school, the child played constantly on the street He was in the habit of going to the movies almost daily, which made his bedtime about 10 P M As to personal traits, one could say that the patient was spoiled, but not disagreeably so He got his own way at home by impertinence and sly disobedience, at school by clever affability, and on the street by "scrapping." In short, his behavior reactions were so like those of his brothers and the neighborhood boys that neither parents nor teachers noticed anything remarkable about him until the onset of the complaints for which he was brought to our dispensary The story was that three weeks before, while in school, he had felt faint, dizzy, weak, his extremities had grown cold, his heart had beat fast "like a hammer," and he had thought that he was going to faint. The feeling had passed off in a few minutes. After a second attack in school several days later, his mother had been obliged to stay with him day and night for fear that he was going to have another spell Her impatience with this tyranny and her fears for the child's health were reflected in the remark. "All day he hollers, 'Mother, I die!' and keeps his hand on his heart"

Examination in the pediatric dispensary was negative Questioning as to the events that preceded these attacks brought out the fact that the day before the first "spell" in school, the teacher had given a

health talk to the children, and stressed the importance of care in eating fruit lest the seeds and pits "go down the wrong way and kill you" In some way the child got the notion that if an apple seed slipped down his trachea instead of his esophagus, it would be carried by the circulation to his heart and kill him Childlike, he had not confided his fears to any one The wisdom of his conduct did not seem so questionable when, later on, the physician began to explain the situation to the mother and elicit her cooperation Her first impulse, on hearing the story, was to punish the child for being sc "dumb" and "crazy" as to cause her all this trouble

Therapeutic adjustment The patient was assured as to the impossibility of his fears being realized, and the parents were urged to ignore his complaints without ridicule, teasing, or punishment The teacher also was more than eager to obtain and act on a new point of view The patient had no further attacks of palpitation and faintness, but did show a tendency to cling to his mother, especially before going to sleep at night The situation was not difficult to handle, however, and in a month's time the fears and complaining reactions were things of the past. He is now in the fifth grade, and his school life seems to be running more smoothly—perhaps as a result of increased interest and attention on the part of his teachers

With the adjustment of the immediate child problem, our attention turned to the family group as a whole The first step was a settling of the somatic status of its complaining members The father was persuaded to go through the genito-urinary clinic of our dispensary His examination revealed no abnormal condition, and he seems to have accepted this reassurance since he has not gone to any other physician for treatment and advice up to the present time The oldest son was having friction with his employer for the amount of work put upon him He was tense and irritable, and complained of fatigue A thorough examination in the medical dispensary revealed a double heart murmur and myocardial insufficiency Although there was no decompensation, his job did involve too much strain The employer was quite willing to meet us halfway in the matter, and other work, better suited to the man's condition, was found, and has proved a success The clearing up of this situation with the oldest son has done much to bring peace to the family circle

The patient's mother still continues to complain, but without the drive of real worry Her utterances on health topics give the impression of being merely social commonplaces

Case Number 44 (Ebaugh and Lloyd, 1927). Dorothy was brought

to the clinic as a physical problem. She had a severe attack of chorea in 1923 After the choreiform movements ceased, she developed spells in which she would become stiff for an hour or more at a time. These attacks continued for several months. Most of the day was spent in crying or screaming. She improved and returned to school, but every trifling detail upset her and it was advised that she remain at home Her mother had been giving her medicine for a week in order to get her quiet enough to bring to the clinic.

Dorothy is nine years old, but physically gives the appearance of a child of six She is fourteen pounds underweight. When spoken to, she screamed and cried and jumped up and down, stamping her feet and shaking her hands, all the while holding her breath. She had to be carried bodily into an examining room The mother was equally hysterical, crying, "Oh, doctor, this will make my Dorothy worse!"

It was impossible to make a psychological examination, but an easy matter to secure an enlightening history, as no less than twelve people waylaid the worker to tell her that Dorothy couldn't live long after "the way the father had gone." "In August she had a fainting attack which probably was tuberculosis of the brain" The father had died of tuberculosis, and Dorothy unfortunately had seen him having hemorrhages Whenever she had a cough, she would become hysterical.

It was recommended that Dorothy be brought into the hospital for observation. The mother immediately gave her consent, but a lifelong friend suggested that she would never forgive herself if Dorothy should die away from home. The mother accepted the friend's recommendation, and we were able to be of no further service to Dorothy.

After the clinic left the village, Dorothy grew progressively worse and was finally brought to the hospital for observation. The family had been living in a town of four hundred people. After the father's death from tuberculosis, the mother's parents were able to care for the children during the day and the mother opened a beauty parlor in town to earn a living Dorothy had always been a thin, frail-looking child, but had never been sick. When it was known that the father was tubercular, the neighbors began stopping Dorothy on the street and sighing, "Just like her father! Sure to go the same way" The result was that the child became hysterical. Her fears were progressive, and at the time she was brought into the hospital she had developed choreiform movements and was bedfast.

After two months of hospital care, Dorothy was as calm as any other child on the ward She had, however, gained little weight, although a diet and rest routine had been followed. The mother had excellent insight and later came to the clinic as a patient. She stated

that after three years of widowhood, she had been severely criticized for attending a dance. Dorothy is now in a children's play school, to remain there until the mother can secure employment in another community.

Case Number 45 (Dexter, 1928). Robert is thirteen years and four months of age, has average intelligence, and is in the eighth grade He was referred by his teacher because of his quiet manner and his tendency to daydream. In the interview with the social worker, the mother spoke of her concern over his poor work and her regret that he had no friends, but otherwise she was aware of no difficulty.

The boy's father is a skilled worker, making a comfortable income He is sociable, enjoying his lodge meetings and an occasional evening of pool. He prefers a younger son who is like him in personality and whose part he invariably takes against Robert

Because of the father's attitude, the mother defends Robert, but is unaware of her partiality for him As a girl, she wanted to join an Episcopalian sisterhood, but her mother would not allow it She found marriage disappointing and discovered her only solace in innumerable church activities Throughout the interview, she was inclined to resist the visiting teacher's assumption that Robert was unadjusted. When finally pressed as to the boy's recreation, she arose and, after exacting a promise that the social worker would not tell Robert, opened the door into a small adjoining room In it the boy had constructed a chapel, with two small pews and an altar decorated by a crucifix, candles, and an altar cloth he had himself embroidered Here he spends most of his time alone, conducting church services He intends to become a minister His mother believes that she is not responsible for his religious fervor, but at the same time recounts an experience that occurred a few months before his birth, when she vowed to dedicate the child to the church if God would induce her husband to cease scoffing at religion She considers that her prayer was answered and that the child has naturally turned to the church

When the social worker pointed out the possibility that her ambition for the boy would not be realized unless he learned to make social contacts, she agreed to urge him to spend more time playing outdoors with the boys and gave her consent to his joining the harmonica club at school However, when the visiting teacher suggested that the chapel be dismantled on the pretext of her need for a sewing room, she objected that nothing would be accomplished, for Robert would only reconstruct the chapel in his own room The harmonica club proved ineffective, for although Robert attended regularly, he

took no interest in the other boys and used the harmonica at home to play hymns

Since numerous attempts at relieving the mother's identification with the boy and the father's rejection of him were unsuccessful, and the child himself remained inaccessible to any discussion of his problem, the social worker turned to the minister and the family physician. The latter had known Robert since birth, and was amazed at what was going on in the home. He readily offered his cooperation and agreed to urge outdoor activity for the sake of the boy's health. The minister had wondered at Robert's intense enthusiasm, but was unaware of the lengths to which it had carried him. He exerted his influence to discourage the boy's absorbing interest and undertook to discuss his problem with the mother He also tried to foster a friendship between his son and Robert.

Five months of treatment, for the most part carried on indirectly through the teacher, minister, physician, appear to have accomplished little more than a superficial change in the original situation The parents' attitudes are too firmly fixed, and the boy's behavior is too deeply intrenched, to give way to the healthier family relationships that are necessary to free the boy from his emotional entanglement

Case Number 46 (Leahy, 1926) Of decided importance is the teacher's attitude in the case of Richard, a nine-year-old boy who was doing unsatisfactory work in the third grade and who had failed to be promoted the semester before. He had not finished a single arithmetic paper for the semester and he was extremely slow in all his reactions. He was absent-minded and at times seemed completely oblivious of the persons or things about him. He would rise and walk aimlessly around the room in the middle of an interesting story Parents feared a mental break because there was insanity in the family background Clinical study revealed the fact that Richard was a boy of superior ability and that he had an absorbing interest in knights. He drew one in perfect detail and executed a complete replica of a feudal castle in the sandbox at the clinic as he waited for the examiner He was sensitive about his slight build and volunteered that "any kid in school can lick me." He read, lived, and dreamed of knights, and from them he was getting the color, self-expression, and satisfaction that he had not been able to secure otherwise The task of the social worker was evident when she reported the findings to the teacher, who, with a disgusted air, announced that "it made no difference; everything with Richard was knights" She did not see the tremendous motivating power of this interest She

did not see that it had the danger of a growing escape from reality and that her attitude was enhancing the likelihood of the boy's pursuing it

Next to the home—and I sometimes believe more than the home—the school exercises a profound influence on the child's personality And in this drama the teacher is not the least actor If she is understanding and sympathetic, she can do an infinite amount in the way of making a child happy No other person has such an excellent opportunity to draw out the sensitive, seclusive child, no one has such an excellent opportunity to put the ruthlessly aggressive child into situations that demand control and sportsmanship.

Chapter XIII

PSYCHONEUROSES AND PSYCHOSES

As we have pointed out in an earlier chapter, psychoneurotic or psychotic conditions may be looked upon as the most extreme forms of what we have called indirect primary behavior problems, or, to use the commoner term, personality difficulties. Thus, their essential characteristics are subjectivity and the extremely important part played by the emotional and attitudinal aspects of the individual While classification and diagnosis of these conditions rest largely upon symptomatology, the symptomatology gives neither insight into etiology, nor a basis for therapy

A survey of the entries classed as children's neuroses in such bibliographies as the *Quarterly Cumulative Index Medicus* clearly shows that there is no sharp line of demarcation between what we have termed personality problems—or, for that matter, some conduct problems—and the psychoneuroses. Any attempt to force a sharp division is unwise and unnecessary Certain forms of behavior presently to be described have been isolated and named These have in common a substitutive character; they represent methods of escape from, or avoidance of, unpleasant situations As Adolf Meyer and his school (Kanner, 1935; Strecker and Ebaugh, 1935) point out, they are part-dysfunctions of the personality While the behavior may interfere with entirely adequate adjustment, the person's contact with his environment remains real and relatively intact The following three major types of psychoneuroses are conventionally isolated: hysteria, psychasthenia, and neurasthenia Various authors make further divisions to which names such as anxiety neuroses, compulsion neuroses, hypochondriasis, etc, are given.

The psychoses are personality disturbances of so severe a nature that not only is the person's behavior affected, but he is quite decidedly out of touch with environmental realities Boundaries between the phychoneuroses and the psychoses are no clearer than those between the personality difficulties and the psychoneuroses. In fact, from the

mildest fear or the simplest daydream, indirect primary behavior problems extend in an unbroken series—not linear perhaps, but none the less real—to the most extreme disorientation of the catatonic stupor or the severe maniacal attack. The conventional classes of psychoses are shown by the names in the first column in Table LXVIII. We shall limit our discussion to three of these, viz., schizophrenia or dementia praecox, manic-depressive psychosis, and juvenile paresis.

Psychoneuroses

All authorities are agreed that psychoneurotic complaints comprise a large share of all the problems met with in general medical practice —although no claim is made that they are all recognized as such As these disorders are seldom severe, the patients do not find their way into mental hospitals, consequently this source of statistics is of little avail. In Table LXVIII, we find that about three per cent of all admissions to state hospitals under fifteen years of age, and between fifteen to nineteen years, were for psychoneuroses. These represent a rate of 0.1 per 100,000 of the general population under fifteen years of age, and about 1.0 per 100,000 for ages fifteen to nineteen Wilcox (1932) reports 55 cases out of 5500 admissions to the Babies' Hospital, in which behavior problems and neuroses were of major importance. In his private practice, there were 96 such cases from a total group of 1100. As there is no distinction made here between behavior problems and psychoneuroses, these figures are probably more indicative of the former than of the latter. Haines (1931-32) reports an incidence of psychoneurotic conditions of 0.3 per cent among some 52,000 public school children. At the James Whitcomb Riley Hospital for Children approximately 6600 different children were admitted between April, 1934, and March, 1936. Of this number, there were eight for whom the final diagnosis was hysteria and two for whom it was neurasthenia Among approximately 30,000 children admitted between September, 1924, and March, 1936, 38 cases were diagnosed as hysteria and nine as neurasthenia. In both the smaller and more inclusive groups the incidence of hysteria was 0.12 per cent and of neurasthenia 0 03 per cent, or a combined incidence of 0 157 per cent. While all of these data are entirely inadequate they do demonstrate that the number of children whose problem can be classified as a psychoneurosis is very small

As we have said, the conventional psychiatric classification of the

psychoneuroses includes three and sometimes four divisions. hysteria, neurasthenia, psychasthenia, and sometimes anxiety neuroses. Psychasthenia is at times made to include anxiety neuroses, together with the conventional divisions: phobias, obsessions, and compulsions. In adults these divisions are fairly distinct, but, as Robin (1932) points out, in children the boundary between psychasthenia and neurasthenia is not clear cut. This confusion of two of the conventional types, together with the difficulty of distinguishing between personality problems and the psychoneuroses as a group, makes any attempt to discuss the various types somewhat artificial. However, if the artificiality of the divisions is kept in mind, descriptions of conventional types will be serviceable.

HYSTERIA

Hysteria is a behavior pattern characterized by (1) the dissociation of simple or complex functions from the ordinary personality integration; (2) the basing of the symptoms upon an affectively colored and only partially forgotten conflict situation; (3) the fact that the symptoms are substitutive in the sense that they are usually somatic manifestations making possible escape from the affective conflict In children, hysteria is frequently, although not always, monosymptomatic, i.e., but one symptom is evident at one time The symptom is often sufficiently spectacular as to cause serious concern on the part of layman and physician alike.

The estimates of frequency of hysteria in children depend upon the symptomatic criteria used. The lay public and some professional workers tend to call any type of emotional instability, especially emotional outbursts, signs of hysteria Such extension is not in accord with the best modern usage, which limits the term to rather specific kinds of behavior having characteristic experiential histories The broad usage results in large numbers of cases being diagnosed as hysteria, whereas with the narrow usage few cases are so diagnosed

As an illustration of the difference of opinion, we may refer to two fairly recent papers Heuyer (1929) concludes a discussion of hysteria in children thus *"En résumé, je crois que c'est avec la plus grande prudence qu'il faut porter le diagnostic d'accidents hystériques chez l'enfant Actuellement on n'en voit plus guère."* Tixier (1930) expresses surprise at "my friend Heuyer's" statement and, after discussing three cases, points out that *"Il est bien évident que les mani-*

festations de l'hystérie infantile ne sont pas d'observation très courante, mais on s'exposerait à de graves erreurs de diagnostic si, sous prétexte d'une excessive rareté le médecin spécialisé n'avait pas toujours présente à l'esprit la possibilité de son existence."

Differences in diagnostic criteria probably also account for the age ranges reported Scheffield (1898) reported what he called hysteria in a child of only one and a half years of age. Abt (1915) described a case of hysterical blindness in a child of three which occurred after the girl had been reprimanded by her mother Pichon (1933) says that hysteria may occur as early as four years of age. Cases at such very young ages are certainly a great deal rarer than in later childhood and adolescence We have no data on this point, but the cases used by Kanner (1935) are suggestive Of the eight illustrative cases he presents, six were over twelve years of age, the other two were six and seven years old.

Symptomatology—Hysteria may simulate almost any symptom or condition that the human organism is capable of having. Sensory defects, motor disturbances, general somatic symptoms, memory loss, and distorted perception represent only the major types of symptoms that are found Physical symptoms of hysteria can be distinguished from true organic disorders by the absence of physical findings in examination

Sensory disturbances may occur in any one of the senses and in any degree Increased or decreased sensitivity, irregular sensitivity, or a complete anesthesia are all found. Cutaneous sensory disturbances usually follow a sensory distribution in which the hypersensitive or anesthetic area is sharply delimited at boundaries having no relation to the anatomic distribution of the nerves. Such areas are frequently changeable and may be modified by suggestion In the special senses, complete blindness, scotoma, or concentric diminution of the visual fields occurs. Totally blind hysterics commonly avoid obstacles in their path and sometimes recognize certain objects when they are presented visually The eye reflexes and movements usually are not affected Partial deafness, or deafness limited to certain situations, e g., the classroom, is more common than total hysterical deafness

Motor disturbances include paralyses of all types, tremors and other involuntary movements, contractures and abnormal posture The paralyses, like cutaneous sensory disturbances, usually follow the lay idea of a functional part like an arm or a leg, rather than being in

accord with segmental innervation. Astasia abasia, i.e., the inability to walk or stand although there is no [illegible] when [illegible] symptom. [illegible] of hand, arm, finger, or other part, head-bobbing and nodding, head rotation, choreiform movements, all occur, and they are not of the type or distribution that would be expected from organic lesions. Contractures of hand, finger, wrist, foot, etc., are common, as well as posturings simulating torticollis, scoliosis, kyphosis, and the like. Hysterical speech disturbances are most frequently manifested in aphasia and mutism. The child makes no effort to speak, and the loss is complete, although he may whistle, cough, weep, even yell and sing.

Somatic or visceral symptoms include vasomotor signs such as coldness, cyanosis or dermatographia, as well as disturbances of any organ system. The alimentary canal is a favorite field for hysterical symptoms, the following being common complaints: globus hystericus, or the feeling of a stone or ball rising from the stomach until it reaches the throat; hiccuping; vomiting without nausea or any immediately evident reason; flatulence, constipation and diarrhea.

We cannot undertake to describe all of the physical symptoms that have been reported in patients with hysteria. It is safe to repeat that almost every physical sign may occur. In general, a distinction between physical symptoms arising from hysteria and those arising from organic pathology may be made. As has been mentioned, they do not adhere to patterns required by anatomic or physiologic conditions They are usually not present during sleep and often disappear when the patient is relaxed, even though he is not asleep. Rather typically the physical handicap does not endanger the patient—the blind avoid perilous obstacles, the anesthetic do not get burned, etc. The physical signs are frequently transient; they occur suddenly, may last for relatively long periods, and then disappear. They may return after a period, or a different symptom may be substituted.

Abnormal behavior involving the whole organism may also be symptomatic of hysteria. Amnesia for all events for a long or short period, fugues or amnesic periods during which the person may travel and apparently be conscious of what he is doing, somnambulism, hallucinations and convulsions are the commoner forms of such symptoms Hysterical convulsions may be distinguished from organic convulsions because they ordinarily occur in the presence of an audience, the patient does no harm to himself, loss of consciousness is doubt-

ful, convulsive movements are more irregular and bizarre, bladder and bowel control are seldom lost Paralogia or the Ganser syndrome is occasionally seen in children Kanner (1935) describes one case and says the only other one he could find in the literature was described by Hey (1904). In this condition the child appears to understand questions, but the answers just miss being correct. Thus Kanner's case gave the following answers:

Have you ever been in a hospital? Yes.
When? Next Monday
How old are you? Three months
When are you going to go home? Five years.

All of the mental symptoms suggest a division of the personality in which the symptom is a behavior of one part, which is not affected by the behavior of the other part. The extreme form of such dissociation is seen in cases of dual or multiple personality. Here the dissociation is so complete that at certain times the individual appears to be a different person. Prince (1914) has studied this condition most carefully in adults. Kanner (1935) says that he has never seen the condition in a child.

Etiology—Theories of the nature, and hence the cause, of hysteria are many. Janet's (1907) theory, that the main factor in hysteria is a disturbance of the personality synthesis or integration, concerns its basic nature. Freud's (1909) theory, that the hysterical manifestations are to be referred to the repression of psychic traumata, concerns the specific nature of the behavior This psychoanalytic school would claim that all such psychic traumata are sexual in nature, but non-acceptance of such limitations does not destroy the value of the theory. Together, these afford a workable theory for clinical use. We may combine and reformulate the theory thus In poorly integrated personalities psychic traumata produce conflicts which are repressed, to be later converted into apparently unrelated behavioral phenomena

In accord with this theory, causative factors are divided into predisposing and precipitating. Anything which makes difficult or impossible, or which operates against, the adequate integration of personality is a predisposing cause. Hereditary and constitutional or organic conditions are frequently spoken of in this connection However, there is little if any clinical or experimental evidence to indicate that such factors are of great significance in personality integration

As Kanner suggests, if one accepts all the suggestions that have been made—e g., psychoses, alcoholism, tuberculosis, epilepsy, homologous and heterologous heredity, queerness, etc, in grandparents, their children and their children's children—then every man and his brother must be predisposed to hysteria.

Of probably much greater importance as predisposing causes are, as Conklin (1927) points out, education and social status As we have already said, the informal training of the home lays the foundation of the child's whole personality make-up. If there is no effort to help him build emotional control, no guidance in learning a necessary degree of inhibition, or no stability in the parents or between them, then the child will not form the steady, well-directed, integrated personality that can withstand the onslaughts of its environment Formal education in the school may be unskillful and produce inferiority feelings, disappointments, emotional tension, and poor ideas of life which all interfere with the synthesis of personality Conklin believes there is ample evidence that the majority of cases of hysteria come from either the extremely high or the extremely low socio-economic classes. In both of these groups, although for different reasons, there is less discipline, less stability of emotions, less adequate parent-child relationships. In other words, there is a greater opportunity for the child to fail in unifying the experiences that are his personality.

Given a predisposed personality, we have a fertile field for psychic traumata, for stressful experience, to result in conversion phenomena. Perhaps one reason that hysteria is rare in children is that the stresses of childhood are less frequent, less severe, or not "so ever-present." In adolescents or adults, and sometimes in younger children, many sorts of experiences may be traumatic. Sexual experience cannot be ignored, although it is probably not as important as the psychoanalysts would have us believe Death, accidents, financial misfortunes, disappointment, worry, thwarted hopes and ambitions, marital dissension are but a few of the commoner environmental strains that may precipitate hysterical phenomena Suggestion is another important immediate cause of hysteria; in fact, Babinski (1908) claimed that this was its most salient characteristic Closely allied to suggestion is imitation, which may be a frequent cause in children, although not so important in adults.

The following case is presented *in extenso* because it is "so ideally commonplace as to make up for its spectacular deficiencies It is pos-

sibly of more than usual interest for this reason particularized as follows: First, the pertinent developmental history of the patient is complete and distinct; second, the initial ease and suddenness with which this history was brought out is noteworthy, and finally, the patient's response to planned treatment was ideal"

Case Number 47 (Carter, 1936 I. U Psych Clinic. I—4478).

Admission history Kate Fox, a well-developed female, age thirteen years and seven months, with a history of only minor childhood diseases, was admitted to the James Whitcomb Riley Hospital with the following complaints:

1. partial paralysis of the left leg
2. extreme nervousness
3. marked loss of appetite

The patient's known history accompanying her admission was as follows. She had always enjoyed excellent health until nine months before, when, while in school, her left leg "suddenly gave way," "felt numb," and as though "needles were pricking it" Two weeks later, after confinement in bed and while still on crutches, she became excited and nervous, acting as though she had "St Vitus' Dance." Following this, she spent a week in a local hospital, was somewhat calmed, but continued to use crutches She suffered a marked loss in appetite For the following three months she did not use crutches but continued to lose weight. In the fall she started to school again and there did excellent work as usual until she had another "nervous spell" five days before admission to Riley Hospital Her mother attributed this to fright produced when a dog attacked the patient's little sister.

The patient's parents and three sisters were reported living and well, with one sibling dead (pneumonia). The mother was 36 years old and the father 37 The family was found negative for any pertinent disease history.

Clinical findings: A. *Medical* At Riley Hospital the following positive clinical findings were obtained after thorough physical examination: muscle twitchings around throat and chest, hyperactive abdominal and patellar reflexes, with left leg reflexes more active than those of right leg These findings suggested some possible neural involvement; however, no atrophy of either leg or other observable differences were found. The patient used the left leg as if she were afraid it could not bear her weight, but it was found that she had full use of it when lying down Likewise, her gait was not found typical of

any produced by organic lesions. Constipation and a poor appetite with occasional vomiting were also observed.

The physicians' impressions as to the nature of the patient's difficulty were:

1. Hysterical paralysis
2. Post-poliomyelitis
3. Post-polio-encephalitis.

B *Psychological.* Four days after admission, the patient and the above information were referred to the Riley Hospital Psychological Clinic. Kate was brought to the clinic in a wheel chair. She was discovered to be unusually beautiful and with charming manners. She appeared quite intelligent and equally sensitive. She readily described the onset and subsequent history of her paralysis, loss of appetite, and other symptoms When questioned about the "cause" of these difficulties she had no explanation It was then explained to her that great emotional experiences were often connected with just such complaints as she had She was then invited to confide the nature of any such experiences she might have had. With gentle urgings and an actively sympathetic attitude from the writer, the patient told of her fright when her little sister was attacked by a dog, and of her grandparents' death, all of which occurred after her first seizure When questioned about her family relations she reported parental kindness and care

As no emotional conflict prior to the onset of difficulties was brought out, the patient was asked to start with the first thing in her life she could remember and recount all of her experiences up to the time of her initial seizure At this proposal the patient appeared somewhat defensive, in contrast to her willingness to talk of events subsequent to the beginning of her troubles. As the patient did not know where to begin, the writer attempted to help her with more specific inquiries, but with no results, until the patient remembered that she cried all during her first day in school. To establish better rapport the writer told of a similar experience on his first day in school. This was followed up by an exchange of school experiences which revealed the patient as an excellent student much devoted to attending school. During this time it was noticed that her uneasiness had disappeared.

Having exhausted this subject, the examiner returned to the patient's relations with her parents. Thereupon, she appeared more defensive than before and reiterated the mutual devotion between herself and parents with a suspicious earnestness At this point the examiner remained silent for some time gazing at the wall. This sudden lull in

the interview so reacted on the patient that when he looked at her again she began to register considerable agitation Her face became flushed, tears welled in her eyes, and she began trembling. After a sympathetic pause the examiner said, "Now tell me all about it" Whereupon, tears flowed freely and with much agitation she implored the writer never to tell her parents what she was about to say.

As the patient wished to avoid being looked at, both she and the examiner looked away from each other while she told a story of a parental triangle situation that had happened three years before All during this time she was violently agitated, crying and convulsively trembling She was allowed to tell her story and to have a beneficial cry afterwards without interruption When she had finished, and her agitation had subsided, she was reassured and asked to think about the incident over and over again before coming back to the clinic. Her reaction to this request was an extreme emotional protest. It is worth noting that the main features of her story were brought out in the first interview The detailed presentation that follows is the result of several interviews extending over a period of several months

The patient's story Three years before, when Kate was ten, her mother and the roomer in their house fell in love Domestic strife entered an otherwise happy home One night she heard her mother's lover suggest that they take her away with them A few days following her mother eloped with the man The mother stayed at the home of her sister in Indianapolis while her paramour made a trip to Kentucky to make living arrangements for them In his absence the father, Kate, and her three sisters found Mrs Fox and she was persuaded to return home. Up to this time the patient was only vaguely aware of the significance of what had happened

When they reached home the pedestal upon which Kate had placed her parents completely collapsed under the violent and abusive scenes that followed From the exchange of charges and counter-charges between the two she learned what her mother had done, and that her father had been "running around with another woman," and that a divorce threatened. The four girls reacted to this all-night scene by crying and praying together, as they were to do for many nights to come The quarrel was temporarily halted when the mother became ill and had to be taken to a hospital

A few days later the mother returned and the disturbing scenes were reenacted, with the girls crying and praying together as before These nocturnal quarrels continued for a week or two during which the children suffered severely Finally, the family visited the home of the grandfather where the parents agreed to a divorce When the

children learned of this one of the older sisters threatened suicide, which appears to have had the effect of bringing the father and mother somewhat closer together

About this time the paramour returned and took residence with his sister who lived across the street The father vowed to shoot him if he came on the premises.

Shortly afterwards, a third man, a friend of the paramour and possibly a lover himself, threatened to shoot the father One night this individual came into the yard of the home intoxicated and engaged the father in a quarrel A fight followed, during which the intruder attempted to shoot the father. He was prevented from doing so only by one of the neighbors who knocked the gun out of his hand

Following this disturbance the parents definitely agreed not to separate for the sake of the children and to refrain from all quarrels in the future. This, the patient claimed, they did. A little later the father joined the church and invited his would-be assassin to join with him (invitation declined), and a few months afterwards this third man was sent to prison for robbery The paramour returned to Kentucky where he married a year later and returned with his wife about six months before the patient's admission to Riley Hospital Kate thought his return worried her father as he "can't forget what he did to him"

The rest of the patient's story had to do with her reactions after the home conditions returned to normal Her own words tell the story, e.g, "I couldn't bear to think about what happened," and, "I just didn't think about it." Thereafter, she said little at home, experienced unexplainable feelings of oppressive melancholy, and indulged in much sad brown study. This led others to fear she was "losing her mind." Because of these unbearable feelings she felt under a compulsion to "keep busy." She helped with the housework, assisted in preparing meals, and as soon as a meal was over she immediately washed the dishes. This home experience progressed from bad to worse until she was admitted to Riley Hospital.

In contrast to home she found school a relief, but within a year she began to experience a fear of social intercourse. She would grow strongly apprehensive when recess time drew near but was unable to explain why. Rather than go out with her schoolmates she would sit at her desk and study. Her girl friends, thinking she was ill, would make her feel badly by staying in with her to keep her company She would rather study than do anything else because she could do this alone and apparently it provided her with an escape from her

vague fears. It is significant that her initial paralytic seizure came on just before a recess period

The rest of her story was in substantial agreement with that already recited in the Admission History The only necessary comment on this part of the history is that at no time did the patient associate her home experiences with her manifest symptoms

Diagnosis A diagnosis of hysteria of the reactional dissociation type was made on the basis of the above findings considered as a whole and summarized as follows: (1) no organic findings to account for the patient's symptoms; (2) the conditions of defense and extreme emotionality under which was brought out; (3) a particularly violent parental triangle situation; and (4) the patient's non-acceptance of this situation, with (5) the resultant development of a reactional dissociation as characterized by melancholy, extreme nervousness, vague fears of social intercourse, escape attempts via housework and study, and a final fear conversion in terms of a partial paralysis of the left leg All of these symptoms remained for the patient logically unrelated to her domestic experience of three years before.

Psychotherapy In light of the above findings it was considered essential that the patient return, figuratively speaking, to the situation of the parental triangle and learn to meet it with complete acceptance This, it was believed, would eliminate the basis of her hysteria and redirect her reactional biography toward a more normal behavior picture. To this end a frequent and thorough review of the domestic scene in question was prescribed, along with physical and occupational therapy for the duration of hospitalization

In all, the patient was seen in the psychological clinic three times in two weeks Each time she was required to describe the domestic strife in more detail. Additionally, she was instructed to think frequently about what had happened, and in so doing to think of it as objectively as possible The purpose of this was revealed to her and illustrated out of her own experiences as follows. "You were deeply grieved when your grandfather died, but you didn't stop thinking about it. You simply accepted his death as a misfortune and as time went on grieved less and less You must do the same thing about your parents Accept what they did and eventually it will upset you less and less."

Her first reaction to this procedure was strong emotional repulsion However, she was finally prevailed upon and agreed to, what was to her, a horrible ordeal Each time the patient told her story the emotional agitation became less and less. She professed to do as she was

urged, namely, to think about the whole situation, but reported it difficult.

Two weeks later when the patient was discharged as improved, all her symptoms had disappeared. At that time she was enjoined to continue thinking about the events in question and tell them to someone in whom she had confidence. If this were impossible she was to tell them aloud to herself when alone. She was also invited to visit the writer's office in her home town whenever she felt like it.

A month after leaving the hospital she returned for a follow-up examination and was reported well, happy and in school No complaints were uncovered She continued to walk with a normal gait and evinced no abnormal neurological findings.

More than four months later the writer interviewed the patient and her school teacher. The teacher, who had taught Kate throughout her school life (for eight years), reported her behavior as returned to normal The patient had also asked the teacher to take her to the writer's office but this had not been done because of lack of time on the part of the teacher Among other things, the patient's interest in the writer was revealed in a statement made to this teacher that when she was older she planned to work for him (transference). After seeing the teacher, Kate was privately interviewed. She reported as being happy, but still not talkative at home, with no fears of recess or other forms of social intercourse, no trace of paralysis, and well in general. The patient was quite composed when she retold her story, which was more connected than on previous occasions, although she was a bit "nervous" She said that she had done as the writer had asked and thought it over many times and that it no longer disturbed her, but that it was still unpleasant

NEURASTHENIA

The difficulties of classifying psychoneurotic conditions culminate in the placement of neurasthenia. Beard (1880), who first introduced the term, meant by it a condition of nervous exhaustion. The theory that the clinical behavioral picture is a concomitant of physical fatigue was emphasized for a long time, especially by the French school. Evidence contradictory to this theory has accumulated, and today neurasthenia is widely considered a functional disorder. It is associated with anxiety neuroses, with obsessive ideas of a psychasthenic type, with feelings of inferiority, with hypochondriasis—in short, with almost all aspects of the psychoneurotic.

In adults, at least, neurasthenia is the most common of mental dis-

orders. Everyone passes through a neurasthenic phase at one time or another. It is only those whose neurasthenia is chronic who can be considered psychoneurotic. Even in adults the border line between normality and abnormality is vague, and the vagueness of the boundary is due to the neurasthenic tendencies so widely exhibited With children, whose everyday behavior patterns are still being formed, and whose comprehension of themselves and those about them is so limited, the distinctions are even more difficult to make. Guthrie's (1909) statement, to the effect that children may be highly neurasthenic from an early age, must be taken with caution. It is true only if all varieties of behavior problems are subsumed under the term The subsequent discussion is based upon descriptions of neurasthenia in adults If we apply the same standards to children's behavior, it is quite probable that the incidence of classical neurasthenia will be very small.

Symptomatology.—The most characteristic symptom is a sense of physical and mental fatigue following the slightest exertion or even thought of effort The patient is constantly tired; there is frequently great fatigue upon arising in the morning but by evening the patient feels fine; rest does not help the fatigue Hartenberg (1914) demonstrated that there was no physiological basis in the muscles or peripheral nerves for the fatigue The complaints include· headache, feeling of pressure on the head, pain in the back of the neck, eye strain, blurred vision, aches and pains in various bodily organs; gastrointestinal complaints such as indigestion, constipation or diarrhea, loss of appetite, circulatory symptoms such as palpitation, extra systoles, tachycardia, pseudo-anginal sensations; vasomotor instability, with pallor, blinking, sweating, feeling of heat and cold; respiratory complaints such as shortness of the breath, frequent colds, quick and shallow breathing, paresthesis or peculiar subjective sensations, hyperesthesia or extreme sensitivity to stimulation, especially to light and sound; genito-urinary disturbances such as impotence, nocturnal emissions, failure in erection or intercourse in males, dysmenorrhea in females, frequency of micturition, kidney complaints, etc Even this imposing list does not exhaust all of the possibilities Briefly summarized, the symptoms of the neurasthenic all express a physiologic weakness and incapacity

Etiology—As with all psychoneuroses, etiologic factors must be divided into predisposing and precipitating Inferiority feelings appear

to be the most prominent basis for neurasthenia, although constitutional deficiencies may be of some significance Fisher (1929) believes that the neurasthenic is primarily introverted and therefore predisposed to self-concern, which affords a reason for the behavior picture Strecker and Ebaugh (1935) believe that fatigue, which is so constant a symptom, is due to "mental cross-purposes." Being unable to solve personal problems, the patient is unable to face problems outside of himself and so becomes more introverted and concerned with his own bodily processes. Such concern magnifies ordinary physiological processes and minor ailments that in health are disregarded Déjerine and Gauckler (1915) trace the course of immediate causes thus· emotional upsets normally give rise to mental and physical changes which the predisposed patient observes He then draws erroneous conclusions as to their nature and source, considers them signs of disease, becomes entirely convinced of this, and finally functional disturbances are manifest.

Excessive masturbation is held by some authors to be basic to neurasthenia. This has been the view of the Freudian school of psychoanalysis, which at one time believed that masturbation caused physical debilitation from which neurasthenia arose In the more modern functional interpretation, masturbation, with its frequently associated emotional conflicts and personality inadequacies, is possibly still of serious etiologic moment.

PSYCHASTHENIA

Psychasthenia is really a group of problems, the most frequently mentioned of which are compulsions, obsessions, and phobias Some writers would identify psychasthenia and neurasthenia, although the division between them is widely accepted. Such identification is indicative of the difficulties of differential diagnosis. In children the distinction is probably even less clear than in adults The frequency of occurrence of psychasthenia in children must remain in doubt This is mainly true because it is almost impossible to maintain a sharp boundary between the common or even uncommon fears of childhood and phobias, or between the ordinary perseverative tendency that is frequently found in children and a true obsession or compulsion. Some workers with adult patients claim that at least 50 per cent of the cases can trace the difficulty back to childhood, while other workers believe psychasthenia is rare before puberty It is generally be-

lieved that the condition is slightly more frequent in girls than in boys Among the James Whitcomb Riley Hospital records on some 30,000 children, there is not a single diagnosis of psychasthenia Whether this means a consistent avoidance of the diagnosis, or whether there was no case that could be so diagnosed, it is impossible to say

Compulsions or Compulsive Acts—These behavior forms are separated by some into a special type called compulsion neuroses, but the clinical picture is the same regardless of the term used The patient feels forced to perform a certain act or series of acts, he is unable to avoid doing so, but he recognizes their uselessness. Manifestations may range from excessive washing of the hands or counting the squares in the sidewalk, to complex behavior patterns. Certain types of complex acts, such as kleptomania (compulsion to steal), pyromania (compulsion to set fires), dipsomania (compulsion to alcoholic indulgence), are to be classed as compulsion neuroses rather than as psychoses or as willful delinquency. Freud (1909) described the case of an eleven-year-old boy who could not sleep until he had told his mother all of the day's happenings in minute detail; until every scrap of paper or rubbish was cleaned from the floor of his room, until his bed was against the wall and three chairs set by its side, and then after getting in bed, he had to kick a definite number of times with each leg In children such elaborate ritualistic acts or even simpler acts of a truly obsessive character are rarer than they are in adults Noyes (1934) says that children's compulsive acts are largely persistent habits Another form of child behavior which closely simulates compulsions is shown in certain types of play which involve persistent repetition of acts. A. A. Milne in *When We Were Very Young* has given an illustration of this in the poem, "Lines and Squares," where dire results are predicted for those who step on the lines Such games, and perhaps certain acts associated with emotional situations, may persist and finally become compulsive acts over which the child has no control

Obsessions or Obsessive Ideas—These are mental or ideational activities which are persistent and over which the patient seems to have no control, although he recognizes their irrational nature The melody or the lines of a poem which keep "running through one's head," almost at times to distraction, may be taken as an example of an innocuous obsession. Ross (1923) gives a case of an adult patient who was obsessed by the number thirteen There was no particular fear

of the number, but if he heard the word he would be miserable He stayed in bed on the thirteenth day of each month. He was uncomfortable if signs with thirteen letters, or salutations like "good after, noon" which had thirteen letters could not be avoided His persistent endeavors to avoid the number took so much time that he was totally unfitted to do anything else A child may be obsessed with the idea that the spelling lesson has not been learned, at least not well enough to be satisfactory in school the next day Or he may be greatly concerned because he may have offended someone, even though he has taken great pains not to do so. Obsessions over numbers may occur which do not show themselves in avoidance, but in influence of the number in useless ways Thus, children may walk in groups of three or some other number of steps, stop, and then take the precise number of steps again Speech is interrupted by pauses after each group of three words, doors are opened three times in succession, etc. Unless things are done in the proper groups there is a feeling of incompleteness—the task is not finished Certain types of obsessions are sufficiently common to have been given names Examples are:

Arithmomania obsession concerning numbers, and urge to do things a certain number of times

Onomatomania obsession concerning certain words or sentences

Folie de doute obsessive doubts as to whether certain acts have been carried out

Grubelsucht: brooding over trifles.

Fragesucht compulsion to ask irrelevant questions.

Phobias or Obsessive Fears—We have elsewhere considered children's fears and there mentioned one sort of fear that, although it is entirely unreasonable and the patient recognizes it as such, he is unable to overcome. Any environmental situation may be a stimulus for these morbid fears, consequently they may be different for every case. A number of rather common fears have been endowed with somewhat awe-inspiring names, as given in the following list:

Name	Fear of
Acrophobia	high places
Agoraphobia	open places
Aichmophobia	sharp or pointed objects
Anthropophobia	men or a particular man
Claustrophobia	closed places
Délire de toucher	touching objects or persons
Eruetophobia	blushing
Gynephobia	women or a particular woman
Hamilophobia	other people finding something wrong with the patient

Name	Fear of
Hematophobia	blood
Monophobia	solitude
Mysophobia	contamination
Nyctophobia	darkness
Ochlophobia	crowds
Pantophobia	practically everything
Paralipophobia	precipitating disaster through having forgotten or neglected something
Pathophobia	disease or a particular disease
Phobophobia	fear or being afraid
Photophobia	light
Pyrophobia	causing fire through negligence
Syphilophobia	syphilis
Taphephobia	being buried alive
Toxophobia	poisoning
Zoophobia	animals or a particular animal

This list of terms, which might easily be extended, amply illustrates the variety of situations toward which people have unreasonable fear reactions The occurrence of phobias of such specific types in children is probably rare. There is evidence, however, that many of the phobias of adults can be traced back to childhood It is possible that children do not recognize the irrationality of the fears as readily as adults do and therefore many are not recognized as phobias

Hypochondriasis—This term is used for obsessive belief in the presence of organic pathology or disease, or excessive concern over minor organic ailments It may concern some ailment in specific organs, it may be a general malaise, or it may vary from organ to organ In children the pattern may imitate a real or hypochondriacal complaint of parents or siblings, or it may follow upon a real, but minor, injury. Frequently the hypochondriasis is associated with unhappy life experiences.

Levy (1932) has summarized factors relating to hypochondriasis in children Of etiologic significance are exposure and memory of earlier exposure to disease or deformity in other persons, the patient's own real illnesses, body sensitivities, anxiety about illness, and anxiety about masturbation The child may utilize hypochondriacal complaints to avoid difficult situations or to secure attention and sympathy

Anxiety Neurosis—This designation is often given to morbidly anxious states which do not have the relatively specific characteristics of the phobias The condition is more frequently found in adults who are exposed to requirements which they fear they cannot meet. Pensimus (1933) observed the case of a four-and-one-half-year-old child

who exhibited morbid anxiety and passivity, as well as anti-social behavior, apparently as a result of severe mental and physical deprivation.

If one contrasts these brief descriptions of the several symptom complexes subsumed under the term psychasthenia, one is struck with several points of similarity. (1) In each case the behavior—motor, ideational, or affective—is purposeless and useless (2) In each case the patient recognizes the irrationality of his behavior. (3) In each case the behavior has little or no correlation with the patient's general behavior and, unless it becomes excessive, does not interfere with his social adjustments. (4) The behavior suggests a dissociated process, similar in many respects to the hysterical reactions earlier described. These similarities suggest that causative factors are probably similar

Etiology—As with all psychoneurotic reactions, it is impossible to be dogmatic about the causes of psychasthenia. There are several theories, each of which is probably of some value In adults these conditions may be thought of as resulting from specific childhood experiences, especially affectively colored ones, or as the residuals or direct consequences of strong emotional experiences at any age, or as symptomatic of repressed ideas, or memories which are incompatible with the person's other habit patterns In every case the behavior exhibits a certain degree of dissociation Compulsions, obsessions, phobias, anxiety, or hypochondriacal trends are probably more frequently symptoms of repression in adults than they are in children. Before adolescence children probably have less reason for repression than the adult, they are more naive and probably less affected by cultural taboos. Therefore, the causative factors in psychasthenic reactions in children are probably more directly associated with the symptoms

Fear—perhaps a somewhat natural one—becomes excessive and morbid, thus developing into a phobia. Compulsive acts and obsessive ideas result from the perseveration of originally innocuous activities. Psychasthenic reactions may result from the strain of school requirements or from the stress of home life. Imitation of parental behavior and attitudes may result in any of the symptoms described While limited generalization can be made, the details of causation will vary from case to case

The two cases which follow illustrate phobias in adults which had their origins in childhood experiences. True phobias are difficult if

not impossible to distinguish from non-compulsive fears in young children, but the possible compulsive effects in adolescence or adulthood of frightening experiences in childhood make the problem one of concern to us

Case Number 48 (Bagby, 1922). A young woman of good heredity developed during her childhood a severe phobia of running water She was unable to give any explanation of her disorder, which persisted without noticeable improvement from approximately her seventh to her twentieth year The general nature of the disturbance is readily shown.

Her fear reaction to splashing sounds was especially intense For instance, it was necessary for her to be in a distant part of the house when the bathtub was being filled for her bath, and, during the early years, it often required three members of the family to give the bath She always struggled violently and screamed. During one school session a drinking fountain stood in the hall outside of her classroom If the sound of children drinking was audible, she became very frightened, actually fainting on one occasion When she rode on railroad trains, it was necessary to keep the window curtains down so that the streams over which the train passed might not be seen

During her twentieth year an aunt, Mrs G , came to visit at her home. This lady had not seen her niece in thirteen years She was met at the station by the mother of the girl, who told her of the daughter's condition On arrival at the house, she met the girl and her first words were, "I have never told." This served to provoke a recall of the following episode.

The mother, the aunt, and the little girl—she was then seven years old—had gone on a picnic Late in the afternoon the mother decided to return home but the child insisted that she be permitted to stay longer with her aunt The mother agreed to this on the child's promise to be obedient to the aunt. The two then went into the woods for a walk, and the girl, disobeying her aunt's instructions, ran off alone The aunt followed and, after a search, found the child lying wedged among the rocks of a small stream with a waterfall pouring down over her head She was screaming with terror. They proceeded to a farm house where the wet clothes were dried. The child expressed great fear that her mother would learn of her disobedience, but the aunt reassured her with the promise, "I will never tell" They returned home and the aunt left the house next morning without seeing her niece The child was thus left with no one in whom she

could confide and had a period of anxiousness. The phobia developed shortly after this

After recalling this experience of her childhood, the young woman found it possible to approach running water without discomfort. And gradually the special adjustments, which her phobia had necessitated, disappeared

Case Number 49 (Bagby, 1922). A man suffered from a phobia of being grabbed from behind, the disturbance appearing early in childhood and persisting to his fifty-fifth year. When walking on the street, he was under a compulsion to look back over his shoulder at intervals to see if he was closely followed In social gatherings he arranged to have his chair against the wall. It was impossible for him to enter crowded places or to attend the theater

In his fifty-fifth year he returned to the town in which he had spent his childhood. After inspecting his old home, he went to the corner grocery and found that his old boyhood friend was still behind the counter He introduced himself and they began to reminisce. Finally the groceryman said this. "I want to tell you something that occurred when you were a boy. You used to go by this store on errands, and when you passed you often took a handful of peanuts from the stand in front One day I saw you coming and hid behind a barrel. Just as you put your hand in the pile of peanuts, I jumped out and grabbed you from behind. You screamed and fell fainting on the sidewalk."

The episode was remembered and the phobia, after a period of readjustment, disappeared

The following case and Number 43 previously presented are illustrative of children's hypochondriacal tendencies

Case Number 50 (Kanner and Lachman, 1933) *Late effects of "asthma in infancy"* George H., nine and a half years old, was referred for psychiatric consultation because of spells of shortness of breath, which began in September, 1930 His mother first noticed the breathing difficulty at the table and thought that "he was in a hurry to go out and play." The spells at first occurred at lunch only, later also at dinner time Usually he unfastened his belt, saying that this gave him relief For a number of years he had been a feeding problem, was "particular about certain foods," and his parents "had to encourage him to eat." More recently, there have also been Sunday morning headaches.

George is the son of a healthy forty-two-year-old store manager,

who for several years has suffered from "nervous indigestion," which, however, has not bothered him of late. The mother is an intelligent, robust woman of forty years George is the second of two children His older sister, nineteen years of age, has a very good school record, works steadily as a telephone operator and is normal in every respect. There were two miscarriages between the births of the two children. With the exception of the paternal grandfather, who died of tuberculosis, there have been no serious acute or chronic illnesses, physical or mental, nor remarkable peculiarities in any member of the family in either branch for at least three generations.

George was a full-term child, born without any complications He was breast-fed for two weeks only, gained weight steadily, and offered no feeding problem for the first few years of his life Dentition, the development of locomotion, and speech occurred at the usual time

At the age of one year, he had an upper respiratory infection which lasted one month. The family physician diagnosed the condition as "asthma" and warned the parents that it might return in the future He prescribed a strict dietary regime and advised that the child be watched very closely and brought back whenever they noticed the slightest sign of breathing disturbance At eighteen months he was circumcised At two years he had whooping cough; at three years, measles; and at six years, scarlet fever ("very slight") When he was seven years old, he was admitted to the Harriet Lane Home with acute anterior poliomyelitis, which was exceedingly mild and left no traces after a quick recovery In August, 1930, his tonsils and adenoids were removed.

He began to go to school at six years and did exceptionally well in his studies and in his contacts with teachers and schoolmates. In September, 1930, as a result of change of residence, he was transferred to another school He felt uneasy about the sudden disruption of his previous associations and resented particularly the much longer distance between his home and the new school. It was then that his breathing difficulties began.

George is a well-developed, well-nourished boy Physical examination showed no abnormalities At nine and a half years, he has a mental age of almost twelve years (I.Q 118) He is somewhat childish in his reactions, is a spoiled child who expects—and gets—everything at home, but is not given sufficient opportunity to develop a sense of responsibility and personal independence

We have here—as everywhere else when we are dealing with human reactions—a combination of factors that must be taken into account in sizing up the boy's difficulty It is remarkable, and a sign

of a stable personality make-up, that, in spite of maternal over-solicitude, he has done splendidly for nine years, with the exception of feeding difficulties, which were found to be considerably exaggerated by the mother During the first few years of his life, he did not know that he was expected to have a recurrence of "asthma" Later, even after being told to observe himself very closely and to report any evidence of its appearance, the entire home and school setting was satisfactory enough to preclude any attention to his somatic functioning But as soon as the change of schools and the greater distance created a situation unpleasant to the boy—whose father had reacted to financial worries with gastric complaints—the "asthma" began to assert itself Real illness of short duration at the age of one year, aided by medical prophecies and parental apprehensions, helped to pattern the behavior trends in a healthy and intelligent, but spoiled, child after a period of approximately eight years

George and his very cooperative parents were informed about the nature of his "asthma." He was given adequate recreational outlets and personal responsibilities, which he had lacked before His "asthma" disappeared promptly, together with the feeding problem and the Sunday-morning headaches.

TREATMENT

It is evident from the foregoing discussion that the separation of the psychoneuroses into types rests upon differences in symptomatology. When one turns to the etiology of the various symptoms there is an easily recognized similarity In each case, the abnormal behavior patterns rest upon an introverted, introspective, insecure, inferior-feeling type of personality The origin of such personality types will not be discussed here, for we have already considered the question elsewhere. Such individuals react to the difficulties of their environment by avoidance or escape behavior. Some find release from responsibilities in the border realm of neurasthenia. Fatigue and complaints of illness justify to the patient himself, at least, his failure to solve difficulties—surely a sick man must be excused These reactions are common to a large share of mankind, but with most people they are temporary, only when they become chronic can they be considered as abnormal. In other patients the conflicts over disturbing experiences are repressed; that is, an attempt is made to escape them Still further conflicts arise and the person develops obsessive doubts, fears, or motor acts which are partially dissociated from his usual

personality Although these dissociations of psychasthenia are nonspecific and not always clear cut, they are none the less real Finally, we have those patients in whom the conflicts result in specific and clear-cut dissociations of a motor, sensory, or more general sort, extending even to the total splitting of the personality. In this type of hysteria, the symptoms seem to be more organic and may therefore be more deceptive.

The etiological picture here summarized holds for probably all adult cases In children, it is doubtful whether the dynamics are so complex The conflicts between the child's changing personality and his environmental situation are probably less severe and more easily adapted to. Therefore, there is less reason to expect abnormal behavioral resultants We have earlier pointed out that fears, compulsions, and other symptomatic behavior of a similar kind may arise in children more as directly learned reactions from models in the environment. The dynamic simplicity of psychoneurotic behavior in children makes the prognosis more hopeful, and therapeutic measures simpler.

Any program of treatment must include at least these three things (1) a thorough physical examination that eliminates the possibility of organic pathology; (2) an extensive and exhaustive history, including events preceding and subsequent to the onset of the neurosis, and (3) the sympathetic interest of the therapist

The physical examination, if it is negative or if it uncovers relatively minor disturbances, affords a basis for the evaluation of the subject's complaints. Also, if pathology is disclosed it can be corrected; if uncorrectable, it becomes a known factor in the total picture The physical examination and therapy are properly the field of the physician. However, one cannot expect the cure or even improvement of psychoneurotic symptoms by medication or surgical interference. The best medical opinion is expressed in this quotation from Wechsler (1935): "Certainly, obvious physical defects demand remedy, but it may be positively stated that no hysteric anxiety or conversion symptom was ever cured in that way; and it is equally true that all those attempts only serve to confirm the neurotic in his complaints and to perpetuate symptoms which could be more intelligently removed by psychotherapeutic measures."[1] In hysteria the ap-

[1] Israel Wechsler, *Clinical Neurology*, 3rd ed., 1935, p 732, courtesy of W B Saunders Company

sensory defect, and in neurasthenia the frequent ., seem to demand specific medical attention. But in of Wechsler's statement will warn against di- iptoms It is not the paralyzed arm which must whole individual Too much attention directed . complaints may do harm by confirming the pa- physical disability. Although it is sometimes pos- hysterical limp or anesthesia by suggestion, unless is relieved some other symptom almost inevitably

ugh and accurate history it is not possible to deal ie personality conflicts basic to all psychoneuroses. include information, especially concerning attitudes eriences, not only immediately preceding the onset as early as possible in the child's life. The sources uld include the parents, teachers, relatives, or any the child, and, perhaps most important of all, the ct, the relating of experiences in the course of giving e a therapeutic value This has been well illustrated 47, in which the girl freely discussed innocuous learly showed the conflict of her attitudes toward the informal and impersonal questioning and an- iected conversation of the patient, affords an oppor- blishment of rapport between him and the therapist ility of a real organic disability precluded and with ation of the problem based on the history secured, i is ready to attack the difficulty. His purpose must ient to recognize the conflict and see its etiological al, intellectual, reasonable arguments are of no avail. relive the traumatic experience. Once having faced nd its subsequent conflict objectively, he must be n a more normal relation to all other experiences. ing and trying to avoid it, he must live with it and t of it." Carter's handling of Case Number 47 nicely thod. Once the girl recognized the importance of mily episode, she was urged to treat it in the same ad treated her grandparents' death. Although this decided emotional reactions, it was objectified and ief disappeared. Her shock and grief following her

parents' quarrel were not faced, but repressed; consequently they continued to exert a decided influence upon her behavior Once the event was relieved and then treated as an unpleasant but unavoidable episode which could be fitted into the normal pattern of life, the symptoms disappeared and the personality disturbance was greatly relieved.

It is evident that the foregoing therapeutic suggestions are not adequate. However, it would take us too far afield to go into more extensive detail. [illegible] its own specific problem which must be met in [illegible] are a few near-certainties the psychoclinician must keep in mind: a psychoneurosis always means a conflict; the basis and nature of the conflict are discoverable by patient [illegible]; the patient must face the [illegible] must revaluate it so that it takes its proper place in his life economy. With these principles as a foundation, the actual therapeutic approach must be guided by the patient, the problem, and, above all, the ingenuity of the psychoclinician

Psychoses

True psychotic conditions in children are of extremely rare occurrence Hagen (1876) calculated that, per year, one in 70,684 children under fifteen years of age became insane. Of 1532 cases, he recorded 59 as having acquired the condition during childhood. Moeller (1876) found no children in the asylums of Saxony in 1867, and only eight in 1875. During this same period there were 194 cases residing with their families. Emminghaus (1887) found, among a population of about 10,000, the following incidence of insanity by age groups:

1– 5 years	0 18 per cent
6–10 "	0 69 " "
11–15 "	1 46 " "

According to Welt (1893), Deboutteville found that of all admissions to the Saint You Asylum between 1827 and 1834, 0.9 per cent were between five and nine years, 3 5 per cent between ten and fourteen years, and 20 per cent between fifteen and twenty years of age This same author also reports Turnham as having found only eight children less than ten years of age among 21,333 insane patients Spitzka (1890) reports that in Wurttemberg there were 104 children among 3948 insane patients. Modern data are given by Strecker (1921),

who found only eighteen cases of indubitable psychoses in children under fifteen in 5000 consecutive hospital admissions; ten of these were girls and eight were boys Kasanin and Kaufman (1929), in a series of 6000 admissions to the Boston Psychopathic Hospital between 1923 and 1925, found 160 children under sixteen years of age—92 boys and 68 girls—of whom only 65 were diagnosed as psychotic.

Malzberg (1931) analyzed the U S Census enumeration of mental hospital patients and found the rate per 100,000 of the general population of the same age to be:

Age	1910	1923
10–19	14 6	20 6
10–14	3 7	6 0
15–19	25 5	37 2

He points out that there are practically no admissions below ten years of age. In the next decade the rate for the last half was six times that for the first half The first-admission rates per 100,000 population of the same age reported by the U. S Bureau of the Census (1935) were

Under 15 years	1 3
15–19 years	25.7

Children under fifteen years of age constituted only 0 7 per cent of all admissions, while children above that age constituted 29.4 per cent of the total population in 1930 Data from hospital admissions cannot be taken as a true representation of the number of psychotic children because there is probably a decided aversion on the part of the parents or guardians to commit children to state hospitals.

Ackerson (1931), in his analysis of the case records of 5000 children seen at the Institute of Juvenile Research, mentions only dementia praecox as having been noted There was a staff diagnosis or a question of this condition in 74 of the 4454 white children between the ages of one and seventeen years The youngest case was seven years old and the incidence increased with age, especially after twelve years Interpreting his data, that all the evidences of psychoses in this group were of the dementia praecox type, we calculate that about one and a half per cent of the children referred to this psychological clinic showed signs of psychosis

Adequate statistics of psychoses in children are not available. From those summarized above it would appear that of all psychotic patients less than one per cent are under fifteen years of age. Admission rates to mental hospitals for three years—1910, 1923, and 1933—gave incidences per 100,000 of the population of the same age, of 3 7, 6 0, and 1 3, respectively These represent an average of about 0 003 per cent of children under fifteen years of age admitted to mental hospitals. We have no data on the relative number of children who are admitted to hospitals; but the ratio given by Moeller—eight in asylums to 194 at home—while very old, may be accepted as not too small Even on this ratio of nearly 25 times as many psychotic children out of hospitals as in, probably less than 0 1 per cent of all children are psychotic.

The types of psychosis exhibited by children and adolescents are shown in Table LXVIII, modified from Malzburg (1931) These fig-

TABLE LXVIII —PSYCHOSES OF CHILDREN UNDER 19 ADMITTED TO STATE HOSPITALS

Psychosis	Per Cent of All Admissions		Rate per 100,000 General Population of Same Age	
	Under 15	15–19	Under 15	15–19
Traumatic		0 3		0 1
Senile				
With cerebral arteriosclerosis	0 2	[a]	[a]	[a]
General paresis	0 2	0 9	[a]	0 3
With cerebral syphilis	0 7	0 1	[a]	0 1
With Huntington's chorea	0 2	0 1	[a]	[a]
With brain tumor	0 2	0 1	[a]	[a]
With other brain or nervous disease	4 0	1 2	0 2	0 4
Alcoholic		0 1		[a]
Due to drugs or other exogenous toxins		0 3		0 1
With pellagra	0 2	0 3	[a]	0 1
With other somatic disease	2 4	2 1	0 1	0 7
Manic-depressive	5 1	14 1	0 2	4 5
Involutional melancholia		0 1		[a]
Dementia praecox	6 4	37 0	0 3	12 0
Paranoia and paranoid conditions	0 7	0 2	[a]	0 1
Epileptic psychoses	11 4	6 0	0 5	2 0
Psychoneuroses and neuroses	3 1	3 1	0 1	1 0
With psychopathic personality	2 7	4 1	0 1	1 3
With mental deficiency	14 6	9 1	0 6	3 0
Undiagnosed psychoses	8 4	5 9	0 4	1 9
Without psychoses	39 5	14 7	1 7	4 7

[a] Less than 0 05

ures represent admission to state hospitals and are therefore to be interpreted with caution. It will be noted that 39.5 per cent of the children under fifteen years of age thus admitted are found to be without any psychosis Among older adolescents, between fifteen and nineteen years of age, there were about 15 per cent without psychoses. As we are interested primarily in children we shall limit our discussion to those below the age of fifteen years. In this group 14.6 per cent were diagnosed as "psychosis with mental deficiency," 11.4 per cent as "epileptic psychoses," and 8.4 per cent whose psychoses were undiagnosed. The diagnosed psychoses of greatest frequency were dementia praecox, manic-depressive, and those accompanying neural pathology. A similar order is found in the older group, but the actual percentage is a good deal larger. These figures substantiate what has been said earlier, that psychotic conditions are rare in children, but show a definite increase with increasing age

In our subsequent discussion we shall deal only with the three most frequent types of psychoses.

DEMENTIA PRAECOX OR SCHIZOPHRENIA

Dementia praecox and schizophrenia are synonymous terms which are, in a general way, descriptive of two characteristics of the condition. The first term, introduced by Kraepelin, emphasizes the early occurrence of the psychosis. The age of onset and appearance of acute symptoms in about 70 per cent of the cases is between fifteen and thirty years, some cases occurring as early as five years of age according to Ssucharewa (1932). Bleuler in 1912 applied the term schizophrenia to the same group of conditions, with the intent of emphasizing the splitting-off of mental processes.

The great variety of the behavior patterns exhibited by schizophrenic patients makes a simple definition of the condition impossible The following features are considered characteristic of the dementia praecox type of reaction, although they may not all appear in the same way in every case·

1. Seclusiveness and withdrawal from reality, or, as Kanner (1935) suggests, "a more or less complete disregard of life's actualities and their subordination to, and interweaving with, dream-like, fanciful, disconnected or loosely connected ideas and experiences."

2 Emotional blunting, indifference to environmental stimulation, silliness.

3 Discrepancies between thought, moods, behavior and emotions There may be little or no relation between reported ideas, e.g., of great suffering, and the behavioral reactions.

4. Development of peculiar trends, often fantastic ideas, with odd, impulsive or negativistic conduct not accounted for by any acute emotional disturbance or impairment of the sensorium. These may be suspiciousness, hypochondriacal complaints, ideas of reference, feeling of being influenced by mysterious powers, etc In spite of delusions the patients are usually well oriented.

5 A change in verbal and motor activities. Verbalization becomes incoherent and irrelevant; new words are invented by mutilation and condensation of ordinary vocabulary, and unrelated words are strung together in the so-called "word-salad," an excellent example of which is the following from Conklin (1927):

> "central criminal law services supreme court branches trees great authority by verdict conduct criminal law of the supreme court on the branch trees had for the control of prosecutors who was consider of service by crimes so many convicts, etc"

Campbell (1925) summarizes the schizophrenic picture thus: "The schizophrenic type of reaction seems to be characterized by diminished interest in, and adaptation to, the work-a-day world, increased interest in subjective creations or fantasies which are emancipated from the control of ordinary logical or scientific thought, the frequent occurrence of hallucinations, odd and fragmentary behavior and utterances of little adaptive value in relation to the present situation."

It is customary to distinguish four types of dementia praecox according to the prominence of certain symptoms.

1. *Paranoid*—This form is characterized by delusions, frequently persecution or grandeur, which are apt to be bizarre and not well systematized, together with hallucinations, especially of an auditory nature. Strecker and Ebaugh (1935) say that "a predominantly homosexual component or fixation at this level of development appears prominently in this group" According to Kanner (1935), this form rarely starts before the third decade of life.

2 *Hebephrenic*—Conklin (1927) says that in this type "dilapidation of thought is the outstanding feature." The symptomatology includes silly behavior, grimacing, laughing and crying spells with no observable cause, violent anger, peculiar mannerisms, changeable de-

lusions. Conspicuous silliness in thought and action is the outstanding characteristic This form is the most common one in adolescence or at younger ages.

3. *Catatonic*—Here the outstanding symptoms are motor; they may be evident in either a stuporous or an excited phase. In the former the patient may assume and maintain a given position, often extremely awkward, for periods of a few minutes to weeks, he may show resistance to passive movement or hold any imposed position—the passivity to imposed motion is of such a nature that it has been called "waxy flexibility" or "lead-pipe rigidity." Blau and Averbuck (1936) report a condition of this type in a child of three years. In the excited phase there may be stereotyped movements automatically repeated (echopraxia) or automatic repetitions of sounds (echolalia), or there may be occasional periods of intense, impulsive activity. This type also occurs frequently at younger ages.

4 *Simple*—The simple deteriorating type is most insidious because its onset is gradual and it is not marked by any unusualness The patient gradually becomes apathetic, loses interest in his environmental contacts, becomes sullen and withdrawn or irritable and obstinate, and as the condition progresses he becomes more and more self-absorbed The course of the condition is not marked by observable delusions or hallucinations, although there is often more or less peculiar behavior.

These descriptions of schizophrenic reactions are those usually given for the condition in late adolescence and in adults However, essentially the same picture is seen in younger children. The differences are summarized by Potter (1933) thus· "Because of the fact that the child is limited in his verbalizations and the fact that his thinking is in the direction of concreteness rather than abstraction, what little delusional formation there is, is exceedingly simple and naive. The outstanding symptomatology is found in the field of behavior and a consistent lack of emotional rapport."

Ssucharewa (1932), from a study of 107 cases seven to seventeen years of age, distinguishes a simplex type of schizophrenia occurring more usually in younger children and rarely in adolescence. In this he says that normal childish activity and affective contact with the environment suffer first There is a lack of interest in or motivation toward various activities. Thinking becomes formal and vacuous. Imperfect unification of mental functions is an early sign. Tendencies

toward automatisms and stereotyped behavior appear and later hebephrenic and catatonic traits, the latter being more frequent in children

The following cases illustrate dementia praecox in children.

Case Number 51 (I U Psychological Clinic. I—4162) Jane M., white, female, C A 16-10 at time of admission to the James Whitcomb Riley Hospital as an out-patient on October 22, 1935. Complaint was loss of weight, refusal to eat, mental disturbance.

Family and personal history Patient was a full-term, normal delivery baby She was apparently in good health until the age of nine months when she was weaned and it was difficult to find a formula which would agree with her She talked at ten months and walked at fourteen months She has had measles and whooping cough with good recovery. At the age of three, a chronic constipation resulted in prolapse of the rectum for which she was operated on at home She has always been anemic, under-weight, and under-size for her age She graduated from grade school and completed the first year of high school.

She has always been her mother's favorite child, while her four younger brothers have been the father's favorites Her mother has always waited on her, she has never had to help with the housework, even to the extent of keeping her own room clean As will be shown subsequently, she refuses to accept any responsibility in relation to her home

The father has always been somewhat unstable During his college career, his parents died and he was left with a small estate For the remainder of his college years, he was an easy spender, with the result that after graduation he found himself with very limited funds His occupational history shows frequent changing of positions, although usually he had a good income. His last regular job was as a bond salesman which he lost early in the depression in 1930.

The mother's reaction to the family's changed financial position was a complete "giving up" She lost all interest in everything and let her home become very untidy and run-down. The only exception to this was her care of Jane's room which even at their worst period was always neat and well kept. The girl accepted this special attention as though it were due her.

The father reacted to the changed economic situation by becoming even more unstable and alcoholic His alcoholism was fairly chronic, with occasional debauches, in at least one of which he threatened to shoot the whole family

First hospital admission: From August to November, 1933, the patient had an attack much like the complaint for which she was admitted at this time. In this period she was a patient at St. Vincent's Hospital where she was treated for her malnourished condition and was discharged as improved, although there was no change in her mental condition. She started to school in November, 1933, but did not do well that year. In July, 1934, her illness returned about one week before returning home following a five-week visit with friends in the country. She apparently enjoyed the first five weeks of the stay. During the last week of her visit she would not eat or sleep. After returning home her mother noticed that she did not eat well, and slept mostly during the day and not at night. At times she would imagine things which were not true, e g., she imagined a friend of hers was visiting across the street and told her brother to escort her home When she first returned home from her visit she had a violent dislike for her father She would not eat with him. She once threw her clothes in the middle of the floor and told her mother to get rid of them She told her mother to get rid of a lot of things and among these to start with her father. This continued for about two months. In October her appetite improved slightly; she had no depressions, but was very apathetic and just sat or lay around at home. She was admitted to the hospital in November, 1934.

1 Complaint—General apathy and melancholia, loss of appetite, weight, and sleep.

2. Findings—Malnutrition associated with mental disturbance characterized chiefly by melancholia Loss of weight and capricious appetite. Failure of beginning menstruation, but secondary sex characteristics developed, e.g , some mammary development and pubic hair.

3 Diagnosis—[illegible] type

4. Progress ar [illegible] atient was given thyroid extract, grains ¼, two times a day, and was given antuitrin-S 1 5 cc daily for fourteen days, allowed to rest fourteen days, and then repeated She showed some improvement under hospital regime. An attempt was made to clear up the family difficulty, while the social service found a home for her to which she was furloughed January 3, 1935.

History between admissions: Shortly after her discharge, a foster home was found for her. The foster mother agreed to keep the girl because she was interested in seeing what could be done. After a few weeks, this foster mother discovered that Jane had wheedled the maid into spending several hours each day fixing her hair and dressing her. Jane also refused to conform to the family meal hours and other simple rules which the foster mother required of her own daughter. When

spoken to about her attitude, Jane's response was that she did not have to obey any rules as the foster-home mother was getting paid for keeping her. This condition became so severe that she was returned to her own home. Jane returned to school, but was still only a sophomore In October, 1935, following an embarrassing episode in the classroom, she went home and refused to return to school. A few days later, she refused to eat; and two days after this, a neighbor brought her to the out-patient pediatric clinic at Riley Hospital. Here the chief complaint was under-nourishment, loss of weight, and a continuous tired feeling When questioned on this visit the girl was extremely withdrawn and did not respond. From this clinic the girl was referred to the Psychological Clinic where she was seen on October 25 In the examination at this time, she was much more alert and seemed perfectly willing to answer questions The only significant factor elicited was that she apparently disliked her father The conclusion was "a withdrawn type of personality with complications due to vile home conditions" She had been staying for a few days with the neighbor who brought her to the Clinic, but this lady was unable to keep her any longer For this reason she returned to her own home while the social service agency, which was interested in her, undertook to find some means of removing her from the home.

It was finally decided that the girl should be sent to a private Catholic girls' school By the time arrangements had been made, it was only a few days before the Thanksgiving holidays of this school, therefore, on November 22, 1935, the girl was admitted to the Rotary Convalescent Home at Riley Hospital to stay until after school started At the present writing (April, 1936), the girl is still in the Rotary Home Progress notes from the Hospital records "Shortly following her admission, the girl became severely depressed and withdrawn She also developed some paranoid ideas, for example, she developed antagonism toward every physician or psychologist who tried to talk to her, and when luminal and hot milk were prescribed she refused to take them because she said they were trying to poison her She was given orange juice at meals and refused to drink that because she thought it was poisoned." About the middle of December, Dr Jerry W Carter, Jr, of the Psychological Clinic Staff was able to contrive an accidental meeting with the patient and established a satisfactory rapport While her condition at this time would not permit much psychotherapy, in the course of the next two months she cleared up sufficiently to make it possible to lead her into some insight into her mental condition and provoke an interest in realities. On January 24, 1936, Dr Rogers Smith prescribed manganese chloride intravenously While the

girl had begun to become somewhat more clear before this, after the medication and continued psychotherapy improvement was rapid. The daily notes of the nursing staff indicate constant improvement

The last time the patient was seen by Dr Carter previous to the writing of this account was on March 21, 1936. At this time, he commented upon her remarkable progress and made the following notes "She sleeps well, eats well, and has developed a keen interest in the social activities of the Rotary Home She attempts to help the other patients, seems happy, and resigned to not going home for a year or two. She takes an active interest in her school work and things in general She has, to all appearances, abandoned her withdrawn type of behavior and gives promise of a return to normal; however, I feel that, due to the fact that she is still unwilling to face in conversation her past history, the improvement is apt to be temporary. The patient's emotional disturbance has probably not been displaced by a more hygienic reeducation of her emotional life"

Case Number 52 (Kasanin and Kaufman, 1929) E. H., white, female, age 15, school girl. Admitted to the Boston Psychopathic Hospital May 13, 1923. Discharged May 18, 1923. Diagnosis: Dementia praecox. Reason for admission. The patient was acting peculiarly at home and could not be controlled by her foster parents

Family history. The patient's father was a shiftless, irresponsible individual, mother was a prostitute and had syphilis There is some doubt whether the patient's father was her real father We know that her early environment was quite sordid Nothing is known about the present whereabouts of the father. Mother died at City Hospital when the patient was six years of age.

Personal history: The patient was born in 1908 Nothing is known about her infancy and early childhood. The parents complained about the child, calling her difficult and stubborn At the age of six the patient was taken over by the Home for Little Wanderers on account of her mother's illness. There she was found to be quite cooperative and responded very well to gentle treatment.

From 1915 until 1923 the patient stayed in one family who were extremely devoted to her and, not having any children, treated her more indulgently than they would have treated their own child. From 1915 on until the onset of the present illness, 1923, the patient was visited from time to time by the social worker from the Home for Little Wanderers and we have her notes for this period

In the fall of 1915 the social worker makes a note that the girl is very happy in her foster home, has improved wonderfully in appear-

ance and manner, talks freely and readily to the visitor. She is still shy but not as timid as formerly. Bright in school, affectionate, and likes it very much

Notes in 1916 say that the child is very happy and the foster parents like her very much. She tells her foster parents that she is extremely fond of them and likes them even more than her own parents. She seems to be extremely sensitive and gets all worked up and cries when she receives a little scratch or sometimes when there is nothing at all the matter with her.

Early in 1917 there is a note to the effect that the patient somewhat dislikes her music practice and the school The same year the child asks her foster parents if her name could not be changed to their name In 1918 she resents the visits of the social worker and signs her name with the foster parents' name. In 1918 the teachers report her as a very lovable little girl She is in the sixth grade and has practically all A's.

In 1919 the girl wants to join the church. Still resents the visits of the social worker. She wants to forget that she is a foster child

In the eighth grade in 1920 the patient finds difficulty with arithmetic The school teachers describe her as very quiet and diffident, but sweet-faced and very well mannered

In 1920 when the patient was shown the pictures of her real father and mother the girl asked that these be put away because she wanted to forget all about them. It is only on account of the fear of publicity that the foster parents did not take the step of adopting the girl

Early in 1922 when she was fourteen she was described as an obedient and lovable child. She looked much younger than fourteen and the foster parents used to dress her up as a little girl Late in 1922 she was described as cross and fretty At school she had difficulty with algebra. The foster parents thought that this may have been due to the fact that the patient started to menstruate in August and had suddenly stopped menstruating late in the fall.

The patient was described as an extremely quiet, shy, diffident girl. One of the most marked traits was her complete lack of initiative and no active interest in anything. She would never go out and call on her friends, but if other girls would come and call on her she would go out with them. If she would see another girl across the street she would never go and greet her, but would simply say "hello" in a quiet voice. She was never very affectionate with her foster parents but they surrounded her with affection and carried out all her whims She never stood up for her own rights One day a boy threw her hat up in a tree She simply looked at him and made no protest Noises always

bothered her She hated fireworks and she would not go to a show where there was going to be shooting Even banging of a door upset her.

When the patient was brought here the foster mother gave a very interesting description of the patient's personality. She said that naturally the girl had very little interest in her environment. She had no curiosity and would never ask a question. She never had any interest in her studies and her foster parents spent a great deal of time coaching her She was extremely dependent upon others in her judgment, always hesitating, vacillating, never could make a decision and acted only by pressure from others. She did not seem to be especially imaginative or daydreamy

The patient had absolutely no sense of humor and took everything literally. When criticized she sulked a great deal. She had always been an extremely jealous child She was shy, backward, poor mixer, always staying apart and allowing others to get ahead of her. Her playmates did not stick to her, perhaps because she was jealous She liked to be alone and could not stand any demonstration of affection

The patient began to menstruate at the age of fourteen but she accepted this fact without displaying much curiosity about it. She didn't play with boys at all but occasionally played with girls. She was extremely fond of her stepfather and was in the habit of getting into his bed at night to have her foster father rub her back. Some of the foster mother's friends criticized this procedure, but the foster mother said, "What harm could it possibly do—she is such a pure, innocent-minded child?"

When the patient was in the eighth grade some of the teachers took an acute dislike to her and called her "thick-head." The other children noticed that the school teachers were picking on the girl

About six months before the patient came to the hospital she became peevish, fretty, and began to be more indecisive than previously. She began to forget her lessons and the foster parents had to telephone her schoolmates to find out about the assignment for the following day She began to be more and more undecided about things. She would start to go somewhere and then change her mind. Eventually this became very marked and she would get half way to a place and not be able to decide whether to go on or not. She stood around on the street corners, and was undecided about crossing.

Onset of illness: Three months before admission her work became very poor and she had a row of D's. At school they said that she would not talk or answer questions and that she was found wandering from room to room in an aimless manner and carried her "gym" shoes

under her arm all the time. She didn't know why she carried these shoes. They had to send her out of the room for giggling She began to be extremely slow about everything and in going for walks urged her mother to go slower

The first time the family realized that something was wrong with her was when she insisted on going to school during the Easter vacation She began to eat everything and put on a lot of weight She began to think that people looked funny The patient ran to the looking-glass, looked at herself and said that she felt as if she had more teeth than usual On Saturday night before admission she insisted on going to school and when her father took her out she stopped in the middle of the road and wouldn't go either ahead or back Finally they had to get a nurse to help with the girl as they did not have any control over her. Once she said, "Oh Lord, let me live until I am 38." The family physician was called in and when she saw him she grabbed his genitalia and wanted him to have relations with her. She used the vulgar expression for it She did the same thing with her father. She told the same thing to the nurse, saying to her, "Do it, I don't know how myself" The foster parents were startled by her conduct and consented to bring her to the hospital.

Physical examination. On admission to the Boston Psychopathic Hospital the patient was found to be a well-developed and well-nourished girl in good physical condition. The examination of blood and urine was negative

Mental status She appeared very childish, sulky, but extremely aloof, and resisted examinations She was very unresponsive throughout the whole stay in the hospital. She was absolutely unapproachable and would not reply to any questions, with the exception of saying that she wanted to go home. Once she said that she knew that the whole trouble was her difficulty with her menstruation Her mood was one of fear and apprehension. She said that the people looked at her Hallucinations were not elicited Her intellectual functions as far as could be tested showed no impairment No psychometric examination was done because she was too disturbed

Further course On May 18, 1923, she was transferred to the Westboro State Hospital. There they noted that she was still uncommunicative, seclusive, refused to talk and kept all the time near the door She was obstinate, stubborn, and resistive No delusions or hallucinations could be elicited. On July 14, 1923, she was allowed to go home on a visit and was returned by her parents on September 27, 1923 She seemed restless and appeared to be sick She said, "I am afraid I am going to heaven" The note of December 10, 1923, states that the

patient would keep no clothes on and rubbed food into her hair. She is also very uncommunicative. Six months later she is silly, untidy, foolish, dirty, exposes herself, does not use a knife or fork in eating her food. They state that the patient is deteriorating very rapidly. On October 5, 1926, the patient was transferred to Tewksbury State Hospital by order of the department of mental diseases.

Case Number 53 (Kasanin and Kaufman, 1929). E. C., age 13; female, white, admitted August 12, 1924 Diagnosis: Dementia praecox Reason for admission: Acute confusional state with auditory and visual hallucinations following the death of her cousin.

Family history: Both her paternal and maternal grandfathers were alcoholic. The father is also an alcoholic. The mother suffered from severe headaches Both parents were of low intelligence and did not get along well together. There was a great deal of friction in the family, quarreling and recriminations, the father being an inferior type and a poor provider.

Personal history: The patient was born in Ipswich, Mass., the second of nine children. There was a long and difficult labor She had the ordinary childhood diseases with good recovery. The patient's personality as described by the parents showed that the girl was quiet, shy, sensitive and unduly serious for her age. She was very fond of study, liked to read books and disliked housework. The school authorities stated that she did very well but was a difficult girl to approach She was a poor mixer and seemed always to be worried about conditions at home. Her only interest outside of reading was picking blueberries. This enabled her to earn enough money to buy some clothes. Although sensitive to criticism in school and having few friends, at home she was quite open and frank Her mother felt that she was an odd child, who always wanted to know everybody's business. At times she was quite headstrong, self-willed, and liked to have her own way

Owing to the disharmony at home and the punishment which she suffered from her father when he was drunk, the patient formed a marked attachment to a paternal cousin who was a bachelor

Her menses were not established Beyond the fact that she was not interested in boys, nothing is known of her sex life.

Onset of illness: About ten days before admission, the cousin to whom she was attached died and the patient attended his funeral. On her return home she went to bed, and at about ten o'clock that night she had a crying spell. The father, later in the night, noticed her sitting up in bed. She told him that she saw men on horseback, riding

from pasture to pasture These men were under her window and she had told them to go away One of these horsemen, whose name was Mike Kelleher and who had a shrill, sharp voice, would not leave She also stated that she saw the stove dressed up with a hat on it, but when she looked again the hat was gone. During the following days she would frequently ask her mother to pinch or shake her. "Make me realize, make me realize, something is bothering me, there is something bothering me all the time" The mother noticed that she held her hands stiffly and that both her feet and hands were cold. It was felt by the parents that there was something definitely wrong with her. She remained in this condition for three days. On the third day the patient tried to pull her hair, threatened and actually struck her mother She apparently realized that something was wrong with her and she kept asking her mother about herself On one occasion, prior to her admission, the patient did not seem to notice a girl chum who had come to visit her When spoken to, there would be no reply Patient seemed to be in a daze.

On admission the patient was found to be in good physical condition, well developed and nourished The pupils reacted to light and accommodation, the reflexes were active; blood Wassermann was negative; blood hgb. 95; white blood cells were 12,200. The gynecological examination showed an intact hymen.

Mental status: On the ward the patient was quite cooperative, but somewhat underactive and exhibited little interest in her surroundings She later complained of a sore throat Her stream of talk, although not spontaneous, was relevant and coherent At times she became very talkative She was disoriented for time but knew where she was. Her memory was intact and her intellectual level was normal She denied any delusions or hallucinations when first admitted, but later there were some vague hallucinations when the patient said that she saw flies.

Two weeks after admission she went over the whole situation with the physician At the death of her cousin she became very much upset and, on her return home from the funeral, had a headache, felt feverish and could not eat much supper. When in bed, she felt hot and could not sleep On looking out of the window she heard a dog bark and also the voice of the man already referred to. It was a dark night and therefore when she looked from the window, although she saw someone moving, she could not discern whether it was a man or woman Next day she was surprised that none of the family had heard anyone. She again denied hallucinatory experiences while in the hos-

pital The patient improved steadily and was discharged on September 6, 1924, with a diagnosis of dementia praecox.

Further course: The hospital recommended that the patient should be placed in a foster home, but the mother refused to do this. The whole situation was then taken up with the principal of her high school, who promised his cooperation For the next three years the patient got along very well, except for a few days each month during her menstrual period. At this time she would become excited and talk a great deal. On several occasions it was necessary to keep her out of school. According to the principal, she showed considerable improvement and was quite frank with him in discussing her difficulties. He felt that she was rather easily depressed and that the home situation was responsible for this to a great extent

In July, 1927, the patient obtained a job as waitress in a summer hotel She did very well there until August, when she learned that her sister was ill It was then noted by the manager that she acted peculiarly, was dreamy, erratic, and inattentive at times She wrote a very incoherent letter home On September 7, 1927, the patient returned to a step-aunt in Boston. She was overactive and excited, made a number of silly purchases, which upset her parents At night she roamed about the front room and said that she heard her sister calling her from an automobile. On September 15 she was taken home to Ipswich Her condition was unimproved There was an epidemic of infantile paralysis near Ipswich and patient began to worry, saying that it would kill all the children She gave medicine to all her little brothers and sisters, hung bags and other articles on strings in the windows and spent much time in tearing up pictures. At night she put cold cream on her sister's face. One night, thinking that her father wanted a drink, she threw a pan of water on him while he was in bed. She slept very little and her appetite was poor One day she took a box of matches, saying that she would burn them in Boston. No reason for her actions could be elicited from her and, when questioned, she asked to be left alone

The patient then began to quiet down Several times she said that people were calling her It was noted that she laughed a great deal in her sleep Her appetite improved but she became more and more apathetic and refused to leave the house to go to school. During October she laughed to herself in a silly manner. Frequently patient went upstairs and carried on a conversation as though some other person were present with her On October 17, 1927, she was readmitted to the hospital Her physical examination was negative.

She was pleasant, cooperative but somewhat evasive, and kept her glance directed away from the examiner. No delusions or hallucinations were elicited. On the ward her behavior was at times impulsive, during the staff conference she suddenly jumped up and left the room On several occasions during the latter part of her stay she told the physicians that her brother and sister called her in the night and interfered with her sleep On January 9, 1928, the patient was transferred to Danvers State Hospital. There she was found to be in good physical condition; she was happy, interested, and cooperative, at times quite elated. There was no memory for events leading to her admission The whole experience seemed to her like a dream On February 5, 1928, the patient was discharged to her parents She was left as an undiagnosed psychosis

Since her discharge from the hospital, the patient has made a very good adjustment at home.

Causes—Heredity has been suggested as a cause of dementia praecox in a number of investigations. Barrett, according to Kanner (1935), found "78 per cent of heredity tainting factors in schizophrenia, as contrasted to 67 per cent in the non-psychotic population" White (1929) reports that Wolfsohn found about 90 per cent of 647 cases of schizophrenia showing hereditary taint In contrast to such data as these is the study of Pollock (1918) which found that at least 50 per cent of the dementia praecox patients showed no evidence of unfavorable heredity.

Neural and endocrine pathology have been suggested as causes by a number of investigators. Neural pathology includes cortical degeneration, lipoid changes in cortical layers and the optic thalmus, presence of ameboid glia cells, intra-cellular fat in basal ganglia, calcareous degeneration of blood vessel walls, etc The difficulty with most of the findings is that they are from small samples of material, that reports of different observers do not agree, and that, in some cases, the findings have not been confirmed by other investigators Dunlap (1924), from a careful study, concluded "For us the changes in the brain of schizophrenia are not only inconstant and non-specific but they are such as may be found in any series of control cases; in other words, their significance for the disease process seems to be without importance"

Probably most widely accepted are the psychogenic theories For the psychoanalysts, schizophrenia is a regression, because of conflicts, to earlier infantile and childish stages of development. This is perhaps

a more interesting than useful theory. It requires so much of the impedimenta of psychoanalytic logic that non-psychoanalytically minded psychologists and psychiatrists find it of little value.

A genetic theory, which finds the basic etiologic factors in the ontogenetic history of the patient—such as has been advanced by Adolf Meyer (1906)—has much to commend it on theoretical and practical grounds Strecker and Ebaugh (1935), holding this point of view, say that "evasions of the realities of life by the utilization of hypochondriacal trends, suspiciousness, fault-finding, bizarre religious motivations, marked and pathological stubbornness, brooding, seclusiveness, etc, are prominent in the social maladaptations and life histories of the patients" Kasanin and Veo (1931) believe that personality deviations may be indicative long before any real breakdown is evident. Sanz (1933) says that a schizoid type of behavior appearing in children indicates a predisposition toward dementia praecox. This may develop during or after adolescence if environmental factors enhance the tendency to withdraw. In Case Number 51 from our own clinic there is an excellent picture of at least a possible genetic schizophrenia. This girl has never built habits of independence in dealing with her environment because of her mother's over-solicitude The child has no habit pattern adequate to meet the increase in difficulties presented by the environment because of the changed economic circumstances. She finds an escape in withdrawal which becomes accentuated to the point of a temporary near-stuporous condition. Adequate histories of most dementia praecox patients would probably show a similar picture. The reasons for withdrawing may be varied—lack of independence, environmental requirement too great for the individual's habit patterns, lack of companionship in early years, and the like—but once started and allowed to continue over a long period of time, the stage is all set for the entrance of the extreme withdrawal called schizophrenia.

Diagnosis.—The description of the symptomatology given above outlines the conditions upon which a diagnosis of dementia praecox may be based However, a final diagnosis should not be made on the basis of symptomatic picture alone. It is necessary also to have a rather complete history of the patient's earlier life experiences.

On the basis of symptomatology it is necessary to differentiate between schizophrenia and manic-depressive psychosis. Differential diagnostic points may be summarized thus:

Schizophrenia	Manic State	Depressive State
[illegible]		Depression evidenced by subjective feeling of sadness Observer would recognize the patient's behavior as melancholia
Excitement may be present but shows no evidence of being connected with the environment	Excitement in fairly close contact with immediate environment Prevailing mood appears genuine	
In both of the above affective states there is a lack of agreement between mood and thoughts	In the manic-depressive there is rather close agreement between mood, thought, and action	
General behavior is odd, silly, irrelevant. Incoherence in thought	Flight of ideas, over-activity, over-verbalization.	Slow activity and thought Under-activity
Delusions, unsystematized, usually of grandeur or influence	Expansive ideas corresponding to the elation	Self-condemnation corresponding to depressed state
Hallucinations usual Insight usually absent	No hallucinations, may be insight	Hallucinations rare Usually insight

Evaluation of factors in the patient's history should always be used to support, and often to establish, the diagnosis The schizophrenic's history shows frequent attempts to escape difficulties, flight from reality, withdrawing from social contacts, and the like The pre-psychotic personality is introverted, asocial, and schizoid. In contrast, the manic-depressive history shows alternating periods of elation and depression, and the pre-psychotic personality type is extraverted, social and cycloid

Treatment.—There has been a widespread feeling that the prognosis in dementia praecox is always poor; as Strecker and Ebaugh say, it "has become somewhat synonymous with hopeless chronicity." While the condition is still one of the major mysteries of psychiatry, the modern genetic view of the etiology promises a great deal more favorable prognosis

If therapy proceeds on the basis that the psychosis is a culmination of a long history of personality distortion, then prophylaxis must be considered the major weapon. The child exhibiting a shy, withdrawing behavior must be dealt with in such a way as to facilitate the develop-

ment of more social, more externally directed habit patterns. As we have said earlier, this will require the cooperation of a harmonious home If the family situation is strained, if one or both parents is over-solicitous, if discipline is too harsh, if there is favoritism for one child, if there is destructive competition between siblings, if the child is not allowed to build independence, if he does not have companions of proper age and sex, or if there is any other psychologically undesirable circumstance in the home, it must be corrected. Without home cooperation little can be expected, and it may be necessary to remove the child from the unsatisfactory environment.

Direct treatment of the child by the clinician, the members of the home, the nurse, the social worker, or others, is necessary. The essential point to be gained is an objective meeting of the environmental realities Companionship is necessary, and such companionship must include the possibility of bringing friends to a home of which the child is not ashamed. Discipl[illegible] be tempered with explanatio[illegible] responsibility within the limits of his abilities and experiences. Reading and academic activities should be supervised, at least to the extent of limiting the fantastic and unreal.

If the child has progressed to the stage of an imminent or actual psychosis, therapy is more difficult, but the aim must still be the objectification of reality. Every advantage must be taken of the child's interests, abilities, and early experiences as gleaned from the history. He should be encouraged to tell his story to sympathetic ears. The unreality upon the edge of which, or in which, the child is, cannot be dismissed abruptly. Rather, the clinician must take advantage of every possible contact with environmental realities shown by the patient. Building confidence, suggestion, and persuasion are useful. Active participation in group games, outdoor activities, occupational therapy will all help to establish better contact with reality. Because it is often difficult or even impossible to make contact with these patients, especially after the disease progresses, psychotherapy is difficult For this reason, if for no other, the earlier in the course of the condition that therapy is undertaken the greater are the chances for a successful outcome.

Medical therapy and management in hospitals are beyond the scope of this book Strecker and Ebaugh (1935) briefly outline certain attempts at drug therapy which are necessary in dealing with certain

symptoms, but are probably not of great significance in efforts to correct the whole psychotic condition in most patients. Hospital care is usually necessary for advanced cases. The data of the U S Bureau of the Census (1935) show that in 1933 there were 48 dementia praecox patients discharged per 100 admitted Of these, only five were recovered, thirty-three were improved and ten were unimproved This rate of recovery was smaller than for any other psychotic type except those with definite organic pathology, and the rate of discharged but unimproved was the highest in all groups. The figures for 1932 show essentially the same thing. These data may well be interpreted to mean that the prognosis for a case so far advanced as to be hospitalized is poor Committing children to the state mental hospitals is probably poor procedure. Malzburg (1931a) by a questionnaire study found that only four of forty-one state hospitals had any facilities for the special care of children. A few others made some effort to keep children separated but had no adequate facilities

Dementia Infantilis or Dementia Praecocissima.—In 1909 Heller published a report of six cases showing a demented condition to which he gave the name dementia infantilis. De Sanctis (1906) a few years earlier had described a case with a similar clinical picture, which he called dementia praecocissima. These conditions have been thought by some to be associated with dementia praecox, but evidence does not support such a view By 1930 probably not more than 50 or 60 such cases had been reported The condition is described by Zappert (1922) and Heller (1930) thus: Normal or apparently normal mental development until the third or fourth year; then speech disturbances appear and progress until there is no spontaneous speech Understanding of language heard is impaired; attempts at teaching completely fail Course progresses until there is complete dementia closely comparable to idiocy The facies remain normal appearing, and there are no physical or neurological concomitants. Heller was able to observe some of his patients over a period of years, and found their behavior and abilities comparable only to those of idiots. De Sanctis reported the intellectual deterioration but also found catatonic symptoms and emotional blunting.

Heller in 1930 says that the condition has nothing to do with schizophrenia. It is a regressive process the origin of which is completely obscure. De Sanctis (1925) mentions three factors of probable etiologic

significance: (1) hereditary predisposition, (2) acute or chronic toxic diseases, and (3) factors inherent in the child's development

MANIC-DEPRESSIVE PSYCHOSIS

The psychotic type which has the second largest number of cases is the affective or manic-depressive psychosis This condition is characterized by disturbances in moods, feelings, or emotions, rather than in the intellectual realm. Included under this head are the apparently opposed behavior patterns of mania and depression Jelliffe (1931), in an excellent brief historical sketch, outlines the changing attitudes toward these patterns from the time when they were thought of as separate and distinct, to the classic interpretation of Kraepelin, who, from his painstaking and elaborate analysis of clinical material, saw the essential relationship between these two patterns and the affective life. Following Kraepelin, three types or phases of this psychosis are usually distinguished the manic phase, the depressed phase, and a mixed type Each of these in turn may be subdivided.

The *manic phase* is marked by a general acceleration of all behavior, together with a more or less pleasant emotional state Depending upon the degree of excitement, this phase has three degrees. (1) *Hypomania,* in which the facial expression is gay, animated and happy, conversation extremely animated, writing large with much underscoring and other signs of emphasis, all reactions quick, thought flowing swiftly but erratic and bizarre. There is increased good humor, boastfulness, self-assertion, the patient declares he never felt better; he is capable of enormous amounts of work, he has great schemes and discoveries. Henry (1925) well summarizes this "In many ways this condition resembles the first stage of alcoholic intoxication" (2) Manic condition, or *acute mania,* is an exaggeration of the same symptoms The thinking is so accelerated that speech may be confused, and ideas incompletely expressed, there is a "flight of ideas" Talk and motor activity may be vulgar, profane, and vicious Illusions and hallucinations may be present, but delusions are rare and when present are temporary and unsystematized Motor activity is greatly increased, sleep is irregular. Attention and discrimination are poor, so that the patient may at times appear to be disoriented. (3) In *hypermania*, the most extreme condition, the overactivity may be so great that sleeping, eating, and all regular activities are seriously interfered with and the patient may become exhausted. Talking is continuous, clothing is torn

and discarded, destructiveness and violence are common Increased distractibility leads to confusion so that illusions and hallucinations are more frequent.

In striking contrast to the behavior just described is that seen in the *depressive phase.* Here again there is a clinical division into three phases: (1) *Mild depression* is little more than a prolonged "blue spell" The patient is sad, he lacks confidence in himself, he is beset with doubts and fears, and motor activity is decreased, as are talking and initiative. There may be physical complaints for which no organic basis can be found The patient may avoid social contacts His ordinary daily activities are performed with difficulty. Suicidal thoughts are common and there may be attempts at suicide. (2) *Marked depression* is an exaggeration of the above behavior The depression is more profound; lack of confidence, doubts and feelings of unworthiness may become fixed Hypochondriacal ideas become more extreme and often the depression is blamed on poor health Loss of appetite, constipation and sleep disturbances are frequent These patients are apt to attempt bodily harm to themselves and suicidal attempts are common. (3) *Stuporous depression* is so extreme that behavior and thought are practically at a stand still Conversation is monosyllabic, expressed in a low tone, or there may be mutism The patient's attention cannot be attracted nor his interest aroused, consciousness is clouded, there may be hallucinations and illusions. There may be a complete loss of ability to carry out daily needs, such as feeding and elimination, so that the patient has to be fed and cared for

While it is clinically convenient to speak of three degrees of both mania and depression, it must be remembered that they are merely differences in degree and that it is impossible to draw a sharp dividing line between them. It must also be remembered that, while the deviations from the normal occur in the affective field, there are deviations in the ideational and motor fields as well. In mania emotional, ideational, and motor reactions are all increased, whereas in depression all three are decreased.

The mixed states—those which do not conveniently fall into either of the foregoing—may be thought of as various combinations of decrease and increase in the three arbitrarily selected functions Although he may have carried his classifying too far, Kraepelin lists the following six chief types of mixed states:

1. Maniacal stupor
2. Agitated depression
3. Unproductive mania
4. Depressive mania
5. Depression with flight
6. Inhibited mania

The diagram in Figure 16 illustrates, in probably an over-simplified way, the direction of deviation in the affective (A), ideational (I), and motor (M) fields From a dynamic point of view it is impossible to consider these three functions as varying independently, but some

	decrease ← normal	normal → increase
Mania		A I M
Depression	A I M	
Maniacal stupor	I M	A
Agitated depression	A	I M
Unproductive mania	I	A M
Depressive mania	A I	M
Depression with flight	A M	I
Inhibited mania	M	A I

Figure 16 —Manic-depressive Psychosis Types
(A = affect, I = ideation, M = motor)

such scheme is convenient in classifying clinically observed varieties of behavior in this psychosis

These descriptions of the conditions in affective psychoses are based on clinical findings in adults. In children the pictures are essentially the same, although they may not be so clear cut Kasanin (1931) gives the clinical picture of mania in children as "mild elation, over-activity, inability, and a push of speech," and of depression as "withdrawal, undertalkativeness, general retardation, and occasional refusal of food"

The following cases are illustrative

Case Number 54 (Kasanin, 1931). M. M, male, white, school child, age twelve, was admitted to the Boston Psychopathic Hospital November 7, 1928, discharged to relatives on November 16, 1928, readmitted on the following day and discharged on December 20, 1928 Hospital numbers, 29738 and 29801

Chief complaint For the past two years the patient has been over-active, unstable, and has spoken about hearing voices.

Family history The grandparents were stable, normal people The

father is a conscientious, intelligent person, a good provider, and a steady worker The mother is an unintelligent, unstable person, very much preoccupied with her own health Most of her conversation is about her own illnesses as well as the illnesses of her children She is extremely fond of operations. She talks a great deal about incidental, unimportant subjects

The patient is the third of three children. The oldest boy is somewhat peculiar and the boys call him "Baldy McNutt" He is inefficient and has difficulty in keeping jobs The sister is sixteen. She is mentally deficient and stays at home with her mother.

Personal history Patient was a full-term baby and delivery was normal.. Developmental history is negative. As a boy he had the usual children's diseases with good recovery. He began school at the age of six and was promoted regularly until he reached the fifth grade, which he had to repeat. He was an earnest pupil but his work was not very satisfactory.

Since the age of three the patient has been looked upon as a nervous child He was restless, twitched a good deal, and had night terrors which interrupted his sleep When five years of age he had periods of nocturnal restlessness and would often be found roaming about the house at all hours of the night Sleep-walking and sleep-talking were prominent symptoms at that time

The family always lived in a rural section. The boy had to play by himself as there were no other children around On a few occasions, when he had an opportunity to play with other boys, he did not get on well with them and did not seem to know how to play. He complained that the other children were rough with him and sometimes cruel When with the other boys he was always subdued and humble With adults he was quite the opposite: talkative, boastful, and pretentious He was always extremely active and used to take long hikes all over the neighborhood so that his mother could never find him when she wanted him.

Present illness Although the boy has always been a problem child, it is during the past two years that he has been an increasingly difficult problem During these last two years he has had periods when he has seemed to be oblivious to his surroundings He has seemed to be preoccupied with his own thoughts, to which he responded in various ways, usually by talking to himself and by laughing He has been annoying everyone at home by spending a great deal of time holding long and detailed dissertations on minor incidents which came up during the day He has been very fond of playing practical jokes on the neighbors, jokes which annoyed them a great deal One of his

latest pranks has been to go about the neighborhood using the telephones to call up different people in the vicinity, give his name as "Mr Pea Coal," and ask them if they would care to buy some apples from him at a ridiculously low cost. If the person accepted the offer, he would laugh and then hang up the receiver He did this so many times that the neighbors complained to his mother.

For two years the patient had been treated in the State Habit Clinics where it was noted that he was very often garrulous and minutely circumstantial. At times there was marked distractibility, with a flight of ideas. There have been times when the patient has shown a clinical picture of an affective disorder with its pressure of activity, impulsiveness, facetiousness, elation, etc The boy was given psychological tests in these clinics which yielded an I Q. of 78. This score was not felt to be representative on account of lack of concentration and the overactivity of the patient

On admission to the hospital, the boy was found to be in good physical condition He had a marked left internal strabismus. Examination of blood and urine was negative.

In the ward he was restless, overactive, and would not stay in bed While talking to the examiner he was moving his hands and feet and was sliding about the floor. He was distractible and wanted to touch everything with his hands He was very often impulsive, jumping around and grimacing He was extremely overtalkative, constantly asked questions, interrupted other people when they were talking, and conversed freely about various subjects. His mood was quite variable. He seemed to be very happy most of the time When asked about visions, he said he saw a vision of a man who stood at his bedside and then disappeared. He thought it was the devil in disguise. He said that he heard voices that said, "Hello." He also complained that the boys made him the butt of their jokes.

The boy gave a good account of his life and described vividly the situation in his school. He complained that the teachers punished him and that the other children used to tease him He admitted autoeroticism since the age of five, taught him by another boy At school he used to get permission to go to the toilet several times a day in order to practice this habit He also said that he indulged in various sex games with boys and girls, attempting "fellatio" and "cunnilingus" When he was about five years of age he slept with his little sister and they occasionally tampered with each other sexually. The boy's grasp of general information was good and he seemed to know that he was different from other boys.

During his stay in the hospital the patient remained extremely,

active and talkative. He took a great delight in speaking about his experiences, which were varied and numerous. He said that he saw visions of clocks and that the hands of the clocks were spirits He spoke of a fear of being observed in handling his genitalia. It was noticed that the patient was hopping a good deal about the ward. He explained this by saying that he had imaginary lines in his head which he could see on the floor and that he had to step over these lines although he knew they did not exist

In December, 1928, the patient continued to be extremely overtalkative, overactive, and spontaneous, with a complete lack of inhibitions. He was aimless and impulsive

While in the ward, the patient contracted a slight infection of his big toe. Instead of trying to get rid of the infection, he interfered with the treatment so as to get another infection which he thought would give him additional prestige and attention

On December 20, 1928, the boy was transferred to a state hospital

On admission to the state hospital he was restless, and his conversation went from topic to topic He was on the go most of the time. He looked distinctly "odd," much older and more sophisticated than his age. His conduct showed a great deal of variability and included overtalkativeness, mischievousness, a good many silly tricks, and, at times, preaching and talking to himself It was quite apparent that the child had a very striking imagination. It was also noted that after some excited periods, the child tended to run a mild fever, ranging from 100° to 101°, which quickly subsided when he rested in bed

Since the patient has been in the state hospital he has been at times very overactive, with a typical manic drive He has spoken a great deal about the difficulty he has had with sex He also has admitted hearing voices and seeing visions It is interesting that on language tests the boy achieved a rating of eleven years, while on performance tests he received only a seven-year rating.

I saw him at the state hospital late in the summer of 1930. He was rather a tall, gaunt boy for his age, very erect His talk sounded like an imitation of some of the New England dialects He seemed more mature and serious than other boys of his age, but there was a certain stiffness and apathy in his appearance The loss of spontaneity and vivaciousness, which were so characteristic of the boy before, was quite striking.

He spoke at length about his home and discussed, in detail, the family affairs. He did not seem to be especially anxious to remain at home and said that he was quite satisfied with the present arrangement whereby he spends about half of his time at home

On first admission to the Boston Psychopathic Hospital the diagnosis was undiagnosed psychosis. When the patient was readmitted the diagnosis was changed to dementia praecox, whereas in the state hospital the diagnosis is psychosis with psychopathic personality This variation in diagnosis is partly due to the fact that although the clinical picture in this hospital was one of an affective disorder, the fact that the child was quite different from an early age, and the fact that there were possible hallucinations, made one think of other diagnostic possibilities

Case Number 55 (Kasanin, 1931). A. R, male, age twelve, school boy, white, admitted to the Boston Psychopathic Hospital February 2, 1926. Discharged February 9, 1926, to a state hospital. Diagnosis Manic-depressive, depressed Hospital number, 24835.

Chief complaint. The patient was sent to this hospital because for some time he had been depressed and apprehensive

Family history. The patient's grandparents were French-Canadian farmers, and were healthy, sturdy people. A paternal aunt suffered psychosis following the birth of a child. Patient's father was an artisan, and came to America at the age of twelve From 1910 to 1917 he was in several state hospitals in Massachusetts where his condition was diagnosed as dementia praecox

The patient's mother was treated in 1916 in the out-patient department of the Boston Psychopathic Hospital At that time her diagnosis was psychoneurosis with a question of early general paresis. The patient's father is said to have died in 1919 when the patient was six years of age

The patient is the third of four children The older brother was treated for neurotic symptoms in an out-patient department of the Cambridge Hospital

Personal history· During the pregnancy the mother was quite depressed and run-down. The patient was born February 15, 1913 Birth and early developmental history were normal. When he was two years of age he was at the children's hospital because of infectious diarrhea The blood Wassermann tests were at times positive, at other times doubtful or negative. The patient was treated in the syphilis clinic at various periods until 1922

As a child he played normally with other children and was a very friendly youngster He loved outdoor sports and played very actively He played with boys who were smaller than he He also liked to play with his toys in the house.

In school his progress was not very satisfactory. He had no ambition

and did not care to do his work. He stood fairly well in his studies although he had some difficulty with arithmetic.

The patient masturbated until the age of six; then his mother told him that it was bad for his soul, bad for his body, and a mortal sin He gradually stopped the habit Between the ages of five and seven there had been some sex play with a little girl

He was quite sensitive. He had a level temperament, was sociable, made friends easily, was energetic and lively. He was not a daydreamer but was fond of reading fairy tales He was adaptable and got along well with other children and with his teachers. He liked to make things with his hands. The mother was very religious and the patient also seemed to be very religious and went to mass every morning There has always been a great deal of pressure to see that the patient should go to church frequently

Since early childhood the patient had been in constant dread of his father who at times came home and threatened their lives. The patient and the other children in the family were constantly afraid that the father might escape from the hospital A year before admission the patient was boarded out by the family for economic reasons The patient was always extremely devoted to his mother

Present illness In September, 1925, the patient entered the House of the Angel Guardian. He bore the separation from his mother and the family with great difficulty He was dissatisfied and lonesome. In January, 1926, he was unusually quiet and complained to his mother that he was always being watched and that the boys were teasing him This was probably untrue. On January 30, 1925, the patient went to confession, but on the following day he cried and asked permission to go to confession again. The same thing happened on the following day The confessions did not quiet him; he was crying and afraid He had pilfered some grapes and candy, and apparently it worried him a great deal. When he was before the priest he was bashful and could not say anything On February 1, 1925, he was brought home and put to bed. He seemed tired, slept for a while, and appeared to be thinking He called his mother, told her that he was afraid, and that he was not pleasing God because he was stealing things. On February 2, he did not want to get up When his mother decided to take him to the hospital he acted as if he were drunk He drooped his head between his shoulders, leaned against his mother and complained of sickness. He walked slowly, dragged his feet and was very frightened

On admission to the hospital the boy was found to be in good physical condition. A thorough neurological examination was impossible

on account of lack of cooperation. An examination of urine and spinal fluid was negative

In the ward, he was anxious and depressed His eyes were filled with tears, yet he refused to answer any questions He was preoccupied and at times almost stuporous. When the topic of taking the candy was discussed, he showed signs of deep emotion. It was impossible to say definitely whether he had or had not odd ideas or false sensory impressions. He cooperated very poorly in the examination of intellectual functions. The patient stayed in the hospital seven days, and a few days after his admission he became more cheerful and began to take some interest in some of the ward activities.

On February 9, 1926, the patient was committed to the Westborough State Hospital. He was quite weak and complained of a severe headache which followed the lumbar puncture at the Psychopathic Hospital He was quite indifferent at first, but after a while he became more cooperative with his physicians. The hospital record states that the patient had auditory hallucinations on admission, but these gradually disappeared and the patient admitted that they were his imagination. The patient got along so well in the hospital that six weeks later, on March 29, 1926, he was discharged to his family.

The family sent the patient to some relatives in Canada for a short visit In the fall of 1926 he was sent to an orphanage school in Lowell because there were no facilities to take care of the boy at home. He was taken back home in the spring of 1927, and placed again in public school. He did well in school but at home he was frequently dreamy, seclusive, and disobedient. The mother was very strict with him and would not allow him to go out with other boys. During the summer of 1928, the mother put him to work as an errand boy He was disinterested in his work and used to skip off to the movies quite frequently For this reason he lost several jobs. He continued with school in the fall of 1928. At home he was very stubborn, disobedient, and kept away from the rest of the family In the winter of 1928-1929, the boy became very much interested in sex. He began to peek into the apartments of neighbors, watched girls dress, etc. He was quite an enigma to his family and never told them anything about his interests or aspirations. He did not even speak about the movies which he frequented a great deal. In April, 1929, the boy stole an automobile, and because he had been a patient before at the Psychopathic Hospital, the court sent him to the Psychopathic Hospital for examination.

The examination at the hospital showed a tall, lanky, well-developed young boy in excellent touch with his environment. His mood was quite appropriate and he showed no evidence of any off ideas or

hallucinations. He was discharged back to the court, placed on probation, and since that time he has been working out of town, apparently getting along quite well.

It is interesting that, while at the Psychopathic Hospital the diagnosis on first admission was manic-depressive, depressed, the diagnosis at the State Hospital was dementia praecox, hebephrenic The latter diagnosis was made on account of the hallucinatory experiences of the patient. In a case like this it is extremely difficult to unravel all the components which may have contributed to the patient's illness—poor heredity, congenital lues, extremely narrow religious upbringing, a rather special personality, and, finally, extremely serious environmental stresses

Causes.—Direct inheritance, or at least heredity of predisposing somatic factors, has been advanced as an important etiologic factor In Table LXIX a few percentages of nervous and mental diseases in

TABLE LXIX —PERCENTAGE OF MANIC-DEPRESSIVE CASES HAVING NERVOUS AND MENTAL DISEASES IN DIRECT ANCESTRY OR IN COLLATERALS

Author	No of Cases	Per Cent
Farr, Schwartz and Smith (1930)	100	36
Farr, Sloane and Smith (1930)	100	40
Matz and Willhite (1931)	199	45
Strecker, *et al* (1931)	100	40
Sunner (1922)		44
Bonner (1931)	100	50
Lewis and Hubbard (1931)	96 (Negro)	45

the families of manic-depressive patients are given. These figures include not only those patients whose immediate families showed an abnormality but also those where the abnormality was in grandparents, aunts, uncles, and cousins Possible hereditary factors are found in certainly not more than half the manic-depressive patients One must also keep in mind the question raised by Strecker, *et al.* (1931), from an analysis of their data, as to whether the transmission is a true heredity or whether the condition might not result from close association of the child with parents or others.

Studies in the fields of anatomic and physiologic pathology have not been unimportant, but they have not, as yet, yielded any very consistent or definite etiologic suggestions. The remarkable association of the pyknic type of body build, with its probable endocrine associa-

tion, and a manic-depressive psychosis definitely suggests that constitutional factors may be of importance.

Psychogenic factors, whether or not they rest upon constitutional ones, are of undoubted importance In this group may be included both pre-psychotic personality and immediate precipitating factors. The manic-depressive in his pre-psychotic personality make-up is more commonly an extravert, in contrast to the schizophrenic who is oftener an introvert. Another frequent characteristic make-up is the cyclic type of changes in mood. The patient changes for no apparent reason from depression and moodiness to elation and a feeling of expansive well-being. This changeableness has given rise to the term cycloid personality, as distinct from the schizoid or split-off type of personality These individuals customarily react to environmental stimuli with excessive emotion; they are submerged in grief at the loss of a friend or relative and are equally carried away with joy or elation on the receipt of good news. Henry (1925) suggests that such reactions are chiefly due to unhealthy habits formed largely in early home adjustments White (1929), in explanation of this psychosis, says that the patient tries to escape his adjustment difficulties by a "flight into reality," i e., by excessive activity which hides the true difficulty If such a flight fails the patient is overwhelmed with remorse.

The precipitating factors may be many and varied. Deaths in the family, business worries, accidents, disappointments, or other trying and severe emotional experiences are not, in themselves, sufficient to cause a psychosis. But with the individual who has long tended to react with excessive affect to environmental stimuli, and who may have succeeded in inhibiting such reactions, more or less adequately, for a long period, an especially severe experience may, and frequently does, act as a precipitating cause of a psychotic reaction Bonner (1931) found the following five groups of precipitating factors in a study of adult manic-depressives. friction and discord in the family, difficult financial situations, recent death in the family, serious anxiety for a member of the family, disappointment in love affairs Kasanin (1931) found the precipitating factors in his small group of children's cases to be trivial

Diagnosis.—In a previous section (page 535) we have given an outline of the chief criteria for a differential diagnosis between schizophrenia and manic-depressive psychosis A history of pre-psychotic experiences and reactions will help to determine whether the person

was introverted and schizoid, or extraverted and cycloid, information which is important in diagnosis Manic states occur in febrile deliria and in some toxic psychoses, but these must not be confused with the manic phase of the affective psychoses

In children a clear clinical picture seldom occurs In Kasanin's (1931) series of ten cases, seven were manic and only three depressed The clinical pictures shown in the published case histories frequently suggest extreme behavior problems, or perhaps psychoneuroses In none of the histories is there evidence of change from depression to mania, or vice versa. These cases clearly illustrate the difficulty of establishing a diagnosis in children. Furthermore, the normal behavior of children varies so widely that serious difficulty may not be recognized. Homburger (1926) points out that the child is usually unable to verbalize his emotions and merely says he doesn't feel well, with the result that he is treated for a supposed organic disorder. On the other hand, as Ziehen (1917) shows, mild manic states are frequently undistinguished from normal hyperactivity of children

Treatment—When the attacks occur at an early age the prognosis is relatively unfavorable At older ages the prognosis for recovery from single attacks is good Pollock (1931) analyzed over 8000 manic-depressive cases for recurrence of attacks He found that in more than one-half of the cases there is no recurrence of sufficient severity to cause re-admission to the hospital; that patients younger than twenty years and older than forty years of age have more recurrences than those within these limits; and that the average duration of attacks increased irregularly with advancing age Strecker, *et al* (1931), found the prognosis for recovery better among Jewish and Irish patients; it was also better when the first episode occurred before age 40, and when there was a predominance of manic reactions. Cycloid pre-psychotic personality did not indicate a more favorable prognosis, evidence of somatic disease was more frequent in unrecovered patients; and paranoid trends, stupor, suicidal trends, hallucinations, and delusion were prognostically unfavorable. These findings were, of course, on adult patients and there is no way of knowing how true they are for children.

Prophylaxis is of great importance in this condition, as it is in schizophrenia. As the introverted child must be helped to become more social and more extraverted, so the extraverted child must be trained in making more conservative social adjustments. The moody child, easily aroused emotionally, must be taught control and restraint

After the onset of, and during, attacks careful nursing care is most essential. Except when the attacks are extreme, occupational therapy is of importance. Hospitalization during attacks is usually preferable to the patient's remaining at home with well-meaning but non-understanding relatives. In the extreme maniacal states the patient must be protected against doing himself or others bodily harm, and during severe depressed states he must be protected from suicidal attempts

Medical and surgical attention is, of course, necessary to keep the patient in the best possible physical health. Drug, endocrine, bacteriologic, serum, and surgical therapeutic measures have all been tried in dealing with the psychosis, *per se,* but with disappointing results. Drug and physiotherapy have value in dealing with symptoms, especially during excitement. Hinsie and Katz (1931) have published an excellent brief survey of the literature concerned with therapy in the manic-depressive states, in which questions of medical and other kinds of therapy are discussed.

Psychotherapy is of value in incipient stages and between attacks. Strecker and Ebaugh (1935) feel that talking things over with the patient even during an attack, provided the patient is accessible, has a definite value. In lucid periods the patient may be helped to see his situation, his mistakes, his poor methods of adjustment. Psychoanalysis has its adherents, but there is serious doubt as to whether a formal analysis is very helpful.

PSYCHOSES WITH ORGANIC PATHOLOGY

According to the data given in Table LXVIII, about 8 per cent of children under the age of fifteen years who are admitted to mental hospitals have some organic pathology basic to the psychosis. Neural pathologies included cerebral arteriosclerosis, general paresis, cerebral syphilis, Huntington's chorea, brain tumor, and other brain and neural diseases In this last miscellaneous group there was 4 per cent of the cases, and less than one per cent in all the others In a total of 26 per cent of the children a non-neural somatic pathology was the basis of the psychosis. The diagnosis and treatment of all of these are quite definitely medical problems and we shall not be further concerned with them here

There is one condition in this group—juvenile paresis corresponding to general paresis—that should be mentioned here because of its behavioral concomitants. Juvenile paresis, first described by Clouston

(1877), is due to an invasion of the central nervous system by *treponema pallidum* or *spirochaeta pallida*, the pathogenic organism of syphilis The syphilitic infection is often called hereditary although in any strict sense it is not Rather, the fetus is infected *in utero* from an infected mother's blood stream

This condition is rare, constituting only 0.2 per cent of children admitted to mental hospitals, a rate of less than 0 05 per 100,000 of the population of the same age. Not all children with congenital syphilis become paretic Menninger (1930) says that probably under two per cent, Stewart (1933) about one per cent, and Schmidt-Kraepelin (1920) about 1 7 per cent of congenital syphilitics become paretic. From a summary of the literature, Davis (1935) calculated an average incidence for congenital syphilis at about four per cent in the general population. If we take this figure as approximately correct, we can calculate an incidence of not over 0.1 per cent for juvenile paresis in the general population One reason for this low incidence is the extremely high mortality rate, which Davis (1935) calculated to be nearly 50 per cent. In an extensive study Junius and Arndt (1913) found a mortality rate of 71 per cent

In comparison with those of adult paretics, juvenile paretic symptoms are not as clear cut, and are often masked by pronounced mental defect or epilepsy. However, physical symptoms of the disease do not differ so materially from those present in adult paresis Stewart (1933) found that poor general bodily development or infantilism is common. Other physical characteristics are motor incoordination, such as shuffling gait and stumbling, increased knee jerks, tremor, disarthria and slurring of speech, inequality of pupils (in over 60 per cent of cases according to Stocker [1914] and Schmidt-Kraepelin [1920]), Argyll-Robertson pupil, illegibility of writing, and in about one-fourth (Moss and Hunt [1932]) of the cases are found convulsive seizures which may at first cause the condition to be diagnosed as epilepsy. The face becomes expressionless and dull, and there may be peculiar automatic chewing and sucking movements Paralytic strokes have occurred

Mental symptoms accompanying the disease are loss of memory, apathy, increasing stupidity, delusional trends (but rarely grandiose ideas), depression or excitement, and conduct maladjustments. In a study reported by Schmidt-Kraepelin (1920) it was found that in 39 cases of juvenile paresis one-fourth showed general arrest of develop-

ment and one-third were mentally deficient Mott (1899) reports 22 cases of juvenile paresis, most of whom were mentally deficient from birth. He also found a family history of syphilis in 80 per cent of 40 cases of juvenile dementia Stewart (1933) says that expansive and paranoid delusions are uncommon and that the usual clinical picture is one of simple progressive dementia

In a study of 40 cases, W C. Menninger (1930) found confusion present in 62.5 per cent, auditory hallucinations in six per cent, paranoid delusions in 27.5 per cent, disorientation in 55 per cent; and 75 per cent had grandiose ideas He found that often the first mental symptoms were fighting, queer and unexplained actions, stealing, and truancy. Schmidt-Kraepelin (1920) found that character changes were among the early signs, emotionalism being common

Cause—As has been said, syphilis is the chief etiologic factor. The syphilitic infection is usually congenital, although an infection at a very early age may be responsible [2] There is a serious question, however, as to why some congenital syphilitics develop paresis whereas the majority do not. A neurotrophic virus, the nature of the spirochaete, and the individual's personality make-up have all been suggested as the differentiating factor As yet, there is no good evidence on this point

That the individual's personality make-up or life experiences may be of importance etiologically is suggested by the age of onset. Stewart (1933) says the condition most frequently occurs between ten and sixteen years Kanner (1935) says that the first manifestation occurs most often in boys between eight and ten years, and in girls between ten and twelve years. The onset of the abnormal behavior picture may be, according to Menninger (1930), first, a "vague and indefinite development of the disease in a mentally and often physically inferior child which may be apparent at birth or soon afterward; second, a more or less acute break, after some years of normal development"

Diagnosis.—Behavioral signs include character changes, increasing disturbances in speech articulation, and an increasing dementia shown by decrease in test performance or school achievement. Neurologically the pupillary signs are of great significance. Serological examination should always be made. The blood Wassermann is usually positive, the spinal fluid Wassermann almost always so Spinal fluid presents the

[2] Many psychiatrists prefer to keep this extremely rare condition a distinct entity and follow Klieneberger (1908) in calling it an early form of progressive paralysis.

characteristic paretic colloidal gold curve, pleocytosis and increased globulin.

Treatment—The prognosis is poor. Malarial treatment is not as successful with juveniles as it is with adults Reeducation or other attempts at psychological therapy are probably not advisable unless, or until, the organic infection can be cleared up Institutional care is always advisable, even at the beginning of the illness.

PART IV

PROBLEMS CORRELATED WITH ORGANIC DISABILITIES

Chapter XIV

SENSORY DEFECTS

Among those children often spoken of as "exceptional," one of the larger groups is made up of individuals with sensory defects Inasmuch as educational, vocational, and social adjustments according to conventional standards are dependent upon adequate contact with the social and physical environments, it follows that defects in any of the senses should present problems in behavioral adaptation The child with a serious visual difficulty can be expected to have some trouble with reading and with any achievement which depends upon reading facility. The deaf child exhibits a retardation in learning to talk, and the child with partial loss of hearing may spend strenuous months or even years in futile effort to understand what the teacher is saying.

The basic problem in these cases is organic and its correction is the concern of the proper medical specialist However, the psychological problems involved are sufficiently serious and of such a nature that the clinical psychologist is often confronted with them Therefore it is expedient for us to consider these problems in some detail

Of all the senses, two—vision and audition—are of probably greater significance in adjustment than any of the others. Even complete absence of taste (aguesia) or smell (anosmia) is not particularly vital to social adaptations Such conditions would, of course, make it impossible for the person afflicted to engage in a few occupations, such as being a tea taster or a perfumer On the other hand, anosmia might make it somewhat easier to engage in the manufacture of glue and some other commodities.

Abnormalities in the cutaneous senses also occur, but they seldom interfere with relatively adequate adjustment. One boy, referred as a disciplinary problem, had exhibited no reaction to repeated, severe corporal punishment His lack of concern over treatment that would ordinarily be painful was accounted for by his complete analgesia, or lack of pain sensitivity Absence of pain sensitivity is frequently found

among feeble-minded children, especially among the lower grades Thiemich (1900) felt such a lack to be sufficiently common among the lower grades of feeble-mindedness to warrant his proposing analgesia to pin pricks as a diagnostic sign in the early years of life

Vision

It is estimated that about 85 per cent of our sensory contacts are made through the medium of vision. The possible significance of this

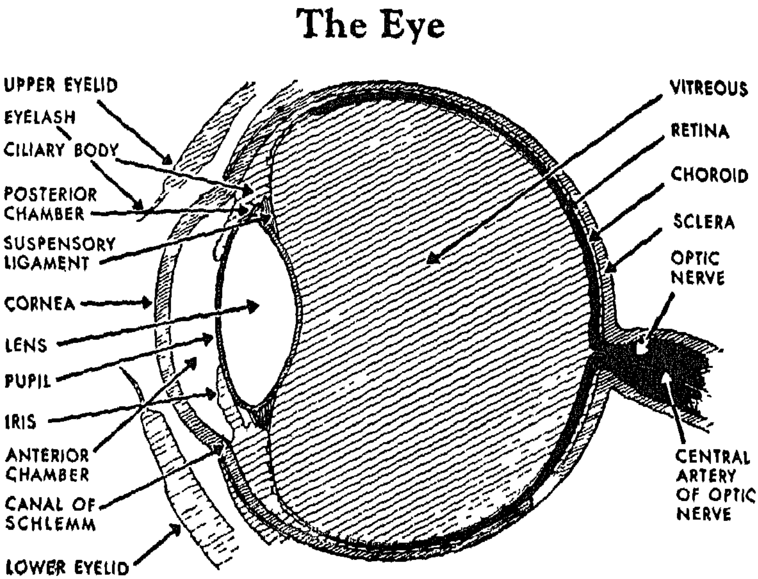


Figure 17.—Cross-section of the Human Eye (Courtesy Better Vision Institute)

sense in the etiology of certain psychological problems is obvious. Educational achievement, vocational adjustment, and social behavior patterns may all be influenced by defective vision. It will be our concern to inquire into the part played by vision in psychological problems. In order to understand the relationship, it is necessary to have in mind certain basic data concerning the eye and its functions, as well as the more common defects.

The Eye—A diagrammatic cross-section of the human eyeball is shown in Figure 17. Functionally, the eye is similar to a photographic camera, while structurally it is approximately a sphere partially filled

with a gelatinous substance, the vitreous humor, which serves to maintain its shape The outermost wall is the fibrous sclera (white of the eye) which is modified to transparency in the forward part of the eyeball to form the cornea. Immediately inside of the sclera over somewhat more than the rear hemisphere is found the choroid, a vascular layer Next there is a layer of sensitive receptor cells with their accompanying nerve cells, called the retina The forward third of the eyeball contains a number of complex structures of which the following have pertinence here The cornea, a transparent portion of the sclera, lies over a ring of pigmented smooth muscle tissue called the iris, the opening in the center of which is the pupil Immediately behind this is an elastic crystalline lens suspended in a ligmentous ring which in turn is attached to the ciliary muscle We may mention here also the eyelids and lashes which, while not a part of the eye, serve as a protective covering for the delicate cornea

The operation of these various parts is easily understood if one keeps in mind that they all are directed to the one end of focusing light rays in the most accurate way upon the sensitive retina and more particularly on its most sensitive region, the macula Light rays, when passing from one medium to another, are always bent or refracted to some extent. This is true when the light enters successively the cornea, the aqueous humor, the lens, and the vitreous humor, with the net result that, in a normal eye, the rays are brought to a sharp focus on the retinal layer. Two kinds of monocular accommodation control the admission and the course of light in the eye With increase in the intensity of available light, or when clear definition is necessary as in close vision, the sphincter portion of the iris muscle contracts and makes the pupil smaller; with decrease in the light intensity, the muscle relaxes and increases the pupil size Control of the focus of light rays depends upon the power of the lens to change its shape. When light rays from distant objects (twenty feet or more) reach the eye they are parallel and require less bending to converge on the retina In this state, the suspensory membrane is taut and the lens is flattened For near vision the rays which reach the eye are diverging To correct for them, the ciliary muscle contracts and permits the ligaments supporting the lens to slacken. The elastic lens in this circumstance bulges more in the antero-posterior diameter, thus becoming convex to a degree sufficient to correct the initial divergence of the light rays

Questions regarding the proper functioning of the eyes concern

not only their refractive or other optical functions, but also their movements. Attached to the sclera of each eye are six extrinsic muscles which control movements of that eyeball These six muscles are,

1 external rectus, moves eyeball temporally
2 internal rectus, moves eyeball nasally
3 superior rectus, moves eyeball upward
4 inferior rectus, moves eyeball downward
5 superior oblique, moves eyeball downward and outward
6 inferior oblique, moves eyeball upward and outward

The coordinated contraction of different pairs of these muscles makes possible the movement of the eyeball in any direction. The innervation of the muscles of both eyes is such that normally the eyes move together. Thus, to move the eye horizontally to the right, the external rectus of the right eye and the internal rectus of the left eye contract together.

We have seen that in monocular vision accommodation takes place by movement of the iris and change in the size of the lens. But most vision is binocular, which requires a third type of accommodation movement For distance vision (over twenty feet), the lines of sight of the two eyes are parallel. In order to see clearly objects less than twenty feet from the eyes, it is necessary that the two eyes converge or turn toward each other by the coordinated action of the two internal recti. This convergence of the eyes serves to keep the light rays entering the two eyes focused on corresponding points of the two retinas For the details of the anatomy of the eye and the optic nerve, the reader is referred to any standard textbook on anatomy.

Visual Acuity.—As the purpose of the eye is to see, the chief concern is how well it does this. This efficiency of the eye is called visual acuity. With the normal eye and suitable conditions of illumination and attention, the smallest object which can be seen subtends an angle of one minute; e.g., if two black squares on a white background are separated by a distance subtending less than one minute of an arc they will be seen as one. The linear size of an object that subtends any given angle will depend upon the distance of that object from the eye. The simplest method of measuring visual acuity is with the standard letters of the Snellen chart which is described below (page 570)

Loss of visual acuity may be due to a number of causes. Refractive errors, opacities of the cornea or lens, pathology of the retina, or de-

fects in the optic nerve may all reduce vision Some idea of the relative importance of various abnormal conditions in causing visual loss in children in sight-saving classes may be got from Table LXX. The

TABLE LXX —FREQUENCY OF VARIOUS EYE DISORDERS AMONG CHILDREN IN SIGHT-SAVING CLASSES

(After Myers)

	Number	Per Cent
Refractive errors only	1260	45.5
Refractive errors with complications	612	22.1
Lens, cataracts	158	5.7
Lens, others	24	.9
Cornea	137	4.9
Choroid and retina	62	2.2
Interstitial keratitis	80	2.9
Strabismus	51	1.8
Nystagmus	82	3.0
Nystagmus with complications	122	4.4
Miscellaneous	183	6.6

data of this table are from Myers' (1930) excellent survey of these special classes These figures can be taken only in a general way as they are condensed from Myers' table and therefore complications are concealed They do, however, show the great importance of refractive errors in producing loss in visual acuity Refractive errors are those in which the rays of light entering the eye are not properly focused upon the retinas. The diagrams in Figure 18 illustrate the errors in the focus

In *myopia,* or nearsightedness, parallel rays are brought to a focus in front of the retina when accommodation is relaxed This is usually because the eyeball is longer than the normal 23 mm, although occasionally certain conditions of the cornea or lens may be responsible. The condition is seldom congenital, but, according to May (1934), it "commences at an early age when, during the developing period, the eyes are used excessively or improperly for near work" Dr. Inglis Polloch (1916), as cited by Kerr (1925), found a rather regular increase in the percentage of myopia among school children in Govan, Scotland. Among five-year-olds the percentage was about two, and at 17 years it was slightly over 25

Alling (1922) says, "If one has hypermetropia or astigmatism, he may read until he cannot see, yet he will never have any actual lesion of the eyes, but if you have myopia, you have a condition that may

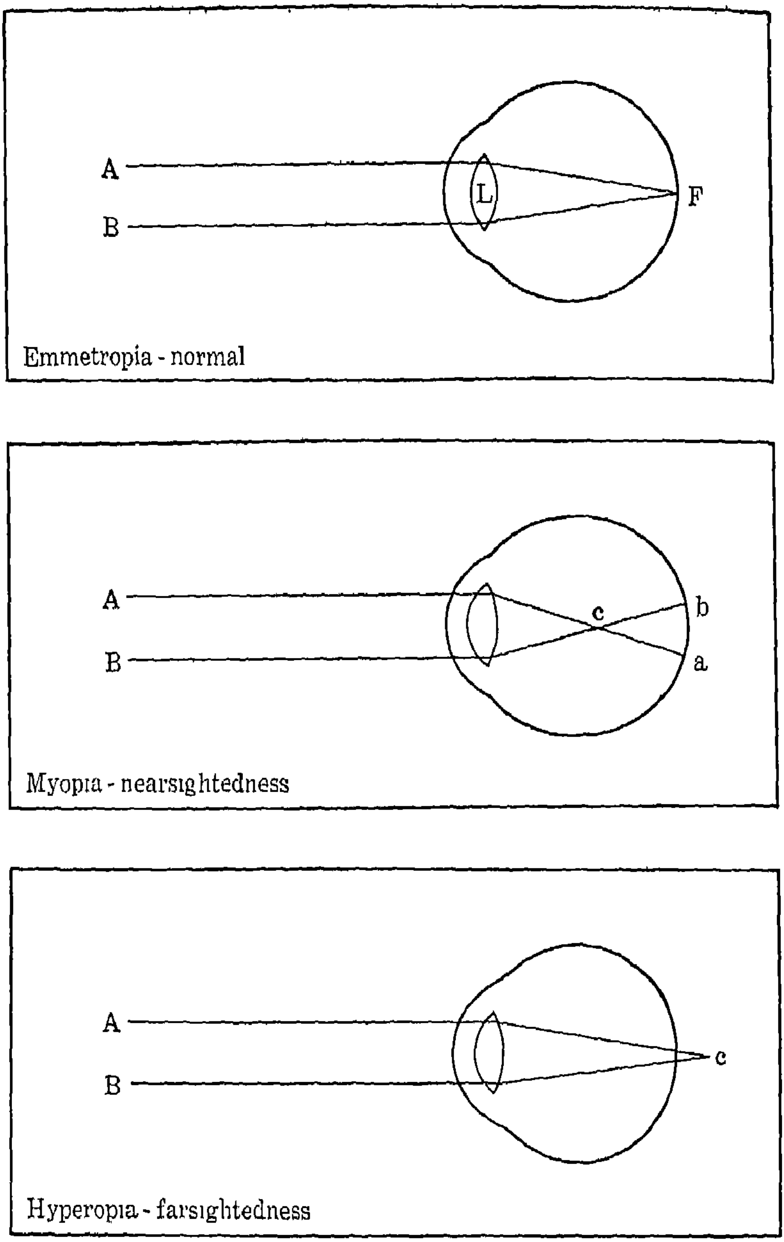


Figure 18.—Diagram of Light Rays in Refractive Errors

lead to some very serious damage, for it is a disease" This statement is only partially true because some cases of myopia are not progressive However, in some cases the condition is progressive and may lead to serious damage of the retina, and therefore it is necessary to institute corrective measures Such correction cannot be made biologically because the lens is unable to adapt itself, so that parallel rays are less refracted or bent on passing through it Therefore, concave lenses must be used Any child suspected of being a myope, because of poor distance vision or because a book is held close to the eyes, should always be referred for a competent ophthalmological examination Furthermore, glasses should be checked at regular intervals because lenses of improper curvature may do greater harm than good

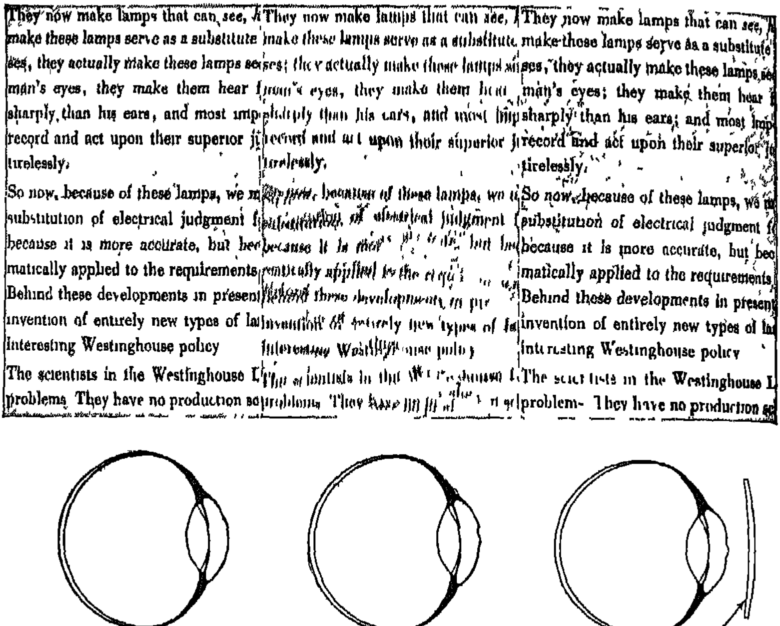
Hyperopia, or farsightedness, is caused by the eye being shorter than normal; here the refraction of the relaxed lens brings rays to focus behind the retina It is therefore necessary for the farsighted eye to accommodate for distant, as well as for near, vision As a result, too much near vision taxes the muscular power and results in fatigue and eyestrain The normal infant eye is hyperopic; but with growth the antero-posterior diameter lengthens until the eye is emmetropic, and under certain conditions it may be myopic Unlike myopia, hyperopia is never progressive In fact, although the condition is the most frequent refractive error, it tends to be reduced with age.

In young children the power of accommodation is greatest; it decreases steadily throughout life. However, even the child's lens is incapable of extreme, prolonged accommodation such as is necessary in reading The result is eyestrain and its accompanying evils As Noyes (1914) says, "Glasses are necessary, not because the patient has farsightedness, but because his farsightedness is making eyestrain that must be cured" That hyperopia has an appreciable but lesser relation to loss of acuity than myopia is shown in the study of Kempf, *et al* (1928) They measured the refractive error with the accommodation relaxed by means of a cycloplegic The relationship between the degree of error and visual acuity expressed in ρ's was.

All children	74
Hyperopic children	69
Myopic children	80

The third type of refractive error is *astigmatism*, a condition caused by defects in the lens or cornea—more frequently in the latter—which result in a difference in refraction in different meridians Thus some

rays focus before, some behind, and some on the retina. Figure 19 illustrates the appearance of the printed page to an astigmatic eye. As astigmatism is apt to be associated with other refractive errors, especially with hyperopia, the child not only has a reduced acuity but



(1) The normal eye, with a smooth cornea, sees the image clearly, and in all its details

(2) A wrinkled surface on the cornea, like a wrinkled window-pane, blurs the image This is astigmatism

(3) Eyeglasses will counteract astigmatism, making the image again sharp and clear.

Figure 19—Appearance of Page to the Astigmatic Eye (Courtesy Westinghouse Lamp Co)

suffers from eyestrain It is necessary that this, as well as all other refractive errors, be corrected with the proper lenses. The proper fitting of glasses is a technical ophthalmological procedure and should always be done by a competent specialist.

Of equal seriousness to the reduction of acuity and distortion of images caused by refractive errors is eyestrain or *asthenopia* caused by these or by certain other conditions. The common signs and symptoms of eyestrain as listed by Noyes (1914) are. "(1) rapid fatigue of

eyes during reading, writing, etc ; (2) headache, sick headache, (3) pain in the eyes; (4) blurring of print, (5) feeling of sand in eyes; (6) pain in the back of the neck and between shoulders; (7) difficulty in fixing attention or concentrating one's mind on reading matter, (8) tendency to rub and press on the eyeballs; (9) redness of the edges of the lids, (10) accumulation of bran-like masses on edges of the lids, (11) double vision; (12) dread of light; (13) dizziness; cross-eye; (14) nausea, (15) floating spots before eyes; tearing, car-sickness, blindness in one eye, various neuralgias, brain fag; drowsiness, (16) twitching of the lids; (17) a tendency to the development of sties in crops, (18) many serious, destructive, and inflammatory conditions affecting all of the tissues of the eyeball." Many of these are observable by the classroom teacher and some by the psychoclinician even without a special examination. The presence of any of these symptoms should justify having the necessary special examinations made.

Simple or complicated refractive errors accounted for 67 per cent of the children in sight-saving classes. In the second largest group, 23 per cent of the children, pathology of various parts of the eye was the cause of visual loss. Such pathologies included a large number of conditions, many occurring only once, these are included under "miscellaneous." Among the more frequent were the following cataracts, mostly congenital, caused by bits of opaque embryonic tissue remaining in the lens, lenticular and corneal abnormalities resulting from injury or disease, disease of the retina and choroid coat, interstitial keratitis, a cellular infiltration of the deep layers of the cornea usually caused by congenital syphilis. We can do no more than call attention to these conditions which cause loss in visual acuity.

The third class of eye disorders which interfere with the child's visual adjustment relates to eye movements *Nystagmus,* which is reported in at least seven per cent of Myers' cases, is an involuntary jerking movement of the eyes in any direction May (1934) says that most cases start in infancy when, because of a reduction in visual acuity, the child does not learn to fixate properly Usually infantile cases are not amenable to treatment although correction of refractive errors may help; sometimes the movement becomes less marked with advance in age

Strabismus or squint (cross-eyes), a grossly observable symptom, is

frequently defined as a deviation of the visual axis of one eye from its correct position of fixation. Worth (1921) says that a defect in the fusion faculty is also always found. In addition, there may be suppression of vision in the non-fixating eye, amblyopia in the deviating eye; and usually there is a refractive error, commonly hyperopia The cause of the condition may be paralysis of the eye musculature, or it may be an unequal refractive power of the two eyes. Worth holds that far more important than either of these is a lack of development of binocular fusion in early infancy Therefore, either surgical, optical, or orthoptic attempts to correct the condition should be instituted at as young an age as possible.

The psychological significance of this condition we have pointed out in connection with reading disabilities and also in Case Number 14. There may also be personality disturbances because of the child's embarrassment or resentment of other children's taunts, as well as his own feelings of inferiority based upon the defect.

Optical or surgical treatment of the condition does not concern us here. Orthoptic training is a pure training problem and is therefore of psychological interest. However, it would take us too far afield to describe these methods, which were first devised by Worth in 1903 and which have since been greatly elaborated Guibor (1934) has prepared an excellent description of the methods, together with a brief review of the literature.

Blindness is a severe but not exactly defined degree of visual loss Absolute blindness may be taken to be a complete inability to perceive light. Practically, this is a useless definition because a much less severe degree than this makes it impossible for the person to make adequate adjustments. Blind persons may be able to perceive forms or motion at near distances (three feet), read the largest Snellen letter at less than twenty feet, read large headlines at near distances; those on the border line may have acuity better than 20/200 but not sufficient for ordinary visual affairs. Such blindness may be congenital—in fact, certain types are possibly hereditary—or it may occur at any age In children the problems of the blind and the partially seeing are somewhat different so we shall comment on them separately

Statistics.—In Table LXX above we have shown data on the causes of visual defects in children attending special classes for the visually defective. Of equal interest are data illustrating the prevalence of visual defects in all school children. Most available data are based on

TABLE LXXI.—PERCENTAGE OF CHILDREN OF VARIOUS AGES WITH SPECIFIED REFRACTIVE CONDITIONS

Age Last Birthday	Total Hyperopia	Total Myopia	Total Astigmatism	Emmetropia	Hyperopia	Simple Hyperopic Astigmatism	Compound Hyperopic Astigmatism	Mixed Astigmatism	Compound Myopic Astigmatism	Simple Myopic Astigmatism	Myopia
All Ages	88 3	6 9	27 7	3 4	63 4	2 7	22 2	1 4	0 9	0 5	5 5
6–7	94 6	1 4	19 7	1 8	77 1	7	16 8	2 2			1 4
8–9	94 2	4 2	27 6	3	68 7	3 4	22 1	1 3	3	5	3 4
10–11	86 2	8 5	32 4	2 1	59 0	2 7	24 5	3 2	5	1 6	6 4
12–13	85 6	9 1	28 2	4 5	59 0	2 8	22 9	9	1 5	1	7 4
14 and over	82 9	9 1	30 6	7 1	55 6	3 2	24 1	9	1 5	9	6 8
Number of cases	1642	128	515	64	1179	50	413	26	17	9	102

examinations of children without relaxation of the muscles of accommodation. Kempf, *et al.* (1928), studied the acuity of 1860 Washington school children with a cycloplegic, i.e., a drug which temporarily paralyzes the intrinsic eye muscles and relaxes accommodation. Under these conditions only 3.4 per cent of the children were found to have an emmetropic or normal right eye. Table LXXI, reproduced from this report, indicates the prevalence of various refractive errors and the change in their incidence with increasing age. For ordinary purposes examinations are made without a cycloplegic. While the data in Table LXXI indicate a high percentage of abnormal eyes, most of these are not sufficiently abnormal to cause defective vision. The Committee on Special Classes of the White House Conference (1931) reports the following percentages of visual conditions among school children.

Normal vision	80.00 per cent
Correctible eye defects	19.75 "
Partially seeing	0.20 "
Blind	0.05 "

Estimates of the ratio of children needing special sight-saving class attention to the total school population vary from the very conservative 1 per 1000 to the more widely accepted 1 per 500. In a survey of 95 cities with such classes, the median ratio was found to be 1 to 659, while the range was from 1 per 100 to 1 per 4343. These figures represent actual existing ratios in school systems and are greatly influenced by questions of financial support, community interest, and the like. Pratt (1926), in her survey of about 8000 school children in Jamestown, N. Y., found that "about one in every 286 of the school population had sufficiently defective vision to warrant segregation in sight-saving class," and points out that the estimates of 1 per 500 are too conservative.

In this survey, Dr. Pratt found the following distribution of eye conditions:

Normal vision 20/20, 20/15 and 20/30 without eyestrain	48 per cent
Slightly defective 20/15, 20/30 with eyestrain or other abnormality, and 20/10 with or without eyestrain	42 "
Seriously defective 20/40 and less	10 "

Wood (1930) surveyed the vision of 982 pre-school children and found the eye conditions shown in Table LXXII.

TABLE LXXII —EYE DEFECTS FOUND IN PRE-SCHOOL CHILDREN

Condition	Per Cent
Refractive error	18 1
Squint or muscle imbalance	4 7
Inflammation of lids or conjunctiva	2 8
Abnormal condition of eyeball	1 4
Total abnormalities (excluding duplicates)	20 9

Collins (1924) reported data based upon the examination of 9245 school children from six to sixteen years of age For the total group the percentage of defects found was similar to those already reported· 27 per cent moderately defective and 10 per cent rather seriously defective His data, shown in Table LXXIII, show a slight increase in the percentage with normal vision, a decrease in the slightly defective, and a decided increase in the seriously defective.

TABLE LXXIII —DISTRIBUTION OF VISUAL ACUITY BY AGE

Age	(1)	(2)	(3)	(4)
All ages	62 9	27 1	6 1	3 9
6 and less	58 3	32 1	7 6	2 0
7	58 6	31 4	7 2	2 8
8	60 2	30 6	6 8	2 4
9	60 3	31 8	5 5	2 4
10	62 8	26 3	6 2	4 6
11	62 4	27 7	6 1	3 8
12	66 7	23 0	5 6	4 7
13	67 7	20 5	6 0	5 8
14	66 2	24 3	5 0	4 5
15	67 2	21 3	5 6	5 9
16 and over	65 5	21 7	3 9	8 9

(1) $\frac{10}{10}$ or $\frac{20}{20}$ both eyes

(2) $\frac{6}{10}$, $\frac{7}{10}$ or $\frac{8}{10}$ one eye and $\frac{6}{10}$ or better in other $= \frac{20}{30}$ or $\frac{20}{25}$ in one and $\frac{20}{30}$ or better in the other

(3) $\frac{4}{10}$ or $\frac{5}{10}$ in one eye and $\frac{4}{10}$ or better in other $= \frac{20}{50}$ or $\frac{20}{40}$ in one and $\frac{20}{50}$ or better in the other

(4) $\frac{3}{10}$ or less in one or both $= \frac{20}{70}$ or less in one or both

The number of blind children is much less than the number of partially seeing. In the U. S. Census Bureau (1931) report we find the

enumerated blind children shown in the second column of Table LXXIV.

TABLE LXXIV.—NUMBER OF BLIND CHILDREN

Age	Number	Per Cent of Total Blind	Rate per 1,000,000 General Population of Same Age
Under 5	504	0.8	43
5–9	1113	1.7	88
10–14	1814	2.9	150
15–19	2039	3.2	174

VISUAL TESTING

We have emphasized again and again that physical examinations and diagnosis must be made by the physician. Visual defects are wholly problems of medicine; therefore, the psychoclinician cannot undertake eye examinations. However, the determination of visual acuity may be satisfactorily made in the psychological clinic or in the school. The psychologist should also be alert to possible signs of eye trouble which may be evident in the children he examines.

Measurements of visual acuity are made with the Standard Snellen Test Types, reproduced in miniature in Figure 20. The uppermost letter subtends a five-minute angle—the width of each limb subtending one minute—at a distance of 60 meters or 200 feet. The standard distance is conventionally taken at 6 meters or 20 feet. Rogers (1924) gives the following directions for the use of the chart: "It should be placed, preferably, so that the child can stand twenty feet from it. It should be placed at about the height of the eyes and in a good light which does not shine in the pupil's eyes but comes from the side. If placed near a window at the front of the room, the light on a fair day from a side window will usually furnish good illumination. ... The child should be placed at the desired distance and a piece of stiff card held in front of (not against) one eye, and he should be asked to read the letters, beginning with the larger ones." As daylight illumination as described by Rogers may vary greatly during different hours of the day and from day to day, a more uniform source of light is desirable. Pratt (1926) describes a simple board with shaded lights at the top and bottom designed to provide a uniform, non-glare illumination of about ten to twenty foot candles. In a clinic the chart can be perma-

nently mounted with proper illumination, and a line twenty feet from it marked on the floor The child is then placed toeing the line May (1934) suggests that, when the room is less than twenty feet long, the

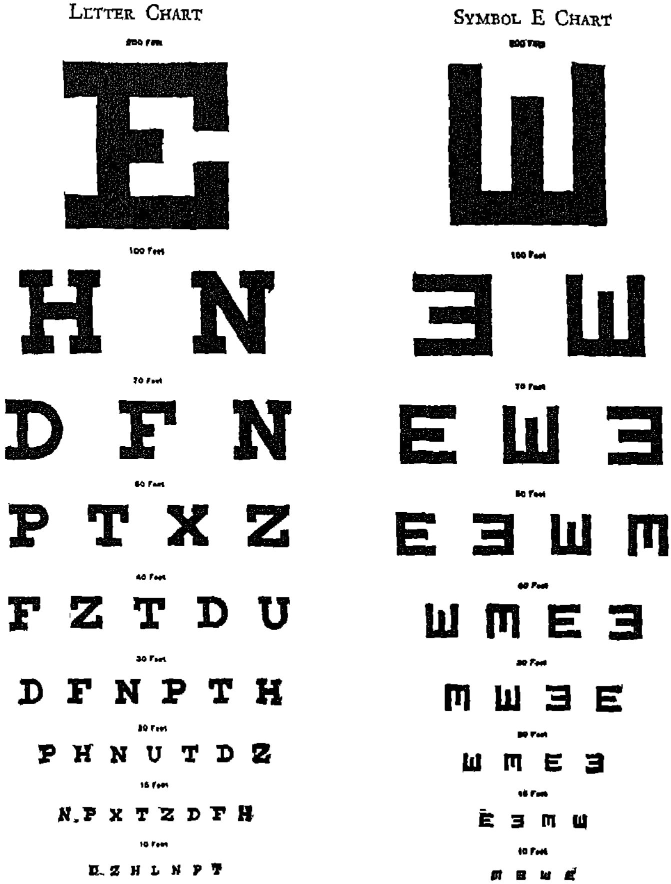


Figure 20 —Snellen Visual Acuity Test Charts[1] (Courtesy National Society for the Prevention of Blindness)

card be placed back of the child, who then reads the letters from the reflection in a mirror ten feet from his eyes.

The acuity of vision is expressed as a fraction, the numerator of which is the distance of the chart from the eyes (preferably and conventionally twenty feet). The denominator is the distance the line of

[1] Charts are drawn according to the Snellen scale

smallest letters read, should be read by the normal eye. Thus normal sight is expressed as $\frac{20}{20}$, if the child can read only the letters for 30 feet the acuity is $\frac{20}{30}$; if he can read the line for 15 feet his acuity is keener than the average and is expressed by $\frac{20}{15}$. While these measures are expressed as fractions they do not represent fractions of visual loss The percentage efficiency and visual loss for various Snellen fractions as worked out by the Section on Ophthalmology of the American Medical Association are shown in Table LXXV Children with acuity of $\frac{20}{70}$ or less in the better eye after proper refraction should be given special attention

TABLE LXXV —PERCENTAGE OF VISUAL LOSS FOR VARIOUS ACUITY FRACTIONS

	Per Cent Efficiency	Per Cent Loss
20/20	100 0	0 0
20/30	91 5	8 5
20/40	83 6	16 4
20/50	76 5	23 5
20/70	64 0	36 0
20/100	48 9	51 1
20/200	20 0	80 0

For measurements of acuity in near vision, use is made of Jaeger's test types which are different sizes of ordinary type faces However, these have not been well standardized and the sizes vary, as is shown in a report of the U. S Public Health Service (1931).

In addition to determining visual acuity, the examiner should look for evidence of eyestrain as listed on page 565. The following hints for teachers which Berkowitz (1920) attributes to Dr G. T C. Nash are valuable for the psychoclinician "Defective eyesight may be suspected when a child (1) in a back row cannot read what is written on the blackboard; (2) cannot tell the time by the clock at a little distance; (3) fails to keep to the lines when reading, (4) misses out small words when reading; (5) habitually holds a book nearer to the eyes than 12 inches when reading; (6) complains that the letters run into one another, (7) squints, even if only occasionally; (8) complains of tiredness of the eyes or of frontal headache after reading or sewing"

All children exhibiting the following should be referred to an oculist or ophthalmologist, according to Rogers (1929):

1. With strabismus, cross-eyes.
2. With evident eye diseases, as shown by redness of the eyes or lids, crusts on lashes, watering of eyes or other discharges from them, and sensitiveness to light
3. With signs or symptoms of eyestrain (see page 565)
4. Who do not, under proper illumination, read with each eye the 20/30 line on the Snellen chart Pratt (1926) would also include children with acuity of 20/15 plus eyestrain, and all those with 20/10 with or without eyestrain

If specialized medical service is not available to the clinic, the parents of the child should be strongly urged to have the eyes taken care of. Adequate corrective measures taken at an early age not only make the child's adjustment to school easier, but also may save him serious trouble at a later age

PSYCHOLOGICAL PROBLEMS OF VISUAL DEFECTS

It is evident that defects in a sensory field as intimately related to behavior as vision will have a widespread relation to psychology The whole interactional setting is changed for visually defective persons, and they are forced to make their sensory contacts through different sense media; they are at a disadvantage in a world primarily organized for persons who can see Our concern is not with all psychological questions related to blindness and reduced vision, but with those which specifically interfere with the child's adjustmental development Such a discussion may be divided into three parts dealing, respectively, with intelligence, personality, and educational achievement.

In the psychoclinical examination of any child the possibility of visual difficulties must be inquired into. When the problem is the examination of a child known to be visually defective, the interpretation of test results and histories must be made in the light of possible effects of the condition. For example, in Case Number 14 the poor maze test performance was due to the uncorrected visual defect and not to subnormal ability or instability. The very nature of the defect may introduce into the parent-child relationship elements of over-indulgence which are perhaps more undesirable with these children than with those who see normally. A consideration of possible influ-

ences of visual defects in the three fields previously enumerated will indicate variations necessary in clinical interpretation

Intelligence.—The only available report on the intelligence of visually defective children is to be found in Myers' (1930) study On his pupil reports filled in by sight-saving class teachers, Myers asked for the I Q if a "psychological test" had been given, if none had been given the teacher was to express her own judgment of the pupil's ability As the name of the test from which the I.Q was secured was not asked for, there is no way of determining how accurate any reported value was. Myers comments that the low values reported may mean that some were obtained from group tests which might penalize the visually subnormal After his report was written, individual sheets were secured from sight-saving classes in Cleveland for 263 children, for 261 of whom I Q 's were reported This would suggest that this school system routinely examines all children sent to these classes, and therefore the Cleveland data may be more significant than those for the total group. The teacher's judgment, the third source of information on the children's intelligence, tended to be high so that the distribution was skewed in the opposite direction In Table LXXVI the three sets of data are presented, combined percentages being calculated by the present author

TABLE LXXVI —INTELLIGENCE OF VISUALLY DEFECTIVE CHILDREN

(After Myers)

I Q	709 Pupils General		261 Pupils Cleveland		Total		Teacher's Judgment			Combined		Theoretical
	No	Per Cent	No	Per Cent	No	Per Cent	Class	No	Per Cent	No	Per Cent	
Below 70	93	13 1	1	4	94	9 7						
70– 80	146	20 6	23	8 8	169	17 4	deficient	109	5 5	372	12 6	7
80– 90	179	25 2	66	25 3	245	25 3	poor	282	14 2	527	17 8	13
90–110	224	31 6	149	57 1	373	38 6	fair	655	32 9	1028	34 8	60
110–120	45	6 3	18	6 9	63	6 5	good	716	36 1	779	26 4	13
120–140	22	3 1	4	1 5	26	2 7	superior	224	11 3	250	8 4	7
Above 140	0	0	0									
Total	709	100 0	261	100 0	970			1986	100 0	2956	100 0	

The Cleveland data show a more nearly normal distribution than either of the others, but even here there is a slight skewness to the right, i.e., the lower scores are more frequent. Skewness in the same

direction is pronounced in the data based on reports from various cities. This may be due in part to the tendency to have only apparently retarded children examined, which prevails in many communities Contrasted with these data are the teachers' judgments, which are skewed to the left. When all of these data are combined the distribution is still skewed a little to the right, but the percentage of average children is reduced, and both subnormal and supernormal groups are increased The variations can be readily seen by comparing any percentage column with the last column showing the theoretical distribution.

From these data it is evident that visually defective children tend to be a little below average in test performance This may be due to a real lack of the ability required on tests, or it may be that available tests too severely penalize the visually defective child That the latter is probably true to some extent is shown by the performance of the blind on specially prepared tests In any case, the implications of the findings for clinical psychology are two (1) one can expect normal or better intelligence in a very slightly lower proportion of visually defective children than in seeing children, and (2) great care must be used in examining, and in interpreting the examinations of, visually defective children

The recognition of the inadequacy of the ordinary tests when used with the blind early led R. B. Irwin (1914) to attempt to devise a special examination for them This first attempt showed the possibilities but was itself unsatisfactory As the author himself said (Hayes, 1920), "The test sheets were printed with the view of testing the tests and not the subjects." Haines (1916) published a better standardized scale, and in 1930 Hayes offered a satisfactory adaptation of the Stanford-Binet for the blind

Hayes (1920) reports the distribution of intelligence among 670 blind children when measured by an early form of the Irwin-Binet tests. The figures, shown in Table LXXVII, may be compared with those found among Terman's (1916) unselected children However, serious errors are possible in such a comparison. Direct comparison is unfair because the blind were examined with a test that admittedly was not as suitable for the blind as the Stanford-Binet was for the seeing. Also the greatest differences in percentage are found below the average group, and it is just here that it is most difficult to interpret test results If one wishes to say merely that blind children have lower test

TABLE LXXVII.—INTELLIGENCE OF BLIND CHILDREN

	Per Cent	
	Blind	Sighted
Genius	0.3	0.5
Very superior	1.0	2.0
Superior	5.0	9.0
Average	68.0	76.0
Dull	12.0	8.0
Border-line	7.0	2.0
Feeble-minded	5.0	0.3

performances than seeing children, all is well. If, instead, one interprets test scores as measures of "intelligence" and concludes that the blind children are intellectually inferior, then he may well be doing them an injustice.

Hayes, who has perhaps studied the blind more carefully in this respect than anyone else, reported in 1929 that with even his later revision of the tests, the median I.Q. of the blind was around 90; and Sargent (1924) reported median I.Q.'s for various blind groups to range from 89 to 98. In another study Hayes (1923) demonstrated that the median I.Q.'s of sixteen groups determined by the age at which vision was lost ranged between 85 and 105, with no trend evident, from which he concluded that the length of time the individual enjoyed sight had no effect upon intelligence. From the evidence at present available it would seem wise to conclude that the distribution of intelligence in a suitable unselected sampling of blind children would be as normal as among a similar sample of seeing children. Only a start has been made in adapting tests for blind subjects; therefore the cautions suggested above for testing children with partial vision apply with equal or greater force.

Personality.—Judging from the paucity of reports, the study of personality development and disorders among blind children and those with partial vision is a fertile field for psychological research. We might well expect the visually handicapped child to present the same sort of personality and conduct difficulties as are found among seeing children, plus qualitatively and quantitatively different ones that are more or less directly related to the poor vision. Hathaway (1920) describes a delinquent boy whose conduct was an overt expression of

his feeling toward a society that forced him to undertake educational work suited to his chronological and mental ages, but which he consistently failed in because of a serious, and unrecognized, visual defect In the following case a refractive error was at the basis of a whole series of behavior problems.

Case Number 56 (Kanner and Lachman, 1933) D. B, an eight-year-old twin, the youngest of a large family, was brought to the clinic with the complaint of enuresis (almost every night) and evening headaches, largely frontal and on the left side. When younger, he had been quite a feeding problem and even at his present age was rather particular about his food.

Frequently he walked and talked in his sleep. In school he progressed poorly and was then repeating the second grade. Spelling and arithmetic were all right, but the chief difficulty was with reading For several months after an attack of measles he complained of pain in the chest.

Routine physical examination disclosed that he was about nine pounds underweight and had one carious tooth

The family background was rather unstable The father, forty-six years old, a traveling salesman, was nervous, easily excited, and had been separated from the family for the past seven years He not only was a heavy drinker and did not support the family for the past seven years, but he was morbidly jealous and always a disturbing factor Of the eight children, another child had had enuresis and sucked her thumb The other twin does not do well in school

The patient was delivered by breech presentation and had some cyanosis and "spells" the first two days. At two years he had varicella, at three years, otitis media and whooping cough Tonsillectomy was followed by several convulsions at four years, and recently he has had measles The right ear was still draining somewhat.

When first seen, the boy had an intelligence quotient of 82 and a mental age of 7 years, 2 months (a retardation of 1½ years). Two months later he was interviewed again In the meantime, his eyes had been refracted and glasses prescribed. As a result, he was reading better, the enuresis was decreasing, and he had dry periods of from two to three weeks' duration The school reports were improved, he had not been walking in his sleep, and the feeding difficulties had practically disappeared Since wearing glasses, he had complained of no headaches In addition, his intelligence quotient advanced to 88 and his mental age to 7 years, 8 months Less than one month later his intelligence quotient was 94 and practically normal. During a

period of three months, therefore, his mental age advanced fourteen months When seen very recently, the child was alert and self-confident, and there were no difficulties reported by the mother

Similar cases could probably be cited from the records of almost every psychological clinic As yet, however, we have no intensive investigation of visually handicapped children in sight-saving classes or in regular classes. Administratively, such studies would be of value because of the need for knowing the relative effects on the child of competition with other visually handicapped children, with seeing children, or with both Surely repeated failure in school discourages a child, perhaps more so when he realizes it is an unequal competition On the other hand, as the visually handicapped individual must learn to make adjustments to seeing persons, a too strict segregation may also have untoward results.

Best (1934) remarks on the common query, whether the blind are "unhappy" because of lack of sight, that, "speaking for the larger number of them, they do not spend themselves in bemoaning their fate, or give themselves to constant dwelling upon their affliction. Many appear undiscouraged, and have an abundance of cheerfulness." Muhl (1930), in a psychiatric study of children in the California School for the Blind, found the chief characteristic was a lack of initiative caused more by emotional blocking than by the physical defect. Worry, feelings of inferiority, sometimes with compensatory mechanisms, and a varied wish-fulfilling phantasy life were found with some frequency. Fladeland (1930) observed 126 blind children who had been referred for speech correction, and found that blindness might accentuate personality traits but it apparently gave rise to no unique ones

Among blind children certain habit spasms and mannerisms are frequently noted which have become known as "blindisms" Merry (1933) lists the commoner of these as rocking the body back and forth, putting fingers or fists into eyes, twirling rapidly round and round, shaking fingers before the face and holding the head bent forward Ritchie (1930) presents the most widely accepted theory, that these mannerisms are substitutes for physical activity that is thwarted by blindness; Lewis (1916) feels that certain of them, e g., putting the fingers in eyes, may be caused by ocular irritation. Like tics and habit spasms in the seeing, every effort should be made to prevent the appearance of these mannerisms.

Although we know all too little about behavior difficulties of visually handicapped children, the psychoclinician dealing with this type of child must always keep in mind the possible influence of the physical handicap Similarly, in handling any type of children's problems he must be alert to the possible significance of recognized or unrecognized visual difficulty.

Educational Achievement—The dependence of academic achievement on reading skill and the necessity of vision in reading underlie the educational retardation found among visually handicapped children To a great extent this situation may be ameliorated by special educational procedures, but, unfortunately, these are not ordinarily available in the regular schoolroom In Table XXII it was noted that from 25 to 30 per cent of school failures were attributed to defective vision. Keyes (1911) reports the following percentages of children who repeated the various grades as having defective eyesight:

Grade	Per Cent
I	36
II	30
III	39
IV	40
V	37
VI	40
VII	24
VIII	19
IX	18

Myers (1930) reports, for a group of 155 pupils in Chicago sight-saving classes, a promotion rate of 73 1 per cent while in the regular class, whereas in the special classes the rate for the same children was 84 9 per cent. The promotion rate for 2013 children in sight-saving classes was 87 8 per cent, which compares favorably with the rate for normal children From this we may reasonably conclude that the retardation of children with partial vision in the regular grades is due in large measure to inadequate teaching methods

The above contrast of the promotion rates for visually handicapped children is not an entirely true picture of their academic success If we use being over-age as an indication of academic retardation, the visually handicapped are in a decidedly unfavorable position. Myers reports the following percentages for his 2013 children

	Under-age	Normal	Over-age
At time of entering special class	8 3	60 6	31 1
At time of survey	7 2	56 6	36 2

In spite of the practically normal promotion ratio in the special classes, there was an increase in the proportion over-age for grade. Myers does not attempt to explain this, nor can we A more important problem is that about a third of these visually handicapped children were over-age for their grade. Regardless of satisfactory progress in the sight-saving class, this means that these children will not complete their academic training until they are a year or more older than equally able sighted children. This adds a further difficulty in making suitable social and vocational adjustments

A further interesting finding of Myers shows the best and poorest subjects of the sight-saving class pupils Arithmetic, reading, spelling, English, history, and geography were all reported as the best and the poorest subjects for more than 100 children For example, arithmetic was reported the best for 932 children and the worst for 756 children The above list is given in the order of frequency of being reported as both best and poorest subjects The conclusion Myers draws is that "there was, then, no subject in which these children were rated better than in others without having an almost equal percentage of children rated poorly in the same subject"

The use of standard educational achievement tests has apparently been limited in sight-saving classes, although something more than a beginning has been made in their use with blind children Hayes (1921) adapted a number of achievement tests for use with the blind These include adaptations of Courtis Practice Tests in Arithmetic, Starch Test of Grammatical Usage, Trabue Sentence Completion Tests, Harlan's American History Information, Starch Dictionary Spelling Test, Ayres Spelling Scale, Courtis Map Test, and Hahn-Lackey Geography Test Since this time a number of other educational tests have been made available for use with blind children, these have been described by Maxfield (1927, 1928) and Thomas (1930). In general, the performance of blind children on these tests indicates a degree of achievement comparable to that of sighted children F K. Merry (1930) found that the errors in arithmetic made by visually handicapped children corresponded closely to those made by seeing children; in terms of total score on the test, there was also a favorable comparison between the two groups. The same author in 1931 showed that in language usage blind children are retarded when compared with seeing children on the basis of chronological age

Caldwell (1932) compared a small group of blind and seeing junior

high school pupils in the reading examination of the Stanford Achievement Tests. He found that blind children require from three to three and a half times as long as seeing children, but that, when the effect of their slower reading method is eliminated by removing time limits, the blind children have favorable achievement.

In the case of blind children, academic retardation because of being over-age is even more serious than with children who see partially. Some teachers of the blind feel that they are helping the individual by keeping him in school to a relatively advanced age—for example, graduating from high school at 25—because he is in a restricted environment Inasmuch as it is inevitable that the blind must sometime adjust to individuals with normal vision, this would appear to be a shortsighted policy In part, the educational retardation of blind children must be attributed to the slowness of available teaching methods F. K. Merry (1930a, 1932) has indicated that certain modifications in the use of Braille in the lower grades might overcome some of this slowness

Pechstein (1924) found better academic records in children with accidental blindness than in the congenitally blind On the other hand, Hayes (1923) found no consistent trend in educational achievement when the average performances were plotted according to the age at which vision was lost

From the clinical point of view, we may interpret the evidence to mean that visually handicapped or blind children are capable of educational achievement comparing favorably with that of seeing children provided suitable teaching methods are employed Therefore educational guidance should follow that for seeing children with si [illegible]

Vocational Guidance—Because of the obvious occupational limitations imposed by reduction of visual acuity, problems of vocational guidance are of peculiar importance for the visually handicapped In spite of this evident importance, many educators of the blind continue to hold the view that their education should be cultural, they often refuse to consider vocational training. R. V. Merry (1933) points out that vocational opportunities for the blind are limited, in part at least, by the fact that many schools refuse to experiment with new occupational possibilities but "continue to cling tenaciously to traditional occupations such as chair-caning and basket-making, which have long outworn their economic usefulness." The limitations set by

poor vision are often not so obvious to the individual with partial vision; consequently the vocational counselor of children in sight-saving classes must call attention to the eye condition and direct the children toward occupations where vision may be conserved

In spite of their limitations, we find some blind persons in each of the major occupational classes used by the U. S Census Bureau A comparison of the percentage distribution of blind persons and the general population on this basis is shown in Table LXXVIII, compiled from the U. S Census report (1928a) from data for the year 1920. According to the same census, there were a number of occupations listed for the blind which were not specifically isolated in the general tables For men, these include the following, with the percentage of the blind reported engaged in them·

TABLE LXXVIII —APPORTIONMENT OF BLIND AND OF THE GENERAL POPULATION IN THE MAJOR OCCUPATIONAL CLASSES, 1920

	Blind	General Population
Agriculture	13 2	26 3
Extraction of minerals	0 2	2 6
Manufacturing and mechanical industries	43 1	30 8
Transportation	1 5	7 4
Trade	17 6	10 2
Public service	0 5	1 9
Professional service	14 0	5 2
Domestic and personal service	5 5	8 2
Clerical occupations	3 9	7 5
Unclassified	0 6	

Broom makers	14 0
Piano tuners	7 6
Chair caners	6 4
Basket workers	1 7

and for women·

Chair caners	7 5
Basket workers	4 6
Weavers	3 4
Carpet and rugmakers	2 8

This list of specific occupations (percentages are given in parentheses) also includes, for men. farmers, (11.2), retail dealers (9.1), musicians and music teachers (6 6), clergymen (1.5), school teachers (1.2); and for women: seamstresses and fancy workers (20.4), musi-

cians and music teachers (9 4), school teachers (6.5), stenographers (3 3) This is by no means the complete list, but the occupations here cited show that many vocations are open to the blind who have adequate training.

Summary—There is nothing in the résumé of certain psychological problems of the visually handicapped, just presented, to warrant considering them as a group in any way abnormal. Therefore, psychoclinical problems concerning these children should be met in the same manner as when they occur in seeing children. Of course, the fact of the visual handicap must be considered as the primary problem and all plans for management be evolved with this in mind.

Auditory Defects

Next to vision, the most important sense is audition. In some respects it may be even more important For example, much of our everyday activity is guided and controlled by sounds—human voices, bells, whistles, horns, and so on, especially the first In situations where these are important, the deaf and, to some extent, the hard-of-hearing person will be at a disadvantage In fact, the Committee on the Deaf and Hard-of-Hearing of the White House Conference (1931) says, "Deafness is a disability causing a greater educational handicap than blindness" However, there would seem to be grave doubts of the truth of this statement. Auditory defects in children may influence their behavior in a number of ways, and in a specific problem case such a defect may be of the greatest etiological moment

The Ear—The organ of hearing is the ear, which may be divided into three parts the outer, middle, and inner ear. The outer ear includes the pinna or auricle, which is externally visible and serves somewhat to concentrate and direct air waves. From the pinna a canal, the auditory meatus, penetrates the temporal bone and is covered at its internal terminus by the tympanic membrane or eardrum This membrane is one boundary of the middle ear, which is connected with the oral cavity by the Eustachian tube Thus, pressure on the two sides of the eardrum may be equalized In the middle ear is a chain of three bones—the hammer, anvil and stirrup—which act as a lever system to transmit vibrations across the chamber to the oval window, the membranous boundary between the middle and the inner ear The inner ear includes two structurally and functionally distinct systems. the semicircular canals, which serve the sense of equilibrium,

and the cochlea, which is the organ of hearing The cochlea is a spiral tube imbedded in the bone, divided throughout its total length into two compartments by the basilar membrane and completely filled with fluid. This membrane, with associated sensitive cells of the organ of Corti, comprises the sensory organ proper. It is in a way analogous to the retina of the eye. As in the eye, all of the other structures of the ear serve to concentrate and transmit vibrations from the surrounding air so that they will set the basilar membrane in vibration. For the

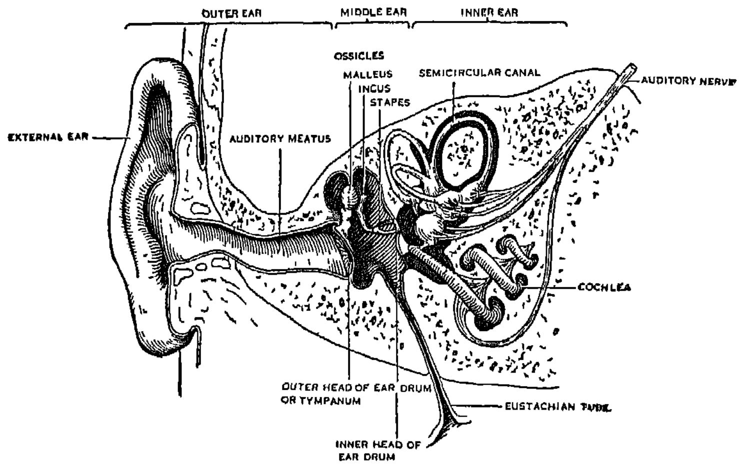


Figure 21.—Longitudinal Section of the Ear, Schematic

details of structure and the theories of function of the ear, the reader is referred to the standard textbooks of physiology or psychology.

Auditory Acuity—As with the eye in vision, the most important question is how sensitive is the organ of hearing. Auditory acuity is expressed as ten times the logarithm of the ratio between the intensity of a sound just barely heard by the ear being tested and the intensity of a sound barely heard by the normal ear. The acuity is expressed as:

$$\text{S. U equals } 10 \log \frac{I}{I_0}$$

where S. U. means sensation units, the term ordinarily used for auditory acuity, although it is the equivalent of the decibel unit used in sound engineering, I represents the intensity of the test sound necessary for it to be audible to the subject; I_0 is the threshold intensity of

the sound for subjects with normal hearing. Thus, if a certain sound, say the figure 3 spoken by a man, must be 100 times as loud as for the normal ear in order to be just audible to the subject, the hearing loss in S U is:

$$\begin{aligned} S\ U &= 10 \log \frac{100}{1} \\ S.\ U &= 10 \log 100 \\ S\ U &= 10 \times 2 \\ S\ U &= 20 \end{aligned}$$

That is, this subject would have a hearing loss equal to 20 units, which amounts to about 16.6 per cent loss. The methods of determining auditory acuity we shall consider below. No specific degree of loss that represents a serious defect has been determined or conventionally adopted In most studies a loss of nine or more units as measured by an audiometer has been used for selecting children for further study. But this value is arbitrary and probably does not represent a very serious loss, in terms of understanding general conversation However, it must be remembered that auditory acuity is greatly affected by noises in the environment Therefore, a child whose hearing, measured under standard conditions, shows a loss of nine units, might well be at a disadvantage in certain more than usually noisy situations

Hearing loss will result from any condition which interferes with the transmission of vibrations, with the functions of the various parts of the ear, or with the auditory nerve. There appear to be no data on the reasons for partial hearing loss, so we must turn to the data on deaf children Deafness represents a serious hearing loss, but total deafness is extremely rare As deafness is only an extreme degree of hearing loss, data on its cause may be significant to some extent in partial hearing Richardson and Shambaugh (1928) report a study, made under the direct supervision of the latter, of 3120 children attending ten state schools for the deaf The data from this study on the causes of deafness are presented in Table LXXIX Of the cases reported as having acquired deafness, 256, or 21 48 per cent, had a history of otitis media

The figures found in this study do not agree with the opinion held by some authorities, that the percentage for acquired deafness is higher than that for congenital deafness. It must also be noted that congenital

TABLE LXXIX —DISTRIBUTION OF CAUSES OF DEAFNESS

Cause	Number	Per Cent
Congenital	1928	61 47
Acquired	1192	38 53
Specific Causes of Acquired Cases	**Number**	**Per Cent of Acquired Cases**
Meningitis	209	6 69
Scarlet fever	100	3 20
Measles	97	3 11
Influenza	91	2 91
Pneumonia	54	1 73
Whooping cough	42	1 34
Fever	38	1 21
Poliomyelitis	37	1 18
Suppurative otitis media	34	1 09
Mastoiditis and operation	32	1 02
Mixed infection	32	1 02
Unknown	283	9 07

NOTE Causes reported in less than 1 per cent of the cases, with the number of occurrences, are skull fracture (24), probable syphilis (24), typhoid fever (22), diphtheria (19), brain fever (13), mumps (12), probable otosclerosis (6), chicken pox (3), fright (3), spasms (2), sleeping sickness, rickets and tuberculosis (1 each)

does not here mean hereditary Of the 1928 children reported as congenitally deaf, there were only 349, or 18 1 per cent, with a history of deafness in the family, and some of these were without doubt cases of acquired deafness, e g, from old age, which would have no influence on heredity Other causes of congenital deafness are (Holt, 1910) · ostitis, periostitis of the temporal bone encroaching on the cavity of the middle ear, ankylosis of the ossicles, absence of the internal ear or any of its parts, degeneration of the labyrinth, atrophy of the auditory nerve, and brain lesions.

In addition to these causes, attention should be called to conditions which may result in hearing loss Foreign bodies in the ear, impacted cerumen or wax, or unhygienic conditions that result in plugging the auditory meatus will reduce auditory acuity Impairment from these causes is, of course, temporary and can be easily corrected by removal of the substance

Statistics.—The number of children with impaired hearing has been reported in several studies The earliest of these appears to have been made in 1902 by the U. S Bureau of Education (1902), and includes seven cities, of 57,072 children examined, 3670 were reported to have defective hearing However, there is no description of the methods of examination or the criteria used. Fowler and Fletcher's (1926) sur-

vey is the earliest based on examination with an audiometer Of 4112 children examined in schools in several communities, 14 4 per cent were found to have a hearing loss of nine units or more On this basis, these authors estimated that there were 3,000,000 children in the United States with hearing defects Fowler (1928) in a subsequent study found no reason to change this estimate In Table LXXX

TABLE LXXX —SUMMARY OF SURVEYS OF HEARING WITH THE 4-A AUDIOMETER

Author	Year	Place	Group	Number Examined	Per Cent
Fowler and Fletcher	1926	New York		4,112	14 40
Warwick	1928	Ft Worth	Whites	16,895	21 16
			Negroes	1,969	12 05
Laurer	1928	Syracuse		4,419	11 30
Humphrey	1928	St Louis	Whites	13,594	5 20
			Negroes	2,006	3 00
Van Deveer	1928	San Francisco		30,742	5 00
Newhart	1929	Minneapolis		17,605	5 41
Sterling and Bell	1930	Washington	(Better Ear)	1,860	1 60
Madden	1931	New York		1,075	12 60

are given the data for a number of subsequent surveys in all of which the 4-A audiometer was used The median percentage of these studies is approximately 6 5, the percentage based on the total number of cases involved is 8 9

The number of deaf children enumerated by the U. S Bureau of Census (1931) was as follows·

Under 5 years	919
5–9 "	3950
10–14 "	6262
15–19 "	5669

This is a total of 16,800 deaf persons under nineteen years of age out of a total deaf enumeration of 57,084 These figures indicate that although the number of deaf is comparatively small, deafness is still a serious problem of childhood This is even more clearly shown in Table LXXXI, which presents data on the age at which hearing was lost In the first column are given the percentages reported by Richardson and Shambaugh (1928), and in the second column the figures from the U S. Bureau of Census (1928).

TESTS FOR AUDITORY ACUITY

Our interest in the measurement of auditory acuity will be limited to certain tests which are in common use and may be given in the

TABLE LXXXI.—AGE AT WHICH HEARING WAS LOST

	Richardson and Shambaugh		Census 1920	
	No	Per Cent	No	Per Cent
Congenital	1,928	61 5	13,513	38 6
Before 3	706	22 6	11,919	34 0
3–5	193	6 1	5,862	16 7
6–10	144	4 6	2,193[a]	6 2
Over 10	14	0 4	250[b]	7
Unknown	135	4 3	1,289[c]	3 6
Total	3,120		35,026	

[a] Includes years 6 to 9 only
[b] Includes 10 years and over
[c] Includes 621 reported as 'childhood'

psychological clinic or in the classroom. Two tests that require no special apparatus have been in use a number of years, but, because of the difficulties of standardization, they are usable only for approximate determination. The Western Electric Company has developed a series of audiometers designed to give relatively precise measures of the degree of hearing loss

The two cruder tests in common use are the watch-test and the whisper-test. In the watch-test a man's watch (some workers prefer the Ingersoll variety) is used for sound production The subject is placed at one end of a room, the ear to be tested being toward the examiner. The watch is first held close enough to the ear so that the subject can become familiar with the sound of the ticking It is then moved away from the ear about six inches at a time until it is no longer heard From a distance well beyond this point it is moved toward the ear until the subject reports hearing it again. This is repeated several times, and an average is found for the distance at which the ticking is barely heard. In actual tests norms must be established on a number of children in the situation where the test is to be used. This must be done each time because of the masking effect of other noises from the street or building Kerrison (1930) says that the functionally normal ear should hear a watch tick at from 35 to 50 inches McLeod (1934) says that the tick of an Ingersoll watch can be heard by the normal ear at 48 inches, and this is taken as the standard distance. The hearing may be expressed as a fraction, the denominator of which is 48 and the numerator is the distance at which the watch is

just heard. Thus, if the threshold found for the right ear is at 22 inches, the hearing would be expressed by the fraction 22/48

The whisper-test is also commonly used, but because of the difficulty of reproducing the same intensity from time to time it also lacks precision. Wallin (1927) says that the best results are secured when the whisper is made with residual air only The child being given the test must not be allowed to see the examiner's lips He is placed with the ear being examined toward the examiner, and the other ear is closed tightly with a plug of cotton or the tip of the little finger. The examiner clearly and distinctly whispers digits at random from a prepared list It is usual to begin at about 20 feet from the ear and if the whisper is not heard to approach slowly until the child can repeat the digits correctly Fletcher (1925) says that the normal ear can hear numbers presented in an average whisper at a distance of 40 feet if there are no other sounds Newmayer says that the examiner should start 20 feet from the ear Wallin (1927) quotes Butterworth's suggested standards for the whisper-test as follows (a) very slight deafness whisper heard beyond six feet but not at twenty feet; (b) slight deafness whisper heard in a range between three and six feet; (c) hard of hearing inability to hear whisper at three feet but can hear voice at six feet Because of the variability in whispers and the lack of agreement as to the distance at which the normal ear can hear a whisper, this test is even less satisfactory than the watch-test.

The precision instrument in most common use today is the 4-A audiometer. The 1-A, 2-A, and 3-A audiometers are designed for individual testing and determining hearing acuity throughout a wide pitch range, the 2-A instrument in particular has a useful diagnostic value for the otologist The 4-A audiometer is designed for examining groups of children in the classroom It consists of a phonograph with a magnetic pick-up and 40 headphones which are activated by the phonograph records Thus up to 40 individuals may be examined at one time The test itself consists of four series of three-place numbers, two series being spoken by a man and two by a woman. The intensity in each series decreases by regular steps The child is given a prepared blank on which to record the numbers he hears. The amount of hearing loss may be determined directly from the record sheet The hearing loss on any of these audiometers is expressed in terms of sensation units, and the percentage of hearing loss may be obtained

by multiplying these units by certain factors given by Fletcher (1925). For speech as tested by the 4-A audiometer this factor is .83; for the 3-A audiometer it is 1 00; for the watch tick it is 1 5, and for pure tones as used in the 2-A audiometer the factor varies with the pitch. In the article just cited, Fletcher gives a complete discussion of the relation between various tests of auditory acuity In Table LXXXII

TABLE LXXXII —EQUIVALENCE OF AUDIOMETER AND WHISPER TESTS

Hearing Loss in S U	Distance at Which Average Whisper is Heard
0	39 5 feet
5	22 2 "
10	12 5 "
15	7 0 "
20	4 0 "
25	2 2 "
30	15 0 inches
35	8 5 "
40	4 7 "
45	2 7 "
50	1 5 "
55	8 "

are given the distances at which an average whisper can be heard, when presented under noiseless conditions, by ears with the specified hearing loss.

In addition to, and even before, the determination of auditory acuity the psychoclinician should look for other signs of possible hearing difficulties Among such signs that might be noticed in the clinic or be reported by teachers are: discharging ears, earache, noises in the head, frequent requests to have statements repeated, turning one ear in the direction of the speaker, unusual mistakes in diction, peculiar voice qualities, bewildered or baffled facial expression, difficulty in gaining and holding attention on verbal directions, and, in some children, personality defects in the nature of shyness, aloofness, suspicion, and the like.

PSYCHOLOGICAL CHARACTERISTICS

Intelligence.—We might well expect the test performance of deaf and hard-of-hearing children to be inferior to that of children with normal auditory ability As we shall show, such a deficiency has usually been found, although Madden (1931) points out that the perform-

ance of hard-of-hearing children on the Stanford-Binet indicates they are more like normal-hearing children than they are like the deaf.

Madden (1931) appears to have made the most extensive study of the intelligence and achievement of hard-of-hearing children. He selected 46 children with the poorest hearing from a New York City school, and matched them by sex, age, and race with 46 normal-hearing children. On the Stanford-Binet the normal children had a mean I.Q. of 83.46, while the mean for the hard-of-hearing children was 77.04. The difference of 6.42 I.Q. points is 4.93 times its probable error and thus may be taken as significant. A similar difference was found when scores on the Pintner Rapid Survey test were compared. The Otis test was given in a small suburban school where, out of 183 cases, 13 were found with 6 S.U. or more loss in hearing. The mean I.Q. for the normal-hearing children was 101.55, and for the hard-of-hearing 93.38. The difference of 8.17 is only 2.34 times its probable error because of the very small number of hard-of-hearing children. However, it tends to corroborate the findings on the larger group. The correlation between auditory loss and a combination intelligence score based upon the Otis Intermediate Examination and Pintner Rapid Survey test was only — .128 ± .049. In the larger city school the correlation was — .123 on 537 cases. In both cases the influence of chronological age was partialed out.

Sterling and Bell (1930) had I.Q.'s of 585 children of the group studied. It will be seen in Table LXXXIII that a relatively larger proportion of serious hearing loss occurs in the lower intelligence groups. However, as the authors point out, the number of children

TABLE LXXXIII.—RELATION BETWEEN INTELLIGENCE AND HEARING LOSS

Hearing	Percentage of Children			Number of Children		
	Intelligence Quotient above Average	Intelligence Quotient Average	Intelligence Quotient below Average	Intelligence Quotient above Average	Intelligence Quotient Average	Intelligence Quotient below Average
All children	100.0	100.0	100.0	167	311	107
Normal or above	74.2	71.7	60.8	124	223	65
Slight loss	25.2	26.7	35.5	42	83	38
Loss of 9 or more units	0.6	1.6	3.7	1	5	4

with serious hearing loss is very small and therefore too great generalization should not be made.

Madden analyzed the responses given by his children on the Stanford-Binet. He found, surprisingly enough, that the test item showing the greatest difference in favor of the normal group was reproduction of designs in Year X. On the other hand, the tests in which the hard-of-hearing showed superiority were giving rhymes in Year IX, and vocabulary in Year X. These findings might be taken to indicate that the inferior Binet performance of the hard-of-hearing is not due to lack of verbal ability.

It would seem unwise to accept the findings of these two studies as final and from them conclude that hard-of-hearing children are, as a group, inferior. It may be that more intelligent parents secure medical attention earlier in the child's life and, therefore, hearing loss has been in part corrected in their children by the time they are in school. Certainly, in dealing with the hard-of-hearing child, one should not be influenced by an idea of his intellectual inferiority. For example, the occupational adjustments of the hard-of-hearing as a group will be affected more by the hearing loss than by lack of intelligence

When we turn to deaf children we find a much more extensive bibliography of studies on their intelligence. These have been well summarized by Pintner (1931) This author, who himself has made extensive studies of deaf children, points out that the reported experiments show a definite lack of ability in deaf children to understand printed or written language, and also a general inferiority in test performance amounting to about two or three years This deficiency is equally evident in both congenitally and adventitiously deaf children. In the review cited and in earlier papers, Pintner has demonstrated the inferiority in both language and non-language tests, and he is quite certain that the difference is definitely a real one

In Table LXXXIV are presented data from a survey of the Indiana School for the Deaf made by Mrs Ada Marker under the writer's direction These data have not been published elsewhere The Pintner Non-Language Test was given to 404 children in all of the grades through high school Forty-five of these children, together with 42 kindergarten children, were also given a battery of seven performance tests The distributions show that, in this school at least, the deaf could hardly be called inferior in mental ability. Even though this

TABLE LXXXIV —DISTRIBUTION OF INTELLIGENCE AT THE INDIANA SCHOOL FOR THE DEAF

Class	Pintner Non-Language Test				Battery of Individual Performance Tests							
	Grades 1 to 12				Kindergarten				Grades 1 to 12			
	Boys		Girls		Boys		Girls		Boys		Girls	
	No	Per Cent	No	Per Cent	No	Per Cent	No	Per Cent	No	Per Cent	No	Per Cent
Very superior	13	6 2	6	3 1	2	8 7	0		1	3 4	0	
Superior	55	26 2	58	29 9	1	4 3	0		3	10 3	1	6 2
Slightly above average	53	25 2	30	15 5	5	21 7	8	42 0	3	10 3	1	6 2
Average	55	26 2	58	29 9	9	39 1	5	26 3	7	24 2	4	25 0
Slightly below average	10	4 8	21	10 8	2	8 7	1	5 2	1	3 4	3	18 8
Low normal	21	10 0	20	10 3	3	13 0	3	15 8	13	44 8	7	43 8
Border-line	2	0 9	1	0 5	0		2	10 5	0		0	
Feeble-minded	1	0 5	0		1	4 3	0		1	3 4	0	
Number of cases	210		194		23		19		29		16	

school rigorously excludes all determinable feeble-minded children, one could hardly think that this exclusion is the only reason for the nature of these distributions

In a monograph published after Pintner's (1931) review, MacKane (1933), compared matched groups of deaf and hearing children on the Arthur, Pintner-Paterson, and Drever-Collins Performance Scales Pertinent data for the total group of 130 pairs are shown in Table LXXXV While there are differences in the mean performances, none

TABLE LXXXV —COMPARATIVE SCORES OF DEAF AND HEARING CHILDREN ON THREE PERFORMANCE TESTS

Test	Score	Hearing		Deaf		Diff	σ Diff	Diff / σ diff
		Mean	σ	Mean	σ			
Grace Arthur	M A	126 6	22 46	119 6	26 99	7 0	2 39	2 92
Pintner-Patterson	M A	126 78	20 76	121 15	26 81	5 63	2 53	2 23
Drever-Collins	M A	146 88	26 39	140 02	29 88	6 85	2 87	2 38
"	Scores	89 11	17 74	83 84	22 85	5 27	2 14	2 47
Pintner Non-Language	"	320 64	75 19	244 47	105 59	76 17	10 69	7 13

of them are statistically significant The author gives similar data separately for boys, girls, and ten-, eleven-, and twelve-year-olds In all of these only the difference between the means of the girls on the Arthur Scale is more than three times its S.D. When comparisons are made on the basis of raw scores instead of mental age score the difference on the Drever-Collins Scale is not significant but that on the Pintner Non-Language Test is decidedly so, suggesting that these two tests are measuring entirely different abilities.

This finding corroborates the earlier reports of Drever (1929) and Drever and Collins (1928), who found no superiority shown by hearing children on their performance scale. Perhaps the lack of agreement between this study and the others summarized by Pintner is in part due to the fact that the Drever-Collins Scale was intentionally designed for use with deaf children In 1931 Pintner said that the discrepant reports of the Scottish investigators could not then be explained. MacKane's study, made under Pintner's direction, would seem to reopen the question of the test ability of deaf children However, the last word has not been said, and for the present the psycho-clinician should deal with problems of hearing loss on that basis and not on the basis that children with defective hearing are necessarily inferior in mental ability

Personality—The presence of any physical defect must inevitably have an influence on the way an individual learns to react to his social environment This influence is peculiarly pernicious in the case of defective hearing The blind and the crippled are easily noted in a group, with the result that the behavior of other people toward them takes account of the deficiency This is not true of deafness As Smaltz (1931) says, the deaf person may find himself in difficult situations because other people are unaware of his handicap Rather than be placed in embarrassing situations, the deaf person may tend to withdraw from social contacts, and develop deep feelings of inferiority as a consequence of the withdrawal Therefore, special effort should be made to help the deaf child learn to adjust to his hearing companions Such attention must be wisely controlled, for such a child may suffer an equally serious personality distortion from over-solicitude For example, Tad, whose history is told by Mary Sayles (1928), was, by virtue of his apparent deafness, the far from benevolent tyrant of his household

Research on the personality of the deaf and hard-of-hearing does not seem to be plentiful. Madden (1931) asked the teachers of hard-of-

hearing children in the groups he studied to rate them on the following traits: attentiveness, obedience, leadership, shyness, and feeling of being slighted or persecuted. These ratings were made on a five-point scale There were no differences between the normal and hard-of-hearing children in any of the traits except leadership and shyness In both schools studied, especially in the suburban one, the children with normal hearing were rated higher in leadership. As leadership hardly accompanies shyness, we might well expect the hard-of-hearing children to be more shy than children with normal hearing This was found to be true, and in quantitative rating the difference in the mean rating of the two groups was statistically significant.

From this very inadequate evidence, we might expect to find the most serious personality problem of children with auditory defects to be shyness and a tendency to withdraw from social contacts Apparently the widely held notion that hard-of-hearing children are inattentive is not borne out by the findings of the one study available

Educational Achievement—The educational achievement of deaf and hard-of-hearing children is closely bound up with the degree of intelligence Sometimes this has been overtly recognized, and sometimes not Humphrey (1928) reported that 60 per cent of 768 hard-of-hearing children had repeated at least one quarter, but he further says that this retardation was not wholly due to the hearing deficiency, although this was an important factor Warwick (1928), Laurer (1928), and Sterling and Bell (1930) all report a high proportion of retardation among children with hearing loss. As we have shown in an earlier chapter, school retardation may be caused by any one of several factors. Since this is as true for the hard-of-hearing as for children with normal hearing, reports of proportion of retardation cannot be taken as adequate indication of academic achievement.

Taussig (1909) felt it necessary to do considerable explaining when he found little inferior achievement among his children with defects The fact that he formulated a number of theories to explain away his data is an indication of the belief held almost as widely now as twenty-five years ago, that the hard-of-hearing child must be poor in educational achievement When Madden (1931) matched his group of 46 hard-of-hearing with normal-hearing children on the basis of sex, age, race, and I Q., he found no differences in the achievement of the two groups as measured by the Stanford Achievement Test The lack of an inferiority in the hard-of-hearing group was evident in the total score and in the sub-tests. In fact, the non-significant differences

found were in favor of the hard-of-hearing for word meaning, spelling and arithmetic computation

When the achievement of deaf children is considered, Madden's conclusion, that the hard-of-hearing should be compared with hearing children and not with the deaf, is emphasized Reamer (1921) has made an extensive study of the mental and educational abilities of the deaf She standardized a non-language mental test and an educational survey test on approximately 2500 deaf children. While the deaf were inferior to the hearing on both tests, the inferiority was much more pronounced in educational achievement. The following quotation from her conclusion summarizes the findings pertinent in the present connection:

"The average difference in mental ability between hearing and deaf children is about two years.

"The average difference in educational ability between deaf and hearing can be expressed by saying that the deaf child is retarded five years when compared with the hearing child

"The average grade retardation of the deaf, according to hearing standards, is about three and one-half grades

"The discrepancy between the two years' retardation mentally and the five years' retardation educationally is due to the language handicap, and this is a good measure of the power of this handicap in the education of the deaf."

Speech and Hearing—We have elsewhere discussed the relation of speech development to hearing. The deaf child will not learn to talk, as does the hearing child, by spontaneous vocalization ultimately modified to conform to the standard word sounds heard. He must be especially trained, and even then, if speech is established, his voice may have a toneless quality and often be little short of unintelligible. The lack of hearing, coupled with usual difficulties in learning speech, makes impossible adequate contact with the verbal world in which we live. Extreme deficiency in language abilities has been emphasized by almost all investigators as one of the important factors in the poor intelligence and educational test performance of the deaf. Pintner and Paterson (1916) showed that only 6 4 per cent of their deaf subjects scored above fourth-grade hearing children in the Trabue language scale. Quite evidently the difficulty in language arising from the inability to hear is the most serious handicap to educational or social adjustments

Chapter XV

NEUROLOGICAL AND PHYSICAL DISABILITIES

In the last chapter visual and auditory defects were discussed in detail because they appear to have a definite significance in relation to psychological problems A number of other physical disabilities also play important parts in the etiology of psychological problems. Two groups of these may be conveniently distinguished The first includes those conditions based upon neural pathology; in these, motor abnormalities are common symptoms, and ideational and emotional symptoms may also be evident. We shall discuss only encephalitis and epilepsy in detail and mention briefly a few other conditions. The second group may be given the ambiguous term, "lowered vitality." In this we shall include (mainly for convenience) several significant physical disabilities which are not primarily sensory or neurological

There are two matters that are of concern in the psychological study of children with any kind of neurological defects or, for that matter, any physical defect. The first of these relates to the measurement of abilities Most tests have been made for children with full use of all sensory and motor functions As we have said in connection with the birth-injured feeble-minded, presentation and interpretation of tests and test results in the case of physically abnormal children must be modified and qualified in the light of their physical disability.

The second concern of general significance relates to the possible personality patterns developed by the physically abnormal child. With the limitations imposed by gross neurological or other physical abnormalities, the child may feel that he is cut off from other children and may develop attitudes of inferiority, resentment, loneliness, insecurity, and so on Furthermore, his parents' reactions to his deformity may show over-solicitude, with the result that the previously mentioned attitudes are augmented and the child may become hopelessly dependent not only physically, but psychologically as well. The psychologist may, on occasion, be called upon to help the parents see that a more normal attitude will be beneficial for the child,

or he may need to help the child himself adjust to his physical limitations.

Encephalitis

Encephalitis is a generic term, meaning literally an inflammation of the encephalon or brain, and is applied to a number of conditions that have not been clearly separated. One of these is an epidemic variety known as encephalitis lethargica. It is this form that is of particular interest to us because of the frequent behavior sequelae.

There appears to be no doubt that the disease is caused by a pathogenic organism the nature of which is as yet unknown. No part of the central nervous system is spared, but the basal ganglia, mid-brain, and medulla are perhaps most frequently affected. The pathology, gross and cellular, may be widespread, or concentrated in a limited area. It is fairly characteristic, most cases showing at post-mortem punctate hemorrhages, blood-vessel congestion, leucocytic infiltration and evidences of toxic nerve-cell degeneration. These findings are from severe cases; as yet, practically nothing is known of the pathology in patients who suffer behavioral changes.

Symptomatology of the acute attack varies. The onset may simulate a common head cold; there may be fever, abnormal involuntary movements, diplopia (double vision), disturbances of both deep and superficial reflexes, neck rigidity, insomnia, facial paralysis, pupillary anomalies, and many other symptoms in combination, or isolated. One rather characteristic symptom is drowsiness and coma, during which the patient may be aroused momentarily. In some patients insomnia, reversed sleep curve, overactivity, excitement and delirium may occur instead of coma. The problems of diagnosis and treatment of the acute stage are entirely medical and we cannot discuss them here. Wechsler (1935) has an excellent short account, and the Matheson Commission (1929, 1932) has published extensive résumés and bibliographies, to which we must refer the reader who is interested in the medical aspects of the condition.

The acute attack may be followed immediately by neurological or behavioral sequelae, or it may subside and sequels appear weeks, months, or even years later. Burt (1922) says, "The eventual condition seems to depend very largely upon two factors, the severity of the initial illness and the age of the child when first attacked." Paterson and Spence (1921) reported on 25 children who had acute attacks

between the ages of three months and eleven years. Of these, 25 per cent had complete recoveries, the balance showed permanent disturbances such as idiocy and minor degrees of mental derangement, including 30 per cent who had a residual paralysis. Neurological sequelae, especially Parkinsonianism, are more frequent in adults than in children. Dawson (1928) says that in from 50 to 85 per cent of patients with Parkinsonianism there are eventually mental changes in the direction of emotional dullness and intellectual impairment. "In children under ten, the Parkinsonian syndrome rarely develops, but there is a marked tendency to mental arrest or impairment, antisocial behavior, and weakening of moral sense." In a summary of the literature Hetherington (1933) says, "Children under three who have suffered from the disease have not been known to attain normal mental development afterward. Those having the attack between the ages of three and ten or eleven usually suffer neurological aftereffects."

There are exceptions to these generalizations, as shown by occasional cases. Chiampi and Crespo (1931) reported a girl with both respiratory and conduct disturbances. Catalano (1927) described a child who exhibited character changes following an acute attack and in whom a Parkinsonian syndrome appeared after three years. At post-mortem deep lesions were found in the cerebral cortex, basal ganglia and spinal cord, with evidence that the cerebral lesion had been the first to appear.

Parkinsonianism, or the Parkinsonian syndrome, is characterized by the gradual development of a stiff, expressionless, "mask-like" face, muscular rigidity, excess saliva production resulting in drooling, and monotonous voice. Rhythmic jerkings occur in single members or, more widespread, in arms, legs, and head, respiratory spasms are also part of the picture. The gait is affected to some degree—mildly when the trunk is bent and the patient walks slowly without swinging the arms, or severely when he sways while standing and then moves forward at a rapid irregular run which frequently ends in a fall if he is not stopped. As has been mentioned earlier, this syndrome develops less frequently in children than in adults.

The mental or behavioral symptoms found more often as sequels in children take a variety of forms. Ebaugh (1923) lists the following as symptoms found in seventeen post-encephalitic children without Parkinsonianism: total change in character and disposition, insomnia

with nocturnal agitation, affective disorder of a depressive type, hysterical reactions, tics, fears, etc, mental deficiency, headaches, dizziness, diplopia, drowsiness, asthenia (lack of strength). Complete changes in behavior patterns are commonly reported Obedient, orderly, truthful children become disobedient, disorderly and untruthful; they may become so obstreperous that they commit serious anti-social acts In the cases to be presented shortly these behavioral changes are well illustrated Stryker (1925) has prepared the following list of characteristic encephalitic sequelae in children·

1. Sleep curve reversed, i e, sleeps in daytime, awake at night
2. Malicious mischief—"moral imbecility"
3. Assaultive—attacks without provocation
4. Emotional instability—extremely changeable
5. Lack of inhibition—applicable to all acts
6. Panting respiration—apparent even when not fatigued
7. Impulsive action—acts without proper stimuli
8. Not amenable to discipline
9. Indifferent—ordinary appeals of no avail
10. Irritable—adjustment to environment impossible
11. Obstinate—persistent
12. Profane
13. Lying—not unlike the "psychopathic liar"
14. Talkative—stream of talk
15. Well oriented—to limit of mental level
16. Petty thieving—fails to recognize rights of others
17. Memory and attention often impaired
18. Personally untidy—no attention to self
19. Slowing up of speech
20. Impudent—no respect for anyone
21. Tics—very often spits continually
22. Depressed—general depressed attitude in higher grades
23. Localized pain—often complains of pain the basis of which is not found
24. Visual impairment—more noticeable at high levels
25. Poor motor control
26. Dominating—when not depressed, thrusts self forward
27. Restlessness—general hyperactivity

The following cases show the behavior picture found frequently

following encephalitis. The last two cases, in particular, suggest suitable methods of dealing with the behavioral problem.

Case Number 57 (Stryker, 1925). Joseph was born November 2, 1916, and at the time of admission to the Vineland Training School was nearly nine years old In 1921, at the age of 5 years, he had, according to all records and diagnoses, an attack of encephalitis lethargica After recovery his parents were unable to control him as formerly He was finally committed to the State Home for Boys on a charge of incorrigibility. At this institution he was found to be mentally subnormal and not a disciplinary case in the sense of willful misconduct. The physician and the psychiatrist of the institution concurred in a diagnosis of encephalitis lethargica and he was transferred to the Vineland Training School in October, 1925.

His first day in the cottage he started to fight with the other boys, striking and kicking them so that transfer to a cottage of more active boys capable of self-defense finally was considered necessary He was quarrelsome, meddlesome, destructive, and utterly unable to get along with the other children He snatched their toys, breaking and soiling them. His language was profane and his table manners so poor that he could not be allowed to eat with the other boys.

After transfer to a cottage of more active boys his behavior continued to be aggressive, assaultive and destructive His untidiness presented a continuous problem It required considerable attention to keep his clothes on properly and to keep him clean. He was subject to enuresis night and day There appeared to be an over-secretion of saliva causing him to drool and spit excessively Restlessness during the night to the extent of wandering around the dormitory, and periods of drowsiness during the day indicated his tendency to reverse his sleep curve

Physically Joseph is undersized His measurements indicate his growth to be equal to that of a normal boy three years his junior His psychophysical development is likewise retarded A medical examination reveals chronic torticollis with contracture to the left. This condition, apparently, is a physical residual of his disease. The degree of curvature varies; at times he stands nearly straight when he wants to but does not like to because it hurts his back With the incentive of a reward, however, he will stand almost erect In connection with this, flashes of a greater degree of brightness were noted One of his teachers would hold up a stick and, when he touched it, would reward him One day she raised the stick quite a bit and Joe said,

"You put that stick up. How can I touch it?" seeing through her game

Because of his low mental level and non-literacy the number of tests he could be given was limited. A good degree of correlation among those given may be noted, however. His mental level appears to approximate 5 years which was his age at the onset of the disease.

His Binet test age was 4 years 10 months, I.Q. 54 on first examination. On a retest two months later he obtained a score of 5 years 4 months, I.Q 58 His basal year was III in both instances, but above Year IV his success and failures varied. His zero year on the first examination was VII, whereas he passed the VII-year test of repeating 5 digits on second examination, thus raising his zero year to VIII. This variability in results one suspects is due to his instability He exhibited good rote memory, poor reasoning ability and motor control, and stereotype responses On the Porteus Maze Joseph passed only the III-year test, making his score 3 years This success was due to imitation He did not know how to hold a pencil and his motor control in this test, also, was poor His score on the Detroit First Grade Intelligence Test was 10, which gave him a rating of "E" and placed him in the slow-moving group for entrance to first grade On the Goddard form board, Joseph's performance was equal to that of a normal six-year-old boy His motor control on this test was fairly good. Apparently there was better coordination for larger movements such as are required here than for the smaller movements such as are required in holding a pencil, copying a square, etc. The school examination shows that Joseph's school achievement does not equal even grade I, although it is reported that he attended public school, but with "poor" success. He can count only to five. During the examination, it was noticed that he was restless and over-active with a tendency to become easily fatigued His attention was very distractible and it was difficult to hold it to the tests. He was a hard child to manage in the clinic room as he was restless and obtrusive, wanting to handle everything he saw He seemed to realize that his pranks were annoying but just grinned and took added delight in them.

A complete study of Joseph's case shows that the behavior symptoms are characteristic residuals of encephalitis lethargica He presents such characteristic symptoms as irritability, destructiveness, assaultiveness, over-activity, profanity, liability to mental fatigue, personal untidiness, a tic in the form of excessive spitting, poor motor control, defective attention, and a mental level equal to that of his age at

the onset of the disease, accompanied by a physical residual in the form of a curvature.

Case Number 58 (Willson, 1925). Angelo was committed to the State Home for Boys eight months ago following his third arrest for stealing He is thirteen years old and was born in the United States of respectable Italian parents He is the seventh in a family of eleven children. His parents and siblings are law-abiding and his home is comfortable He was an ordinarily amenable youngster, showing no peculiarities of conduct as far as has been noted, up to the age of eight years when he suffered from sleeping sickness This diagnosis was made at a city hospital where he was a patient. Immediately following this illness he was extremely nervous and awkward and it was thought that he had chorea. A few months later he was operated on for appendicitis

During this long illness he was naturally much petted and humored, and when he began to show extreme irritability, obtrusiveness and restlessness his parents and others said he had been "spoiled." But discipline which had sufficed for his brothers and sisters failed to influence him As soon as he was able to get about he began stealing "anything he could lay his hands on" He would run out of a moving picture show after a very few minutes of a vain attempt to sit still Periods in a detention home and admonitions of parents, physicians and courts alike wrought no change. In school he was a failure, of course, being still in the second grade at twelve years of age.

On admission to the State Home for Boys at the age of 12.5 years, the psychologist found his test scores to indicate a border-line level but deferred diagnosis on account of the marked personality disturbance present His attention was very mobile and it was considered probable that increased stability might enable him to attain higher scores He was rated by the examiner as irritable, talkative and obtrusive. It was noted that along with his general restlessness there were frequent twitchings of facial muscles and a short spasmodic intake of breath about once a minute.

The medical examination at commitment showed no positive findings other than forward curvature of the six upper vertebrae, making the boy appear to have almost no neck at all—a peculiar dwarfed appearance. The boys call him "guinea pig" This curvature is common in cases of this sort, though not always present. A thorough psychiatric and neurological examination led to a diagnosis of post-encephalitic instability

The classification committee at the institution, after discussion, recommended that he be assigned to school one half day and to assist his cottage matron in housekeeping the other half day so that supervision would be continuous. It was further ordered that, upon serious misconduct, the boy should be sent to the hospital for quiet restraint as a punishment The psychologist undertook to instruct the cottage officer in the nature and proper treatment of this case

Nevertheless, Angelo's eight-month stay has been a stormy period. For a time he appeared to be constantly inciting discord He played tricks on his associates, fought, stole, lied, etc Every officer who dealt with him agreed in declaring him to be a thorn in the flesh Yet, withal, he is a likable chap, for he is always buoyant, never depressed, and his confidence in himself is amazing

Of late there appears to be a slight improvement in his conduct. He works a little more willingly and for a somewhat longer period without a diversion. In the third grade at school he is beginning to make some progress. But only today, in talking with the writer, he told of having tricked a boy into a fall and then blamed the boy for resenting it "Sure we scrapped. It was Cody's fault. I ain't got that kind of a temper"

Case Number 59 (Cole, 1924). M S., a girl of German parentage, aged fourteen years, referred May, 1922, by her school teacher. The complaint in this case was that the patient was irritable, quarrelsome, restless, violated all rules of the classroom, and had been expelled from school In March, 1920, the patient had influenza and epidemic encephalitis with typical symptoms. Her present behavior difficulties followed the illness.

The physical findings were chiefly coarse tremor of the tongue, asymmetry of the face, slurring speech, divergent strabismus, and sluggish pupillary reactions The patient was well-developed and well-nourished. Psychiatric examination revealed the fact that she felt abused by her teacher, resented being teased by her schoolmates, and thought that they were all against her She was hyperactive, emotionally shallow, inquisitive and resentful A psychological examination, May, 1922, showed a mental age of thirteen years and ten months, intelligence quotient 93 Reexamination, in March, 1923, showed no deterioration

Investigation disclosed that, previous to the illness, the patient was obedient and tractable. She went to bed and got up at a regular hour, came on time to meals, and was never late to school. She was clean and neat in appearance Her chores were done cheerfully. She had

many friends and rarely quarreled with them. In school she was diligent, although rather slow. Before her illness, she was in the eighth grade, doing good work, and expected to graduate at the end of the semester.

After the encephalitic attack, there was a complete change in her behavior. She became obstinate and impudent. She objected to complying with almost every request, and whined and nagged constantly in a persistent effort to have her own way. When she did not succeed, she would resort to certain annoying practices, such as snapping her fingers or scraping her feet on the floor for long periods. Usually she refused to help her mother, complaining of lack of energy or, when compelled to work, of aches, pains and fatigue. Such work as she did was done well, but she accomplished only about a third as much in a given time as formerly. Her habits were so irregular that her mother's plans were always being upset. She got up at any hour in the morning that suited her; demanded food continuously throughout the day and evening; took naps irregularly during the day, and refused to go to bed until late at night. Although she was nightly enuretic before her illness, she did not once have enuresis afterwards. Several times every night she would wake up, but would be powerless to get up or call out, and would make inarticulate sounds to call her mother to take her to the toilet.

In school she was extremely restless and desired constant attention from the teacher. She talked aloud, quarreled with the other children, argued with the teacher, and wandered about the room at will, while the school was in session. Because of poor attention, she was able to accomplish but half as much as before her illness, but even so her marks were satisfactory. Her behavior was so disturbing to the teacher and pupils that she was excluded from school, although she had but a few months' work to do in order to graduate.

She became an object of teasing in her neighborhood. Children called her "squeegee" and "goggle-eye," which enraged her. She would chase them and slap them. She was tolerated by several girls her own age who were out every night with boys, and through this association she, too, became "boy crazy" and nagged and flew into a rage every night when not allowed to go with these girls.

In this case, the mother and stepfather had been told that the behavior resulted from the sickness. But this fact had not been made sufficiently clear. Their supervision was wavering. They pleaded with her and nagged at her constantly, but were, withal, very patient and indulgent. In their ignorance, they were unable to control her by any means other than bribery, and with that method had only occa-

sional success After supervision was undertaken by the institute, the mother controlled the child to some extent by threatening to notify the worker to come and take her away in the "wagon" This method was not at first approved by the worker, but the mother's plea to be allowed to continue it, as it "worked wonderful" and gave her the first rest she had had in three years, could not be refused

The family could not afford a private school for the patient, though it is doubtful if any school would have received her; and the strain of having to cope with her all day, with never any relief, caused the mother's health to fail. The stepfather on two occasions made definite plans to leave home, since his home life was completely spoiled by the child's behavior When these crises were brought about, she became alarmed and penitent A brother, several years older than she, was annoyed by her whining and occasional tampering with his things, but as their contacts were rare, no serious trouble between them occurred.

Treatment was undertaken by the social-work department of the institute nine months after the patient's examination Information given the mother, as to the nature of the disease, resulted in less emotional reaction on her part to the patient's behavior The mere emphasis on the fact that the child was suffering from "an organic brain disease" had real psychologic value The mother remarked "Then we must treat her just as though she were insane" Under the worker's direction, the mother was able, with some degree of success, to establish for the patient a regular daily routine of living. Her sleep became less disturbed and there was a marked decrease in irritability

It was considered advisable that she should finish the eighth grade in school before going to work, and she was placed in the public school for crippled children, where the principal and teachers were readily interested in undertaking a special program for her and another institute patient, a post-encephalitic boy, who, because of "wryneck," was already a pupil in this school The program included regular rest periods, with hydrotherapy, followed by a twenty-minute period in bed, food at regular intervals; no severe punishment, and the practice of kindly, persistent urging to induce obedience and application to her work

Almost from the first, following this treatment, marked changes in the patient's behavior were noted by the mother. It was not necessary to take her to the toilet during the night, she ceased demanding food at all hours; she uncomplainingly helped her mother with the supper dishes; and accepted, with comparatively little resistance,

her parents' decree that she should not be on the streets after dark or go to public dances.

For a period of six weeks, a fair adjustment was effected. Then the child again became irritable and complaining She thought she was not being fairly treated, accused other children of telling tales about her, was impudent to her teacher, argued about everything, and often refused to do the tasks that were given her Her school work, however, was satisfactory, and she was given a diploma at the end of the session. When the social worker tried to get her a job, she refused the ones offered and, on her own initiative, got work in a factory as mail clerk, at a wage of $12 a week She has held this job for two weeks, but is dissatisfied with the work and salary

The friction at home continues The patient insists upon wearing her best dress to work, in spite of her mother's remonstrance She now wishes to get nose glasses and discard the shell-rimmed glasses which were obtained for her because she objected to her steel-rimmed ones She has joined two settlement clubs and tries to run them to her own taste. With boys she is very aggressive and is generally unpopular The stepfather is again threatening to leave home

This case illustrates the possibility of further education and the possibility of adjustment, although for a short time only. Because of the periods of upset, the prognosis is guarded, but with the frequent adjustments of environment, there is a chance that she will make educational, social, and economic progress.

Case Number 60 (Cole, 1924) E. S., a girl, twelve years old, referred July, 1921, by a children's hospital This child was referred because of "nervousness," insomnia, "terrible" temper, and attacks of breath-holding or, more frequently, of rapid, deep breathing during which she might moan, cry, strike out at people, claw, swear, run around the room, and tear up paper and clothing, in a short time appearing normal again

The exact time of the onset of this condition could not be stated, because the child was in a convent when it began During the school session of 1917-1918, it had been observed that she was beginning to be "nervous," jerky, and unable to sit still There was no complaint of her work, however, until the following November, when she returned home on vacation with a record of only passing grades Her jerkiness had increased and the Sister in charge of her had observed that she was easily irritated, restless, and inclined to be "touchy" and seemed lonesome and dejected when her mother did not come to see her. For a year or more she had had headaches of a migraine type

once or twice a week Her mother observed that she was flushed and put her to bed A doctor made a diagnosis of influenza, and she was in bed with fever for nearly three weeks. Immediately after she got up, spells of deep, rapid breathing began, not as violent as they became later on, but of the same type. The personality changes were also noted at this time Two years and a half later she was brought to the institute for examination

The physical examination showed marked underweight, very brisk reflexes, unequal pupils, somewhat rapid pulse, dermographia, and slight ataxia in finger-to-finger and finger-to-nose tests Metabolism, spinal-fluid Wassermann, and other tests were negative. Subsequent examinations in October and December, 1921, showed no changes except a greater inequality of pupils. Later, nystagmus was noted. A diagnosis of post-encephalitis was made eight months later. During the examination the patient had an attack, which consisted of panting, respiratory movements, with fullness of the neck, mouth wide open and pupils dilated She constantly moved about, fingering various objects, tearing up paper, attempting to scratch the examiner, spitting, and calling him bad names. Her muscles were somewhat tense, but there was no tremor. She did not respond, even to her name when it was shouted at her. The attack lasted four minutes. Afterwards she appeared as before, smiling and cooperative, but with increased respiration.

During the psychiatric examination, the patient responded and reacted well, between periods of excitement. Intelligence tests were not satisfactory because cooperation was interfered with by the periods of upset Her intelligence quotient July, 1921, was 83, in December, 1921, it was 93

A description by the mother, grandmother, and several school teachers of the patient's personality before her illness shows that she was a very amiable, docile child, never impudent, very generous and helpful, and liked by everyone. She had never been punished, since it had never been thought necessary She was bright and winsome and a constant delight to her mother and stepfather. Her school record showed excellence in conduct and in all her work. At nine years she was in the fifth grade It was at this time that she began to be restless and irritable, prior to her illness in November, 1918. Defective vision was suspected as the cause, but glasses did not improve her condition. The personality changes noted after her illness were quite different from the slight changes noted during the year before her illness. During the deep-breathing attacks, which occurred from five to ten times a day, her behavior took violent and most unaccountable

forms. She would throw her food about the table or with a sweeping motion dash most of the dishes off on the floor She tore the paper off the walls, smashed the glass over pictures, tore her clothing and the bed sheets, played with matches and the stove lighter, and defaced the entire apartment It was impossible to watch her closely enough to prevent destruction. It would take her hours to dress herself, whereas, at three years, she could dress herself quickly and correctly. In the bathroom she would play with water, throwing it all over the walls Once she voluntarily got the mop, partially wiped up the water, and then hit her mother with the mop

Periods of this type of behavior were varied with attacks which the mother described as "falling spells," which occurred once or twice daily, in which the child would suddenly grasp a chair or her mother or anything at hand, as if she were going to fall, holding on to it very rigidly, staring and not responding to sounds Always she seemed very tired in such an attack and afterwards often went to sleep. Her sleep at night was usually restless and interrupted by numerous attacks of the kind described, and by masturbation, a practice which had been frequent since an early age There would be periods when she would get in and out of bed every few minutes Her nightgowns and the sheets she tore in strips. Frequently there were bowel involuntaries, which interested her, even to the point of playing with the excreta The headaches occurred only about once a month. During a period of about a month in the fall of 1921, she pulled out most of her hair and ate it

For the most part she was kept away from other children, as she wanted to dominate them, and when she could not, she cried or stamped her feet in rage They teased her and ridiculed her; consequently she was allowed to play occasionally for short periods with one little girl who lived in the apartment above. To older people she was impertinent and would impulsively strike at them, pinch them, or spit at them. Several attempts were made to have her attend school again, but it was clearly impossible for her to adjust to classroom conditions and so she was kept at home at the request of the school authorities For periods of two and three weeks, at three different times, she was in hospitals, but no improvement was noted Bromides and luminal treatment were also unsuccessful

For a year and a half after her illness, she was with her grandmother, as the mother felt that the stepfather's playful teasing and overattentiveness were exciting and irritating to the child As she grew steadily worse there, she was taken home again, and for two years the parents gave up most of their social pleasures and duties and

devoted themselves to her. No friends were allowed to come to see them, the patient was not allowed to play with other children, and as far as possible the house was kept quiet. The mother took the child out for walks and occasionally the social worker supplied recreation. The parents soon learned that punishment availed not at all Sometimes the child was shown a strap to induce obedience, but mostly discipline was enforced by kindness, and only for the purpose of making her conform to regular hygienic routine.

The mother observed that fatigue and hunger increased the severity of the attacks mentioned As a result of her constant activity and lack of sleep and variable interest in food, the child was extremely thin It was not until the summer of 1922 that she could be induced to drink milk When she found that the milk made her gain in weight, she became interested and took as much as two quarts daily. In every way she began to improve. About the same time her father discovered that if she were held tightly as soon as a deep-breathing spell began, and told firmly to control herself, the attack would be over in about half a minute Her recovery from this time on was rapid She returned to school in the fall, entered sixth grade, and was promoted to 6A in February, 1923 Two attacks of deep breathing occurred the first week. The teacher made no fuss over them, but told her to control them, and they have not been repeated throughout the past school year She became again a pleasant, even-tempered, affectionate child, ceased to make "invalid" demands, and has shown no abnormal behavior up to the present time

Menstruation began several months ago. She now weighs one hundred and twenty-two pounds at the age of fourteen and seems perfectly healthy and normal in all respects, except for a rare occurrence of the rapid breathing when she is especially tired or hungry. The attacks last only a minute or so and are not accompanied by any other unusual behavior

The child is one of three, out of twenty-four post-encephalitic children seen at the institute, who have practically made complete recovery It would seem that the recovery was due to the quiet, sheltered existence which the parents' intelligence, self-sacrifice, and devotion made possible for the child Fortunately, there were no other children in the family to complicate the problem, and so the parents could carry out the psychiatrist's recommendations of complete rest and no excitement The parents, however, have suffered from the nervous strain almost as keenly as other parents who have had the family as well as the individual problem to deal with, the strain resulting, in this case, in a rather serious conjugal difficulty.

Treatment—We are concerned only with the treatment of the behavior abnormalities, and it is therefore not necessary to consider the various medications that have been proposed or tried. Whether the behavior changes are due directly to the pathology (which seems doubtful), or whether they stem from the child's treatment during and following the acute illness is an unsettled question In any case, all authorities are in essential agreement with Willson (1925), who says, "Post-encephalitic cases require rest and quiet, physical upbuilding and non-irritating restraint, rather than punitive discipline"

The limitations of dealing with these patients in their own homes are shown in Case Number 59, while the excellent possibilities in the unusual home are shown in Case Number 60. Probably the first of these two cases is more typical of conditions as one finds them The patience, stimulation, effort, care, self-sacrifice that are necessary over a long period in order to deal adequately with the child's behavior are usually not available in the home. Daily demands of even simple social living—especially if there are other children—the lack of insight on the part of parents, and the necessity of careful, expert supervision make home care less desirable than some sort of institutional care.

Post-encephalitic patients are found in asylums for the insane and in institutions for the feeble-minded While such institutions are probably *not* the best possible places for these patients, still they may afford a fairly suitable regime and retraining program for their rehabilitation. It seems reasonably certain that special residential schools, or special programs in other institutions, would be the best method of treating the post-encephalitic child An experiment in this direction was carried on by Drs. Bond and Appel (1931) at the University of Pennsylvania Hospital School, and their excellent report on it is the best account of a successful program for the rehabilitation of post-encephalitic children that has yet appeared.

After attempts to treat individual children in the wards with adult patients were uniformly unsuccessful, it was decided to try treatment of a group of children who would be entirely separated from other patients Forty-eight children were members of the class that was formed, and at the time the report was written twenty-six had been discharged after having been members from one month to three and a half years. The remaining children, including all of the girls, had been in the group from a few months to two years All except two

of the children improved while at the hospital. After discharge to their homes, seven continued to improve, thirteen (of whom six were feeble-minded) showed little change, and six showed regression. Only children who were under twelve years of age and who did not have Parkinsonian symptoms were admitted The success in this school is paralleled in the work at the Kings Park State Hospital as reported by Robeson (1925)

The treatment was wholly psychological and educational, based upon a point of view that was shared by doctors, nurses, and teachers —briefly, that the post-encephalitic child's behavior, which at home had been very disturbing and irritating, could be made more socially acceptable if the child were kept busy under constant supervision at socially desirable activities. School, occupational therapy, meals, play time, games and other fields of activity were planned with this aim in view Instructions for those in charge of the children emphasized praise for things well done, disregard of minor faults, eccentricities, enuresis, etc ; a strict prohibition of physical punishment; and the use of withdrawal of privileges as punishment The methods used in treating the child were based on no one psychological theory but followed the one which seemed to fit the case Medical treatment to insure good physical condition was of first importance The specific means used to influence the children's behavior included. explanation, praise, rewards, occasional suggestion, substitution of more desirable activity, dramatization and humor, neglect, deprivation, isolation, and at all times the authority of the persons in charge Children in tantrums were impersonally carried from the room and isolated from the other children. Occasionally two children "were brought together to fight it out if peaceful methods failed and there seemed no alternative plan of settlement." This brief description does scant justice to the report Drs. Bond and Appel have demonstrated that a properly planned and operated residential school is perhaps the best method of treating the behavior problem following encephalitis lethargica.

Epilepsy

Epilepsy is a condition characterized by convulsive attacks and some degree of loss of consciousness Modern authorities believe that while epilepsy presents a fairly definite syndrome, it cannot be considered as a specific disease entity Lennox and Cobb (1928) suggest that "paroxysmal disorders" or "convulsive states" would be better terms

and that "epilepsy" could well be dropped. The clinical psychologist's interest in this condition is limited to aspects of behavioral adjustment.

Many conditions have been proposed as causes of epilepsy. Hereditary influences have been looked upon with favor by some, but, as in the case of all other attempts to attribute behavioral abnormalities to heredity, there is little or no decisive evidence. Clark (1918) has held that the epileptic has an innate personality pattern which predisposes him to attacks. At a later date (1926) this same author outlined a psychoanalytic interpretation of the seizures as an unconscious substitute for satisfactory environmental adjustment.

Macroscopic and microscopic pathology has been found in the brains of a large percentage of institutionalized epileptics. This evidence is equivocal because it is possible that such lesions as are found may be a result of the seizures rather than a cause of them. Disturbances of the physico-chemical relations of nervous tissue and the blood, of the endocrine system, of the acid-base equilibrium, of the autonomic nervous system, and of protein, carbohydrate and fat metabolism have all been demonstrated in epileptics and have been suggested as causative. Since further consideration of these matters would be beyond the scope of this work, we must refer the reader to the pertinent literature and especially to the excellent monographic review by Lennox and Cobb (1928).

The incidence of epilepsy is probably not very great, however, adequate data for determining it are not available. Among both whites and Negroes drafted into the United States Army during the World War the incidence of epileptics found was 5.1 cases per 1000. Davenport (1923) has gathered incidence figures from many countries; in no case do they exceed one per cent. In a survey by the New York City Board of Education (1930) an incidence of approximately one case per 1000 of the school population was found. The U. S. Bureau of the Census (1934), in an enumeration of patients in state institutions, reports a first-admission rate of 2.1 per 100,000 of the general population. While these figures are not comparable they do suggest that there are over two hundred times as many epileptics out of institutions as are in them.

The age incidence of epilepsy is of particular concern to us. Available evidence clearly indicates that the majority of cases start in childhood. In Table LXXXVI are combined figures from the Craig Colony (1926) and from Gowers (1901). The first part of this table shows the

TABLE LXXXVI.—INCIDENCE OF EPILEPSY BY AGE

Age	Number	Per Cent
At onset (Craig Colony, 1926)		
0– 5	1830	27 7
5–10	1107	16 7
10–15	1190	18 0
15–20	892	12 0
20–25	389	5 8
25–30	220	3 3
30–35	142	2 1
35–40	110	1 8
40–45	83	1 2
45–50	43	0 6
50–60	51	0 7
60–70	16	0 2
70–90	2	
Unknown	520	8 0
Total	6595	
Groups (Gowers, 1901)		
Under 10	826	27 5
10–19	1398	46 5
20–29	463	15 5
Over 30	315	10 5
Total	3002	

age of onset of epilepsy in 6595 patients admitted to the Craig Colony at Sonyea, N. Y, up to January 1, 1926 The second set of figures shows the age distribution of 3002 cases of epilepsy studied by Gowers It is evident from these figures that epilepsy is very definitely a problem of childhood

Symptomatology—It is necessary, in describing the clinical picture of epilepsy, to distinguish five types: grand mal, petit mal, epileptic equivalents, Jacksonian epilepsy and hysterio- or psychic epilepsy The relative frequency of these various types (except the third) is shown in an analysis of 2000 cases made by L. P Clark and reported by Starr (1909) These figures are given in Table LXXXVII

Grand Mal.—The most severe type of attack is known as grand mal While details of the picture vary a good deal from patient to patient, there are always tonic and clonic muscular spasms and loss of consciousness. In from one-third to one-half of all patients, according to Talbot (1930), a premonitory aura is observed. This may be motor, with twitchings, coughing, eye blinking, etc ; sensory, with visceral sensations, light flashes, sounds, tastes, smells, etc.; or mental, with sudden ideas and memories not connected with the immediate situa-

TABLE LXXXVII.—FREQUENCY OF DIFFERENT TYPES OF EPILEPTIC ATTACKS

Type	Number	Per Cent
Grand mal	1150	57 5
Grand and petit mal	589	29 4
Petit mal	179	8 95
Jacksonian	37	1 85
Hysterio-epilepsy	16	8
Grand mal and Jacksonian	10	5
Grand and petit mal and Jacksonian	8	4
Grand mal and psychic	3	15
Grand and petit mal and psychic	6	3
Petit mal and psychic	2	1
Total	2000	

tion, depressions, temperamental changes, etc Following the aurae in patients having them, and suddenly without warning in others, the patient loses consciousness and, usually with a cry or moan, falls to the ground in convulsions The first stage of the convulsion is a tonic spasm. There is extreme muscular rigidity, the tongue and cheeks may be bitten by contractions of the masseter muscles, pallor is succeeded by flushing, the pupils dilate and the patient becomes cyanotic This stage usually lasts less than thirty seconds or so When the cyanosis is intense a clonic stage begins in which there are violent movements of the legs, arms, head, jaws, and trunk. Contractions of the diaphragm forcibly expel air and cause grunts, coughing, and stertorous noises. Bladder and bowels may be evacuated The clonic stage may last from a few seconds to five minutes. After this extreme muscular exertion the patient goes into a stuporous stage from which he cannot be roused and which may last for hours. In some patients this stage is replaced by activity of an automatic sort, which sometimes becomes so extreme that it is spoken of as "epileptic frenzy." In this condition the patient may harm himself, other persons, or property. Exhaustion, fatigue, and headaches sometimes follow the attacks. After regaining consciousness the patient is completely amnesic for all that has happened, including the aura and the automatic acts or frenzy when these have occurred.

Patients sometimes pass from one grand mal attack to another without completely regaining consciousness This condition, known as *status epilepticus*, is very serious and should always have adequate medical attention.

Petit Mal.—As the name indicates, this is a mild type of attack.

There may be nothing more than an aura, or there may be a slight dizziness The patient loses consciousness for a few seconds, his eyes may appear to be staring vacantly into space. Usually there are no motor signs, although tremors sometimes occur; only rarely does the patient fall. The attacks may occur during a conversation, a walk or any other activity Such activity is stopped for the moment, but upon regaining consciousness the patient carries on without being aware that anything has happened

Epileptic Equivalent.—This is a term given to the automatic acts and mental abnormalities occurring after an attack of grand and sometimes petit mal, or to such acts when they are apparently substituted for the more usual convulsion They may consist in changes in the disposition, temper tantrums, destructiveness, intricate manual operations, taking long journeys, criminal activities, or homicidal attacks. These equivalent actions may continue for hours, days or weeks, and are terminated suddenly when the patient regains a consciousness of self He is amnesic for the whole automatic period

Jacksonian Epilepsy.—This condition, perhaps more properly called Jacksonian convulsions, is characterized by clonic spasms localized in a group of muscles The muscle group may be within an arm, a leg, or the head region, or it may involve large segments up to one half of the body. In some cases the spasms may spread until the whole body is involved and consciousness is lost. Usually Jacksonian attacks indicate a rather definite neural lesion, but they sometimes are the forerunners of grand or petit mal attacks

Hysterical Epilepsy.—In our previous discussion of hysteria we said that any human ailment might be simulated by hysteria Epilepsy is no exception. The differential diagnosis is not too difficult if care is taken in observation. In an hysterical attack the physical signs such as pupil dilation, incontinence, or biting of tongue are absent; there is seldom loss of consciousness; the attack usually occurs in front of an audience, and the patient seldom if ever hurts himself in falling.

Psychological Characteristics—The clinical psychologist is frequently called upon to examine epileptics, especially to determine abilities and personality characteristics. Caution must be used in giving intelligence tests to epileptics. For hours or even a day following an attack the patient may be disturbed or sluggish in reactions, and while he is in this condition his test performance may be seriously affected. Bisch (1925) points out that bromides have frequently been prescribed

for epileptics, and that if patients have been taking such drugs for a long period, or are taking them, their reactions are slowed up. This also may affect test performance. In certain timed tests the occurrence of a petit mal attack may give an entirely erroneous picture of a patient's performance. Therefore close attention must be paid to subjects who are known to have such attacks.

Intelligence.—Bisch (1925) lists a number of mental effects of epilepsy, which may be shown by deterioration in adults or by interference with mental growth in children. Such effects include sluggishness in reactions, impaired attention and concentration, memory defects, and motor and emotional retardation.

Wallin (1921) reports an investigation made in 1911. A group of 30 "brightest pupils in the school" (New Jersey State Village for Epileptics) and a group of 76 normal school children were given a battery of tests. In Table LXXXVIII are reproduced the performances of these

TABLE LXXXVIII.—COMPARATIVE PERFORMANCE OF EPILEPTICS AND NON-EPILEPTICS (After Wallin)

Task	Average Efficiency		Comparative Epileptic Efficiency Per Cent
	Normal Per Cent	Epileptic Per Cent	
Memorizing three-place digits	41.6	25.9	62
Retention of digits after one month	10.0	2.5	25
Spontaneous associations	45.1	15.0	33
Addition of ten one-place numbers	14.7	4.2	28
Antonym test	39.1	5.9	15
Quickness and accuracy of perception	36.3	23.3	64
Range of visual observation	45.8	30.9	67
Reproduction of objects after one month	23.4	9.7	41
Memory for logical word associates	68.1	25.5	37
Reproduction of logical word associates after one month	21.1	7.6	34
Recognition of pictures displayed 20 seconds	59.7	19.6	33
	No.	No.	Per Cent
Imagination test (ink blot)	4.7	2.4	51
Word construction	9.1	2.7	29
Sentence construction	3.8	68	18
Maximum number of circles drawn in 60 seconds	97.1	77.6	80

two groups. The comparative efficiency of the epileptics ranged from 15 to 80 per cent of the normals. On the 1911 Binet-Simon scale the epileptics had an average M.A. of 10.1 years. The school children were

not tested, but Wallin assumed that their average M.A. would be equal to their average C.A. He also estimated that 63.3 per cent of the epileptic group were feeble-minded.

One serious criticism that can be made of the conclusion drawn from Wallin's study is that his epileptics were from an institution. As we have previously suggested, only a small proportion of all epileptics are in institutions; and it seems reasonable to believe that these are least able to care for themselves and might therefore be suspected of feeble-mindedness. Some support for this view comes from the figures of the U. S. Bureau of the Census (1934), which show 2553 first admissions of epileptics to state institutions in 1932. Of these, only 773, or 30.2 per cent, were not feeble-minded. Records from New York City schools show that less than 6 per cent of epileptic children in school or under home instruction are mentally deficient. It would appear that studies of intelligence in institutionalized epileptics may be very misleading.

Kanner (1935) found in a group of 100 cases of non-institutionalized epileptics the following percentages:

I Q	Per Cent
Under 50	17
51– 70	21
71– 90	37
91–110	19
Above 110	6

These data also indicate a definite mental retardation, and Kanner says that this retardation is still true when these children are compared with all other children referred to his clinic for psychiatric consultation.

The meaning of these data is not clear. Of institutional cases, some 60 to 70 per cent are feeble-minded. In a group of clinic cases around 35 per cent could be so classed. Whether the percentage would be still lower if a large series of entirely unselected epileptic children were tested, we do not know. It may be possible that failure to take the precautions we have mentioned earlier in the examination of epileptic children may account in part for the low performance. This would appear to be a fruitful field of research.

Personality.—Clark (1918) says that the potentially epileptic individual is egocentric, supersensitive, and emotionally poor; he fails to project his interests outward into the environment in a normal healthy manner. While such characteristics may be commonly found in epi-

leptics, they are found also in many non-epileptic people and therefore they cannot be taken as diagnostic points

Fairly definite personality characteristics are frequently described in known epileptics They are said to be irritable, subject to sudden changes in mood, stubborn, easily offended, often impulsive, conceited, inconsiderate, given to temper tantrums and fighting Even this list does not exhaust the traits that have been enumerated Kanner (1935) reports that 24 per cent of the epileptics seen in his clinic exhibited enuresis, and 43 per cent were subject to dramatic outbursts of anger. At least 15 per cent were reported to have voracious appetites. There can be no doubt that many epileptics do exhibit such characteristics, but whether they are a necessary part of the epileptic picture, or are compensatory behavioral resultants of the seizures or fear of seizures, is an open question The latter would seem to be a reasonable hypothesis.

Clark, in works cited earlier, maintains the position that epileptic seizures are essentially overt expressions of excessive narcissism which produces an inflexibility of personality incompatible with the flux of life Papurt (1931) tentatively formulated a non-psychoanalytic functional theory of epileptic seizures, and suggests that the physiological changes may be a result rather than the cause of the attacks Such theories as these would make epilepsy a type of personality problem While this possibility must always be considered, most clinical observers have been unable to find satisfactory evidence for it

Educational and Vocational Adjustments —Apart from subnormal mental ability or undesirable character traits, the epileptic may have difficulties in adapting to educational programs or occupational requirements The ever-present threat of sudden, uncontrollable attacks limits the patient's possibilities. The attacks are disturbing to other people, and in certain types of occupations they may be dangerous Therefore, special educational or vocational guidance must always consider the attacks as a primary factor.

Treatment.—The treatment of epilepsy is entirely a medical matter and it would be out of place for us to discuss it here However, we shall call attention to the widely used dietetic therapy which is well described by Talbot (1930)

Education of epileptic children must take into account the low mental ability frequently found, as well as the inevitable interruption of the seizures. Shanahan (1913) feels, as a result of his observations of

the Craig Colony, that manual work should receive more attention than regular academic work, although the latter should not be neglected According to the report of the Committee on Special Classes of the White House Conference (1931), special educational attention is being paid to epileptics in only a few systems, notably New York City, Chicago, and Detroit. In New York City if a child has an attack in school he is temporarily suspended for his own and others' safety. The case is reported and psychological and medical study and recommendations are made If admitted to a hospital a special teacher attached to the institution undertakes the educational work; if the child is at home a special teacher may be assigned; if there is low mental ability the child may be recommended for institutionalization, or if the seizures are very infrequent he may be placed in a special class for subnormals.

Apart from recommendation for educational handling, the clinical psychologist is not concerned with the treatment of epileptics However, as patients may have attacks during the psychological examination, it is well that he be prepared to deal with them Three points must be remembered· (1) The patient is not at all likely to die in the attack; (2) there is no need for excitement; and (3) active measures should be directed toward keeping the patient from injuring himself or choking Specific suggestions from Bisch (1925) are·

1 Move objects, or move the patient so that he will not injure himself while in the clonic stage

2 Watch the tongue. Pry teeth apart with a piece of wood (finger may get bitten) to release it If the patient has "swallowed his tongue" it must be got forward into the mouth so that he will not choke.

3 Lay the patient on his side so that he will not choke if he should vomit.

4. Frothing at the mouth has no vital significance.

5 Following the attack, put the patient in a comfortable position and let him sleep. If this is impossible, he may be aroused by slapping hands on cheeks or throwing cold water on the face

Other Neurological Defects

In addition to encephalitis and epilepsy there are a number of neural pathological conditions which may seriously interfere with the coordinating function of the central nervous system and thus affect the child's sensory and motor abilities These are all problems of medicine

rather than psychology, but as they are occasionally referred to psychological clinics we must briefly mention them

Meningitis—This is an infection of the membranes covering the brain and spinal cord It may be caused by tubercular infection; it may follow almost any of the acute diseases of childhood, or it may be epidemic cerebrospinal meningitis caused by *meningococcus intra-cellularis.* The epidemic type is usually sudden in onset, with a few premonitory symptoms in the form of restlessness and mild headaches. Acute symptoms are violent headaches, fever and chills, vomiting, dizziness, stupor or coma, and sometimes convulsions. Tubercular meningitis is more insidious; the onset is gradual, early symptoms being loss of appetite, malaise, slight temperature and headache As the disease progresses the symptoms become identical with those in the epidemic type.

The behavioral after-effects of meningitis are not at all clearly known. There are some indications that mental retardation may follow in some cases If the infection invades the brain substance, giving rise to an encephalitis, there may be temperamental changes Because of these possibilities it is necessary that as accurate a history of acute disease attacks be secured as is possible Such a history should be gotten from the physician's or hospital's records if they are available

Chorea.—The irregular, jerky movements that are called St. Vitus' dance may be symptoms of other neural diseases, or they may be symptomatic of an infectious disease condition known as Sydenham's chorea. This is largely a disease of early life, the majority of cases occurring between five and fifteen years of age, girls are more frequently affected than boys. The incidence increases in the spring and summer months The duration of the disease may be as short as a few weeks or it may last a year; the average duration is two to three months Prognosis is usually good, although some patients have recurrent attacks

The disease is of psychological interest because its onset is gradual and parents or teachers complain of the child's behavior At first he becomes restless and fidgety, with involuntary movements starting usually in one limb He may be considered unruly. Gradually the involuntary movements spread; writing and other arm movements become clumsy and awkward; the legs fail to make adequate walking movements; there are facial grimaces and tongue jerking, and speech becomes dysarthic and explosive The movements may become so

severe and violent that restraint is necessary. Occasionally, but much more rarely in children, there may be a toxic-infectious psychosis with depression, memory disturbances, hallucinations and delirium.

Because chorea and certain types of behavior problems are easily confused, medical and neurological consultation should be secured in every doubtful case. Rest and isolation are indicated in treatment, as well as certain medication.

Cerebral Palsies of Children.—This is the term given by Wechsler (1935) to a group of paralytic conditions known variously as Little's disease, cerebral diplegia, infantile cerebral paralysis, or infantile spastic hemiplegia These paralyses may be caused by development *in utero* (no hereditary or familial factors have been demonstrated); they may be due to premature, precipitate, difficult, prolonged or instrumental births, or to asphyxia neonatorum; or they may be post-natal or acquired by infection or more subtle influences. The underlying pathology is cerebral, with definite pyramidal tract involvement.

Symptoms are most evident in movement, especially of the legs The thighs are adducted, the knees come together, and the child walks on his toes with a "scissors gait." The arms may also be involved, with adduction, flexion at the elbow and fingers, and pronation of the forearm. Cranial nerve involvement occurs, resulting in strabismus, speech defects, difficulty in swallowing, drooling, etc. Mental defect, sometimes of severe degree, is evident in many cases (see page 136)

Interference with motor performance, mental defect and possible personality disturbances are all of psychological significance. Doll, *et al.* (1932), have discussed the problems of mental deficiency associated with paralysis, but there is little or no experimental work on personality development of this group. Physiotherapy, occupational therapy and exercise have proved of value in the treatment of some cases. Fischel (1934) has described in excellent detail the treatment of her two boys who were victims of Little's disease.

Erb's Paralysis—This is a type of flaccid paralysis caused by injury to the brachial plexus and confined to one arm and shoulder The injury may occur during birth (whence the term birth palsy) or accidentally at any time during life.

Infantile Paralysis or Acute Anterior Poliomyelitis.—This is an infectious, probably contagious disease, whose pathogenic organism is unknown, and which has a predilection for the nervous system and particularly the anterior horns of the spinal cord. There are sporadic

cases, but most frequently the disease is epidemic. There may be a prodromal period in which the disease is often taken to be a mild, general acute infection of little significance This may last, if it occurs at all, for only a few hours or days at most In fact, a child may go to bed feeling a little sick and be paralyzed in the morning

The most important symptom is a flaccid paralysis, particularly of the legs or arms, although the back and hip and occasionally the abdominal muscles may be involved On the other hand, single muscles or only parts of a single muscle may be affected The maximum degree of paralysis is usually reached within twenty-four to forty-eight hours after onset There is some spontaneous improvement with recession of the infection, but there is usually some residual paralysis After a week or two the paralyzed muscles become atrophied Continuous exercise at first, and, later, surgical interference and braces are usual methods of treatment There is no evidence that mental abilities are affected in these patients, although there may be personality disturbances.

Malnutrition

Malnutrition by derivation means bad or imperfect nutrition, but it is more frequently thought of today as being undernutrition Some consider malnutrition as a definite illness, while others regard it only as a symptom. Emerson (1922) believes that it is a clinical entity with characteristic history, definite symptoms and pathological signs He feels that its presence is unmistakable evidence that a child is not developing normally, and that the malnourished child is a sick child and should be so considered. On the other hand, some authors believe that malnutrition is not a disease condition in itself, but is merely a symptom which may result from any one of many diseases, social conditions, poor hygiene, or all combined Others define it as a low condition of health and body substance rather than a definite disease Perhaps all do not agree that a malnourished child is necessarily a sick child in the usual connotation of the phrase, but everyone will certainly agree with what Emerson doubtless means to stress, i e, the malnourished child is in real need of attention.

Nutritional condition is obviously not a psychological problem However, it is equally evident that the child who is undernourished and therefore in poor physical condition will probably be more or less severely limited in the adequacy of his behavioral adaptations. It is,

therefore, necessary for the clinical psychologist to have some familiarity with the condition and with the little that is known regarding its psychological significance.

Prevalence—Malnutrition is probably the most widespread physical disorder of children. Roberts (1935) lists thirty-five surveys of nutritional condition in school children which together include over 500,000 cases These reports are dated from 1905 to 1932 and a number of different standards for judging have been used Thirty-four of the more recent studies in which the judgments were based upon height-weight tables ranged in incidence of malnutrition from 12 to 55 7 per cent, with the median at approximately 28 per cent. The estimate most frequently made, that from one-quarter to one-third of school children are malnourished, is adequately supported by these data.

One of the chief reasons for the variation in the incidences found in different surveys is the variant diagnostic criteria. A number of grading schemes have been proposed, of which the Dunfermline scale is the best known This scale was devised by McKenzie (1914) and specifies four classes of nutritional condition

1. Excellent. A healthy child from a high type of home, his nutritional condition is not merely the best in his group, but is superior by any standards
2. Good Those children whose nutritional condition falls short of excellent. Usually considered the average or normal
3. Poor. Children who require dietary supervision.
4. Very poor. Children whose nutritional condition is so poor that they require medical attention

This useful scale is open to some objections If properly used, the standards are general rather than relative to the group of which the child is a member However, as Richardson (1927) reports, some physicians fail to use it in this way; instead, from long acquaintance with certain racial or geographic groups, they grade children on the basis of the group standards

Because of their greater objectivity, deviations from height-weight-age norms have found wide favor as criteria of malnutrition. In this country the Baldwin-Wood table (table, page 18) is usually considered the standard. The most widely used deviation to demonstrate malnutrition is ten per cent below the height-weight-age norm, but some

physicians prefer the stricter seven per cent limit Emerson (1922) proposed the following, now widely used, classification:

1. Malnourished Seven per cent or more below average weight for height

2. Border-line Under average, but less than seven per cent

3. Average to twenty per cent above, ten per cent above being considered optimal.

4. Overweight. Twenty per cent or more above average.

While a subjective factor may enter the physician's diagnosis of malnutrition, there are also dangers in adhering too strictly to the height-weight-age standards. Thus, Dublin and Gebhart (1924) have shown that the standard tables were not at all suitable when used in a study of 4047 Italian children in New York City An even more serious criticism lies in the data of Clark, *et al* (1924), on nearly 10,000 native-born white children six to sixteen years of age In this study 51.8 per cent of the children diagnosed as malnourished in a careful medical examination by trained physicians were classed as well nourished by the ten-per-cent-below-average standard Conversely, 19 3 per cent of those classed as satisfactory by the physicians were below the ten per cent standard Clark concludes that while on the average the poorly nourished child weighs less than the well nourished, still, "in order to pick out individual cases of poor nutrition, a physical examination by a trained physician should supplement physical measurement."

The physical diagnosis of malnutrition is a medical problem which we cannot enter into. We shall, however, present brief contrasting physical descriptions of a well-nourished and a poorly nourished child

A well-nourished child has a well-developed body, with firm muscles, good skin turgor, sufficient subcutaneous fat to form a moderate padding over his bones and muscles. He has a healthy glow to the skin, smooth glossy hair. His eyes are clear and bright, there are no dark circles underneath them, and his usual facial expression is bright and unworried. The posture is generally good, with head erect, chest up, abdomen not protruding, and step elastic. In disposition he is usually happy and good-natured and is full of life and activity. His sleep is sound, and his digestion good.

Turning to the extreme opposite picture, we find that a malnourished child lacks several or all of the characteristics of the normal

child, depending on the degree of malnutrition. He is usually thin, but may be fat and flabby instead. His skin may be pale, delicate and wax-like, or sallow, muddy, even pasty or earthy in appearance. The hair may be rough, the tongue coated His skin may seem loose and his muscle underdeveloped. Because of a lack of muscular tone the shoulders are usually rounded, sometimes protruding to such an extent as to produce the deformity known as "wings." His chest is flat and narrow, the abdomen protrudes, the arches may be pronated or flat, and his whole attitude is one of drooping fatigue. In one type of malnourished child, the animal spirits natural to all healthy young will be found lacking Such a child is apt to be listless in play and will probably be regarded as lazy. There is, however, the other type, the hyperirritable, overactive, highly strung child who is constantly on the go, but who tires easily and lacks both physical and mental endurance. Often the malnourished child sleeps lightly and is finicky about his food.

Causes.—In a broad sense, malnutrition may be described as a state in which either the food intake is inadequate in some respect to meet the body needs, or physiological and environmental conditions are such that the body is unable to utilize the food material to provide for its proper growth, maintenance and repair. Such a deficiency will be most liable to occur in youth, when the demands for calories to meet the high basal metabolism and muscular activity and for building materials to cover growth needs are proportionally greater than in adult life. It should also be recognized that there may be many grades of malnutrition and that it may be brought in many different ways

Richardson (1927) classifies the specific causes of malnutrition into five groups: faulty health habits, faulty food habits, family strain, school strain, and physical defects or disease. This convenient classification is not meant to imply that the groups do not overlap to an appreciable extent For example, faulty health habits frequently reflect the home conditions, or coincide with faulty food habits Of these five major groups, the first and last are mainly physical, the other three might well be considered as psychological causes of malnutrition.

Faulty health habits include the fatiguing strain of adult activities, such as movies or parties, to which children are subjected, lack of sleep, lack of fresh air, lack of play or exercise; in contrast, overexertion in the never-still, strenuously playing child is often a factor. Organic diseases and defects that are associated with malnutrition—

whether in a cause or effect relationship is sometimes difficult to say—include infected tonsils or adenoids, carious teeth, poor posture, infections like syphilis and tuberculosis, cardiac disease, diabetes, hookworm, etc. The detection and treatment of these conditions are medical problems which must be adequately dealt with before psychological problems can be considered.

We shall change the classification "faulty food habits" to the more comprehensive "faulty diet" for our present discussion. Inadequate food in quantity or kind because of poverty or ignorance is not unknown as a cause of undernutrition It is doubtful, however, if this lack, unassociated with any of the other causes mentioned, is frequently the prime etiologic factor. Wood (1920), in a nutrition survey of 10,000 Chicago school children, found malnutrition (seven per cent standard) in 16 2 per cent of children from stockyard district schools, but in 55 7 per cent of children from well-to-do districts These data suggest what is probably a much more significant reason for inadequate diet, i e, poor eating habits As this subject has been discussed at length in Chapter IX, we shall not reconsider it here However, it is necessary to point out that poor appetite and poor eating habits are frequently psychological problems, and therefore the psychologist is interested in the etiology of malnutrition

In the remaining two groups of causes of malnutrition, viz., family and school strain, psychological factors are also of primary importance In the family, disharmony and unhygienic living give rise to emotional and physical strain that may result in lack of adequate food Excessive school work—especially home work, which is all too often made "busy work"—is physically exhaustive and frequently interferes seriously with the child's opportunity to secure the all-necessary fresh air and play. While there can be no doubt that malnutrition is a medical problem, there is sufficient evidence that psychological factors of many kinds play important parts in its etiology Therefore, the treatment of malnutrition may frequently involve consideration of the psychological factors in the family, the school, or the child in much the same way as they had to be considered in primary behavior problems.

Mental Effects of Malnutrition.—In addition to psychological factors in the etiology of malnutrition we are also concerned with what we may call psychological effects of the condition The relationship between nutrition and mental development can be seen in its simplest

form in infancy The baby who is well nourished crows and laughs, he eats, sleeps and takes interest in the life about him. The poorly nourished infant is fretful, irritable, nervous, his sleep is disturbed and everyone associated with him suffers because of his condition Such a child is usually considered sick and is treated accordingly. He needs psychological treatment in the way of training and control, but this is futile without normal nutrition.

Unless this malnutrition is promptly corrected, further mental effects appear as the child grows older. Instead of a natural reaching out into various forms of activity that are essential to his well-being, there appear an attitude of defense and a desire to be let alone which are fatal to normal social relationships. The child's interests are narrowed and his whole attitude becomes negative. Unfortunate personality traits develop, such as self-centeredness, shyness, lack of confidence, selfishness, jealousy, fearfulness, depression, daydreaming and unusual attachments As the sentiments and emotions develop, the situation grows more and more complex It is difficult to separate cause and effect and to say how much the child's physical condition affects his behavior or to what degree his mental condition affects his body.

The relation between intelligence and nutritional status has been extensively investigated. As Paterson (1930) and Roberts (1935) have both written excellent résumés of this literature, we need not discuss it here. It is sufficient to point out that correlations between intelligence and such measures as height, weight, and indices based upon these, are uniformly low—usually of the order of .10. In terms of group contrasts, it is found that mentally subnormal groups are physically inferior, and mentally supernormal groups are physically superior, to mentally normal groups

A few studies of the intelligence test performance of malnourished children have been made Hunt, Johnson, and Lincoln (1921) found in a small group of children that the undernourished distributed themselves in test performance similarly to children of normal height-weight-age index. Dowd (1922) compared 55 children from a nutrition clinic with 55 controls from the general clinic on the basis of Binet I Q. and obtained results which were essentially the same as in the preceding study.

The effect of improved nutritional status on test performance has been reported a few times, but the results are conflicting. Lutz (1923) reports a rise in I.Q. from 93 to 107 in a fifteen-year-old boy after his

nutrition and his physical condition were restored to normal. De Weerdt (1928) and Teagarden (1927) report on one and two cases, respectively. The former was a seven-and-a-half-year-old boy with an I Q of 116 who was badly adjusted in school After improvement in home conditions his school adjustment improved but his I Q did not change. Teagarden's two cases had I Q.'s of 73 and 77 at entrance to Mooseheart With improvement in physical condition while in the institution there was improvement in their general behavioral skills but not in their I.Q.'s. A significant study of the effects of severe malnutrition was made by Blanton (1919) on children in post-war Germany. The study covered 65,500 German school children in Trier who were referred because the teachers had complained that there seemed to be mental deterioration and an increase in nervous disorders. These children had been on a limited, inadequate diet for about three and a half years. The findings may be briefly summarized Physical energy was lacking in these children; they were easily fatigued and strenuous games had to be avoided Nervousness, shown by restlessness, was extremely prevalent—teachers complained that they could not hold the attention of the pupils for more than five minutes or so The children were reported to have less ability for mental tasks, poor memories, inability to concentrate, slow comprehension, etc The percentage of grade failures before the war was about eight; at the time of the study it had risen to about fifteen There was no question that the overt, observable behavior of these children was inferior However, there was no evident inferiority in test performance when the tests were given during short periods in the mornings when the subjects were fresh. Blanton concludes that even such severe undernourishment as he encountered did not impair intelligence, but it did reduce physical energy and therefore adequacy of general behavior. "Malnutrition of such a severe degree usually leaves some permanent damage. In the case of children of inferior intelligence malnutrition causes a general lowering of the normal intelligence level"

Overweight Children —While malnutrition is usually thought of as meaning undernutrition, the overweight child might logically be considered as malnourished Of course, many if not most obese children are suffering from endocrinopathies and are not primarily nutritional problems. Psychological studies of overweight children appear to be entirely lacking, except for McHale's (1926) pioneer experiments This investigator compared three groups of 104 eleven-year-old boys

and girls (52 of each sex) one group was eight or more per cent below the height-weight-age norm, the second group was within plus and minus five per cent, and the third group was fifteen per cent or more above. These groups were given a battery of tests, the results from which we can only briefly summarize. Mean Binet M.A.'s were 11.82 for the under-, 11.66 for the normal, and 12.32 for the overweight groups. The difference between the over- and normal weight mean was 3.3 times its P.E. In educational achievement the overweight group was consistently, although not always significantly, superior to the other two groups. Emotional stability was studied by means of the Woodworth-Matthews Questionnaire. Overweight boys and girls had the greatest tendency to fears and worries, and overweight and underweight girls were most unhappy. The underweight group had the greatest inclination to pains, weariness, and other physical symptoms, and to dreams, phantasies, and sleep disturbances. In view of the small number of cases in each sex-weight group and the relatively small number of statistically significant differences between the groups, the final conclusion of this study seems to be that "overweight children are not very different from other children." While this conclusion is probably true of overweight children as a group, there can be no doubt that individual obese children may have behavioral difficulties. Overweight may affect the behavior of the child because the excessive weight may bar him from active and successful participation in many games and activities of child life. Many times the overweight boy or girl is constantly reminded by his playmates of his size by ridicule or by nicknames like Fatty or Piggy. Often this reflects in the child's behavior: he may develop many unwholesome character traits such as an attitude of defense or shyness, an inferiority feeling, fearfulness and depression. And so it might be said that a fat boy is set aside from his fellows in a hundred apparently trivial, but in reality cruelly poignant, ways.

Other Significant Physical Disabilities

Any chronic organic defect, disease or disability has a possible significance in behavioral development. Acute disease conditions may have behavior sequels, as, for example, following encephalitis, or unacceptable behavior patterns may develop as a result of unwise handling during convalescence. But for our discussion here we are concerned only with chronic conditions. The diagnosis and treatment for all of

these disabilities are entirely medical so that we can do no more than briefly mention some of the commoner of them

Tuberculosis.—This disease is the result of infection by one or more of the several varieties of the tubercle bacillus. Pulmonary tuberculosis is probably most common, but the infectious process may attack any part of the body. Kerr (1927) says that, after starting to school, the infected child may show signs of ill health that he has not shown before. He does not play, he is less active, he becomes irritable, his sleep is disturbed, he is "nervous" and easily fatigued This behavior picture may clear up shortly or it may continue for a long time Meningitis may be caused by a tubercular infection of the meninges, and crippling deformities may be the result of bone infections Myers (1932) presents a table summarizing a number of studies of incidence of tubercular reactions in children. There appears to be agreement that the incidence increases with age, in the first few years of life the percentages reported are usually less than five, whereas in early adolescence they range from 30 or 40 to as high as 90

Cardiac Conditions—The generic term cardiac conditions includes any kind of heart disease or deformity Wood and Rowell (1927) say that about two per cent of New York City School children suffer from some form of cardiac disease. The causes of heart trouble include congenital defects, rheumatism, infections, etc. Heart disease is of importance to behavior because, to quote Wood and Rowell (1927) speaking of such cases, "A few of these have an exceedingly good prognosis but the majority must look forward to a life of limitations, often restricted almost to uselessness, a burden alike to their families and themselves" Also, it must not be forgotten that parental concern over suspected or imagined heart trouble may foster fears and hypochondriacal trends.

Dental Caries.—Carious teeth are extremely prevalent among children. Roberts (1935) summarizes a number of studies of the incidence of dental caries, in some of which as high as 95 per cent of the children examined had one or more carious teeth Tooth decay may be the basis of severe pain which temporarily interferes with behavior; furthermore, the decayed teeth may become foci of infection, and interfere with adequate mastication of food. Both of these will reduce the general physical well-being of the child

Diseases and Defects of the Nasopharynx—Under this heading may be included the common cold, catarrhal conditions, tonsillitis and chronically infected tonsils, enlarged and infected adenoid tissue, etc.

All of the acute infections mentioned result in loss of time from school and a reduction in attention and application while in school. Enlarged adenoids interfere with respiration and may affect speech Chronically infected tonsils are foci of infection, the toxins from which reduce physical efficiency.

Crippling Deformities—Reeves (1914) quotes the following definition of a cripple used by an education committee in Birmingham, England "A person whose (muscular) movements are so far restricted by accident or disease as to affect his capacity for self-support." This is the most common non-medical definition of orthopedic deformation. Specific defects or diseases to be included are paralysis, club-foot, congenital dislocated hip, tuberculosis of bone, osteomyelitis, rachitic deformities, spinal curvatures, amputations, etc. Abt (1924) gives data from a number of surveys of the causes of crippling which may be summarized as follows:

	Per Cent
Poliomyelitis	30
Tuberculosis	25
Congenital deformities	13
Trauma	4
Rachitic	6
Osteomyelitis	4
Other conditions	17

The reported prevalence of crippled children in the general population varies widely with the criteria used in enumeration. A White House Conference (1931) report summarizes the ratios found in several surveys These ratios vary from a minimum of 0 91 per thousand of the general population in cities in New York State with populations from thirty to one hundred thousand, to a maximum of 9 79 per thousand in New Jersey cities of the same class. The incidence per thousand school population under eighteen years of age varied from 2 96 to 16 67. From other data given in this report and from the comments made, it seems that not more than two per cent, and possibly only one per cent, of school children are in need of special educational treatment because of orthopedic defects

Our interest in the crippled child is particularly concerned with his intelligence, personality development and education Nilson (1933) compared 169 disabled pupils with 2590 not-disabled on a five-point scale of intelligence, and concluded that the crippled showed no significant inferiority Under the White House Conference (1931) Committee, crippled children in four cities were examined with group

tests. The distribution of scores of 1919 children which are shown in Table LXXXIX, compares favorably with the distributions of intelli-

TABLE LXXXIX—I Q DISTRIBUTION OF CRIPPLED CHILDREN

I Q	Number	Per Cent
50– 69	135	7 0
70– 79	319	16 0
80– 89	330	17 1
90–109	661	35 1
110–125	427	22 6
126 and over	47	1 9

gence usually found in school children. A similar absence of inferior performance was found in a small number of crippled children (about 125) examined by J W Carter, Jr., and the writer at the James Whitcomb Riley Hospital

As a result of the limitations on activity imposed by his deformity, we might expect personality warping in the crippled child. While available evidence is limited, it appears that individual variations, rather than the fact of being crippled, are of greater importance in this connection. Bartŏs (1932) believes that the attitudes of those about the crippled child influence his emotional life and therefore careful education will overcome possible ill effects From a questionnaire study of 23 cripples, Dresdner (1933), found little evidence of warped development.

Because of the apparent absence of a characteristic mental inferiority in crippled children, the educational problem is quite different from that presented by subnormals Attention must be directed toward suitable mechanical arrangements, e g , seats and desks, stairways, etc., and toward a daily program that allows for possible fatigue and for individual work. As in many cases occupational opportunities may be limited, it is advisable that vocational needs be used as important guides in planning educational programs.

LIST OF REFERENCES[1]

Abt, Henry E. 1924. *The care, cure, and education of the crippled child.* Elyria, Ohio, Inter. Soc. for Crippled Children. 222 p.

Abt, I 1915. Hysteria in Children. *Med Clinics, Chicago.* 1.477-487

———, Adler, H M., and Bartelme, P 1929. The relationship between the onset of speech and intelligence. *J. Amer. Med. Assoc.* 93 1351-1356

Achilles, Paul S. 1923. *The effectiveness of certain social hygiene literature.* New York, Amer. Soc Hyg Assoc. 116 p.

Ackerson, Luton 1931 *Children's behavior problems* Chicago, Univ. Chicago Press 268 p.

———, and Highlander, M 1928. The relation of enuresis to intelligence, behavior and personality problems *Psychol. Clinic.* 17.119-127.

Adams, Mary E 1926. Promise and fulfillment. *Train. Sch. Bull.* 23 209-216

Addis, Robina S. 1935. A statistical study of nocturnal enuresis. *Arch. Diseases Childhood.* 10·169-178

Adler, Alfred 1917. A study of organ inferiority and its psychical compensation. *New & Ment Dis. Monog.* No 24 86 p

———. 1924 *The practice and theory of individual psychology* New York, Harcourt, Brace. 352 p.

———. 1927. *Understanding human nature.* New York, Greenberg. 286 p

———. 1928 Characteristics of the first, second and third child *Children* 3.14-52

Adler, Herman. 1920 Prisoners versus men generally. *Survey* 45·147-148

Aichhorn, August. 1935. *Wayward youth* New York, Viking Press. 236 p

Aldrich, C A. 1926 The prevention of poor appetite in children *Ment Hyg* 10·701-711

——— 1931. *Cultivating the child's appetite.* New York, Macmillan. 127 p

Allen, Fred H. 1927. Psychic factors in juvenile delinquency. *Ment Hyg* 11:769-774

[1] This list of references is not intended to be a complete bibliography of clinical psychology, or of any topic discussed It includes only those works quoted or referred to

Alling, Arthur N 1922. Discussion of "The prevention of eye disorders" by Henry S Miles. Conn. State Med. Soc., *Proceed., 1922, 130th ann meet*, pp. 141-142

American Psychological Association, Clinical Section. 1935. The definition of clinical psychology and standards of training for clinical psychologists. *Psychol Clinic.* 23 2-8

Andersen, William N 1921. Determination of a spelling vocabulary based upon written correspondence. *Univ. Iowa Stud Educ* v 11, no. 1 66 p.

Anderson, Margaret, and Kelley, M 1931 An inquiry into traits associated with reading disability *Smith Coll. Stud Soc. Work.* 2 46-63.

Anderson, R. G. 1922 Methods and results of mental surveys *J. Appl. Psychol* 6 1-28.

Anderson, V V., and Leonard, Christine M 1919-20. A study of the physical condition of one thousand delinquents seen in court *J. Crim Law & Criminol* 10 82-89

Armstrong, C. P. 1932. *660 runaway boys.* Boston, Badger. 208 p.

Arthur, Grace. 1925 A quantitative study of the results of grouping first-grade classes according to mental age. *J Educ. Res* 12 173-185

———. 1925a A new point performance scale. *J Appl. Psychol* 9 390-416.

——— 1928. The re-standardization of a point performance scale. *J Appl Psychol* 12 278-303.

———. 1930. *A point scale of performance tests. I. Clinical manual* New York, Commonwealth Fund 82 p

——— 1933 *A point scale of performance tests II The process of standardization* New York, Commonwealth Fund 117 p.

Ayres, Leonard P 1909-10. The effects of physical defects on school progress. *Psychol Clinic.* 3 71-77.

——— 1915 *A scale for measuring the quality of handwriting of school children.* Russell Sage Foundation, Dept. Child Hyg, Pam. No 113 17 p

Babcock, Marjorie E 1927. *Applications of clinical psychology in Hawaii.* Univer. Hawaii Res. Publ No. 1. 88 p.

Babinski, J 1908 My conception of hysteria and hynotism (pithiatism) *Alien & Neurol* 29·1-29

Bagby, English. 1922 The etiology of phobias *J Abnor. & Soc Psychol.* 17 16-18

Baker, Harry J. 1931 The analysis of behavior problems. Ohio State Educational Conference, *Proceed 11th ann Session.* Ohio State Univ. Bull No 3, pp 125-132

Baker, Harry J., Deckei, F. S, and Hill, A S 1929 A study of juvenile theft *J Educ Res.* 20:81-87.

Baldwin, James Maik 1895 *Mental development in the child and the race.* New York, Macmilian 496 p

Ballard, P. B. 1912 Sinistrality and speech *J Exper. Ped.* 1·298-310.

Bartlett, E R 1935. Peisonality factors in delinquency. (Abstract.) *Ind Bull. Chai & Coirect* No 220, pp 598-599.

Baitlett, Walter M 1928. An analysis of anoiexia *Amei J. Dis. Child.* 35 26-35.

Baitǒs, A. 1932. Die psychologischen Giundlagen der seelischen Erziehung bei Veikruppelten. *4 Veis. f Kindeiforsch, Biatislava,* pp. 245-253

Beane, J C. 1931 A survey of three hundied delinquent girls *J. Juv Res* 15·198-208

Beard, G M. 1880 *Practical tieatise on neivous exhaustion (neurasthenia)* New York, Putnam

Beckham, A S. 1930 Minimum intelligence levels for several occupations. *Peison J.* 9 309-313

Beeley, A. L 1918. *An expeiimental study of left-handedness* Chicago, Univ. Chicago Press 74 p.

Beilby, G E 1904. Enuiesis *Amei Med.* 7·397-399.

Berkowitz, J H 1920 *The eyesight of school childien* U S Off. Educ. Bull 1919, No 65 128 p

Berry, Charles S 1926 *The handicapped school children in Michigan.* Michigan State Dept Educ., Bull No 11. 56 p.

Berry, Richaid J A, and Goidon, R. G 1931 *The mental defective A pioblem in social inefficiency.* New Yoik, Whittlesey House. 225 p

———, and Poiteus, Stanley D 1918 A practical method for the early iecognition of feeble-mindedness and other forms of social inefficiency. *Train. Sch Bull* 15·81-92

———, ——— 1920. *Intelligence and social valuation* Vineland, N J, The Training School Publ. No 20. 100 p.

Best, Harry 1934. *Blindness and the blind in the United States* New York, Macmillan. 714 p

Bezděk, C. 1932 Seelische Einflusse in Leben und Erziehung des Kindes. *Prakt lék.,* pp 491-495.

Binet, Alfred 1911 Nouvelles iecheiches sur la mesure du niveau intellectuel chez les enfants d'école *Ann Psychol* 17·145-201.

———, and Simon, Th. 1905 Méthodes nouvelles pour le diagnostic du niveau intellectuel des anoimaux. Application des méthodes nouvelles au diagnostic du niveau intellectuel chez des enfants

normaux et anormaux d'hospice et d'école primaire *Ann. Psychol.* 11 191-336

Binet, Alfred, and Simon. 1908 Le développement de l'intelligence chez les enfants. *Ann Psychol* 14 1-94

———, ——— 1914 *Mentally defective children* (Trans. by W. B Drummond.) New York, Longmans 179 p.

———, ———. 1916 *The intelligence of the feeble-minded* (Trans by E. S. Kite) Baltimore, Williams & Wilkins 328 p. (Publ. Train Sch Vineland No 11.)

———, ——— 1916a *Development of intelligence in children* (Trans by E S Kite) Baltimore, Williams & Wilkins. 337 p (Publ. Train Sch Vineland No 11)

Bird, Grace E 1920 A test of some standard tests. *J Educ Psychol* 11 275-283

——— 1923. The Rhode Island intelligence test *J Educ Res* 8 397-403.

Bisch, Louis E 1925 *Clinical psychology* Baltimore, Williams & Wilkins 346 p

Blanchard, Phyllis. 1928 Reading disabilities in relation to maladjustment *Ment Hyg* 12 772-788

Blanton, M. G, and Blanton, Smiley. 1920 *Speech training for children* New York, Appleton-Century 261 p.

Blanton, Smiley. 1919 Mental and nervous changes in children of Volksschule of Trier, Germany caused by malnutrition *Ment Hyg* 3 343-386

———, and Blanton, M G 1927 *Child guidance* New York, Appleton-Century 301 p

Blatz, W E., and Bott, E A 1927 Studies in mental hygiene of children. *Ped Sem* 34 552-582

Blau, A, and Averbuck, S H. 1936 Catalepsy or cerea flexibilitas in a three-year-old child *Amer J Psychiat* 92 967-977

Bleuler, E 1912 The theory of schizophrenic negativism *Nerv & Ment Dis Monog* No 11 36 p

Bleyer, Adrien. 1928. A clinical study of enuresis. *Amer J Dis Child* 36 989-997

Bluemel, C S 1930 *Mental aspects of stammering* Baltimore, Williams & Wilkins 152 p

——— 1931 Stammering as an impediment of thought *In* R West (1931), pp 27-32

Boenheim, Curt 1932. *Kinderpsychotherapie in der Praxis* Berlin, Springer 136 p.

Bohannan, E W. 1898 The only child in a family *Ped. Sem* 5 475-496.

Boncour, G P. 1910 Les tics chez l'écolier et leur interprétation. *Progrès méd* s3, 26 445.

Bond, Earl D., and Appel, Kenneth E. 1931. *The treatment of behavior disorders following encephalitis* New York, Commonwealth Fund. 163 p

Bonner, C A 1931 Psychogenic factors as causative agents in manic-depressive psychoses. Assoc Res. Nerv & Ment Dis, *Ser Res Publ* 11.121-130

Bott, E. A, Blatz, W. E, Chant, Nellie, and Bott, Helen 1928. Observation and training of the fundamental habits in young children. *Genet. Psychol. Monog* v 4, no. 1. 161 p.

Bott, Helen. 1928 Observation of play activities in a nursery school. *In* E. A. Bott, *et al* (1928).

Bowler, A C, and Bloodgood, R S 1935 *Institutional treatment of delinquent boys.* U. S Child. Bur. Publ. No 228 324 p

Breckenridge, S., and Abbott, E 1912 *The delinquent child and the home* New York, Russell Sage Found 355 p

Brill, A. A. 1914 *Psychoanalysis its theories and its practical application.* Philadelphia, Saunders 2nd rev. ed. 393 p

British Royal Commission on the Care and Control of the Feeble-minded 1908. *Report of the Commission.* London, Wyman. 8 vols. (Abstract. *Problems of the feeble-minded* London, King. 1909. 113 p.)

Bronner, Augusta F. 1916. Attitude as it affects performance on tests. *Psychol Rev.* 23 303-331

———. 1917. *The psychology of special abilities and disabilities.* Boston, Little, Brown. 269 p.

———, Healy, Wm., Lowe, Gladys M, and Shimberg, Myra E 1927. *A manual of individual mental tests and testing* Boston, Little, Brown. 287 p. (Judge Baker Foundation Publication No. 4.)

Brousseau, K., and Brainerd, H G 1928 *Mongolism: a study of the physical and mental characteristics of Mongolian imbeciles* Baltimore, Williams & Wilkins. 210 p

Brown, A. 1926. *The normal child. its care and feeding.* Toronto, McClelland & Stewart

Brown, Edwin J. 1930. Character-conduct rating scale for students. *Education.* 50:369-379.

Brown, Frederick W. 1931. The problem of stuttering *In* R. West (1931), pp. 143-150

Brown, Frederick W. 1933. Personality integration as the essential factor in the permanent cure of stuttering *Ment. Hyg.* 17 266-277
Brown, Sanger, II, Pollock, Horatio M, and Potter, Howard W 1933 *An outline for the psychiatric classification of problem children.* Utica, N. Y., State Hospitals Press. 16 p
———, and Potter, Howard W. 1930. *The psychiatric study of problem children.* Utica, N. Y., State Hospitals Press 150 p
Bryngelson, Bryn 1931 Treatment of stuttering *In* R West (1931), pp. 157-164
Buckingham, B. R. 1921. Mathematical ability as related to general intelligence *Sch. Sci. & Math* 21 205-215
Buhler, Charlotte. 1930 *The first year of life* New York, Day 281 p.
———. 1933 The social behavior of children *In* C Murchison (1933), pp 374-416
———, and Haas, J. 1924 Gibt es Falle, in denen man lugen muss? *Arb z. pad Psychol* No 1 49 p
Burdick, E. M 1929. A group test of home environment. *Arch. Psychol.* No 101. 115 p
Burke, Dorothy W. 1930. *Youth and crime A study of the prevalence and treatment of delinquency among boys over juvenile-court age in Chicago.* U. S Child Bur Publ No 196 205 p
Burks, B. S, Jensen, D W., and Terman, L M. 1930. *Genetic studies of genius. Vol 3 The promise of youth, follow-up studies of a thousand gifted children.* Stanford University, Calif, Stanford Univ Press 508 p
Burnham, Wm H 1920 The hygiene of sleep *Ped Sem* 27 1-35
Buros, Oscar K. 1935. Educational, psychological and personality tests of 1933 and 1934. *Rutgers Univ. Studies in Educ.* No 7 44 p
Burt, Cyril. 1921. *Mental and scholastic tests.* London, King 432 p
———. 1922 Note on the mental after-effects of sleeping sickness in school children. *Brit. J. Psychol., Med Sect* 2·237-238
——— 1925 *The young delinquent* New York, Appleton-Century. 619 p.
Busemann, Adolf. 1928 Geschwesterschaft, Schultucktigkeit und Charakter *Zsch. f Kinderforsh.* 34·1-52
Cady, Vernon M. 1923 The estimation of juvenile incorrigibility *J Delinq Monog.* No 2. 140 p.
Cahen-Brach, —. 1893. Ueber das Vorkommen von Spiegelschrift besonders im Kindersalter *Dtsch Arch f klin. Med* 51.141-160
Caille, Ruth K 1933 Resistant behavior of pre-school children. *Child Devel. Monog.* No 11. 142 p
Caldwell, Floyd F 1932 *A comparison of blind and seeing children in*

certain educational abilities. New York, Amer Found. for the Blind 28 p.

Campbell, A A. 1934. The personality adjustment of only children. *Psychol. Bull.* 31 193-203

Campbell, C. Macfie. 1917 The subnormal child—a survey of the school population in the Locust Point District of Baltimore *Ment. Hyg.* 1 96-147.

———— 1925 On the definition or delimitation of the hizophrenic type of reaction Schizophrenia (dementia praecox). Assoc. Res. Nerv. & Ment. Dis. *Ser. Res. Publ.* vol. 5

Carbon, Damian. 1541. *Libro del arte de las comadres o madrinas, y del regimiento de las preñadas y paridas y de los niños* Mallorca, Hernando de Cansoles. 120 f. (Cf. Miller [1933])

Carmichael, Leonard, and Cushman, Helen. 1932. A study of mirror-writing in relation to handedness and perceptual and motor habits. *J Gener. Psychol.* 6:296-329

Carroll, Herbert A 1930. *Generalization of bright and dull children* Teach Coll. Contrib Educ No 439 54 p

Carter, Jerry W, Jr. 1936 A case of reactional dissociation (Hysterical paralysis) *Amer. J Orthopsychiat.* (In press.)

Catalano, A 1927 Sindrome mentale e parkinsonismo da encefalite epidemica in un fanciullo *Gior. di psichiat clin. e tecn manic.* 55:35-48.

Channing, Alice. 1932. *Employment of mentally deficient boys and girls.* U S. Child. Bur Publ. No 210. 107 p

Chant, Nellie, and Blatz, W E. 1928 A study of sleeping habits of children *Genet. Psychol. Monog.* 4:13-43.

Chapin, F. Stuart 1928. A quantitative scale for rating the home and social environment of middle-class families in an urban community. a first approximation to the measurement of socio-economic status. *J Educ Psychol* 19:99-111.

Chapman, James C. 1921. *Trade tests, the scientific measurement of trade proficiency.* New York, Holt. 435 p

Chiampi, L., and Crespo, C F. 1930 Secuelas de la encefalitis letárgica *Bol. instit. psiquiat* 2 136-143.

Cimbal, W 1927. *Die neurosen des Kindesalters* Berlin, Urban & Schwarzenberg. 509 p.

Clark, L Pierce. 1918. Some suggestions for more accurate mental therapy in epilepsy. *J. Amer. Med. Assoc.* 71:255-257.

————. 1926 Psychology of essential epilepsy. *J Nerv & Ment. Dis* 63:575-585

Clark, L. Pierce. 1933. *The nature and treatment of amentia.* London, Baillière, Tindall & Cox 306 p

Clark, Taliaferro, Sydenstricker, Edgar, and Collins, S D. 1923 Weight and height as an index of nutrition. *U S Pub Hlth Rep.* 38.39-58.

Clark, W W., and Williams, J Harold 1919 *A guide to the grading of neighborhoods* Whittier State School, Dept Research, Bull No. 8.

Clouston, T S 1877 A case of general paralysis at the age of sixteen *Brit J Ment Sci.* 23 419-420

Cole, B. E. 1924. The problem of social adjustment following epidemic encephalitis in children. *Ment. Hyg* 18·977-1023

Collar, D J. 1920 A statistical study of arithmetic ability *Brit J. Psychol* 11·135-158.

Collins, S. D 1924. The eyesight of school children as determined by the Snellen test *U S. Pub. Hlth. Rep* 39 3013-3027

Conklin, Edmund S. 1920. The foster-child fantasy *Amer J Psychol* 31 59-76

——— 1927. *Principles of abnormal psychology.* New York, Holt. 457 p. (New ed. 1935.)

——— 1935 *Principles of adolescent psychology* New York, Holt. 437 p

Coriat, Isador H. 1914-15 Stammering as a psychoneurosis *J Abnor & Soc. Psychol* 9 417-429

——— 1928. Stammering. A psychoanalytic interpretation. *Nerv. & Ment. Dis Monog* No. 47. 68 p

——— 1931 The nature and analytical treatment of stuttering *In* R West (1931), pp 151-156

Cornell, E L, and Coxe, W W. 1934. *A performance ability scale* Yonkers, World Book Co 88 p.

Craig Colony 1926 *Thirty-second annual report of the managers and officers of the Craig Colony, Sonyea, N Y.*

Crookshank, F G. 1931. *The Mongol in our midst* London, Kegan Paul. 3rd ed. 340 p

Crosby, S B. 1929. A study of Alameda County delinquent boys with special emphasis upon the group coming from broken homes. *J Juv Res* 13 220-230.

Dandy, Walter E., and Blackfan, Kenneth D 1917. Internal hydrocephalus *Amer J. Dis. Child* 14 424-443

Danielson, F H, and Davenport, C B 1921. The Hill folk Report on a rural community of hereditary defectives *Eugen Rec. Off. Mem* No. 1. 56 p.

Darrow, Clarence. 1925. The Edwardses and the Jukeses. *Amer. Mercury* 6 147-157.

Davenport, C B 1923. Ecology of epilepsy. II Racial and geographic distribution of epilepsy *Arch. Neurol & Psychiat., Chicago* 9:554-556.

Davidson, H. P. 1931 An experimental study of bright, average and dull children at the four-year mental level. *Genet. Psychol. Monog.* 9.119-290

Davies, G. R. 1914. Elements of arithmetical ability. *J. Educ. Psychol.* 5.131-140.

Davies, Stanley P. 1930 *Social control of the mentally deficient.* New York, Crowell. 389 p.

Davis, C. M. 1928 Self-selection of diet by newly weaned infants. *Amer J Dis Child.* 36·651-679

Davis, Gertrude D 1935 *The behavioral effects of congenital syphilis A review of the literature.* Unpublished Master's Thesis, Indiana University 137 p

Davis, Katherine B. 1929. *Factors in the sex life of twenty-two hundred women* New York, Harper. 430 p.

Dawson, S., and Conn, J. C M. 1926 Effect of encephalitis lethargica on the intelligence of children *Arch. Dis. Childhood.* 1·357-368.

———, ——— 1931. *Intelligence and disease.* London, H. M Stationery Off., Med. Res. Comm. Spec Rep. Ser No. 162. 53 p.

Dawson, W S 1928. The mental aspects of encephalitis. *Med. J. Austral.* 2.74-80.

Dearborn, W. F, Anderson, J. E., and Christiansen, A O. 1916. Construction tests of mental ability *J. Educ. Psychol.* 7 445-458.

———, Shaw, E. A, and Lincoln, E. A. 1923. A series of form-board and performance tests of intelligence. *Harvard Monog. Educ.* Ser 1, No 4 63 p.

Déjerine, J, and Gauckler, E. 1915. *Psychoneuroses and their treatment by psychotherapy* Philadelphia, Lippincott. 395 p

Dennett, M. W 1929. Sex enlightenment for civilized youth *In "Sex and civilization"* by V. F Calverton and S. D. Schmalhausen. New York, Macaulay, pp. 97-108.

De Sanctis, Sante 1906 Sopra alcune varietà della demenza precoce. *Riv. Sper di Freniatria.* 32 141-165.

——— 1925 Neuropsichiatria infantile. Rome, Stock 995 p.

De Weerdt, E H 1928. The effect of malnutrition upon the expression of intelligence. *Sch. & Soc* 27:540-541.

Dexter, Elizabeth H. 1928. Treatment of the child through the school environment *Ment. Hyg.* 12:358-365.

Doering, C R., and Raymond, A F 1935 Additional note on reliability *In "Schizophrenia Statistical studies from the Boston Psychopathic Hospital (1925-1934)"* Reprint no 6 4 p.

Doll, Edgar A 1916 *Anthropometry as an aid to mental diagnosis* Vineland Training School Publ. no 8 91 p.

——— 1917 *Clinical studies in feeble-mindedness* Boston, Badger 232 p.

——— 1917a On the use of the term "feeble-minded" *J Crim. Law & Criminol* 8.216-221

——— 1929 A case of microcephaly following embryonic Roentgen irradiation Amer Assoc Stud Feeble-mind, *Proceed 53rd Ann Meet* 34 211-219

———. 1933 Birth lesion as a category of mental deficiency *Amer. J Orthopsychiat* 3 1-13

——— 1934 Department of Research annual report 1933-34 *Train Sch. Bull* 31 112-123

——— 1935 Criteria of mental deficiency *Psychol Exch.* 3 207-215

———. 1935a. *The Vineland social maturity scale Manual of directions* Vineland, N. J, The Training School 30 p (Reprint from *Train Sch Bull* v 32, nos 1-4, March-June, 1935)

———, Phelps, Winthrop N, and Melcher, Ruth T 1932 *Mental deficiency due to birth injury* New York, Macmillan 289 p

Dougherty, James H. 1933 *Some facts concerning the functioning of the Missouri State Course of Study in Arithmetic* Columbia, Mo, author 66 p

Dowd, H L 1922. Relation of mental retardation to nutrition *Hosp Soc Serv* 6 92-95

Drahms, August 1900 *The criminal: his personnel and environment* New York, Macmillan 394 p.

Dresdner, I 1933 Ueber Korperbehinderung und seelische Entwicklung *Zsch. f angew. Psychol* 44 399-437.

Drever, J 1929 Intelligence tests for the deaf *Teach. of the Deaf* 27 163-167.

———, and Collins, M 1928. *Performance tests of intelligence* Edinburgh, Oliver & Boyd. 52 p

Dublin, Louis I, and Gebhart, J C 1924. *Do height and weight tables identify undernourished children?* New York, Assoc. Improv. Condition of Poor 23 p

Dugdale, R L 1877. *The Jukes* New York, Putnam 120 p

Dukes, Clements 1899 *Remedies for the needless injury to children involved in the present system of school education.* London, Rivington 38 p

Dummer, W F. 1921. *The responsibility of the home.* (Paper read before the Los Angeles Conference on Social Hygiene Education. April 1921) Privately printed.

Dunham, Francis L. 1916. Suggestion as a therapeutic measure in nocturnal enuresis. *Amer J. Dis Child.* 12·618-625.

———. 1916a Arrow board—an adult form-board test. *Ped Sem.* 23 283-290.

Dunlap, C. B. 1924. Dementia praecox. Some preliminary observations on brains from carefully selected cases, and a consideration of certain sources of error. *Amer J Psychiat.* 3:403-421.

Eames, T H 1932. A comparison of the ocular characteristics of unselected and reading disability groups *J. Educ Res* 25.211-215

Ebaugh, Franklin G. 1923. Neuropsychiatric sequelae of acute epidemic encephalitis in children *Amer. J Dis. Child* 25:89-97.

———. 1931 What constitutes fellowship training in psychiatry· some fundamentals. *Ment. Hyg.* 15:791-812.

———, and Lloyd, Ruth 1927. The rôle of a mobile clinic in the educational program of a state psychopathic hospital. *Ment. Hyg.* 11 346-356.

Eccles, A. 1930. A modification of the Vineland adjustment score card. *Train Sch. Bull* 27·1-10.

Edmondson, Edna H 1921 Juvenile delinquency and adult crime. *Ind. Univer. Stud.* No 49 (viii). 114 p

Ehrenfest, Hugo 1926 *Birth injuries of the child.* New York, Appleton-Century 221 p.

Eliot, Thomas D. 1932 Why family harmony? *Ment. Hyg* 16:85-100.

Ellis, Havelock 1913 *Studies in the psychology of sex.* Philadelphia, F. A. Davis Co 4 vols

Elsässer, K 1906. Zur Entstehung von Brachy- und Dolicocephalie durch willkurliche Beeinflussung des kindlichen Schädels. *Zentralbl f Gynak.* 30 422-424

Emerson, Charles P. 1935 *The nervous patient* Philadelphia, Lippincott 453 p.

Emerson, W R. P 1917. A group study of the results of 100 physical and mental examinations of so-called well children *Internat. Clinics* s 2, 27 205-215

——— 1922. *Nutrition and growth in children* New York, Appleton-Century 341 p.

Emminghaus, Hermann. 1887 *Die psychischen Storungen des Kindesalters* Tübingen, Laupp 293 p

Erickson, M H. 1929. A study of the relationship between intelligence and crime *J Crim Law & Criminol.* 19.592-625.

Esquirol, J E. D. 1845. *Mental maladies* (Trans. by E. K. Hunt) Philadelphia, Lea & Blanchard 496 p. (This is an abridged translation of "Des maladies mentales considérées sous les rapports médical hygiénique et médico-légal" Paris, Baillière 1838. 2 vols)

Estabrook, A. H 1916 *The Jukes in 1915* Washington, Carnegie Inst. 85 p

———, and Davenport, C B. 1912. *The Nam family a study in cacogenics* Cold Spring Harbor, N. Y., Eugenics Record Office. 85 p.

Exner, Max J. 1915. *Problems and principles of sex education a study of 948 college men* New York, Association Press.

Faegre, Marian L, and Anderson, John E. 1929 *Child care and training* Minneapolis, Univ Minnesota Press 274 p.

Fairbank, Ruth E 1933. The subnormal child—seventeen years after *Ment Hyg* 17.177-208.

Farr, Clifford B, Schwartz, L. A., and Smith, Lauren H. 1930. The relative importance of hereditary factors in constitutional and organic psychoses *J Nerv & Ment. Dis* 71.36-44.

———, Sloane, P, and Smith, Lauren H 1930 The relative importance of hereditary factors in manic-depressive psychosis and involutional melancholia. *J Nerv & Ment Dis* 71 409-411

Fenton, Norman 1928 The only child *J Genet Psychol* 35 546-555

——— 1935 *The delinquent boy and the correctional school* Claremont, Calif, Claremont Colleges Guidance Center. 182 p.

———, and Wallace, R 1934. Use of tests in twenty-eight child guidance clinic centers in the United States *J Juv Res* 18·115-118

Ferguson, G. O. Jr. 1920 A series of form boards. *J. Exper Psychol.* 3·47-58

Fernald, G M., and Keller, H 1921 The effect of kinaesthetic factors in the development of word-recognition in the case of non-readers *J Educ Res* 4·355-377

Fernald, Walter E 1917 Standardized fields of inquiry for clinical studies of border-line defectives *Ment Hyg* 1 211-234.

Ferson, M L, and Stoddard, G. D 1927. Law aptitude *Amer Law Sch Rev.* 6 78-81

Fink, H. W. 1920 Masturbation Internat. Conf Women Physicians, *Proceed.* 5 75

Fischel, Marguerite K 1934 *The spastic child A record of successfully achieved muscle control in Little's disease* St. Louis, Mosby. 97 p.

Fisher, V E 1929. *An introduction to abnormal psychology* New York, Macmillan 512 p

Fladeland, Sina V 1930. Some psychological effects of blindness as indicated by speech disorders. *J. Expression*. 4:129-134.

Flemming, B M. 1925 A study of the sleep of young children. *J. Amer. Assoc. Univ. Women* 19 25-27

Fletcher, Harvey. 1925. Some new methods and apparatus for testing the acuity of hearing and their relation to the speech and tuning fork methods. *Laryngoscope* 35:501-524

Fletcher, J. M. 1928. *The problem of stuttering*. New York, Longmans 362 p.

Flexner, Bernard, Oppenheimer, Reuben, and Lenroot, Katharine F. 1933 *The child, the family and the court*. U S. Child Bur. Publ. No 193, rev. ed. 100 p.

Ford, Frank R, Crothers, Bronson, and Putnam, Marian. 1927. *Birth injuries and the central nervous system* Baltimore, Williams & Wilkins. 164 p

Foster, Emery M, Isdell, Julia E, Smith, Rose M, Martens, Elsie H., and McLeod, Beatrice. 1933 *The education of exceptional children. Being chapter VI of the Biennial survey of education in the United States: 1930-1932* U. S. Off Educ. Bull 1933, No. 2 (advanced pages). 85 p

Foster, Josephine 1930 Play activities of children in the first six grades. *Child Devel.* 1 248-254

Foster, Sybil. 1925. Personality deviations and their relation to the home *Ment Hyg* 9:735-742.

———. 1927. A study of the personality make-up and social setting of fifty jealous children. *Ment. Hyg* 11 53-77

Fowler, Edmund P 1928 Progressive deafness means now available for prevention and cure *Volta Rev.* 30 650-663

———, and Fletcher, Harvey. 1926. Three million deafened school children, their detection and treatment. *J. Amer Med. Assoc.* 87:1877-1882

Franzen, Raymond. 1922 *The accomplishment ratio* Teach. Coll Contrib Educ. No. 125 59 p

Frary, Louise G. 1935 Enuresis, a genetic study *Amer J Dis Child.* 49 557-578.

Freeman, F N. 1914. *The teaching of handwriting* Boston, Houghton Mifflin 156 p.

———. 1920 Clinical study as a method in experimental education. *J. Appl Psychol.* 4:126-141.

Freud, Sigmund. 1909. Selected papers on hysteria and other psychoneuroses. *Nerv. & Ment Dis. Monog.* No. 4. 200 p.

Freud, Sigmund 1909. Further observations on the defense-neuro-psychoses *In* S Freud (1909), pp 155-174.

Friedell, Aaron 1927 A reversal of the normal concentration of the urine in children having enuresis *Amer. J Dis Child* 33 717-721

Friedjung, J K. 1911 Die Pathologie des einzigen Kindes *Wien Med Wochensch.* 61 376-381

Fuller, J. R 1916. The psychology and physiology of mirror-writing. *Univ. Calif. Publ Psychol* 2:199-265.

Furfey, Paul H 1928 *The measurement of developmental age* Cathol Univ. Amer, Educ. Res Bull v. 2, no 10 40 p

———. 1931 A revised scale for measuring developmental age for boys *Child Devel* 2 102-114

Gallaudet, T H. 1839 Domestic education at the table *Mother's Mag* 7·6-8 *et seq*

Galton, Francis. 1869 *Hereditary genius* London, Macmillan

Gardner, G E., and Pierce, H. D 1929 The inferiority feelings of college students *J Abnor & Soc Psychol* 24 8-13

Garrett, Henry E., and Schneck, Mathew R. 1933 *Psychological tests, methods and results* New York, Harpers. 137 + 235 p

Garrison, Sidney C, and Garrison, K. C 1929 *The psychology of the elementary school subjects* Richmond, Va, Johnson Publishing Co. 569 p.

Gates, Arthur I 1922 The correlations of achievement in school subjects with intelligence tests and other variables. *J Educ Psychol.* 13·129-139, 223-235, 277-285.

——— 1922a *The psychology of reading and spelling with special reference to disability* Teach Coll Contrib Educ No 129 108 p

——— 1924 The nature and educational significance of physical status and of mental, physiological, social and emotional maturity. *J Educ Psychol* 15·329-358.

———. 1935 *The improvement of reading. A program of diagnostic and remedial methods* New York, Macmillan Rev. ed 668 p

———, and LaSalle, Jessie 1923 The relative predictive values of certain intelligence and educational tests together with a study of the effect of educational achievement upon intelligence test scores. *J Educ Psychol* 14.517-539

———, ———. 1924 A study of writing ability and its relation to other abilities based on repeated tests during a period of 20 months *J Educ Psychol* 15·205-216

Gerstmann, J., and Schilder, P 1921. Studien uber Bewegungsstorungen, uber die Typen extrapyramidaler Sprannungen und uber

die extrapyramidal pseudobulbärparalyse (akinetisch-hypotonisches Bulbärsyndrom) *Zsch. f d ges Neur u Psychiat* 70:35-54

Gesell, Arnold 1913. The village of a thousand souls. *Amer. Mag.* 76 (Oct.) .11-15

———. 1925. *Mental growth of the pre-school child* New York, Macmillan 447 p

——— 1928. *Infancy and human growth.* New York, Macmillan. 418 p

———, and Thompson, Helen. 1934. *Infant behavior, its genesis and growth* New York, McGraw-Hill. 343 p

Gifford, Mabel F. 1931 A consideration of some of the psychological causes and treatment of stammering *In* R. West (1931), pp 74-82.

Glueck, Sheldon, and Glueck, Eleanor T 1934 *One thousand juvenile delinquents Their treatment by court and clinic.* Cambridge, Mass, Harvard Univ. Press 341 p

Goddard, Henry H. 1912. The form board as a measure of intellectual development in children *Train Sch. Bull* 9 49-51.

——— 1913 *The Kallikak family* New York, Macmillan. 121 p.

———. 1914 *Feeble-mindedness, its causes and its consequences.* New York, Macmillan. 599 p

———. 1915 The adaptation board as a measure of intelligence. *Train Sch Bull* 11 182-188

Goodenough, Florence 1925. The reading tests of the Stanford Achievement Scale and other variables *J. Educ Psychol* 16 523-531.

——— 1926. *Measurement of intelligence by drawing.* Yonkers, World Book Co. 177 p.

——— 1927. The reliability and validity of the Wallin peg boards *Psych. Clinic* 20.199-215

———. 1928 *The Kuhlman-Binet tests for children of pre-school age A critical study and evaluation* Minneapolis, Minn, Univ. Minnesota Press. 146 p.

——— 1929 The emotional behavior of young children during mental tests *J. Juv Res.* 13 204-219

———. 1931 *Anger in young children* Minneapolis, Minn, Univ. Minnesota Press. 278 p

———. 1934. *Developmental psychology.* New York, Appleton-Century 619 p

———, and Leahy, A. M. 1927. The effects of certain family relationships upon the development of personality. *J Genet Psych.* 34 45-71

Gordon, H 1921. Left-handedness and mirror-writing, especially among defective children *Brain.* 43:313-368.

Gowers, W. R 1901 *Epilepsy and other chronic convulsive diseases their causes, symptoms and treatment* London, Churchill. 2nd ed. 344 p

Graber, G. H 1934 *Psychoanalyse und Heilung eines nachtwandelnden Knaben.* Stuttgart, Rascher 67 p.

Grave, Charlotte E. 1935 Behavior problems away from home *Occupat Ther & Rehabilit.* 14 175-180

Gray, C Truman 1915 *A score card for the measurement of handwriting* Bull Univ Texas No. 37 50 p

———. 1917. *Types of reading ability as exhibited through tests and laboratory experiments* Chicago, Univ. Chicago Press 196 p (Suppl Educ Monog 1, no. 5.)

——— 1922 *Deficiencies in reading ability, their diagnosis and remedies* Boston, Heath 420 p

Gray, W S. 1918 Reading *In* Survey St Louis Public Schools (ed by C H. Judd) Part II, Chap XII, pp 117-186. Yonkers, World Book Co

Green, Charles E, and Buswell, G T. 1930 Testing, diagnosis and remedial work in arithmetic. *29th Yrbk Nat. Soc. Stud Educ,* pp 269-316.

Green, G. H 1923 *The day-dream: a study of development* London, Univ London Press 304 p.

Greene, James S, and Wells, Emilie J 1927 *The cause and cure of speech disorders.* New York, Macmillan 458 p

Guibor, George P 1934 Some possibilities of orthoptic training *Arch Ophthalmol* ns 11.433-461

Guthrie, L J 1909 *Functional nervous disorders in childhood.* London, H. Frowde 300 p

Gwyn, M K 1914 The puzzle picture and defective aliens *Med Rec.* 85:197-199

Hagen, F. G 1876 *Statistische Untersuchungen uber Geisteskrankheiten.* Erlangen, Besold 356 p

Haggard, Howard W 1927. *The science of health and disease* New York, Harper 538 p.

——— 1934 *Old eyes in young people.* New York Westinghouse Lamp Co 31 p

Haggerty, Melvin E 1923 Intelligence examination Delta 2 *J Educ Psychol* 14 257-277

——— 1925 The incidence of undesirable behavior in public school children *J Educ Res* 12 102-122

Hagman, R. R 1932 A study of fears of children of pre-school age. *J Exper Educ* 1 110-130.

Haines, Thomas H 1916 A psychological survey of the Ohio State School for the Blind *Outlook for the Blind* 9:88-92.
———. 1931-32 Mental defects among public school children in the United States. Amer. Assoc Study Feeble-minded. *Proceed 55th meet.* 36.31-38
Hallowell, D K. 1928. Mental tests for pre-school children *Psychol Clinic* 16 235-276.
Halls, Emily C 1934. *Speech record blank*. Indianapolis, Ind Univ. Psychol. Clinics 5 p
———. 1936 Indiana Survey for children handicapped in speech *Ind Teach.* 80(April) 26, 28.
Hamilton, G V. 1929. *A research in marriage* New York, Boni 570 p
Hanna, G. C 1924. *Occupational efficiency of the mentally defective.* Univ Minn Educ Monog. No 7. 48 p
Hartenberg, Paul 1914. *Treatment of neurasthenia* London, Milford 292 p.
Hartshorne, Hugh, and May, Mark A 1928. *Studies in the nature of character. I Studies in Deceit Book 1 General methods and results. Book 2 Statistical methods and results.* New York, Macmillan 414 p, 306 p.
———, ———, and Maller, J 1929 *Studies in the nature of character. II Studies in service and self-control* New York, Macmillan. 560 p
———, ———, and Shuttleworth, F. K. 1930 *Studies in the nature of character III Studies in the organization of character* New York, Macmillan 503 p
Hartwell, Samuel. 1931 *Fifty-five bad boys.* New York, Knopf 359 p.
Hathaway, Winifred. 1920. Conservation of vision classes in the public schools Amer. Assoc Instruct. Blind, *Proceed. 1920 meet.*, pp. 34-37
Hayashi, Y 1925. On the sleeping hours of school children from six to twenty years. *Jido Jatshi*, p. 296 (Cf. *Psychol. Abst* 1927 1 1826.)
Hayes, Samuel P. 1920 The work of the Department of Psychological Research at the Pennsylvania Institution for the Instruction of the Blind *Outlook for Blind.* 14 5-20
———. 1921 Self-surveys in schools for the blind. *Penn Inst. Instruct. Blind Publ.* No 2 60 p
———. 1923 Preliminary study of the influence upon school success of the age at which vision is lost. *Perkins Inst, etc, Publ.* No. 1. 8 p
——— 1930. Terman's condensed guide for the Stanford revision

of the Binet-Simon intelligence tests adapted for use with the blind. *Perkins Inst, etc, Publ.* No 4 47 p

Head, Henry. 1926 *Aphasia and kindred disorders of speech* Cambridge, Cambridge Univ. Press 2 v 549, 426 p.

Healy, William 1914 A pictorial completion test *Psychol Rev* 21 189-203

——— 1915 *The individual delinquent.* Boston, Little, Brown 830 p

———. 1921. Pictorial completion test II. *J. Appl Psychol* 5 224-239.

——— 1922 *The practical value of scientific study of juvenile delinquents* U S. Child. Bur Publ No 96 31 p

———, and Bronner, Augusta F. 1919 Medico-psychological study of delinquents *Ment. Hyg* 3 445-452.

———, ———. 1926. *Delinquents and criminals their making and unmaking* New York, Macmillan 317 p

———, and Fernald, G 1911. Tests for practical mental classification *Psychol Monog* No 54 (v. 13) 54 p

———, and Healy, Mary T. 1917 *Pathological lying, accusation and swindling* Boston, Little, Brown 286 p

———, Bronner, Augusta F, Baylor, E M H, and Murphy, J P 1929 *Reconstructing behavior in youth* New York, Knopf. 325 p

Heck, A O 1927. An analysis of problems involved in the study of school failure *Educ Res. Bull* (*Ohio State Univ*) 6 67-72, 89-91, 138-141, 155-157.

Heering, Grace A 1932. A study of thumbsucking in infants from two to seventeen weeks of age *Child Devel* 3.273-277

Heller, Theodor. 1909 Über Dementia infantilis (Verblodungsprozess im Kindesalter) *Zsch f. d Erfors. u Behand d jugend Schwachsinns.* 2 17-28.

———. 1930. Uber die Dementia infantilis *Zsch f Kinderforsch.* 37·661-667.

Henry, George W 1925. *Essentials of psychiatry* Baltimore, Williams & Wilkins 199 p.

Herring, J P 1922 *Herring revision of the Binet-Simon tests and verbal and abstract elements in intelligence examination.* Yonkers, World Book Co 71 p

Herrman, Charles 1917 The etiology of Mongolian imbecility. *Arch. Pediat* 34 494-503.

Hess, Julius H. 1919. *Principles and practice of infant feeding.* Philadelphia, Davis 2nd ed. 343 p

———, Mohr, George J, and Bartelme, Phyllis F, 1934 *The phys-*

ical and mental growth of prematurely born children. Chicago, Univ Chicago Press 449 p.
Hetherington, Virginia A. 1933 *The problem of rehabilitation in post-encephalitis.* Indiana Univ, Master's Thesis. 57 + xxxvii p
Hetzer, H 1926. Der Einfluss der negativen Phase auf soziales Verhalten und literarische Produktion pubertierender Madchen *Quell. u. Stud z Jugendk.* No 4. 40 p
———. 1927. Systematische Dauerbeobachtungen am Jugendlichen über den Verlauf der negativen Phase *Zsch f pad Psychol* 28:80-96.
Heuyer, G 1929 A propos de l'hystérie infantile *Bull Soc. Pediat* 27 244-248.
Hey, Julius. 1904 *Das Gansersche Symptom und seine klinische und forense Bedeutung.* Berlin, Hirschwald 108 p.
Hildreth, Gertrude H 1933. *A bibliography of mental tests and rating scales* New York, Psychological Corp 242 p
Hinshelwood, J. 1917 *Congenital word-blindness* London, Lewis. 121 p.
Hinsie, Leland E., and Katz, Siegfried E. 1931 Treatment of manic-depressive psychosis A survey of the literature. Assoc Res. Nerv & Ment. Dis., *Ser. Res Publ.* 11:679-733.
Hodder, Jessie D. 1918. What shall be done with the defective-delinquent in the penal institution? *Mass Soc. Ment. Hyg Publ.* No. 32, pp 22-24
Hoffman, Frederick L. 1928 *Suicide problems.* Newark, N J, The Prudential Insurance Co. 270 p
Hollingworth, Leta S. 1918. *The psychology of special disability in spelling.* Teach. Coll Contrib. Educ. No. 88 105 p
———. 1920 *The psychology of subnormal children* New York, Macmillan 288 p.
———. 1923. *Special talents and defects* New York, Macmillan. 216 p.
———. 1926 *Gifted children, their nature and nurture* New York, Macmillan. 374 p.
Holt, L. Emmett 1897. *Diseases of infancy and childhood* New York, Appleton-Century. 1st ed 1117 p
———. 1910. *Diseases of children* New York, Appleton-Century. 5th ed. 1171 p.
———, and Howland, John 1919 *Diseases of infancy and childhood.* New York, Appleton 9th ed. 1018 p
Homburger, A. 1926. *Vorlesungen ueber Psychopathologie des Kindesalters.* Berlin, Springer. 852 p.

Houser, J. David 1915. The relation of spelling ability to general intelligence and to meaning vocabulary *Elem Sch J* 16 190-199.

Howard, Frank E., and Patry, Frederick L 1935 *Mental health, its principles and practice* New York, Harper. 551 p

Howe, William A., and Schenck, Herbert D. 1914 Examination of the vision, hearing and nasal respiration of the school child by teachers of New York State *Fourth Inter Cong Sch Hyg, Trans.* 4 270-283.

Hug-Hellmuth, H 1921. Vom "mittleren Kinde" *Imago* 7 93-94

Hull, Clark L 1928 *Aptitude testing* Yonkers, World Book Co. 536 p.

Humphrey, J H 1928 Hard-of-hearing children in the St Louis Public Schools *Volta Rev* 30 644-646

Hunt, Jean L, Johnson, Buford J, and Lincoln, Edith M. 1921. *Health education and the nutrition class* New York, Dutton.

Hurlock, E. B, and Sender, S 1930 The "negative phase" in relation to the behavior of pubescent girls *Child Devel* 1 325-340

Hutt, R B. W 1925 Standardization of a color cube test *Psychol. Clinic.* 16 77-97.

Illinois Association for Criminal Justice 1929 *Illinois crime survey* Chicago, Illinois Association for Criminal Justice 1108 p

Ingram, Christine P 1935. *Education of the slow-learning child* Yonkers, World Book Co. 419 p.

Irwin, Elizabeth, and Marks, Louis A. 1924 *Fitting the school to the child* New York, Macmillan 339 p

Irwin, O C 1930 The amount and nature of activities of newborn infants under constant external stimulating conditions during the first ten days of life. *Genet Psychol. Monog* 8 1-92

Irwin, Robert B. 1914 A Binet scale for the blind *Outlook for Blind* 8 95-97

Jacobson, Edmund 1929 *Progressive relaxation* Chicago, Univ Chicago Press 428 p

——— 1934 *You must relax* New York, Whittlesey House 201 p

Janet, Pierre 1907 *The major symptoms of hysteria* New York, Macmillan 346 p

Jelliffe, Smith E 1931 Some historical phases of the manic-depressive synthesis Assoc. Res. Nerv & Ment Dis., *Ser Res Publ* 11 3-47

Jensen, M. B 1928 Objective differentiation between three groups in education—teachers, research workers, and administrators *Genet. Psychol Monog.* 3 333-454

Jersild, A. T, Markey, F V, and Jersild, C L 1933 Children's fears,

dreams, wishes, daydreams, likes, dislikes, pleasant and unpleasant memories. *Child. Devel Monog.* No. 12. 172 p

Johnson, Buford J. 1925 *Mental growth of children in relation to rate of growth in bodily development* New York, Dutton 160 p

———, and Schriefer, Louise. 1922 A comparison of mental age scores obtained by performance tests and the Stanford revision of the Binet-Simon scale. *J Educ. Psychol* 13 408-418.

Johnson, Eleanor H. 1925. *School problems in behavior* Hartford, Conn., Hartford Seminary Found. 112 p.

Johnson, H. M. 1931. Sleep. *In* W. L Valentine (1931), pp 241-291

Jones, H. E, and Jones, Mary C. 1928. A study of fear. *Child Educ.* 5:136-143.

Jones, Mary C. 1924. A laboratory study of fear. The case of Peter. *Ped. Sem* 31 308-315

———. 1933 Emotional development. *In* C Murchison (1933), pp 271-302.

Junius, P, and Arndt, M. 1913 Uber die Deszendenz der Paralytiker. *Zsch. f. d. ges. Neur. u. Psychiat* 17:303-401

Kanner, Leo. 1935 *Child psychiatry.* Springfield, Ill, Thomas. 527 p

———, and Lachman, S E. 1933 The contribution of physical illness to the development of behavior disorders in children *Ment. Hyg* 17:605-617.

Kantor, J Robert. 1926-1928 *Principles of psychology.* New York, Knopf. 2 vols.

———. 1933 *A survey of the science of psychology.* Bloomington, Ind., Principia Press 564 p.

Karger, P 1925. Ueber den Schlaf des Kindes *Abhandl a d Kinderhk. u. ihr Grenzgeb.* Heft 5 1-50.

Karpeles, Lotta M 1932 A further investigation of the Porteus maze as a discriminative measure in delinquency. *J. Appl. Psychol.* 16.426-437.

Kasanin, Jacob 1931. The affective psychoses in children. Assoc. Res. Nerv. & Ment Dis, *Ser Res Publ.* 11·87-117

———, and Kaufman, M R 1929. A study of the functional psychoses in children. *Amer. J. Psychiat* 9 307-384

———, and Veo, L 1931 The early recognition of mental disease in children *Amer J. Orthopsychiat* 1 406-409

Keating, J. M (ed). 1890. *Cyclopedia of the diseases of children.* Philadelphia, Lippincott 4 vols.

Kempf, G A, Collins, S. D., and Garman, B L 1928 *Refractive errors in the eyes of children as determined by retinoscopic examination with a cycloplegic. Results of eye examinations of 1860 white*

school children in Washington, D C. U. S Pub Hlth Ser Bull No. 182 56 p

Kennedy, L 1930 *Studies in the speech of the feeble-minded* Univ. Wisconsin, Thesis.

Kent, G H., and Shakow, D. 1928 A graded series of form boards *Person. J.* 7 115-120

Kenyon, Elmer L 1931. Conscious detailed psycho-muscular control of speech production as an effective (if not necessary) basis for all manner of psychologic treatment of stammering *In* R West (1931), pp 176-187

Kerr, James 1925. *School vision and the myopic scholar* London, Allen & Unwin 159 p

——— 1927. *The fundamentals of school health* New York, Macmillan 859 p

Kerrison, Philip D. 1930 *Diseases of the ear* Philadelphia, Lippincott. 4th ed 627 p

Keyes, Charles H 1911. *Progress through the grades of city schools* Teach Coll Contrib Educ No 42 79 p

Kimmins, C W. 1931 Children's dreams *In* C Murchison (1931), pp 527-554

Kirkpatrick, C. 1926 Intelligence and immigration *Ment Meas Monog* No. 2 127 p

Kite, Elizabeth H 1913 The Pineys. *Survey* 31 7-13.

Kleitman, N 1929. Sleep. *Physiol Rev* 9 624-665

Klieneberger, O L 1908 Über juvenile Paralyse. *Allg Zsch. f Psychiat u. psychiat-gericht. Med* 65 936-971

Knox, H. G. 1914. A scale based on the work at Ellis Island for estimating mental defect *J Amer Med Assoc* 62 741-747

Kohs, S C 1923 *Intelligence measurement, a psychological and statistical study based upon the block-design tests* New York, Macmillan 312 p

Koren, John. 1907 *Prisoners and juvenile delinquents in institutions, 1904* U S Census Bur, special report 295 p

Krasnogorski, N J 1933 Die neue Behandlung der Enuresis nocturna. *Monatssch f Kinderhk.* 57 252-254.

Kuenzel, Myra W 1929 A survey of Mongolian traits *Train. Sch. Bull* 26 49-59

Kuhlmann, Frederick 1922 *A handbook of mental tests* Baltimore, Warwick & York 208 p

Kussmaul, Adolph 1877 Disturbances of speech *Cyclop. Pract Med. (Ziemssen)* New York, Wood 14 581-875

Ladd, Margaret R 1933 *The relation of social, economic and personal*

characteristics to reading ability Teach. Coll. Contrib Educ. No. 582 100 p

Lane, H A., and Witty, P. A. 1935 The mental ability of delinquent boys *J Juv Res* 19.1-12

Langdon-Down, J 1866 Observations on an ethnic classification of idiots *Lond Hosp Rep* 3 259-262

Larsen, E J 1931. Neurologic-etiologic study on 1000 mental defectives. *Acta Psychiat. et Neurol* 6·37-54.

Lashley, K. S 1929. *Brain mechanisms and behavior*. Chicago, Univ. Chicago Press. 186 p

Laurer, F A 1928 Hearing survey among a group of pupils of Syracuse schools. *Amer J Pub Hlth.* 18.1353-1360

Leahy, Alice M 1926. Emphasis in psychiatric social case work. *Ment Hyg.* 10.747-750

Lee, Alice. 1901 Data for the problem of evolution in man. VI. A first study of the correlations of the human skull. *Roy. Soc. Trans* Ser. A, 196 225-264

Lee, D M 1932. *The importance of reading for achieving in grades four, five and six* Teach Coll. Contrib. Educ No 556. 64 p.

Lehman, Harvey C, and Witty, Paul A. 1927. *The psychology of play activities.* New York, Barnes 242 p

———, ——— 1928. A study of play in relation to intelligence *J Appl Psychol* 12.369-397

———, ———. 1929. A pre-test for courses in vocational guidance *Voc Guid. Mag* 7.145-152.

Lehrman, P R 1927. The fantasy of not belonging to one's family *Arch. Neur & Psychiat.* 18 1015-1023

Lennox, William G, and Cobb, Stanley. 1928. *Epilepsy.* Baltimore, Williams & Wilkins 197 p

Lenroot, Katharine F, and Lundberg, Emma O 1925. *Juvenile courts at work A study of the organization and methods of ten courts* U. S. Child Bur. Publ No 141 323 p.

Levy, David M 1928 Fingersucking and accessory movements in early infancy An etiologic study *Amer J Psychiat* 7·881-918.

———. 1932 Body interest in children and hypochondriasis. *Amer. J Psychiat* 12·295-315

———, and Patrick, H T. 1928. Relation of infantile convulsions, head-banging and breath-holding to fainting and headaches in the parents *Arch. Neur & Psychiat.* 19.865-887

———, and Tulchin, S. H. 1923 The resistance of infants and children during mental tests. *J Exper. Psychol.* 6:304-322.

Levy, David M, and Tulchin, S. H 1925 The resistant behavior of infants and children. II *J. Exper Psychol* 8 209-224.

Levy, John 1931 A quantitative study of behavior problems in relation to family constellation *Amer. J Psychiat* 10 637-654

———. 1932. The impact of cultural forms upon children's behavior. *Ment Hyg* 16 208-220

———. 1933 Conflicts of cultures and children's maladjustments *Ment Hyg* 17.41-50

Lewis, F Park. 1916 The blind child. *Outlook for Blind* 10 5-9

Lewis, J. M., and Ostroff, J 1932 Psychic enuresis in normal children an experimental study *Amer J Dis Child* 43 1490-1493

Lewis, Nolan D, and Hubbard, Lois D 1931. Manic-depressive reactions in Negroes. Assoc. Res. Nerv & Ment Dis, *Ser Res. Publ* 11 779-817.

Lewis, S J 1930. Thumb-sucking; cause of malocclusion in deciduous teeth. *J. Amer Dent Assoc.* 17:1060-1073

———, and Lehman, I A 1929 Observation in growth changes of the teeth and dental arches. *Dent Cosmos* 71 480-499

Liljegren, Alice. 1931 Methods used in the treatment of the stuttering child in the public schools of Omaha (Nebraska) *In* R West (1931), pp 43-51

Lincoln, E. A. 1927. Tentative standards for the Lincoln hollow square form board *J Appl Psychol* 11 264-267

Linder, S. L 1879. Das Saugen an den Fingern, Lippen, u s w., bei den Kindern. *Jahrbk f Kinderhk* 14 68ff. (Reprinted in *Zsch psychoanal Pädag.* 1934 8 117-138)

Lipscomb, L. E. 1931. A study of reading of a sixth grade *Elem Engl Rev.* 8·60-63

Livingston, William A. 1935 *Report on a psychological study at the Indiana Boys' School.* Unpublished manuscript.

Lord, Elizabeth E, Carmichael, Leonard, and Dearborn, Walter F 1925 Special disabilities in learning to read and write. *Harvard Monog Educ.* Ser I, v II, no 1 (whole no. 6) 76 p

Louttit, C M 1934 A blank for history taking in psychological clinics *J Appl. Psychol.* 18.737-748

———, and Frith, Gladys D 1934 The Dorbets—a feeble-minded family *J. Abnor & Soc Psychol* 29 301-313

———, and Halford, J F 1930. The relation between chest girth and vital capacity. *Res Quart Amer. Physical Educ Assoc* 1·34-35

———, and Halls, Emily C. 1936 The Indiana speech survey *J Speech Disorders.* (In press) (Cf E. C. Halls [1936])

Louttit, C. M., and Stackman, Harvey. 1936. The relationship between Porteus maze and Binet test performance. *J. Educ Psychol* 27:18-25.

———, and Waskom, Willard B. 1934 *The Indiana psychodiagnostic blank* Ind Univ Psychol Clinics, Pub Ser. II, no 7 12 p.

Lowe, G. M., Shimberg, M. S., and Wood, M. W. 1924. Further standardization of construction tests A and B *J. Appl Psychol.* 8:324-338.

Lowrey, L. G, and Smith, Geddes 1933 *The Institute for Child Guidance, 1927-1933.* New York, Commonwealth Fund. 116 p

Lucas, W. P, and Pryor, Helen B. 1931 Factors involved in combating the "hunger strike" of children *Amer. J Dis. Child.* 41:244-261.

Lutz, W. F. 1923. Sebastin. The effect of increased physical fitness on mental test results. *Psychol. Clinic* 14 284-286.

McAdory, Margaret. 1929. *The construction and validation of an art test.* Teach Coll Contrib Educ. No. 383 35 p

McCarthy, Dorothea. 1930. *The language development of the preschool child* Minneapolis, Minn, Univ. Minnesota Press. 174 p

——— 1933. Language development *In* C. Murchison (1933), pp. 329-373.

MacClenathan, R. H 1934. Teachers and parents study children's behavior. *J. Educ Sociol* 7:325-333

McCormick, Mary J 1930. A scale for measuring social adequacy. *Soc. Sic Monog.* v. 1, no. 3. 75 p

McDowell, Elizabeth D. 1928 *Educational and emotional adjustment of stuttering children* Teach Coll. Contrib Educ No. 314 59 p.

——— 1931. Some interpretations of recent researches in the correction of stammering. *In* R West (1931), pp 110-114

McGinnis, Mildred A. 1931. Speech training and mental hygiene methods for the correction of stammering *In* R. West (1931), pp 138-142

McHale, Kathryn. 1926 *Comparative psychology and hygiene of the overweight child.* Teach Coll. Contrib Educ. No. 221 123 p

MacKane, Keith. 1933 *A comparison of the intelligence of deaf and hearing children.* Teach Coll Contrib Educ No 585 47 p

McKaye, D. L. 1929 Recording emotional qualities *Psychol Clinic.* 17 234-248.

McKenzie, A. 1914. *Annual report of medical inspection in Dumfermline* Edinburgh, Turnbull & Spears

McLeod, Beatrice. 1934 *Teachers' problems with exceptional children IV Deaf and hard-of-hearing children.* U. S. Off. Educ. Pamp. No 54. 29 p.

MacQuarrie, T. W 1927 A mechanical ability test. *J. Person Res.* 5:329-337

Madden, Richard. 1931 *The school status of the hard-of-hearing child.* Teach Coll Contrib. Educ No 499. 64 p.

Mahan, Harry C. 1934. A battery of performance tests. The Arthur scale revised. *J Appl Psychol* 18 645-655.

Makuen, G. Hudson. 1898 Training of speech as a factor in mental development. *Bull Amer. Acad Med* 3 501-505.

——— 1914. A study of 1000 cases of stammering, with special reference to the etiology and treatment of the affection *Therap Gaz* 38:385-390.

Malamud, W, and Palmer, G 1932. The rôle played by masturbation in the causation of mental disturbances. *J. Nerv. & Ment. Dis* 76 220-233, 366-379.

Malzberg, B 1931 A statistical study of the prevalence and types of mental diseases among children and adolescents. *Psychiat Quart.* 5 511-537

———. 1931a. Facilities for the treatment of mental diseases in children and adolescents. *Psychiat. Quart* 5 669-675

Marcus, Grace. 1933 The individual and his family relationships. Some newer concepts in social case work. *Ment. Hyg* 17:353-368

Marquis, Dorothy P 1933 A study of activity and postures in infant sleep *J Genet Psychol* 42:51-69.

Marston, Leslie R 1925 The emotions of young children: an experimental study of introversion-extroversion *Univ. Iowa Stud. Child Welf.* v. 3, no. 3 99 p.

Martens, Elsie H, and Russ, Helen 1932 *Adjustment of behavior problems of school children A description and evaluation of the clinical program in Berkeley, Calif.* U S. Off Educ Bull 1932 No 18. 78 p

Mateer, Florence 1924. *The unstable child* New York, Appleton-Century 471 p.

——— 1934 Pituitary acceleration of I Q's (abstract) *Psychol Bull* 31:686

———. 1935 *Glands and efficient behavior* New York, Appleton-Century. 243 p.

Matheson Commission for the Study of Epidemic Encephalitis 1929 *Epidemic encephalitis, etiology, epidemology, treatment: report of a survey* New York, Columbia Univ Press 849 p

——— 1932. *Epidemic encephalitis Etiology, epidemology, treatment Second report.* New York, Columbia Univ. Press 155 p

Mathews, Ellen. 1923. A study of emotional stability. *J. Delinq* 8:1-40

Mathews, Mabel A 1922. One hundred institutionally trained male defectives in the community under supervision. *Ment. Hyg.* 6.332-342

Matz, Philip B, and Willhite, O. C. 1931 A study of manic-depressive psychosis among ex-service men. Assoc. Res Nerv. & Ment. Dis., *Ser. Res Publ.* 11 629-654.

Maxfield, F. N 1925. Design blocks· a description of a simple clinical test *Psychol. Clinic.* 16.98-109

Maxfield, Kathryn E 1927 *Adaptation of educational tests for use with blind pupils* Amer. Found. Blind, Bur Res Educ, Publ., Ser III, No. 1. 56 p.

——— 1928 *The blind child and his reading.* New York, American Foundation for the Blind, Inc. 215 p.

May, Charles H 1934. *Manual of the diseases of the eye.* Baltimore, William Wood 496 p

Mead, C D 1916 *The relation of general intelligence to certain mental and physical traits* Teach. Coll Contrib Educ No 76 117 p.

Meagher, J F. W. 1936 *Study of masturbation and the psychosexual life.* Baltimore, William & Wilkins 3rd ed. (edited by S. E. Jelliffe) 180 p.

Meige, Henry, and Feindel, E 1902. Les tics et leur traitement. Paris, Masson 633 p (Engl trans. Tics and their treatment London, Appleton. 1907. 379 p)

Melcher, Ruth T 1929 Mental deficiencies resulting from birth injury *Train Sch Bull.* 26 8-11.

Menninger, W C. 1930 Juvenile dementia paralytica. *J Amer. Med. Assoc.* 95 1499-1502

Merrill, M. A 1926 Mental differences among juvenile delinquents. *J. Delinq* 10 312-323

Merry, Frieda K 1930. Types of errors made in fundamental arithmetical processes by pupils in six schools for the blind. *Teach. Forum (Blind)* 3:8-19

——— 1930a. Shall we use the Braille slate or the Braille writer with beginners? *Teach Forum (Blind)* 3 3-6

——— 1931 Common language errors made by a representative group of blind children *In* Motivating language lessons among blind children in the elementary grades *Perkins Instit Publ* No. 10, pp. 34-47

——— 1932 Shall we teach contractions to beginning Braille readers? *Teach Forum (Blind)* 5·35-37

Merry, Ralph V. 1933. *Problems in the education of visually handicapped children.* Cambridge, Mass, Harvard Univ Press. 243 p.

Meumann, E 1907 *Vorlesungen zur Einfuhrung in die experimentelle Padagogik* Leipzig, Engelmann. 2 vols. 555 p, 467 p.

Meyer, Adolph. 1906. Fundamental conceptions of dementia praecox *Brit Med J* 2.757-759.

Michaels, J J, and Goodman, S E. 1934. Incidence and intercorrelations of enuresis and other neuropathic traits in so-called normal children. *Amer J. Orthopsychiat.* 4 79-106

Miller, Joseph L 1933 Renaissance midwifery· the evolution of modern obstetrics, 1500-1700. *In* Mayo Foundation Lectures on the history of medicine Philadelphia, Saunders, pp 297-337.

Miner, James B. 1918. *Deficiency and delinquency* Baltimore, Warwick & York 355 p

Moeller, F 1876. *Beitrag zur Lehre von dem im Kindesalter entstehenden Irrsein, statistische Untersuchungen uber Geisteskrankheiten* Erlangen. (Cf. Spitzka [1890])

Mohr, George J. 1928 Emotional factors in nutrition work with children. *Ment Hyg.* 12:366-377

Monroe, Marian 1932 *Children who cannot read An analysis of reading disabilities and the use of diagnostic tests in the instruction of retarded children* Chicago, Univ Chicago Press. 205 p.

Morgan, John J B 1934 *Child psychology* New York, Farrar & Rinehart Rev ed. 502 p

Morrison, Carolyn 1914-15. Speech defects in young children. *Psychol Clinic* 8 138-142

Mort, Paul R, and Featherstone, W B 1932. *Entrance and promotion practices in city school systems Standards and accounting procedures.* New York, Bureau Publications, Teachers College. 73 p.

Moss, Fred A. 1930 Scholastic aptitude test for medical students *J Assoc Amer. Med Coll* 5 90-110

———, and Hunt, Thelma 1932. *Foundations of abnormal psychology* New York, Prentice-Hall 548 p

Mott, G. W. 1899 Notes of twenty-two cases of juvenile general paralysis, with sixteen post-mortem examinations *Arch. Neurol., London.* 1 250-327.

Muhl, A M. 1927. Emotional maladjustment during pregnancy with possible relationship to enuresis in the child. *Psychoanal. Rev* 14:326-328.

Muhl, Anita M. 1930 Results of psychometric and personality studies of blind children at the California State School for the Blind Amer. Assoc. Instruct. Blind, *Proceed.* pp. 568-573

Murchison, Carl. 1926 *Criminal intelligence* Worcester, Mass., Clark Univ Press 291 p.

———. 1931 *Handbook of child psychology.* Worcester, Mass., Clark Univ. Press. 711 p.

———. 1933. *Handbook of child psychology* Worcester, Mass., Clark Univ. Press. 2nd ed. 936 p.

Murphy, Douglas P. 1928. Ovarian irradiation; its effect on the health of subsequent children *Surg., Gynae., & Obstet.* 47.201-215

Myers, Edward T. 1930. *A survey of sight-saving classes in the public schools of the United States.* Philadelphia, privately printed 105 p. (Univ. Penn dissertation.)

Myers, G. C. 1929. Problem parents. *J Juv. Res* 13:146-149.

Myers, Jay A 1932 *Tuberculosis among children* Springfield, Ill, Thomas. 208 p

Nelson, J F 1931. Personality and intelligence. *Child Devel. Monog.* No. 4 62 p.

Neumann, Frederika 1928. The effects on the child of an unstable home situation. *Ment Hyg* 12.742-750.

New York (City), Board of Education 1930 *Thirty-second annual report of the Superintendent of Schools for the year ending July 31, 1930.* New York, Board of Education 843 p.

New York (State), Crime Commission. 1928. *A study of environmental factors in juvenile delinquency.* Albany, Crime Comm 93 p.

Newell, H W. 1934 The psycho-dynamics of maternal rejection. *Amer J. Orthopsychiat* 4 387-401

Newhart, Horace 1929. Progress in the prevention of deafness through the use of the audiometer in the public schools. *J Amer. Med. Assoc* 93 1117-1119.

Nilson, K. 1933. Certain intelligence aspects of a group of physically disabled pupils in Minnesota public schools. *J. Educ. Res.* 26:513-516.

Norsworthy, Naomi 1906 The psychology of mentally deficient children *Arch Psychol.* No. 1. 111 p

Noyes, Arthur P 1934 *Modern clinical psychiatry.* Philadelphia, Saunders 485 p

Noyes, Guy L 1914 The relation of sight and hearing to early school life. *Univ. Mo. Bull* v. 15, no. 3 (Med ser. no 5). 34 p.

O'Hern, J P 1919 The reading problem in the public schools as affected by actual measurement. *J N Y State Teach. Assoc.* 6 81-83.

Olson, Willard C. 1929. *The measurement of nervous habits in normal children* Minneapolis, Univ Minnesota Press. 97 p.

———. 1930 *Problem tendencies in children· a method for their*

measurement and description Minneapolis, Univ Minnesota Press 92 p.

Olson, Willard C. 1931. The clinical use of behavior rating schedules. *J. Juv Res* 15.237-245

Ordahl, George. 1923. Diagnosis of the unstable moron. *J Delinq.* 8 99-112.

Orton, Samuel, and Gillingham, Anna 1934. Special disability in writing. *Bull Neurol. Inst, New York* 3:1-32

Osburn, W J., and Rohan, B. J 1931 *Enriching the curriculum for gifted children* New York, Macmillan. 408 p

Ostheimer, Maurice, and Levi, I. V. 1904. Enuresis in childhood. *J. Amer Med. Assoc.* 43 1844-1846

Otis, Margaret 1924. A study of suggestibility of children. *Arch Psychol* No. 70. 108 p

Papurt, Maxwell J. 1931. Psychological studies in epilepsy. *Ohio State University, Abstracts of Doctoral Disser* No. 6, pp 275-282

Parson, B S 1924 *Left-handedness* New York, Macmillan 185 p.

Partridge, M N 1927 A study of nocturnal enuresis in boys *J. Delinq* 11 296-308

Paschal, F C 1918 A report on the standardization of the Witmer cylinder test *Psychol Clinic* 12 54-59

——— 1918 *The Witmer cylinder test* Hershey, Pa, The Hershey Press 89 p.

Paterson, Donald. 1930 *Physique and intellect.* New York, Appleton-Century. 304 p

———, and Elliott, R M, *et al* 1930 *Minnesota mechanical ability tests* Minneapolis, Univ. Minnesota Press 586 p.

Paterson, D, and Spence, J C 1921 The after-effects of epidemic encephalitis in children *Lancet* 2 491-493.

Paynter, Richard H, and Blanchard, Phyllis 1929. *A study of educational achievement of problem children* New York, Commonwealth Fund. 72 p

Pechstein, Louis A 1924. Factors influencing the school success of the blind *Sch & Soc* 19 47-52

Peck, M W, and Wells, F L 1923. On the psycho-sexuality of college graduate men. *Ment. Hyg* 7 697-714

———, ——— 1925 Further studies on the psycho-sexuality of college graduate men *Ment Hyg* 9 502-520

Penrose, L S 1934. *Mental defect* New York, Farrar & Rinehart. 205 p.

Pensimus, K 1933. Folgen der Entrechtung. *Zsch. f. psychoanal Pad.* 7:233-242.

Percival, Walter P 1926 A study of the causes and subjects of school failures. n p., 56 p. (Thesis, Teachers College, Columbia University Abridgment published as Chap. XIX of the report of the California Curriculum Survey Committee)

Pese, Alfred. 1920. Beitrage zur Pathogenese und Therapie der Enuresis *Jahrb. f. Kinderheilk.* 91:357-368

Petrovski, S. G. 1934. (Heredity in enuresis nocturnal.) *Sovetsk. Psikhonevrol.* No. 1, pp 10-17. (Cf. *Psychol. Abst.* 9:671)

Pfister, H 1904. Die Enuresis nocturna und ahnliche Störungen in neuropathologischer Bewertung. *Monatssch. f. Psychiat. u. Neurol.* 15 113-147

Pichon, E. 1933 Névroses infantiles. *J. Méd. Fr.* 22:120-123.

Pintner, R 1919. A non-language group intelligence test. *J. Appl. Psychol.* 3.199-214

——— 1931 *Intelligence testing, methods and results.* New York, Holt New ed. 555 p.

———. 1933. The feeble-minded child. *In* C Murchison (1933), pp. 802-857

———, and Paterson, Donald. 1916. A measurement of the language ability of deaf children. *Psychol Rev* 23 413-436.

———, ——— 1917. *A scale of performance tests.* New York, Appleton-Century. 218 p

Platonov, S. F 1925. *History of Russia* New York, Macmillan. 278 p

Polloch, W B. I 1916. The reduction of myopia in children of school age. *Glasgow Med. J.* 86:214-219.

Pollock, Horatio M. 1918. Dementia praecox as a social problem. *State Hosp Quart* 3 370-375

———. 1931. Recurrence of attacks in manic-depressive psychosis. Assoc. Res. Nerv. & Ment. Dis , *Ser Res. Publ.* 11:668-675.

Porteus, Stanley D 1915 Mental tests for the feeble-minded. a new series. *J Psycho-asthen.* 19:200-213

———. 1917. Mental tests with delinquents and Australian aboriginal children *Psychol. Rev* 24 32-42

——— 1919 Cephalometry of the feeble-minded *Publ Train Sch* No 1 for 1919 (Reprinted from June, 1919, *Train Sch. Bull.*). 24 p.

———. 1921 New definition of feeble-mindedness *Train Sch Bull.* 18 7-10

——— 1922 *Studies in mental deviations* Vineland, N J , Training School 276 p.

——— 1933 *The maze test and mental differences.* Vineland, N. J., Smith Publ. Co., 219 p.

Porteus, Stanley D, and Babcock, Marjorie E 1926. *Temperament and race.* Boston, Badger 364 p.

———, Dewey, D. M., and Bernreuter, R. G 1930 Race and social differences in performance tests. *Genet Psychol Monog* 8.93-208

———, and Hill, Helen F. 1920. Condensed guide to the Binet tests *Publ. Train. Sch.* No. 19 39 p (Reprinted from *Train Sch Bull*)

Potter, H W. 1933. Schizophrenia in children. *Amer J Psychiat.* 12·1254-1270.

———. 1933a. A clinical consideration of mental deficiency *Psychiat. Quart.* 7 195-202

Poull, Louise E, and Montgomery, Ruth P 1929 The Porteus maze test as a discriminative measure in delinquency. *J Appl Psychol* 13 145-151

Pratt, Emily A. 1926 Jamestown eye survey. A study of 8000 school children. *Univ. State N. Y Bull* No 847 26 p

Pratt, Karl C, Nelson, A K., and Sun, K H. 1930 *The behavior of the newborn infant* Columbus, O., Ohio State Univ Press 237 p

Pressey, Sidney L 1921 A group scale for investigating the emotions. *J Abnor. & Soc. Psychol.* 16.55-64.

———, and Chambers, O R. 1920 First revision of a group scale designed for the investigation of the emotions, with tentative norms *J. Appl Psych.* 4 97-104.

———, and Pressey, Luella C 1919 Cross-out tests with suggestions as to a group scale of emotions *J. Appl. Psychol* 3 138-150.

———, ———. 1933. Development of the interest-attitude tests *J. Appl Psychol* 17.1-16

Prince, Morton 1914 *The unconscious.* New York, Macmillan 549 p.

Pruette, Lorine. 1924. *Women and leisure, a study of social waste* New York, Dutton 225 p

Rasmussen, Andrew T. 1932 *The principal nervous pathways* New York, Macmillan. 73 p

Reamer, Jeannette C 1921 Mental and educational measurements of the deaf *Psychol. Monog.* No. 132. 130 p.

Reavis, William C 1926 *Pupil adjustment in junior and senior high school* New York, Heath 348 p.

Reeves, Edith G 1914. *Care and education of crippled children in the United States* New York, Survey Associates, Inc. 252 p

Reeves, Margaret 1929. *Training schools for delinquent girls* New York, Russell Sage Foundation 455 p

Regensburg, Jeannette. 1926 Emotional handicaps to intellectual achievement in supernormal children. *Ment Hyg* 10:480-494
Reinhardt, James M., and Harper, Fowler V. 1931. Comparison of environmental factors of delinquent and non-delinquent boys *J. Juv Res* 15 271-277.
Renshaw, Samuel, Miller, Vernon L, and Marquis, Dorothy P. 1933. *Children's sleep*. New York, Macmillan. 242 p.
Reynolds, Martha M 1928 *Negativism of pre-school children* Teach Coll. Contrib Educ No. 288. 126 p.
———, and Mallay, Helena. 1933 The sleep of young children. *J Genet Psychol.* 43:322-351.
Richards, Esther L 1920. Some adaptive difficulties found in school children. *Ment. Hyg.* 4:331-363.
——— 1921. The elementary school and the individual child. *Ment Hyg* 5:707-723
———. 1923 The significance and management of hypochondriacal trends in children *Ment Hyg.* 7.50-59
———. 1927. Formulating the problem in social case work with children *Ment Hyg.* 11 688-702
——— 1932 *Behavior aspects of child conduct* New York, Macmillan 299 p
Richardson, Charles W., and Shambaugh, George E. 1928. The physical causes of deafness *Arch Otolaryngol* 7 415-513. (Also as *Nat Res Coun, Rep. & Cir. Ser.* No 82.)
Richardson, Frank H. 1927 *Rebuilding the child, a study in malnutrition.* New York, Putnam. 319 p
Ritchie, J. M. 1930 *Concerning the blind.* London, Oliver & Boyd. 244 p
Robbins, S D., and Stinchfield, S M 1931 *A dictionary of terms dealing with disorders of speech.* Boston, Expression Co., 27 p
Roberts, Lydia A. 1929. Review of recent literature on certain phases of nutrition research and its significance in child development. National Research Council, *Rep. 3rd Conf. Child Devel.*, pp 69-70
——— 1935 *Nutrition work with children.* Chicago, Univ Chicago Press Rev ed. 639 p.
Robeson, H A. 1925 Children's unit at Kings Park State Hospital. *State Hosp Quart* 10:578-583
Robin, J 1932. Neurasthénie et psychasthénie infantiles *Evolution psychiat* 2nd ser , no 4, pp. 93-105.
Rogers, Carl R 1931 *Measuring personality adjustment in children nine to thirteen years of age* Teach Coll. Contrib Educ No. 458. 107 p

Rogers, Carl R. 1933 A good foster home its achievements and limitations *Ment Hyg* 17 21-40.

Rogers, James F. 1924. *What every teacher should know about the physical condition of her pupils* U S. Off Educ, Hlth Educ Pam. No. 18. 23 p.

———. 1929 *Physical defects in school children* U S Off Educ, Sch Hlth Stud. No 15. 29 p.

Rohleder, Hermann 1902 *Die Masturbation, eine Monographie fur Aerzt und Padagogen* Berlin, Kornfeld 2nd ed 336 p

Root, W T. 1921 A socio-psychological study of fifty-three supernormal children *Psychol Monog.* No 133 134 p

Rosenow, Curt. 1920 A note on the significance of nocturnal enuresis with reference to intelligence and delinquency *J Delinq* 5 41-55

——— 1930 The incidence of first-born among problem children *J Genet Psychol* 37 145-151

Ross, Bertha M 1931 Some traits associated with sibling jealousy in problem children *Smith Coll. Stud Soc Wk.* 1 364-376.

Ross, T A. 1923 *The common neuroses their treatment by psychotherapy* London, Arnold. 267 p.

Russell, G Oscar 1931 Neuro-pedagogical process of treating stammerers and stutterers at Ohio State University *In* R West (1931), pp. 188-192

Russell, P. M G 1933 Mongolism in twins *Lancet* 224 802-803

Rust, M M 1931 The effect of resistance on intelligence test scores of young children *Child Devel Monog* No 6 80 p.

Sachs, M. W. 1924 Zur Aetologie des Stotterns *Klin Wochen* 37 113

St John, C. W 1930 Educational achievement in relation to intelligence *Harvard Stud Educ* v. 15. 219 p

Sanz, E F. 1933. La esquizofrenia en la infancia *Arch de neurobiol* 13 737-742.

Sargent, Ruth F 1924. What can the blind do? A study of five hundred former pupils of the Pennsylvania Institution for the Instruction of the Blind *Penn Inst Instruct. Blind, Publ* No. 3 31 p

Sayles, Mary. 1925 *The problem child in school* New York, Joint Committee on Methods of Preventing Delinquency 287 p

——— 1928. *The problem child at home* New York, Commonwealth Fund. 342 p

Scheffield, H B 1898 A contribution to the study of hysteria in childhood as it occurs in the U S. A *N Y Med J* 68.412-416

Scheidemann, Norma V 1931 *The psychology of exceptional children* Boston, Houghton Mifflin 520 p

Schieffelin, B, and Schwesinger, J C. 1930 *Mental tests and heredity,*

including a survey of non-verbal tests. New York, Galton Publishing Co 298 p.

Schmidt-Kraepelin, Toni. 1920. Uber die juvenile Paralyse. *Monog a d. Gesamtgeb d Neurol. u Psychiat.* Heft 20.

Schmitt, C 1918. Developmental alexia congenital word-blindness, or inability to learn to read *Elem. Sch. J.* 18 680-700, 757-769.

Schneck, M R 1929. Measurement of verbal and numerical abilities *Arch Psychol* No. 107. 49 p

Schroeder, Paul L, and Ackerson, Luton. 1931 Relationship of personality and behavior difficulties to disorders of speech. *In* R. West (1931), pp. 52-56.

Scott, Colin 1919 An eighth-grade demonstration class and the three "R's" *J Educ. Psychol* 10 189-218.

Seashore, Carl E 1919 *The psychology of musical talent* Boston, Silver, Burdett 288 p.

Seham, M, and Seham, G 1926. *The tired child* Philadelphia, Lippincott 342 p.

Selzer, C 1933. Lateral dominance and visual fusion, their application to difficulties in reading, writing, spelling and speech. *Harvard Monog. Educ* No 12. 119 p

Sewall, Mabel. 1930-31. Some causes of jealousy in young children. *Smith Coll. Stud. Soc Wk* 1 6-22

Shakow, D., and Kent, G. H. 1925 The Worcester form-board series *Ped. Sem.* 32:599-611.

Shanahan, William T 1913. Hygiene of the epileptic school child Fourth Inter. Cong Sch. Hyg, *Transact.* 3 413-418.

Shaw, C R. 1929. *Delinquency areas. A study of the geographic distribution of school truants, juvenile delinquents, and adult offenders in Chicago* Chicago, Univ Chicago Press 214 p

———. 1930. *The Jack-roller A delinquent boy's own story.* Chicago, Univ Chicago Press. 205 p

———, and McKay, H D 1931. *Social factors in juvenile delinquency.* U. S. Comm Law Observ. & Enforce, Bull. 13, 2. 401 p.

Shideler, E. H. 1917-18 Family disorganization and the delinquent boy in the United States *J. Crim. Law & Criminol* 8 709-732.

Shimberg, Myra E, and Reichenberg, Wally 1933 The success and failure of subnormal problem children in the community. *Ment. Hyg.* 17:451-465

Shirley, Mary M 1931 *The first two years. Vol. I, Postural and locomotor development.* Minneapolis, Univ. Minnesota Press. 227 p.

———. 1933. *The first two years a study of twenty-five babies II.*

Intellectual development. Minneapolis, Univ Minnesota Press 513 p

Siegl, J., and Asperger, H 1934 Zur Behandlung der Enuresis *Arch f Kinderhk* 102 88-102.

Silverman, Baruch. 1935 The behavior of children from broken homes. *Amer J Orthopsychiat.* 5·11-18.

Simmons, Persis W 1933 *Statistical analysis of the performances of 1024 children five to eight years of age on the Witmer form board* Unpublished Indiana Univ Doctoral Dissertation. 100 p

Sims, Verner M 1928. *Measurement of socio-economic status.* Bloomington, Ill, Public School Publ. Co. 33 p.

Slaght, W E. 1928 Untruthfulness in children· its conditioning factors and its setting in child nature Univ Iowa Studies, *Stud in Charact.* v. 1, no. 4. 79 p.

Slawson, John 1926 *The delinquent boy.* Boston, Badger. 477 p

Slingerland, W H 1917. *The care and cure of enuresis or bedwetting in child-caring institutions* Russell Sage Found, Dept Child-help. Pam. No 33 29 p

Smalley, Ruth E 1931. The influence of differences in age, sex and intelligence in determining the attitudes of siblings toward each other *Smith Coll. Stud Soc Wk* 1 23-40.

Smaltz, Warren M 1931 On being deaf *Amer Mercury* 23.161-169

Smith, Groves B 1926 Cerebral accidents of childhood and their relationships to mental deficiency. Amer Assoc. Stud Feeble-mind, *Proceed* 21.77-98.

Smith, Henry L., and Wright, W. W 1928. *Tests and measurements* New York, Silver, Burdett. 541 p

Smith, T. L. 1904. The psychology of the daydream *Amer. J. Psychol* 15 465-488

Spitzka, E. C. 1890 Insanity. *In* Keating (1890), 4 1038-1053

Ssucharewa, G. 1932. Ueber den Verlauf der Schizophrenien im Kindersalter. *Zsch f d ges Neur. u Psychiat* 142·309-321

Starch, Daniel, and Elliott, E C 1912 The reliability of grading high school work in English *Sch. Rev* 20 442-457

———, ——— 1913 The reliability of grading work in history. *Sch Rev.* 21 676-681

———, ——— 1913a. The reliability of grading work in mathematics. *Sch. Rev.* 21·254-259

Starr, M A. 1909 *Organic and functional nervous diseases* Philadelphia, Lea & Febiger 970 p.

Stedman, Lulu M. 1924. *Education of gifted children.* Yonkers, World Book Co 192 p

Stenquist, J. L 1923. *Measurements of mechanical ability.* Teach. Coll. Contrib. Educ. No 130. 101 p

Sterling, E. Blanche, and Bell, Elizabeth. 1930. Hearing of school children as measured by the audiometer and as related to school work. *U. S Pub. Hlth. Rep* 45:1117-1130

Stewart, R. M. 1926 Problem of the Mongol *Proceed Roy. Soc Med.* (§*Psychiat.*) 19 11-25

——— 1933. Juvenile types of general paralysis *J Ment Sci* 79:603-613

Stoddard, Clara B. 1931. The correction of stammering in Detroit. *In* R West (1931), pp 92-99.

Stoddard, George D, and Wellman, Beth L. 1934. *Child psychology.* New York, Macmillan. 419 p.

Stocker, W 1914 Uber eigenartige Unterschiede im Pupillenbefund bei progressiver Paralyse der Erwachsenen und der juvenilen Form *Zsch. f. d ges Neurol u. Psychiat* 26 564-573.

Stogdill, Ralph M 1931. Parental attitudes and mental hygiene standards *Ment Hyg* 15 813-827.

——— 1933. Attitudes of parents, students, and mental hygienists toward children's behavior. *J. Soc. Psychol* 4 486-489

Stone, Cliff W 1908. *Arithmetical abilities and some factors determining them* Teach. Coll. Contrib. Educ. No 19 102 p

Stratton, G M. 1927 Anger and fear · their probable relation to each other, to intellectual work, and to primogeniture. *Amer. J Psychol.* 39 125-140

Strauch, August. 1919 Sleep in children and its disturbances. *Amer. J. Dis Child* 17·118-139.

Strecker, Edward A. 1921 Psychoses and potential psychoses of childhood *N Y Med J.* 114 209-211.

———, Appel, Kenneth, *et al* 1931. The prognosis in manic-depressive psychosis. Assoc. Res Nerv. & Ment Dis., *Ser Res Publ.* 11 471-538

———, and Ebaugh, Franklin G 1935 *Practical clinical psychiatry for students and practitioners.* Philadelphia, Blakiston. 705 p.

Streit, Helen. 1931. Treatment and prognosis of an extreme case of functional anorexia *Child Devel* 2·292-302

Stryker, Sue 1925 Encephalitis lethargica—the behavior residuals. *Train Sch Bull* 22 152-157.

Stutsman, Rachel 1931. *Mental measurement of pre-school children.* Yonkers, World Book Co. 368 p.

Sünner, P. 1922. Die psychoneurotische erbliche Belastung bei dem manisch-depressiven Irresein, auf Grund der Diem-Kollerschen

Belastungsberechnung. *Zsch. f d. ges. Neurol. u Psychiat.* 77:453-470

Sullenger, T E 1930. *Social determinants in juvenile delinquency* Omaha, Nebr, Douglas Printing Co. 87 p

Sweet, Lennig 1929. *Measurement of personal attitudes in younger boys* New York, Association Press. 58 p (Occas. Papers No 9)

Swift, B S. 1918 *Speech defects in school children.* Boston, Houghton Mifflin 129 p.

Swift, Walter B 1931. Why visualization is the best method for stammering. *In* R West (1931), pp. 83-91

Symonds, Percival M 1931. *Diagnosing personality and conduct* New York, Appleton-Century 602 p.

———. 1934 *Psychological diagnosis in social adjustment* New York, American Book Co 362 p

Szymanski, J S 1919 Aktivitat und Ruhe bei Tieren und Menschen. *Zsch f allg. Physiol* 18 105-162.

Talbot, Fritz B 1930 *Treatment of epilepsy* New York, Macmillan. 308 p

Taussig, A E 1909 The prevalence of visual and aural defects among the public school children of St Louis County, Missouri *Psychol Clinic* 3:149-160

Taylor, H. 1928. The influence of the teacher on relative class standing in arithmetic fundamentals and reading comprehension *27th Yrbk. Nat Soc Stud. Educ* Part II, pp 97-110

Teagarden, F M 1927 Change of environment and the I Q *J Appl. Psychol.* 11:289-296

Terman, Louis M. 1916 *The measurement of intelligence.* Boston, Houghton Mifflin. 362 p

——— 1919. *The intelligence of school children.* Boston, Houghton Mifflin 317 p.

———. 1920 *Condensed guide for the Stanford revision of the Binet-Simon tests.* Boston, Houghton Mifflin 32 p

———, *et al.* 1925 *Genetic studies of genius Vol 1, Mental and physical traits of a thousand gifted children.* Stanford University, Calif, Stanford Univ Press 648 p

———, and Burks, Barbara 1933. The gifted child *In* C Murchison (1933), pp. 773-801

———, and Hocking, A 1913 The sleep of school children, its distribution according to age and its relation to physical and mental efficiency. *J. Educ. Psychol.* 4 138-147.

Thacher, George A. 1917 Feeblemindedness and crime in Oregon. *J. Delinq* 2:211-224.

Theisen, W. W 1924 Factors affecting results in primary reading, *20th Yrbk. Nat. Soc. Stud. Educ.* Pt II, pp. 1-24.
Thiemich, Martin. 1900. Uber die Diagnose der Imbecillitat im fruhen Kindersalter. *Deutsche med. Wochensch.* 26.34-36.
Thom, Douglas A. 1927. *Everyday problems of the everyday child.* New York, Appleton-Century. 350 p.
Thomas, C. J 1905 Congenital "word-blindness" and its treatment. *Ophthalmoscope* 3.380-385.
Thomas, Margaret O. 1930. Monroe's standardized silent reading test. *Teach Forum (Blind)* 2·6-8.
Thompson, John. 1921. *The clinical study and treatment of sick children* Edinburgh, Oliver & Boyd. 3rd ed 909 p
Thorndike, E. L. 1932. *Teacher's word book of the twenty thousand words found most frequently and widely in general reading for children and young people.* New York, Teachers College, Bureau of Publications 182 p.
———, *et al.* 1927. *The measurement of intelligence* New York, Teachers College, Bureau of Publications 616 p.
Thursfield, J. H 1923 Treatment of enuresis *Lancet.* 2 528-529
Thurstone, L L, and Jenkins, R. L. 1931. *Order of birth, parent age and intelligence.* Chicago, Univ Chicago Press. 132 p.
Tiebout, Harry M. 1926. Psychiatric phases in vocational guidance. *Ment Hyg.* 10.102-112.
Tilney, F, and Riley, H. A. 1921. *The form and function of the central nervous system.* New York, Hoeber 1020 p.
Tilson, M. A. 1929 *Problems of pre-school children.* Teach. Coll. Contrib. Educ. No 356. 90 p.
Tissot, Simon-André 1760. *L'onanisme, ou dissertation physique sur les maladies produites par la masturbation* Lausanne, A Chapuis. 231 p (English ed. Dublin, J. William. 1772. 149 p.)
Tixier, Léon. 1930 Hystérie infantile; variations de ses manifestations cliniques. *Arch. méd enfant* 33.90-94.
Tjaden, J. C 1929 *Analytical interview* Chicago, Stoelting 34 p
Toops, H. A. 1921. *Trade tests in education.* Teach Coll. Contrib. Educ. No 115 118 p.
——— 1923 *Tests for vocational guidance of children thirteen to sixteen* Teach. Coll Contrib Educ No. 136. 159 p
Townsend, C W 1887. Incontinence of urine in children *Arch Pediat* 4 744-752.
Trabue, M R, and Stockbridge, F P 1920. *Measure your mind; the mentimeter and how to use it.* New York, Doubleday, Doran. 349 p

Travis, Lee E. 1931. *Speech pathology* New York, Appleton-Century. 331 p.

———. 1933. Speech pathology. *In* C Murchison (1933), pp. 650-698

———, and Rasmus, B. J 1931. The speech sound discrimination ability of cases with functional disorders of articulation *Quart. J Speech Educ.* 17:217-226

Tredgold, A. F. 1908 *Mental deficiency* New York, Wood. 1st ed 391 p

———. 1914 *Mental deficiency* New York, Wood 2nd ed 491 p.

——— 1929 *Mental deficiency (amentia)*. Baltimore, Wood. 4th ed 491 p.

Tudor-Hart, B 1926 Are there cases in which lies are necessary? *Ped Sem.* 33.586-641

Twitmyer, Edwin B, and Nathanson, Yale S. 1932. *Correction of speech defects* Philadelphia, Blakiston 413 p

Uhl, W. L. 1917 The use of standardized material in arithmetic for diagnosing pupils' methods of work. *Elem Sch J* 18:215-218

Unger, Edna W 1926 Vocational training for subnormal girls An experiment in the garment machine operating trade. *Person J.* 5.243-255

U S, Census, Bureau of. 1928 *The deaf mute population of the United States, 1920.* Washington, Govt Print. Off 159 p

———, ———. 1928a *The blind population of the United States, 1920* Washington, Govt Print Off 191 p

———, ———. 1931. *The blind and deaf-mute in the United States, 1930.* Washington, Govt. Print Off 23 p

———, ——— 1934. *Mental defectives and epileptics in State institutions 1929-1932* Washington, Govt. Print Off 17 p

———, ———. 1935 *Patients in hospitals for mental disease, 1933* Washington Govt. Print Off. 140 p

———, Children's Bureau 1931 *The child from one to six His care and training.* U S. Child Bur. Publ No 30. 150 p

———, ———. 1935. *Juvenile court statistics and federal juvenile offenders, 1932 Sixth annual report* U. S. Child. Bur. Publ. No 226 129 p.

———, Education, Office of 1902. *Report of the Commissioner of Education, 1902 Chap. XLVI, Report of committee on statistics of defective sight and hearing of public school children.* 2.2143-2155

———, ———. 1930 *Biennial survey of education, 1926-1928* U S Off Educ Bull 1930, No 16 1229 p

———, Public Health Service 1931 Measurements for Jaeger's test types used in near vision. *U S Pub Hlth Rep* 46.518-520

Valentine, Willard L. 1931. *Readings in experimental psychology.* New York, Harper 606 p

Van Alstyne, Dorothy. 1932. *Play behavior and choice of play materials of pre-school children.* Chicago, Univ. Chicago Press. 104 p.

van der Scheer, W. M. 1927. Beitrage zur Kenntniss der Mongoloiden Missbildung (Mongolismus) auf Grund klinischen, statistischer, und anatomischer Untersuchungen. *Abh. a. d. Neurol., Psychiat., Psychol. u ihren Grenzgeb.* Heft 41 162 p.

Van Deveer, Blanche. 1928. The hearing survey of the San Francisco Public Schools. *Volta Rev.* 30:761-765.

Varner, G. F 1922. Can teachers judge bright and dull children? *J. Educ. Res* 6:126-132.

Viets, Louise E 1931-32. An inquiry into the significance of nail-biting. *Smith Coll Stud Soc. Wk* 2:128-145

Wallace, Dorothy. 1924. Problem of the quasi-delinquent in the school *Ment Hyg* 8:115-165.

Wallin, J. E W. 1916. Report on speech defectives in the St. Louis Public Schools. *Ann. Rep. Bd Educ., 1915-1916,* pp. 174-211.

——— 1918. The peg form boards *Psychol Clinic* 12:40-53

——— 1921. *Problems of subnormality* Yonkers, World Book Co. 485 p

———. 1921a. Norms for the Sequin form board based on the average of three trials *J. Delinq* 6:381-386.

———. 1924 Congenital word-blindness—some analysis of cases. Chap viii, pp 150-163, *Studies in mental defects and handicaps.* Miami Univ. Bull Sci 22, no 5 177 p.

———. 1926 *Speech defective children in a large school system.* Miami Univ. Bul Sci. 25, no. 4. 45 p (A reprint with minor changes from Wallin [1916].)

——— 1927. *Clinical and abnormal psychology.* Boston, Houghton Mifflin 649 p.

Walsh, James J., and Foote, John A 1924. *Safeguarding children's nerves* Philadelphia, Lippincott. 272 p.

Warburg, F 1911. Ueber Angeborene Wortblindheit und die Bedeutung fur den Unterricht. *Zsch f Kinderforsch* 16:97-113.

Warner, M LaVinia. 1930. Eugene, a brilliant boy who failed in school. *Psychol Clinic.* 19:143-155

Warwick, Harold L. 1928 Hearing tests in public schools of Fort Worth *Volta Rev* 30 641-646.

Washburne, Carleton W. 1930 The grade placement of arithmetic topics: A "Committee of Seven" investigation. *29th Yrbk Nat. Soc Stud Educ.,* pp 641-670.

Watson, Alice E. 1935. *Experimental studies in the psychology and pedagogy of spelling* Teach. Coll. Contrib. Educ No 638 144 p.

Watson, John B. 1930. *Behaviorism*. New York, Norton. 308 p

———, and Morgan, J. J. B. 1917. Emotional reactions and psychological experimentation. *Amer. J. Psychol.* 28 163-174.

———, and Rayner, R 1920. Conditioned emotional reactions. *J Exper. Psychol.* 3:1-14.

Watson, Maude E. 1932. *Children and their parents.* New York, Crofts. 362 p.

Wechsler, David 1931. The incidence and significance of fingernail biting in children. *Psychoanal Rev.* 18 201-209.

Wechsler, Israel. 1935 *A textbook of clinical neurology* Philadelphia, Saunders 3rd ed 725 p

Weill, Blanche C 1927. *Toys and companions* Chap XX of Thom (1927), pp. 328-340

Weisenburg, Theodore, and McBride, Katharine E. 1935 *Aphasia A clinical and psychological study.* New York, Commonwealth Fund 634 p

Wells, Frederic L 1927 *Mental tests in clinical practice.* Yonkers, World Book Co 315 p.

Welt, Sara. 1893. A contribution on the occurrence of mental disturbances following acute diseases in children *N Y Med J* 57 298-301

Wembridge, E. C. 1932-33 (Letter in Reader's Forum.) *Psychol Exch.* v. 1, no. 5.

West, Robert. 1931 The phenomenology of stuttering *In* R West (1931), pp. 1-6.

———, 1931. *A symposium on stuttering (stammering).* Madison, Wis., College Typing Co 199 p

Whipple, Guy M. 1914. *Manual of mental and physical tests, simpler processes* Baltimore, Warwick & York 367 p (3rd ed, 1924)

———. 1915. *Manual of mental and physical tests, Part II, complex processes.* Baltimore, Warwick & York. 336 p (3rd ed, 1921)

White, William. 1929. *Outlines of psychiatry* Nerv & Ment Dis. Monog. Ser No. 1. (12th ed) 445 p

White House Conference on Child Health and Protection. Sect III F Committee on Special Classes 1931. *Special education The handicapped and the gifted.* New York, Appleton-Century 604 p.

——— Sect. I. Committee on Growth and Development. 1932. *Growth and development of the child. Part III, Nutrition.* New York, Appleton-Century 532 p.

——— Sect I C Subcommittee on Psychology and Psychiatry

1932a. *Psychology and psychiatry in pediatrics. the problem.* New York, Appleton-Century 146 p.

Wickman, E. K 1928. *Children's behavior and teachers' attitudes* New York, Commonwealth Fund. 247 p

Wilcox, H B. 1932 Psychoneuroses in children. *Bull. N. Y. Acad. Med.* 8.502-514.

Williams, C L., 1935. Some problems for mental hygiene and state hospitals. *Ind Bull. Char. & Correct* No 217, pp 478-481.

Williams, J Harold 1918. *A guide to the grading of homes.* Whittier State School, Dept. of Research, Bull. No. 7. 21 p.

Williams, M Claudia. 1931. Twelve years of visual treatment of stuttering. *In* R. West (1931), pp. 37-42

Willson, G. M 1925 A case of post-encephalitic conduct disorder. *Train Sch. Bull.* 22.25-27.

Wilson, Guy M, and Hoke, K J 1928 *How to measure. Revised and enlarged.* New York, Macmillan. 597 p

Witmer, Lightner. 1911. Courses in psychology at the summer school of the University of Pennsylvania. *Psychol Clinic* 4 245-273

Witty, Paul A. 1933. The only child of five *Psychol. Clinic.* 22 73-87.

———, and Lehman, Harvey C 1927. The play behavior of fifty gifted children. *J. Educ Psychol* 18 259-265.

Wodak, Ernst 1918 Uber Enuresis mit Myelodysplasie und Bemerkungen zur Enuresis Überhaupt. *Jahrb. Kinderhk* 87:47-60

Wood, Arthur H. 1929 *Report of the Mental Deficiency Committee.* London, H M Stationery Office. 3 vols.

Wood, I. C 1920. Nutrition classes in Chicago schools. *Mod Med.* 2:388-392.

Wood, T D 1930 *The vision of pre-school children An analytical study of 982 children* New York, Nat. Soc Prevent Blind Publ. No 66.

———, and Rowell, Hugh G. 1927 *Health supervision and medical inspection of schools* Philadelphia, Saunders 637 p

Woodbury, Robert M 1921 *Statures and weights of children under six years of age.* U S Child Bur. Publ No. 87. 117 p

Woodcock, I. J 1934. Thumbsucking. *Med Rec.* 139.328-330.

Wood-Jones, Frederic 1929 *Measurements and landmarks in physical anthropology* Honolulu, T H., Bernice P. Bishop Museum, Bull. No 63 67 p

Woolley, Helen T 1926 *An experimental study of children at work and in school between ages of fourteen and eighteen years* New York, Macmillan. 762 p.

Woolley, Helen T 1931. Eating, sleeping and elimination *In* C. Murchison (1931), pp 28-70.

———, and Ferris, Elizabeth 1923 *Diagnosis and treatment of young school failures* U. S Off. Educ Bull. 1923, No. 1 115 p.

Worth, C. A 1921. *Squint* London, Baillière, Tindall & Cox. 5th ed 247 p

Wulker, L. 1934. Das einzige Kind *Zsch padag Psychol* 35 324-326

Yepsen, Lloyd N. 1928 A score card of personal behavior *J Appl Psychol.* 12:140-148.

Yerkes, Robert M 1921. *Psychological examining in the United States Army.* Nat Acad Sci., Memoirs, 15. 890 p.

———, Bridges, J W, and Hardwick, Rose 1915. *A point scale for measuring mental ability.* Baltimore, Warwick & York 218 p

———, and Foster, J C. 1923 *A point scale for measuring mental ability (1923 revision)* Baltimore, Warwick & York 219 p

Young, Herman H. 1916 The Witmer form board *Psychol Clinic,* 10 93-111

———. 1916a Physical and mental factors involved in the form-board test. *Psychol Clinic* 10:149-167

——— 1922. Slot maze A *Psychol. Clinic* 14 73-82

———, and Young, Mary H 1923. The Witmer form board—first trial times *Psychol Clinic.* 15 85-91.

Zappert, Julius 1922. Dementia infantilis (Heller) *Monatssch. f Kinderhk* 22 389-397

Zeleny, L D 1933 Feeble-mindedness and criminal conduct *Amer J Sociol.* 28 564-576.

Ziehen, Georg T 1917. *Die Geisteskrankheiten des Kindesalters, einschliesslich des Schwachsinns und der psychopathischen Konstitutionen* Berlin, Reuther & Reichard. 491 p.

Zirbes, Laura 1918 Diagnostic measurement as a basis of procedure *Elem Sch. J* 18 505-552

Zyve, D. L 1930 *Stanford scientific aptitude test. Explanatory booklet* Stanford University, Calif, Stanford Univ Press 15 p

SUBJECT INDEX

AUTHORS' INDEX